ब्रजलोक-संस्कृति

[लोक-संस्कृति के अध्ययन और निर्माण पर
अधिकारी विद्वानों के अभिभाषण]

सम्पादक : सत्येन्द्र

प्रकाशक—
ब्रज-साहित्य-मण्डल,
मथुरा।

सूरजयन्ती २००५

मुद्रक—
साहित्य प्रेस,
आगरा।

ब्रज-लोक-संस्कृति

विषय-सूची

भूमिका

यह पुस्तक 'ब्रजलोक-संस्कृति' पाठकों के हाथ में है। यह पुस्तक कैसे तय्यार हुई और क्यों हुई यह आगे के अध्याय से प्रकट होगा। हमें खेद है कि हम इसमें दो-तीन आवश्यक भाषण नहीं दे सके। अन्तिम क्षण तक हमें इन भाषणों की प्राप्ति का आश्वासन मिलता रहा। पुस्तक इन भाषणों के लिए कितने ही समय तक रुकी रही, पर वे भाषण न आ सके। उन भाषणों के वचन अब भी हमें मिले हुए हैं। संभवतः उनका उपयोग अगले संस्करण में किया जायगा। इन प्रस्तावित भाषणों के स्थान पर जो भाषण शिविर में हुए थे, वे भी हम नहीं दे सके। आश्वासनों पर भरोसा किये हम अब तक रुके रहे, और अब पुस्तक को प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। अतः वे भाषण नहीं दिये जा सकते। हम पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हैं।

इस पुस्तक में जो चित्र दिये गये हैं, वे सभी मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय से मिले हैं। उक्त संग्रहालय के क्यूरेटर महोदय श्री कृष्णदत्त वाजपेयी का इस पुस्तक की चित्र-व्यवस्था में पूरा हाथ रहा है।

ब्रज-साहित्य-मण्डल अभी इस पुस्तक को प्रकाशित नहीं कर पाता यदि श्री गुरुदत्तजी चतुर्वेदी ने इसकी छपाई का समस्त व्यय प्रदान न किया होता। यह पुस्तक उनकी स्वर्गीया पुत्री के स्मारक स्वरूप प्रकाशित की जा रही है।

मण्डल के प्रधान-मन्त्री श्री गोपालप्रसाद व्यास हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। उनके साहस से ही 'शिक्षण-शिविर' संभव हो सका। शिक्षण-शिविर के बहाने से ही यह पुस्तक प्रस्तुत हुई है। इसके लिए धन जुटाने में भी उन्हें दौड़धूप करनी पड़ी है। साहित्य प्रेस के संचालक श्री महेन्द्रजी ने प्रेस की प्रत्येक सुविधा इस पुस्तक के लिए दी है। हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

ब्रज-लोक-संस्कृति

शिक्षण-शिविर की आयोजना

ब्रज-साहित्य-मंडल और पंचवर्षीय योजनाः—कहानी विशेष लम्बी नहीं है। ब्रज-साहित्य-मण्डल शिकोहाबाद अधिवेशन ने एक पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत करने का विचार किया। उसकी एक स्थायी-समिति में वह पंच-वर्षीय योजना गम्भीर विचारोपरान्त स्वीकार की गयी। उस पंचवर्षीय योजना में सबसे पहला प्रस्ताव 'लोक-संस्कृति-शिक्षण-शिविर' का था।

क्यों ? स्थायी समिति में शिक्षण-शिविर के संबंध में कितने ही प्रश्न पूछे गये। इस शिविर से मण्डल को क्या लाभ होगा ? इसमें जो विषय रखे गये हैं उनके व्याख्याता कौन होंगे ? इसमें किस योग्यता के विद्यार्थी लिये जायँगे ? ये व्याख्यान तो ऊँचे साहित्यिक धरातल के होंगे ? इन विषयों की क्या उपयोगिता होगी ? इनके शिक्षण की क्या आवश्यकता है ? इसी प्रकार अनेकों प्रश्न पूछे गये। वास्तव में ये प्रश्न और आशंकायें योजना में इस सर्वथा नवीन-विधान के कारण थीं।

सर्वथा नवीन—अभी तक हम लोगों ने सैनिक और बालचर्य के शिविरों को ही देखा और सुना था। राजनीतिक प्रचार और कार्य की शिक्षा के लिए भी शिविर होते रहे हैं। पर सांस्कृतिक और साहित्यिक उद्देश्यों से शिक्षण-शिविरों का आयोजन सर्वथा नवीन उद्योग था। इसी कारण एकानेक संदेह उत्पन्न होते थे।

मूल योजना—मण्डल के पंच-वर्षीय कार्य-क्रम में शिक्षण-शिविर की मूल-योजना का यह रूप था।

प्रथम वर्ष —ग्राम-साहित्य संकलन कर्त्ताओं के लिए शिक्षण-शिविर। यह पंद्रह दिन की अवधि का हो।

१—यह शिविर १५ दिन के लिए होगा।

२—हिन्दी-मिडिल की योग्यता रखने वाला व्यक्ति इसमें सम्मिलित हो सकता है।

३—यह शिविर मथुरा में होगा।

४—शिविर में भोजन-व्यय विद्यार्थियों को स्वयं देना होगा। शिविर का प्रबन्ध और विद्यापीठ का प्रबन्ध मण्डल करेगा।

५—शिविर के निवास-प्रबन्ध तथा शिक्षा प्रबन्ध के लिए दो समितियाँ होंगी—

(अ) निवास-प्रबंध समिति में निम्न सदस्य होंगे—

१—निवास-विभाग सदस्य—यह व्यक्ति स्थान नियत करेगा। विद्यार्थियों को स्थान निश्चित करेगा; उन्हें रहन-सहन सम्बन्धी आवश्यक सामग्री, फर्नीचर वगैरह की सुविधा दिलायेगा।

२—सफाई-विभाग सदस्य—स्थान तथा व्यक्ति की आवश्यक स्वच्छता का प्रबन्ध करायेगा।

३—जल-विभाग सदस्य—विद्यार्थियों तथा शिविर निवासियों के स्नान-पान तथा भोजन आदि के लिए जल का प्रबन्ध करायेगा।

४—प्रकाश-विभाग सदस्य—प्रकाश का प्रबन्ध करायेगा।

५—निवास-अनुशासन सदस्य—यही व्यक्ति निवास का मुख्याधिष्ठाता तथा निवास समिति का संयोजक होगा।

६—भोजन-विभाग-सदस्य—भोजन के प्रबन्ध पर दृष्टि रखेगा।

(आ) शिक्षण-समिति में निम्न सदस्य होंगे। ये सभी शिविर में शिक्षण की उचित व्यवस्था का ध्यान रखेंगे—

१—प्रधानाध्यापक

२—पुस्तक—प्रबन्धक

३—यात्रा—संयोजक

४—कलाकार

५—लेखक

शिक्षण का प्रोग्राम निश्चित करने तथा उसके लिए आवश्यक सामग्री जुटाने का भार इसी समिति पर है। प्रधानाध्यापक इसका संयोजक होगा।

शिक्षण की व्यवस्था में निम्न बातों पर ध्यान दिया जायगा:—

१—निश्चित पाठ्य-क्रम के अनुसार व्याख्यानों का प्रबन्ध कराना।

२—प्रत्येक व्याख्यान के लिए व्याख्यान के दिन आवश्यक पुस्तकें उपलब्ध करना तथा प्रति दिन उपयोग में आने वाली पुस्तकों के एक पुस्तकालय का प्रबन्ध करना। इसके लिए सुझाव यह है कि विशेष उद्योग करके मथुरा म्यूजियम तथा दोनों कालेजों के पुस्तकालयों का सहयोग प्राप्त कर लिया जाय।

३—यात्रा-संयोजक प्रधानाध्यापक से परामर्श कर ऐसी यात्राओं का प्रबन्ध करायेंगे, जिनसे व्याख्यान में ग्राम-संस्कृति से संबंधित बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान विद्यार्थियों को कराया जा सके।

४—ऐसी योजनाओं में काम आने वाली वस्तुओं के चित्र तथा मॉडल आदि बनाने का भी काम साथ में होना अच्छा होगा। यह कार्य कलाकार सदस्य करायेगा।

५—एक लेखक सदस्य होगा जो मुद्रित व्याख्यानों के अतिरिक्त जो अन्य प्रश्न कक्षाओं में पूछे जायँगे, उनका उत्तर मण्डल के लिए लिखता चला जायगा। यात्राओं के वर्णन लिखने या लिखाने का प्रबन्ध भी यह सदस्य करेगा।

इस शिविर का पाठ्य-क्रम निम्न लिखित होगा:—

१—ब्रज की भूगोल—जन-तत्व।

२—ब्रज की जातियाँ, नृविज्ञान, Racial elements in Vraja and their characteristic study.

३—ब्रज की कला ग्राम्य तथा नागरिक, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र नृत्य, संगीत।

४—ब्रज की लिपियों का इतिहास-विकास।

५—लोकधर्म, रीति-रिवाज, उत्सव तथा संस्कार।

६—लोकवार्त्ता-अध्ययन तथा संकलन प्रणाली।

७—ब्रज का इतिहास।

८—ब्रज साहित्य का इतिहास।

९—ब्रज संस्कृति का पुनर्निमाण कैसे; कुछ व्यावहारिक परामर्श।

१०—ग्राम-गीत, उनके छन्द तथा वस्तु।

११—ब्रज में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के नियम।

१२—साहित्य और संस्कृति के शोध का महत्व।

ये व्याख्यान लिखित होंगे। प्रश्न और उत्तर के द्वारा विषय को प्रस्तुत किया जायगा। प्रश्न तालिका शिक्षण समिति बना कर भेजेगी, व्याख्याता उसमें उचित संशोधन करके उत्तर देंगे। व्याख्याताओं को व्याख्यान देने के लिए बुलाया जायगा और वे व्याख्यान में विद्यार्थियो के अन्य प्रश्नों का मौखिक उत्तर भी देंगे। प्रत्येक व्याख्याता से यह प्रार्थना भी की जायगी कि वे साथ में उन पुस्तको की सूची भी देने की कृपा करें, जो इस विषय के लिए विद्यार्थियों के उपयोगी सिद्ध हों; साथ ही वे यह भी उल्लेख करें कि क्या कुछ ऐसे माडल तथा चित्र भी हैं, जिन्हें वे चाहेंगे कि मंडल व्याख्यान के लिए तय्यार कराये या मँगाये। अन्य आवश्यक सामग्री का भी वे उल्लेख कर देने की कृपा करेंगे।

ये व्याख्यान छपाये जायँगे और इनका मूल्य रखा जायगा। इस शिविर में कितने विद्यार्थी सम्मिलित किये जायें, इसका निश्चय स्थायी समिति अथवा प्रचार समिति करेगी। १५ विद्यार्थियों पर ५००) व्यय होने का अनुमान है—२००) के लगभग व्याख्याता महोदयों के सम्मानार्थ। व्याख्याताओं को उनके व्याख्यानों पर मण्डल अपने नियम के अनुसार रायल्टी भी देगा।

इसका उद्‌घाटन किसी योग्य और प्रभावशाली व्यक्ति से कराया जायगा।

शिविर की समाप्ति पर एक विशेष उत्सव कराया जायगा जिसमें विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र प्रदान किये जायँगे।

शिविर का शिक्षण के अतिरिक्त कार्य-क्रम बालचरों के कैम्प विधि के अनुसार किया जायगा।

योजना की व्याख्या:—इस योजना की व्याख्या में प्रस्तावक महोदय ने कुछ इस प्रकार स्पष्टीकरण किया था:—

"ब्रज-साहित्य-मंडल के पास दो प्रकार के साहित्यिक कार्य हैं। एक प्राचीन लिखित ग्रन्थों का शोध कराना, उनके अध्ययन को प्रोत्साहन देना। दूसरा : लोक में प्रचलित मौखिक साहित्य का संकलन और अध्ययन। मंडल ने इन दोनों कार्यों को करते हुए पद-पद पर यह अनुभव किया कि यह कार्य सार्वजनिक रूप से करने में अनेकों कठिनाइयाँ प्रस्तुत होती हैं। शोध का कार्य अभी तक प्रधानतः हिन्दी क्षेत्र में नागरी प्रचारिणी-सभा काशी ने कराया है। उसका यह कार्य उसके द्वारा नियुक्त एजेंटों ने किया है। इस शोध की भी अपनी टेकनीक और वैज्ञानिक विधि है। यह विधि सर्वसाधारण को ज्ञात नहीं। मंडल यह अनुभव करता है कि वह गाँव-गाँव में केन्द्र खोले, और प्रत्येक केन्द्र से उसके ही व्यक्तियों द्वारा यह कार्य कराये। वे यह कार्य कैसे करें ? यह प्रश्न उपस्थित हुआ। मौखिक लोक-साहित्य को एकत्र करना और भी टेढ़ी खीर है। क्या एकत्र किया जाय, क्या न किया जाय ? किस प्रकार किया जाय ? यह लोक-साहित्य लोक-वार्त्ता और लोक-साहित्य से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धित है। बिना लोक-वार्त्ता के लोक-साहित्य को ठीक रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। लोक-साहित्य की जड़ें लोक-जीवन में बड़ी गहरी चली गई हैं।

आज हम गाँवों में और नगरों में रहते हैं, किन्तु हमारे लिये ये गाँव और नगर बन्द पुस्तकें हैं। हम गाँव में रहते हुए भी वहाँ की एक भी बात का मर्म आज नहीं समझ सकते, या पाते। गाँवों के चित्र, गाँव के नृत्य, गाँव के उत्सव और त्यौहार, उनकी बनावट और बसावट, विविध मनुष्यों की आकृतियाँ, उनके मनोरञ्जन सभी संस्कृति के वृहत-ग्रन्थ के शब्द और वाक्य हैं। किन्तु हम उनकी क-ख-ग नहीं पढ़े। ब्रज-साहित्य-मंडल को लोक-सेवा और लोक-अध्ययन के लिए यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है कि इनके मर्म को समझने के लिए साधन प्रस्तुत करे।

योजना में सुझाये हुए सभी विषय जन-साधारण के मौलिक अध्ययन से सम्बन्ध रखते हैं फिर भी एक विशेष प्रकार के विद्वत्-वर्ग ही उसके विज्ञान से परिचित है। ब्रज-साहित्य-मंडल लोक-भाषा हिन्दी में इस शिविर द्वारा पहली बार इन विषयों का आरम्भिक विज्ञान प्रस्तुत करेगा। इस शिक्षण से इन विषयों की दक्षता तो अवश्य प्राप्त

नहीं होगी, पर काम चलाऊ ज्ञान अवश्य हो जायगा। इतना ज्ञान हो जायगा कि सीखने वाला लोक-प्रवृत्तियों के प्रति आँखें रहते भी अन्धा नहीं रहेगा। हिन्दी में एक विषय की पूर्ति हो जायगी, और शोध और संकलन के कार्य की टेक्नीक को जानने वाले कार्यकर्त्ता तय्यार हो सकेंगे।

ये सभी भाषण और अध्यापन हिन्दी में होंगे, और यथा सम्भव लाक्षणिक और पारिभाषिक शब्दों को बचाकर दिये जायँगे। अतएव साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इनसे लाभ उठा सकेगा।

इस योजना को कार्य रूप मे परिणत करते समय जो विस्तृत रूप होगा, उसमें इस बात का ध्यान रखा जायगा कि प्रत्येक विषय ठीक-ठीक हृदयंगम कराया जा सके। इस निमित्त इस योजना में कई उपाय रखे गये हैं।

मूर्ति-प्रस्तुतियां—१ प्रत्येक व्याख्यान के सम्बन्ध में यह चेष्टा की जायगी कि अधिक से अधिक चित्र, फलक, मूर्ति, अथवा वस्तुओं का साक्षात्कार कराया जा सके। इनको प्रस्तुत करते समय प्रत्येक व्याख्यान के आरम्भ में कलाकार इनके मर्म को प्रकट करेगा और विद्यार्थियों को उनका परिचय देगा।

पूर्व पीठिका— २ व्याख्यान से पूर्व आचार्य उस व्याख्यान का मूल अभिप्राय और व्याख्याता का परिचय करा देगा।

प्रश्न-निर्णय—३ व्याख्यान के पश्चात् शंकाओं को प्रश्न के रूप में आचार्य की सहायता से लिख लिया जायगा। ये प्रश्न भाषणकर्त्ता के पास पहुँचा दिये जायँगे।

पुस्तकावलोकन—४ उसी विषय पर उस दिन वे पुस्तकें पुस्तकालय में रखदी जायँगी जो उस विषय से सम्बन्धित होंगी। उन्हें विद्यार्थी पढ़ेंगे।

रात्रि-गोष्ठी- ५ रात की गोष्ठी मे लोक-अभिव्यक्तियों का प्रदर्शन होगा। इन विधियों से विषय का पूर्ण अध्ययन कराने का यत्न किया जायगा। इस स्पष्टीकरण से 'शिविर' के रूप को समझने मे सभी को सहायता मिली। स्थायी समिति ने योजना स्वीकार करली और इस दिशा में कार्य आरम्भ कर दिया गया।

प्रोत्साहन – इस योजना का सभी ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। सबसे पहले ख्यातनामा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने कुछ पंक्तियों में ही किन्तु बड़ी सारगर्भिता से उस योजना की प्रशंसा की। महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह ने सीतामऊ से एक विस्तृत पत्र भेजा। उसमें ये पंक्तियाँ विशेष द्रष्टव्य थीं—

"व्रज की भारत को सबसे बड़ी देन है भारतीय साहित्य की काव्य की भाषा, पिंगल या व्रज बोली। सुदूर कच्छ में अब भी पिंगल काव्य रचना का एक स्कूल है जहाँ बारहठ, चारण, आदि व्रजभाषा में कविता करना सीखते हैं। 'व्रजभाषा' की यह साहित्यिक विजय इतनी विस्तृत एवं सम्पूर्ण थी कि अभी तक इसका पूरा-पूरा स्वरूप न तो पाया ही जा सका है और न इस सम्बन्ध में कोई प्रयत्न ही किए गए। आज पुनर्जाग्रत भारत में इसकी ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है। सुसंगठित एवं सुजाग्रत व्रजभूमि ही भारत की इस विगत महत्ता को ठीक-ठीक आंकने का प्रयत्न कर सकती है। व्रजभाषा का भारतीय भाषाओं के इतिहास एवं हिन्दी-साहित्यिक विवरण में ठीक-ठीक स्थान तभी निश्चित किया जा सकेगा।

व्रज-मंडल की सांस्कृतिक सीमाएँ निश्चित करते समय आस-पास के राज्यों को न भूलें। भरतपुर नरेश यों ही 'व्रजेन्द्र' नहीं कहला सकते; उनका राज्य भी इसी सांस्कृतिक इकाई में आवेगा। इसी प्रकार अन्य भागों की भी नाप तोल कर अन्तिम रूप-रेखा निश्चित करनी होगी।

व्रज-मण्डल की पञ्चवर्षीय योजना बहुत ही मनोरञ्जक और उपयोगी वस्तु है। बहुत ही साहसपूर्ण तथा Ambitions आयोजन है। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह इस आयोजन को पूरा करने में आप से सोत्साही पुरुषों को बल और सहायता दे। हम भारतीय प्रायः आरम्भ-शूर ही होते हैं। काम प्रारम्भ कर देना कठिन नहीं। उसे निबाहना; और सफलतापूर्वक पूरा करना विरलों का ही काम होता है।" इसी स्थान पर लोक-वार्त्ता परिषद् टीकमगढ़ के मंत्री तथा 'लोकवार्त्ता' पत्र के सम्पादक श्रीकृष्णानन्द गुप्त का एक उत्साह-वर्द्धक पत्र यहाँ पूरा उद्धृत किया जाता है:—

ता० १२-१२-४६

प्रिय श्री सत्येन्द्रजी !

आपका ता० २२-११-४६ का कृपा कार्ड मिला। मैं बाहर था। अभी लौटा हूँ। इसी से उत्तर में विलम्ब हुआ। क्षमा कीजियेगा।

आपका प्रस्ताव तो बड़ा ही उत्तम है। इसमें आप जैसा चाहें वैसा सहर्ष मेरा उपयोग कर सकते हैं। सम्भवत: मैंने लिखा था कि इस प्रकार की एक प्रदर्शिका मे लिखना चाहता हूँ कि जिससे इस विषय के प्रेमियों और कार्यकर्त्ताओं को कुछ सहायता मिले। उधर भोजपुरी के क्षेत्र में भी कुछ इसी प्रकार के कार्य की योजना चल रही है, और वे लोग मुझ से कुछ सूचनायें चाहते हैं। इसलिए अगर किताब लिख सका तो वह बहुत सामयिक और उपयोगी होगी।

छोटे व्याख्यान से तो काम नहीं चलेगा। आप शिविर कब तक कर रहे हैं। जनवरी तक शायद मैं आपके लिए व्याख्यान की जगह एक व्याख्यान माला तैयार कर सकूँ। उस वक्त ही शिविर रखिए। तब तक पूरी तैयारी और आपका प्रचार भी हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में एक सुझाव आपके सामने रखना चाहता हूँ। उचित समझें तो उस पर विचार करें। शायद आपको मालूम होगा कि पुरातत्त्व-विभाग की तरह भारत सरकार ने हाल ही में Anthropological survey के नाम से एक स्वतन्त्र विभाग की स्थापना की है। डा० बैरियर एलविन जो कि मुझ पर विशेष कृपा रखते हैं उसके डिप्टी डाइरैक्टर नियुक्त हुए हैं। वे हमारी लोक वार्त्ता परिषद् के सभापति भी हैं। अत: परिषद के सहयोग में आप यह काम करना पसन्द करें तो सम्भवत: एक दिन के लिए मैं उन्हें आगरा या मथुरा आने के लिए प्रेरित कर सकूँगा। मगर उनके आने के संबन्ध में मैं अभी कुछ नहीं कह सकूँगा। वे अभी बाहर दूर पर उड़ीसा की तरफ गये हैं। १५ जनवरी के बाद लौटेंगे। हमारा और आपका काम एक ही है। उनको यदि हम बुला सकें तो प्रचार में बड़ी मदद मिलेगी।

एलविन साहब को बुलाने के उद्देश्य से ही मैंने यह बात आपके सामने रखी है और परिषद की तरफ से यदि कुछ कार्य आप संयोजित कर सकें तो उन्हें बुलाने का अधिकार मुझे स्वत प्राप्त है

इसमें अगर किसी तरह के मेरे सहयोग की जरूरत हो तो मैं निस्सन्देह तैयार रहूँगा आप इस प्रस्ताव को किसी और रूप में न लें। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका—कृष्णानन्द

फीरोजाबाद अधिवेशन पर—शिक्षण शिविर की योजना डा० रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए०, डी०एस-सी० के सभापतित्व में स्वीकार की गयी थी। उस समय श्री सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव एम०ए०, एल०टी० सब-डिप्टी इन्स्पैक्टर आव स्कूल्स मथुरा इसके प्रधान मन्त्री थे। इनके कार्यकाल में योजना की विधिवत् स्थायी समिति से स्वीकृति लेते लेते प्रायः वर्ष समाप्त हो गया। फलतः फीरोजाबाद अधिवेशन से इस योजना को पूरी गति मिली। इस वर्ष के सभापति पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने अपने सभापति पद से भाषण देते हुए इन योजनाओं के सम्बन्ध में ये शब्द कहे थे:—

तृतीय वार्षिक अधिवेशन शिकोहाबाद के अवसर पर प्रकाशित ब्रज साहित्य मण्डल के पंच वार्षिक विवरण को पढ़ कर ही मण्डल के कार्यकर्त्ताओं के प्रति हृदय हर्ष और स्नेह से भर जाता है। ब्रज साहित्य मण्डल की पंच वर्षीय योजना के अनुसार इस वर्ष जो काम हुआ वह तो और भी अधिक प्रशंसनीय है।

इस पंचवर्षीय--योजना को और भी विस्तृत और परिवर्द्धित करके इसे तथा इसमें प्रस्तावित शिक्षण-शिविर को भारत की सभ्यता और संस्कृति, ब्रज की सभ्यता और संस्कृति अथवा ब्रज की सभ्यता और संस्कृति के पुनः संजीवन का सफल साधन बनाया जा सकता है। वह भारत भर के लिए ग्राम गुरुकुल का काम कर सकता है। कम से कम संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी ग्रामों का एक ग्राम-विश्व-विद्यालय तो बन ही सकता है। मैं उन लोगों में से हूँ जो ब्रज के साहित्य और उसकी संस्कृति को गांवों का साहित्य और गाँवों की सभ्यता तथा संस्कृति समझता हूँ और गांवों की सभ्यता तथा संस्कृति को भारत की वास्तविक सभ्यता तथा संस्कृति मानता हूँ।

महात्मा गांधी के साथ--साथ मेरा भी यह विश्वास है कि मानव को सत्य--शांति--सुख आदि पश्चिम में नहीं मिलेंगे—पूरब में

मिलेंगे। महात्माजी के शब्दों में यीशु का धर्म भी जो पूरब में ही पैदा हुआ था पश्चिम में जाकर तो वह भी विकृत ही हुआ। स्पैंगलर ओसवाल्ड का कहना है कि पश्चिम का समाजवाद-साम्यवाद और मार्क्सवाद का भी मूलाधार यह भाव है कि 'आई समझ में कि लाऊँ लट्ठ ?' सोवियट रूस भी मार्क्सवाद की शिक्षा हवाई जहाजों और टैंकों से देता है और अब ऐटमबम से देने की तैयारी कर रहा है। केवल सेवा, तर्क, विवेक और उपदेश द्वारा मानव-हृदय को सुसंस्कृत और परिवर्त्तन करने का काम तो संसार के इतिहास में अकेले भारत ने ही किया था—आज से दो हजार बरस पहले। और किया था इतनी सफलता के साथ कि वह श्याम, मलाया, अफगानिस्तान, चीन, जापान इत्यादि देशों में चारों तरफ फैला। महात्माजी की यह बात तो मेरे जीवन का मूल मन्त्र है कि पूरब में भारत में भी सत्य और धर्म, सुख और शांति, सभ्यता और संस्कृति हमें गांवों में ही मिलेगी शहरों में नहीं। ब्रज का साहित्य और ब्रज की सभ्यता तथा उसकी संस्कृति गाँवों की सभ्यता और संस्कृति है। इन्द्र और गोवर्धन दोनों ही मुख्यतः गांवों के देवता हैं। यदि संसार में कभी वसुधैव कुटुम्बकम् का स्वप्न पूरा होना है, विश्व-संघ और एक संसार की तथा स्थायी शाँति, वास्तविक लोकतन्त्र सच्ची स्वाधीनता की स्थापना होनी है तो वह गांवों की सभ्यता और संस्कृति से ही होनी है।

इस दृष्टि से आप भी ब्रज-साहित्य-मण्डल का काम करके केवल ब्रज की ही नहीं समस्त देश की और अखिल विश्व की सेवा कर रहे हैं। आप ब्रज के साहित्य और उसकी संस्कृति की रक्षा के प्रयत्न में अनजाने ही भारत की सभ्यता और उसकी संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं और याद रखिये कि ऐसे समय में जब भारत राजनीतिक स्वाधीनता के समीप जा पहुँचा है उसकी मुख्य समस्या राजनीतिक स्वाधीनता के बाद केवल आर्थिक स्वाधीनता की ही नहीं साँस्कृतिक स्वाधीनता की भी है। भारत का पेट ही नहीं खाली उसकी आत्मा भी भूखी है।

× × × ×

हमारा शिक्षण-शिविर केवल ग्राम-साहित्य के

लिए ही न हो, बल्कि वह ब्रज-साहित्य, ब्रज-सभ्यता और ब्रज संस्कृति अथवा ग्राम-साहित्य, ग्राम-सभ्यता और ग्राम संस्कृति का पुनरुज्जीवन करने वाले पूर्णतया शिक्षित कार्य-कर्त्ताओं की शिक्षा का ऐसा केन्द्र हो जहाँ से निकल करके कार्य-कर्ता भारत के आठ लाख उजड़े हुए गाँवों को फिर से सुख और प्रकाश का केन्द्र अथवा सभ्यता और संस्कृति का स्रोत बना सकें। यह केवल शिक्षण-शिविर ग्राम-विश्वविद्यालय अथवा ग्राम गुरुकुल हो और जिसमें नियमित शिक्षा के अतिरिक्त युद्धकालीन शिक्षाओं ग्रामादि की शिक्षाओं तथा कुछ महीने कार्य द्वारा शिक्षण तथा कुछ महीने सिद्धान्त आदि की शिक्षा का भी प्रबंध हो।

गांवों को जीवन के रूप के संबन्ध में, उनके जीवन की उपजों के अभियन्त्रीकरण के संबन्ध में, गांवों के मेलों तथा विविध उत्सव व्यवहारादि को अधिक सजीव सरस और शिक्षा-प्रद तथा उपयोगी बनाने के संबन्ध में विचार हो।

गाँवों में प्रचलित अनेक संस्थाओ आदि का सदुपयोग करके हम फिर से गाँव के जीवन को आदर्श बना सकते हैं। दिवाली सफाई का, हरियाली तीजों को वृक्ष फूलादि लगाने का, सलूनों को टूर्नामेंटों का, होली को पारस्परिक मेल का तथा कुश्ती आदि द्वारा शारीरिक उन्नति का सबल तथा कारगर साधन बनाया जा सकता है। ग्राम-गीत और गाँवो के गायक सफल प्रचार के सबल साधन बन सकते हैं। रासों को जन-नाट्य का रूप दिया जा सकता है। इस थोड़े से संकेत मात्र से ही आप इस बात की कल्पना भली-भांति कर सकते हैं कि ब्रज-साहित्य-मण्डल के सामने कार्य का कितना विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है? और वर्तमान समय में जब देश स्वाधीनता के समीप पहुँच रहा है तथा निकट भविष्य में ही उसके पूर्णतया स्वाधीन होने की पूर्ण आशा है तब इन सब कार्यों के लिए आवश्यक साधनों की भी कमी नहीं रहेगी।

अपना लक्ष्य ऊंचा रखिये, अपने दृष्टिकोण को अधिक से अधिक उदार बनाइये तो आप देखेंगे कि जनता और सरकार दोनों ही सहर्ष सब तरह आपकी सहायता करेगी।

मण्डल का कार्य इन वर्षों में इतनी गति और वेग से चला,

उसके कार्य-कत्त   की प्रणाली का कुछ ऐसा रूप रहा कि उसकी धूम भी पर्याप्त हुइ ।। इससे और भी, अधिक उसे कार्य करने की माँग होने लगी। नये चुनाव में प्रधान-मन्त्रित्व श्री गोपालप्रसाद व्यास को सौंपा गया। व्यासजी ठोस कार्य के लिए संकल्पबद्ध थे। उनका निश्चय था कि इस वर्ष शिक्षण-शिविर होकर ही रहेगा। इस शिविर की विवरण-पत्रिका पहले ही तैयार हो चुकी थी। उसे अब प्रकाशित कर दिया गया और विद्यार्थियों के प्रवेश की तैयारियाँ होने लगीं। इस विस्तृत विवरण-पत्रिका में वैसे भी कुछ बातें उद्धृत करने योग्य हैं। इनसे इस शिविर के कार्य-संचालन पर प्रकाश पड़ेगा।

शिविर के उद्देश्य।

१—यह शिविर मण्डल की पंचवर्षीय योजना का प्रथम और प्रधान अङ्ग है। उसमें स्पष्ट निर्देश है कि ब्रज-संस्कृति और साहित्य के संकलन और अध्ययन का कार्य उस समय तक विधिवत् नहीं हो सकता जब तक कि कार्यकर्त्ताओं को इस प्रकार के कार्य की वैज्ञानिक शिक्षा न दी जाय।

२—अब तक शोध का कार्य सार्वजनिक दृष्टिकोण से नहीं हुआ, न जनसाधारण ने उसमें कोई भाग ही लिया था। फलतः ग्राम-संस्कृति अभी तक अंधकार में पड़ी हुई है। उसको समझने वाले बहुत कम हैं। मण्डल का यह एक बिल्कुल नया प्रयोग है। इस शिक्षण शिविर के द्वारा वह संस्कृति और साहित्य के, ज्ञान और शोध की वैज्ञानिक प्रणाली को साधारण जन सुलभ बना देना चाहता है। इस शिविर में शिक्षा पाने वाले व्यक्तियों के लिए ग्राम का कण-कण बोलने लगेगा।

३—ग्रामों के पुनर्निर्माण का यह युग है। इस पुनर्निर्माण में ग्रामों के सांस्कृतिक उत्थान पर ही ग्राम जीवन का सुख निर्भर करता है। उसे जबतक भली प्रकार न समझ लिया जायगा, तब तक उसके उत्थान में सहयोग कैसे दिया जा सकता है। यह शिविर उसी सांस्कृतिक उत्थान के लिए उद्योग करेगा।

इसके अनन्तर विविध नियमोपनियमों का तथा शेष व्यवस्था का उल्लेख किया गया था।

शिविर में प्रवेश

-शिविर में कोई भी व्यक्ति शिक्षा पाने के लिए दाखिल हो सकता है, परः—

-उसकी योग्यता कम से कम हिन्दी मिडिल की होनी आवश्यक है।

-यह आवश्यक है कि वह अपना आवेदन पत्र भेज कर प्रधान अध्यापक से स्वीकृति प्राप्त करलें।

शिविर में निवास

-शिविर के प्रत्येक विद्यार्थी को शिविर में ही निवास करना होगा। विशेष दशा में प्रधानाध्यापक को अधिकार है कि इस नियम के रहते हुए भी वह कुछ को बिना शिविर मे निवास किए ही शिक्षा में भाग लेने की अनुमति दे दें।

-शिविर में निवास करने वाले शिक्षार्थियों को शिविर नियमों का शान्ति से पालन करना पड़ेगा।

-शिविर के प्रधान नियम यह हैं—

(अ) कोई भी शिविर का सदस्य निवास के मुख्याधिष्ठाता आज्ञा बिना शिविर छोड़ कर नहीं जा सकेगा।

(आ) शिविर का कोई भी निवासी अपने पास धन या आभूषण बिना मुख्याधिष्ठाता की आज्ञा के नहीं रख सकेगा। सब से अच्छा यह होगा कि ऐसी वस्तुएँ मुख्याधिष्ठाता के पास जमा करा दी जायें।

(इ) शिविर का कार्य-क्रम एक बोर्ड पर लगा दिया जाता रहेगा। सारा कार्य उसी के अनुसार होगा। उसमें कोई ढिलाई नहीं की जायगी। प्रत्येक कार्य ठीक समय पर आरम्भ हुआ करेगा।

(ई) प्रत्येक कार्य में प्रत्येक सदस्य को भाग लेना होगा।

(उ) चित्त की साधारण से साधारण अस्वस्थता की सूचना तुरन्त मुख्याधिष्ठाता को दी जानी चाहिए।

(ऊ) शिविर का साधारणतः यह कार्यक्रम रहेगाः—

प्रातः—४-३० जागरण, शौचादि
५-० व्यायाम-सामूहिक प्रार्थना
५-२० विराम
५-३० स्नानादि
५-५० विद्यापीठ प्रस्थान की तैयारी, कलेवा
६-० विद्यापीठ-अध्ययन
११-० विराम
११-१५ भोजन
१२-० विश्राम
१-० निज-व्यवस्था
१-३० स्वाध्याय, नोट्स लिखना
३-० पुस्तकालय, कला-भवन
४-० विद्यापीठ
५-३० खेलकूद
६-१५ स्नान
६-३० भोजन
७-१० टहलना
८-० गोष्ठी-मनोरंजन तथा चर्चा
६-४५ विशेष सूचनाऐं
१०- शयन

इस कार्यक्रम में जो परिवर्तन हुआ करेगा वह यथा-समय बता दिया जाया करेगा।

(घ) शिविर में ही औषधालय, पुस्तकालय, वाचनालय आदि रहेंगे।

(ऐ) निवास में भोजन शुल्क का अनुमान २०) प्रति व्यक्ति है। यह रुपया आवेदन-पत्र के साथ भेज देना होगा।

विद्यापीठ।

५—शिविर में शिक्षा व्यवस्था प्रधानाध्यापक की देख रेख में होगी।

६—शिविर का यह क्रम रहेगा।

(अ) ६ बजे सभी विद्यार्थी एकत्रित हो जायेंगे। कलाकार उस सम्बन्धी वस्तुएँ क्रमशः यथा स्थान जमावेगा

और प्रत्येक वस्तु की व्याख्या करता जायगा।

(आ) ६–४५ पर प्रधानाध्यापक विषय का संक्षिप्त परिचय देगा और व्याख्याता का परिचय देगा।

(इ) ७—मुख्य व्याख्यान।

(ई) १०–प्रधानाध्यापक के साथ विषय पर विद्यार्थियों का विचार विमर्श। शंकाओं का प्रश्न रूप में निश्चित करना। [ये प्रश्न व्याख्याता महोदय के पास भेज दिये जायेंगे।]

(उ) १–३० से ४ तक स्वाध्याय तथा पुस्तकालय उपयोग प्रधानाध्यापक, पुस्तक प्रबन्धक तथा कलाकार के निरीक्षणार्थ होगा।

(ऊ) ४–५. ३० तक व्याख्याता महोदय शंकाओं का निवारण करेंगे।

–ये व्याख्यान पहले से तय्यार होकर आ जायेंगे। प्रश्नों के उत्तरों को लिखने के लिए एक शीघ्र लिपि जानने वाला रहेगा, जो व्याख्याता के प्रत्येक उत्तर को लिखेगा। ये उत्तर भी मूल व्याख्यान के परिशिष्ट की भाँति छपवा दिए जायेंगे।

–यह उद्योग किया जायगा कि व्याख्यान पहले से मुद्रित रहे। जो विद्यार्थी व्याख्यान लेना चाहेंगे, उन्हें मूल्य देकर वे व्याख्यान मंडल से मिल सकेंगे।

–शिविर में पन्द्रह दिन के लिए निम्नलिखित प्रोग्राम निश्चित किया गया है। यह ता० ७ सितम्बर सन् ४७ से आरम्भ होगा।

कार्य-क्रम।

प्रथम दिवस–१. उद्घाटन।
२. नृतत्व (व्याख्यान)

द्वितीय दिवस–प्रधान व्याख्यान विषय—'जनपदीय अध्ययन की आँखें

तृतीय दिवस–विषय–ब्रज की कला (ग्राम तथा नागरिक) स्थापत्य मूर्ति, चित्र, नृत्य, सङ्गीतादि।

चतुर्थ दिवस–विषय–ब्रज का इतिहास।

पंचम दिवस–विषय–ब्रज साहित्य का इतिहास।

छठवां दिवस–विषय–ब्रज में हस्तलिखित ग्रन्थों की शोध के नियम

सातवाँ दिवस–विषय–ब्रज का मानव-विज्ञान

आठवाँ दिवस–विषय–लोक वार्ता उसका महत्व, अध्ययन तथा संकलन (ब्रज को ध्यान में रखकर)।

नवम् दिवस–विषय–लोक धर्म, रीति रिवाज उत्सव तथा संस्कार।

दसवाँ दिवस–विषय–ग्राम गीत, छन्द तथा वस्तु ?

ग्यारहवाँ दिवस–ग्राम यात्रा।

बारहवाँ दिवस–विषय–ब्रजभाषा और ब्रज मे लिपियों का विकास।

तेहरवाँ दिवस–यात्रा ।

चौदहवाँ दिवस–विषय–ब्रज की संस्कृति का पुनर्निर्माण (मानवेतर भाग)।

पन्द्रहवाँ दिवस–विषय–ब्रज संस्कृति का पुनर्निर्माण (मानव-सम्बन्धी)

सोलहवाँ दिवस–विषय–साहित्य और संस्कृति के शोध का महत्व तथा दीक्षान्त संस्कार।

१०—दो यात्राओं का प्रबन्ध किया जायगा। ये प्रबन्ध प्रधानाध्यापक के परामर्श से होगा।

११—दीक्षान्त के समय शिविर-शिक्षार्थी को मण्डल की ओर से प्रमाण-पत्र प्रदान किया जायगा।

व्याख्यानदाता—सभी विषयों के लिए विविध विद्वानों से पत्र-व्यवहार हुआ। प्रायः सभी विद्वानों ने इस कार्य की सराहना करते हुए भाषण देना स्वीकार किया। उन विद्वानों की लिखित स्वीकृति आने पर विषयों के अनुसार यह कार्य-क्रम रहा।-

१—जनपदीय अध्ययन की आँख—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, डी० लिट्, सुपरिंटैंडैंट म्यूजियम्स, दिल्ली।

२—ब्रज की कला—श्री कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए० क्यूरेटर, मथुरा। म्यूजियम, मथुरा।

३—श्री मदनमोहन नागर एम० ए० क्यूरेटर प्राविंशियल म्यूजियम, लखनऊ।

४—ब्रज-साहित्य का इतिहास—श्री० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०, प्रोफेसर अँग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

५—ब्रज में हस्तलिखित ग्रन्थों की शोध के नियम—श्री० भास्कर

रामचन्द्र भालेराव, नायब सूबा, मुरैना (ग्वालियर)

६—मानव-विज्ञान—श्री कृष्णानन्द गुप्त, संपादक—लोकवार्त्ता, टीकमगढ़।

७—ब्रज के लोक-गीत—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, लोक-गीत-संग्रह-विशेषज्ञ।

८—लोक गीतों के छन्द कथा वस्तु—श्री रामइकबालसिंह राकेश भदैनी (विहार)

६—ब्रज में ऐतिहासिक लिपियों का विकास—श्री कृष्णाचार्य एम० ए० साहित्य-रत्न, काशी।

१०—हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपियों का विकास—श्री उमाशंकर शुक्ल हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

११—ब्रज की संस्कृति का पुनःनिर्माण(मानवेतर भाग)—पं० श्रीराम-शर्मा, सम्पादक—विशाल भारत, कलकत्ता।

१२—ब्रज की संस्कृति का पुनःनिर्माण (मानव-संबंधी)—बाबू गुलाब-राय एम० ए०, संपादक—साहित्य सन्देश, आगरा।

इस प्रकार विद्यापीठ की पूरी तैयारी हो गई।

विविध जिला बोर्डों को लिखा गया कि वे पाँच-पाँच विद्यार्थी इस शिविर में भाग लेने के लिए भेजें। इसमें निम्न लिखित विद्यार्थी विविध बोर्डों और क्षेत्रों से इस शिविर में सम्मिलित हुए।

आगरा	१ ग्यासीराम शर्मा	मिढ़ाकुर
	२ कन्हैयालाल सारस्वत	अछनेरा
	३ श्यामलाल	नामनेर
	४ गङ्गाधर जैन	मिढ़ाकुर
इटावा	१ दर्शनसिंह	लखना
	२ रामनाथ	एकदिल
	३ बाबूलाल शर्मा	भरथना
	४ रघुवरदयाल मिश्र	इटावा
मथुरा	१ शिवलाल शर्मा	कोसीकलाँ
	२ चिरंजीलाल शर्मा	बरचावली
	३ शिवचरनलाल शर्मा	नौहझील
	४ साँवलसिंह अशोक	राया
	५ पातीराम	अकबरपुर

६ रामस्वरूप शर्मा	सुरीर
७ गौरीशङ्कर	बरसाना
८ पुरुषोत्तमलाल	बरसाना
९ प्रभुदयाल गोस्वामी	नन्दगाँव

अब कुछ अन्तिम निर्णय और करने थे। किस स्थान पर हो। कौन उद्‌घाटन करे? कौन दीक्षान्त भाषण दे?

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रबन्ध हुए:—

स्थान—गीतामन्दिर, मथुरा।

उद्‌घाटन—खाद्य-मन्त्री—डा० राजेन्द्र प्रसाद, सभापति विधानपरिषद तथा केन्द्रीय सरकार।

दीक्षान्त—श्री सम्पूर्णानन्दजी शिक्षा-मन्त्री, युक्तप्रान्त।

यथासमय गीतामन्दिर में शिक्षण-शिविर का कार्यालय स्थापित हो गया, तथा सभी विद्यार्थी अपने अपने स्थानों से आगये। ता० ७ भी आगयी। मण्डल ने उद्‌घाटन की भी विशद तैयारियाँ कर डालीं। विशाल पंडाल बन गया।

स्वागत समिति—शिक्षण-शिविर के उत्सवों और अतिथियों का स्वागत-सत्कार करने के निमित्त एक स्वागत समिति बना दी गई थी। इसका निर्माण इस प्रकार था।

१—श्री शाह गौड़शरण, वृन्दावन, स्वागताध्यक्ष।
२—श्री दानबिहारीलाल शर्मा वृन्दावन, स्वागतमन्त्री।
३—श्री शर्मनलाल अग्रवाल, सा० स्वागतमन्त्री।
४—श्री रामप्रसाद पोद्दार दिल्ली, स्वागताध्यक्ष दीक्षान्त-संस्कारोत्सव।
५—श्री सत्येन्द्रजी
६—श्री सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव।
७—श्री प्रभूदयाल मीतल।
८—श्री रामनारायन अग्रवाल।
९—श्री लज्जाराम ललाम।
१०—वाजपेयी।

विद्यापीठ और शिविर के कार्यकर्त्ता—शिविर और विद्यापीठ के कार्यकर्त्ता इस प्रकार नियुक्त किये गये।

आचार्य विद्यापीठ—श्री सत्येन्द्र एम० ए० ।

शिविर अधिष्ठाता—श्री शर्दनलाल एम० ए०, एल० एल० बी०, साहित्य-रत्न ।

अतिथि-विभाग —श्री रामनारायण अग्रवाल साहित्यरत्न, हिन्दी प्रभाकर ।

यात्रा-संयोजक —श्री सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव एम० ए०, एल० टी०

साहित्य-निवेदक —श्री कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए० ।

एक महान दुर्घटना सब तैयारियाँ हो चुकी थीं । सभी उत्सुकता से दिल्ली से देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के आने की बाट जोह रहे थे कि समाचार मिला कि दिल्ली में भीषण साम्प्रदायिक दङ्गा उठ खड़ा हुआ है । सारे देश की परिस्थिति एकदम बदल गयी । इस क्षण पर जिस बात की आशंका नहीं थी वह हो गयी और 'शिविर' के कार्य-क्रम में बड़ा व्याघात पहुँचा । ट्रेनों से यात्रा करना कठिन हो गया । जीवन का भय घिर आया । सब दिशाओं से सम्बन्ध विच्छेद हो गया ।

फिर भी मण्डल ने साहस पूर्वक शिविर के कार्य को व्यवस्था और योग्यता से सम्पादित कर ही डाला । आये हुए विद्यार्थियों को लौटा देने की बात कभी ग्राह्य नहीं हो सकती थी ।

जिस रूप में और जिस प्रकार यह कार्य सम्पादित हुआ, वह आगे प्रति दिन के विवरण से ज्ञात होगा । आगे के विवरण में विद्यार्थियों को दिये गये भाषण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

एक बात और । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का जिज्ञासुदलों में विभाजित कर दिया गया था । उन्होंने कुछ कार्य किया, उसका भी संक्षिप्त विवरण इसमें दिया जा रहा है ।

आगे के विवरण में यह क्रम है:—

१—आचार्य द्वारा पूर्व-पीठिका ।

२—व्याख्यान ।

३—गोष्ठी ।

४—प्रकृति अध्ययन ।

५—यात्रा-विवरण ।

इस विवरण में विद्वन्-समाज तथा साधारणजन सभी के योग्य सामग्री मिलेगी। शिविर से केवल उसमें सम्मिलित होने वाले विद्यार्थी ही लाभ उठा सके थे, इस प्रकाशन से सभी लाभान्वित होंगे ऐसा विश्वास है।

सात सितम्बर

ब्रज-संस्कृति और शिक्षण-शिविर

[स्वागताध्यक्ष शाह श्री गौरशरण गुप्त बी० ए०, एल० एल० बी० एडवोकेट का स्वागत-भाषण। ता० ७ सितम्बर १९४७ को शिविर के उद्‌घाटन-उत्सव पर दिये जाने के लिए लिखा हुआ भाषण]

❀ श्री हरि: ❀

श्रद्धेय सभापति जी, सज्जनो और देवियो !

भगवान कृष्ण की इस पुण्य क्रीड़ास्थली ब्रजभूमि में, जिसके करील कुञ्जों में आज भी भक्तजन 'मैया मैया टेर कर' 'गैयों को बुलाते' हुए गोपाल कृष्ण का दर्शन करते हैं, मैं आप सबका विनम्र भाव से स्वागत करते हुए अपने को कृतकृत्य मानता हूँ। आतिथ्य और शिष्टाचार की ब्रजभूमि में और ब्रजवासियों से—जहाँ काँटेदार कुञ्ज, खारी-जल, बोलने में गारी अनायास ही मिलती हैं, अपेक्षा न करना ही उचित होगा—फिर भी आडम्बरहीन बनवासियों की प्रेमाञ्जलि-स्वरूप खुले हृदय का हमारा यह अबोध-स्वागत आप कृपाकर स्वीकार करेंगे, ऐसी मुझे आशा है।

सज्जनो ! भारतीय संस्कृति के इस प्राचीनतम केन्द्र का ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व वर्णन करने में मैं आपके अमूल्य समय का असामयिक उपयोग करने की चेष्टा नहीं करना चाहता। हमारे पुराण, शास्त्र तथा श्रीमद्‌भागवत् जैसे महान् धार्मिक-ग्रन्थ इसके गुणानुवाद के अथाह सागर हैं, जिसका पार पाना असाध्य जानकर बड़े विद्वानों ने भी उनमें जी भर कर गोते लगा लेने में ही अपने जन्म की सफलता निहित मानी है। पुण्य सलिला गङ्गा और यमुना के इसी अंक में अनादि काल से उस भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, भारतीय कला और स्वयं भारतीयता का जन्म और सूत्र-संचालन होता आया है। जिसके गौरव को कभी सम्पूर्ण विश्व ने

नतमस्तक होकर स्वीकार किया और जिस के शिष्यत्व से गौरवान्वित होकर अन्य देशों को सभ्यता और मनुष्यता का पाठ पढ़ाया।

किसी भी देश को जीवित, स्वच्छ और अमर रखना साहित्य का काम है। साहित्य समाज को मानसिक भोजन देता है। नैतिक दृष्टि से उसे पुष्ट बनाता है, संकट के समय अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य देता है, उन्नति के मार्गों का निर्देश करता है और सब प्रकार से समाज को सफल, सबल, समर्थ और सुसम्पन्न बनाता है। समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये साहित्य का सृजन एवं संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अतः साहित्यिक संस्थाओं का जो साहित्य के सृजन और संरक्षण का कार्य करती हैं अथवा उन कार्यों में सहयोग या सहायता देती हैं, उनका समाज में अपना विशिष्ट स्थान है, विशिष्ट महत्व है। इस दृष्टि से हमारे ब्रज साहित्य मण्डल के सामने समाज के उत्थान का, उसकी सेवा का और उसकी उन्नति का जो गुरुतर कार्य है वह महान् होने के साथ साथ इतना विस्तृत भी है कि बालक से लेकर बूढ़े तक, विद्वान से लेकर अपढ़ मजदूर तक, राजा से लेकर रंक तक सब की सेवाएं उसमें खप सकती हैं और फिर भी कार्य बचा रह सकता है।

भारतीय साहित्य में ब्रजभाषा का साहित्य भारतीय खजाने के अमूल्यतम रत्नों की वह पिटारी है जिसका मूल्य आंकना तो दूर रहा—समझना भी, संसार के साहित्यिक पारखियों के लिये अभी टेढ़ी खीर बना हुआ है। विद्यापति से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक के लेखकों, कवियों, गायकों और नाट्यकारों पर आज तक न जाने कितने साहित्य की शोध करनेवालों ने डाक्टरेट प्राप्त करली हैं—फिर भी वे अमर साहित्यकार साहित्य के विद्यार्थियों के लिये ब्रह्म के रूप की तरह अभी तक रहस्य ही बने हुए हैं। सूर के एक एक पद पर ग्रन्थ के ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं फिर भी पद का पार नहीं मिलता—जितना ही घिसा जाता है उतना ही उज्ज्वल निकलता है। विद्यापति की पदावलि में नित्य नया आकर्षण मिलता है। कबीर की फटकारें अभी तक कँपा देती हैं। भूषण के कवित्त आज भी मुर्दा नसों में खून खौला देते हैं। बिहारी का चमत्कार अब भी चकाचौंध पैदा कर देता है। मतिराम, केशव, देव सैकड़ों बरस के पुराने होकर भी आज तक फीके

नहीं पड़े हैं। क्या संसार के अन्य देशों का साहित्य भारतीय ब्रजभाषा साहित्य की तुलना कर सकेगा ? संभवतः अकेले तुलसी या सूर पर सारे संसार के साहित्यिकों को वारा जा सके।

सज्जनो ! ब्रजभाषा का साहित्य वह अपार सागर है, जिसके अनेक ग्रन्थ रत्न खोज निकाले जा चुके हैं फिर भी उससे कहीं अधिक अभी किन्हीं अँधेरी कोठरियों में छिपे पड़े हैं, जिनके लिये परिश्रमी गोताखोरों की आवश्यकता है। ऊपर जिन भक्त एवं आचार्य कवियों के नाम उदाहरण मात्र के लिये दिये गये हैं उनकी भी अनेक अमर कृतियाँ अभी तक हमारी आँखों के सामने नहीं आ पाईं —अनेक अज्ञातनामा कवियों के ग्रन्थ हस्तलिखित पोथियों के रूप में दीमकों के भोजन का काम दे रहे हैं—आये दिन रद्दी के नीलाम में ऐसी सुन्दर हस्त-लिखित पोथियाँ मिल जाती हैं, जिनके एक एक पद पर एक एक पृष्ठ पर एक नई थीसिस लिखी जा सकती है। यह सब हमारी साहित्यिक अरुचि या अयोग्यता या अजीर्णता ही कही जा सकती है। इस विकार का हमें उपचार करना है। हमारी साहित्य परिषदें और साहित्य मंडल उपचार के वे अस्पताल हैं जिन्हें हमें आधुनिक साधनों से सुसज्जित करना है, जिनमें योग्य एवं अनुभवी चिकित्सकों का आयोजन करना है, जिनके लिए सुसम्पन्न प्रयोगशालाओं की व्यवस्था करनी है। सज्जनो ! आज हम जिस शिविर का आयोजन करने जा रहे हैं वह इन्हीं चिकित्सागृहों के कार्यकर्त्ताओं का ट्रेनिंग कैम्प है। कृपया आशीर्वाद दीजिये कि ये हमारे नये चिकित्सक अपने कार्य में सफल होकर समाज और साहित्य का कल्याण करें।

सज्जनो !

ब्रज साहित्य मण्डल के सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं या ब्रज साहित्य के समृद्ध महारथियों को मैं कोई परामर्श दूँ या उनको मार्ग निर्देश करने की धृष्टता करूँ तो यह मेरी अनधिकार चेष्टा होगी। फिर भी ब्रजभाषा और ब्रज साहित्य के विषय में दो शब्द कहना असामयिक न होगा।

ब्रजभाषा के माधुर्य की कोई आज भी उपेक्षा करने का साहस नहीं करता। उसका सहज स्वाभाविक शब्द विन्यास कानों में अमृत सा बरसाने वाला आडम्बरहीन सरल उच्चारण-हृदय पर सीधा प्रभाव

करनेवाली भाव व्यञ्जना अभी तक दूसरी भाषाओं को प्राप्त नहीं हुई। आज भी ब्रजभाषा से अनभिज्ञ ब्रज की यात्रा करनेवाला दर्शक ब्रज-नारियों की लड़ाई में भी संगीत का आनन्द लेता है। कचहरियों के अंग्रेज हाकिम भी कभी कभी किसी अहीर का बयान लिखते समय किसी शब्द विशेष की भाव व्यंजना ब्रजभाषा की सरलता एवं सरसता पर मुग्ध हो उसका रसास्वादन करते देखे गए हैं। जरा रथ के मेले पर वृन्दावन आने का कष्ट कीजिये; ब्रज के गूजर, अहीर, जाट आदि बिना पढ़े लिखे नरनारियों के गीतों में आप भाषा विज्ञान की अनेक गुत्थियाँ सुलझाने में समर्थ हो सकेंगे। मैं मानता हूँ कि उसके शब्द खड़ीबोली के शब्दों की तरह डाइमण्ड कट नहीं हैं, फिर भी उसका स्थान आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है, यह शायद आपको स्वीकार करना ही होगा। यद्यपि पिछले लगभग १००० वर्षों के संघर्ष और परिवर्तनों के अनवरत आँधी तूफानों का ब्रज-भाषा के शब्दों पर प्रभाव पड़ा—वे घिसे हैं—तोड़े मरोड़े भी गये है—फिर भी उनका रूप विकृत नहीं हुआ—उनके वजन में कमी नहीं आई; आज भी वे उतने ही भारी भरकम बने हुए हैं जितने हजार वर्ष पहले थे। इससे उस धातु के मूल्य का हमें अनुमान होता है जिसके वे बने हुए हैं। सज्जनो! यदि मैं इस स्थल पर ब्रजभाषा से शब्दों को लेकर उनकी तुलना खड़ी बोली और दूसरी देशी या विदेशी भाषाओं के शब्दों से कर ब्रजभाषा की श्रेष्ठता दिखाने का प्रयत्न करूँ, तो मुझे भय है कि भाषण का कलेवर बहुत बढ़ जायगा और शायद वह आपके अमूल्य समय पर आघात हो। इसलिए इस विषय को मैं यहीं छोड़ता हूँ।

सज्जनो!

ब्रजभाषा और ब्रज-साहित्य का नाम सुनते ही प्रायः लोगों को अश्लीलता का नाम लेकर उसी तरह नाक-भौं सिकोड़ते देखा है जिस तरह आजकल के राजनैतिक कार्यकर्ता धार्मिक चर्चाओं में साम्प्र-दायिकता से चौंकते हैं। फिर भी एक बात नम्रता-पूर्वक मैं आपसे धीरे से कहदूँ, कि हमारे राजनैतिक कार्यकर्ताओं के हृदय में धार्मिक भावनाएँ किसी अन्तरतम स्थान में बैठी उसी प्रकार पनपती रहती हैं जिस प्रकार अश्लीलता के नाम पर चौंक पड़ने वालों के हृदय में किसी

एकान्त स्थान में बैठकर उसका अध्ययन करने की लालसा छिपी रहती है। क्या आप कह सकते हैं कि आपके बार बार आदर्शवाद की दोहाई देने पर भी बिहारी को एक छोटा सा दोहा या मतिराम का सवैया आपके हृदय में गुदगुदी पैदा नहीं करता ? यदि ऐसा होता है तो कवि अपने कर्त्तव्य में सफल होगया और उसकी कला सार्थक होगई फिर उसे दोष क्यों ?

एक बात और हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता आज से नहीं अनादि काल से शृङ्गार-प्रिय रही है। भारतीय-सौन्दर्य टौइलेट्स के साधनों से नहीं, प्रकृति के दान से सर्वोपम रहा है। फिर कवि, शब्दों का चित्रकार कवि यदि उस ईश्वरीय सौन्दर्य से अनभिज्ञ होकर कोई आदर्शवादी कृत्रिम चित्र बनाता है, तो वह कला की ही हत्या नहीं करता, इसकी संस्कृति और सभ्यता के प्रति भी गद्दारी करता है, जो न क्षमा के योग्य है, न वांछनीय है। गोस्वामी तुलसीदास के "बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी—पिय तन चितै भौंह करि बाँकी। खंजन मञ्जु तिरीछे नैननि। निज पति करेहु तिन्हहिं सिय सैननि।" वर्णन में अश्लीलता से घबराकर यदि कोई आदर्शवादी कवि "शुभे तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं" का उत्तर "गोरे देवर श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।" में देकर सीता के शील को सुरक्षित रखता है, तो वह आज के बनावटी आदर्शवाद की रक्षा भले ही करले, भारतीय संस्कृति के स्त्रियोचित शील और संकोच की हत्या अवश्य करता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि माता सीता पुरातन भारतीय संस्कृति की प्रतीक नहीं, वे बीसवीं शताब्दी के किसी इंगलिश होटल की सम्भ्रान्त सदस्या हैं जो एक हाथ में कुत्ते की जंजीर पकड़े हुए ग्राम-बालाओं से कह रही हैं— "Hullo Ladies, here is my husband Mr." Ram, and he his younger brother Mr. Lakshman" इस वर्णन में शब्द-लाघव भले ही हो, किन्तु भारतीय शील और संकोच तो हमें तुलसी की पंक्तियों में ही मिलेगा।

मुझे खेद है कि मैं, आज के प्रतिनिधि कवि के वाक्यों की आड़ में लोक प्रवृत्ति पर एक कड़वा आक्षेप कर गया हूँ—आशा है आप विद्वान् महानुभाव मुझे इस अनधिकार चेष्टा के लिये क्षमा कर देंगे। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि ब्रजभाषा साहित्य शृंगारमय होने

के कारण उसकी एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती श्रीमद्भागवत जो संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट विद्वानों की परीक्षा की एकमात्र कसोटी है, शृंगार से लवालब होने पर भी हमारी आराधना का ग्रन्थ है, इसमें कभी दो राय नहीं हो सकतीं। धर्म से उदासीन कट्टर से कट्टर व्यक्ति भी किसी ईश्वरीय प्रेरणा से ही कहिये श्रीमद्भागवत के लिए एक बार तो अवश्य ही सिर झुका देता है। राधा और कृष्ण का शृंगार जो ब्रज-भाषा का प्रधान विषय रहा है—मेरा विश्वास है अभी तक किसी शास्त्रार्थ या वादविवाद में अवांछनीय नहीं घोषित हुआ। भक्ति का प्रेम-दर्शन अंग स्वतः इतना अगाध और अथाह है कि उसका कठोर आलोचक, ब्रज की किसी रासलीला मे कितना ही कठोर वन कर क्यों न बैठे जब नृत्य करती हुई राधा भगवान् कृष्ण के अंक मे तेजी से गिरेंगी—कठोर आलोचक अवश्य ही एक बार तो 'बलिहारम् बलिहार' कह ही जायगा—भले ही अपनी कट्टरता का ध्यान कर बाद में इधर उधर देखने लगे। यह भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक तत्व है जिसकी उपेक्षा आज हम अपने हृदय से नहीं बाहरी दिखावे के कारण करते हैं।

ब्रज साहित्य में शृङ्गार है केवल इसी अभियोग पर हम सूर, रसखान, मीरा जैसे भक्त गायकों को निर्वासन की सजा सुनादें, यह कहाँ तक न्याय संगत होगा मैं नहीं कह सकता। मै तो बिहारी मतिराम जैसे मध्ययुग के शृङ्गारी कवियों में भी जब चमत्कार और रस जैसे कवित्व के प्रधान अंगों को देखता हूँ तो उनकी कला पर मुग्ध होजाता हूँ। फिर कला को उपयोगिता की स्थूलता से तो नहीं तोला जा सकता। एक नंगे धड़ंगे आदमी का चित्र भी किसी चित्रकार की कारीगरी का अमर नमूना हो सकता है इसे हम क्यों भूल जाते हैं। घोर शृङ्गारी या अश्लील कहे जानेवाला शृङ्गारी काव्य भी कवि के कवित्व की सफलता प्रकाशित कर सकता है इसे कौन नहीं जानता। 'कला कला के लिये' वाला वाक्य चाहे आज के स्थूल पदार्थवादी युग मे भावुक भले ही कहा जाय, है सत्य और कठोर सत्य! सज्जनो! जैसा मैंने आपसे पहले निवेदन किया अभी हमारे ब्रज-साहित्य के अनेक रत्न जगह जगह छिपे पड़े हैं। कुछ हस्तलिखित प्रतियों के रूप में, कुछ ग्राम्यगीत तथा अन्य ग्राम-साहित्य के रूप में, कुछ सन्त-वाणियों के रूप में और कुछ इस प्रकार के दूसरे दूसरे रूपों में। हमें उन सब को खोजना है, उन्हें साफ

और परिष्कृत करना है और फिर उनके मूल्य और महत्व के अनुसार उनका स्थान निश्चित कर उन्हें साहित्यिक प्रदर्शिनी में रखना है। इस अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य के लिये जहाँ एक ओर प्रचुर धन-राशि की आवश्यकता है, वहाँ दूसरी ओर अनुभवी लगनवाले कार्यकर्त्ताओं की भी जरूरत है, जो इस कठोर कार्य की प्रारम्भिक असफलता और शुष्कता से हतोत्साह न होकर धैर्यपूर्वक अपने कर्त्तव्य पर बढ़े चले जायँ ; इस साहित्य-सागर में एक-दो बार, सौ-दोसौ बार नहीं हजारों लाखों बार गोते लगाये और लगाते रहें, उस समय तक जब तक कि वे संसार के सामने कोई अमूल्य रत्न रखने में सफल न हों। ईश्वर उन्हें अवश्य उनके कार्य में सफलता देगा।

ब्रज का साहित्य आज भी नीरस नहीं है। ब्रज में आज भी अपनी कलाएँ हैं। रासलीलाएँ आज भी ब्रज की नाट्यकला को जीवित रक्खे हैं—मन्दिरों की साँझियाँ आज भी चित्रकला के अनुपम नमूने हैं—फूल-बंगले और मनोमुग्धकारी मूर्तियाँ आज भी वास्तुकला और मूर्तिकला को सजीव बनाये हुए हैं। यह सब कलाएं—सब ललितकलाएँ ब्रज में और ब्रज के केन्द्रतम मथुरा और वृन्दावन में प्रायः अनायास ही देखी जाती हैं—इन कलाओं के कलाकार कभी कभी तो निरक्षर भट्टाचार्य भूखे-प्यासे मजदूर होते हैं। मैं चक्रवर्ती नामक वृन्दावन के अर्धविक्षिप्त एक कांग्रेस वालण्टियर को जानता था जिसने गन्दे नाले में डूबते हुए एक हरिजन को बचाने में अपने प्राणों का बलिदान दे दिया था। यह भूखा बंगाली 'साँझी' बनाने की कला में अद्वितीय था। आज भी छोटी छोटी झोंपड़ियों में आपको वे कुशल कलाकार मिल जायेंगे जिनकी छैनी में पत्थर को जीवन प्रदान करने की शक्ति है। किन्तु आज हमें उनकी खोज करनी है और उनके मिल-जाने पर उनकी और उनकी कला की रक्षा करनी है।

आल्हा और ढोला जैसे मशहूर ग्रामीण प्रबन्ध-काव्य पुराने हो गये हैं इसमें सन्देह नहीं। किन्तु इन प्रबन्ध काव्यों ने कितने ही अपढ़ ग्रामीण कवियों को जन्म दिया है, इसका अनुभव आपको तब होगा जब आप ब्रज के किसी गाँव मे जाड़े के दिनों में अलाव पर बैठकर शोभाराम या हरिफूला के प्रबन्ध काव्यों में से ढपली पर एक-दो भजन सुनें। आप बाग़ बाग़ होजायेंगे। आत्मा प्रसन्न हो जायगी। कहने

लगेंगे कि वास्तव में ब्रज में कविता की कोई स्वाभाविक हवा ही चलती है। तब आपको लोहबन के बुड्ढे रामदयाल जी की गर्वोक्ति 'कविताई माता हमें गर्भ में सिखाती हैं।' सच मालूम पड़ेगी। आज भी ब्रज के मेलों मे 'शिवराम जावरौ गाम' के गीत ब्रज के ग्राम्य कवि का नाम अमर किये हुए हैं।

सज्जनो ! आज का यह शिविर कोरे साहित्य के अन्वेषकों का ही शिविर नहीं, यह संस्कृति और कला के अन्वेषकों और स्वयंसेवकों का शिविर है। भारत की प्राचीनतम संस्कृति—ब्रज संस्कृति का सन्देश आज फिर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और अटक से लेकर कटक तक ही नहीं, उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक और जापान से लेकर ब्रिटेन तक भेजना है। कृपया इन कार्यकर्ताओं की तन से मन से और धन से सहायता कीजिये और इनकी सफलता के लिये आशीर्वाद दीजिये।

एक बार फिर मैं नम्रतापूर्वक अपनी ओर से, ब्रज-साहित्य-मण्डल की ओर से और इस शिविर की स्वागत समिति की ओर से आप सब का हृदय से स्वागत करते हुए और आपकी कृपा और अनुग्रह के लिये आभार प्रदर्शित करता हूँ।

शाह गौरशरण गुप्त

जनपदीय अध्ययन की एक आँख*

[डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, पी-ऐच० डी०,
डी० लिट्०, सुपरिण्टेण्डेट म्यूजियम्स, नई दिल्ली]

भारत जनपदों का देश है। ग्रामों के समूह जनपद हैं। गाँवों और जनपदों का तांता हमारे चारों ओर फैला हुआ है और इस भूमि के अधिकांश जन गाँवों और जनपदों में ही बसे हुए हैं। गाँव-बस्तियाँ हमारी संस्कृति की धात्री हैं। गाँव सच्चे अर्थों में पृथिवी के पुत्र हैं। गाँव के जीवन की जड़ें धरती का आश्रय पाकर पनपती हैं। गाँवों में जन के जीवन को टिकाऊ आधार मिलता है। शहरों का जीवन उखड़ा हुआ जान पड़ता है। जनपदों का जीवन हजारों वर्षों की अटूट परम्परा को लिये हुए है। गाँवों में जन की सत्ता है, नगर राजाओं की क्रीड़ा भूमि रहे हैं। जन की सत्ता और महिमा, एवं जन-जीवन की स्वाभाविक सरल निजरूपता जनपदों में सुरक्षित है जहाँ बाहरी अंकुशों से जीवन की प्राण-दायिनी शक्ति पर कम से कम प्रहार हुआ है। जनपदीय जीवन स्थिति, शान्ति और अपनी ही मानस भूमि की अविचल टेक ढूँढता है। इसके विपरीत पुर का जीवन धूम-धाम के नये ठाट रचता है। दोनों के दो पथ हैं। इतिहास के उतार-चढ़ाव में वे कभी एक दूसरे से टकराते हैं, कभी मेल ढूँढते हैं और फिर कभी एक दूसरे से परे हट जाते हैं। वैदिक काल से आज तक यही लहरिया गति चलती रही है। वैदिकयुग प्राथमिक भूसन्निवेश का समय था, जब गाँवों और जनपदों में फैलकर जीवन के बीज बोये गए। बन और जङ्गल, नदियों के तट और संगम जीवन की किलकारी से लहलहा उठे। फिर साम्राज्यों का उदय हुआ और नन्द-मौर्य युग में नगरों के केन्द्र प्रभावशाली बन बैठे। गुप्त युग में नगर और जनपदों ने एक दूसरे के प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाया। वह समन्वय का युग था, जनपदों ने अपने जीवन का मथा हुआ मक्खन पुरों की भेंट चढ़ाया और पुरों ने उपकृत होकर संस्कृति के वरदान से जनपदों को सँवारा। मध्यकालीन संस्कृति में

---

* यह भाषण ता० ७ दिसम्बर १९४७ को शिक्षण-शिविर के नियमित कार्य-क्रम में होना था।

पौर जानपद जीवन की धाराएँ फिर एक दूसरे से हट गईं और जनपदों की अपभ्रंश भाषा और जीवन-शैली प्रधान रूप से आगे बढ़ी। नगरों में गुप्तकालीन संस्कृति की जो थाती बची थी वह अपने आप में ही घुलती रही, जनपदों से उसे नया प्राण मिलना बन्द हो गया। अतएव मध्यकाल की काव्य-कला और संस्कृति नगरों के मूर्छित जीवन के बोझ से निष्प्राण दिखाई देती है। पौर-जानपद समन्वय के युग में लिखे गए रघुवंश के पहले-दूसरे सर्गों में जितना जीवन है उसकी तुलना जब हम नैषधचरित और विक्रमांकदेव चरित काव्यों के वर्णनों से करते हैं तब हमें यह भेद स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मुसलमानों के आगमन से जनपदों ने फिर अपने अङ्गों को कछुए की तरह अपने आप में सकोड़ लिया और वे उस सुरक्षित कोष के भीतर समय काटते रहे। शहरों में परदेशी सत्ता जमी और उसने जीवन के ढाँचे को बदला। उससे आगे अँग्रेजों की संस्कृति का प्रभाव भी शहरों पर ही सबसे अधिक हुआ। गाँव अपने वैभव की भेंट शहरों को चढ़ाते रहे, गाँवों को निचोड़ कर शहरों का भस्मासुर आगे बढ़ता रहा। यह नियम है कि जब जन की सत्ता जागती है, तब जनपद समृद्ध बनते हैं, जब जन सो जाता है तब पुर विलास करते हैं। अतएव हमारे जीवन के पिछले दो-सौ वर्षों में जनपदीय जीवन पर चारों ओर से लाचारी के बादल छा गये और उनके जीवन के सब स्रोत रुँध गये। आज फिर जनपदों के उत्थान का युग आया है। देश के महान कंठ आज जनपदों की महिमा का गान करने के लिए खुले हैं। देश के राजनीतिक संघर्ष ने ग्रामों और जनपदों को आत्मसम्मान, आत्म-प्रतिष्ठा और आत्ममहिमा के भाव से भर दिया है। पिछली भूचाली उथल-पुथल और महान् आन्दोलन का सर्वव्यापी सूत्र एक ही पकड़ में आता है, अर्थात्—

'जानपद जन की प्रतिष्ठा'

आज तेईससौ वर्षों के बाद हमने प्रियदर्शी अशोक के शब्दों को कान खोलकर सुना है, और राष्ट्रीय उत्थान के लिए मूलमन्त्र की भाँति उन्हें स्वीकार किया है। राजाओं की विहार यात्राओं का अन्त करके उसने एक नये प्रकार की धर्म यात्राओं का आन्दोलन चलाया था जिन का उद्देश्य था—

'जानपदसा च जनसा दसने धमनुसथि च धम पलिपुछा च '

अर्थात्, जानपद जन का दर्शन, जानपद जन के लिए धर्म का सिखावन, और जानपद जन के साथ मिलकर धर्म विषयक पूछ-ताँछ।

इन तीन प्रमुख उद्देश्यों के द्वारा सम्राट ने जनता के नैतिक और धार्मिक जीवन एवं आचार-विचारों में परिवर्तन लाने का भारी प्रयत्न आरम्भ किया था। अशोक की परिभाषा के अनुसार सारा मानवी-जीवन जिन सामाजिक और नीति-नियमों से बँधा है, वे धर्म हैं। अतएव धर्म विषयक और आचार और विचारों को सुधार कर समस्त जन-समुदाय के जीवन को ऊपर उठाने की योजना अशोक ने की थी। उसके मन में जब यह विचार आया होगा तब निश्चय ही उसका ध्यान देश की उस कोटानुकोटि जनता की ओर गया, जो सच्चा भारतवर्ष था। वह जनता गाँवों मे बसती थी। आज तेईस शताब्दियों का चक्र घूम जाने पर भी भारतमाता ग्रामवासिनी ही बनी हुई है। इसी ग्रामवासिनी गर्वीली जनता का दर्शन, सिखावन और परिपृच्छा (पूछ-ताँछ) जनपदीय अध्ययन का निचोड़ है। अपना ध्येय और उद्देश्य निश्चित करके अशोक ने एक पैर और आगे बढ़ाया,—

'हे वं ममालजूका कटा जानपदस हितसुखाये येन एते अभीता अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवूति।'

अर्थात्—उसने राजकर्मचारी नियुक्त किये जिनका कर्तव्य था कि, जान पद जन का हित करें और उनके सुख की बढ़ती करें, जिससे गाँवों की जनता निडर और स्वस्थ होकर मन लगाती हुई अपने अपने कामों को कर सके।

अपने राष्ट्रीय जीवन में अशोक की नीति को आज भरपूर अपनाने की आवश्यकता है। जनपद और ग्रामों का पुनः निर्माण, जीवन का अध्ययन और सच्चा ज्ञान हमें अपने पुनः निर्माण के लिये ही करना अनिवार्य है। ग्रामवासिनी जनता के कल्याण में ही हम सबका कल्याण छिपा हुआ है। उसके हित-सुख के बिना हम सबका हित-सुख निहित है। जनपदीय अध्ययन देश की अपनी आवश्यकता की पूर्ति है। वह साहित्यिकों का विनोद नहीं।

अब तक हमने विदेशियों से प्रीति या कुम्ब करना सीखा है हमने अपने आप से प्यार करना अभी तक नहीं सीखा। हमारी वर्तमान शिक्षा-दीक्षा, विचार और आचार की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम अपने भूले हुए जीवन से फिर नाता जोड़ें, अपनी ही वस्तुओं और संस्थाओं से अनुराग का नया पाठ पढ़ें। अपने आपको जानने से जिस आनंद का जन्म होता है वह ही हमें अब जीवन के पक्ष में आगे बढ़ा सकता है। जनपदीय अध्ययन राष्ट्रीय कार्य-क्रम का हरावल दस्ता है। सब कार्यों से यह कार्य अपने महत्व और आवश्यकता में गुरुतर है। हमारी जनता के जीवन का जितना भी विस्तार है उस सबको जानने, पहचानने और फिर से जीवित करने का सशक्त व्यापार जनपदीय अध्ययन का उद्देश्य है। लोगों के बिछड़े हुए ध्यान को हम बार-बार इस आन्दोलन के द्वारा जनता के जीवन पर केन्द्रित करना चाहते हैं। जनता ही हमारे उदीयमान राष्ट्र की महती देवता है। हमारे सब आयोजनों के मूल में और सब विचारों के केन्द्र में जनता प्रतिष्ठित है। यह सत्य जनपदीय अध्ययन का मेरुदण्ड है। जनता के जीवन के साथ हमारी सहानुभूति और आत्मा जितनी दृढ़ होगी उतना ही अधिक हम जनपदीय अध्ययन की आवश्यकता को समझ पावेंगे।

जनपद जीवन के अनन्त पहलुओं की लीला भूमि है। खुली हुई पुस्तक के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। पास गाँव और दूर देहातों में बसने वाला एक-एक व्यक्ति इन रहस्य भरी पुस्तकों के पृष्ठ हैं। यदि हम अपने आपको उस लिपि से परिचित करलें जिस लिपि में गाँवों की जनपदों की अकथ कहानी पृथ्वी और आकाश के बीच में लिखी हुई है, तो हम सहज ही जनपदीय जीवन की धार्मिक कथा को पढ़ सकते हैं। प्रत्येक जानपद-जन एक पृथ्वी-पुत्र है। उसके लिए हमारे मन में श्रद्धा होनी चाहिए। हम उसे अपढ़, गँवार और अज्ञान रूप में जब देखने की धृष्टता करते हैं तो हम गाँव के जीवन में भरे हुए अर्थ को खो देते हैं। जिस आँख से हमारे पूर्वजों ने ग्रामों और जनपदों को देखा था। उसी श्रद्धा की आँख से हमें फिर देखना है और उनके नेत्रों में जो दर्शन की शक्ति थी उसको फिर से प्राप्त करना है। हम जब गाँवों को देखते हैं, तो हमें वे नितान्त अर्थ-शून्य और रुचिहीन दिखायी पड़ते हैं। परन्तु हमारे

पूर्वजों की चक्षुष्मत्ता जनपदों के विषय में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, उनकी आँखों में अपरिचित अर्थ भरा पड़ा था। इस अर्थवत्ता को हमें फिर से प्राप्त करना है, न केवल अध्ययन के क्षेत्र में, वरन वास्तविक जीवन के क्षेत्र में भी। यदि हम अपनी देखने की शक्ति को परिमार्जित कर सकें तो जनपद के जीवन का अनन्त विस्तार हमारे सम्मुख प्रकट हो उठेगा। एक गेहूँ के पौधे के पास खड़े होकर जिस दिन हम पहली-बार उसके साथ मित्रता का हाथ बढ़ायेंगे, उसी दिन हम उसकी निजवार्त्ता से परिचित होकर नया आनन्द प्राप्त करेंगे।

किस प्रकार 'सो इद' रूप में गेहूँ का दाना जुड़ी हुई पत्तियों के साथ प्रथम जन्म लेता है, किस प्रकार 'नरई' पड़ने से वह बड़ा होता है, किस प्रकार 'गमौदे' के भीतर बाल के साथ 'घरिआएँ' रहती हैं जो बढ़ने पर बाहर आ जाती हैं, और फिर किस प्रकार उन घरिआओं के भीतर 'मक्खन फूल' बैठता है। जब उसके भीतर का रस श्वेत दूध के रूप में बदल कर हमारे खेतों और जीवन को एक साथ लक्ष्मी के वरदान से भर देता है। मानो क्षीर-सागर की पुत्री साक्षात् प्रगट होकर जनपदों में दर्शन देने आई हो। यदि बर्फीली हवा न बहे, बढ़िया समा हो, मोटी धरती हो और पानी लगा हो तो एक एक गमौधा राष्ट्र के जीवन का बीमा लेकर अपने स्थान पर खड़ा हुआ स्वयं हँसता है और अन्य सबको प्रसन्न करता है। गेहूँ के पौधे का यह स्वरूप जनपदीय आँख की बढ़ी हुई शक्ति का एक छोटा सा उदाहरण है। सुतिया हँसली पहने हुए भाँग के पौधे जिनकी निगरती हुई बालें हवा के साथ झूलती हैं उसी प्रकार का दूसरा हाथ उपस्थित करते हैं और इस प्रकार के न जाने कितने आनन्दकारी प्रसंग जन-पदीय जीवन में हमें एक दिन देखने को मिल सकते हैं।

जनपदीय अध्ययन का विद्यार्थी तीर्थ-यात्री की तरह देहात में चला जाता है, उसके लिए चारों ओर शब्द और अर्थ के भण्डार खुले मिलते हैं। नए नए शब्दों से वह अपनी झोली भरकर लौटता है। जनपदीय जीवन का एक पक्का नियम यह है कि वहाँ हर एक वस्तु के लिए शब्द है। उस क्षेत्र में जो भी वस्तु है उसका नाम अवश्य है। कार्यकर्त्ता को इस बात का दृढ़-विश्वास होना चाहिए। ठीक नाम को प्राप्त कर लेना उसकी अपनी योग्यता की कसौटी है।

यदि हम इस सरल और स्वाभाविक ढङ्ग से किसी देहाती व्यक्ति को बातों में ला सकेंगे तो उसकी शब्दावली का भण्डार हमारे सामने आने लगेगा। उस समय हमें धैर्य के साथ अपने मन की चलनी से उन शब्दों को छान लेना चाहिए और बीच बीच में हलके प्रश्नों के व्याज से चर्चा को आगे बढ़ाने में सहायता करनी चाहिए। जनपदीय व्यक्ति उस गौ के समान है जिसके थनों में मीठा दूध भरा रहता हो, किन्तु उस दूध को पाने के लिए युक्ति पूर्वक दुहने की आवश्यकता है। गाँव का आदमी गाँव का व्यक्ति भारी प्रश्नों से उलझन में पड़ जाता है। उसके साथ बातचीत का ढङ्ग नितान्त सरल होना चाहिए और प्रश्न-कर्त्ता को बराबर उसी के धरातल पर रह कर बात-चीत चलानी चाहिए। यदि हम उस धरातल से ऊपर उठ जायँगे तो बातचीत का प्रवाह टूट जायगा। जनपदीय कार्य-कर्त्ता को उचित है कि अपनी जानकारी को पीछे रखे और अपने संवाददाता की जानकारी का उचित समादर करे और आस्था के साथ उसके विषय में प्रश्न पूछे। प्रश्न करते समय यदि बीच में कहीं भूल या अटकाव हो तो उस भूले हुए प्रसंग को पीछे छोड़ कर प्रश्नों का तांता आगे बढ़ने देना चाहिए। बहुत सम्भव है कि अप्रिय बातचीत के प्रसंग में पिछली भूल हाथ आ जाय और प्रश्नों की कड़ी पूरी हो जाय।

अहिछत्रा के चिम्मन कुम्हार की कृपा से बर्त्तन और खिलौने बनाने के लगभग सौ से ऊपर शब्द हमें प्राप्त हुए। जिनकी पुरातत्व-शास्त्र की दृष्टि से हमारे लिए बड़ी उपयोगिता और आवश्यकता थी, उससे हमने उस डोरे का नाम पूछा जिस से कुम्हार चाक पर से बर्त्तन को अलग करते हैं। उसने कहा उसे डोरा ही कहते हैं और कुछ नहीं। मन में हमें विश्वास न हुआ किन्तु प्रकट रूपसे बातों का क्रम चलाये रखा। थोड़ी देर में उसे स्वयं याद आया उस डोरे के लिए 'छैन' शब्द है। यह संस्कृत 'छेदन' प्रा० 'छेअन' का हिन्दी रूप है और कुम्हारों की पुरानी परिभाषा को सामने लाता है। इसी प्रकार चाक के पास में पानी रखने की हाँडी के लिए भी 'चकैड़ी' शब्द प्राप्त हुआ जो 'मूल चक्र-भाण्डिका' से प्राकृत और अपभ्रंश में विकसित होकर अपने वर्त्तमान रूप तक पहुँचा है। इसी प्रकार अँग्रेजी Lughandle के लिये 'चुंदो' शब्द प्राप्त हुआ। उसने अपनी परिभाषा में बताया कि चाक पर रखी हुई मिट्टी के 'गुल्ले' से तीन फेरे में बर्त्तन बन जाता है।

अर्थात् पहले 'अँगूठा गढ़ा कर फैलाना', फिर 'ऊपर को सूत कर सतर करना' और तब एक पोरा अन्दर और एक पोरा बाहर रख कर पिटार बनाना और अन्त में छैन से काट लेना। इस प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली भाषा की वर्णन शक्ति को विकसित करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जनपदीय जीवन से इसके सहस्त्रों उदाहरण प्राप्त किये जा सकते हैं। यदि हमारी भाषा का सम्बन्ध जनपदों से जोड़ा जायगा, तभी उसे नया प्राण और नयी शक्ति प्राप्त होगी। गाँवों की बोलियाँ हिन्दी-भाषा का वह सुरक्षित कोष है जिसके धन से वह अपने समस्त अभाव और दलिद्दर को मिटा सकती है।

जनपदों की परिभाषा लेकर गाँव के जीवन का वर्णन हमारे अध्ययन की बहुत बड़ी आवश्यकता है और इस काम को प्रत्येक कार्यकर्त्ता तुरन्त हाथ में ले सकता है। जनपदीय अध्ययन को विकसित करने के तीन मुख्य द्वार हैं:—

पहला—भूमि और भूमि से सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन।

दूसरा—भूमि पर बसने वाले जन का अध्ययन।

तीसरा—जन की संस्कृति या जीवन का अध्ययन भूमि, जन और संस्कृति रूपी त्रिकोण के भीतर सारा जीवन समाया हुआ है। इस वर्गीकरण का आश्रय लेकर हम अपने अध्ययन की पगडण्डियों को बिना पारस्परिक शंका के निर्दिष्ट स्थान तक ले जा सकते हैं।

भूमि सम्बन्धी अध्ययन के अन्तर्गत समस्त प्राकृतिक जगत है। जिसके विषय में कई सहस्र वर्षों से देश की जनता ने लगातार निरीक्षण और अनुभव के आधार पर बहुमूल्य ज्ञान एकत्र किया है। उसकी थाती देहाती जीवन में बहुत कुछ सुरक्षित है। अनेक प्रकार की मिट्टियों का और चट्टानों का वर्णन और उनके नाम, देश के कौने-कौने से एकत्र करने चाहिए। प्राकृतिक भूगोल के वर्णन के लिए भी शब्दावली जनपदों से ही प्राप्त करनी होगी। एक बार बम्बई की रेल यात्रा में चम्बल नदी के बाँएँ किनारे पर दूर तक फैली हुई ऊँची-नीची धरती, और करावदार कागर देखने को मिले। विचार हुआ कि इनका नाम अवश्य होना चाहिए। किन्तु उस बार वह नाम प्राप्त न हुआ। दूसरी बार की यात्रा में सौभाग्य से एक जनपदीय सज्जन

से जो साथ यात्रा कर रहे थे उस भौगोलिक विशेषता के लिए उपयुक्त शब्द प्राप्त हुआ। वहाँ की बोली में उन्हें चम्बल के 'बेहड़' कहते हैं। सहस्रों वर्षों से हमारी आँखें जिन वस्तुओं को देखती रही हैं उनका नामकरण न किया होता तो हमारे लिए यह लज्जा की बात होती। जहाँ कहीं भी कोई प्राकृतिक विशेषता भूमि पर्वत अथवा नदी के विषय में है वहाँ ही स्थानीय बोली में उसके लिए शब्द होना ही चाहिए। इस साधारण नियम की सत्यता देश व्यापी है। दो शब्दों की सहायता के बिना पाठ्य पुस्तकों में हमारे प्राकृतिक भूगोल का वर्णन अधूरा रहता है। पहाड़ों में नदी के बर्फीले उद्गम स्थान (अंग्रेजी ग्लेशियर) के लिए आज भी 'बाँक' शब्द प्रचलित है जो संस्कृत वक्त्र से निकला है। साहित्य में 'नदी-वक्त्र' पारिभाषिक शब्द है। इसी प्रकार बर्फीली नदी के साथ आने वाले कंकड़-पत्थर के ढेरके लिए जो बर्फ के गलकर बहआने पर नदी प्रवाह में पड़ा रह जाता है। ('अँग्रेजी Moraine) पर्वतीय भाषा में ढाको-गाको शब्द चालू है। मिट्टी पानी और हवाओं का अध्ययन भूमि सम्बन्धी अध्ययन का विशेष अङ्ग है। जलाशय, मेघ और वृष्टि सम्बन्धी कितना अधिक ज्ञान जनपदीय अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। हमारे आकाश में समय समय पर जो मेघ छा जाते हैं उनके बिजोने, गरजने और बरसने का जो अनन्त सौन्दर्य है और बहुविध प्रकार उनके सम्बन्ध में उपयुक्त शब्दावली का संग्रह और प्रकाशन हमारे कण्ठ को वाणी देने के लिए आवश्यक है। 'ऋतु संहार' लिखने वाले कवि के देश में आज ऋतुओं का वर्णन करने के लिए शब्दों का टोटा हो यह तो विडम्बना ही है। ऋतु,-ऋतु में बहनेवाली हवाओं के नाम और उनके प्रशान्त और प्रचण्ड रूपों की व्यवस्था जनपदीय जीवन का एक अत्यन्त मनोहर पक्ष है। फागुन मास में चलनेवाला फगुनेटा, अपने हड़कम्पीशीत से मनुष्यों में कँपकपी उत्पन्न करता हुआ पेड़ों को 'झोर' डालता है और सारे पत्तों का ढेर पृथ्वी पर आ पड़ता है। दक्षिण से चलने वाली 'दखिनिहा वायु' न बहुत गर्म न बहुत ठंडी भारतीय ऋतु चक्र की एक निजी विशेषता है। बैशाख से आधे जेठ तक चलने वाली 'पछिवाँ' या 'पछुआ' अपने समय से आती है और फूहड़ स्त्रियों के आंगन का कूड़ा-कर्कट ले जाती है। आधे जेठ से पुरवइया हमारे आकाश को छा लेती है जिसके विषय में कहा जाता है :—

भुइयाँ लोट चलै पुरवाई,
तब जानहु बरखा ऋतु आई।

भूमि में लोटती हुई धूल उड़ाती हुई यह तेज वायु सबको हिला डालती है। किन्तु यही पुरवाई यदि चैत के महीने में चलती है तो आम 'लसिया' जाता है और बौर नष्ट हो जाता है, लेकिन "चैत की पुरवाई 'महुए' के लिए वरदान है। महुए और आम के अभिन्न सखा जानपद-जन के जीवन में 'पुरवइया' का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जनपद वधुयें इसके स्वागत में गाती हैं:—'तनिक चलो हे पुरवा बहिन' हमें मेह की चाह लग रही है—

"चय नेक चलो परवा भाण।
मेहारी म्हारे लग रही चाय।"

इसी प्रकार पानी को लाने वाली 'शूकरी' हवा है जो उत्तर की ओर से चलती है और जिसके लिए राजस्थानी लोक-गीतों मे स्वागत का गान गाया गया है।

'सूरया, उड़ी बादली ल्यायी रे'

हे सूरया, उड़ना और बदली लाना, अथवा—

रीति माति आवै, पाणी भर लावै।
तो सूरया के संग आवै बदली।

अर्थात्—हे बदली! ऐसी मत आइयो, पानी भर लाइयो, सूरया के संग आइयो।

हमारे आकाश की सबसे प्रचण्ड वायु 'हवँहरा' (सं० हविधारक) है जो ठेठ गर्मी में दक्खिन-पच्छिम के नैऋत्य कोण से जेठ मास में चलती है। यह रेगिस्तानी हवा प्रचण्ड लू के रूप में तीन दिन तक बहती रहती है जिसकी लपटों से चिड़िया चील तक झुलस कर गिर पड़ती है। यह वायु रेगिस्तानी 'समूम' की तरह है जो अरबों के देश में काफी बदनाम है। मेघ और वायु के घनिष्ट सम्बन्ध पर जनपदीय अध्ययन से अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। देहाती उक्तियों में इस विषय की अच्छी सामग्री मिलती है।

पशु-पक्षियों और वनस्पतियों का अध्ययन भी जनपदीय अध्ययन का एक विशेष अङ्ग है। अनेक प्रकार के तृण-लता और वनस्पतियों से

हमारे जङ्गल भरे हुए हैं प्रत्येक घास, बूटी, या भाड़ी के पास जाकर हमारे पूर्वजों ने उसका विशेष अध्ययन किया और उसका नामकरण किया। आज भी भारतीय आयुर्वेद के वनस्पति सम्बन्धी नामों में एक अपूर्व कविता पायी जाती है। शंखपुष्पी, स्वर्णक्षीरी व्याघ्रजंघा, सर्पाक्षी, हंसपदी आदि नाम कविता के चरण हैं। प्रत्येक जनपद का सांगोपांग अध्ययन वनस्पतिशास्त्र की दृष्टि से पूरा होना आवश्यक है। इस विषय में गाँवों और नगरों के रहनेवाले व्यक्ति हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकते हैं। देशी नामों को प्राप्त करके उनके संस्कृत और अँगरेजी पर्याय भी ढूँढ़ने चाहिये। यह काम कुछ सुलझे हुए ढंग से जनपदीय-मंडल की केन्द्र वर्ती संस्था में किया जा सकता है। वृक्ष वनस्पति के जीवन से उनके फूलने फलने के क्रम से हम चाहें तो वर्ष भर का तिथिक्रम बना सकते हैं। हमारी पाठ्य पुस्तकें इस विषय में ही प्रचार का सबसे अच्छा साधन बनाई जा सकती हैं। आठ वर्ष की आयु से छोटे बच्चों को आस-पास उगने वाले फूलों और पेड़ों का परिचय कराना आवश्यक है और चौथी कक्षा से दसवीं कक्षा तक तो यह परिचय क्रमिक ढंग से अवश्य पढ़ाया जाना चाहिये। इससे देहात की प्रारम्भिक शालाओं में अपने जीवन के प्रति एक नयी रुचि और नया आनन्द पैदा होगा। किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि ज्ञान की यह नयी सामग्री परीक्षा के बोझ लेकर कहीं हमारे भीतर प्रवेश न करने पावे। हमें तो खिली धूप में गाने वाले स्वतंत्र पक्षी की तरह हमारे ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। अध्ययन का यही दृष्टिकोण पक्षियों के विषय में भी सत्य है। देहात के जीवन में रङ्गबिरङ्गे पक्षियों का विशेष स्थान है। वहाँ कहते हैं कि भगवान की रचना में साढ़े तीन दल होते हैं:—

१—चींटी दल
२—टीढ़ी दल
३—चिड़ी दल

आधे दल में पोह और मानस हैं। पक्षियों के आने जाने और ठहरने के कार्यक्रम से भी हम वर्ष भर का पञ्चाङ्ग निश्चित कर सकते हैं—छोटा सा सफेद 'ममोला' पक्षी जो देखने में बहुत सुन्दर लगता है। जाड़े का अन्त होते-होते चल देता है। उसके जाने पर कोयल वसन्त की उष्णता लेकर आती है और स्वयं कोयल उस समय हमरे

विदा लेनी है जब तुरई में फूल फूलता है। ऋतु-ऋतु और प्रत्येक मास में हमारे घरों में वाटिकाओं और जङ्गलों से जो पक्षी उतरते हैं उनकी 'निजवार्ता' और 'धन्वार्ता' अत्यन्त ही रोचक है। जिससे परिचित होना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। सुन्दर निर्मल जलाशयों में क्रीड़ा करने वाले हंस और क्रौंच पक्षी किस समय कहाँ से चले जाते हैं। कहाँ जाते हैं और कब लौटते हैं इसकी पहचान हमारी आंख में होनी चाहिए। इस प्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा डगलस डेवर ने एक उपयोगी पुस्तक तय्यार की थी। जिसका नाम है 'कैलेंडर आव नार्थ इण्डिया'। पक्षियों का अध्ययन हमारे देश में बहुत पुराना है। वैदिक साहित्य में पक्षियों का ज्ञान रखने वाले विद्वान को 'वायो-विद्यिक' कहा गया है जिसका रूपान्तर पतञ्जलि के महाभाष्य में वायस विद्यिक पाया जाता है। राजसूय यज्ञ के अन्त में अनेक विद्याओं के जानने वाले विद्वानों की एक सभा लगती थी। जिसमें वे लोग अपने अपने शास्त्र का परिचय राजा को देते थे, क्योंकि स्वयं पक्षी भी राजा की प्रजा हैं और उनकी रक्षा का भार भी उस पर है। इस सभा में विशेषज्ञ देश के पक्षियों का परिचय राजा को देते थे। इस देशमें पक्षियों के प्रति जो एक हार्दिक अनुराग की भावना, छोटे बड़े सबमें पायी जाती है वह संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। जहाँ आकाश के इन वरद-पुत्रों को हर समय तमञ्चे का खटका बना रहता है। पक्षियों के प्रति इस जन्म सौहार्द्य का संवर्द्धन हमें आगे भी करना चाहिए। इस देश की विशाल भूमि में देखने और प्रशंसा करने की जो अतुलित सामग्री है उस सबके प्रति मन में स्वागत का भाव रखना जनपदीय अययन की विशेषता है। भूमि माता है और मैं उसका पुत्र हूँ (माता भूमिः पुत्रोऽहम पृथिव्याः) यह जनपदीय भावना का मूल सूत्र है।

जिस वस्तु का अपनी भूमि के साथ सम्बन्ध है, उसे ही भली प्रकार जानना और प्यार करना यह हमारा कर्तव्य है और आपने राष्ट्र के नवाभ्युत्थान में उसके उद्धार और उन्नति का उपाय करना यह उस कर्तव्य का आवश्यक परिणाम है। उत्तर से दक्षिण तक देश में फैली हुई गायों की नस्लें, घोड़े, हाथी, भेड़, बकरी इन सम्बन्धी वंश-वृद्धि और मंगल योजना के विषय में हमें रुचि होनी चाहिए। जब हम सुनते हैं कि इटावा प्रदेश की जमनापारी बकरी दूध देने में

ससार भर मे सबसे बढकर हो गया जब हमे ज्ञात होता है कि लखनऊ के असील मुर्गों ने, जिन के देह की नसें तारकशी की तरह जान पड़ती है मजील मे जाकर कुश्ती मारी है तो हमे सच्चा गर्व होता है । इसका कारण मातृभूमि का वह अखंड सम्बन्ध है जो हमे दूसरे पृथ्वी पुत्रों के साथ मिलाता है ।

जनपदीय अध्ययन का अत्यन्त रोचक विषय मनुष्य स्वयं है। मनुष्य के विषय में यहाँ हम जितनी जानकारी प्राप्त कर सकें करनी चाहिए। ज्ञान-साधन का प्रत्येक नया दृष्टि-कोण जिसे हम विकसित कर सकें मनुष्य विषयक हमारी रुचि को अधिक गंभीर और रसमय बनाता है। इस देश में सैकड़ों प्रकार के मनुष्य बसते है उनकी रहन-सहन, उनके रीति रिवाज, उनके आचार-विचार, उनकी शारीरिक विशेषतायें, उनकी उत्पत्ति और वृद्धि, उनके संस्कार और धर्म, उनके नृत्य और गीत, उनके पर्व और उत्सव एवं भाँति भाँति के आमोद-प्रमोद, उनके बीच के विशेष गुण एवं स्वभाव, उनके वेष और आभूषण, उनके निजी नाम एवं स्थान-नामों के विषय मे जानने और खोज करने की रुचि और शक्ति हमें उत्पन्न करनी चाहिए, यही जनपदीय अध्ययन की सच्ची आँख है। इस आँख में जितना तेज आता जायगा उतने ही अधिक अर्थ को हम देखने लगेंगे। भगवान वेदव्यास की बनाई परिभाषा के अनुसार यहाँ मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है :—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि

नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

मनुष्य हमारे जनपदीय मण्डल के केन्द्र में है। उसका आसन ऊँचा है। स्वयं मनुष्य होने के नाते सम्पूर्ण मानवीय जीवन में हमें गहरी रुचि होनी चाहिए। बीते हुए अनेक युगों की परम्परा वर्त्तमान पीढ़ी के मनुष्य में साक्षात् प्रकट होती है। आने वाले भविष्य का निर्माता भी यही मनुष्य है। हमारे पूर्वजों ने कर्म-वाणी और मन से जो कुछ भी सिद्धि प्राप्त की उस सबकी थाती वर्तमान मानव जीवन को प्राप्त हुई है। इतने गंभीर उत्तराधिकार को लिये हुए जो मनुष्य हमारे सम्मुख है उसकी विचित्रता कहने की नहीं अनुभव करने की वस्तु है। मानव जीवन के वर्त्तमान ताने-बाने के भीतर शताब्दियों

और सहस्राब्दियों के सूत्र ओत-प्रोत हैं। विचारों और संस्थाओं की तहें क्रमानुसार एक दूसरे के ऊपर जमी हुई मिलेंगी और इन पर्तों को यदि हम सावधानी के साथ अलग कर सकेंगे तो हमें अनेक युगों की संस्कृतियों का विचित्र आदान-प्रदान एवं समन्वय दिखायी देगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतवर्ष समन्वय प्रधान देश है। समन्वय धर्म ही यहाँ की सार्वभौम संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। अनेक विभिन्न संस्कृतियों के अनमिल और अनगढ़ विचार और व्यवहार यहाँ एक दूसरे से टकराते रहे हैं और अन्त में सहिष्णुता और समन्वय के मार्ग से सहानुभूति पूर्वक एक साथ रहना सीखे हैं। परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा जीवन को ढालने की विलक्षण कला इस देश में पायी जाती है। जिस प्रकार हिमालय के शिला खंडों को चूर्ण करके गंगा की शाश्वत धारा ने उत्तरापथ की भूमि का निर्माण किया है जिसके रजकण एक दूसरे से सटकर अभिन्न बन गये हैं और जिनमें भेद की अपेक्षा साम्य अधिक है। उसी प्रकार का एकीकरण भारतीय संस्कृति के प्रवाह में पली हुई जातियों में हुआ है। किसी समय इस देश के विस्तृत भू-भाग में निषाद जाति का बसेरा था, उसी जाति के एक विशेष व्यक्ति गुह-निषाद की कथा हमारे राम-चरित से संबंधित है। गुह-निषाद के वंशज आज भी अवध के उत्तर-पूर्वी भाग में बसे हुए हैं किन्तु आज उनकी संस्कृति हिंदू धर्म की विशाल संस्कृति के साथ घुल-मिलकर एक बन चुकी है। जितना कुछ उनका अपना व्यक्तित्व था उसे छोड़ने के लिए बाधित नहीं हुए, उसकी रक्षा करके भी वे एक अपने से ऊँची संस्कृति के अंक में प्रतिपालित होकर उनके साथ एक होगये। समन्वय की इसी प्रक्रिया का नाम 'हिंदूकरण पद्धति' है। क्या जनपद और क्या नगर इस प्रकार के समन्वय का जाल सर्वत्र बुना हुआ है किन्तु जनपदों की प्रशान्त गोद में इस प्रकार के प्रीति-सम्पन्न समन्वय का अध्ययन विशेष रूप से किया जा सकता है, जहाँ आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से विषमताएँ एक मर्यादा के भीतर रहती हैं।

अध्ययन के जिन दृष्टिकोणों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनमें से जिस किसी को भी हम लें हमारे सामने रोचक सामग्री का भंडार खुल जाता है। उदाहरण के लिए किसी गाँव में भिन्न भिन्न श्रेणियों के मनुष्यों के व्यक्तिवाची नामों को ही हम लें, इन नामों

से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी शब्द-रूपों का रोचक सम्मिश्रण दिखायी पड़ेगा। गाँव का सिब्बा नाम वही है जिसका संस्कृत रूपान्तर शिवदत्त या शिव के साथ अन्य कोई उत्तर पद जोड़ने से बनता है। व्याकरण के ठोस नियमों के अनुसार उत्तर पद का लोप कर नाम को छोटा बनाने की प्रथा लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी। उत्तर पद के लोप का सूचक 'क' प्रत्यय जोड़ने की बात वैयाकरण बताते हैं। इसके अनुसार 'शिवदत्त' का रूप 'शिवक' बनता है। शिवक का प्राकृत में 'शिवअ' और उसीका अपभ्रंश में सिब्बा रूप हुआ। गाँवों का कल्लू या कलुआ संस्कृत कल्याणचन्द्र या कल्याणदत्त का ही रूपान्तर है। कल्य का कल्ल और कल्ल से 'उक' प्रत्यय जोड़कर 'कल्लुक' रूप बनता था जिसका प्राकृत एवं अपभ्रंश में कल्लुव या कलुआ होता है; अथवा इससे ही कल्लू एवं कालू रूप बनते हैं। अपभ्रंश भाषा के युग में इस प्रकार के नामों की बाढ़ सी आगयी थी और प्रायः सभी नामों को अपभ्रंश का चोला पहनना पड़ा। 'नानक' जैसा सरल नाम प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से मूल संस्कृत 'ज्ञानदत्त' से बना है। ज्ञान—णाण—प्रा० हिन्दी नान + क; ये इस विकास के तीन चरण हैं। इसी प्रकार मुग्ध से मूधा, स्निग्ध से नीधा। विपुलचन्द्र से बूलचन्द्र आदि नाम हैं। ठेठ गँवारू नामों का भी अपना इतिहास होता है। 'छीतर' 'फिक्कू' 'पवारू' नामों के पीछे भी पुराने विश्वासों का रहस्य छिपा है जो भाषा-शास्त्र और जन-विश्वासों की सहायता से समझा जा सकता है। मनुष्य नामों की तरह जनपदीय जीवन का दूसरा विस्तृत विषय स्थान-नाम हैं। प्रत्येक गाँव, खेड़े, नगले के नाम के पीछे भाषा-शास्त्र से मिश्रित सामाजिक इतिहास का कोई न कोई हेतु है। निग्रोध ग्राम से 'निगोहा', प्लक्ष गाँव से पिलखुआ, गंध-कालिका से गंधौली, सिद्धकुलिका या सिद्धपल्ली से सिधौली, मिहिरकुलिका से महरौली आदि नाम बनते हैं। गाँवों में तो प्रत्येक खेत तक के नाम मिलते हैं, जिनके साथ स्थानीय इतिहास छिपा रहता है। शीघ्र ही समय आयेगा जब हम स्थान-नाम-परिषदों का संगठन करके इन नामों की जाँच पड़ताल करने लगेंगे। दूसरे देशों में इस प्रकार की छानबीन करने वाली परिषदों के बड़े बड़े संगठन हैं और उन्होंने अध्ययन और प्रकाशन का बहुत कुछ काम भी किया है।

जनपदीय अध्ययन की जो आँख है उसकी ज्याति भाषा-शास्त्र की सहायता से कई गुना बढ़ जाती है। भाषा-शास्त्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए तो जनपदीय अध्ययन कल्पवृक्ष के समान जानना चाहिए। किसान के जीवन की जो विस्तृत शब्दावली है उसमें वैदिक काल से लेकर अनेक शताब्दियों के शब्द संचित हैं। हम यदि चाहें तो प्राचीन काल की बहुत सी ऐसी शब्दावली का उद्धार कर सकते हैं जिसका साहित्य में उल्लेख नहीं हुआ। मानव श्रौतसूत्र में हसिया के लिए 'असिद' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उसी से लोक में हसिया शब्द बना है। किन्तु उसका साहित्यिक प्रयोग वैदिक काल के उपरान्त फिर देखने में नहीं आया। केवल हेमचन्द्र ने एक बार उसे देशी शब्द मान कर अपनी देशीनाममाला में उद्धृत किया है। इसी प्रकार श्रौतसूत्रों में प्रयुक्त 'इण्ड्र' शब्द का रूप लोक में ईंडरी या ईंडुरी आज भी चालू है यद्यपि उसका साहित्यिक स्वरूप फिर देखने में नहीं आया। गेहूँ की नाली, मूँज या घास आदि से बटी हुई रस्सी के लिए पुराना वैदिक शब्द 'यून' था जिसका रूपान्तर 'जून' किसानों की भाषा में जीवित है। जिससे निकला हुआ बर्तन मांजने का 'जूना' शब्द बहुत सी जगह प्रचलित है।

इस प्रकार के न जाने कितने शब्द भरे हुए हैं, भाषा-शास्त्री के लिए जनपदीय बोलियाँ साक्षात् कामधेनु के समान हैं। दो हजार डेढ़ हजार वर्षों के पिछड़े हुए शब्द तो इन बोलियों में चलते-जाते हाथ लगते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अनेक धात्वादेशों की धात्री जनपदों की बोलियाँ हैं। हिन्दी भाषा की शब्द-निरुक्ति के लिए हमें जनपदीय बोलियों के कोषों का सर्व प्रथम निर्माण करना होगा। बोलियों में शब्दों के उच्चारण और रूप जाने बिना शब्द की व्युत्पत्ति का पूरा पेटा नहीं भरा जा सकता। बोलियों की छानबीन होने के उपरान्त कई लाभ होने की संभावना है। प्रथम तो इन कोषों मे हमारे प्रादेशिक जीवन का पूरा ब्यौरा आ जायेगा। शब्द नामक ज्योति के प्रकाश में जीवन के अँधेरे कोठों को प्रकाश से भर देना है। जनपदों के बहुमुखी जीवन के शब्दों को पाकर हमारी साहित्यिक वर्णन-शक्ति विस्तार को प्राप्त होगी।

हिन्दी भाषा में जनपदों के भण्डार से लगभग ५० सहस्त्र नये शब्द आ जायेंगे, और भौतिक वस्तुओं एवं मनोभावों को व्यक्त

करने के लिए ठीक शब्दावली का हमारा टोटा मिट जायगा जनपदों के साथ मिलकर हमारी भाषा को अनेक धातुएँ, मुहावरे और कहावतों का अद्भुत भंडार प्राप्त होगा। कहावतें हमारी जातीय बुद्धिमता के समुचित सूत्र हैं। शताब्दियों के निरीक्षण और अनुभव के बाद जीवन के विविध व्यवहारों में हम जिस संतुलित स्थिति तक पहुँचते हैं लोकोक्ति उसका संक्षिप्त सत्यात्मक परिचय हमे देती है। साहित्य के अन्य क्षेत्र में सूत्रों की शैली को हमने पीछे छोड़ दिया, किन्तु लोकोक्तियों के सूत्र हमारे चिर साथी रहे हैं और आगे भी रहेंगे। लोकोक्तियों के रूप में समस्त जाति की आत्मा एक बिन्दु या कूट पर संचित होकर प्रकट हो जाती है। उदाहरण के लिए माँ के प्रति जो हमारी सर्वमान्य पुरानी श्रद्धा है वह इस उक्ति में जो हमे बैसवाड़ा के एक गाँव में प्राप्त हुई कितने काव्यमय ढंग में अभिव्यक्त मिलती है:—

'स्वाँति के बरसे माँ के परसे तृप्ति होती है'

बुन्देलखंडी की एक उक्ति है—

'अक्कल बिन पूत कठैंगर से
बुद्धी बिन बिटिया डैंगुर सी'

प्रत्येक व्यक्ति में बूझ और समझ के लिए जो हमारा प्राचीन आदर का भाव है, पंचतंत्र-हितोपदेश आदि नीति उपदेशों के द्वारा जिस नीति निपुणता की प्रशंसा की गयी है, जिस बुद्धिमत्ता का होना ही सच्ची शिक्षा है, स्त्री और पुरुष दोनों के लिए जिसकी आवश्यकता है, उस बुद्धि अथवा अक्ल की प्रशंसा मे सारे जनपद की आत्मा इस लोकोक्ति में बोल पड़ी है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कठैंगर संस्कृत का 'काष्ठार्गल' (वह डंडा जो किवाड़ों के पीछे अटकाव के लिए लगाया जाता है) और 'डैंगुर' 'डंडार्गल' (वह डंडा या लकड़ी जो पशुओं को रोकने के लिए उनके गले से लटका दिया जाता है।) के रूप हैं।

प्रत्येक जनपदीय क्षेत्र से कई कई सहस्त्र कहावतें मिलने की संभावना है। उनका उचित प्रकाशन और संपादन हिन्दी साहित्य की अनमोल वस्तु होगी। यह भी नियम होना चाहिए कि जनपदीय शालाओं में पढ़ायी जाने वाली पोथियों में स्थानीय सैकड़ों कहावतों

का प्रयोग किया जाय। दशम श्रेणी तक पहुँचते पहुँचते विद्यार्थी को अपनी एक सहस्त्र लोकोक्तियों का अर्थसहित अच्छा ज्ञान करा देना चाहिए।

भारतवर्ष का जो कृषि-प्रधान जीवन है उसकी शब्दावली प्राचीन समय में क्या थी साहित्य में उसका लेख नहीं बचा किन्तु जनपदीय बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन से हम उसे फिर प्राप्त कर सकते हैं। इससे प्राचीन भारतीय जीवन पर एक नया प्रकाश पड़ेगा। खेतों की जुताई, बुआई, कटाई और मँड़नी से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों को पंजाब से बंगाल तक और मुलतान से गुजरात-महाराष्ट्र तक के जनपदों से यदि हम एकत्र करें तो संस्कृत मूलक समान शब्दों का एक व्यापक ताना-बाना बुना हुआ मिलेगा। कुछ शब्द अपनी-अपनी बोलियों में भिन्न भी होंगे किन्तु समान शब्दों के आधार से हम प्राचीन शब्दावली तक पहुँच सकेंगे। खेत काटनेवाले के लिए 'लोवा' [सं० लावक], गन्ना काटनेवाले के लिए 'कपटा' [संस्कृतः कृन्तन] ऐसे शब्द हैं जो हमें तुरन्त पुरानी परंपरा तक पहुँचा देते हैं। आज भी मेरठ के गाँव गाँव में वे चालू हैं, जीवित हैं। कुएँ की 'आन्हर' [सं० आघ्रि = चरण], छींटकार बीज बोने के लिए 'पबेड़ना' धातु, [सं० प्रवेरिता], जवान बछिया के लिए 'आसर' [सं० उपसर्या = गर्भधारण के योग्य] आदि अनेक शब्द प्राचीन परम्परा के सूचक हैं। मध्यकाल के आरम्भ में जब मुसलमान यहाँ आये तो हमारे नागरिक जीवन में बहुत से परदेशी शब्दों का चलन हो गया और अपने शब्द मर गये। किन्तु कृषि शब्दावली में अपना स्वराज्य बना रहा और कचहरी के शब्दों को छोड़ कर जिनका केन्द्र शहरों में था शेष शब्दावली पुरानी ही चालू रही। इस सत्य को पहचान कर हम भाषा-शास्त्र की सहायता से अनेक जनपदीय शब्दों के साथ नया परिचय पा सकते हैं। आवश्यक शोध और व्याख्यानों के द्वारा इस कार्य को आगे बढ़ाना होगा। कृषि के साथ ही भिन्न-भिन्न पेशेवर लोगों के शब्द हैं जिनका संग्रह और उद्धार करना चाहिए। दिल्ली के अंजुमन तरक्किए उर्दू की ओर से इस प्रकार का कुछ कार्य किया गया था और उस संस्था की ओर से पेशेवर लोगों की शब्दावली आठ भागों में (फरहंगे इस्तलाहात-ए-पेशेवरान) छप चुकी है, किन्तु यह काम उससे बहुत बड़ा है और इसमें सीखे हुए, भाषा-शास्त्र

से परिचित, कार्यकर्त्ताओं की सहायता की आवश्यकता है। अकेले रँगरेज की शब्दावली से विविध रंग और हलकी चटकीली रंगतों के लिए लगभग दो सौ शब्द हम प्राप्त कर सकते हैं।

किन्तु जनपदीय अध्ययन के लिए शब्दों से भी अधिक महत्व-पूर्ण जनपदीय मनोभावों से परिचय प्राप्त करना है। जनपदीय मानव के हृदय में सुख-दुख, प्रेम और घृणा, आनन्द और विरक्ति, उल्लास और सुस्ती, लोभ और उदारता आदि मन के अनेक गुणों से प्रेरित होकर विचरने और कर्म करने की जो प्रवृत्ति है उसका स्पष्ट दर्शन किस साहित्य से हमें मिलता है? जनपदीय मनोभावों का दर्पण साहित्य तो अभी बनने के लिए शेष है। ग्रामवासिनी भारत-माता का पुष्कल परिचय प्राप्त करना हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक बड़ी आव-श्यकता है। राष्ट्रीय चरित्र और प्रकृति या स्वभाव के ज्ञान के लिए हमें इस प्रकार के जनपदीय साहित्य की नितान्त आवश्यकता है। इस दृष्टि से जनपदीय जीवन का चित्र उतारने वाले जितने भी परिचय ग्रन्थ या उपन्यास लिखे जायँ स्वागत के योग्य हैं। बड़े विषयों पर लिखना अपेक्षाकृत सरल है किन्तु उस लेखक का कार्य अपेक्षाकृत कठोर है जो अपने आपको जनपदीय सीमा के भीतर रख कर लिखता है और जो बाहरी छाया से जनपदीय जीवन के चित्र को विकृत या लुप्त नहीं होने देता। इस प्रकार का साहित्य अन्ततोगत्वा पृथ्वी के साथ हमारे सम्बन्ध और आस्था का परिचायक साहित्य होगा।

जनपदीय अध्ययन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और गहरा है उसमें अपरिमित रस और नवीन प्रकाश भी है। जीवन के लिए उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है। उस अध्ययन के सफल होने के लिए सधे हुए ज्ञान और समझदारी की भी आवश्यकता है। मानसिक सहानुभूति और शारीरिक श्रम के बिना यह कार्य पनप नहीं सकता। जनपदीय अध्ययन की आँख लोक का वह खुला हुआ नेत्र है जिसमें सारे अर्थ दिखाई पड़ते है। ज्यों-ज्यों इस नेत्र से देखने की शक्ति बढ़ती है त्यों-त्यों भूतल में छिपे हुए रत्न और कोषों की भाँति जनपदीय जीवन के नए-नए भण्डार हमारे दृष्टि-पथ में आ जाते हैं। जनपदीय चक्षुष्मत्ता साहित्यिक का ही नहीं प्रत्येक मनुष्य का भूषण है। उसकी वृद्धि जीवन की आवश्यकता के साथ जुड़ी है। अशोक के शब्दों में जानपद जन का दर्शन हमारी जनपदीय आँख की सच्ची सफलता है।

लोक-जीवन और संस्कृति

(श्री० सत्येन्द्र एम० ए०)

अब तक मनुष्य जीवन का जो प्रवाह रहा है वह इस प्रकार का रहा है कि उसमें जीवन की उन बातों को महत्व दिया गया है जो बातें उसके नित्य और दैनिक जीवन में नहीं आतीं। समस्त मनुष्य-जीवन के दो रूप होते हैं। एक विशेष जीवन और दूसरा साधारण घरेलू जीवन। मनुष्य नित्य घरेलू जीवन पर एक प्रकार से परदा डालता है और विशेष जीवन को इससे ऊपर उभारना चाहता है। इस विशेष जीवन के लिए वह चेष्टा करता है, वह इस विशेष जीवन के साथ स्वयं विशेष महत्वपूर्ण बनने और नेतृत्व प्रदर्शन करने की चेष्टा करता है, जब कभी समाज से मिलता है तो अपने को स्वभावतः विशेष रूपसे प्रकट करता है। इन दो रूपों में से हमें मनुष्य-जीवन के दो पहलू दिखाई पड़ते हैं। एक वह है जिसे सभ्यता का जीवन कहते हैं—ऐसा जीवन मनुष्य की संस्कृति से घनिष्ठ संबन्ध नहीं रखता। सभ्यता का जीवन मनुष्य के सोद्देश्य सजे-सँवरे चैतन्य उद्योग से सम्बन्ध रखता है। सभ्यता का जीवन मानव के प्रकृत रूप को पीछे धकेल कर उसके अपने निर्मित-विकसित आदर्शों पर खड़ा होता है। उसका अध्ययन जैसे मानव-समाज के चेतन-मन का अध्ययन है; वह जिस मनोविज्ञान से होता है, वह मनोविज्ञान पूर्ण मानव के अध्ययन के लिए उपयोगी नहीं। उसके द्वारा मनुष्य के समस्त मन-सम्बन्धी विकारों का समाधान नहीं होता। हमारा चैतन्य मस्तिष्क ही उसके अध्ययन का विषय है। चैतन्य मस्तिष्क के अतिरिक्त भी और एक मानस है जिसका हाल ही में शोध हुआ है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में अब तक जो शोध हुए थे उनमें रोगों और मन के सम्बन्ध पर विशेष दृष्टि नहीं थी। किन्तु हिस्टीरिया जैसे कुछ रोगों का सम्बन्ध मनुष्य के मन से बहुत गहरा है। इन रोगों की चिकित्सा में एक जर्मन विद्वान को यह पता चला कि यह सब कार्य चैतन्य मस्तिष्क के विकार का नहीं;

उससे सम्बंधित नहीं, फिर भी किसी मन से ही सम्बन्धित है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चैतन्य मस्तिष्क के अन्दर अचैतन्य मस्तिष्क है उसी के द्वारा यह ऐसे उपद्रव होते हैं। इस प्रकार जितना ही अध्ययन उसने किया उसे इस भीतरी अवचेतन मन में निष्ठा बढ़ी। चैतन्य मस्तिष्क केवल उन बातों को ग्रहण करता है और प्रकाश में लाता है जो चीजें समाज में प्रचलित रुचि के अनुकूल होती हैं, जिन्हें समाज स्वीकार करता है, जिनसे समाज या व्यक्ति घृणा नहीं करता। लेकिन मनुष्य-जीवन में छोटी-बड़ी अच्छी-बुरी सभी बातें आती रहती हैं। उनमें समाज अथवा व्यक्ति जो बातें ग्रहण नहीं करना चाहता उनको चैतन्य मस्तिष्क कुचलता है, उन्हें चेतना में नहीं आने देता। पर यही विचार जो सामयिक दृष्टि से इस प्रकार अग्राह्य माने जाते हैं जीवन के मर्म से गहरा सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे विचार मर नहीं जाते, वे अचैतन्य मस्तिक में समा जाते हैं। तब यह स्पष्ट है कि यथार्थ मस्तिष्क अचैतन्य मस्तिष्क के अतिरिक्त है। मानवी सभ्यता इसी चेतन-मानस का परिणाम है, और मानव जीवन के मर्म को विशेष-जीवन के उद्योगपूर्ण आतंक के द्वारा नीचे दबाये हुए है। अचैतन्य मस्तिष्क अयथार्थ मस्तिष्क को पराभूत करने की चेष्टा करता है। अतः मनुष्य की साधारण और विशेष रूप की स्थिति होती है यह स्पष्ट है। उसमें साधारण रूप में मनुष्य क्या है इसे भी हमें जानना है। इसके लिए हमें जीवन के भीतर झाँकने की आवश्यकता पड़ती है। सभ्य जीवन मानव-जीवन का सबसे ऊपरी स्तर है; यह हमारे जीवन के भव्य भवन की ऊपरी सजावट का रूप है। यह वैभव और सौष्ठव से विभासित है, इसको हम बहुधा नगरों में ही केन्द्रित देखते हैं। सभ्यता का जीवन जिन प्रसाधनों पर निर्भर करता है, वे नगर और शहर में ही उपलब्ध होते हैं। फलतः सभ्य-जीवन और सभ्यता का 'नगर' अथवा शहर से सम्बन्ध हो गया है। नगर से नीचे गाँव है—नगर कम हैं गाँव ज्यादा, गाँव ही में भारत के ७५ प्रतिशत मनुष्य रहते हैं—और नगर जीवन की तुलना में ग्राम्य जीवन कम सभ्य है, अथवा बिल्कुल ही नहीं। यही कारण है कि अर्थ-तत्व के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि 'गँवार' शब्द कैसे 'असभ्य' का द्योतक हो गया। हम सभ्य जीवन, नगर के जीवन की ओर आकृष्ट होते हैं, पर जैसा स्पष्ट है, जीवन का यथार्थ रूप उसका मार्मिक रूप गाँवों में है। साधारण लोक वहीं रहता है। फिर भी साधारण हमसे

ओझल है, और हम विशेष को देखते हैं, उसी की प्रतिष्ठा करते हैं। साहित्यमें भी हमें यह आभिजात्य दृष्टि व्याप्त मिलती है। साहित्यकार ने साहित्य में 'ग्राम्यत्व' नाम का दोष स्पष्ट स्वीकार किया है। इस प्रकार उद्योग-पूर्वक साहित्य को वृहद् और यथार्थ जीवन से अलग रखा गया। किन्तु मनुष्य की अभिव्यक्ति तो प्रत्येक क्षेत्र में होती है। 'ग्राम्यत्व' भी एक अभिव्यक्ति है। भले ही वह किसी की दृष्टि में किसी कारण दोष हो। गाँवों में भी 'साहित्य' रचा गया; वह तथाकथित 'साहित्य' में सम्मिलित नहीं किया गया; साहित्यकार की आभिजात्य दृष्टि ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा, उसका तिरस्कार किया। इस प्रकार साहित्यकार ने भी उसके दो रूप स्वीकार किये—एक ग्राम्य रचना और दूसरी साहित्यिक रचना। उदाहरणार्थ तुलसीदास की रामायण साहित्यिक रचना है और रामायण पर लिखे गए जिकड़ी के भजन साहित्यिक नहीं माने जाते; क्योंकि वे तुलसीदास की भाँति विशेष ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करके नहीं लिखे गए। लेकिन तुलसीदास की रामायण में हम वह सहज स्वाभाविक रूप नहीं पाते जो जिकड़ी के भजनों में हम पाते हैं। ग्रामीण कवि ने कोई शास्त्र नहीं पढ़ा। अपनी उमङ्ग और भावों को अपने उद्गार के रूप में; श्लील या अश्लील भाषा में और उसी के अनुकूल छन्दों में उसने प्रकट कर दिया। यह ग्राम-साहित्य उन्होंने किसी ग्रन्थ में नहीं पढ़ा, किसी पाठशाला में नहीं सीखा। अपने बाप-दादा से सुनकर ही उसे जाना और उसी रूप में उसे सुरक्षित रखा। प्राचीन काल में वेदों को भी लोग सुनकर ही मौखिक परम्परा से सुरक्षित रखते थे।

आज के साहित्यकार ऐसे ग्राम-साहित्य को यह कहकर उपेक्षा करते हैं कि इसमें कोई सुरुचि नहीं, सौष्ठव नहीं, गूढ़ कला नहीं; हम कला मे इन्हें ऊँचा स्थान नहीं दे सकते। इस प्रकार के विश्वास साहित्य-क्षेत्र में हैं, ये जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ते हैं: जैसे रहन-सहन, पहनावे-ओढ़ावे आदि में। जीवन में और जीवन की अभिव्यक्ति साहित्य में इस प्रकार हमें वैविध्य और अन्तर मिलता है। साधारण जीवन—लोक जीवन—ग्राम्य-जीवन बहुत कुछ पर्यायवाची है। लोक-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। इसके असली रूप को जानने के लिए हमें लोक-जीवन के अध्ययन

की महती आवश्यकता है। यह लोक-जीवन किसी भी जाति की पृष्ठ भूमि और मूल-प्रेरणा-स्थल है; यही अवचेतन मानस की भाँति जाति और समाज के समस्त जीवन को सञ्चालित करता है। तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि विशेष जीवन के द्वारा हम अपने को संस्कार किया हुआ अपने को सभ्य पाते हैं और लोक-जीवन को हम असंस्कारों, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से भरा हुआ गर्हित-जीवन समझते हैं। किन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी ही है। आज हमें इसके रहस्य को खोलना होगा। जिन्हें हम अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ मानते हैं उनका अध्ययन हम वैज्ञानिक आधार पर कर सकते हैं। हम ऐसी प्रत्येक रूढ़ि और विश्वास को लेकर उसके इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए उसके 'मूल' को जान सकते हैं। जैसे इतिहास से हम देखते हैं कि १० वर्ष पूर्व अमुक स्थान का क्या रूप रहा, उसके १०० वर्ष पूर्व के उसके क्या चिन्ह मिलते हैं; और उससे भी पूर्व वह क्या था; यों हम यह भी जानने की चेष्टा करते हैं कि उसकी मूल जड़ क्या है। इस प्रकार के अध्ययन में हमारे इतिहास का अध्ययन भी शामिल हो जाता है। उदाहरण के लिए लोक-जीवन के अध्ययन में 'शकट चौथ' की वार्ता को ले सकते हैं। उसमें कहीं-कहीं 'तिलकुटे' की एक मनुष्य जैसी आकृति बनायी जाती है। [illegible] को और गुड़ रख दिया जाता है। घर का कोई बालक या पुरुष, बालिका या स्त्री नहीं, एक चाकू से उसका सिर धड़ से अलग काट देता है। काटते समय उससे कहा जाता है कि वह "मैं एँ एँ" करे। कटा हुआ सिर गुड़ और घी के साथ काटने वाले को मिलता है। इस प्रथा में कितनी बातें छिपी दीखती हैं। स्पष्ट ही 'शकट-चौथ' का यह 'तिलकुटा' बलि किसी समय की मानव बलि की स्मृति है। [illegible] आदिम-मानव मनुष्य-बलि देता होगा। [illegible] बलि बन्द करदी गयी होगी और [illegible] बलि भी जाने लगी होगी। ऐसा संशोधन [illegible] गया है। झाँसी में 'सनीचरा पहाड़' पर [illegible] मनुष्य-बलि पर्वत पर से ढकेल कर [illegible]। अब किसी पशु की बलि दी जाती है। [illegible] बलि के सम्बन्ध में हुई होगी। 'मैं एँ एँ' को [illegible]। फिर तीसरे प्रभाव में अहिंसा वाली भावधारा ने बकरी के स्थान पर खाने योग्य किसी

पदार्थ की मूर्ति से काम चलाने का सुझाव दिया होगा। यह चौथ मकर संक्रान्ति के निकट पड़ती है। इस अवसर पर तिलों का महत्व है। अतः तिल की मूर्ति बनायी जाने लगी। मानव-बलि असभ्य वन्य-जातियों में अभी कुछ समय पूर्व तक थी, विशेषकर खोंडों में। मानव बलि का कुछ संकेत मोहंजोदड़ो से मिले ठप्पों से भी मिलता है। उनमें एक ठप्पे में एक वृक्ष की दो फाँकों में भिंची हुई एक मानवीय मूर्ति है। खोंडों में मनुष्य-बलि में यही प्रचार प्रचलित था। एक वृक्ष के फटे हिस्से में बलि-पात्र को भींच दिया जाता था। मनुष्य-बलि वैदिक-काल में प्रचलित थी,यह हमें शुनःशेप के कथानक से विदित होता है। खोंडों के पुरोहित बलि करते समय बलि-पात्र से जो बातें कहते हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है कि, खोंडों के पुरोहित की उन बातों के भाव वैदिक बलि देने वाले के भावों से टक्कर लेते हैं। वे जो मन्त्र पढ़ते हैं उनमें भी बलि के इतिहास की बात कहते हैं। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र की कथा में हमें बलि का उल्लेख मिलता है। वेदों में जब लोक-जीवन आदिम अवस्था में था उस समय भी बलि का वर्णन मिलता है। इस तरह बलि के इतिहास से हमें मोहंजोदड़ो और हड़प्पा की लोकवार्ता के समझने में सहायता मिलती है। इस तरह रूढ़ियों और अन्धविश्वास की चीजों से हम इतिहास जान सकते हैं। 'शकट' की बलि में, कितना पुराना इतिहास टूट-फूट कर बचा हुआ है। इस तरह तुलना करके लोक-जीवन के अध्ययन करने की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास हमें लोक-संस्कृति का मूल बतलाते हैं। मानवीय उपयोग के लिए इनके अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। यह अध्ययन विधिपूर्वक किया जाना चाहिए।

फ्रेजर महोदय ने लोक जीवन संबन्धी समस्त रीति रिवाजों का एक संग्रह किया है जिसका नाम 'स्वर्णिम शाखा' (गोल्डन बॉउ) है। इस संग्रह ने विविध देशों की लोकवार्ता की तुलना प्रस्तुत करदी है। भारत में भी इस प्रकार का कार्य करने की महती आवश्यकता है। भारत एक विशाल देश है। ज्ञान की साधना के लिए हम अपने क्षेत्र में ही काम करें। लोकवार्ता में दो प्रकार की सामग्री होती है उसका बहुत बड़ा अंश तो ऐसा होता है जो व्यापक होता है। कुछ अंश केवल स्थानीय। अतः यदि एक स्थान अथवा क्षेत्र का भी लोक-अध्ययन विधिवत् कर लिया जाय तो समस्त क्षेत्र के अध्ययन में

सुविधा हो जाय। ब्रज-साहित्य-मंडल और उसके क्षेत्र को इस दशा में महत्वपूर्ण कदम उठाना है। उसे इस लोक-अध्ययन की वैज्ञानिक-प्रणाली का साधारण रूप प्रस्तुत कर देना होगा। उससे विशेष वैज्ञानिक अध्ययन की नींव पड़ जायगी। इस क्षेत्र में इसी के लिए हमें लोकवार्ताओं का संग्रह करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार संग्रह के लिए हम विद्वान् पुरुषों से एक प्रश्न माला तैयार करायें और फिर उसका उत्तर लिखें।

वह प्रश्न तालिका कुछ इस प्रकार की हो सकती है :

१—गाँव का इतिहास, वहाँ कौन देवी देवता पूजे जाते हैं ?

२—(१) नाम गोत्र और जन्म के बोलने का नाम ? (२) पूज्यों, मृतकों का नाम कब नहीं लिया जाता ? (३) क्यों नहीं लिया जाता ? (४) अशौच और अन्तिम अवस्था में क्यों नहीं लिया जाता ? (५) कुछ काल के लिए कुछ नाम लिया जाता है ? (६) किसी ऐसे निषिद्ध नाम को लेने पर क्या होता है ? (७) विविध अवसरों और अवस्थाओं में वे नाम बदले जाते हैं ? (८) बच्चों की उत्पत्ति पर नाम कुछ होता है ? पुकारने का नाम कुछ होता है ? (९) इस प्रकार के निषेध के क्या कारण होते हैं ?

३—कुछ जातियाँ कुछ वर्गों से किन्हीं कारणों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखतीं ? ऐसी जातियों और उनके वैवाहिक सम्बन्ध न होने वाले वर्गों का विवरण लिखिए।

[इन कारणों में कहीं-कहीं तो स्थान विशेष का विचार रहता है, और कहीं-कहीं पैतृक एकता इन सम्बन्धों में बाधक होती है]

४—उन वर्गों का उल्लेख कीजिए जिनसे बाहर कोई जाति वैवाहिक सम्बन्ध रखती ही नहीं हो।

५—कुछ वर्ग ऐसे होते हैं जिनमें स्त्री या तो उसी वर्ग में किसी पुरुष से विवाह करे अथवा अपने से ऊँचे वर्ग के पुरुष से और साथ ही पुरुष उसी वर्ग में अपना विवाह करे अथवा अपने से नीचे वर्ग में भी कर सकता है। ऐसे वर्गों का विवरण दीजिए।

६—उन सीमाओं का उल्लेख कीजिए जो किसी यथार्थ अथवा कल्पित समगोत्रता के सिद्धान्त के आधार पर बनी हों और जो उस वर्ग में अथवा उससे बाहर होने वाले विवाहों को रोकती हों।

७—किसी जाति की उत्पत्ति, किसी पीढ़ी पर जाकर उनके पूर्वजों की एकता, उनके पहले निवास स्थान, उनके स्थान-परिवर्तन का समय और उनके स्थान-परिवर्तन [illegible] की किसी घटना अथवा कारण से सम्बन्ध [illegible] उल्लेख कीजिए।
[ऐसे विश्वास प्रायः सभी जातियों में मिलते हैं। सभी का उल्लेख होना आवश्यक है]

८—जाति स्थायी है अथवा घूमने फिरने वाली ? प्रान्त में क्या कोई उसका निश्चित स्थान है ? यदि वह घूमने फिरने वाली है तो उसके घूमने फिरने का प्रधान-प्रदेश कौन-सा है ? उसके स्थान परिवर्तन की अवधि निश्चित है अथवा अनिश्चित ? उनके रहने का ढङ्ग और उनकी सम्पत्ति क्या है ?

९—क्या ऐसी जाति अपने में किसी अन्य जातिवालों को मिलाते हैं ? यदि हाँ तो किन जातियों को मिलाते हैं ? किस रूप में मिलाते हैं ? उनके मिलाने की शर्तें क्या हैं ?

१०—अ—बाल-विवाह प्रचलित है अथवा प्रौढ़-विवाह ? यदि बाल-विवाह है तो लड़की का किस अवस्था तक विवाह हो जाना चाहिए ? यदि उस निश्चित अवस्था तक लड़की का विवाह नहीं होता है तो उस परिवर्तन के लिए कौन-कौन से सामाजिक दण्ड हैं ? उस अवस्था को पार करने के पश्चात् क्या उस के विवाह होने के कुछ साधन है ? इन जातियों के वैवाहिक संस्कारों का भी विवरण दीजिए।

आ—क्या लड़कियों का विवाह, पतियों के अभाव में वृक्षों, तलवारों आदि से होता है और क्या बाद में वे किसी मन्दिर में भेंट स्वरूप दे दी जाती हैं ?

इ—बाल-विवाह वाली लड़की अपने पति के घर तत्काल ही भेज दी जाती है अथवा कुछ समय बाद ? यदि अपने मायके में रहती है तो किस अवस्था तक ? इस विदाई के समय क्या क्या-क्या संस्कार होते हैं ? क्या कुछ सामाजिक दण्ड-विधान उन परिवारों के लिए है जिनकी लड़कियों को पति के घर जाने से पूर्व ही मासिक होने लगता है ?

ई—समागम के लिए कोई समय निश्चित है अथवा विवाह के पश्चात् ही आरम्भ हो जाता है ? बाल-विवाह किसी

अमुक जाति में अभी प्रचलित हुआ है अथवा बहुत पहले से चला आता है ? यदि पहले का है तो यह कब प्रचलित हुई ?

–क्या एक ही साथ अनेक पत्नी अथवा अनेक पति रखने की प्रथा है ? यदि हो तो किन शर्तों पर और किन सीमाओं तक ? क्या अनेक पति भाई हो सकते हैं, या ऐसे भी हो सकते हैं जो भाई न हों ?

[ऐसी प्रथा भी होती है कि एक परिवार में जो उम्र में सबसे बड़ा हो उसी का विवाह सर्व प्रथम होगा। ऐसा भी देखा जाता है कि बाल-पति की प्रौढ़ पत्नी होती है और पति का पिता उससे संबन्ध स्थापित कर लेता है]

–सामान्यतः वैवाहिक संस्कार क्या हैं ? उनका संक्षिप्त विवरण दीजिये ?

–क्या विधवा-विवाह समाज-सम्मत है ? क्या ऐसी दशा में पति के बड़े या छोटे भाई से ही विवाह होना आवश्यक है ? यदि ऐसा नहीं है तो विधवा-विवाह की अन्य शर्तें क्या हैं ? किस प्रकार के विवाह-संस्कार हैं ? उनका अत्यावश्यक अंश कौनसा है ?

–तलाक किन परिस्थितियों में मान्य होता है ? क्या तलाक के बाद स्त्री विवाह कर सकती है ? इस अवस्था में विवाह का क्या रूप होगा ? क्या इस दशा में मोल लेने की भी प्रथा है क्या ?

–किसी अमुक जाति के सदस्य पैतृक सम्पति के अधिकार के संबन्ध में हिन्दू-नियमों को मानते है अथवा मुस्लिम नियमों को ? क्या शुद्ध अधिकारी की जाँच करने का कोई सामाजिक विधान है ? यदि हो तो उसका विवरण दीजिये।

–किस धर्म अथवा सम्प्रदाय से वह जाति सम्बन्ध रखती है ? यदि वह हिन्दू है तो किन धार्मिक देवताओं की पूजा को महत्व देते हैं और क्यों ? यदि वह प्रकृतिपूजक (Animist) है तो उसके धार्मिक विश्वास, उसकी रीति-रिवाजों का वर्णन दीजिए ? क्या जादू-टोने (Magic) में उनका विश्वास है ? पूरा विवरण दीजिए।

–उस जाति के निम्न देवताओं (Minor gods) के नामों का

उल्लेख कीजिए। उनको क्या भेंट दी जाती हैं ? सप्ताह के किस दिन उनकी पूजा होती है और क्यों ? किस वर्ग के लोग उस भेंट को स्वीकार करने के अधिकारी समझे जाते हैं ? क्या किसी देवता या पीर की पूजा स्त्रियां और बच्चों तक ही सीमित है ? क्या पूजा बिना पुरोहित के भी हो सकती है ? पूजा के स्थलों (वृक्ष, पत्थर, पर्वत) का भी विवरण दीजिए ? क्या बलि की प्रथा है ?

१८—क्या वह जाति धार्मिक कृत्यों के लिए ब्राह्मणों को आमन्त्रित करती है ? क्या इस प्रकार के ब्राह्मणों तथा अन्य ब्राह्मणों में अन्तर है ? यदि ब्राह्मण यह कृत्य नहीं कराते तो और कौनसी जाति कराती है ?

१९—अन्त्येष्टि क्रिया का पूरा विवरण दीजिए। मृत गाड़ा जाता है या जलाया जाता है ? यदि गाड़ा जाता है तो किस प्रकार ? मृत के फूल (ashes) कहाँ बहाये जाते हैं अथवा गाड़े जाते हैं ? मृत्यु शोक मनाने की अवधि कब तक है ? बच्चे, प्रौढ़ और वृद्ध सबके विषय में लिखिए।

२०—क्या कोई ऐसे धार्मिक कृत्य हैं जो पूर्वजों अथवा निपुत्री पूर्वजों की तृप्ति के लिए किए जाते हों अथवा उनके लिए जिनकी मृत्यु आकस्मिक हुई है ? यदि हाँ तो किस प्रकार के कृत्य है और किस ऋतु में किए जाते हैं ? श्राद्ध होते हैं क्या ? स्त्री-पूर्वजों की पूजा के विषय में क्या है ?

२१—वह जाति अपने आदि व्यवसायों के विषय में क्या विश्वास रखती है ? किस सीमा तक उसने अन्य व्यवसायों को अपनाया है ? क्या पहले व्यवसाय को छोड़ने का कारण है ? उनकी कार्य-प्रणाली पर भी एक दृष्टि डालिए।

२२—यदि वे किसान हैं तो कृषि-विधान की किस स्थिति में है ? जमींदार आदि।

२३—(अ) यदि वे कारीगर हैं तो उनका उद्योग धन्धा क्या है ?

(आ) क्या शिकारी हैं ?

(इ) क्या मछुए हैं ? यदि हाँ तो कछुए और घड़ियाल भी पकड़ते हैं क्या ?

(ई) यदि भंगी हैं तो पाखाना साफ करते हैं कि नहीं ?

२४—भोजन सामग्री क्या है ? गोश्त, शराब, बन्दर, चर्बी, आदि

खाते पीते हैं क्या ?

२५—वह सबसे छोटी जाति कौनसी है जिसके हाथों से जाति पक्का, कच्चा खाना खा सकती हो, पानी पी सकती हो और चिलम दे सकती हो ?

२६—पोशाक सम्बन्धी कोई विश्वास है क्या ? क्या कोई गहने अथवा हथियार ऐसे है जो उस जाति से विशेष रूप से संबद्ध हैं ? क्या कोई गंडा या जनेऊ (Sacred thread) बांधा जाता है ?

२७—और भी कुछ ज्ञातव्य बातें हैं क्या ?

(यह प्रश्न-तालिका श्री एच० एच० रिजले, डाइरेक्टर आव ऐथनाग्रॉफी फौर इंडिया, द्वारा प्रकाशित 'मैन्युअल आव ऐथनाग्रॉफी फौर इण्डिया' के आधार पर हैं)

इन प्रश्नों के उत्तर हम प्राप्त करें, उनके उत्तरग्रहण करते समय हमें अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है, साथ ही हमारा निरीक्षण भी सूक्ष्म होना चाहिए। इस प्रकार के अध्ययन से इतिहास पर समाज-विज्ञान पर असर पड़ता है। इस दृष्टि से एक अंगरेज और हिन्दुस्तानी में कोई भेद नहीं प्रतीत होता। इस तरह मानव का एक मानव के अन्दर विश्वास पैदा होता है। आज हिन्दू और मुसलमानों का जो प्रश्न चला है वह इस अध्ययन से दूर हो सकता है। इन अध्ययनों से पता चलता है कि अमेरिका में जिस प्रकार के विश्वास मिलते हैं वैसे ही हमें भारतवर्ष में भी मिलते हैं। इस तरह मालूम हुआ कि अमेरिका का मानव भी कभी भारतवर्ष के समकक्ष रहा होगा। यदि यह विश्वास मनुष्य में उत्पन्न हो जाय तो कितना मानव-कल्याण हो सकता है। इतिहास भेदों को जन्म देता है। धर्म, आचार, भेद सभ्यता का ऊपरी आवरण है। इसके अन्दर असली रूप की ओर ध्यान देने वाला लोकजीवन है। इसी के अध्ययन के लिए आप लोगों को यहाँ एकत्रित किया गया है।

आज जब हम जन-जीवन और उनकी संस्कृति के निर्माण की बात करते हैं तो सबसे पहले हमें उन रूढ़ियों के मर्म को समझ लेने की आवश्यकता है जो जानपद-जन की रग-रग में रस रही हैं, जो उनकी संस्कृति की रीढ़ हैं। तभी हम आगे बढ़ सकते हैं और निर्माण कार्य को स्थायी रूप दे सकते हैं। अब तक हम इतिहास के रूप को लेकर आगे बढ़े हैं और लोगों के सुधारने की कोशिश की है। हमारा

ढंग सुधार को आरोपित करने का रहा है। आज हमें साधारण जीवन के मार्ग से होकर आगे कदम उठाने की जरूरत है। जन-जीवन के मर्म और मानस को समझ कर उसी के अनुकूल निर्माण के आदर्शों को बनाकर उस जन को ऊपर उठाते चलने की आवश्यकता है।

संस्कृति और सभ्यता दो शब्द हैं। संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से है। संस्कार का अर्थ है विशेष रूप से संस्कार किया हुआ। इस संस्कार का सभ्यता के कृत्रिम और ऊपरी संस्कार से महान् अन्तर है। जिनकी हमारे बातों की निजी जीवन से घनिष्ठता है वे संस्कृति के अन्तर्गत आती हैं। वही हमारे आचार की भूमि बन कर हमारी संस्कृति का निर्माण करती हैं। लोकजीवन का संस्कृति से बहुत गहरा मेल है, इन संस्कृतियों के अनेक रूप गांवों में हमें मिलते हैं।

खाना-पीना मनुष्य का धर्म नहीं यह पशु धर्म है। 'आहार निद्रा भय मैथुनानि समानमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।' इस तरह आगे बढ़कर मनुष्य जब औरों के लिए सहानुभूति का द्वारा खोलता है तब वह मनुष्य बनता है। मनुष्य के विकास का वास्तविक रूप संस्कार है। 'साहित्य संगीत कला विहीन: साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन :'

हमारे गाँव किसी समय अत्यन्त स्वस्थ और संस्कृत थे। गांवों की स्थापत्य कला, स्त्रियों द्वारा बनाई गयी चित्रकला, मूर्ति तथा देवताओं की मूर्तियों से जान पड़ता है कि यथार्थ संस्कृति हमारे ग्रामीण जीवन में ही थी। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इन्हें उसी स्थिति में रहने देना है। आज ग्रामीण जीवन बहुत जर्जरित हो उठा है इसलिए वहां के आदमियों की ऐसी कलाओं पर से श्रद्धा हटती जा रही है, वहां की कलाओं का विकास रुकता सा जा रहा है। व्यवसायी होने के कारण मनुष्य की बुद्धि का ह्रास होता जा रहा है। जहां गांवों के लोग एकांत में बैठ कर ग्रह-नक्षत्रों का पता लगाया करते थे व्यवसायी होने के कारण इनकी ओर अब उनका ध्यान ही नहीं जाता। इसलिये आज हमें इस बात की बहुत जरूरत है कि हम गांव में जाएं और वहां की संस्कृति के केन्द्रों ग्रामों और ग्रामीणों का अध्ययन करें। उन पर जो पशुता और अज्ञान का आक्रमण हो रहा है उससे रक्षाकर उनमें बद्धमूल मानवीय धर्मों का उद्घाटन करके उस हीनता को जीतने की चेष्टा करें। इस तरह हम लोक-जीवन के अध्ययन को समझें और घर-घर उसका प्रचार करें

ब्रज भारती: एक मौखिक परम्परा

[श्री देवेन्द्र सत्यार्थी]

ब्रज की सीमाएँ निश्चित करने का कार्य किसी पुरातत्ववेत्ता अन्वेषक पर छोड़ कर अभी मोटे रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि दिल्ली के दक्षिण से लेकर इटावे तक तथा अलीगढ़ से लेकर धौलपुर और ग्वालियर तक इसी जनपद का प्रसार है। ब्रज का अतीत अत्यन्त सुन्दर और गौरवमय है। इसी अतीत से सम्बन्धित इस जनपद की मौखिक परम्परा है जिसकी जड़ें धरती में है। यहां के लोकगीत इसी महामहिम मौखिक परम्परा के प्रतीक हैं। लोक कथाओं में भी इसी की रूपरेखा प्रदर्शित होती है, लोकोक्तियां तथा पहेलियां भी इसी के अन्तर्गत आती हैं। बहुत से टोने-टोटके और जन्त्र-मन्त्र भी इसी में आश्रय ग्रहण करते हैं और युगयुगान्तर से चले आने वाले लोक-विश्वासों से नाना स्थिर किए हुए हैं। समूचे रूप से इस मौखिक परम्परा का अध्ययन किया जाय तो एक निष्कर्ष यह निकलता है कि एक समय था जब मानव प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय वैयक्तिक रुचि-भिन्नता के स्थान पर सामूहिक भावना का आधिपत्य था। बल्कि यह कहा जा सकता है कि उस समय मानव जीवन में संघर्ष कम था और नैसर्गिक प्रवाह अधिक। सभी जनपदों की यही अवस्था थी। एक हमारे देश ही में नहीं, समस्त संसार के देश उनके अनेक जनपद इस प्रकार के युग से गुजर चुके हैं। हर कहीं के जीवन की पृष्ठभूमि में मौखिक परम्परा के अतीत को छूती हुई और धरती की आस्था में बँधी हुई गाथा सुन कर हम आनन्दित हो उठते हैं। इस गाथा में प्रत्येक व्यक्ति समूचे कुटुम्ब, जाति या राष्ट्र का प्रतिनिधि नजर आता है, और सच पूछा जाय तो अतीत के इस मानव के सम्मुख आज के उन्नत युग का सिर झुकने लगता है।

मौखिक परम्परा की अनेक परतें हैं। यह अन्वेषक का कार्य है कि वह एक-एक परत का अध्ययन करे और इस के पश्चात समूचे

निष्कर्षों के आधारों पर देश की आयुष्मती आत्मा का इतिहास लिखने में सहायक बने। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने एक स्थान पर लिखा है: "जानपद जन के रूप में लोक के एक सदस्य का जब हम दर्शन करते हैं तो हमें समझना चाहिए कि जीवन की अनेक बातें ऐसी हैं जिन मे हम उसे अपना गुरु बना सकते हैं। देहरादून के सुदूर अभ्यंतर में स्थित लाखामंडल गांव के परमा बढ़ई से जो सामग्री हमें प्राप्त हुई वह किसी भी प्रकाशित पुस्तक से नहीं मिल सकती थी। जौंसार बावर के उस छोटे गाँव के शिव-मंदिर के आँगन में खड़े हो कर हमारे मित्र पं० माधवस्वरुप जी वत्स सुपरिंटेंडेंट आफ आर्किओलाजी, आगरा, जिस समय भोली भाली जौंसारी स्त्रियों के मुख से दूबड़ी आठें (भाद्रपद शुल्क अष्टमी) के त्यौहार का, और अवसर पर छामड़ा पेड़ की डालों से बनाये जाने वाले आदम कद दानव का, जिसे वहाँ 'छमड़िया दानौं' कहते हैं, हाल सुनने लगे तो उन्हें आश्चर्य चकित हो जाना पड़ा कि इस दूबड़ी की पूजा में मातृत्व-शक्ति की पूजा की वही परम्परा पाई जाती है जो उन्हें हरप्पा की मूर्तियों में मिली थी। इसी जौंसार प्रदेश की चिया बिया प्रथा (बिया = जेठे भाई के साथ स्त्री का विवाह; चिया = अन्य छोटे भाइयों का उसके साथ पत्नीवत् व्यवहार) के विषय में और अधिक जानने की किसे इच्छा या उत्सुकता न होगी? ये और इन जैसे अनेक विषय लोकवार्त्ता के अन्तर्गत आते हैं, जिनका वैज्ञानिक पद्धति से संकलन और अध्ययन अपेक्षित है।" १

'लोकवार्ता' शब्द नया नहीं। परन्तु इसका वर्तमान प्रयोग अवश्य नया है। इसके लिये हम श्री कृष्णानन्द गुप्त के ऋणी रहेंगे जिनके परिश्रम से बुन्देलखड में लोकवार्ता-परिषद स्थापित हो चुकी है और जिनके सम्पादकत्व में 'लोकवार्ता' पत्रिका एक देशव्यापी कमी को पूरा कर रही है। ब्रज-साहित्य मंडल की मुख्य पत्रिका 'ब्रज भारती' भी लोकवार्ता के अध्ययन में बहुत सहयोग दे सकती है। लोकवार्ता शब्द अँग्रेजी के 'फोकलोर' से कहीं अधिक अर्थ पूर्ण है। जनता जो कुछ युग-युग से कहती और सुनती आई है, अर्थात्, मौखिक परम्परा की समूची सामग्री, वह सब लोकवार्ता के अन्तर्गत आ जाती है।

१ लोकवार्ता शास्त्रः लोकवार्ता। जून १९४४, पृ० ७-६

लोकवार्ता केवल अतीत की वस्तु हो, यह बात नहीं अतीत से लेकर अब तक की समस्त यौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक गति-विधि का सम्पूर्ण इतिहास लोकवार्ता में निहित रहता है। इसके बिना देश के वास्तविक इतिहास का निर्माण असम्भव है।

विदेशों में लोकवार्ता का नृ शास्त्र, समाज शास्त्र, भाषा-शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और पुरातत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। यूरोप के प्रत्येक छोटे-बड़े राष्ट्र की अपनी लोकवार्ता-परिषद् है। अनेक अन्वेषकों और विद्वानों ने इस दिशा में महान कार्य किया है। एंड्रयू लैंग, ग्राण्ट एलन, मैक्समूलर और हर्बर्ट स्पेंसर से लेकर प्रोफेसर वेस्टरमार्क, सर जे० जी० फ्रेजर और सर जी० एल० गोमे जैसे विद्वान महान अन्वेषण करते आ रहे हैं। अकेले फ्रेजर का 'गोल्डन बाउ' ग्रन्थ जिसे इस विषय की 'बाइबिल' कहा जा सकता है, बारह मोटी-मोटी जिल्दों में शेष हुआ है, और इस ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण जिसके बड़े आकार के ७५२ पृष्ठ हैं, इस विषय के प्रत्येक विद्यार्थी के हाथों में होना चाहिए। यूरोप की अनेक भाषाओं में इस ग्रन्थ के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। यदि कोई संस्था इस के संक्षिप्त संस्करण ही का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का भार अपने जिम्मे लेले तो इसकी पहुँच उन विद्यार्थियों और विद्वानों तक सम्भव हो सकती है जो अंग्रेजी से अनभिज्ञ हैं।

हमारे देश में टेम्पल और ग्रीयरसन के पश्चात अब विलियम ज़ी० आर्चर और वैरियर एलविन ने मौखिक परम्परा के संकलन तथा वैज्ञानिक अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया है। इनकी प्रेरणा से विशेषतया हमारे लोकगीत आन्दोलन को शक्ति प्राप्त हुई है, हिन्दी में श्री रामनरेश त्रिपाठी के यत्नशील उद्योग से ग्रामगीत संग्रह तथा प्रकाशन की नींव पड़ी, और उनके इस कार्य के सम्बन्ध में एक आलोचक की सम्मति से मैं पूर्णतया सहमत हूँ कि न्यायपूर्वक हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि इस दिशा में उनका प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है, और भविष्य में वे अपनी अन्य रचनाओं की अपेक्षा कविताकौमुदी पाँचवे भाग के द्वारा ही भावी जनता के श्रद्धा भाजन बनेंगे।

परन्तु त्रिपाठी जी से कुछ लोगों को यह शिकायत रही कि

उन्होंने अपने संग्रह में बुन्देलखण्ड और ब्रज के गीतों को स्थान नहीं दिया। मैं यह कभी नहीं मान सकता कि त्रिपाठी जी ने जान-बूझ कर इन दोनों जनपदों के प्रति उपेक्षा दिखाने की भूल की है। अतः मैं इसे अनुदारता ही कहूँगा कि किसी ग्रन्थ की आलोचना करते समय निजी पक्षपात को बीच में ले आयें। बहुत से अन्य जनपद भी तो ऐसे हैं जिनके गीतों को वे अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दे पाये। परन्तु यह दोष या कमी दिखाकर कोई उनके कार्य की महानता और पथ-प्रदर्शन से तो इनकार नहीं कर सकता।

ब्रज की लोक-कविता की प्रशंसा मैंने पहले-पहल सन् १९३२ में बनारसीदासजी चतुर्वेदी और श्रीराम शर्मा से सुनी। इसके दो वर्ष पश्चात् चतुर्वेदीजी ने अनुरोध किया कि मुझे ब्रज-यात्रा के लिये तुरन्त चल देना चाहिए। परन्तु मैं काश्मीर और सीमाप्रान्त की यात्रा पर चल पड़ा। उधर से लौटा तो मेरे पाँव मुझे गुजरात और राजस्थान की ओर ले गये। सन् १९३७ में फिर चतुर्वेदीजी ने ब्रज-यात्रा का ध्यान दिलाया और यहाँ तक कह दिया कि यदि मैंने ब्रज की अधिक अवहेलना की तो वे लिखकर इसकी कड़ी आलोचना करेंगे। यद्यपि मुझे इस बात का एतराफ़ करने में कुछ संकोच नहीं कि मैं एक ब्राह्मण के शाप के भय से ब्रज में पहुँचा था, परन्तु इसे भी कदाचित् किसी देवता का प्रसाद ही समझना चाहिए कि पहली ही यात्रा में मेरी दो सज्जनों से भेंट हुई जिनके हृदय और मस्तिष्क में ब्रज की मौखिक परम्परा के लिए अगाध आस्था और चेतना देखने में आई। मेरा संकेत श्री वासुदेवशरण अग्रवाल तथा श्री सत्येन्द्र की ओर है, जिनके सहयोग से इस जनपद में कई केन्द्रों में रहकर मैंने ब्रजभारती की सङ्गीतमय वाणी सुनी और ब्रज की संस्कृति के प्रतीक बहुत से लोक-गीत स्त्रियों और पुरुषों के मुख से सुन-सुन कर ज्यों के त्यों लिख डाले। अगले वर्ष सन् १९३८ में मैं फिर ब्रज में पहुँचा, और इस बार फिर इन दोनों मित्रों के सम्पर्क से अपने अध्ययन को अधिक गहरा करने के अवसर प्राप्त हुए। इस बार श्री सत्येन्द्रजी की पत्नी द्वारा संग्रहीत कुछ सुन्दर और उपयोगी गीत मुझे मिल गये। यह सुनकर मुझे बहुत खेद हुआ कि इस देवी का देहावसान हो चुका है। अतः उसके ऋण से उऋण होने का कोई उपाय न देखकर मैं केवल उसकी

आत्मा को बारम्बार प्रणाम कर सकता हूँ।

ब्रज की अपनी दोनों यात्राओं के पश्चात् मैं इच्छा रहने पर भी फिर से इस जनपद के ग्रामों में नहीं घूम सका। कई बार सोचा कि अपने अध्ययन की कुछ बातें लिखकर ब्रजभारती के सम्मुख ही पुष्प चढ़ाऊँ। परन्तु मैं जब भी इन गीतों को खोलकर बैठा तो इनके रसास्वादन तथा वैज्ञानिक अध्ययन में इतना खो गया कि मैंने यही अच्छा समझा कि थोड़ा और रुक जाऊँ ताकि इस आयुष्मान और पुष्कल मौखिक परम्परा की सामग्री का समुचित परिचय कराने योग्य हो सकूँ।

इस बीच में श्री वासुदेवशरण और श्री सत्येन्द्रजी से कई बार भेंट हुई। सत्येन्द्रजी ने ब्रजभारती के सफल सम्पादकत्व के अतिरिक्त इस जनपद की लोकवार्ता और विशेषतया यहाँ के गीतों के वैज्ञानिक सङ्कलन का जो आन्दोलन चला रखा है, उसके समाचार सुनकर मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ और वासुदेवशरणजी ने अपनी लेखनी द्वारा मातृभूमि के लोक-जीवन तथा लोकवार्ता की वास्तविक महत्ता कुछ इस ढङ्ग से प्रदर्शित की है कि इसके द्वारा मेरे सम्मुख एक नया तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश आता चला गया। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है—जितनी बड़ी पृथिवी है उतनी ही बड़ी वेदि है। इस परिभाषा का अर्थ यह है कि जितना भी विश्व का विस्तार है उसका कोई अंश ऐसा नहीं है जो मनुष्य के लिए काम का न हो अर्थात जो मानवी यज्ञ की परिधि से बाहर हो। जो यज्ञ की वेदि में आ जाता है, वही यज्ञीय या मेध्य होता है, वही मनुष्य के केन्द्र के अन्तर्गत आ जाता है... जो कुछ उस वेदि के खूँटे से नहीं बांधा जा सका वह अमेध्य होता है। हम एक जीवन में जो यज्ञ का खम्भा खड़ा करते हैं जो कुछ उस खम्भे से नहीं बांधा गया वह उस जीवन के लिए उपयोगी नहीं बन पाता। यज्ञ से जो बहिर्भूत है उसे यज्ञ के अन्तर्गत लेने का प्रयत्न जन्म जन्मान्तर में चलता रहता है। लोकजीवन के अपरिमित विस्तार को हमारा बारम्बार प्रणाम है...... जितना लोकजीवन उतना ही विशाल तो मानव है। मानव के बाहर लोक में कुछ भी शेष नहीं रहता। अथवा, जैसा वेदव्यास ने महाभारत में बड़े

उदार शब्दों में कहा—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।

अर्थात् रहस्य ज्ञान की एक कुंजी तुम्हें बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। इस सूत्र में लोकजीवन और सभी तरह के ज्ञान का मूल्य आँक दिया गया है। मनुष्य से सब नीचे है, मनुष्य सबसे बढ़कर है। जो ज्ञान मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं वह दो कौड़ी का है। लोकवार्त्ता-शास्त्र भी यदि वैज्ञानिक के शुष्क कुतूहल के लिए हो तो वह जीवन के लिए अनुपयोगी ही रहता है। मानव के प्रति सहानुभूति और मानव के कल्याण की भावना लोकवार्त्ता-शास्त्र को सरलता प्रदान करती है। लोक-वार्त्ता-शास्त्र की प्रतिष्ठा अन्ततोगत्वा मानव-जीवन के प्रति नई प्रतिष्ठा के भाव की स्वीकृति है। भारत जैसे देश में जहाँ लोकवार्त्ता और लोकजीवन बहुत ही शांतिपूर्ण सहयोग और निर्विरोध आदान प्रदान के द्वारा फूला फला है, लोकवार्त्ता-शास्त्र का बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। कौनसा विश्वास कहाँ से उत्पन्न हुआ, बीज रूप से जन्म लेकर मस्तिष्क और मन का कौन सा भाव वटवृक्ष की तरह चारों खूंटों की भूमि को दबा बैठा है, विकास परम्परा में कौन कहाँ से कहाँ पहुँच गया है, इन सब का विश्लेषण बहुत ही महत्वपूर्ण होगा। क्योंकि वह अनेक प्रकार से एक ही प्रधान तत्व की विजय को सूचित करता है, और वह महान् धार्मिक तत्व मनुष्य का मनुष्य के लिए सहिष्णुता का भाव है। बनोंके निषाद और शबरों के प्रति भी हिन्दुधर्म ने सदा सहिष्णुता की आरती सजाई है........चतुर्दिक जीवन के साथ सहानुभूति और सहिष्णुता का भाव इसकी विशेषता रही है। आज का हिन्दु धर्म भारतवर्ष के महाकान्तार दंडकारण्य की तरह ही विशाल और गम्भीर है जिसमें अपरिमित जीवन के प्रतीक एक दूसरे के साथ गुथ कर किलोल करते रहे हैं।" १

धरती मानव की जननी है। उसकी बांहें अगाध प्रेम और सहानुभूति की प्रतीक हैं। इसी मिट्टी से अन्न उगता है जो मानव को जीवित रखता है। धरती माता की कल्पना, अन्य भारतीय लोकगीतों ही की भाँति ब्रज की भी विशेषता है। मथुरा से तीन मील

१। 'महामहिम लोकजीवन' लोकवार्त्ता, जनवरी १९४६, पृ० ६४–६६

की दूरी पर महोली ग्राम में सुना हुआ गीत, जिसका बोआई के समय मन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है, अत्यन्त स्थानीय वस्तु होते हुए भी सार्वभौमिकता के स्तर तक उभरता दिखाई देता है:

धरती माता ने हरयौ करयौ
गऊ के जाये ने हरयौ करयौ।
जीव जन्त के भाग ने हरयौ करयौ,
महोली खेड़े ने हरयौ करयौ।
गंगा माई ने हरयौ करयौ,
जमुना रानी ने हरयौ करयौ।
धना भगत को हर ते हेत,
बिना बीज उपजायो खेत।
बीज बच्यौ सो सन्तन खायौ,
घर भर आँगन भरयौ।

यह गीत लिखाने वाले वयोवृद्ध किसान ने बताया था कि इस जनपद में बांस का पोरा जिस में से बोआई करते समय बीज डालते जाते हैं, योन्ना कहलाता है, बीज हमेशा चक्करदार गोलाई में डाला जाता है। एक चक्कर को 'फरा' कहते हैं, और एक चक्कर जिसके अन्तर्गत जलेबी की भाँति कई बड़े छोटे कुंडलाकार चक्कर डाले जाते हैं, कुंड के नाम से पुकारा जाता है। 'कुंड' के अन्तर्गत अन्तिम 'कुंड' के रूप में बीज डालते समय विशेष रूप से इस गीत का महत्व माना जाता है। युग-युग से बैल के कन्धे पर अन्न उगाने का भार है। 'गंगा माई' और 'जमुना रानी' की कृपा भी आवश्यक है, यों प्रतीत होता है कि गीत की अन्तिम पंक्ति से पहले की तीन पंक्तियाँ जिनमें धना भगत का जिक्र किया गया है, बाद में जोड़ दी गई हैं। यह बात याद रखने की है, लोकगीत का रूप बदलता रहता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ में समस्त जनपद में यह 'रसिया' गूँज उठता है।

'आयो जेठ आषाढ़ बन बोय दे रे सिपाहिरा'

कपास के लिये 'बन' शब्द का प्रयोग बहुत पुराने समय की याद दिलाता है। सिपाही से कपास बोने की बात क्यों कही जा रही है? इस प्रश्न का उत्तर कुछ यों दिया जा सकता है कि 'रसिया' की परम्परा उस समय का स्मरण कराती है जब एक प्रकार से प्रत्येक

उदार शब्दों में कहा—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

अर्थात् रहस्य ज्ञान की एक कुंजी तुम्हें बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। इस सूत्र में लोकजीवन और सभी तरह के ज्ञान का मूल्य आँक दिया गया है। मनुष्य से सब नीचे है, मनुष्य सबसे बढ़कर है। जो ज्ञान मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं वह दो कौड़ी का है। लोकवार्त्ता-शास्त्र भी यदि वैज्ञानिक के शुष्क कुतूहल के लिए हो तो वह जीवन के लिए अनुपयोगी ही रहता है। मानव के प्रति सहानुभूति और मानव के कल्याण की भावना लोकवार्त्ता-शास्त्र को सरलता प्रदान करती है। लोक-वार्त्ता-शास्त्र की प्रतिष्ठा अन्ततोगत्वा मानव-जीवन के प्रति नई प्रतिष्ठा के भाव की स्वीकृति है। भारत जैसे देश में जहाँ लोकवार्त्ता और लोकजीवन बहुत ही शांतिपूर्ण सहयोग और निर्विरोध आदान प्रदान के द्वारा फूला फला है, लोकवार्त्ता-शास्त्र का बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। कौनसा विश्वास कहाँ से उत्पन्न हुआ, बीज रूप से जन्म लेकर मस्तिष्क और मन का कौन सा भाव वटवृक्ष की तरह चारों खूँटों की भूमि को दबा बैठा है, विकास परम्परा में कौन कहाँ से कहाँ पहुँच गया है, इन सब का विश्लेषण बहुत ही महत्वपूर्ण होगा। क्योंकि वह अनेक प्रकार से एक ही प्रधान तत्व की विजय को सूचित करता है, और वह महान् धार्मिक तत्व मनुष्य का मनुष्य के लिए सहिष्णुता का भाव है। बनोंके निषाद और शबरों के प्रति भी हिन्दुधर्म ने सदा सहिष्णुता की आरती सजाई है........चतुर्दिक जीवन के साथ सहानुभूति और सहिष्णुता का भाव इसकी विशेषता रही है। आज का हिन्दु धर्म भारतवर्ष के महाकान्तार दंडकारण्य की तरह ही विशाल और गम्भीर है जिसमें अपरिमित जीवन के प्रतीक एक दूसरे के साथ गुथ कर किलोल करते रहे हैं।" १

धरती मानव की जननी है। उसकी बांहें अगाध प्रेम और सहानुभूति की प्रतीक हैं। इसी मिट्टी से अन्न उगता है जो मानव को जीवित रखता है। धरती माता की कल्पना, अन्य भारतीय लोकगीतों ही की भाँति ब्रज की भी विशेषता है। मथुरा से तीन मील

१। 'महामहिम लोकजीवन' लोकवार्त्ता, जनवरी १९४५, पृ० ६४–६६

की दूरी पर महोली ग्राम में सुना हुआ गीत, जिसका बोआई के समय मन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है, अत्यन्त स्थानीय वस्तु होते हुए भी सार्व भौमिकता के स्तर तक उभरता दिखाई देता है:

धरती माता ने हरयौ करयौ
गऊ के जाये ने हरयौ करयौ।
जीव जन्त के भाग ने हरयौ करयौ,
महोली खेड़े ने हरयौ करयौ।
गंगा माई ने हरयौ करयौ,
जमुना रानी ने हरयौ करयौ।
धना भगत को हर ते हेत,
बिना बीज उपजायो खेत।
बीज बच्यौ सो सन्तन खायौ,
घर भर आँगन भरयौ।

यह गीत लिखाने वाले वयोवृद्ध किसान ने बताया था कि इस जनपद में बांस का पोरा जिस में से बोआई करते समय बीज डालते जाते हैं, योञा कहलाता है, बीज हमेशा चक्करदार गोलाई में डाला जाता है। एक चक्कर को 'फरा' कहते हैं, और एक चक्कर जिसके अन्तर्गत जलेबी की भाँति कई बड़े छोटे कुंडलाकार चक्कर डाले जाते हैं, कुंड के नाम से पुकारा जाता है। 'कुंड' के अन्तर्गत अन्तिम 'कुंड' के रूप में बीज डालते समय विशेष रूप से इस गीत का महत्व माना जाता है। युग-युग से बैल के कन्धे पर अन्न उगाने का भार है। 'गंगा माई' और 'जमुना रानी' की कृपा भी आवश्यक है, यों प्रतीत होता है कि गीत की अन्तिम पंक्ति से पहले की तीन पंक्तियाँ जिनमें धना भगत का जिक्र किया गया है, बाद में जोड़ दी गई हैं। यह बात याद रखने की है, लोकगीत का रूप बदलता रहता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ में समस्त जनपद में यह 'रसिया' गूंज उठता है।

'आयो जेठ आषाढ़ बन बोय दे रे सिपाहिरा'

कपास के लिये 'बन' शब्द का प्रयोग बहुत पुराने समय की याद दिलाता है। सिपाही से कपास बोने की बात क्यों कही जा रही है? इस प्रश्न का उत्तर कुछ यों दिया जा सकता है कि 'रसिया' की परम्परा उस समय का स्मरण कराती है जब एक प्रकार से प्रत्येक

किसान सिपाही समझा जाता था क्योंकि आक्रमणकारियों से युद्ध करने-के लिए राज्य को किसी भी समय नई सेना की आवश्यकता पड़ सकती थी अतः किसान को इतनी भी आशा नहीं होती थी कि जो फसल वह आज अपने हाथों से बो रहा है, पकने पर वह उसे काट भी सकेगा।

जैसे आक्रमणकारी किसी देश पर धावा बोल देते हैं, ऐसे ही किसान की सम्पत्ति पर टिड्डीदल आक्रमण करता है, और उस समय यदि पति परदेश में हो तो पत्नी बेचारी क्या कर सकती है ? इसी विपत्ति का एक सजीव चित्र देखिए :—

टीड़ी खाय गई बन कौ पत्ता, मेरौ बलम गयौ कलकत्ता।
टीड़ी आई जोर जुल्म सो, घर में रह्यो न लत्ता ॥
भैया मेर बन्द मेरो रोकन लागे, नेंक न छोड़्यो रस्ता। टीड़ी आई,
लोग लुगाई देखन लागे, ऊपर चढ़ कैं अट्टा, टीड़ी आई।
रोटी पानी कछू न कीनी, भूल गई सब रस्ता। टीड़ी आई····

कलकत्ते के जिक्र से इतना तो प्रत्यक्ष है कि इस गीत की आयु एक आध शताब्दी से अधिक नहीं हो सकती। यह भी संभव है कि कलकत्ते का जिक्र पुराने गीत पर पैबन्द के रूप में लगा दिया गया हो, जैसा कि मौखिक परम्परा की सामग्री में और भी अनेक स्थानों पर देखने में आया है। यह एक नारी की व्यथा का चित्र नहीं, यहाँ समस्त जनपद का कष्ट अभिव्यक्त हुआ है। नारी टिड्डीदल से कपास का खेत बचाने की चेष्टा करती है परन्तु बिरादरी के अन्य लोग उसका रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। स्त्रियां अपने अपने कोठे पर चढ़ कर इस मृत्यु के बादल का निरीक्षण कर रही हैं। टिड्डीदल का जोर जुल्म रोकने का उपाय किसी की समझ में नहीं आता। इस वेदना में एक सांकेतिक वेदना है जो नायिका की पुकार को समूचे वर्ग की पुकार का रूप दे देती है।

रूस की एक आख्यायिका है कि जब भगवान ने उपहार बांटे तो उन्होंने यूक्रेन निवासियों को बिल्कुल भुला दिया और अन्त में उन्होंने यूक्रेन-निवासियों को संगीत का उपहार देकर खुश किया। इसीलिये कहा जाता है कि यूक्रेनी लोकगीत जर्मन लोकगीतों से कहीं अधिक गहरे और रूसी गीतों से कहीं अधिक मधुर होते हैं, यदि

ासी चाहे तो इसी से मिलती जुलती आख्यायिका की सृष्टिक
क्योंकि ब्रज के लोक गीतों में दोनों गुण यथेष्ट मात्रा में नज़
इनमें भावों की गहराई भी है और संगीत का माधुर्य भी
•भूलत नागन डस गई' यह एक स्त्री-गीत की टेक है जिसे
'भूले की रस्सियों को हवा में उछालते हुए मधुर लय
रती हैं।

गूलरिया भक भालरी, गूलर रहे गदकार,
भूला रे भूलत नागन डस गई।
डस गई उंगली के बीच,
भूला रे भूलत नागन डस गई।
ससुर ते कहिओ मोरी बीनती,
सास ते सात सलाम।
भूला रे भूलत नागन डस गई।
वा हर हारे ते नियों कहिओ,
तेरी धन खाई काले नाग।
भूला रे भूलत नागन डस गई।
हर तौ छोड़यौ खेत में,
म्वांई ते खाई आ पछार।
भूला रे भूलत नागन डस गई।
कां लाऊं तो को बायगी,
कां लाऊँ वैद हकीम।
भूला रे भूलत नागन डस गई,
दिल्ली ते लाऊं तो को बायगी,
मथुरा ते लाऊं वैद हकीम,
भूला रे भूलत नागन डस गई।

गीत का मर्म स्थल वही है जहाँ किसान को यह समाचा
है कि गूलर के पेड़ पर भूला भूलती उसकी पत्नी को नागिन
वाया है और वह हल छोड़ कर उसकी चिकित्सा की चिन्ता
और दिल्ली तक हो आता है। यह नहीं बताया गया कि य
ी नायिका बच गई या प्राण छोड़ गई। यह कल्पना की
है कि यह कोई साधारण स्त्री नहीं होगी और पहली ब

ससुराल आने पर उसके हृदय से भी यह गीत फूट निकला होगा

रवादार ककना को मेरे पहरे ?
बेर बेर काकी, बेर बेर दादी को मेरे टेरे ?

ग्रामों में ऐसी कल्पनाशील युवतियाँ अब भी मिल जाँयगी जो पायल का यह महत्व समझती हों कि इसकी झंकार सुन कर ससुराल में सास स्वयं द्वारा तक चली जायगी और कहेगी—आगई, बहू और इस प्रकार बहू को बाहर से पति की काकी या दादी को आवाज़ दे कर अपने आगमन की सूचना देने का कष्ट नहीं करना पड़ेगा।

इसी सजीव कल्पना के जादू से घर के कच्चे कोठे में 'रंगली रावटी' और हलवाहे धाने में 'आलीजा' का स्वप्न देखने की चेष्टा की जाती है। यह भी समझ लिया जाता है कि चाँदनी रात के समय भी जब कि कमखर्ची के विचार से साधारण तेल का दिया भी बुझा दिया जाता है, 'तेल फुलेल' का दीया जल रहा है:

चन्दा की निरमल रात, एजी कोई आलीजा बुलावें
रंगली रावटी जी महाराज
मैं कैसे आऊं महाराज एजी कोई आड़ी तो सोवै त्यारी मायलीजी महारा
जरि रह्यौ तेल फुलेल एजी कोई सबरी रैन दिबला बले जी महाराज
चलीऊं बाबल के देस एजी कोई घड़ा तो भरा दूऊं तेल फुलेल
को जी महाराज।

यह तो प्रत्यक्ष है कि इस कल्पना का मध्यकालीन जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह भी कहा जा सकता है कि लोकगीत केवल निम्न वर्ग ही की बपौती नहीं मध्यवर्ग की भी प्रिय वस्तु है क्योंकि यहां उनके जीवन के सजीव चित्र भी सुरक्षित हैं। 'विजयरानी का गीत' मध्यवर्ग के जीवन का प्रतीक है:

चार बुर्ज चारों ओर बीच अटरिया ए विजैरानी ईंट की जी।
हात दिबल सिर सौर धमकि अटरिया ए बिजेरानी चढ़ गई जी॥
खोलो राजा बजर केवार भीजे ए राजा त्यारी गोरड़ी जी।
नाएं खोलू बजर केवार पराए पुरख ते ए डावर नैनी चौं हँसी जी॥
आई धन तन मन मार मरख कें बैठी ए बिजैरानी देहरी जी।
लौहरी ननद बूझै बात आज अनमनी ए बिजैरानी चौं भई जी॥

म्यारो भइग्रा असल गँवार कंदर न जाना ए बिजैरानी के जीग्र की जी
करौ भावाँ सोलेहुँ सिंगार पटिया तो पारौं चोखे मोम की जी।
हाथ दिबल सिर सौर धमकि अटरिया ए बिजैरानी चढ़ गई जी ॥
खोलो भइया बजर केवार बाहर भीजैं ए बिरन क म्यारी गोरड़ी जी।
भीजै भीजँन चौं न देउ पराए पुरख तें ए बिजैरानी चौं हँसी जी ॥
जाको भइया हँसनौ सुभाव हँसिबौ तो जायगो ए बिजैरानी ढक लई जी।
रोई धन हीअरा हिलोर आँसू तो पोंछे ए भँवर सूए पेचल जी ॥
जीऔ लाली म्यारो वीर भँवर मिलाऔ ए ननद रानी तैं कियो जी।
दऊँगी लाली दक्खनौ चीर गिरी ए छुहारो ए ननद म्यारे मुख भरूँ जी ॥

गीत की भाषा में एक स्थान पर 'डाबरनैनी' प्रयोग मिलता है जिस का अर्थ है 'बड़ी बड़ी आँखों वाली'। एक सज्जन के कथनानुसार 'डाबरा' शब्द का अर्थ होता है 'बड़ा दोना' और डाबर नैनी का 'डाबर' शब्द इसी 'डबरा' का दूसरा रूप है। कुछ भी हो 'डाबर नैनी' इस जनपद के लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। यदि विजयरानी 'डाबर नैनी' अर्थात् लोक-परम्परा के अनुसार असाधारण सुन्दरी न होती तो उसके पति ने विरादरी के किसी अन्य पुरुष से हँसते देख कर उसके चरित्र पर सन्देह न किया होता। इसी मनोमालिन्य के कारण वह विजयरानी को हाथ में दिया थामें आते देख कर 'बजेर केवार' बन्द कर लेता है। भला हो विजयरानी की ननद का जिसने अपने भैया को समझाया कि विजयरानी निर्दोष है क्योंकि हँसकर बोलना डाबरनैनी के स्वभाव में सम्मिलित है। झट 'बजर-केवार' खोले जाते हैं और विजयरानी अपने पति से मिल सकती है और ननद को पहनने के लिए दक्खिण का चीर और खाने के लिए गिरी छुआरे पुरस्कार-स्वरूप देने की बात सोच रही है।

सामाजिक परिस्थितियों की पड़ताल में लोकगीत पग-पग पर हमारा साथ देते हैं। अब एक और प्रसङ्ग लीजिये जो उत्तर-भारत के अनेक जनपदों के लोकगीतों में मिलता है। पति एक साधारण 'बटाऊ' या बटोही के वेष में अपने ग्राम के समीप अपनी पत्नी के सत की परीक्षा लेने का यत्न करता है—

बर के गोदे झूलती, रे बटाऊ ढोला, सात सहेलिन बीच।
सातौन के मुख ऊजरे, मेरी डाबर नैनी, म्यारी चौं रे मैलौ भेस ॥

सातौन के ढोला घर रहे, रे बटाऊ ढोला, हमरे गये परदेस
संग चलौ तौ ले चलूँ, मेरो डाबर नैना, चलो न हमारे साथ
सोने सौं कर देउँ पीयरी, मेरी डाबर नैनी, चाँदी सों सेत सुपेत।
आगि लगाऊँ तेरे पीयरी, रे बटाऊ ढोला, औंठन बड़ौ रे अँगार।
डाढ़ी तो जारूँ तेरे बाप की, रे बटाऊ ढोला, जरिजईयौ सेत सुपेत।
जिन पीयन के रे हम गोरड़ी, रे बटाऊ ढोला, तुमसे भरें कहार॥
एक बटाऊ ढोला नियों कहे, मेरी सासुल रानी, चलो न हमारे साथ।
कैसे तो विनके कापड़े, मेरी बहुअल रानी, कैसी सूरत उनहार॥
धौरे तो बिन के कापड़े, मेरी सासुल रानी, तौहरे दिवर उनहार।
वेही तुमारे सायबा, मेरी बहुअल रानी, गई चौं न बिन के साथ॥
भाजूँ तौ पहुँचूँ नहीं, मेरी सासुल रानी, हेला देते आवे लाज॥

इस गीत में 'डाबर नैनी' अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग प्रतीत होता है। 'डाबर' उस नीची जमीन को कहते हैं जहाँ पानी ठहरा रहे। तुलसीदास ने एक स्थान पर लिखा है 'भूमि परत भा डाबर पानी, जिम जीवहि माया लपटानी।' किन्तु डाबर नैनी या डाबर जैसी बड़ी बड़ी आंखों वाली सुन्दरी का प्रयोग एक नये चित्र की सृष्टि करता है, और हमें पीयरे लूई की 'अफ्रोडाइट' याद आती है जिसमें हिन्दुस्तानी गुलाम कन्या जलंतशाचन्द्रा क्राइसिस की सुन्दरता का बखान करते हुए कहती है: 'तेरे केश मधुमक्खियों के झुण्ड के समान हैं जो किसी बड़े वृक्ष की टहनियों से उलझ गई हों। और तेरी आँखें ऐसी गहरी झीलें हैं जिन पर बेदमुश्क की टहनियाँ झुकी हुई हों।' 'डाबर नैनी' कहकर ब्रज के लोक-मानस ने इस से मिलती जुलती छवि चित्रित की है। जिन्होंने अजन्ता के चित्र देखे हैं वे कह सकते हैं कि भित्तु चित्रकारों ने डाबर नैनी नारी ही को पग पग पर उपस्थित किया है। डाबर नैनी नारियों की आज भी ब्रज के ग्रामों में कुछ कमी नहीं। बड़ी बड़ी आँखें, जिन में आद्र ता की यथेष्ट मात्रा उपस्थित हो, लोक कवि के लिए आज भी प्रेरणा की वस्तु हैं।

ब्रज की 'डाबर नैनी' की बहिनें गढ़वाल में भी मिलेंगी जिन के सत की परीक्षा के गीत बड़े अनुराग से गाये जाते हैं। रामी का गीत इस तरह आरम्भ होता है।

बाट गोड़ाई कख तेरो गाऊ
बोल बौराणि क्या तेरो नांऊ
घाम दोफरा अब होई गैगे,
एकली नारी तू खेत रैंगे।
धुर जेठाणा तेरा कख छीन
तौंकी जनानी कख गई गीन

अर्थात हे रास्ते के खेत में निराई करने वाली, तेरा ग्राम कहां है। बोल, बहू रानी तेरा क्या नाम है। अब दोपहर का घाम हो गया। तू अकेली नारी खेत में रह गई। तेरे देवर और जेठ कहां है। उनकी पत्नियां कहां चली गई।

गढ़वाली गीत काफी लम्बा है। इसी का एक रूपान्तर कुमायूँ में भी प्रचलित है, जिस में रानी के स्थान पर रूप का परिचय प्राप्त होता है, कमायूंनी गीत का आरम्भ देखिये:—

बाटा में की सेरी रुपा वै यकली त्रय धान गोडे
यकली मैं हुँलो बटवा दुकली कै लौंलो हो
कथ गया त्यरा रुपा द्यौराणी ज्यठाणी वै
कथ गया त्यरा द्यवर ज्यठाणा हो
कथ कई तेरी रुपा वै ननद पौणी हो
कां कई त्यरा रुपा वै सासु सौरा हो

अर्थात् रास्ते के निकट के खेत मे, हे रुपा, तू क्यों अकेली धान निराती है। हे पथिक, मै तो अकेली ही हूँ। अपने साथ किसे लाऊं। रूपा, तेरी देवरानी जेठानी कहाँ गई, तेरे देवर जेठ कहाँ गये ? रूपा, तेरी ननद और पौणी (पति की बड़ी बहिन) कहाँ गई ? रूपा, तेरे सास ससुर कहां गये ?

यह गीत भी लम्बा है। इसी श्रेणी के एक पंजाबी लोकगीत का आरम्भ इस प्रकार हुआ है :—

खूह ते पानी भेरंदिए घुट कु पानी पिया
आपणा ते भरिया वारी न दियाँ लज्ज पई भर पी
लज्ज तेरी नूं घुंघरु गोरिए हथ्थ लावाँ भड़ जा
हेठ दा घोड़ा मर जाय काठी रह जाय हथ्थ

घर जादियाँ नूँ पिया मार व बीवा पै जाँय सिपाहियाँ दे हत्थ
सिर दी भज्जरी भज्ज पचे गोरिए इंजू रह जाय हत्थ
घर जाँदियाँ नूँ माँ मारे गोरिए पै जाँय साडे वस्स

अर्थात् हे कूँए पर पानी भरने वाली, एक घूँट पानी मुझे भी पिला' "अपना भरा हुआ पानी मैं नहीं दूँगी। लेजुर पड़ी है। स्वयं पानी भरो और पी लो'''' तेरी लेजुर को घुँघरू लगे हैं। मेरे हाथ लगाने से ये घुँघरू गिर जाँयगे ' भगवान् करे तेरे नीचे का घोड़ा मर जाय, और इसकी काठी तेरे हाथ में रह जाय" 'भगवान करे घर पहुँचने पर तेरा पिता तुझे मारे और तू सिपाहियों के काबू आजाय' ' 'तेरे सिर की मटकी टूट जाय, हे गोरी, और इंडरी तेरे हाथ में रह जाय। घर पहुँचने पर तुझे तेरी माँ मारे और तू मेरे काबू आ जाय' ' "

इस गीत के अगले भाग का अनुवाद इस प्रकार है—

घर आने पर माँ पूछती—साँझ होगई, तू कहाँ से आई है।
माँ, एक लम्बे कद का युवक था, वह मुझ से विवाद करने लगा।
तेरे पिता का जामाता, हे पुत्री, और तेरे सिर का सरदार।
सहेलियों से मिलकर पूछती है, रूठे प्रियतम को कैसे मनाऊँ।
हाथ में दूध का कटोरा लो और सोये हुए प्रियतम को जगाओ।
तुम सोये हो या जागते हो या बाजार चले गये हो।
न मैं सोता हूँ न जागता, न बाजार गया हूँ, तुम कुयें के बोल सुनाओ।
छोटी आयु में भूल हो गई, प्रियतम, अब तो मन से भुला दो।
शाबाश तेरी बुद्धि को, हे गोरी, धन्य है तुझे जन्म देने वाली माँ।
तेरे लिए मैं मनौतियाँ माँगती हूँ, प्रियतम, मेरे लिए तेरी माता।

ब्रज के गीत और पञ्जाबी गीत की तुलना करने से पहले यह अच्छा होगा कि गढ़वाली और कुमायूँनी गीतों के पूरे अनुवाद हमारे सम्मुख आ जाँय—

रास्ते के खेत में निराई करने वाली, तेरा ग्राम कहाँ है।
बोल, बहू रानी, तेरा क्या नाम है।
अब दोपहर का घाम हो गया।
तू अकेली नारी खेत में रह गई।

तेरे देवर और जेठ कहाँ हैं ?
उनकी पत्नियाँ कहाँ चली गई ?
आज तेरा स्वामी कहाँ है ?
सास ससुर क्या काम कर रहे हैं ?
बोलो तुम किस अनाज की निराई कर रही हो ?
बहू रानी, अपनी जुबान खोलो ।
बटोही जोगी, तुम यह मुझ से क्यों पूछते हो
तुम किसको पूछते हो, तुम्हें क्या चाहिए
मैं राव की बेटी हूँ, मेरा नाम है रामी ।
सेठों की बहू हूँ, मेरा गांव है पाली ।
मेरे जेठ कचहरी गये हैं
देवर भैंसें चरा रहे हैं
देवरानी मायके गई है
जेठानी को आज ज्वर आ गया
मेरी सास घर पर रह गई
अब स्वामी की याद आने लगी
आंखों से पानी बह निकला
मेरा स्वामी मुझे घर पर छोड़ गया
मुझ पर वह निर्दयी हो गया;
उन के लिए घर में कहाँ स्थान
जिन के लिए स्वामी का विच्छेद हो गया
जाओ, जोगी, अपना रास्ता लो
मेरे शरीर में आग न लगाओ
वह रोने बैठ गई, स्वामी याद आने लगे
हाथ की कुटली* छूट गई
सावन के मेघ की तरह हृदय भर आया
हे स्वामी, मेरा तो गला, रुंधा जा रहा है
चलो, बहू रानी, छाया में बैठ जाँय
अपना दुःख मुझे सुना
अब दोपहर का घाम हो गया

* निराई करने का औजार ।

समस्त खेत में छाया ढल कर चली गई
नारी, तू क्यों इस प्रकार रोती है
क्यों व्यर्थ अपना यौवन खोती है
एक बोल तो बोल दिया, दूसरा न बोलना
पापी जोगी, जुबान न खोल
तेरे साथ तेरी बहिनें बैठेंगी
पतिव्रता नारी तुझे चेतावनी देती है
अखंड विधवा की भांति तू दुःख सहे
आ जोगी, मैं तुझे शाप दे रही हूँ
राजा की बहू रानी, गाली न दे
मैंने तेरा क्या खाया है कि मुझे शाप दे रही
रामी, मुझे गांव का रास्ता बतायो
मन के क्रोध को थाम लो
मुझे बहुत भूख लगी है
सयाना रावत कहाँ रहता है
रमता जोगी रास्ते पर चला गया
रामी के मन में क्रोध आ गया
हे स्वामी, पिछली रात तुम स्वप्न में आये
तुम मेरी अवस्था देख कर चले गये
आज के दिन मेरे पास
खास मेरे डेरे पर आने को कहा था
क्या मेरा स्वप्न झूठा हो गया
क्या मेरा स्वामी परदेस में ही रह गया
मुझे तो कहा था कि मैं घर आऊंगा
मेरे स्वामी ने कहा था—मैं दौड़ कर आऊंगा
गांव में जाकर जोगी ने अलख जगाई
माई, मुझे भिक्षा दो
माई, मैं कल रात से भूखा हूँ
मेरे लिए सूखा सीधा (बिना पका हुआ अन्न
मुझे भात और साग देना
नहीं तो तुम्हें पाप लगेगा

बुढ़िया माई को दया आ गई
रामी बहू को बुलाने लगी
बहू, झटपट आओ
डेरा पर एक साधू भूखा है
हे मेरे मन, आज तू क्या क्या बोल रहा है
यह जोगी आज क्या क्या बोल रहा है
हे सास, मैं इस की रोटी नहीं पकाऊंगी
इसने मुझे खोटी खोटी गाली दी है
हे निर्लज्ज जोगी, तुझे सरम नहीं
तू हमारे बीच कैसे आ गया
माँ, अपनी बहू को समझाओ
तुम जा कर मेरे लिए भोजन बनाओ
जा, मेरी बहू, भात पकाओ
साधू को देख कर हाथ जोड़ो
साधुओं का तो शिव का भेस है
जिनका मन विरक्त हो चुका है
रामी रसीले खाने पकाने लगी
उसे अपने स्वामी की याद आने लगी
गौरा माई तुम कृपा करो
नल दमयन्ती की तरह मुझे पति मिले
मुझ पर अपनी कृपा करो
माता, मेरे मन का दुःख हरो।
साधु घास में बैठा रह गया
रामी की सास को दया आ गई
अब साधु के समीप माता आ गई
चलो, साधु, भोजन तैयार हो गया।
मालू के पत्ते पर भोजन रखा है
तुम्हारे भात को मैं हाथ नहीं लगाऊँगा
रामी के स्वामी की थाली माँज लो
भात और रोटी मैं आज उसी में खाऊँगा।
स्वामी की थाली में मैं किसी को भोजन नहीं दे सकती
उसमें भात और रोटी क्यों दूँ

तुम खाना है तो खाले
जोगी, तुम नहीं खाते तो अपना रास्ता लो
बहुत से जोगी झोली लेकर
दिनभर फिरते रहते हैं और कोई उन्हें भिक्षा नहीं दे
पतिव्रता नारी का सत तेजस्वी होता है
डगमग डगमग, जोगी का शरीर काँपता है
जोगी माता के चरणों पर गिर गया
रामी बहू खूब देखती रह गई
हे माता, मैं तेरा पुत्र हूँ
अन्य राज्य से घर आया हूँ
मैं पलटन में भरती हो गया
चीन जापान तक जा पहुँचा
मैंने नौ वर्ष नौकरी की
मेरी नौ रुपये पेनसन हो गई
पुत्र से माता भेंट करने लगी
रामी का मन दुबधा में पड़ गया
अनुराग का सागर उमड़ गया
वह जोगी के शरीर की भसम धोने लगी
पतिव्रता नारी चकित रह गई
वह स्वामी के चरणों पर झुक गई
रामी को वर्षों से दर्शन अभिलाषा लगी थी
आँखों का रुदन वह थाम नहीं सकती
मेरे स्वामी, तुम निर्मोही बने रहे
घर छोड़ परदेश चले गए।

रूपा का गीत

'रास्ते के निकट के खेत में, हे रूपा, तू क्यों अकेले निर
हे पथिक, मैं तो अकेली हूँ, अपने साथ किस को लाऊँ
रूपा, तेरी देवरानी और जेठानी कहाँ गई
तेरे देवर और जेठ कहाँ गये
रूपा, तेरी और पौणी (पति की बड़ी बहन) कहाँ गई
रूपा, तेरे सास ससुर कहाँ गए

हे पथिक, मेरी जेठानी चूल्हे की रसिक है
हे पथिक, मेरी देवरानी पशुशाला की धम्मियारी है
हे पथिक, मेरा जेठ सभा में बैठा है
हे पथिक, मेरा देवर भैंसों का ग्वाला है
हे पथिक, मेरी ननद और पौती ससुराल गई हैं
मेरे सास ससुर वृद्ध हो गए हैं
हे रूपा, रास्ते के निकट के खेत में दोपहर की घाम में कौन से
धान निराती है
हे पथिक, मैं साल और जमोल (धानों की जातियाँ) निराती हूँ
हे रूपा, तेरा प्रियतम कहाँ चला गया
हे पथिक, छोटी आयु में वह मुझ से ब्याह करके चला गया
हे पथिक, उस दिन से वह पलट कर नहीं आया
उसके लगाये सिलिंग का वृक्ष फूलों से लद गया
हे पथिक, मेरे भर जोबन के दिन हैं
उसने उस दिन से मुझे पलट कर नहीं देखा
हे रूपा, मैं ही तेरा प्रियतम हूँ
हे पथिक, तू अपनी माँ और बहिन का प्रियतम होगा
एक बोल तो बोल दिया अब दूसरा न बोलना
दूसरा बोल बोलेगा तो मैं तुझे बहिन की गाली दूंगी
चल, चल, हे रूपा, सिलिंग की छाया में, ओ रौतेली रूपा
सिलिंग की छाया, पीपल की हवा
मेरे प्रियतम के पैरों में नली वाला जूता था
उसकी जंघा में दुडी (एक प्रकार का वस्त्र) का पाजामा था
उस के बदन पर गंगाजल के रंगवाला वस्त्र था और सिर
पर ध्वतवै (एक प्रकार के वस्त्र की पगड़ी)
हे पथिक, उस की कमर में रेशमी फेंटा था और हाथ में लोहे
के मुट्ठे वाली
हे रूपा, नली वाला फट गया
दुडी वस्त्र का पजामा भी फट गया
हे रूपा यदि मैं तेरा प्रियतम होऊंगा तो तुझे पालकी में ले
जाऊंगा
यदि कोई सवार हुआ तो तेरे हल जोतूंगा ।

चारों गीतों की तुलना करने से पहले फिर से ब्रज के गीत की मोटी-मोटी बातों का अवलोकन उचित होगा। गीत का आरम्भ यों होता है कि बट वृक्ष की शाखा पर झूला पड़ा है। झूले पर झूलती हुई एक कोई युवती कह उठती है—हे बटोही ढोला, मैं म्लान, सहेलियों के बीच झूला झूल रही हूँ। बटोही कहता है—सहेलियों के मुख तो उभरे हैं। तुम्हारा मैला भेस क्यों है? मेरे साथ चलो तो ले चलूँ। ओ बड़े-बड़े नयनों वाली, मेरे साथ चलो ना। मैं तुझे स्वर्ण से पीली कर दूँगा, और चाँदी से श्वेत। वह कहती है—तेरे पीले रङ्ग को आग, लगाऊँ और तेरा श्वेत रङ्ग भी जल जाय। तेरे पिता की दाढ़ी झारूँ ओ बटोही, तेरी मूँछों पर अँगार रखूँ। मैं जिस पिया की गोरी हूँ, उसके यहाँ तो तेरे जैसे लोग पानी भरते हैं। घर पहुँच कर वह अपना सास से कहती है—सासुल रानी, एक बटोही मिला था, जो कहता था कि मेरे साथ चली चलो। सास पूछती है—उसके वस्त्र कैसे थे और उसकी उनहार कैसी थी? बहू कहती है—उसके श्वेत वस्त्र थे। छोटे देवर जैसी उनहार। कह उठती है—वही तो तुम्हारा प्रियतम था। तू उसके साथ क्यों नहीं गई? वह निराश होकर उत्तर देती है—, भागूँ तो भाग नहीं सकती, पुकारते हुए मुझे लाज आती है।

गढ़वाली गीत की शैली वर्णनात्मक अधिक है। कथा-वस्तु के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कथन है कि यह एक सच्ची घटना से ली गई है। कहते हैं गत महायुद्ध सन् १९१४ से लौट कर एक सिपाही ने सचमुच इसी प्रकार अपनी पत्नी के सत की परीक्षा की थी। यह भी हो सकता है कि यह गीत गत महायुद्ध से कहीं अधिक पुरातन हो और पुराने गीत में कुछ परिवृद्धि करके इसे अर्वाचीन रूप देने की चेष्टा की गई हो। इस गीत की तुलना उस किले से की जा सकती है जिसका निर्माण किसी पुरातन किले के भग्नावशेष पर हुआ हो। नारी के सत की परीक्षा का कथन गत महायुद्ध से कहीं अधिक पुराना है। गीत की गति तीव्र नहीं। यह बैलगाड़ी की गति से धीरे-धीरे पहाड़ी चित्रपट पर उभरती है। कुमायूँनी गीत भी आरम्भ में गढ़वाली गीत की ध्वनि लिए हुए नजर आता है। यद्यपि इसका कथानक खेत ही में शेष हो जाता है। इसका अन्त अत्यन्त आकस्मिक है। जब रूपा का पति कह कर उठता है कि यदि मैं तेरा प्रियतम होऊँगा तो तुझे पालकी में बिठाकर ले जाऊँगा, और यदि कोई लबार

होऊँगा, तो तेरे यहाँ हल जोतूँगा। तो हम सोचते रह जाते हैं कि कि आगे क्या हुआ होगा। पंजाबी गीत की शैली दूसरी है और यह काफी हद तक ब्रज के गीत से अधिक पूर्ण है। इन दोनों के गीतों की शैली चित्रकला की उस शैली के समीप है जिसमें कलाकार तूलिका के गिने चुने शीघ्रगामी स्पर्शों से चित्र उपस्थित कर देता है।

चारों गीतों की तुलना से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि पुरातन काल से विभिन्न जनपदों की लोक-कला में अनेक आदान-प्रदान होते आये हैं। एक जनपद की कन्या दूसरे जनपद में व्याही जाती थी, या जब एक जनपद से सगे-सम्बन्धी पास पड़ौस के जनपद मे पहुँचते होंगे तो वे अवश्य लोक-कला की कोई न कोई वस्तु अपने साथ लेकर जाते होंगे। इनमे से कुछ न कुछ वहाँ छोड़ आते होंगे और कुछ न कुछ वस्तु वहाँ की लोक-कला से अपने साथ अवश्य लेकर आते होंगे। तीर्थ-यात्राओं के द्वारा भी विभिन्न जनपदों की जनता में अवश्य लोक-कला के आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता होगा।

जैसा कि आरनल्ड बाके ने एक स्थान पर स्पष्ट किया है यूरोप के देशों में भी यह देखा गया है कि एक जनपद की लोक-कला किसी न किसी रूप में पास पड़ौस के जनपदों को पार करती हुई सुदूर जनपदों तक जा पहुँची है। उन्होंने इस कलात्मक आदान प्रदान के कई प्रकार उपस्थित किए हैं। कई बार केवल किसी विशेष गीत के स्वर ही दूसरे जनपद में जा पहुँचे और वहाँ इन स्वरों ने लोक कवि की सहायता से शब्दों का नया चोला बदला। कई बार स्वर और शब्द दोनों ही दूसरे जनपद की बपौती में सम्मलित हो गए। यद्यपि कभी-कभी स्वर और शब्द दोनों या किसी एक दृष्टि से इसमे कुछ परिवर्तन भी हुए। कई बार केवल शब्दों ने ही यात्रा की, और दूसरी भाषा में इनका अनुवाद हो गया, और गीत को एक दम नये स्वर प्राप्त हुए। इस प्रकार यह आदान प्रदान की क्रिया विभिन्न जनपदों की लोक-प्रतिभा की भरपूर समृद्धि का कारण बनी। लोकगीत को इस आदान-प्रदान पर सदैव गर्व रहेगा। हमारे देश के विभिन्न जनपदों के लोकगीत के सम्बन्ध में भी यह बात बहुत हद तक सत्य है।

ब्रज के गीतों में सावन के गीत बहुत लोक प्रिय हैं, और सावन के गीतों में 'मोरा' गीत की स्वरलहरी हमारा मन मोह लेती है:
भर भादों की मोरा रैन अँधेर राजा की रानी पानी नीकरीं जी
काहे की गगरी रे मोरा काहे को लेज, काहे जड़ाऊ धन ईंडरी जी
सोने की गगरी रे मोरा रेसम लेज, रतन जड़ाऊ धन की ईंडरी जी
आगें आगें मोरा चाले पीछें पनिहारि, जी पीछें राजा जी के पहरुआ जी
एक बन नाँघौ, दूज बनों नाँघि, तीजें बन पहुँची है जाइकें जी
जोई भरै मोरा देइ लुढ़काइ, पंख पसारि मोरा जल पीवै जी
परेरे सरकि जा मोरा भरन दै नीर, नो घर सास रिसाइगी जी
त्यारी तो सासुल धनियाँ हमरी है माय, आज बसेरो हरिअल बाग में जी
परे रे सरक जा मोर, भरन दै नीर, औ घर ननद रिसाइगी जी
त्यारी नो ननदुल धनियां हमरी है भैन, आज बसेरो हरिअल बाग में जी
उठि उठि सासुल मेरी गगरी उतारि, ना तो फोड़ूँ चौरे चौक में जी
किन नौ प बहुअल बोले हैं बोल, कौनें दीने तोइ तांइने जी
ना काऊ सासुल मोमे बोलें है बोल, ना काऊ दीने हैं तांइने जी
बनको मोरा सासुल बनही में रहत है, बाकी कौहोक मेरे मन बसीजी
उठि उठि बेटा मेरे मोर पछार, तेरी धन रीझी बन के मोरला जी
मोइ देउ अम्मा मेरी पांचौं हथियार, मोई देउ पांचौं कापड़े जी
एक बन नांघो राजा दूजों बन नांघि, तीजे बन मोरा पछारिए जी
मारि–मूरि राजा लाए लटकाइ, लाइ धरौ है धन की देहरी जी
उठि उठि धनियाँ मेरी हरदी जो पीस, मोरा छोंकि बनाइए जी
हरदी के पीसे राजा जलदी न होइ, मोरा के छोंकें मेरौ जी जरै जी
बन कौ तौ मोरा राजा बन ही में रहत है, बाकी कौहोक मेरे मन बसी जी
जो तुम्हें धनियाँ मेरी मोरा की साध, सोने कौ मोर गढ़ाइए जी
सोने कौ मोरा राजा चोरी में जाइ, बाकी कौहोक, मेरे मन बसी जी
जो तुम्हें धानियाँ मेरी मोरा की साध, काठ कौ मोरा बनाइए जी,
काठ कौ मोरा रे राजा जरि-बरि जाइ, बाकी कौहोक मेरे मन बसी जी,
जो तुम्हे धनियाँ मेरी मोरा की साध, छाती पै मोर गुदाइए जी,
छाती कौ मोरा रे राजा बोलै न बोल, बाकी कौहोक मेरे मन बसी जी।

ठीक यही प्रसंग एक गुजराती लोकगीत में भी प्रस्तुत किया गया है जो श्री जवेरचन्द मेघानी के गीत-संग्रह 'रढियाली रत' में मौजूद है। एक-दो राजस्थानी और पंजाबी गीतों में भी इस प्रसङ्ग

की प्रतिध्वनि सुनाई देती है यहाँ मयूर उसी प्रकार एक आदर्श प्रेमी का प्रतीक है जैसी यूनानी लोकवार्ता में हंस को उपस्थित किया गया है। साधारण गृहस्थी में राजा और रानी की कल्पना इस बात की दलील है कि ब्रज का यह गीत मध्यकालीन रचना है, जबकि राजा रानी साधारण जनता की आन्तरिक आकांक्षा के क्षितिज पर सदैव उभरते चले जाते थे।

ब्रज के जन मानस तथा 'मोरा' जैसे उच्चकोटि के गीत के सम्बन्ध में श्री सत्येन्द्र लिखते हैं :

जन-मानस और मुनि-मानस का संघर्ष आज का नहीं है। मुनि ने सदा यह दावा किया है कि उसकी रचना में शाश्वत प्रकट होता है, और उसने जहाँ तक हो सका है जन और उसकी कृति की अवहेलना की है, उसे हेय बतलाया है। उसने अपनी सृष्टि में ब्रह्मा की सृष्टि से भी विशेषतायें पाईं और दिखाईं। उसे अपनी रचना में जीवन-सन्देश मिला, श्रेय और प्रेय, सत्य, शिव और सुन्दर, दिव्य अनुभूति, अलौकिक अभिव्यञ्जना मिली है। इस वर्ग के गर्व ने विश्व की जितनी क्षति की है, क्या इस पर कभी विचार किया गया है। निश्चय ही इसने शास्त्रों के सूक्ष्म विधान कर अपनी प्रशंसा अपने आप करने का कुशल ढंग स्थापित किया, किन्तु यह सदा परास्त होता रहा है। जन-मानस ने कभी कोई दावा नहीं किया। उसकी सुश्री ही ऐसी अभिनव रही है कि मुनि के कला-कौशल का गर्व स्वतः चूर्ण हो गया है।

शताब्दियों पूर्व वेदों की रचना हुई। उन्हें जिस वर्ग ने निर्माण किया, उसी वर्ग के अन्य व्यक्तियों ने उसे अलौकिक और अपौरुषेय बतलाया। ऐसा उनका अपना आतङ्क और प्रभाव जमाने के लिये किया जाता रहा। यह अधिक काल तक न रह सका। लौकिक काव्य की भी उद्भावना हुई और आदि-कवि वाल्मीकि ने रामायण रच डाली, वह उनकी रचना मुल-मानस का प्रतिफल न था, नहीं तो उसे लौकिक न कहा जाता। किन्तु मुनि-मानस एक और धाँधली करता रहा है। जन-मानस की सृष्टियों को वह अपनी बनाता रहा है। वाल्मीकि और उनके वर्ग की रचनायें फिर मुनि-मानस की वस्तुयें हो गईं। जन का जो सुन्दर था उसे अपना लिया गया। वह परिमार्जन और संस्कार करना जानता है। लोक-मानस से सामग्री, लेकर उन पर केवल कलई

मुनि-मानस कर देता है। मुनि को विद्वान कहा जा सकता है, तत्वदर्शी कहा जा सकता है, किन्तु उसके पास जो कला है वह अपनी नहीं। कला के लिये उर्वर भूमि की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता और उन्मुक्ति ही उर्वरता है..............

"जन-मानस निर्विकार होता है। उसके पास न कोई आदर्श है, न शास्त्र और नियम, उसकी स्फूर्ति में व्यक्ति और व्यक्तित्व का कोई अर्थ नहीं। वह भी विचार करता है। उसकी धृति ज्ञान और विज्ञान की धृति नहीं। शुद्ध प्रकृति की धृति है.......

...... ब्रज क्षेत्र में श्रावण में जो गीत गाये जाते हैं उन में पनिहारिन, नटवा, चन्दना, बिजैरानी, मोरा सभी प्रबन्ध गीत हैं, और उन सब में ऐसे भावुक वर्णन हैं कि प्रशंसा करनी पड़ती है। इन गीतों को अश्लील समझा जाता है और एक मात्र स्त्रियों में इनका प्रचार रहा है, मोरा नाम के गीत को देखिये........

इस सीधी सी गीत-कहानी में जन-मानस ने जो जीवन की अन्तर्व्यापिनी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति की है, वह कितनी अनुपम है, कितनी सहज और कामोद्दीप्ति से शून्य, एक सहज संवेदना के फल सी। और क्या इसमें सूक्ष्म मनोविश्लेषण नहीं मिलता। रानी के हृदय में मोर की कुहुक का बस जाना, और उसकी प्रतिस्पर्द्धा का परिमार्जन मोर को मार कर किया जाना, और फिर भी अमिट कुहुक का ज्यों का त्यों बने रहना जैसे कोई दार्शनिक सूत्र हो, जिसकी व्याख्या में नश्वर यह काया या उसकी अमर अभिव्यक्ति का चिरन्तन सत्य उपस्थित किया जा रहा हो—और मोरा ने मोर के रूप में ही रह कर तो इस कहानी को, रूपक की भाँति अनेक अर्थों से पूर्ण कर दिया है। शब्द-सौष्ठव इस गीत में नहीं, पर आकर्षण कितना अधिक है, और विचारशील विवेचक के मस्तिष्क के लिए तो इसमें कितनी सामग्री है.. .. ..*"

'मोरा' में प्रियतम के प्रतीक की कल्पना का सूत्र उस युग का स्मरण कराता है जब मानव की दृष्टि में प्रकृति की विशाल और स्निग्ध गोद का स्पर्श सब से अधिक महत्व रखता था। अनगिनत शताब्दियों को लाँघता हुआ मानव

---

* श्री सत्येन्द्र एम०ए०, 'लोक मानस के कमल'-जयाजी प्रताप, ३ फर्वरी, १९३८।

मशीनी युग की दहलीज पर खड़ा नजर आता है। मशीनी युग की मशीनी संस्कृति में उलझी हुई मानव चेतना छटपटाती है, और अपने अतीत का ध्यान करते हुए मानव की आँखों में अनेक परिवर्तन फिर जाते हैं जिनके साथ उसके इतिहास की कड़ियां जुड़ी हुई हैं। ईर्षा ज्यों की त्यों क़ायम है: आज भी नारी को किसी मानव 'मयूर' की ओर आकर्षित देख कर पुरुष के हृदय में ईर्षा और प्रतिस्पर्द्धा की ज्वाला भड़क उठती है।

चन्द्रावली के गीत का प्रधान स्वर भी पति-पत्नी के पारस्परिक संबन्ध को स्पर्श करता है। मध्यकालीन युग से चली आने वाली सम्मिलित कुटुम्ब की पद्धति को इस जैसे अनेक गीतों की पृष्ठभूमि में रंग भरने का श्रेय प्राप्त है। श्रावण—भादों में झूला झूलती हुई कन्याओं के सम्मुख अनायास ही चन्द्रावली का चित्र उभरने लगता है। झूला हवा की लहरों पर तैरता है और झूले की सहेलियाँ अतीत की स्मृति में खो जाती हैं। जब नारी के सम्मुख आज के टिके हुए जीवन से कहीं अधिक कठिन समस्या उपस्थित रहती थी। यह स्पष्ट है कि चन्द्रावली उन नारियों की प्रतीक समझी जाती है, जिन्होंने शत्रु के पंजे में फँस कर भी अपने सत को आँच नहीं आने दी। कदाचित् यह गीत मुग़ल युग के आरम्भ की ओर संकेत करता है। कथानक इतना ही है कि श्रावण के दिनों में चन्द्रावली एक चिड़िया से कहती है कि वह उसके मायके में उसका सन्देश ले जाय। उसका भाई उसे मायके लिवा ले जाने के लिए आता है, और मायके के रास्ते में चन्द्रावली के डोले को एक मुग़ल सिपाही रोक लेता है। चन्द्रावली एक चिड़िया से विनय करती है कि वह उसका सन्देश उसके ससुराल तक ले जाय। ससुराल से ससुर, जेठ और चन्द्रावली का पति तीनों घोड़ों पर चढ़ कर उसकी सहायता को आते हैं। परन्तु उससे कहीं अधिक चन्द्रावली को स्वयं ही अपनी सहायता करनी पड़ती है:

सरग[1] उड़ंती चिरहुली[2]
लागौ सावन मांस
हमरे बाबल सों नों कहौ
अपनी बेटी पै लेइ बुलवाइ

---

१ स्वर्ग, २ चिड़िया,

लागौ सामन मास
ले डुलिया बीरन चले
लागौ सामन मांस
जाइ पहुँचे जीजा दरबार
भेजो जीजा जी बहैंन कों जी
भैया कूँ राँधूगी सैमई जी
ऊपर बूरो खाँड
सैयों कूँ कोंधई* जी
ऊपर रोटी साग
लै जाऔ सारे अपनी बहैंन जी
लै बहैंना बीरन चले
लागौ सामन मांस।
सरग उडंती चिरहुली
जइयौ ससुर दरबार
डोला तौ घेरयौ पठान ने
लागौ सामन मांस।
सरग उडंती चिरहुली
जइयौ ससुर दरबार
हमरे ससुर जी से न्यौं कहौ
डोला लिया है घेर
लागौ सामन मांस।
लै हाथी ससुर चले
हथिनी ओर न छोर
लै रे मुगल अपनी भेंट लै
लागौ है सामन मांस।
बदुअल तौ छोड़ौ चन्द्रावली जी।
हाथी तो मेरे बहुत है
हथिनी ओर न छोर
ना छोडूँ चन्द्रावली
जाइगी जी के साथ
जाऔ सुसर घर आपने

---

*कोंधई

रक्खूं पगड़ी की लाज
सरग उडंती चिरहुलो
जइयो जेठ दरबार
हमरे जेठ जी से यों कह;
डोला लियौ है घेर
लागौ है सामन मांस।
लै घोड़ा जेठा चले
घोड़ी ओर न छोर
लै रे मुगल' अपनी भेंट लै
लागौ है सामन मांस;
बहुअल तौ छोड़ौ चन्द्रावली औ।
घोड़ा तौ मेरे बहुत है
घोड़ी ओर न छोर
ना तौ रे छोड़ूँ चन्द्रावली—
जाइगी जी के साथ।
जाओ जेठ जी घर आपने
राखूँ घूँघट की लाज।
सरग उडंती चिरहुली,
जइयौ पिया दरबार।
हमरे साहिबा से यौं कहौ
डोला लियौ है घेर
लै मोहरें राजा चले
थैली ओर न छोर
लै रे मुगल अपनी भेंट लै
लागौ सामन मांस,
गोरी तौ छोड़रे चन्द्रावली।
रुपिया तो मेरे बहुत हैं
थैली ओर न छोर
ना तौ रे छोड़ूँ चन्द्रावली
जाइगी जी के साथ।
जाओ राजा जी घर आपने
राखूँ फेरन' की लाज।

पानी न पीऊँगी पठान को
सेजौं धरूँगी न पांव।
इतनी सुनि राजा चलि दिए
लागौ सामन मांस ;
जा रे मुगल के छोहरा[२]
लागो सामन मांस,
प्यासी मरे चन्द्रावली
जैसी राजदुलारी
प्यासी मरे चन्द्रावली
जिस के माई ना बाप
लै लोटा मुगल चलो
तँबुआ दे लई आग
हाड़ जरै जैसे लाकड़ा
केस जरैं जैसे घास
हाइ हाइ मुगला करै
ठाडें खाइ पछार
घेरी ही बरती नहीं
लागौ सामन माँस
देखी ही चाखी नहीं
ऐसी राजदुलारो
इतनी सुनि सुसरा रो दिए
मेरी राज दुलारी,
बहू भली चन्द्रावली
राखी पगड़ी की लाज
इतनी सुनि जेठा जी रो दिए
मेरी राजदुलारी
बहू भली चन्द्रावली
राखी घूँघट की लाज
इतनी सुनि राजा रो दिए
राखी फेरन की लाज
रानी भलो चन्द्रावली

१—आंचर, २—लड़के

सानों न खायो पठान कौ
सेजों पै रक्खो न पाँव
लागौ सावन मास।

यह गीत किसी न किसी रूप में युक्तप्रान्त के विभिन्न जनपदों में बार बार प्रतिध्वनित हो उठता है। बुन्देलखण्ड में 'मानो गूजरी'[1] का गीत इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। बिहार में 'भगवनी का गीत'[2] भी भारतीय नारी की गौरव गाथा को इसी रङ्ग में पेश करता है। पंजाब में सुन्दर पनिहारिन का गीत भी इसी एक बात पर केन्द्रित है कि एक मुगल सिपाही के चंगुल में फँसी हुई भारतीय नारी किस तरह अपनी जान पर खेल जाती है। चन्द्रावली और सुन्दर पनिहारिन सगी बहिनें प्रतीत होती हैं। ये सभी गीत प्रान्तीय सीमाओं को लांघ कर एकता के आदर्श पर टिकने के कारण ही लोकपरम्परा में अपना स्थान बनाये हुए हैं।

ब्रज के स्त्री-गीतों में मुगल की चर्चा लोक-गीत के ऐतिहासिक विकास की ओर संकेत करती है। एक गीत में कोई ग्रामीण कुल वधू किसी मुगल सिपाही को यों फटकार सुनाती है:—

नदिया के उल्ली पल्ली पार उड़न लागे दो कागला
नदिया के उल्ली पल्ली पार दूखें तो मेरी दो अँखियाँ
कै तेरो पीहर दूर कै तेरो घर में सास लड़ी
उड़ जा रे मुगल गँवार तुझे मेरी का पड़ी
न मेरो पीहर दूर न मेरे घर में सास लड़ी।

नदी के इस पार और उस पार दोनों आँखों का एक प्रकार से दुखने लगना बहुत बड़े दुःख और अपमान का प्रतीक है। परन्तु इस विषाद पूर्ण पृष्ठभूमि को दोनों भुजाओं से परे धकेलती हुई नारी अपने सत की रक्षा किए जा रही है, यह देखकर किस देशवासी का सिर गर्व से ऊँचा नहीं उठ जायगा।

आज भी भाई सावन में अपनी बहिन को ससुराल से लिवा ले चलने के लिए पहुँचता है। सावन के गीत प्रायः झूले की हिलोर पर पनपते हैं, और कहीं कहीं बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से जीवन की

१—यह गीत विशालभारत में मेरे एक लेख में मौजूद है।
२—यह गीत श्री रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह में देखिए।

पानी न पीऊँगी पठान को
सेजाँ धरूँगी न पांव।
इतनी सुनि राजा चलि दि॰
लागौ सामन मांस ;
जा रे मुगल के ओहरा[१]
लागो सामन मांस,
प्यासी मरे चन्द्रावली
जैसी राजदुलारी
प्यासौ मरे चन्द्रावली
जिस के माई ना बाप
लै लोटा मुगल चला
तँबुआ दे लई आग
हाड़ जरै जैसे लाकड़ा
केस जरें जैसे घास
हाइ हाइ मुगला करै
ठाडें खाइ पछार
घेरी ही बरती नहीं
लागौ सामन माँस
देखी ही चाखी नहीं
ऐसी राजदुलारो
इतनी सुनि सुसरा रो दिए
मेरी राज दुलारी
बहू भली चन्द्रावली
राखी पगड़ी की लाज
इतनी सुनि जेठा जी रो दिए
मेरी राजदुलारी
बहू भली चन्द्रावली
राखी घूँघट की लाज
इतनी सुनि राजा रो दिए
राखी फेरन की लाज
रानी भलो चन्द्रावली

१—भांवर, [illegible] के

खानों न खायौ पठान कौ
सेजों पै रक्खो न पाँव
लागौ सासन मांस ।

यह गीत किसी न किसी रूप में युक्तप्रान्त के विभिन्न जनपदों में बार बार प्रतिध्वनित हो उठता है। बुन्देलखण्ड में 'भालो गूजरी' का गीत इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। बिहार में 'भगवती का गीत'[१] भी भारतीय नारी की गौरव गाथा को इसी रङ्ग में पेश करता है। पंजाब में सुन्दर पनिहारिन का गीत भी इसी एक बात पर केन्द्रित है कि एक मुगल सिपाही के चंगुल में फँसी हुई भारतीय नारी किस तरह अपनी जान पर खेल जाती है। चन्द्रावली और सुन्दर पनिहारिन सगी बहिनें प्रतीत होती हैं। ये सभी गीत प्रान्तीय सीमाओं को लांघ कर एकता के आदर्श पर टिकने के कारण ही लोकपरम्परा में अपना स्थान बनाये हुए हैं।

ब्रज के स्त्री-गीतों में मुगल की चर्चा लोक-गीत के ऐतिहासिक विकास की ओर संकेत करती है। एक गीत में कोई ग्रामीण कुल वधू किसी मुगल सिपाही को यों फटकार सुनाती है:—

नदिया के उल्ली पल्ली पार उड़न लागे दो कागला
नदिया के उल्ली पल्ली पार दूखें तो मेरी दो अँखियाँ
कै तेरो पीहर दूर कै तेरो घर में सास लड़ी
उड़ जा रे मुगल गँवार तुझे मेरी का परी
न मेरो पीहर दूर न मेरे घर में सास लड़ी।

नदी के इस पार और उस पार दोनों आँखों का एक प्रकार से दुखने लगना बहुत बड़े दुःख और अपमान का प्रतीक है। परन्तु इस विषाद पूर्ण पृष्ठभूमि को दोनों भुजाओं से परे धकेलती हुई नारी अपने सत की रक्षा किए जा रही है, यह देखकर किस देशवासी का सिर गर्व से ऊँचा नहीं उठ जायगा।

आज भी भाई सावन में अपनी बहिन को ससुराल से लिवा ले चलने के लिए पहुँचता है। सावन के गीत प्रायः झूले की हिलोर पर पनपते हैं, और कहीं कहीं बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से जीवन की

१—यह गीत विशालभारत में मेरे एक लेख में मौजूद है।
२—यह गीत श्री रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह में देखिए।

पानी न पीऊँगी पठान को
सेजौं धरूँगी न पांव ।
इतनी सुनि राजा चलि दि..
लागौ सामन मांस ;
जा रे मुगल के छोहरा[2]
लागो सामन मांस,
प्यासी मरे चन्द्रावली
जैसी राजदुलारी
प्यासी मरे चन्द्रावली
जिस के माई ना बाप
लै लोटा मुगल चले
तँवुआ दे लई आग
हाड़ जरें जैसे लाकड़ा
केस जरें जैसे घास
हाइ हाइ मुगला करै
ठाड़ें खाइ पछार
घेरी ही बरती नहीं
लागौ सासन माँस
देखी ही चाखी नहीं
ऐसी राजदुलारी
इतनी सुनि सुसरा रो दिए
मेरी राज दुलारी,
बहू भली चन्द्रावली
राखी पगड़ी की लाज
इतनी सुनि जेठा जी रो दिए
मेरी राजदुलारी
बहू भली चन्द्रावली
राखी घूँघट की लाज
इतनी सुनि राजा रो दिए
राखी फेरन की लाज
रानी भली चन्द्रावली

१—भाँवर, २—लड़के

सानों न खायौ पठान कौ
सेजों पै रक्खो न पाँव
लागौ सावन मास।

यह गीत किसी न किसी रूप में युक्तप्रान्त के विभिन्न जनपदों में बार बार प्रतिध्वनित हो उठता है। बुन्देलखण्ड में 'मानो गूजरी'[1] का गीत इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। बिहार में 'भगवती का गीत'[2] भी भारतीय नारी की गौरव गाथा को इसी रङ्ग में पेश करता है। पंजाब में सुन्दर पनिहारिन का गीत भी इसी एक बात पर केन्द्रित है कि एक मुगल सिपाही के चंगुल में फँसी हुई भारतीय नारी किस तरह अपनी जान पर खेल जाती है। चन्द्रावली और सुन्दर पनिहारिन सगी बहिनें प्रतीत होती हैं। ये सभी गीत प्रान्तीय सीमाओं को लांघ कर एकता के आदर्श पर टिकने के कारण ही लोकपरम्परा में अपना स्थान बनाये हुए हैं।

ब्रज के स्त्री-गीतों में मुगल की चर्चा लोक-गीत के ऐतिहासिक विकास की ओर संकेत करती है। एक गीत में कोई ग्रामीण कुल वधू किसी मुग़ल सिपाही को यों फटकार सुनाती है:—

नदिया के उल्ली पल्ली पार उड़न लागे दो कागला
नदिया के उल्ली पल्ली पार दूखें तो मेरी दो अँखियाँ
कै तेरो पीहर दूर कै तेरो घर में सास लड़ी
उड़ जा रे मुगल गँवार तुझे मेरी का परी
न मेरो पीहर दूर न मेरे घर में सास लड़ी।

नदी के इस पार और उस पार दोनों आँखों का एक प्रकार से दुखने लगना बहुत बड़े दुःख और अपमान का प्रतीक है। परन्तु इस विवाद पूर्ण पृष्ठभूमि को दोनों भुजाओं से परे धकेलती हुई नारी अपने सत की रक्षा किए जा रही है, यह देखकर किस देशवासी का सिर गर्व से ऊँचा नहीं उठ जायगा।

आज भी भाई सावन में अपनी बहिन को ससुराल से लिवा ले चलने के लिए पहुँचता है। सावन के गीत प्रायः झूले की हिलोर पर पनपते हैं, और कहीं कहीं बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से जीवन की

१—यह गीत विशालभारत में मेरे एक लेख में मौजूद है।

२—यह गीत श्री रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह में देखिए।

रूप रेखा में रंग भरते हैं। एक गीत में बहिन भाई के प्रश्नोत्तर यों आरम्भ होते हैं:

सामन भादों जोर कै भइया मैंने ले जाय
सामन जिन जाय रे
हूँ कैसे आऊँ मेरी बेंदुली तेरो नाग ने घेरो है घाट
सामन जिन जाय रे
नागन दूध पियाय भइया मैंने ले जाय
सामन जिन जाय रे..............

बहिन के लिए बेंदुली शब्द का प्रयोग सावन के गीतों की विशेषता है। सौ सौ बहाने बनाने वाले भाइयों को ब्रज की कुल-बधुयें चिरकाल से निमन्त्रण देती आ रही हैं। 'सामन जिन जाय रे' की टेक शीघ्रगामी सावन को पकड़ कर रखना चाहती है। प्रत्येक कुलवधू यही चाहती है उसका भइया अवश्य आये और सावन बीतने से पहले ही उसे मायके में लिवा ले जाय। बालिकायें अलग झूले पर तान छेड़ देती हैं:—

झुकि जा रे बदरा बरस चो ना जाय......................

बादल को सम्बोधित करने के इस अन्दाज से गहरी जान-पहचान और बराबरी की भावना प्रगट होती है। यह 'बदरा' तो कोई मेघ-बालक ही होगा जिसे ब्रज के बालक किसी भी समय खेलने के लिए बुला सकते हैं।

सावन का एक गीत यों आरम्भ होता है:—

जन्म जनन्ती री माय,
तैं ने चौं न जन्मी री बागन बिच की कोयली
रहती बागन ई के बीच,
काऊ अलबेले मजलसिये कुहक सुनावती..............

यह कोयल बन कर बाग में रहने की भावना रखवाल की याद दिलाती है। कन्हैया के लिए 'मजलसिया' का प्रयोग इस गीत की मध्यकालीन परम्परा का प्रमाण है।

रो रो कर जौ पीसने वाली बहिन का चित्र यों अंकित किया गया है—

आले से जौ कौ री माँ मेरी पीसनौं
कोई रोय रोय पीसे चून

जनीते कहियो री
मेरो बिरन मोय ले जाय
जनी ते कहियो री.................

एक गीत में बाप बेटी की बातचीत सुनिए—

मेरे बाबल रे सोने के दोय कलसा लै दे
मेरे बाबल रे नित नित कलसिया फूटती
मेरे बाबल रे नित नित सासुल कोसती
मेरी लाडो री कैसे कैसे कोसती
अरमल परमल बाप चटरमल
मां पटरानी भावज रानी वीर कन्हैया कोसती
मेरे बाबल रे वीर कन्हैया कोसती ....

'चन्दना', 'सरमन', 'रमझोल', 'सिपाहिरा' और 'बनजारा' इत्यादि गीत अपने अपने रङ्ग के उत्तम उदाहरण हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ उनकी विस्तृत चर्चा सम्भव नहीं।

हास्य रस भी ब्रज के लोक-जीवन में बार बार झलक उठता है। झूले के एक गीत में बाजरा की प्रशंसा सुनिये—

आध पाव बाजरा कूटने बैठी
उछल उछल घर भरियो, शैतान बाजरा
कानों देवर मरियो, शैतान बाजरा
आध पाव बाजरा पकावन बैठी
खदक खदक हँडिया भरियो, शैतान बाजरा
कानों देवर मरियो, शैतान बाजरा.......

होली और फाग के गीतों का प्रसार ब्रज में सब से अधिक हुआ है। इनका ताल निराला निराला है और इनकी एक विशेषता यह कि होली के परम्परागत प्रसङ्ग से हट कर ये जीवन के किसी भी चित्र को प्रदर्शित करने की सामर्थ रखते हैं।

खोटो है काम किसान को नादान को
सुख नोंने रे
मिलो धूर माटी से
नहीं मिलैं वक्त सिर रोटी..........
जा की बुरी कमाई खोटी..........

लोकेक-कवि पतोला रचित एक होली गीत सुनिये

फागुन में परथौ तुसार
चैत में उखटा
कां ते रँगाय देउँ दुपटा............

होली की वास्तविक विशेषता शृङ्गार में उभरती है—

कोठे पै ठाड़ी नार
झूमका सोने को
जा ए लगौ चाव गौने को............

पतोला को यही तीन कड़ी की होली अधिक प्रिय थी। यद्यपि उसके समकालीन और उसके परवर्ती लोककवियों ने सदैव होली की परिधि को अधिक से अधिक विस्तृत करते हुए काफी बड़ी बड़ी होलियाँ रचने का यत्न किया है। एक होली में पतोला ने अपनी आत्मकथा पेश की है—

अन्न टका भर खाय
सूख गयो चोला
मेरौ पड़ि गयौ नाम पतोला............

उदाहरण स्वरूप एक बड़ी होली भी सुनिए, जिसमें ऋण के भार से दबा हुआ किसान किसी बौहरे या साहूकार को सम्बोधित करते हुए उसे खरी खरी सुना रहा है।

गेंहुन में रतुआ लगौ
चनन में लागी सुंडी
हरैर में कीरा लगौ
सब भांति फूटी मुंडी
परि गए पथरा
लरका वारे परे उघारे
तोय परी अपनी अपनी
पैसा नांय पास बौहरे
बेसक करि आ दावा
मत देइ दुआर पै कावा............

विवाह के गीत अलग महत्व रखते हैं। इनके अनेक प्रकार हैं, विवाह की एक एक क्रिया गीतों के साथ गुथी हुई है, सोहर के गीतों की भी इस जनपद में कुछ कमी नहीं, लोरियाँ और बच्चों के खेल

गीत, व्रत और पूजा गीत, देवी और माता के भजन, तीर्थ और पर्व स्नानादि के गीत, त्योहारों के गीत, धोबियों, कुम्हारों और मछेरों इत्यादि विभिन्नवर्गों के गीत, अनेक रसिये, फड़के और जिकड़ी भजन—ये समस्त सामग्री ब्रज के ग्रामों में बिखरी हुई है। इस मशीन युग में, जब कि सिनिमा और ग्रामोफोन इत्यादि ने बुरी तरह परम्परागत लोकसङ्गीत पर आक्रमण शुरू कर रक्खा है, यह नितान्त आवश्यक है कि लोकगीतों के संकलन तथा अध्ययन की एक विशेष योजना बनाई जाय बल्कि हम मशीन से मदद लेंगे, और इन गीतों को सुरक्षित रखने का यत्न करेंगे। अनेक जनपदों में लोकगीत आन्दोलन जोर पकड़ रहा है, रेडियो पर विभिन्न जनपदों के लोकगीत जब आपस में गले मिलते हैं तो इन जनपदों का पारस्परिक स्नेह बढ़ने का आभास दिखाई देने लगता है, ब्रज के अनेक गीत इतने सुन्दर और महत्वपूर्ण अवश्य हैं कि वे अन्तरप्रान्तीय लोकगीतों की बिरादरी में बड़े शौक से गाये जायँ।

ब्रज साहित्य मंडल ने ब्रज के लोकगीतों के संकलन की ओर विशेष ध्यान दिया है, इसके लिये मंडल को बधाई दी जानी चाहिए। सोनई, बरसाना, नन्दगाँव, कोसी, गिड़ोह, अकबरपुर, आयरा, चौमुहा, पसौली और पिलोठी—इन दस केन्द्रों से मंडल के कुछ स्नेहियों ने श्री सत्येन्द्र की अगुआई में दो सौ के लगभग गीतों का संकलन किया है, आशा है कि मंडल की ओर से इन गीतों का प्रकाशन शीघ्रातिशीघ्र हिन्दी जगत के सम्मुख उपस्थित किया जायगा।

रसिया में रस का झरना प्रवाहित होने लगता है, यद्यपि कहीं-कहीं इस रस की गति-विधि मर्यादा का उल्लंघन करने से भी नहीं चूकती। मर्यादा के उल्लंघन को देख सुन कर चौंकने की आवश्यकता नहीं, लोकगीत अपनी मर्यादा स्वयं स्थिर करता है। रसिया के स्वर कभी कभी कुछ अधिक चंचल हो उठते हैं। इन्हें बाँध कर रखने का प्रयास लाभप्रद नहीं होगा। हो सकता है, कुछ लोग रसिया सुनते समय किसी कदर संकोच अनुभव करें। परन्तु यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि रसिया की विशेषता इसकी कलात्मक सुन्दरता में है। इसके हृदय स्पर्शी स्वरों की उठान इसकी सुन्दरता को और भी

बढ़ा देती है। रसिया आनन्द विभोर मन की वाणी है, दैनिक जीवन इसका धरातल है।

रसिया लोक जीवन का रस है, इसकी परम्परा अखंड है, अविभाज्य है, यहाँ रसिया के कुछ उदाहरण लीजिए।

लम्बरदारी में लगाइ दै बैरी आग
परेला लै दे कंचन कौ।

घटा गई पीहर को
परमेसर है गए मांदी।

हरे की अँगिया जो पैरे
जाय रीझै लम्बरदार

बल्मा झोक लगै लटकन की
मो पै अटा चढ़यौ न जाय

बछेरी डोलै पीहर में
जा पै को होइगौ असवार

पदमा पुजारिन बन बैठी
तुलसी के पत्ते चबाय

अँगिया गोटादार
भूलि आई जंगल में

लपट आवै निबुअन की
रस बगिया कितनी दूर

गैलऊआ गोला दै जइयो
कैरी हरियल पक रही ज्वार

मेरी रातों जगी सखी
बगद् गयौ पुल पै ते

कौंधनी सोने की
बनवाइ दै दावेदार

बैठक पोखर पै बनवाइ दै
कलावती के दादा

मेरे इन हाथन की मेंहदी
काऊ दिन सुपनौ है जायगी

उठीऐ जुआनी या ढब ते
जैसें आंधी में भबूड़ो बल खाय

हेल मो पै गोबर की
लड़ुआ काहे को दिखावे लम्बरदार

तेरौ खसम दरोगा
अब डर काहे कौ

लम्बरदार की लुगाई
तो ते राम डरपै

चना के लड़ुआ चौं लायौ
मेरे पीहर में जलेबी रसदार

बम्बा पै बोली तीतरिया
तू बन परवाइबे कब जायगी

मँझोलो न लइओ
मेरौ गूँठा पकन जाय

तेरे कन्दे छाऊँ बछिया
बदलवाइ लै

खिलकने गेंद दै
तेरौ उद जोबन लहराय

ये सब रसिया के आरम्भिक बोल हैं जो ब्रज के वातावरण में सदैव तैरते रहते हैं। कुछ लोग तो टेक ही में उलझकर रह जाते हैं। परन्तु रसिया का पूरा रस इसके पूर्ण रूप ही में पनपता है। रसिया के दो तीन पूरे उदाहरण भी लीजिए।

तू भँवर बन्यौ बैठ्यौ रहिओ
चल बस मेरे पियौसार,
घोड़ी लै लै दूऊँ नाचनी
हरयौ कनाती जीन। चल बस·······
नथ के घड़ाय दूऊँ गोखरू
खनवारे को छल्ला छाप, चल बस········
दही जमाऊँ भूरी भैंस कौ
औऊ पुरा भर खाँड़, चल बस······
चन्दन चौकी पै बैठनों
औ उ अचरन ढोरूं बियार। चल बस·······

कारी चूँदरिया रंगाय दै
मेरौ जोबन लच्छेदार।
जब ते आई तेरे घर में
गुजर करी टूटे छप्पर में
ना देखे तेरे महल तेवारे
ना सोई पलँग नेवार। मेरो जोबन····

लै आए हमारे महाराजा
आज हमें छल करकें ।
ए लइयाँ तेरे राज में काहूँ न पैरी चूरियाँ
कलइयाँ भर भर कें। लै आए हमारे......

जुआनी सरर सरर सरांगे
जैसे अंगरेजन को राज ।

अँगरेजन को राज जैसे उड़े हवाई जहाज । जुआनी सरर सरर...
काजर दै दै कजरा केरे पैनी है नैन कटार । जुआनी सरर सरर
जाके मिल जाय निगाह वही मर है जाय तावेदार ।
जुआनी सरर सरर...
उमर खिंचे पै कोई न पूछे जुआनी कौ संसार । जुआनी सरर सरर

लोकगीत संकलन कर्त्ता अपने कार्य में उसी अवस्था मे सफल हो सकता है जब कि उसे अपने कार्य की सच्ची लगन हो । रिचर्ड सी० टेम्पल ने पंजाबी लोकगीत संबन्धी अपने कार्य की चर्चा करते हुए लिखा है: "मैं उत्सवों में, मेलों में, दावतों में तथा शादियों और स्वांगों में सम्मलित हुआ हूं । यथार्थ यह है कि मैं प्रत्येक ऐसे स्थान पर गया जहाँ किसी गायक के आने की सम्भावना हो सकती थी । मैं ने उन गायकों को ऐसे फुसलाया कि वे मेरे निजी लाभ के लिए भी गावें । मेरे सन्मुख ऐसे मामले भी थे जिन में ऐसे अवसरों पर झगड़े उठ खड़े हुए हैं और उनसे उस गायक का पता लगा है जो इस अवसर पर पौरोहित्य कर रहा था, और तब उसे मेरे लिए गाने को प्रेरित किया जा सका है, और कभी कभी स्वांग खेलने वाले पढ़े लिखे लोगों को स्वांगों की उन की निजी हस्तलिखित प्रति मुझे देखने देने के लिए प्रेरित किया जा सका है । जब कभी केवल ग्रीष्म ऋतु में मैं घूमने वाले जोगी, मीरासी, भराई तथा ऐसे ही लोगों से गलिओं और सड़कों पर मिला हूँ, तब उन्हें रोक कर यथा समय उनसे जो कुछ वे जानते थे उगलवा लिया है । कभी कभी देशी राजाओं और सरदारों के दूतों और प्रतिनिधियों से मिलने और बातचीत करने का भी अवसर मिला है... ये वे लोग हैं जो अपने स्वार्थ तथा लाभ के लिए कुछ भी करने को सदैव तत्पर रहते हैं......उन्हें इस सम्बन्ध में संकेत मात्र कर देने

से एकाधिक लोकगीत मुझे प्राप्त हुए हैं। अन्त में व्यक्तिगत भेंट तथा पत्र-व्यवहार, गोरे और काले सभी प्रकार के ऐसे व्यक्तिओं से, जो सहायता कर सकते थे, उपयोगी सिद्ध हुआ है, और बहुत सी सामग्री मुझे इस प्रकार प्राप्त हुई है।"

अन्त में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि-ब्रज की लोकगीत यात्रा के सम्बन्ध में मुझे मथुरा, प्रेमसरोवर, बरसाना, नन्दगांव, ऊंचागांव, कोसी, पुष्पसरोवर, गोवर्धन, राधाकुंड, मुखरई, कढेरु का नंगरा, आनरा छायली, उर्खरा, शाहदरा, जुनियाई और धाँधूपुर इत्यादि स्थान देखने का अवसर मिला है, और मैं उन सब मित्रों का ऋणी हूँ जिन के सहयोग से मुझे अनेक लोकगीत प्राप्त हुए। मैं ब्रज साहित्य मंडल का भी ऋणी हूँ जिस के तत्वावधान से इस शिविर का कार्यक्रम निश्चित हुआ और मुझे यहाँ आप जैसे महानुभावों के सन्मुख ब्रज के लोकगीतों पर कुछ कहने का अवसर दिया गया।

लोकवार्ता और लोकगीत

[श्री सत्येन्द्र एम० ए०]

पहले किसी भाषण में यह बताया जा चुका है कि हमारे साहित्य के दो रूप होते हैं—एक विशिष्ट रूप और दूसरा साधारण रूप। हमारा शिष्ट रूप आयोजन के साथ होता है। उसमें हम साधारण को स्थान नहीं देते। साधारण को उसमें सम्मिलित कर दिया जाय तो यह माना जाता है कि उसमें दोष आ जाता है इसलिए वह बहिष्कृत कर दिया जाता है। साधारण कोटि का साहित्य सार्वजनिक साहित्य होता है। साधारण जन के मनोभाव, उसका दुख-सुख, हँसी इसी साहित्य में अभिव्यक्त होते हैं।

यह लोक-साहित्य जीवन से घनिष्ठ संबंध रखने वाला है। लोक-जीवन की प्रवृत्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ एक नहीं अनेक रूप ग्रहण करती है। ये सभी प्रवृत्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ लोक-वार्त्ता के अन्तर्गत आ सकती हैं। किन्तु शिष्ट-वर्ग के भेद से साधारण वर्ग 'लोक' शब्द से अभिहित होने लगा है। यह अंग्रेजी के 'फोक' का पर्यायवाची है। इस भेद के कारण लोक-जीवन की प्रवृत्तियों और अभिव्यक्तियों के वे रूप जो शिष्ट-वर्ग द्वारा मान्य हुए हैं 'लोकवार्त्ता' से भिन्न माने जाने लगे हैं। वे कला 'साहित्य' 'संगीत' के नाम से पुकारे जाते हैं। उनके सधे-बँधे रूप और आदर्श होते हैं, उनमें नई सुष्ठु और दिव्य कल्पनाएँ होती हैं। उनमें बुद्धि, युक्ति, तर्क, भाव और इसके संस्कृत रूपों का महत्त्व होता है। जीवन के शिखरों का दर्शन इसमें मिलता है। उधर लोक-वार्त्ता में जीवन का वास्तविक रूप प्रत्यक्ष होता है। उसे हम कला न कहें, साहित्य न कहें तभी ठीक है। वे जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं। स्वयमेव जीवन हैं। साधारण लोक के अपने सहज विश्वास जो सभ्य भाषा में अन्धविश्वास कहे जाते हैं, उसके हृदय की साधारण और विशेष प्रतिक्रियायें, प्राचीन परंपराओं के अवशेष और रूप

लोक-वार्त्ता में मिलते हैं। ऋग्वेद में सदा ही ये दोनों रूप मिल जाते हैं। वैदिक साहित्य में भी साहित्य के ऐसे ही दो धरातल देखे जा सकते हैं। विशिष्ट धरातल में वेदों की वे ऋचायें मानी जा सकती हैं जो विविध देवी-देवताओं की अनुभूतियों से संबंध रखती हैं, जिनमें कल्पना का सौंदर्य अपनी पूर्ण सुकुमारता के साथ व्यक्त हुआ है। इस कोटि में 'उषा' के, 'वरुण सम्बन्धी' श्रेष्ठ हैं। साधारण कोटि की रचनाओं में वे रचनाएँ आती हैं जिनमें सामाजिक बातों पर प्रकाश डाला गया है जैसे जुआ खेलने पर दुःख प्रकट करने से संबंध रखने वाली। ऐसी रचनाओं में काव्य-कल्पना का कम प्रयोग हुआ है। और साथ ही वे रचनाएँ भी जिनमें लोकगाथाओं का उल्लेख है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है पुरुरवा-उर्वशी का उल्लेख वेदों में जिस रूप में मिलता है वह लोकवार्त्ता का ही रूप माना जायगा। उसमें हमें किसी परंपरागत आचार की अभिव्यक्ति की झाँकी मिलती है।

तात्पर्य यह है कि लोक-वार्त्ता बहुत प्राचीन वस्तु है। वेद भी मौखिक रूप में सुरक्षित रखे गए और लोकवार्त्ता भी सुरक्षित मौखिक रूप में ही रखी गई है। वेदों ने हमारी प्रचलित संस्कृति और धर्म की दृष्टि बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वेद ही हमारी सभ्यता और संस्कृति के मूलाधार हैं। इतनी प्राचीन पुस्तक वेद के कारण प्राचीन आर्य जाति सबसे अधिक सभ्य रही। पुराणों में भी वेदों की व्याख्या है। लोक-जीवन को समझने के लिए पुराणों ने भी बड़ा सुन्दर कार्य किया। इस प्रकार लोक-जीवन और वैदिक-जीवन को मिलाने की चेष्टा पुराणों द्वारा हुई। पुराणों में हम सर्व-संग्राहक धर्म पाते हैं। इस प्रकार हमारे लोक-जीवन और शिष्ट-जीवन दोनों का सम्बन्ध निरन्तर चलता रहा है। धर्म के क्षेत्र में भी यही अवस्था रही है। लोक-जीवन में प्रचलित कहानियों का उपयोग प्रत्येक धर्म के साहित्य ने किया है, ऐसा प्रतीत होता है। वाल्मीकि-रामायण और तुलसी के रामचरितमानस भी इसी ओर हैं। निश्चय ही तुलसी ने अपने काव्य-ग्रन्थ को लोक-प्रचलित कथाओं से संशोधित किया है। सूफी कवियों ने तो लोक-कहानियों को ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनाया। यह रूप लोक-वार्त्ता की आन्तरिक शक्ति के कारण हुआ। आज हमारे साहित्य-मनीषी उस

शक्ति से दूर पड़ गये हैं। कुछ विदेशियों ने इस दिशा में उद्योग किया है। उनका उद्योग शुद्ध ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से हुआ नहीं माना जा सकता। उन्हें भारतवासियों को शासन करने की दृष्टि से समझने की आवश्यकता थी। लोक-वार्ता की सामग्री से ही उन्हें समझने में सच्ची सहायता मिल सकती थी। किन्तु उनके उस उद्योग में भी वैज्ञानिक ज्ञान की नींव पड़ गयी। आज हम स्वतन्त्र हो गये हैं, अब हमें स्वयं अपने मर्म को समझने की आवश्यकता है। हमें अपने साहित्य में के लिए भी शक्ति और सामग्री चाहिए। वह 'लोकवार्ता' से ही मिल सकेगी। जिस प्रकार स्थापत्य और मूर्तियों के खण्डहरों में इतिहास के अवशेष मिलते हैं, जिनसे इतिहास की खोई हुई कड़ियाँ जुड़ती प्रतीत होती हैं, वैसे ही लोकवार्ता में भी हमें ऐसे ऐतिहासिक महत्व की सामग्री प्राप्त हो जाती है। यह अवश्य है कि उस ऐतिहासिक ध्वंस का शोध विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। हम उन विशेषज्ञों के लिए यदि सामग्री ही प्रस्तुत कर दें, तो क्या कुछ कम महत्व की राष्ट्रीय-सेवा कर रहे होंगे? नहीं। इस सामग्री का प्रस्तुत करना भी एक महान् कार्य है। लोक-जीवन की सामग्री मौखिक रूप में चली आ रही है, वह नष्ट न हो जाए; इसलिए हमारा पावन कर्तव्य है कि उसे जितना ग्रहण कर सकें करलें।

किन्तु यह जान लेना भी तो पहले अत्यन्त आवश्यक है कि लोकवार्ता के अन्तर्गत किन-किन विषयों का समावेश होता है। हम यहाँ उनका उल्लेख किये देते हैं—

१—वे विश्वास और आचरण-अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—

१—पृथ्वी और आकाश से
२—वनस्पति जगत से
३—पशु जगत से
४—मानव से
५—मनुष्य-निर्मित वस्तुओं से
६—आत्मा तथा दूसरे जीवन से,
७—परा-मानवीय व्यक्तियों से (जैसे देवताओं, देवियों तथा ऐसे ही अन्यों से).

८—शकुनों-अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाश-वाणियों से
९—जादू-टोनों से
१०—रोगों तथा स्थानों की कला से

२—रीति-रिवाज—
१—सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थायें
२—व्यक्तिगत जीवन के अधिकार
३—व्यवसाय-धन्धे तथा उद्योग
४—तिथियाँ, व्रत तथा त्यौहार
५—खेल-कूद तथा मनोरञ्जन

३—कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—
१—कहानियाँ (अ) जो सची मान कर कही जाती हैं।
(आ) जो मनोरञ्जन के लिए होती हैं।
२—गीत, सभी प्रकार के
३—कहावतें तथा पहेलियाँ
४—पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

यह सूची हमने यहाँ श्रीमती बर्न महोदया की पुस्तक के आधार पर प्रस्तुत की है। इससे हमें यह विदित हो जाता है कि लोक-वार्ता के अन्दर 'आचार' और 'शब्द' दोनों ही प्रकार की सभी अभिव्यक्तियाँ आ जाती हैं। आप देख सकते हैं कि यह कितना महान् कार्य है। कितने उत्तरदायित्व का भी है। हमारे जीवन की कोई भी बात इसमें छूटने नहीं पायी। हमें भी संग्रह करते समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि छोटी से छोटी बात भी न छूटे।

आज हम यहाँ विस्तार से इन सभी को संग्रह करने की प्रणाली पर बात नहीं करेंगे। लोक-साहित्य पर ही हमें आज विशेष ध्यान देना है।

इस प्रकार लोक-साहित्य का धरातल कई प्रकार का हो जाता है। उन प्रकारों में लौकिक साधारण साहित्य के दो वर्ग हो जाते हैं। चेतन मस्तिष्क के धरातल वाले को ग्राम नागरिक साहित्य का नाम दे सकते हैं। इस ग्राम नागरिक साहित्य में भी आपको दो रूप मिलते हैं। एक को सहज और दूसरे को विशिष्ट कह सकते हैं। ये विशिष्ट

रचनाएं यत्नशील उद्योग से रची जाती हैं, इनमें ग्रामीण मस्तिष्क भी अपने ज्ञान के वैभव को प्रदर्शित करने के लिए उत्सुक रहता है। इसी कारण इनमें प्रतियोगिता का भाव मिलता है। ऐसे साहित्य में गाँवों में प्रचलित प्रबन्धकाव्यात्मक जिकड़ी के भजन आ सकते हैं। उसकी तुलना में उधर रसिया लीजिये। यह सहज क्षेत्र का साहित्य है। ये मुक्तक काव्य होते हैं। यदि वह परम्परा से चल कर आया है तो उसके लक्षण और होते हैं। और जब इस सहज काव्य में विलास की भावना आ जाती है तो उसमें तथाकथित अश्लीलता का प्रयोग हो जाता है। इसी तरह एक और साहित्य हमें मिलता है—नागरिक ग्राम साहित्य। यह उन व्यक्तियों का साहित्य है जो नगर के अन्दर रहते हैं। किन्तु नागरिक ऊँचाई पर नहीं पहुँचे। उद्योगी वर्ग में इन्हें सम्मिलित किया जा सकता है। इनकी ये रचनाएं 'ख्याल' कहलाती है। यह साधारण साहित्य पहली अवस्था का है। ब्रज मंडल के खोज की अधिकांशतः पहली चीज यही है। दूसरी अवस्था में अर्द्ध चेतन और उपचेतन मानसिक अवस्था की चीजें आती हैं। इसका सम्बन्ध पुरुष समाज से होता है। यह परंपरा से आता है। इसमें पता नहीं चलता कि निर्माण करने वाला कौन था। इनमें भावों का बाहुल्य रहता है। तथा किसी न किसी कथा का आश्रय लिया जाता है। कथा के पात्र विशेष जीवट के होते हैं; या भक्त, महात्मा। जीवट के पात्रों के काव्य में भी भाव भरे रहते हैं। लेकिन ये उतने गहरे नहीं होते जितने कि भक्त-महात्माओं के में। अतः दूसरी अवस्था का परम्परा प्राप्त साहित्य है जो साधारणतः प्रबन्ध काव्य है। ये गेय प्रबन्ध काव्य हुआ करते हैं; इनमें नरसी—ढोला—श्रमणों के गीत और भरथरी के गीत आते हैं।

ये मध्यम काल के चेतन-मस्तिष्क की रचनाएं हैं। हमारी संस्कृति का सब से नीचा धरातल आदिम मानव है। जिस तरह कहीं कहीं इनकी ठठरियां मिलती हैं और कहीं कहीं वंशज भी मिलते हैं, इसी प्रकार आदिम मानव की परंपरा है; और उनमें जो प्रचलित साहित्य है वह कथा कहानियों के रूप में है। तीसरी अवस्था का साहित्य हमें स्त्री-समाज में मिलता है। पुरानी परम्परा की रक्षक नारी है। यदि आप स्त्री-समाज से प्राप्त होने वाले साहित्य को देखें तो सभी चीजें मिल जाएँगी। यथार्थ में विवाह आदि के विधान में

स्त्रियों का अधिक भाग है। वेद के पंडितों को धार्मिक अनुष्ठानों में कितना कम भाग दिया गया है, यह जीवन के सांस्कृतिक अनुष्ठानों को देखने से विदित होगा। लोक-जीवन की जय यहाँ पर मिलती है। संस्कारेतर चीजें भी स्त्री-समाज में मिलती हैं। जैसे सावन के गीत—बारहमासे। स्त्रियों के निजी कोमल रूप इन्हीं गीतों में प्रकट होते हैं। चौथी अवस्था में त्यौहार सम्बन्धी गीत और कहानियाँ आती हैं। पांचवी अवस्था में मानवीय जन्म सम्बन्धी संस्कार। इनमें जो सहज विश्वास दिखलाई पड़ते हैं उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। ऊपर जिस साहित्य की चर्चा हमने की है वह शिष्ट-उच्च वर्ग के त्यौहारों से सम्बन्ध रखने वाली चीज़ है।

मौखिक वार्ता में एक बुढ़िया पुराण आता है। यह ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब का यहाँ मिलता है। इनमें आपको वह यथार्थ गहरी चीजें मिलेंगी जो कि इतिहास को प्रभावित करने वाली होती हैं। तो मानव के आदिकाल से लेकर अब तक के इतिहास की सामग्री इसमें मिलती है। उन सब को हमें संग्रह करने की आवश्यकता है। इसमें दो बातों का ध्यान रखना पड़ना है। विविध जातियों के पुराणों का उल्लेख और संग्रह कर लेना चाहिए। इनमें एक तो आनुष्ठानिक रूप है। उसका विवरण हमें लिख लेना चाहिए। उदाहरण के लिए घूरे पूजने, कुआ पूजने की प्रथायें आदि। दूसरा है अनुष्ठान के अंग स्वरूप जो सांस्कारिक उद्गार हैं। ऐसे वाक्य मिलते हैं जो गीत नहीं होते हैं, संवाद रूप में भी मिलते हैं। तीसरे सांस्कारिक गीत होते हैं। उनका भी संग्रह होना चाहिए। इनके दो रूप हो सकते हैं—एक तो वारण-सम्बन्धी या दैवी। विवाह संस्कारों में ये होते हैं। जैसे आँधी पानी को बाँधना। ये तांत्रिक कहे जा सकते हैं। त्यौहारों में भी अनुष्ठान का उल्लेख मिलता है। उसका विवरण देने की आवश्यकता है। अनुष्ठान के साथ कहीं कहानियाँ मिलती हैं, कहीं गीत मिलते हैं। त्योहारों के साथ साधारणतः तीन चीजें रहा करती हैं। १ आनुष्ठानिक क्रिया, पूजा-विधान, २ कहानी, ३ गीत। इन सबके संग्रह और अध्ययन की आवश्यकता है। इसमें कार्तिक का महीना विशेष स्थान रखता है। इनमें गीतों के अलावा कहानियों का भण्डार तीस दिन तक चलता रहता है।

मौखिक साहित्य की दृष्टि से हम अपने वर्ग को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) उच्च वर्ग (२) निम्न वर्ग—यह सब समाज व्यवस्था में बँधे हुए होते हैं। (३) विशेष वर्ग है—गाना बजाना जिनका पेशा हो जाता है जैसे जोगी—हमारे यहाँ स्त्रियों में जो गहरी चीजें मिलती हैं उससे भी गहरी चीजें यहाँ मिलेंगी। इस तरह विशेषकर लौकिक अनुष्ठान को अपनाने और इस साहित्य के जितने विभेद होते हैं उन्हें संग्रह करने की आवश्यकता है। हमने अब तक कहानी और गीत की चर्चा की है। इसके अलावा चुटकुले और कहावतें भी संग्रह करने की चीजें हैं। किन्तु इसके साथ हमें कुछ और बातों पर ध्यान रखने की जरूरत है।

लोकवार्ता का सब कलाओं से चाहे सीधा संबन्ध न हो लेकिन फिर भी उसका लोक-जीवन से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। लिखते समय शब्दों के उच्चारण और ध्वनि-विज्ञान पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार हमें इस साहित्य को लिपिबद्ध करना चाहिए जिस प्रकार कि बोलने वाला बोलता है। उसके उच्चारण को बहुत ध्यान से सुनकर समझ कर उसे अपनी लिपि के द्वारा बद्ध कर लेने की आवश्यकता है। जैसे दाने-ध्याने, आ-आ आदि में से क्या उच्चारण है? प्रधान केन्द्र निम्न वर्ग का होना चाहिए। जमींदार और मुखिया से लेकर निम्न श्रेणी के लोगों से मिलकर मीठी बातों द्वारा सामग्री एकत्रित करना चाहिए।

लोकगीतों का संग्रह कैसे किया जाय ?

१—पहले तो आप विविध प्रकार के व्यक्तियों से चर्चा करके यह पता चला लें कि आपके गाँव में कौन किस प्रकार के गीतों का कितना धनी है।

२—इस चर्चा चलने का अपना अपना ढङ्ग निराला हो सकता है। किन्तु सुगमता वहाँ होती है जहाँ आप भी उनके साथ बराबर का भाग ले सकें। आपको भी कुछ लोक गीत याद हों। में से क्या उच्चारण है उन्हें आप भी सुनायें। उनके सुस्राव से और गीत गाँववाले आपको सुनाने लगेंगे।

३—यह भी आवश्यक है कि गाँव में जिससे आपको गीत लेने हैं उसका विश्वास आप प्राप्त करलें। गाँववालों में अपने गीत सुनाने

के लिए उत्सुकता का अभाव नहीं मिलेगा। हाँ उन्हें आपको लिखाने में रुचि नहीं। लिखाने में उन्हें रुक रुक कर कहना पड़ता है इस कारण उन्हें कहने में जो आनन्द आता है उसमें बाधा पड़ती है, उतना धैर्य भी उनमें नहीं होता; फिर किसी बात के लिखे जाने के प्रति उनके मन में एक अज्ञात आशङ्का भी विद्यमान रहती है। उनके जीवन में लिखने के अवसर आये हैं, वे पुलिस या पटवारी जैसे राजकर्मचारी द्वारा ही आये हैं। यह संस्कार बाधा डालता है। किन्तु आपका नम्र आचार गीत गानेवाले के प्रति हृदय में आदर, उनका हित करने की भावना आदि की विद्यमानता से ये अड़चनें दूर हो सकती हैं। यथावसर कुछ प्रलोभन भी आवश्यक हो सकता है।

४—स्त्रियों के पास जो सामग्री कण्ठाग्र है, उसे प्राप्त करने के लिए आपको किसी स्त्री को ही माध्यम बनाना होगा। वह आपकी माँ, बहिन अथवा स्त्री हो सकती है। बहुत सी सामग्री तो स्वयं इन्हीं से घर में ही मिल जायगी, शेष ये अन्य पास-पड़ौस की स्त्रियों से एकत्रित करा सकती हैं।

यह बात ध्यान देने की है कि यदि हम स्त्रियों को इस कार्य में प्रवृत्त कर सकेंगे तो समाज का अन्यथा भी बहुत लाभ होने की सम्भावना है। स्त्रियाँ मिल-बैठ कर बहुधा कलह की बातें, परनिन्दा की बातें ही किया करती हैं। उनके पास चर्चा का कोई और विषय नहीं होता। आपकी प्रेरणा से वे गीतों की चर्चा करने लगेंगी।

५—इन गीतों को लिखते समय प्रत्येक शब्द के उच्चारण पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। विशेषकर निम्न बातों पर—

अ—खड़ी बोली में जो शब्द अकारान्त हैं, उसका उच्चारण कैसा होता है। वह अकारान्त रहता है या उकारान्त हो जाता है, या कुछ और। उदाहरणार्थ : 'एक जाट ओ जाट' या 'एक जाटु ओ जाटु' या 'एक जाट ओ जाटु'। अन्तिम उदाहरण की भाँति क्या कहीं अकारान्त और कहीं उकारान्त होता है। ठीक जैसे बोला जाता है वैसे ही लिखा जाना चाहिए।

आ—साधारणतः जो शब्द अलग अलग समझे जाते हैं, बोलने में वे मिले हुए तो नहीं प्रतीत होते। यदि मिले हुए सुनाई पड़ते हैं तो

उन्हें वैसे ही लिखना—उदाहरण के लिए 'एक जाट ओ' को बोलने वाला या बोल सकता है 'एक जाटाओ'।

इ—कहीं कोई स्वर साधारण से अधिक समय तक तो नहीं बोला जाता? यदि बोला जाता है तो उसे उसी अनुमान से दुहरा कर लिखो। जैसे 'एक जाट ओ' को जब मिलाकर बोला जाता है तो प्रायः यह विदित होता है कि अन्तिम ओ स्वाभाविक समय से तिगुना अधिक समय लेता है, तो उसे यों लिखा जाना चाहिए 'एक जाटो ओ ओ।' नीचे अर्द्धवृत्त-रेखाओं से उन ओ ध्वनियों को रेखाङ्कित कर देना चाहिए। इससे यह प्रकट होगा कि ये ध्वनियाँ स्वतंत्र नहीं एक ही 'ओ' ध्वनि का बढ़ा हुआ रूप हैं।

ई—स्वर के स्वरित रूप पर ही ध्यान नहीं देना, उसके लघु, लघुतर, लघुतम उच्चारणों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। 'एक' का उच्चारण एक (जिसमें ए का पूर्ण उच्चारण है जैसे 'एक आदमी' में है) एक ('ए' का लघु उच्चारण जिसमें 'क' पर जोर पड़ता है, 'ए' पर नहीं जैसे 'एक दिन' में 'ए' का), एक (इसमें ए, का उच्चारण 'य' के निकट है), अथवा 'इक' की भाँति उच्चारण है।

उ—यही ध्यान ऐ—(ऐरावत, के 'ऐ' की भाँति अथवा 'अइ' की भाँति), औ ('और' के औ' की भाँति या 'अउ' की भाँति), इ, उ, य, व की ध्वनियों पर भी विशेष ध्यान रखना होगा।

ऊ—कुछ शब्दों का विशेष रूप ध्वनि संयोगों से बन जाता है, वे हमारे ध्यान से दूर न हो जाने चाहिए। जैसे वहाँ के लिए कहीं-कहीं जो शब्द मिलता है, उसका ठीक-ठीक उच्चारण क्या है : 'म्वाँ, मुआँ' या क्या? इसी प्रकार यहाँ—के लिए 'या' जैसे शब्द बोले जाते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक शब्द के उच्चारण पर ध्यान देकर ही उसे ठीक ठीक लिपिबद्ध करने की चेष्टा होनी चाहिए। जो ध्वनियाँ अपनी देवनागरी वर्णमाला से ठीक ठीक प्रकट न हो सकें उनके लिए अपने चिन्ह भी बनाये जा सकते हैं इन चिह्नों को सोदाहरण समझा देने की आवश्यकता है।

६—लिपिबद्ध करते समय अनेकों शब्द ऐसे आ सकते हैं जिन से आप परिचित न हों। ऐसे शब्दों को भी ज्यों का त्यों ही लिखिये।

हाँ उसके अर्थ के सम्बन्ध मे आप कहनेवाले से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यह सदा संभव नहीं हो सकता कि कहनेवाला उसका अर्थ जानता ही हो। फिर भी उसकी दी हुई व्याख्या का नोट आपको कर ही लेना चाहिए। साथ ही गाँव में तथा ओर-पास अन्य व्यक्तियों से भी उसकी व्याख्या पूछनी चाहिए।

७—प्रत्येक गीत के साथ निम्न लिखित सूचनाएँ अत्यन्त आवश्यक हैं—

अ—गीत सुनानेवाले का नाम, जाति तथा अवस्था।

आ—गीत कब गाया जाता है?

इ—उस गीत के सम्बन्ध में कोई विशेष बात कही जाती है?

ई—गीत किस गाँव में सुना गया?

—— ——

ब्रज की कला—स्थापत्य, मूर्ति, चित्र तथा संगीत

[श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष पुरातत्त्व संग्रहालय मथुरा]

जीवन के सुन्दर रूप की अभिव्यक्ति ललित कला है, जो मानव-हृदय की देन है और जिसकी अनुभूति भी हृदय से संबंधित है। मनुष्य के रसात्मक भाव जब परिपक्व होकर निकलते हैं तब ललित कला का रूप धारण करते हैं। ये रूप मूर्त और अमूर्त दोनों हो सकते हैं। साहित्य (काव्य, नाटकादि), संगीत (गायन, वाद्य तथा नृत्य), चित्रकला, मूर्तिकला तथा स्थापत्य—ये ललितकला के प्रधान स्वरूप हैं। इन्हें 'ललितकला' या केवल 'कला' के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारतीय समाजशास्त्रियों ने जीवन को पूर्ण बनाने के लिये सत्य और शिव के साथ सौंदर्य को आवश्यक अंग माना है। सौंदर्य के बिना जीवन नीरस हो जाता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ पुरातन काल से धर्म और दर्शन के साथ-साथ कला का अस्तित्व रहा है। इन तीनों की सम्मिलित त्रिवेणी में अवगाहन इहलोक तथा परलोक की सिद्धि का साधन कहा गया है।

हमारी प्राचीन मथुरा नगरी ललितकला विशेषतः मूर्तिकला तथा वास्तुकला (स्थापत्य) की केन्द्र थी। इतिहास से पता चलता है कि इस नगरी में तथा इसके समीपस्थ प्रदेश में ई० पू० सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक अगणित स्तूप, विहार, मंदिर, महल आदि बने परन्तु कालचक्र तथा दुर्दांत आक्रमणकारियों के निष्ठुर हाथों ने एक भी समूचा नमूना नहीं छोड़ा। उस काल की वास्तुकला का उनके प्राचीन स्थापत्य का एक भी समूचा उदाहरण आज बचा होता तो उसे देख कर पता चलता कि माथुर शिल्पी अपने कार्य में कितने प्रवीण थे। उनके द्वारा ई० पू० छठीं शताब्दी में बनाए हुए एक स्तूप को देख कर ई० दूसरी शताब्दी के लोगों को भ्रम हो गया था कि वह

मनुष्य की कृति न होकर देवों की कृति है। इसीलिए उन्होंने उसे 'देवनिर्मित' स्तूप लिखा है। स्तूपों, मंदिरों तथा महलों के कुछ अवशेष वेदिकाओं, तोरणों, बहिर्द्वारों, गवाक्षों, खंभों तथा इमारती पत्थरों के रूप में मथुरा नगर तथा उसके आसपास से मिले है। मूर्तिकला के अध्ययन के लिए तो विविध धर्मों से तथा लोक-जीवन से सम्बन्धित सहस्त्रों मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इस बची हुई विशाल सामग्री को ही देख कर पता चलता है कि माथुर शिल्पी तथा कलाकार-प्रकृति चित्रण के साथ-साथ दैवी तथा मानव भावों के अङ्कन में कितने सिद्धहस्त थे ?

ब्रज में चित्रकला तथा संगीत का भी विकास हुआ। चित्र-कला की कोई निजी प्राचीन शैली ब्रज में नहीं पाई गई, परन्तु इस कला को ब्रज की बड़ी भारी देन है। भगवान कृष्ण की विविध लीलायें तथा ब्रज के मनोरम प्राकृतिक स्थान सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही चित्रकारों के प्रधान वर्ण्य विषय हुए और उस समय से लेकर भारत में प्रचलित सभी कला-शैलियों में हम इन विषयों का प्राधान्य पाते हैं। संगीत की प्राचीनता तथा उसके विस्तार का परिचय हमें उन अनेक पाषाण तथा मृण्मूर्तियों से होता है जिनमें विविध प्रकार के वाद्य बजाते हुए स्त्री-पुरुष, नृत्य करती हुई अलंकृत नारियाँ तथा संगीतोत्सव के अन्य अनेक दृश्य मिलते हैं। ई० सोल-हवीं शताब्दी से इस कला की और भी उन्नति हुई, जिसका प्रमाण हमें तत्कालीन साहित्य में तथा रास जैसी अनोखी वस्तु के आविर्भाव और उसके विकास में मिलता है।

ब्रज की कला के इतिहास को समझने के लिये यहाँ पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों का काल जान लेना आवश्यक होगा। मथुरा में मौर्य काल से पहले की कला-कृतियाँ, शायद मिट्टी की कुछ मातृदेवी की मूर्तियों को छोड़कर नहीं प्राप्त हुई हैं जिससे हमें मथुरा कला का प्रारम्भ मौर्यकाल के प्रारम्भ से ही मानना पड़ता है। यही प्रारम्भकाल साँची, भरहुत, बोधगया तथा सारनाथ की कला का भी है। हो सकता है, भविष्य में इसके पूर्व की वस्तुएँ मिलने से हम तदनुसार मथुरा कला के प्रारम्भिक काल को ओर पीछे ले जा सकें। अस्तु।

मथुरा प्रदेश ई० पू० ३२५ से लेकर ई० पू० १८४ तक मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। इसके बाद से लेकर लगभग ई० पू० २० तक यहाँ शुङ्ग राजाओं का शासन रहा, यद्यपि बीच में लगभग १०० ई० पू० से ५७ ई० पू० तक यहाँ मध्य एशिया से आने वाले शक-क्षत्रपों का प्रभुत्व हो गया था। ई० पू० २० के बाद से १८० ई० तक यहाँ कुषाणों (शकों की एक शाखा) का राज्य रहा। इसके बाद से लेकर लगभग ३२० ई० तक यह प्रदेश नागवंशी शासकों द्वारा शासित रहा और फिर ३२० ई० से लगभग ६०० ई० तक यहाँ गुप्त-नरेशों का साम्राज्य रहा। इसके बाद से लेकर बारहवीं शती के अन्त तक (मध्यकाल में) मथुरा विभिन्न प्रादेशिक हिन्दू राजाओं के प्रभुत्व में रहा। फिर दिल्ली की अनेक मुसलमानी सल्तनतों की अधीनता में १५२६ ई० तक रह कर यह प्रदेश मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत लगभग १७ वीं श० के अन्त तक रहा। १८ वीं श० में यहाँ मराठों तथा भरतपुर के जाटों की प्रमुखता रही और १९ वीं श० के आरम्भ से लेकर अब तक यहाँ बृटिश शासन रहा जो सौभाग्य से अभी समाप्त हो गया है। लगभग १४ वीं श० से मथुरा प्रदेश की संज्ञा 'ब्रज' अधिक प्रचलित होगई। वर्तमान ब्रज में मथुरा, आगरा, भरतपुर रियासत के अतिरिक्त समीपस्थ अनेक जिलों तथा रियासतों के भाग भी सम्मिलित हैं।

मथुरा कला का 'स्वर्ण-युग' कुषाण काल के प्रारम्भ से लेकर गुप्त काल के अन्त तक कहा जा सकता है। कला की दृष्टि से तथा तत्कालीन संस्कृति की व्याख्या करने की दृष्टि से यह युग बड़ा गौरव-पूर्ण रहा है। यद्यपि इसके बाद भी लगभग १२०० ई० तक मथुरा की मूर्ति तथा स्थापत्य कलायें जारी रहीं तो भी उनमें वह सजीवता तथा विशिष्टता नहीं मिलती जिसके दर्शन हमें पूर्वोक्त युग में मिलते हैं।

बारहवीं श० के बाद से मथुरा कला का प्रकाश क्षीण पड़ जाता है और हमें ४ शताब्दियों तक उसके दर्शन नहीं होते। पर १६ वीं श० के कला-पुनरुद्धार युग में साहित्य, संगीत तथा चित्रकला के रूप में हमें उसका आलोक पुनः दिखाई पड़ता है।

(१) स्थापत्य

(क) जैन तथा बौद्धधर्म के स्तूप और मठ

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्थापत्य की एक भी समूची कृति आज ब्रज में नहीं बच पाई। मथुरा में जैनधर्म का केन्द्र होने का प्रमाण ई० पू० सातवीं शताब्दी से मिलता है जब कि वर्तमान कंकाली टीले के स्थान पर उनके 'देवनिर्मित स्तूप' की रचना हुई। स्तूप में तीर्थङ्कर या भगवान बुद्ध या उनके प्रमुख शिष्यों के अवशेष—राख, नख, बाल आदि रखे जाते थे। जब भगवान बुद्ध का देहावसान हुआ था तब उनके अवशेष आठ भागों में विभक्त कर प्रत्येक के ऊपर एक-एक स्तूप की रचना की गई थी। मौर्यसम्राट् अशोक के समय बौद्ध स्तूपों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। ऐसे स्तूपों के उदाहरण साँची (भोपाल रियासत) तथा सारनाथ (बनारस के पास) में मिलते हैं। ये स्तूप काफी विशाल हैं। मथुरा में भी इस काल में ऐसे ही बड़े स्तूपों की रचना हुई होगी। ऐसे स्तूपों का नमूना मथुरा से प्राप्त एक आयागपट्ट (नं० क्यू० २) पर सुरक्षित है। ये स्तूप ईंट या पत्थर के बनाये जाते थे। सब से नीचे एक चौकोर आधार बनाया जाता था, उस पर गोलाकार रचना (Drum) और उसके भी ऊपर एक अंड का निर्माण किया जाता था। स्तूप के सब से ऊपर एक डंडे या यष्टि के सहारे छत्र रहता था। कभी कभी आधार के ऊपर ही अंड की रचना की जाती थी और बीच का ड्रम नहीं रखा जाता था। स्तूप का बहिर्भाग विविध भाँति के उत्कीर्ण शिलापट्टों से सजाया जाता था। स्तूप की परिक्रमा के लिये एक वेष्टनी (कठघरा) बनाया जाता था इसे वेदिका कहते थे। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर खंभे आड़े पत्थरों (सूची) के द्वारा जोड़े जाते थे। प्रत्येक दो खंभों के ऊपर एक-एक पत्थर रखा जाता था, जिसे उष्णीष या मूर्धस्थ पत्थर कहते हैं। वेष्टनी या वेदिका के ये सब पत्थर विविध भाँति की मूर्तियों से अलंकृत होते थे। वेदिका के चारों ओर एक एक तोरण द्वार रहता था।

स्तूपों के अतिरिक्त मठों या विहारों की भी रचना की जाती थी। जिनमें भिक्षु लोग रहते थे। मथुरा से प्राप्त कई शिलालेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ जैनियों तथा बौद्धों के अनेक विहार थे जिनमें

बड़ी संख्या में भिक्षु लोग रहते थे। ह्वेनसांग आदि चीनी यात्रियों के विवरणों से भी यह बात पुष्ट होती है। दुर्भाग्य से मथुरा में विहार का भी कोई नमूना नहीं बचा है परंतु इनकी रचना शैली तक्षशिला, सारनाथ, नालंदा आदि स्थानों में मिले हुए भग्नावशिष्ट विहारों के समान ही रही होगी।

कुषाण-काल (ई० सन् के प्रारंभ से लगभग २०० ई० तक) में मथुरा में स्तूपों तथा विहारों के निर्माण में सबसे अधिक वृद्धि हुई।

(ख) हिन्दुओं के मन्दिर —

मन्दिरों का उद्भव तथा विकास स्तूपों से भिन्न रूप में और सम्भवतः उनसे पहले हुआ। स्तूप तीर्थङ्करों या भिक्षुओं की समाधि स्वरूप होते थे, परन्तु मन्दिर देवता के निवास-स्थान होते थे, इसी से उन्हें देवालय कहा गया है। मन्दिर में एक या अनेक देवों की मूर्तियों का होना तथा उनका पूजा जाना अनिवार्य था। मन्दिरों की रचना भी स्तूप से पृथक थी। शिखर-शैली का होना मन्दिर का निजस्व है जो सुमेरु, त्रिकूट, कैलास आदि पर्वतों से लिया गया है। मन्दिर के बाह्य अलंकरण में देव, यक्ष, किन्नरादि प्रदर्शित होते थे।

जैनों तथा बौद्धों के स्तूपों के ईसा से कई शताब्दी पहले मथुरा में बनने के प्रमाण मिलते हैं। पर मथुरा में हिन्दुओं के सबसे प्राचीन मन्दिर का जो उल्लेख मिला है वह राजा शोडास के राज्य-काल (८० ई० पू०) का है। इससे पता चलता है कि ८० ई० पू० में वासुदेव कृष्ण का चतुःशाला मन्दिर, तोरण व वेदिका सम्भवतः भगवान कृष्ण के जन्मस्थान (वर्तमान कटरा केशवदेव) में बने थे। इसमें सन्देह नहीं कि इसके बहुत पहले भी यहाँ भगवान-कृष्ण के मन्दिर थे। कुषाणों के राज्य-काल में अधिकांश बौद्ध तथा जैन स्तूप, मठ आदि बने। यद्यपि इस काल की अनेक हिन्दू मूर्तियाँ, यूप, स्तंभ आदि प्राप्त हुए हैं, तथापि किसी मन्दिर के निर्माण का उल्लेख नहीं मिला। गुप्तवंशी शासक वैष्णव थे। उनके काल की बनी हुई अनेक वैदिक धर्म संबंधी देवी देवताओं की मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त हुई हैं। गुप्तों के राज्यकाल में व्रज में अनेक मन्दिर बने होंगे जिनका इस समय पता नहीं चलता। मध्यकाल में मन्दिर अधिक संख्या में बने, जैसा कि तत्कालीन मन्दिरों के अवशेषों से पता चलता है। महा-

वन का मंदिर भी इसी काल में बना। १७ वीं शताब्दी में मथुरा में अनेक बड़े मंदिर थे। जिनका विध्वंश मुसलमान आक्रांताओं ने कर दिया। उनकी धार्मिक नीति के फलस्वरूप मंदिरों का निर्माण रुक गया। केवल १६वीं शताब्दी में हम अकबर के द्वारा वृन्दावन में मंदिर निर्माण करने की अनुमति पाते हैं। उस काल के चार मंदिर अब भी विद्यमान् हैं।

(ग) स्थापत्य की अन्य कृतियाँ—

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, मथुरा स्थापत्य का कोई भी समूचा उदाहरण नहीं बच पाया, जिससे हम प्राचीन नगरों, प्रासादों, घरों, विद्यालयों आदि की निर्माण शैली का सम्यक्-ज्ञान प्राप्त करने मे असमर्थ हैं। केवल कुछ उपलब्ध इमारती पत्थरों के द्वारा हम थोड़ी बहुत जानकारी पा सके हैं और वह भी प्रायः मथुरा नगर तथा उसके प्रासादों के सम्बन्ध में। ये प्रासाद या हर्म्य कई तलों के होते थे। जिनपर चढ़ने के लिये सोपानमार्ग (जीने) होते थे। जीने के किनारों (पार्श्व) पर वेदिका स्तंभ लगे रहते थे। हर्म्य मे स्नानागार, भोजन-गृह, शयन-गृह, शृङ्गार-गृह, अन्तःपुर आदि पृथक-पृथक होते थे। ऊपर यथास्थान गवाक्ष होते थे, जिनसे स्त्री-पुरुष नीचे होने वाले उत्सवों आदि को झाँकते थे। कुछ मकानों में पक्के फर्श भी होते थे, पर बहुत कम। ऐसे फर्श अब तक केवल एक स्थान (बाजना ग्राम) से मिले हैं।

मकानों में जो चौखट, द्वार, बाजू, खंभे, धन्नी आदि लगते थे उन्हें कमल, मंगल-घट कीर्तिमुख, त्रिविध प्रकार के देवी-देवताओं, यक्ष, किन्नर तथा पशु-पक्षियों की कृतियों से अलंकृत किया जाता था। ईंट की बनी हुई इमारतों पर, जिनकी संख्या मथुरा में बहुत बड़ी थी विभिन्न भाँति की चित्रित ईंटें बाहर की ओर लगाई जाती थीं। नगर के चारों ओर संभवतः मिट्टी की दीवार थी, जिसके भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। इस दीवाल में चारों दिशाओं में एक-एक द्वार (गोपुर) रहा होगा। ऐसा गोपुर शुंगकालीन एक शिलापट्ट पर चित्रित है।

ग्राम-निवासी जनसाधारण के मकानों की रचना के विषय में हम प्रमाण के साथ नहीं कह सकते, पर इतना कहा जा सकता है कि वे

अधिकांश में कच्चे होते रहे होंगे पर उनकी निर्माण-शैली में तथा उनके अलंकरण में कला का काफी ध्यान रखा जाता रहा होगा। मथुरा नगर से दूर ब्रज के गाँवों से जो कलात्मक कृतियाँ प्राप्त हुई हैं और प्राप्त होती जा रही हैं उनमें प्राचीन कलापूर्ण लोक-जीवन की झलक मिलती है। नगर तथा ग्राम जीवन से दूर आश्रमों में रहने वाले साधु-मुनियों की पर्णकुटियों के भी दो नमूने हमें प्राप्त हुए हैं, जिनसे उन पाठशालाओं के कलापूर्ण निर्माण का परिचय मिलता है। इनमें नीचे शमी या बाँस आदि के मजबूत स्तंभ लगा कर उन्हें ऊपर से कुश, काश तथा पत्तों द्वारा आच्छादित करते थे।

(घ) मुगलकालीन स्थापत्य—

मुगलकालीन स्थापत्य में कुछ नमूने ब्रज में बच पाये हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) मथुरा का सती बुर्ज—

यह ५५ फीट ऊँचा एक चौखंडा बुर्ज है। जयपुर के राजा विहारमल की रानी इस स्थान पर सती हुई थी। उनके लड़के राजा भगवानदास ने अपनी माता की स्मृति रूप में सन् १५७० में इसे निर्माण करवाया। इसका शिखर पहले काफी ऊँचा था, पर औरंगजेब ने उसे तुड़वा दिया।

(२) गोविंददेव का मंदिर, वृन्दावन—

वृन्दावन के प्राचीन मंदिरों में निर्माण-कला की दृष्टि से यह मंदिर सर्वश्रेष्ठ है। कहा जाता है कि सम्राट अकबर वृन्दावन आने पर यहाँ के स्थान देख बड़े संतुष्ट हुए और उन्होंने यहाँ गोविंददेव आदि चार मंदिर बनवाने की अनुमति दी। इस कार्य में उन्होंने राजकीय-कोष से भी सहायता दी। गोविंददेव के मंदिर का निर्माण कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने दोनों गुरु श्री रूप और सनातन के आदेश से करवाया था। यह मंदिर १२ फुट ऊँची कुर्सी के ऊपर बना है और इसका विस्तार २००×१२० फुट है। औरंगजेब ने ऊपर की बुर्जें तुड़वादी थीं, पर नीचे का मंदिर-भाग मजबूत होने के कारण नहीं टूट सका।

(३) मदनमोहन का मंदिर—

यह शिखराकार मंदिर कालीदह घाट के पास है। इसकी भी-

निर्माण-शैली सुन्दर है। इसमें एक विशेषता यह है कि इसके ऊपर का आमलक अब तक सुरक्षित है।

(४) गोपीनाथ का मन्दिर—

मदनमोहन के मंदिर से इसकी बनावट बहुत मिलती-जुलती है।

(५) जुगलकिशोर मन्दिर (केशीघाट के पास)—

यह मंदिर अन्य प्राचीन मंदिरों की अपेक्षा अब अच्छी स्थिति पर है। इसका भी शीर्ष (आमलक) सुरक्षित है। इस मंदिर का निर्माण १६२७ ई० में हुआ।

(६) हरदेव मन्दिर, गोवर्धन—

यह मंदिर भी कछवाहा राजा जयसिंह के द्वारा बनवाया गया और सोलहवीं शताब्दी के स्थापत्य का अच्छा नमूना है।

उपर्युक्त सती बुर्ज तथा पाँचो मन्दिर लाल पत्थर के बने हुए हैं। इनकी रचना-शैली हिन्दू स्थापत्य का सुन्दर उदाहरण है, यद्यपि कहीं-कहीं मुग़ल स्थापत्य का भी सम्मिश्रण पाया जाता है, जो स्वाभाविक था।

(७) छठी पालना या चौरासी मंदिर, महावन —

यह मंदिर महावन के पूर्वी किनारे पर है। वास्तव में महावन ही प्राचीन गोकुल है। जिस स्थान पर यह मंदिर है वहाँ से उत्तर मध्यकालीन अनेक मूर्तियाँ तथा शिलापट्ट मिले हैं। इससे ज्ञात होता है कि लगभग आठवीं शताब्दी में यहाँ एक विशाल मंदिर बना था। उसके गिर जाने पर उसके प्राचीन खंभों का सहारा देकर वर्तमान इमारत औरंगजेब के समय में बनाई गई। प्राय: सभी खंभों पर सुन्दरता-पूर्वक, कमल, मंगलघट, कीर्ति मुख आदि आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।

(ङ) अन्य इमारतें—

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सुन्दर और विशाल मंदिरों, हवेलियों तथा छतरियों की रचना हुई। इनके मथुरा, वृन्दावन कामवन आदि के मंदिर तथा घाट, मथुरा, डीग, भरतपुर आदि की हवेलियाँ तथा महल और गोवर्धन, डीग की छतरियाँ उल्लेखनीय हैं।

ये इमारतें तत्कालीन ब्रज में प्रचलित राजपूत-स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण हैं।

(२) मूर्तिकला—भारतीय विचारधारा में सगुणरूप को विशेष महत्व दिया गया है। भगवान् कृष्ण की लीला भूमि होने के कारण ब्रज में उनके तथा अन्य देवताओं के साकार रूप की उपासना और भी युक्ति संगत थी। मथुरा में मूर्तिकला का प्रारम्भ स्पष्ट रूप से ई० पू० चौथी शताब्दी से मिलता है और उसका विकास बारहवीं शताब्दी तक बराबर चलता है। लगभग १६ शताब्दियों के इस दीर्घकाल में मथुरा की मूर्ति-कला ने असाधारण उन्नति की। जैन, बौद्ध तथा हिन्दू तीनों धर्मों ने ब्रज की पावन भूमि में आश्रय-पाया और तीनों को यहाँ अपनी कला एवं धर्म के विस्तारार्थ सुगम साधन प्राप्त हुए। यहाँ के कला-विदों ने प्रत्येक धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों की कलापूर्ण रचना कर अध्यात्म तथा सौन्दर्य का अपूर्व सामञ्जस्य किया। मूर्तिरूप में भगवान बुद्ध का पूजन मथुरा मे ही प्रारम्भ हुआ। हिन्दू-धर्म के अनेक देवताओं की मूर्तियाँ सबसे पहले मथुरा के कारीगरों ने ही निर्मित कीं। उसी प्रकार जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं का निर्माण भी सम्भवतः यहीं से प्रारम्भ हुआ। पाषाण तथा मृत्तिका पर उत्कीर्ण विविध भाँति की सहस्रों मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें से अधिकाँश कुषाण-काल की हैं। ऐसा मालूम होता है कि कुषाण-काल में मथुरा प्रदेश मूर्ति-निर्माण का एक बड़ा आलय और विविध धर्मों की मूर्तियों का अक्षय भण्डार था।

मथुरा में अधिकाँश लाल पत्थर की मूर्तियाँ मिली हैं जो यहाँ के निकटवर्ती फतहपुरसीकरी तथा भरतपुर में अनेक स्थानों की खानों से मिलता है और मूर्ति गढ़ने में बड़ा मुलायम होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पीतल, काँसे, ताँबे आदि की भी मूर्तियाँ मिलती हैं और एक बड़ी संख्या मे मिट्टी की मूर्तियाँ बर्तन आदि मिले हैं। साथ ही अनेक प्रकार को बेलबूटों से युक्त ईंटें भी प्राप्त हुई हैं।

(अ) जैन मूर्ति-कला—

जैन धर्म का मथुरा में सबसे बड़ा केन्द्र शहर के पश्चिम में स्थित कंकाली टीला था। यहाँ सन् १८८८ से १८९१ तक की खुदाई में लगभग एक सहस्र मूर्तियाँ निकली थीं जो सभी लखनऊ-संग्रहालय में

हैं। कंकाली टीलेके अतिरिक्त ब्रज के अन्य स्थानों से भी अच्छी संख्या में जैन मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये तीन भागों में विभक्त की जा सकती हैं—

(१ तीर्थङ्कर मूर्तियाँ—

जैनों के देवता तीर्थङ्कर या जिन कहाते हैं। ये संख्या में चौबीस हैं। मथुरा कला में शुंगकाल से लेकर मध्यकाल के अन्त (लगभग १२०० ई०) तक ये मूर्तियाँ मिली हैं, मुख्यतया आदिनाथ, नेमिनाथ पार्श्वनाथ तथा महावीर की। ये मूर्तियाँ अधिकांश में ध्यानमुद्रा में रहती हैं; कुछ सीधी खड़ी हुई भी। कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी मिली हैं जिनमें चारों दिशाओं में से प्रत्येक पर एक-एक तीर्थंकर की मूर्ति है। ऐसी प्रतिमाओं को सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ कहते हैं। मथुरा संग्रहालय में बी० १; बी० ६७, बी० ६८ तथा बी० ४ विशेष दर्शनीय हैं।

(२) देवियों की मूर्तियाँ—

तीर्थंकरों की मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ जैन देवियों की भी मूर्तियाँ मिली हैं, जो या तो गुप्तकाल की हैं या मध्यकाल की। इनमें नेमिनाथ की यक्षिणी अंबिका (डी० ७) तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी (डी० ६) की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

(३) आयागपट्ट आदि—

आयागपट्ट वर्गाकार शिलापट्ट होते थे जो पूजा में प्रयुक्त होते थे और जिनके ऊपर तीर्थङ्कर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि पूजनीय चिह्न बने रहते थे। मथुरा संग्रहालय में (नं० क्यू० २) एक सुन्दर आयागपट्ट है, जिसे, उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार, वसु नाम की एक वेश्या ने दान में दिया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप तथा वेदिकाओं सहित तोरण-द्वार बना हुआ है। लखनऊ संग्रहालय में आयागपट्टों के कई सुन्दर उदाहरण (नं० जे० २४८, २४९, २५०) रखे हैं। आयागपट्टों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के शिलापट्ट (सिरदल, वेदिकास्तंभ) आदि मिले हैं जिन पर जैन-धर्म संम्बन्धी मूर्तियाँ तथा चिन्ह हैं। तीर्थङ्कर मूर्तियों को छोड़ कर अलंकरण के उपकरण हैं यक्ष, यक्षी कमलादि पुष्प, अशोक-चंपकादि वृक्ष, मीन, मकर, गज, सिंह, वृषभ आदि जंतु-जानवर, मंगलघट,

कीर्तिमुख आदि। ये प्रायः वही हैं जो बौद्धकला में तथा बहुत कुछ हिन्दू कला में पाये जाते हैं।

(आ) बौद्ध मूर्तिकला—यद्यपि भगवान् बुद्ध का पूजन मौर्य काल में ही प्रारंभ हो चुका था, तथापि वह उनके चिन्हों की पूजा तक ही सीमित था। भगवान् बुद्ध की मूर्ति का निर्माण उस काल में नहीं हुआ था। लगभग शुंग काल के अन्त तक हम यही दशा पाते हैं। साँची, भरहुत, बोधगया आदि स्थानों से बौद्धधर्म से संबंधित जितनी भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप हाथी आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्तरूप में भगवान बुद्ध का पूजन कहीं नहीं। मथुरा से भी जो प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं उन पर इन चिन्हों के साथ बुद्ध के भिक्षापात्र तथा उष्णीष (म० संग्र०, नं० आई १) का पूजन मिलता है। मथुरा में हिन्दुओं के बलराम आदि देवों की मूर्तियाँ कम से कम शुंग काल से पाई जाने लगती हैं। बौद्धधर्मानुयायियों में भी अपने देव को मूर्ति रूप में देखने की उमंग का उठना स्वाभाविक था। इधर कुषाण शासक भी मूर्ति-निर्माण के प्रेमी थे ही। अतएव हम कुषाण काल के आरंभ में मथुरा के तक्षकों द्वारा सर्व प्रथम भगवान् बुद्ध की मूर्ति विशाल काय रूप में निर्मित पाते हैं। इस प्रकार मथुरा की कला में ही हमें मूर्तिरूप में बुद्ध का सर्व-प्रथम दर्शन होता है। बुद्ध तथा बोधिसत्त्व की ये प्रारंभिक मूर्तियाँ परखम यक्ष की कला-शैली से प्रभावित मिलती हैं। कला के विकास के साथ इन मूर्तियों का निर्माण अधिक सुन्दर तथा अलंकृत होने लगा। और गुप्त काल में हम बुद्ध मूर्ति को दिव्य सौंदर्य तथा आध्यात्मिक गांभीर्य के कलापूर्ण सम्मिश्रण के रूप में अभिव्यक्त पाते हैं।

गंधार कला—जब मथुरा में बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हो गया तब गंधार प्रदेश के तत्कालीन यूनानी शासकों द्वारा भी इस ओर ध्यान दिया गया और तद्देशीय यूनानी कला में, जिसे 'गंधार कला' कहते हैं मूर्तियों की रचना की गई। यद्यपि गंधार कला के भी वर्ण्य विषय वही थे जो मथुरा कला के तो भी एक विदेशी कला-शैली में वह सौंदर्य ओज तथा तन्मयता का भाव नहीं लाया जा सका जो बुद्ध मूर्तियों के लिए अपेक्षित था। कुछ विदेशी

विद्वान् मथुराकला पर गंधारकला के प्रभावकी बात भी बडी दूर तक ले जाते है। यद्यपि मथुराकला की कुछ कृतिया पर गंधारकला की छाप दिखाई देती है, पर इन गिनो-चुनी प्रतिमाओं के आधार पर जो विशेषत: तत्कालीन कुषाण शासकों के कारण (जिनके साम्राज्य में गंधार भी शामिल हो गया था) पाई जाती है, यह कहना कि मथुरा कला गंधारकला से काफी प्रभावान्वित हुई युक्ति संगत नहीं। वास्तव में मथुराकला का स्वतंत्र उद्भव तथा विकास है, जिसका स्रोत साँची तथा भारहुत की भारतीय कला में मिलता है न कि उस गंधारकला में जिसका प्रारंभ मथुराकला के प्रारंभ होने के कई शताब्दियों बाद पाया जाता है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएँ - ज्ञान या संबोधि प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संज्ञा 'बोधिसत्व' थी, और उसके बाद 'बुद्ध'। इन दोनों में अंतर यह है कि बोधिसत्व को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलंकृत राज-वेष मे दिखाया जाता है, पर बुद्ध को इन से रहित केवल वस्त्र (चीवर) धारण किये हुए। बुद्ध के सिर पर बालों का जटा-जूट (उष्णीष) रहता है जो उनके बुद्धत्व या ज्ञानसंपन्न होने का सूचक है। दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मथुरा में या तो खड़ी मिलती हैं या पद्मा-सन में बैठी हुई, विशेषत: कुषाण-काल में। पर गुप्तकालीन मूर्तियाँ अधिकांश खड़ी मिलती हैं। मथुरा संग्रहालय की उत्कृष्ट प्रतिमाएँ नं० ए१, ए२, ए५, ए४०, तथा नं० २७९८ हैं।

मुद्राएँ—बोधिसत्व तथा बुद्ध प्रतिमाएँ हाथों के द्वारा अनेक भावों को व्यक्त करती पाई जाती हैं। इन भाव विशेषों को मुद्रा कहते हैं। मथुरा-कला में निम्न लिखित चार मुद्राएँ मिलती हैं:—

(१) **ध्यानमुद्रा**—इसमे बोधिसत्व या बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए तथा एक हाथ के ऊपर दूसरा रखे हुए दिखाये जाते हैं।

(२) **अभय मुद्रा**—इसमें वे दाएँ हाथ को उठा कर उसे कंधे की की ओर मोड़ कर श्रोताओं या दर्शकों को अभय-प्रदान करते हुए दिखाये जाते हैं।

(३) **भूमिस्पर्श-मुद्रा**—इसमें ध्यानावस्थित बुद्ध दाएँ हाथ से भूमि को छूते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। जब बोधगया में उनके तप

को नष्ट करने का प्रयत्न कामदेव द्वारा किया गया तब उन्होंने इस बात की साक्षी देने के लिए कि उनके मन में कोई भी काम-विकार नहीं पृथ्वी को स्पर्श कर उसका आह्वान किया था, जिसे उक्त मुद्रा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) धर्म चक्र-प्रवर्तन मुद्रा—इसमें भगवान् बाएँ हाथ की उँगलियों के ऊपर दाएँ हाथ की उँगलियों को इस प्रकार रखते हैं मानों वे चक्र घुमा रहे हों। यह दृश्य सारनाथ में उनके द्वारा बौद्ध-धर्म के सर्व-प्रथम उपदेश को सूचित करता है, जिसके द्वारा उन्होंने संसार में एक नये धर्म का प्रवर्तन किया।

इनके अतिरिक्त एक 'वरद मुद्रा' भी है जो मथुरा में नहीं मिलती। इसमें भगवान् का दायाँ हाथ हथेली को सामने किये हुए नीचे लटकता है, मानों वे वरदान दे रहे हों।

बुद्ध के जीवन की घटनाएँ—बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त उनके जीवन की घटनाएँ भी अनेक शिलापट्टों पर चित्रित मिलती है, इन्हें जातक कहते हैं। बौद्धधर्म के अनुसार बुद्ध होने के पहले भगवान कई योनियों में विचरे। उन्हीं पूर्वजन्मों की कहानियाँ जातक कथाएँ हैं। मथुरा में इस प्रकार के दृश्यों वाले कई पट्ट हैं। (देखिए आई ४)। पूर्वजन्म की घटनाओं के अतिरिक्त गौतम बुद्ध के वर्तमान जीवन की घटनाएँ—उनका जन्म, ज्ञान-प्राप्ति, धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन, परिनिर्वाण स्मृतियाँ भी मथुराकला में चित्रित मिलती है। (नं० एच० १, एच० ११ आदि)

(६) वेदिकास्तंभों पर की मूर्तियाँ स्तूपों का वर्णन करते समय वेदिकास्तभों का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ उन पर उत्कीर्ण मूर्तियों का वर्णन किया जायगा। इन स्तंभों पर अधिकांश मे यक्षियों के चित्रण हैं। मुक्ताग्रथित केश-पाश; कर्णकुण्डल, मौक्तिक एकावली तथा गुच्छक हार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि धारण किये हुए ये स्त्रियाँ विविध आकर्षक मुद्राओं में दिखाई गई हैं। कहीं कोई युवती उद्यान में फूल चुन रही है, कोई कोई कंदुक-क्रीड़ा में लग्न है (जे० ६१), अशोक वृक्ष को ताड़ित कर उसे पुष्पित कर रही है (नं २३२५), या निर्झर में स्नान कर रही है अथवा स्नानोपरांत तन

ढक रही है (जे० ४), किसी के हाथ में वीणा (जे० ६२) और किसी के वंशी है तो कोई प्रमदा नृत्य में तल्लीन है। कोई सुन्दरी स्नानागार से निकलती हुई अपने बाल निचोड़ रही है, और नीचे हंस उन पानी की बूँदों को मोती समझ कर अपनी चोंच खोले खड़ा है (नं० १५०६)। किसी स्तंभ (जे० ५) पर वेणी-प्रसाधन का दृश्य है, किसी के संगीनोत्सव का और किसी पर मधुपान का (नं० १५१)। इस प्रकार सैकड़ों मनोरंजक दृश्य इन स्तंभों पर चित्रित हैं। कुछ भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म से संबंधित विभिन्न जातक कहानियों के (नं० जे० ४ का पृष्ठ भाग) और कुछ पर महाभारत आदि के (नं०१५१) दृश्य भी हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पशु-पक्षी, लता-फूल आदि भी इन स्तंभों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। इन वेदिकास्तंभों को शृंगार और सौंदर्य के जीते-जागते रूप कहना चाहिए जिन पर कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव-जगत् की सौंदर्य-राशि ला कर उपस्थित कर दी है।

(ई) **यक्ष किन्नर आदि की मूर्तियाँ**—मथुराकला में यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण आदि की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। ये सुख-समृद्धि, संगीत तथा विलास के अधिष्ठाता थे। यक्षों की प्रतिमाएँ सबसे अधिक मिली हैं। इनमें सब से महत्वपूर्ण परखम नामक गाँव से प्राप्त तृतीय श० ई० पू० की विशालकाय मूर्ति (सी० १) है। ऐसी कई प्रतिमाएँ मथुरा से प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ कोरकर बनाई जाती थीं जिससे उनका दर्शन चारों ओर से हो सके। शुंगकाल के अंत में तथा कुषाण-काल में ऐसी ही मूर्तियों के आधार पर विशाल-काय बोधिसत्व की खड़ी हुई मूर्तियाँ गढ़ी गईं।

यक्षों में कुबेर तथा उसकी स्त्री हारीती का स्थान बड़े महत्त्व का है। और इनकी अनेक मूर्तियाँ मथुरा में प्राप्त हुई हैं। कुबेर धन के देवता माने गये हैं और बौद्ध, जैन तथा हिन्दू तीनों धर्मों में इनका पूजन मिलता है। कुबेर जीवन के आनंदमय रूप के द्योतक हैं और इसी रूप में इनकी अधिकांश मूर्तियाँ मिली हैं। संग्रहालय में (सी० २, सी० ५ तथा सी ३१) नंबर की कुबेर की उल्लेखनीय मूर्तियाँ हैं, जिनमें वे सुरापान करते हुए चित्रित किये गये हैं। इनके हाथों में सुरापात्र बिजौरा नीबू तथा रत्नों की थैली या नेवला रहता है। हाल में उत्तरकुषाणकाल की कुबेर की एक सुन्दर अभिलिखित मूर्ति प्राप्त

हुई है (नं० २२३२)। कुबेर के साथ उसकी स्त्री हारीती की भी मूर्ति मिलती है। यह प्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है और कला में इसका चित्रण बच्चों को साथ लिए हुए मिलता है।

मथुराकला में यक्षियों का बहुत चित्रण मिलता है। इसके विषय में पिछले पृष्ठ में लिखा जा चुका है। इनके अतिरिक्त पूजन या विविध क्रीड़ाओं में संलग्न किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण, विद्याधर आदि भी चित्रित किये गये हैं।

(उ) नाग मूर्तियाँ—यक्षों आदि के समान प्राचीन मथुरा में नागों की पूजा मिलती है। इनका भी सम्बन्ध तीनों धर्मों से पाया जाता है। भगवान कृष्ण के भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। विष्णु की शय्या भी अनन्त नागों की बनी हुई कही गई है। जैनधर्म में नाग दो प्रधान तीर्थंकरों—पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्व के चिह्न हैं। बौद्धधर्म के अनुसार मुचुलिंद नामक नाग ने ही भगवान बुद्ध के ऊपर छाया की थी तथा नन्द और उपनन्द नागों ने उन्हें स्नान कराया था। रामग्राम स्तूप की रक्षा भी नागों द्वारा की गई थी (देखिए शिलापट्ट नं० आइ० ६)। इस प्रकार तीनों धर्मों में नागों का पूज्य स्थान है। नागों की मूर्तियाँ पुरुषाकार तथा सर्पाकार—दोनों में ही मिलती हैं। इनके अतिरिक्त बलराम की भी मूर्तियाँ मिलती हैं जिनके गले में वैजयंती माला आदि आभूषण तथा हाथों में मुसल और वारुणीपात्र दिखाये जाते हैं। मथुरा-संग्रहालय में इस प्रकार की कुषाण तथा गुप्तकालीन कई सुन्दर मूर्तियाँ हैं (देखिए नं० सी० १५, सी० १६ तथा ४३५)। नाग की सबसे महत्वपूर्ण मूर्ति नं० सी० १३ है जो पौने आठ फुट ऊंची है। यह छड़गाँव नामक स्थान से प्राप्त हुई थी। नाग की कुण्डलियाँ बड़े ओजपूर्ण तथा ऐंड़दार ढङ्ग से दिखाई गई है। इस मूर्ति की पीठ पर खुदे हुए लेख से ज्ञात होता है कि यह महाराजाधिराज हुविष्क के राज्य के चालीसवें वर्ष (सन् ११८ ई०) में सेनहस्ती तथा भोणुक नामक दो मित्रों के द्वारा बनवाकर प्रतिष्ठापित की गई। भूमिनाग (नं० २११) तथा दधिकर्ण नाग (नं० १६-१०) की भी मूर्तियाँ मथुरा-संग्रहालय में प्रदर्शित है। बलदेव में दाऊजी की प्रसिद्ध विशालकाय मूर्ति भी कुषाणकाल की महत्वपूर्ण कृतियों में है।

(ङ) हिंदूधर्म की मूर्तियाँ—हिन्दू मूर्ति-कला के विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बड़े महत्व का है। यहाँ सर्वप्रथम अनेक देवों की मूर्त-रचना की गई। पौराणिक देवों के मूर्ति-विज्ञान के अध्ययन के लिये यहाँ की कला में बड़ी सामग्री है। यहाँ विभिन्न देवताओं की मूर्तियों का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

ब्रह्मा—मथुरा संग्रहालय में ब्रह्मा की कुषाणकालीन दो मूर्तियाँ हैं। इनमें सबसे दर्शनीय तथा अद्भुत मूर्ति नं० ३८२ है। भारतवर्ष में ब्रह्मा की यह मूर्ति सबसे प्राचीन है। इसमें तीन मुख एक सीध में दिखाये गये हैं और चौथा बीच वाले सिर के पीछे। बौद्ध मूर्तियों की तरह इसमें भी छाया मण्डल तथा अभय मुद्रा दिखाए गये हैं। ब्रह्मा की मध्यकालीन मूर्तियाँ भी मथुरा से मिली हैं। इनमें महावन से प्राप्त डी० २२ संख्यक मूर्ति उल्लेखनीय है, जिसमें ब्रह्मा अपनी पत्नी सावित्री के साथ बैठे दिखाये गये हैं।

शिव—शिव की भी मूर्ति-पूजा का अति प्राचीन रूप मथुरा में मिलता है। कुषाण शासकों में विम कैडफाइसिस, वासुदेव आदि के सिक्कों पर नंदीसहित शिव की एक, तीन या पंचमुखी मूर्तियाँ मिलती हैं। कुषाण कालीन शिवलिंग की एक मूर्ति मथुरा से मिली है जिसकी पूजा करते हुए शक लोग दिखाये गये हैं (नं० २६६८)। मथुरा में मुख्य रूप में भी शिव की उपासना बहुत प्रचलित थी। ऐसे कई सुन्दर कुषाण तथा गुप्तकालीन शिवलिंग प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह है जिसमें लिंग के साथ शिव की खड़ी हुई सम्पूर्ण मूर्ति दिखाई गई है। इसमें शिव की चार भुजाएँ हैं तथा वे ऊर्ध्वरेतस हैं। नं० २५२८ की मूर्ति गुप्तकालीन एकमुखी लिङ्ग तथा नं० ५१६ मूर्ति पञ्चमुखी लिंग के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तरगुप्तकालीन, की २०८४ संख्यक मूर्ति में नन्दी के सहारे खड़े हुए शिव पार्वती पत्थर के दोनों ओर बड़ी सुन्दरता से उत्कीर्ण किये गये हैं। भगवान् शङ्कर के दाहिने हाथ में, जो अभयमुद्रा में है, एक नीलकमल है। नं० २५११ शिव-पार्वती की गुप्तकालीन मूर्ति है जिसमें वे कैलास पर्वतपर बैठे दिखाये गये हैं और रावण पर्वत को उठा रहा है। पर्वत का एक कोना उठ जाने से पार्वती की भयभीत मुद्रा तथा शिव का क्रुद्ध भाव दर्शनीय है। गुप्तकाल की अर्द्धनारीश्वर की

मूर्त्तियाँ भी मिली हैं (नं० ३६२, ७७२), जिनमें आधा अङ्ग शिव का और आधा पार्वती का दिखाया गया है।

विष्णु—विष्णु की भी कुषाणकालीन मूर्तियाँ मथुरा में मिली हैं, जो भारत में अन्यत्र नहीं प्राप्त होतीं। ६३३ नम्बर की चतुर्भुजी मूर्ति बड़े महत्व की है। इसका निर्माण कुषाणकालीन बोधिसत्वों से बहुत मिलता है। एक हाथ अभयमुद्रा में है और दूसरे में अमृतघट है। शेष दो हाथों में वे गदा तथा चक्र लिए हैं। इस प्रकार कुषाण काल में हम विष्णु के साथ केवल दो ही आयुध पाते हैं, बाद में शंख तथा पद्म और जुड़ गये। नं० २५२० मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व का शिलापट्ट है जिस पर विष्णु के अर्द्धनारीश्वर रूप का चित्रण है। आधे भाग में विष्णु है तथा आधे में राजलक्ष्मी। नं० १०१० भगवान् विष्णु की विराट रूप वाली अष्टभुजी मूर्ति है। परन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय मूर्ति नं० ई० ६ है जो गुप्त-काल की है। इसमें ध्यान मुद्रा में चतुर्भुजी विष्णु दिखाये गये हैं। सिर पर अलंकृत-किरीट मुकुट है। इसके अतिरिक्त वे कुण्डल, मुक्ताहार भुजबन्ध तथा वैजयंती आदि धारण किये हैं। उनके लहरदार वस्त्र बड़े रोचक ढंग से प्रदर्शित किये गये हैं। यह मूर्ति गुप्त-कालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। मूर्ति के ऊपर एक छत्र है जो पूर्ण विकसित कमलों तथा पत्र रचना से अलंकृत है। इस मूर्ति के अतिरिक्त २५२५ नं० की विष्णुमूर्ति भी गुप्त कला का सुन्दर तथा अनोखा उदाहरण है। यह नृसिंह-वराह-विष्णु की मूर्ति है। बीच में भगवान विष्णु का मुख तथा अगल-बगल नृसिंह तथा वराह अवतारों के मुख हैं। नं० २८८४ की मूर्ति भी ऐसी ही है, पर उसमें नृसिंह-वराह-विष्णु के अतिरिक्त भगवान के विराट रूप का दर्शन है, जिसमें अनेक देवता, नवग्रह आदि, दिखाये गये हैं। विष्णु की मिट्टी की भी कई सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

कृष्ण-बलराम— दुर्भाग्य की बात है कि भगवान कृष्ण की लीला भूमि ब्रज में उनकी बहुत कम मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उनके जीवन सम्बन्धी जो सबसे प्राचीन मूर्ति मिली है वह ई० दूसरी शताब्दी का एक शिलापट्ट (नं० १३४४) है। इस पर नवजात शिशु कृष्ण को एक सूप में धरकर वसुदेव गोकुल जाने के लिए जमुना पार करते

हुए दिखाए गये हैं। नदी का बोध धारीदार लकीरों तथा जल-जंतुओं के द्वारा बड़ी सुन्दरता के साथ कराया गया है। कृष्ण की मध्यकालीन (लग० ८ वीं श०) एक मूर्ति प्राप्त हुई है (सं० डी० ४७) जिसमें वे अपनी उँगली पर गोवर्धन पर्वत उठाए हुए चित्रित किये गये हैं। पर्वत के नीचे गौएँ तथा ग्वालबाल खड़े हैं।

बलराम की मूर्तियाँ अधिक मिली हैं। सबसे प्राचीन मूर्ति शुङ्ग-काल की है जिसमें वे हल तथा मूसल धारण किए दिखाए गये है। यह मूर्ति अब लखनऊ संग्रहालय में है (नं० जी० २१५)। बलराम की कुषाण तथा गुप्तकालीन अनेक मूर्तियाँ मिली हैं, जिनपर वे मुसलवासनीपात्र, पताका आदि लिए हुए अंकित किये गये है (नं० सी० १५, ४३५ तथा सी० १६)

स्वामिकार्तिक—शिव के पुत्र स्वामिकार्तिक की भी कई मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें उल्लेखनीय नं० २६२६ तथा नं० ३४७ हैं। पहली पर एक अभिलेख है जिससे पता चलता है कि वह सन् ८६ ई० में बनाई गई थी। इसमें दायाँ हाथ अभयमुद्रा में किये हुए तथा बाएँ में लंबा भाला लिए हुए वे दिखाये गए हैं। दूसरी मूर्ति में वे अपने वाहन मयूर पर चढ़े हुए अङ्कित किये गए है। स्वामिकार्तिक की एक बहुत सुन्दर गुप्तकालीन मृण्मूर्ति है (नं० २७६४) इसमें शक्ति धारण किए हुए कुमार मयूर पर बैठे हुए हैं। उनके मुखमण्डल से तेज की भावना टपकती है। ४६६ नं० की मूर्ति भी जिसमें उन्हें शिव तथा ब्रह्मा के द्वारा अभिषेक कराया जा रहा है दर्शनीय हैं।

गणेश— गणपति की कई मूर्तियाँ मथुरा-कला में प्राप्त हुई हैं। हाल में संग्रहालय के लिए कुषाणकालीन विशाल गणपति की मूर्ति प्राप्त हुई हैं। मध्यकालीन मूर्तियों में नं० २५२ की अष्टभुजी मूर्ति उल्लेखनीय है। इस पर बालगणेश लड्डू लिए हुए नृत्य कर रहे हैं।

इन्द्र—इन्द्र की प्राचीन मूर्तियाँ भी मथुरा-कला की ही देन है। कुषाण तथा गुप्त कालीन इन्द्र की मूर्तियाँ भारत में दुर्लभ हैं। मथुरा संग्रहालय में नं० ३६२ की इन्द्र-मूर्ति कला की अद्भुत तथा सुन्दर कृति है। यह कुषाण-काल के प्रारम्भ की है। इस पर हाथ में वज्र लिए हुए इन्द्र खड़े हैं, तथा उनके दोनों कंधों से नाग मूर्तियाँ निकल रही

हैं। इन्द्रदेव के सिर पर सुन्दर किरीट मुकुट है। हाल में अभय मुद्रा में खड़े हुए इन्द्र की एक मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें उनका वाहन हाथी भी है।

कुबेर— कुबेर की पूजा मथुरा में बहुत प्रचलित थी। इनकी मूर्तियाँ बड़ी संख्या में मिली हैं। हिन्दू-धर्म में इन्हें धन का देवता माना गया है। कुबेर की मूर्तियों का वर्णन पीछे यक्ष मूर्तियों में किया जा चुका है।

अग्नि।— भरतीय कला में अग्नि की भी मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त होती हैं। मथुरा-कला में अग्नि की दो सुन्दर प्रतिमायें मिली हैं। पहली (नं० २८८०) कुषाण-कालीन है, और इसे अग्नि की सर्वप्रथम मूर्ति कहा जा सकता है। दूसरी (डी० २४) मध्यकालीन है। दोनों में अग्निदेव के सिर के ऊपर ज्वालाएँ निकल रही हैं। दूसरी में उनका वाहन मेष (मैंढ़ा) भी चित्रित है।

नवग्रह – नवग्रहों के अनेक शिलापट्ट मिले हैं। इनमें से राहु की एक अलग मूर्ति (नं० २८३६) मिली है। जिसमें वे तर्पण करते दिखाये गये हैं।

सूर्य – नवग्रहों में सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्व का है। मथुरा-कला में इनकी अनेक भाँति की मूर्तियाँ मिली हैं। सबसे प्राचीन प्रतिमाओं में वे शक राजाओं की वेषभूषा (उदीच्यवेष) में चित्रित मिलते हैं। नं० २६६ ऐसी ही मूर्ति है। सूर्य के दायें हाथ में कटार तथा बायें में कमल का गुच्छा है। वे दो घोड़ों के रथ पर बैठे हैं। बाद मे क्रमश: इन घोड़ो की संख्या ४ तथा ७ हो जाती है। ऐसी अनेक मूर्तियाँ मथुरा से मिली हैं। सूर्य की एक विचित्र मूर्ति सेलखड़ी पत्थर की बनी मिली है (नं० १२५६)। इस पर वे सासानी राजाओं की वेषभूषा में दिखाये गये हैं। नं ८८८ मूर्ति भी दर्शनीय है।

कामदेव —कामदेव की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ पत्थर तथा मिट्टी पर मिली हैं। २६६१ नं० की मृण्मूर्ति पर धनुष तथा पंचबाण धारण किये आकर्षक रूप में उनका चित्रण मिलता है।

हनुमान —हनुमान की केवल एक ही मूर्ति (डी० २७) मिली है जो लगभग ९ वीं श० की है।

देवियों की मूर्तियाँ — देवों के साथ ही या अलग उनकी शक्तिरूपा देवियों का भी निर्माण मथुरा की मूर्तिकला में पाया जाता है। लक्ष्मी (नं० २५२०), सरस्वती, पार्वती (नं० २०८४), महिषमर्दिनी (नं० ५४१), सिंहवाहिनी दुर्गा (नं० १७८३), सप्तमातृकाओं (नं० २८७२ तथा एफ ३८ आर १०४) तथा गङ्गा-यमुना (नं० १५०७ २६५६) आदि के अनेक कलापूर्ण चित्रण पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त मातृदेवियों की मौर्य तथा शुङ्गकालीन अनेक सुन्दर मृण्मूर्तियाँ मिली हैं (देखिए नं० १५६२, २२२२, २२४१ तथा २२४३)। ये मूर्तियाँ हाथ की बनी होते हुए भी बड़ी कलापूर्ण हैं।

(अ) शक-कुषाण राजाओं की मूर्तियाँ - मथुरा से शक-कुषाण राजाओं तथा शासक वर्ग की अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्तियाँ मिली हैं, जो भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलीं। मथुरा से लगभग ८ मील दूर माट नामक स्थान में कुषाण राजाओं का एक देवकुल था, जहाँ से इन राजाओं की मूर्तियाँ मिली हैं।

(१) विम कैडफीसिस की मूर्ति (नं० २१५)—इस विशालकाय मूर्ति में जिसका सिर नहीं है, महाराज विम सिंहासनारूढ़ दिखाये गये हैं। वे लम्बा चोगा, गुलूबन्द, सलवारनुमा पायजामा तथा चमड़े के तसमों से कसे हुए मोटे जूते पहने हैं। मूर्ति पर राजा का नाम लिखा है।

(२) कनिष्क की प्रतिमा (नं० २१३)—कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी सम्राट था इसकी यह मूर्ति खड़ी हुई मिली है। दुर्भाग्य से इसका भी सिर नहीं मिल सका। इस मूर्ति की वेषभूषा विम से बहुत मिलती जुलती है। उसके दायें हाथ में राजदंड तथा बायें में तलवार है। मोटे जूते जिन्हें गिलगिटी बूट कहते हैं, दर्शनीय हैं। इस मूर्ति पर भी राजा का नाम लिखा है।

(३) चष्टन की मूर्ति (नं० २१२)—चष्टन पच्छिमी भारत के शक क्षत्रप-वंश का जन्मदाता था। इस मूर्ति की भी वेषभूषा उपर्युक्त मूर्तियों के समान है। इसका चोगा जरीदार है। तथा कमरबन्द भी अलंकृत है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त उपर्युक्त वेषभूषा धारण किये हुए अनेक शक राजकुमारों तथा सर्दारों की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

(४) गंधार-कला में शक महिशी की मूर्ति (नं० एफ ४२)–यह मूर्ति यमुना किनारे स्थित सप्तर्षि टीले से प्राप्त हुई थी और नीले सिलेटी पत्थर पर बनी है। यद्यपि यह 'गंधार-कला' की कृति है जो मथुरा-कला से भिन्न है, तथापि मथुरा में इसका पाया जाना बड़े महत्त्व का है। उसी स्थान से प्राप्त खरोष्टी के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि मथुरा के महाक्षत्रप राजुल की महारानी कम्बोजिका ने यहाँ बौद्धों के अनेक स्तूप तथा विहार बनवाये। संभवतः यह मूर्ति उसी महारानी की है।

(अ) अन्य विविध कृतियाँ —मथुरा-कला मे विविध धर्मों से संबंधित अनेक प्रकार की मूर्तियों के मिलने के साथ ऐसी कृतियाँ भी मिली हैं—जिनका संबंध लोक-जीवन से है। ऐसी मूर्तियों में मृण-मूर्तियों का स्थान बड़े महत्त्व का है। यद्यपि मिट्टी की कुछ मूर्तियाँ देवी देवताओं—विशेषतः हिन्दू धर्म के देवों—की मिली हैं, पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। अधिकांश मिट्टियों की मूर्तियाँ नागरिकों तथा साधारण लोक के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। मथुरा-संग्रहालय में इनकी संख्या बहुत अधिक है। ये अधिकतर टीलों में से तथा यमुना नदी से प्राप्त हुई हैं। इनके दो प्रकार हैं। एक तो वे जो मौर्य-काल के पहले या मौर्य-काल में विशेषतः मातृदेवियों आदि की मूर्तियों के रूप में हाथ से गढ़कर बनाई गईं और वे जो साँचों द्वारा निर्मित की गई थीं। दूसरे प्रकार की मूर्तियाँ शुंगकाल से लेकर लगभग मध्यकाल तक पाई जाती हैं। ई० पू० २०० से लेकर ६०० ई० तक की मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें से कुछ तो लड़कों के खेलने के लिए बनती थीं—जैसे हाथी, घोड़े, गाड़ी, आदि खिलौने। शेष मूर्तियाँ वे हैं जिनमें जीवन के के विविध अंगों का प्रदर्शन है जैसा कि हम पाषाण-कला पर पाते हैं। मथुरा-संग्रहालय की कुछ उल्लेखनीय मूर्तियाँ ये हैं—नं० २५६५, जिस पर राजसी ठाठ में एक स्त्री पंखा लिए खड़ी है, नं २८५३ जिस पर कोई राजकुमार रथ पर बैठ कर बाहर जा रहा है। नं० २६२१, जिस पर स्त्री-पुरुष का जोड़ा चित्रित है, नं० २३५०, जिस पर किन्नर-किन्नरी हवा में उड़ान ले रहे हैं। नं० १६२१, जिस पर सुन्दर साड़ी पहने तथा बच्चे को अंक में लिए एक स्त्री है, नं० २५६२, जिस पर शुक-क्रीड़ा का चित्रण है, तथा नं० २४२६ जिस पर सुन्दर

बालों से सज्जित पुरुष-सिर है।

उपर्युक्त मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा से नागरिकों, सेठों, धर्मवीरों तथा विदेशी लोगों के अनेक प्रकार के सिर मिले हैं। इस प्रकार के स्थानीय संग्रहालय में नं० २८२७, १५७, १५६६, २५६४, जी० ३४ तथा २१२२ संख्यक सिर कला की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं।

(ए) मिट्टी की मूर्तियाँ—इनका उल्लेख ऊपर भी आ चुका है। मौर्य-काल में हाथ की बनी हुई मातृदेवी आदि की मूर्तियाँ मिलती हैं। साँचे का प्रयोग शुंगकाल से मिलता है। इस समय से लेकर लगभग ८ वीं श० तक की विविध भाँति की मृण्मूर्तियाँ मिलती हैं। यह कला साधारण लोक-कला को सूचित करती है, और लोक-जीवन के अध्ययन की काफ़ी सामग्री उपस्थित करती है।

(२) ईंटें—ब्रज से मौर्य तथा शुंग-काल की कुछ ऐसी ईंटें मिली हैं जिन पर लेख हैं। गुप्त तथा मध्यकालीन मिट्टी की ईंटें काफ़ी संख्या में उपलब्ध हुई हैं। और उनमें से कुछ पर कमल आदि पुष्प बेल-बूटे तथा अनेक प्रकार के मांगलिक चिन्ह भी उत्कीर्ण मिलते हैं। कुछ पर देवों की मूर्तियाँ भी हैं। इस प्रकार की अलंकृत ईंटों का प्रयोग इमारतों के सामने के भाग पर होता था।

(३) मिट्टी के बर्तन आदि—मथुरा तथा उसके समीपस्थ प्रदेश से प्राचीन मिट्टी के बर्तन भी बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं जिनमें घटकार की पुरानी कला का पता चलता है। साधुओं के बर्तन गृहस्थी के बर्तनों से भिन्न होते थे। बर्तनों के अतिरिक्त मिट्टी के तोलने के बाँट, बच्चों के खिलौने तथा कुम्हार के बर्तन बनाने वाले भी प्राप्त हुए हैं।

(४) धातु की मूर्तियाँ—धातु में पीतल तथा काँसे की अधिकांश मूर्तियाँ मिलती हैं जो अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्रायः भगवान् कृष्ण के जीवन से संबंधित मूर्तियाँ, शिव-पार्वती, गणेश, विभिन्न अवतारों से चित्रित, पूजा-पात्र, आरती आदि वस्तुएँ मिलती हैं। जैन-बौद्ध धर्म संबंधी धातु की मूर्तियाँ मथुरा-कला में दुष्प्राप्य हैं।

माथुर कला का स्वर्ण युग—ई० सन् के प्रारम्भ से लेकर छठी

श० के अन्त तक का युग माथुर कला का 'स्वर्णयुग' कहा जा सकता है। इसमें भी इस युग का प्रथमार्ध (ई० ३०० तक) विशेष महत्व का है। इस काल के कुषाण शासकों को कला के सौंदर्य-पक्ष ने अधिक आकृष्ट किया। मथुरा के कलाकारों ने अपने संरक्षकों की इस भावना का स्वागत किया और उसकी पूर्ति के लिये कला के शृङ्गार-पक्ष को उन्नत किया। कुषाणकाल के जो तोरण, वेदिका-स्तम्भ, सूची; आयाग-पट्ट आदि तथा मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं उन पर इसके जीते-जागते प्रमाण मिलते है। कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव-जीवन—इन दोनों से कला के अलङ्करण की सामग्री को जिस खूबी से छाँटकर अपनी कृतियों पर उसका उपयोग किया है वह सचमुच सराहनीय है। कला के दिव्य आदर्शों से प्रेरित होकर उन्होंने सृष्टि की अनिंद्य रूप-सामग्री से अपनी रचनाएँ विभूषित कर उन्हें शाश्वत रूप प्रदान किया है। उत्फुल्ल कमल आदिक पुष्पों से सुशोभित जलाशय, नदी, पर्वत, झरने तथा अशोक, कदम्ब, नागकेशर, चम्पक, आदि पुष्पित वृक्ष, अनेक भाँति की लता-बेलें, पत्ररचनाएँ, एवं प्रकृति में सानन्द विचरण करने वाले पशु-पक्षी—ये सभी कलाकारों के द्वारा आवश्य-कतानुसार ग्रहण किये गये हैं। इन प्राकृतिक उपकरणों के साथ मानवी रूप का सामंजस्य करना भारतीय शिल्पियों और विशेष कर मथुरा के कलाविदों की एक अनोखी देन है। जिस प्रकार भारतीय साहित्य में संसार को पूर्ण रूप से समझने तथा जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रकृति को एक अनिवार्य भाग माना गया है उसी भाँति भारतीय कलाविद ने भी अपने क्षेत्र में इस सत्य को चरितार्थ किया है। मथुरा की कला में वेदिका-स्तंभों आदि पर हमें इसका सजीव चित्रण मिलता है—कहीं वनों में स्त्री-पुरुषों द्वारा पुष्प-संचय किया जा रहा है, कहीं निर्झरों और जलाशयों में स्नान तथा क्रीड़ा के दृश्य, कहीं सुन्दरियों के द्वारा मंजरी, पुष्प या फल दिखा कर लुभाते हुए शुकादि पक्षियों का, कहीं उनके केशों में गुँथे हुए मुक्काजालों अथवा उनकी दंत पंक्तियों के लोभी हंसों का और कहीं अशोक, चंपक, बकुल कदंब आदि वृक्षों की डाली थामे सन्नतांगी रमणियों के ललित अंग-विन्यासों का चित्रण है।

सौंदर्य के अनिंद्य साधन के रूप में नारी का चित्रण मथुरा

कला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखा है। मथुरा के कलाकारों का शृंगार के स्वस्थ तथा उत्कृष्ट रूप का सुदर्शन अभीष्ट था, जिसके द्वारा लोक-रंजन के साथ-साथ समाज और धर्म को निष्क्रिय तथा निर्जीव होने से बचाया जा सके। उन्होंने इस स्पृहणीय उद्देश्य को चरितार्थ करने के लिये नारी के श्री रूप को ग्रहणकर उसे भारतीय वेष-भूषा तथा अलंकारों से मंडित कर लोक के समक्ष रखा। मथुरा के वेदिका स्तंभों पर विविध आभूषणों से अलंकृत सन्नतांगी रमणियों का झीने रेशमी वस्त्रों से झाँकता सुकुमार यौवन तथा सौंदर्य अंकित किया गया है। जो कलात्मक शृंगार के ज्वलंत उदाहरण रूप में सदैव के लिये अमर रहेगा।

कुषाण तथा गुप्तकाल में नारी का समाज में उचित स्थान मिलता है। तत्कालीन कवि और कलाकार दोनों ने समाज की इस उदात्त भावना को आदृत किया। अश्वघोष, वात्स्यायन, कालिदास आदि की रचनाओं में नारी के वैयक्तिक स्वातंत्र्य तथा समाज में उसकी उचित प्रतिष्ठा का उद्घोष है। तत्कालीन कला के क्षेत्र में भी हमें जिस प्रकार देवों के साथ उनकी शक्ति रूपा देवियों का चित्रण मिलता है उसी प्रकार संभ्रांतवर्ग तथा जन साधारण दंपति का भी। इस प्रकार धार्मिक तथा सामाजिक दोनों क्षेत्रों में हम सहधर्मिणी शब्द को वास्तविक रूप में चरितार्थ किया पाते हैं। मथुरा से प्राप्त अनेक स्तंभों और शिलापट्टों पर धार्मिक यात्राओं, मधुपान, संगीत, तथा अन्य अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं और उत्सवों में हम स्त्री-पुरुष को साथ-साथ भाग लेते हुए पाते हैं। स्त्रियों की स्वतंत्रता का तथा लोक के सौंदर्य-प्रेम का प्रमाण हमें उन कला-दृश्यों में भी मिलता है जिनमें अनेक आकर्षक मुद्राओं में कंदुक-क्रीड़ा अशोक-दोहद, पुष्प-चयन, वेणी प्रसाधन तथा वीणा-वंशी आदि वादन में, रमनारियाँ अंकित की गई हैं। इनमें नग्न यक्षियों की भी मूर्तियाँ हैं। स्त्री के नग्न रूप-प्रदर्शन द्वारा कलाकार का उद्देश्य निम्न वासनाओं को उत्तेजित करने का नहीं था, किन्तु उसका अभिप्राय स्वस्थ सौंदर्य के सर्वांगपूर्ण व्यक्तिकरण से था। संसार को त्याग कर संन्यास ले लेने की जो प्रवृत्ति उपनिषद् काल से चली आ रही थी और जिसकी वृद्धि में बौद्ध तथा जैन [illegible] भी योग दिया था, जिसके प्रवाह में समाज का एक

बड़ा भाग बहने लगा था, उसे नियमित और सीमित करना हमारे आलोच्ययुगीन कवियों और कलाकारों का कर्तव्य था। उन्होंने उसका साहस के साथ निर्वाह किया। उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा जनता को यह समझाने का श्लाघ्य प्रयत्न किया कि यह लोक योंही त्याग देने की वस्तु नहीं है; इसमें प्रकृति तथा मानव द्वारा प्रदत्त आनन्द उचित मात्रा में उपयोग करने की वस्तु है; गृहस्थ धर्म का बिना पालन किये हुए संन्यास ले लेना मानव-जीवन की विडंबना है तथा इंद्रियों के आनन्दमय विस्तृत जीवन का अनुभव करते हुए भी मनुष्य नीति और धर्म का पालन कर सकता है तथा मोक्ष या निर्वाण का अधिकारी हो सकता है। मथुरा के कलाकार अपने इस सदुद्योग में कृतकार्य हुए, उन्होंने धर्म को शुष्क और निर्जीव होने से बचा कर उसे आनंद-मय लोकजीवन के साथ समन्वित किया, जिसके लिए वे शतमुखी सराहना के पात्र हैं।

मथुरा-कला की लोक-प्रियता—मथुरा की कला इतनी लोक-प्रिय हुई कि उसका प्रभाव भारत के अन्य प्रदेशों में शीघ्र फैल गया। कौशांबी (जिला इलाहाबाद), काशी, श्रावस्ती (सहेत-महेत, जिला गोंडा), पाटलिपुत्र (पटना), अमरावती (मद्रास प्रान्त के गुन्तूर जिले में) आदि में इस कला की बड़ी माँग हुई। इन स्थानों में मथुरा की शिला-कृतियों के अनेक नमूने मिलने से इसकी पुष्टि होती है। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि सारनाथ तथा श्रावस्ती में बुद्ध भगवान् की मूर्तियाँ बनवाने के लिए एक बौद्धभिक्षु ने मथुरा से कारीगर बुलवाए और उनके द्वारा सुन्दर मूर्तियों का निर्माण कर-वाया। बृहत्तर भारत तथा विदेशों में भी माथुर कला लोक प्रिय हुई।

शक, यवन, पह्लव आदि विदेशी लोग, जो यहाँ आए मथुरा की कला पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने इस कला के संवर्धन में आशातीत योग दिया। उनमें से अधिकाँश यहाँ की कला और संस्कृति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भारतीय धर्म स्वीकार कर लिया और अपने नाम तक भी भारतीय रखने लगे,—वासुदेव, इन्द्राग्नि दत्त, सुदास आदि। कुषाण सम्राट कुनिष्क तथा उसके कई वंशज बौद्ध थे। उन्होंने इस धर्म के प्रसार में, बड़ा भाग लिया। हुविष्क, विम कैडफाइसिस तथा वासुदेव के सिक्कों पर अनेक हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं।

महाक्षत्रप शोडास तथा महाक्षत्रप राजुल की पत्नी कंबोजिका ने अनेक बौद्ध स्तूप तथा विहार बनवाए। मथुरा संग्रहालय में रखी हुई अनेक मूर्तियों पर विदेशी शक लोग बुद्ध, शिवादि की पूजा करते हुए दिखाए गये हैं।

प्राचीन मथुरा में कला की शिक्षा—मथुरा नगर विविध ललित कलाओं के शिक्षण का केन्द्र था जहाँ भारत के ख्याति-प्राप्त कलाविद् कलाओं की शिक्षा देते रहे होंगे। कौशांबी, काशी, श्रावस्ती, पाटलीपुत्र में तथा सुदूर दक्षिण के अमरावती प्रदेश तक मथुरा की कला-कृतियाँ प्राप्त होती हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि इन स्थानों के विद्यार्थी माथुर कला की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए मथुरा के विद्यालय में आते रहे होंगे तथा यहाँ के कलावेत्ता उन-उन स्थानों में अपनी कलाओं के प्रसारार्थ जाते रहे होंगे। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि तक्षशिला के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में वेद, वेदांग, षड्-दर्शन, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र तथा समरशास्त्र की उच्च शिक्षा के अति-रिक्त अठारह प्रकार के शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। ये शिल्प, कृषि, व्यापार, अश्वायुर्वेद, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, विविध उपांगों सहित संगीत, गरुड़विद्या, सूर्यविद्या, भूतविद्या, दैवविद्या, आदि थे। मथुरा में भी इन कलाओं में से अधिकांश की शिक्षा दी जाती रही होगी। अनेक प्रकार की मूर्तियों के अतिरिक्त भाँति-भाँति के मनोहर तोरण, द्वारस्तम्भ, वेदिकास्तम्भ, आदि जो उच्चकला के अमर उदाहरण हैं यह सूचित करते हैं कि इस उत्कृष्ट कला के अध्य-यन अध्यापन का व्यवस्थित प्रबन्ध रहा होगा। कुषाण तथा गुप्त सम्राट् कला के बड़े प्रेमी थे, उन्होंने अवश्य इसके संवर्धन में कला विद्यालयों को साहाय्य तथा प्रोत्साहन दिया होगा। मथुरा के क्षत्रपों के यहाँ पुस्तकालयों के होने का पता चलता है जिनमें शिल्प-शास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रंथ रहते थे।

माथुर कला का विदेशों में प्रसार—माथुर कला का विस्तार भारत तक ही सीमित नहीं था, अपितु इस देश की सीमाओं को लांघ कर विदेशों में भी उसका प्रसार हुआ। अफगानिस्तान के बेग्राम (प्राचीन कपिशा) नामक स्थान में कुछ वर्ष पूर्व खुदाई से हाथीदाँत की निर्मित अनेक सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं। इनके

देखने से पता चलता है कि इन पर मथुरा कला का स्पष्ट प्रभाव है

मेसोपोटैमिया के उर नामक स्थान से एक स्त्री-मूर्ति का मनोहर सिर प्राप्त हुआ है जो अनेक अंशों में माथुर कला से प्रभावित है।

इसके अतिरिक्त पूर्वी देशों—अनाम, सुमात्रा, जावा आदि में गुप्तकालीन तथा मध्यकालीन अनेक हिन्दू मन्दिर तथा बड़ी संख्या में मूर्तियाँ मिलती हैं। जिनमें से अधिकांश पर मथुरा की कला का प्रभाव परिलक्षित होता है।

(३) ब्रज की चित्रकला

दुर्भाग्य से ब्रज की चित्रकला संबंधी बहुत कम सामग्री बच पाई है, जिससे इस कला के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन नहीं किया जा सकता। प्राचीन चित्र कागज, कपड़ा, तालपत्र, चमड़ा, काठ या हाथीदाँत पर बने हुए मिलते हैं। ब्रज की चित्रकला अधिकांश में कागज या कपड़े पर है।

प्राचीन साहित्य में चित्रकला के उल्लेख—भारतीय प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि चित्र या आलेखन कर्म प्रधान ललित कलाओं में से था। मुख्यतः तीन प्रकार के चित्र बनते थे—

(१) भित्ति-चित्र - ये दीवारों पर बनाये जाते थे जैसे अजंता और बाघ गुफाओं के चित्र।

(२) चित्रपट—ये कपड़े पर और कभी-कभी चमड़े पर भी बनाये जाते थे। इन्हें दीवारों पर भी टाँग सकते थे।

(३) चित्रफलक—ये लकड़ी, हाथीदाँत आदि पर बनते थे। ई० ११ वीं श० के पहले के केवल भित्तिचित्र ही अब तक मिले है, चित्रफलक और चित्रपट नहीं।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में चित्र बनाने वाले के लिए 'चित्रकार' और 'चित्रकर' शब्द मिलते है। चित्रकार की कूँची के लिए 'तूलिका' और 'कूर्चा' नाम आते हैं—"स्त्रीतु चित्रकराणां स्यात् कूर्चा लेखन साधने" (नानार्थार्णवकोष)। जिस कमरे या वीथी में चित्र प्रदर्शित किये जाते थे उसे 'चित्रवेश्म' कहते थे। इसके लिये दूसरे नाम 'चित्रशाला' तथा 'चित्रसद्म' भी साहित्य में बहुत मिलते हैं।

वस्तुओं के प्रत्यक्षदर्शन द्वारा, स्मृति द्वारा या कल्पना से चित्रों का निर्माण किया जाता था कालिदास के 'मेघदूत' की यक्षी अपने पति का स्मृति द्वारा चित्र बनाती हुई कही गई है। नागरिकों के मनोरञ्जन का चित्रकला एक प्रधान साधन मानी जाती थी, और वे इसका अध्ययन करते थे। नगर-निवासियों को एक स्थल पर चित्रकलाशास्त्र का ज्ञाता कहा गया है—'आलेख्य शास्त्र विद्भिर्नागर लोकैः'

भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' में अनेक स्थलों पर चित्रकला सम्बन्धी वर्णन आये हैं। इस नाटक का प्रारम्भ ही चित्रशाला से होता है।

जिस प्रकार मूर्त तथा स्थापत्य कला सम्बन्धी ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, उसी भाँति चित्रों के सम्बन्ध में मुख्य ग्रन्थ विष्णुधर्मोत्तर पुराण का एक अंश 'चित्रसूत्र' है। इसमें विभिन्न प्रकार के चित्रों के लक्षण तथा विधानादि बड़ी सूक्ष्मता से वर्णित हैं। यह अंश लगभग १० वीं श० का लिखा हुआ है।

चित्रकला के क्षेत्र में ब्रज की कोई अपनी प्राचीन शैली नहीं है। यहाँ के चित्र 'राजस्थानी शैली' या 'राजपूत शैली' के ही अन्तर्गत आते हैं, इस शैली का पहले गुजरात में प्रादुर्भाव हुआ। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब ब्रज में सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ तब चित्रकला की ओर भी लोगों की प्रवृत्ति गई। मूर्तिकला का अन्त बारहवीं शताब्दी में ही होगया था, और उसका पुनरुद्धार न हो सका। इसका प्रधान कारण तत्कालीन मुसलमान शासक-वर्ग की नीति ही थी। मंदिरों तथा मूर्तियों को वे किसी प्रकार न देख सकते थे। सौभाग्य से चित्रकला के प्रति यह भाव न था और १६ वीं श० में तथा उसके बाद कई मुसलमान शासकों ने चित्रकला को उत्तेजना भी दी।

ब्रज की कलाप्रिय जनता को भी वास्तु तथा मूर्तिकला के अभाव में चित्रकला का सहारा लेना पड़ा। रामानन्द, कबीर तथा गुरुनानक ने पहले ही धार्मिक तथा साहित्यिक पुनरुत्थान का शंख फूँक दिया था, इधर ब्रजभाषा के कवियों और भक्तों की रचनाओं ने जनता में नवीन चेतना उत्पन्न कर दी। अष्टछाप के कवियों, विशेषकर सूरदास जी ने कृष्ण भक्ति की नदी बहादी और ब्रज को एक बार फिर आनंद से आप्लावित कर दिया।

ब्रज की तत्कालीन चित्रकला में हमें अधिकतर भगवान कृष्ण की लीलाओं से संबंधित चित्र मिलते हैं क्योंकि उस समय के भक्तों को अपने उपास्य देव की विविध लीलाओं संबंधी चित्रों की बड़ी आवश्यकता थी।

१६ वीं शताब्दी के आरंभ के दो ग्रन्थ—'बालगोपाल स्तुति' तथा 'गीतगोविंद'—सचित्र मिले है। 'बालगोपाल स्तुति' की सचित्र प्रति बोस्टन म्यूज़ियम में है। इसके चित्रों पर वृक्षों की पत्तियों का सुन्दर आलेखन (पत्र-रचना) हुआ है। इस पुस्तक के चित्रों में तत्कालीन स्त्रियों की वेषभूषा का भी यथार्थ चित्रण हुआ है जो प्रारंभिक कला की अपभ्रंश शैली से नितान्त भिन्न है।

इन प्रारंभिक चित्रों में स्त्री-पुरुषों के जो पहिनावे मिलते हैं वे भारतीय हैं। इन्हीं को अकबर ने कुछ परिवर्तन के साथ 'मुग़ल शैली' में ग्रहण किया।

ब्रज की प्राचीन चित्रकला के जो नमूने मिले हैं वे अधिकांश क़ाग़ज़ पर और कुछ कपड़े पर हैं। इनके विषय प्राय: कृष्ण लीलाओं से ही संबंधित है। जब १७ वीं शताब्दी के अन्त में 'काश्मीरी शैली' का जन्म हुआ तो कृष्णलीला का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। पहाड़ी शैली में प्रकृति तथा मानव-सौंदर्य का अंकन प्रधान वस्तु है, अलंकरण उतना नहीं। भगवान् कृष्ण की प्राय: समस्त लीलाओं का चित्रण हमें इस शैली द्वारा मिलता है। ये चित्र राजस्थानी शैली के चित्रों से कहीं अधिक आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक है। अकबर के समय से जिस नवीन शैली का आरंभ हो गया था उसे 'मुग़लशैली' कहते हैं, इसमें ईरानी शैली की प्रमुखता है और कुछ राजस्थानी शैली का भी प्रभाव है। मुग़लशैली में भी हमें कृष्ण लीला संबंधी अनेक चित्र मिलते हैं। परन्तु सबसे अधिक सुन्दरता पहाड़ी शैली में ही मिलती है। इसमें भाव भंगी, मुद्राएँ, कृष्ण का नीरद वर्ण, वस्त्रों की फहरान, मुकुट आदि के साथ-साथ प्रकृति के चित्रण बहुत सफल हुए हैं। अजंता-युग के बाद पहाड़ी शैली ने ही भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया है।

ब्रज की आधुनिक चित्रकला में साँझी, कदली-पत्र-रचना तथा वस्त्रों की छपाई उल्लेखनीय हैं।

(४) ब्रज का संगीत

भारत में संगीत का उदय वैदिक-काल के पहले से मिलता है। सिंध प्रान्त में स्थित मोहेंजोदड़ो नामक स्थान से एक नर्तकी की बड़ी सुन्दर काँसे की मूर्ति मिली है, जो लगभग ५५०० वर्ष पुरानी है। वैदिक-काल में संगीत का प्राचुर्य सामवेद से सिद्ध होता है। इस वेद का अधिकांश भाग धार्मिक कृत्यों के अवसर पर गाये जाने वाले मंत्र हैं। धीरे-धीरे संगीत का महत्व समाज में बहुत बढ़ा और भारतीय ललित-कलाओं में उसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में जहाँ चौसठ कलाओं का वर्णन किया है वहाँ सर्व प्रथम 'गीतम्-वाद्यम् तथा नृत्यम्' का उल्लेख किया है। अन्य कलाएँ इनके बाद आती हैं। इन तीनों कलाओं का सम्मिलित नाम 'नाट्य' है—'नृत्यगीतवाद्यम्-नाट्यम्'। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में सभी कलाओं के ऊपर संगीत की श्रेष्ठतासिद्ध की है। भर्तृहरि ने संगीत को मानव-जीवन का एक अपरिहार्य अंग माना है, जिसके न होने से मनुष्य पशु की कोटि में आ जाता है—

'साहित्य संगीत कलाविहीनः
साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः।'

महाकवि कालिदास अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर संगीत का गुणगान करते है। कर्णेन्द्रिय के आनंद द्वारा लोकानुरंजन की प्रबल शक्ति संगीत में है—'आर्ये किमन्यदस्याः परिषदः श्रुति प्रमोदहेतोर्गीतात्करणीयमस्ति' (अ० शाकुन्तल—१, ३) तथा—'तवास्मि गीत रागेण हारिणा प्रसभंहृतः।'

प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि संगीत की शिक्षा बालक बालिकाओं के लिये अनिवार्य होती थी। उन्हें नाट्यशालाओं में इस कला को देखने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। यह दशा लगभग सातवीं शताब्दी तक पाई जाती है। इसके बाद संगीत का प्रसार संकुचित होता जाता है।

ब्रज का प्राचीन संगीत

वास्तु तथा मूर्ति कला में—ब्रज जैसे मनोहर प्रदेश में, जहाँ भगवान् कृष्ण ने अनेक मधुर लीलाएँ कीं और जहाँ का लोक-

जीवन कलात्मक रहा, संगीत का प्रवाह अनिवार्य था। ई० पू० ३०० से पहले के पुरातत्व संबंधी अवशेष हमें ब्रज प्रदेश से नहीं प्राप्त हो सके, अन्यथा संगीत के संबंध में उन अवशेषों द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती। ई० पू० ३०० से लेकर लगभग ६०० ई० तक की जो मूर्तियाँ आदि मिली हैं उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यहाँ संगीत का स्थान बहुत ऊँचा था, और ब्रज के निवासियों के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का संगीत एक अपरिहार्य अंग था। स्थानीय पुरातत्व संग्रहालय में सैकड़ों शिलाखंड ऐसे रखे हैं जिन पर मनोविनोदार्थ वंशी, वीणा आदि बजाती हुई वनिताएँ, धार्मोत्सवों में साथ-साथ गाते-बजाते हुए स्त्री-पुरुष तथा अनेक प्रकार के नृत्यों में संलग्न नारियाँ अंकित हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

नर्तकी यक्षी की मूर्ति (नं० जे० २)—यह सुन्दर मूर्ति एक वेदिकास्तंभ के ऊपर उकेरी हुई है। यक्षी नृत्य की मुद्रा में खड़ी है। वह मोटा गुलूबन्द, कर्णफूल, मुक्ताहार, अंगद (बाजूबंद), कटक (हस्ताभूषण) तथा नूपुर (पैर के आभूषण) पहने हैं। उसकी कमर पर एक चौड़ी मेखला है उसके कुछ ऊपर कटि प्रदेश पर वह एक वस्त्र कस रही है। सिर मुक्ताग्रथित भारी केशपाश है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के जूड़े को धम्मिल्ल कहा गया है। नर्तकियों की इस प्रकार की वेषभूषा भारत के नाट्यशास्त्र तथा संस्कृति के अन्य ग्रन्थों में भी मिलती है। यह मूर्ति ई० पू० दूसरी शताब्दी की है और तत्कालीन मथुरा की नर्तकियों का एक सुन्दर उदाहरण है।

(२) **लखनऊ संग्रहालय की नर्तकी मूर्ति** (नं० बी० ७५)—यह मूर्ति भी एक वेदिकास्तंभ पर अङ्कित है। वह कटि से लेकर घुटनों के कुछ ऊपर तक वस्त्र पहने हुए है। शेष भाग नग्न है। आभूषणों में वह कर्णकुण्डल, गुलूबन्द, एकलड़ी हार (एकावली) कटक तथा मोती नूपुर (झाँझ) पहने है। नृत्य करते-करते उसने अपने दोनों घुटने जमीन पर टेक दिये हैं। दाँया हाथ नाभि के सामने आगया है और बाँया सिर के ऊपर उठा है। नृत्य के वेग से उसकी एकावली हिल-डुल गई है। उठे हुए पैरों से गिरकर झाँझ नीचे आ गई है। नर्तकी का भाव बड़ा ही आकर्षक है। यह कुषाणकालीन (प्रथम या दूसरी शताब्दी की) कृति है।

(३) **अशोक दोहद का दृश्य** (म० सं० जे० ५५) नर्तकी ने बाएँ पैर के घात द्वारा अशोक वृक्ष को पुष्पित कर दिया है। वह अशोक के एक फूल को दाएँ हाथ से पकड़ कर अपनी सफलता पर गर्वान्वित हो रही है। कालिदास ने इस सुन्दर भाव को निम्नश्लोक में व्यक्त किया है—

'एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी'

(मेघदूत, २, १८)

(४) **असि नृत्य** (लख० सं०, जे० २७५)—कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ी हुई नटी बाएँ हाथ में तलवार पकड़े है तथा दाएँ हाथ से कदम्ब की डाली को झुका कर उसके पुष्पों से अपने केशों को ग्रथित करने का अभिनय कर रही है। (कुषाणकाल)

(५) **प्रेमोन्मत्ता का नृत्य** (लख० सं०, बी० ६२)—शुक द्वारा अपने प्रेमी का मिलन समाचार पाकर सुन्दरी हर्षोन्मत्त होकर नृत्य कर रही है। कामदूत शुक उसकी नीवी को खोलकर उसे किसी आनन्द का सन्देश दे रहा है। (कुषाणकाल)

(६) **धर्म और संगीत** (लख० सं० जे० २६८)—इस स्तंभ पर धर्म और संगीत का मनोहर सम्मिश्रण दिया गया है। ऊपर के चंडाल पर दंपति स्तंभ की प्रदक्षिणा दे रहे हैं, नीचे खपड़ैल के तले नृत्य हो रहा है। नृत्य में ध्यान देने की बात है कि आभूषणों से सुसज्जित एक नर्तकी नृत्य कर रही है और दो खड़ी हुई स्त्रियाँ ताल दे रही है। नीचे बैठी हुई दो वनिताएँ ढोलक बजा रही हैं।

(कुषाणकाल)

(७) **यात्रोत्सव** (मथु० सं० नं० आई० ३८२)—प्रस्तुत शिलाखंड पर नगर द्वार से बाहर निकल कर गाते बजाते धर्म यात्रा में जाते हुए लोग दिखाए गये हैं। तीन व्यक्ति बड़े डफले बजा रहे हैं और बीच में एक बालक शंख बजाता हुआ जा रहा है।

(प्र० श० ई० ५०)

(८) **मथुरा संग्रहालय में** यात्रोत्सव का एक दूसरा दृश्य छोटे से पत्थर के टुकड़े पर चित्रित है, जो दुर्भाग्य से कुछ टूट भी गया है। इसमें एक पुरुष वीणा बजाते हुए चला रहा है उसके पीछे

वाला पुरुष वंशी बजा रहा है। फिर हाथ जोड़े एक स्त्री है और उसके पीछे दो बालक तथा एक पुरुष हाथ जोड़े आ रहे हैं। लगभग ३६ शती।

(६) वीणावादिका (म० सं०, जी० ४८)—इस पर ताड़वृक्ष के नीचे एक पर्यंक पर बैठी हुई स्त्री वीणा पर तान दे रही है।

(१०) वंशीवादिकाएँ (मथु० सं०, एफ १७, १८ तथा २२)—(क) पुष्पित वृक्ष के नीचे खड़ी हुई विविध आभूषणों से सुसज्जित वनिताएँ वंशी बजा रही हैं।

(११) नं० ४०५ पर नृत्योत्सव में संलग्न कुटुम्बिनी स्त्रियों का चित्रण है।

(१२) इसी प्रकार शिलापट्ट नं० ७७६ पर बाजे-गाजे समेत पूजनार्थ जाते हुए एक राजकुमार दिखाया गया है।

(१३) अन्तःपुर में संगीत—इस शिलापट्ट पर तीन महिलाएँ अंकित हैं—दो मोढ़ों पर आसीन हैं और तीसरी खड़ी है। मोढ़े पर बैठी हुई एक स्त्री सप्ततंत्री (सात तारों वाली) वीणा बजा रही है और उसके सम्मुख बैठी हुई स्त्री कोई गाना गा रही है। दाहिने हाथ के द्वारा वह तान मिलाती हुई प्रतीत होती है। खड़ी हुई स्त्री वंशी बजाने में रत है।

(१४) पवाया में प्राप्त मूर्ति पर संगीत का दृश्य—यह मूर्तिखंड यद्यपि पवाया (प्राचीन पद्मावती, ग्वालियर) से मिला है, तथापि इस पर मथुरा कला का प्रभाव दिखाई देता है। शिलापट्ट के मध्य में एक युवती अत्यन्त सुन्दर भावभंगी में नृत्य कर रही है। उसके स्तनों पर एक लम्बा वस्त्र (कुचपट्टिका) बँधा हुआ है, जिसका एक छोर लटक रहा है। बाँए हाथ में पोहुँची से लेकर कुहनी तक चूड़ियाँ भरी हैं। दाहिने हाथ में एक या दो ही चूड़ियाँ हैं। नर्तकी कमर के नीचे एक अत्यन्त चुस्त धोती पहने हैं, जिस पर दोनों ओर किंकिणियों की झालरें लटक रही हैं। पैरों में सादे पतले कड़े हैं। कानों में झूमरदार कर्णफूल है। इस नर्तकी के चारों ओर नौ स्त्रियाँ विविध वाद्य बजाती हुई दिखाई गई हैं, पर उनका प्रसाधन

इतनी बारीकी से नहीं दिखाया गया। ये वाद्य बजानेवाली स्त्रियाँ गद्दियों पर आसीन हैं। टूटे हुए बाएँ कोने में एक स्त्री-मूर्ति का केवल एक हाथ बच पाया है, शेष शरीर टूट गया है। वाद्यों में दो वीणाएँ हैं। दाहिनी ओर की वीणासम्राट् समुद्रगुप्त के सिक्कों पर पाई गई वीणा के समान है और सप्ततंत्री वीणा है। बाईं ओर का वाद्य आजकल के वायोलिन जैसा है। इसे नवतंत्री या विपंची वीणा कह सकते हैं। एक स्त्री ढपली बजा रही है, उसके बाद की स्त्री पंखा या चामर लिए है, फिर एक स्त्री मंजीरा बजा रही है। उसके समीप की स्त्री बिना वाद्य के है। इसके बाद मृदंगवादिनी है। कोने की टूटी मूर्ति के बाद की स्त्री वेणु या वंशी बजा रही है। बीच में दीपक जल रहा है जिससे प्रकट है कि संगीत रात्रि को हो रहा है। इन वनिताओं के केश-विन्यास विविध ढंग के हैं। यह शिलापट्ट गुप्तकालीन संगीत-कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। (हरिहर निवास द्विवेदी—ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला-विक्रम स्मृति ग्रंथ; पृ० ७०५–६)

ऊपर ब्रज की प्राचीन वास्तु तथा मूर्ति कला से प्राप्त थोड़े से ही संगीत-उदाहरण दिये गये हैं। परन्तु उनसे तत्कालीन नृत्य तथा वाद्य यंत्रों के संबंध में कुछ आभास मिल जाता है। इन कलाकृतियों पर से ब्रज के प्राचीन वाद्य तथा नृत्य के संबंध में अन्वेषण करना सचमुच बड़े महत्व का कार्य होगा। मोटे रूप में इतना कहा जा सकता है कि ये उदाहरण भरत आदि प्राचीन नाट्यकारों द्वारा प्रचारित संगीत के नियमानुसार ही हैं।

भरत ने नाट्यशास्त्र में दो प्रकार की मुख्य वीणाओं का वर्णन किया है—सप्ततंत्री तथा नवतंत्री—

'सप्ततंत्री भवेच्चित्रा विपंची नवतंत्रिका।
विपंची कोणवाद्या स्यात् चित्रा चांगुलिवादना॥'

गीत तंत्री स्वरों के अनुकूल ही चलते थे। इस प्रकार के गीत के लिये 'तंत्रीस्वर विमिश्रत गीत' शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'काचियोषिदुपवीणयति' 'उपवीणयती योषित्' आदि कथन मिलते हैं। जिनसे पता चलता है कि स्त्रियाँ वीणा बजाने में निपुण होती थीं। अंतःपुर का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने कादंबरी में कन्याओं द्वारा वंशी वीणा-वादन का उल्लेख किया है, जिससे संगीत

की विविध प्रकृतियों का बोध होना है। यथा—

'वराङ्गनाद्येषु चुम्बरव्यतिकरान्'

'वीणासु कररुह व्यापारान्, आदि।

'अशोक तरु ताडनेषु चरणाभिघातान्

से नर्तकियों द्वारा अशोक दोहद का भी पता चलता है। नर्तकियों का नृत्य के समय घुँघुरू युक्त नूपुर तथा मेखला आदि बजनेवाले आभूषणों का पहिनना आवश्यक था। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में वरांगनाओं के नृत्य का वर्णन करते हुए लिखा है—'पादान्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः, (मेघ०, १, ३९) अर्थात् संध्या समय नृत्य करती हुई वेश्याओं की करधनी के घुँघुरू बड़े मीठे शब्द से बज रहे होंगे।

कालिदास के विरही यक्ष की कांता घुँघुरूदार कड़े वाले हाथों से साँझ के समय ताली बजा-बजाकर मयूर को नचाया करती थी। (मेघ०, २, १६,)

'तालैः शिञ्जावलय सुभगैर्नर्तितः कांतया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकंठः सुहृद्वः।'

संगीत का उपर्युक्त मनोरंजक उन्मुक्त रूप जो कला और साहित्य दोनों में मिलता है ब्रज में कब तक चला, इसके विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है, तथापि इतना कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व तक, अर्थात् लगभग १२ शताब्दी के अन्त तक, यहाँ प्राचीन संगीत की धारा बहती रही होगी, यद्यपि गुप्त-काल (६०० ई०) के बाद की संगीत परिचायक मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त हुई हैं। यह निर्विवाद है कि गुप्तकाल तक ब्रजभूमि कलाओं के क्षेत्र में अग्रणी रही। १२वीं शताब्दी के बाद से १६वीं श० के मध्य तक ब्रज-भूमि पर लगातार एक के बाद दूसरा आक्रमण होता रहा और यहाँ की संस्कृति को गहरा धक्का पहुँचता गया। इस राजनैतिक अशांति के फलस्वरूप संगीत का ह्रास स्वाभाविक था। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ संगीत का आगमन एक बार फिर ब्रजभूमि पर हुआ। उस संगीत की परंपरा इसके प्रधान अंग 'रास' के समेत अब तक ब्रजमंडल में जीवित है।

रास—रास ब्रज की अनोखी वस्तु है। इसमें संगीत के तीनों अंगों—

गीत, वाद्य तथा नृत्य का सम्मिश्रण है। अतः रास को ललितकला की एक विशिष्ट वस्तु कहना अनुचित न होगा। इसके द्वारा जिस सुन्दरता से ब्रज का साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक जीवन अभिव्यक्त किया जा सकता है वैसा अन्य किसी एक साधन द्वारा नहीं।

रास का प्रारंभ—ब्रज में रास का जो वर्तमान रूप है उसके आरंभ होने की निश्चित तिथि विवादास्पद है। इसका प्रारंभ लगभग ई० सोलहवीं शताब्दी के मध्य से माना जाता है। ऐसा प्रचलित है कि निम्बार्क संप्रदाय के अनुयायी श्री घमंडदेव ने जो श्री हरिव्यासदेव के शिष्य थे रास का प्रारंभ किया। खेद है कि इनके विषय में ज्ञातव्य बातें नहीं प्राप्त हो सकीं। केवल 'रास सर्वस्व' नामक ग्रन्थ से इतना पता चलता है कि घमंडदेव ने करहला निवासी उदयकरण तथा खेमकरण नामक दो ब्राह्मण भाइयों की सहायता से रास का आरंभ किया।

ब्रज-निवासी स्वर्गीय श्री राधाकृष्ण स्वामी रास के विशेषज्ञ थे, उन्होंने उक्त 'रास-सर्वस्व' नामक एक पुस्तक की रचना भी की है। इसमें रास की प्राचीनता का वर्णन आया है और शांडिल्य रास सूत्राणि, रासोल्लासतंत्र, बृहद्गौतमीय तंत्र, राधातंत्र, रहस्यपुराण आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों का, जिसमें रास संबंधी वर्णन आये हैं, उल्लेख मिलता है। दुर्भाग्य से इन ग्रन्थों में से कोई भी उपलब्ध नहीं हो सका, अन्यथा रास के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण बातों का पता चल सकता।

उक्त 'राससर्वस्व' में एक स्थल पर यह भी लिखा है कि नारायणभट्ट ने सं० १७१४ में वल्लभनर्तक तथा करहला वासी रासराय व कल्याणराय—दो ब्राह्मणों की सहायता से रास का आरंभ किया। इन दोनों बातों से यही संभव प्रतीत होता है कि श्रीघमंडदेव तथा नारायणभट्ट दोनों का ही रास के प्रारंभ करने में हाथ रहा है। यह अभी तक पूर्ण निश्चित नहीं कि दोनों समकालीन थे या नहीं।

श्री नारायणभट्ट का नाम बड़े महत्व का नाम है। इन्होंने न केवल रास का आविष्कार किया अपितु अनेक ग्रन्थों की रचना कर ब्रज के वैभव को भारत में फैलाया, प्राचीन लीला-स्थलों की खोज की तथा ब्रज चौरासी कोस यात्रा का आरंभ किया। कहा जाता है कि

श्री चैतन्य महाप्रभु की परंपरा में गोपालभट्ट हुए और उनके शिष्य नारायणभट्ट हुए और उन्होंने बरसाने के पास ऊँचे गाँव में रास की "बूढ़ी लीला" प्रारंभ की। बूढ़ी लीला में 'नौकालीला' तथा 'उद्धव-लीला' उत्तम कही जाती हैं।

श्री प्रभुदयाल मीतल ने हाल में नारायणभट्ट पर एक खोजपूर्ण निबंध लिखा है जो ब्र० भा० (आ० पौ० सं० २००३, पृ० ६-११) में छप चुका है। भट्ट जी की संस्कृत में लिखी हुई "नारायणाचार्य चरितामृत" नामक एक जीवनी मीतल जी को मिली है जिसके आधार पर उन्होंने भट्ट जी का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त लिखा है। उसका सारांश यह है—

भट्टजी के पूर्व पुरुष दक्षिण में मद्रास के रहने वाले भृगुवंशी तैलंग ब्राह्मण थे। वे यादव संप्रदायी तथा कृष्ण भक्त थे। इसी वंश में उत्पन्न रंगनाथ जी के छोटे पुत्र नारायणभट्ट हुए। इनका जन्म सं० १५८८ की वैशाख शु० १४ (नृसिंह चौदस) को हुआ। [कुछ लोगों ने इनका जन्मकाल सं० १६२० तथा कुछ ने सं० १६८८ लिखा है।]

बाल्यकाल से ही नारायणभट्ट भगवान कृष्ण के भक्त थे, १२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'ब्रज प्रदीपिका' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। लगभग १६ वर्ष की अवस्था में वे गोवर्धन आये, फिर राधाकुण्ड जा कर वहीं रहने लगे। वहाँ श्री चैतन्य के अनुयायियों से इनकी भेंट हुई और श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी से इन्होंने सांप्रदायिक रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया। राधाकुंड में रह कर इन्होंने निम्न सात ग्रन्थों की रचना संस्कृत में की—

१—ब्रजदीपिका, २—ब्रजभक्तिविलास, ३—ब्रजोत्सव चंद्रिका, ४—ब्रजमहोदधि, ५—ब्रजोत्सवाह्लादिनी, ६—बृहद्ब्रजगुणोत्सव, ७—ब्रजप्रकाश।

इसके बाद वे बरसाने के पास ऊँचे गाँव या ऊँचा गाँव में रहने लगे जहाँ उन्होंने अन्य अनेक भक्ति ग्रन्थों की रचना की जो सभी संस्कृत में है।

'ब्रज-भक्ति-विलास' नामक पुस्तक में भट्टजी ने ब्रज चौरासी कोस में स्थित वन, उपवन तथा अन्य दर्शनीय स्थानों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों की तरह उन्होंने भी

ब्रज के अनेक प्राचीन तीर्थों की खोज की। इन स्थानों पर अकबर के मन्त्री टोडरमल ने पक्के कुण्ड, तालाब तथा मन्दिर बनवाये।

श्रीनारायणभट्ट का समकालीन वल्लभ नामक एक नर्तक था, जो गान वाद्य यथा नृत्य तीनों में निपुण था। वह बादशाह अकबर की सेवा से अवकाश लेकर वृंदावन में रहता था। नारायणभट्ट ने रामलीला के लिये उसकी सहायता प्राप्त की। ब्राह्मणों के दस सुन्दर बालक इस कार्य के लिये नियुक्त किये गये और उन्हें वल्लभ ने गान-नृत्य की शिक्षा दी। एक बालक कृष्ण बनाया गया। दूसरा राधिका और शेष आठ राधाजी की आठ सखियों का अभिनय करने के लिये सिखाये गये। ब्रज में जहाँ श्रीकृष्ण जी ने जो-जो लीला की थी वहाँ वही लीला की गई। राजा टोडरमल ने उन-उन स्थानों पर भी पक्के रासमंडप बनवा दिये।

संभवत: रास का प्रथम अभिनय करहला ग्राम में हुआ। वहाँ भगवान कृष्ण के मुकुट की पूजा के लिये एक मंदिर भी स्थापित किया गया था।

वल्लभ द्वारा प्रचारित नृत्य वर्तमान रासधारियों में प्राय: ज्यों के त्यों प्रचलित हैं।

ब्रज के तीर्थों का उद्धार तथा रास का प्रारंभ हो जाने पर भट्टजी ने भाद्रपद शुक्लपक्ष में अपनी मण्डली के साथ ब्रज की यात्रा प्रारम्भ की, जिसमें स्थान-स्थान पर दर्शन कथा-वार्त्ता और रास की धूमधाम थी। यह यात्रा ब्रज में अबाध गति से अब तक चली आ रही है।

रास का प्रधान रूप भगवान कृष्ण का अनेक गोपियों के साथ एक मण्डल में नृत्य करना है। इस भाव को इस सूत्र द्वारा कहा गया है—'बहुनर्तकी युक्तो नृत्यविशेषो रासः'। इसका पूर्व रूप हल्लीसक या हल्लीशक नृत्य है—

> नर्तकीभिरनेकाभिर्मण्डले विचरिष्णुभिः।
> यत्रैको नृत्यति नटस्तद्वै हल्लीसकं विदुः॥

वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' (अधि० २, अ० १०, २५) में कहा है—

> हल्लीशक क्रीडनकैर्गायनैर्नाट्यरासकैः।

इस पर टीकाकार यशोधर ने अपनी जयमंगला टीका में यह व्याख्या की है—

मंडलेन च यत्स्त्रीणां नृत्तं हल्लीसकं तुतत्।
नेता भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥

अर्थात् एक नेता का अनेक स्त्रियों के साथ मण्डल में नृत्य करना हल्लीसक है। जैसे गोपियों के साथ कृष्ण का।

'नाट्यरासक' को टीकाकार ने गीतविशेष कहा है—'नाट्यरासकैरन्योन्यदेशीयैः, तेषां श्राव्यत्वाद्गीत विशेषगमेनन्'। 'अन्योन्यदेशीयैः' व्याख्या से ज्ञात होता है कि यह गीत विभिन्न देशों का अलग-अलग था। 'साहित्य-दर्पणकार' ने 'रासक' को एक अङ्क में समाप्त होने वाला छोटा नाटक माना है (सा० द०, अ० ६, पृ० ५४८)। हो सकता है कि इसी 'रासक' शब्द से 'रास' की उत्पत्ति हुई हो। विश्वनाथ ने अपना 'साहित्य-दर्पण' १३५० ई० के लगभग लिखा, जबकि वर्तमान रास की उत्पत्ति १५६० ई० के लगभग हुई।

चित्रकला मे हल्लीसक के उदाहरण— (क) अजन्ता की एक गुफा में ई० पाँचवीं शताब्दी का एक मनोरञ्जक चित्र मिला है। इसमें एक पुरुष के साथ मण्डल में अनेक स्त्रियाँ नृत्य करती हुई चित्रित की गई हैं। सभी विविध प्रकार के आभूषणों से सज्जित हैं। पुरुष नृत्य करता हुआ भाव दिखा रहा है। स्त्रियाँ वंशी आदि बजाती हुई प्रदर्शित की गई है।

(ख) ग्वालियर राज्यान्तर्गत बाघ (प्राचीन व्याघ्र) गुफा में हल्लीसक नृत्य का एक बहुत ही सुन्दर दृश्य चित्रित है, जो लगभग सातवीं शताब्दी का है। इसमें लम्बा कुर्ता, पायजामा तथा ऊँची टोपी पहने हुए एक पुरुष बीच में है तथा उसके चारों ओर मण्डल में एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए स्त्रियाँ हैं, सभी नृत्य में आसक्त है। वेष-भूषा से पुरुष शक जातीय ज्ञात होता है। हो सकता है शकों मे इस नृत्य-विशेष की ओर अधिक रुचि रही हो।

यह कहना कठिन है कि वर्तमान रास नृत्य का पार्वती के 'लास्य' नृत्य से कोई सम्बन्ध है या नहीं, क्योंकि हमें अभी तक 'लास्य' के सम्यक् स्वरूप का पता नहीं चला है।

सम्यक अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही वर्तमान काल के अनुकूल इसमें आवश्यक संशोधन करने भी आवश्यक हैं। देखा जाता है कि वर्तमान रास में लौकिक तत्वों का अभाव है और धार्मिकता की मात्रा अधिक है। विभिन्न रास मंडलियाँ जो इस समय रास करती हैं उनकी विधियाँ भी अनेक प्रकार की हैं। इन विधियों का अध्ययन कर रास के प्रधान रूप का निश्चित करना आवश्यक है। प्राचीन वेष-भूषा की जानकारी भी वांछनीय है। धार्मिक मर्यादा को बनाये रखते हुए कला की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। आजकल सभी मंडलियों में गोपियों का अभिनय लड़कों द्वारा कराया जाता है। यह बात आधुनिक कलाविदों को विशेष रूप से खटकती है। जिस समय ब्रज में रास का आरंभ हुआ था उस समय हिंदू-समाज की दशा को देखते हुए यह आवश्यक समझा गया था कि लड़कियों को घर से बाहर निकल कर सार्वजनिक स्थानों में नृत्य गीत आदि में भाग लेना उचित नहीं। यहाँ के लोगों ने अन्य स्थानों में प्रचलित देवदासी प्रथा के भी कुफल देख लिए होंगे परन्तु अब समय बदल गया है। अब संगीत को विशुद्ध ललितकला के रूप में समझना चाहिए, जैसा कि प्राचीन भारत में था। देव-दासियों की प्रथा लगभग ७ वीं शताब्दी से प्रारंभ हुई थी और अब इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल में स्त्री-पुरुष सभी संगीत में भाग लेते थे। मथुरा से ही प्राप्त सैकड़ों प्राचीन मूर्तियों तथा शिलाखंडों पर नृत्य, वाद्य तथा गायन संबंधी अनेक प्रकार के दृश्यों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, जिनमें स्त्री-पुरुष साथ-साथ भाग लेते हुए देखे जाते हैं। प्राचीन साहित्य में स्थान-स्थान पर संगीत संबंधी वर्णन मिलते हैं जिनमें स्त्रियों का बहुत बड़े रूप में भाग लेना पाया जाता है। भगवान् कृष्ण की लीला तो परम पावन है, उसमें दूषित शृङ्गार की कहीं गंध नहीं है। इस लीला से सम्बन्धित संगीत में भाग लेना बालिकाओं या स्त्रियों के लिए निषिद्ध न होना चाहिए। आशा है कि इस प्रकार समयानुकूल परिवर्तनों द्वारा रास में विशेष औचित्य, सौंदर्य तथा आकर्षण के दर्शन होने लगेंगे और साथ ही यह परंपरागत धार्मिक संगीत संपूर्ण भारतीय जनता का प्रिय विषय हो जायगा।

रास के अतिरिक्त गायन कला अपने स्वतंत्र रूपों में भी मिलती है, ब्रज के 'ध्रुपद' प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि 'ध्रुवा' नामक गीत से

ध्रुपद का आविष्कार हुआ है। जो हो, सोलहवीं श० से हम ध्रुपद गायन शैली का व्रज में विशेष प्रचार मिलता है। ये तीन वीणा, पखा-वज, तंबूरा आदि के साथ गाये जाते हैं। यह गायन-पद्धति कव्वाली, ठुमरी आदि विदेशी गीत-शैलियों से पृथक है, और कहीं अधिक सरस तथा गंभीर है। अष्टछाप कवियों के समय व्रज में संगीत की मधुर धारा प्रवाहित हुई। सूरदास, नंददास, कृष्णदास आदि स्वयं गायक थे तथा इन्होंने विविध गीतों का अपार भंडार अपनी रचनाओं में भर दिया। इनकेअतिरिक्त स्वामी हरिदास संगीत-शास्त्र के प्रकांड आचार्य तथा गायक थे, जिनके तानसेन जैसे संगीतज्ञ भी शिष्य थे। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, तथा गोवर्धन बहुत काल तक संगीत के केन्द्र रहे जहाँ दूर दूर से संगीतज्ञ और कलाप्रेमी आते रहे। सम्राट् अकबर तक श्री हरिदास स्वामी के मधुर गीतों के सुनने का लोभ संवरण न कर सके और वृन्दावन आये। आधुनिक संगीतज्ञ में भी गौरिया बाबा, चंदन चौबे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रास के अतिरिक्त व्रज में प्रचलित लोक-संगीत के कई दूसरे रूपों का विस्तृत उल्लेख श्री सत्येन्द्रजी ने व्रजभारती (ज्येष्ठ १९९९) में किया है।

नृत्य—मथुरा की प्राचीन स्थापत्य तथा मूर्तिकला से नृत्य सम्बन्धी जो चित्र प्राप्त हुए हैं उनका संक्षिप्त वर्णन पीछे किया जा चुका है। ये नृत्य लोकरञ्जन की भावना से युक्त होते थे। इनमें धार्मिकता का प्राधान्य न था। हम देख चुके है कि धार्मिक कृत्यों में नृत्य का अपना स्थान था। प्रायः नृत्य के साथ-साथ गीत और वाद्य भी चलता रहता था। तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों से विदित होता है कि नृत्य का साधारण वर्ग तथा सम्भ्रान्त समाज दोनों में प्रचलन था। ये नृत्य भरतमुनि आदि प्राचीन नाट्य शास्त्रकारों द्वारा निर्मित नियमों के प्रायः अनुकूल ही होते थे।

रास के नृत्य—इन नृत्यों के सम्बन्ध में पीछे कहा जा चुका है कि ई० सोलहवीं श० के मध्य के आसपास इनका प्रारम्भ हुआ। इनके अनेक रूप हैं। कभी कृष्ण अकेले और कभी एक या अनेक सखियों के साथ नृत्य करते हैं। कभी केवल सखियाँ अकेली या

सम्मिलित रूप में नाचती हैं। नृत्यों के ढङ्ग विभिन्न लीलाओं के अनुरूप होते हैं। ये ब्रज के ठेठ नृत्य माने जाते हैं। कहा जाता है कि इन के मुख्य रूप वही हैं जो प्रसिद्ध नर्तक वल्लभ के द्वारा निर्धारित किये गये थे। तो भी समयानुसार इनमें कुछ न कुछ अन्तर आ जाना अपरिहार्य है।

चरकला नृत्य—श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने चरकला नामक एक बड़े मनोरञ्जक नृत्य का उल्लेख किया है। उनके वर्णन के अनुसार (ब्रज भा०, माघ, २०००, पृ० ८-६) ऊमरी, नगरी तथा रामपुर गाँवों में चैत्र कृ० २ से ४ तक रात में यह नृत्य होता है। एक स्त्री अपने सिर पर पीतल या लोहे का घड़ा रखती है, जिस पर एक चौखटा लगा रहता है। इस चौखटे में प्रत्येक कली पर एक जलता दीपक रक्खा रहता है। कुल ३६ दीपक होते हैं। घड़ा भरा होता है और वजन लगभग २० सेर होता है। एक जाट स्त्री उसे सिर पर रखती है और दोनों हाथों पर एक-एक लोटे के ऊपर भी जलते दीपक रखती है। तब वह नृत्य करती है। नृत्य की यह खूबी रहती है कि सिर पर तथा हाथों पर रखे हुए दीपक बुझने नहीं पाते। नर्तकी का एक साथी हाथ में करताल लेकर उसके चारों ओर नाच-नाच के बाजा बजाता है और इस प्रकार उसे उत्साहित करता रहता है। यह नृत्य धार्मिक माना जाता है और प्रायः सभी स्त्रियाँ—बहुएं, युवतियाँ—इसके लिये उत्सुक रहती हैं।

यह फूलडोल का नृत्य है। भगवान कृष्ण के जीवन संबंधी गीत इस नृत्य के साथ प्रायः गाये जाते हैं। कभी-कभी श्रीराम के जीवन-गीत भी गाये जाते हैं।

श्री चतुर्वेदी जी का कथन है कि इस चरकला नृत्य का लगभग ५० वर्ष पहले ऊमरी गाँव में आविष्कार हुआ फिर रामपुरा के साँवलिया नामक बढ़ई ने इसको अधिक सुन्दर रूप दिया। अब यह तीनों गाँवों से आगे बढ़ रहा है।

मथुरा के सगीत के संबंध में कहा जा सकता है कि वह अधिकांश में धार्मिक रहा है। और उसके अनेक रूपों में लौकिक तत्त्वों का अभाव रहा है। हम उसमें वह अश्लीलता नहीं पाते जो लौकिक तत्त्वों की सीमा का भी अतिक्रमण कर जाने वाले बाजारू संगीत में

मिलती है। इतिहास से पता चलता है कि ब्रज में रास का आरंभ होने के बहुत पहले भारत के मन्दिरों में और विशेष कर दक्षिण के मन्दिरों में देवदासियों के रखने की प्रथा थी। देवपूजा में आरती आदि के समय गान-नृत्य का अनिवार्य वस्तु मान लिया गया था। इसी कार्य के लिये गान-नृत्य में कुशल स्त्रियाँ मंदिरों में रक्खी जाने लगीं। धीरे-धीरे उनकी संख्या काफी बढ़ने लगी। और वे स्त्रियाँ अधिकांश में गणिकाएँ ही होती थीं। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनत्साँग ने मुलतान के सूर्य-मन्दिर में अनेक देवदासियों को देखा था। काश्मीर काठियावाड़ तथा राजपूताने के मन्दिरों में भी यह प्रथा थी। परन्तु दक्षिण के मन्दिरों में तो सैकड़ों देवदासियों के होने के प्रमाण मिलते हैं। देवदासियों का रखा जाना पहले धर्मपरक था, पर धीरे-धीरे वह मनोविनोद का साधन हो गया। इस प्रकार बड़ी संख्या में मन्दिरों में देवदासियों के होने से धार्मिक वातावरण का दूषित हो जाना स्वाभाविक था। फलस्वरूप मन्दिरों की धार्मिकता में कमी होने लगी और वे न केवल मनोरंजन के केन्द्र समझे जाने लगे अपितु वासना के अड्डे भी बन गये। दामोदर भट्ट ने अपने 'कुट्टिनीमतम्' में स्पष्ट वर्णन किया है कि किस प्रकार काशी का प्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर जहाँ लोक-रंजन के लिये विविध भाँति के नाटक किये जाते थे, इस विषाक्त वातावरण से अछूता न रह सका।

ब्रज के प्राचीन मन्दिरों को हम दूषित प्रथा से मुक्त पाते हैं। यद्यपि अनेक रास-मंडलियाँ मन्दिरों से सम्बन्धित रही हैं और अब भी हैं तथापि उन्होंने कड़े नियमों द्वारा देवालयों का शुद्ध धार्मिक वातावरण स्थिर रखने में बड़ी सहायता की है। और इस प्रकार भगवान् कृष्ण के पूजा-स्थलों को दूषित होने से बचा लिया है।

मथुराकला का संरक्षण—अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक मथुराकला की वह आंशिक अमूल्यनिधि, जो आक्रमणकारियों के हाथों से पृथिवी, जल या विशेष संरक्षण में दबी हुई रहने के कारण बच पाई थी, प्रायः अज्ञात थी। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब मुख्यतः कतिपय पाश्चात्य कला-मर्मज्ञों के द्वारा इस कला का मूल्य आँका गया और प्रसुप्त भारतीयों की चेतना भी कुछ आन्दोलित हुई तो उसके संरक्षण का उपाय सोचा जाने लगा। १८६० ई० के

लगभग उस स्थान के पास जहाँ आजकल मथुरा की कलक्टरी कचहरी है, एक आकर्षक इमारत बनाई गई जिसमें मथुरा से प्राप्त प्राचीन मूर्तियों आदि के रखने की व्यवस्था की गई। पर यह कार्य अपर्याप्त तथा अव्यवस्थित रूप से ही रहा, क्योंकि अधिकारियों एवं जनता में इस ओर रुचि न थी। सन् १८७४ ई० में मथुरा के अध्यवसायी कलक्टर श्री एफ० एस० ग्राउस महोदय ने उस इमारत को एक संग्रहालय का रूप दिया और उसे तदनुकूल बनवाया। उन्होंने इस कार्य के लिए सरकार से सहायता दिलवाई तथा स्थानीय जनता से भी कुछ धन एकत्र किया। परन्तु अब भी लोगों मे विशेष रुचि न थी। फलस्वरूप शिल्पकला की सैकड़ों महत्वपूर्ण कृतियाँ विदेश जाने लगीं, क्योंकि विदेशी लोग इस कला के सौंदर्य तथा वैशिष्ट्य पर मोहित हो गए थे। लन्दन, बर्लिन, पेरिस, व बोस्टन आदि के म्यूजियम मथुरा की सैकड़ों मूर्तियों से भर गये। इधर कुछ वस्तुएं कलकत्ता म्यूजियम भी गईं। ई० १८८८ से १८९१ तक लखनऊ म्यूजियम के क्यूरेटर डा० फ्यूहरर ने प्रसिद्ध जैनस्तूप को, जो कंकाली टीले मे था—खुदवाया और वहां से कई सहस्र मूर्तियाँ, वेदिकास्तंभ, तोरण-आयागपट्ट आदि प्राप्त किये जो सभी लखनऊ के संग्रहालय में भेज दिये गए। तो भी मथुरा संग्रहालय में पर्याप्त वस्तुएँ आ चुकी थीं और सन् १९०५ तक संग्रहालय में कला की लगभग ३ हजार वस्तुएँ इकट्ठी हो चुकी थीं। इसी वर्ष प्रान्तीय सरकार की प्रार्थना पर हालैंड के एक विद्वान डाक्टर फोगल ने जो उस समय भारतीय पुरातत्व विभाग में थे, संग्रहालय की वस्तुओं की एक सूची बनानी प्रारंभ की, जो १९१० ई० में प्रकाशित हुई। इस सूची के प्रकाशित होने से संसार के सम्मुख मथुराकला का गौरव विशेष रूप से प्रकट होगया।

१९०८ ई० में मथुरानिवासी पं० राधाकृष्णजी ने संग्रहालय के लिये अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। उनके उत्साह तथा विशेष परिश्रम का ही फल था कि कुछ ही वर्षों में सैकड़ों बहुमूल्य कला-कृतियाँ प्राप्त हो गईं। यद्यपि पंडितजी ने कुछ अच्छी वस्तुएं विदेशों को भेज दीं तथापि मथुरा संग्रहालय के लिये उन्होंने जो सेवाएँ कीं वे सराहनीय हैं। उनका संबंध संग्रहालय के साथ सन् १९३६ ई० तक बना रहा। उनके परिश्रम तथा प्रयत्न के फलस्वरूप सन् १९२९ ई० में

संग्रहालय की वर्तमान नवीन इमारत डैम्पियर नगर में बनी जिसमें व्यवस्थित ढंग में सामग्री का प्रदर्शन किया गया।

भविष्य—मथुराकला का इस समय काफी ख्याति संसार में हो चुकी है। बड़े-बड़े कलावत्ता मुक्तकंठ से इस कला का बखान करते हैं। अब भी प्रति वर्ष ब्रज से काफी संख्या में कलाकृतियाँ प्राप्त होती रहती हैं परन्तु उनको प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सामने आती हैं। अभी हमारी भोली-भाली जनता कला के महत्व को नहीं पहचानती। सैकड़ों वस्तुएं अब भी नष्ट हो रही हैं। अनेक महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक तथा कलात्मक वस्तुएँ पूजन में पड़ी हैं। वह पूजन भी प्राय गलत ढंग का होता है। उदाहरणार्थ बुद्ध की मूर्ति शिव मानकर, जैन तीर्थंकर को प्रतिमादेवी मान कर तथा यक्ष प्रतिमा को कृष्ण की मूर्ति मान कर उनकी पूजा की जाती है। इसका प्रधान् कारण जनता का अज्ञान तथा अंधविश्वास है। शिक्षण-शिविर के स्नातक बन कर आप लोगों का गाँवों में जा कर यह कर्तव्य होगा कि अंधविश्वासों में पड़ी हुई भोली जनता को वास्तविक बात समझावें। इस प्रकार बहुत सी कला-कृतियाँ—मूर्तियाँ, चित्र संगीत के प्राचीन वाद्य यंत्र पुस्तकें आदि नष्ट होने से बच जायँगी। हमारी संस्कृति का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो चुका है। अब जो कुछ सौभाग्य से बच सका है हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए तथा उसके महत्व के प्रसार का प्रयत्न करना चाहिए।

आज ब्रज-प्रदेश अपनी कलाओं को भूल-सा गया है और परमुखापेक्षी बन गया है। आज जयपुर, बम्बई आदि स्थानों में निर्मित मूर्तियाँ, चित्र आदि यहाँ दिखलाई पड़ते हैं। यह खेद की बात है। हमें ब्रज की प्राचीन कलाओं का उद्धार करना है और जनपद के सुप्त कलात्मक जीवन को पुनः जाग्रत करना है। हमें प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे कलाकार अपने पूर्वजों की परंपरा को जारी रक्खें और उनके गौरव को अमर बनावें। हमें अपनी प्राचीन कला का सम्यक् अध्ययन अन्वेषण कर एक बार फिर उसका सर्वतोमुखी प्रसार करके ब्रज-भूमि को गौरवान्वित करना चाहिए।

परिशिष्ट—

शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थ—मथुरा की बढ़ी हुई शिल्प-कला के अनुरूप यहाँ शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थों का भी अवश्य प्रणयन हुआ होगा। जैसा पीछे लिखा जा चुका है। मथुरा के शक-क्षत्रप तथा शासक स्थापत्य तथा मूर्तिकला के बड़े प्रेमी थे। मथुरा से मिली हुई अधिकांश सामग्री शक-कुषाण काल की ही है। क्षत्रप लोग विद्या प्रेमी थे और वे पुस्तकालयों को संरक्षा भी करते थे। इसका प्रमाण कुछ समय पूर्व उपलब्ध एक हस्तलिखित ग्रंथ में मिलता है।

सन् १९२४ में मथुरा-पुरातत्व-संग्रहालय के भूतपूर्व क्यूरेटर रायबहादुर पं० राधाकृष्ण जी को मथुरा से दो अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए थे। उनमें से एक संस्कृत का शिल्पशास्त्र का ग्रन्थ था, जो देवनागरी लिपि में लिखा हुआ था। इस विशाल ग्रन्थ में, जिसके रचयिता विश्वकर्मा लिखे हुए हैं बारह विभाग है जिनमें कुल मिलाकर एक लाख अट्ठानवे हजार श्लोक हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भिक पृष्ठों से पता चलता है, कि प्रस्तुत ग्रन्थ एक प्राचीन ग्रन्थ का अनुवाद है, जो प्राकृत में लिखा हुआ था और जो मथुरा के किसी क्षत्रप के पुस्तकालय में विद्यमान था। ग्रन्थ में क्षत्रप का नाम कट जाने से पढ़ा नहीं जा सका। वर्तमान ग्रन्थ भीमसेन नामक लेखक के द्वारा संस्कृत में अनुवादित हुआ था। यह पता लगाना कठिन है कि उक्त लेखक ने किस समय यह अनुवाद किया, परन्तु उसकी नक़ल करनेवाले ने लिखा है कि उसने शाहंशाह बाबर के राज्यकाल में अनुवादित ग्रन्थ की प्रस्तुत प्रतिलिपि की। अतः यह प्रतिलिपि सन् १५२६ से १५३० ई० के बीच किसी वर्ष हुई होगी। प्रतिलिपि करने वाले ने अपना नाम देवीचरन लिखा है। ग्रन्थ में मूर्ति तथा स्थापत्य कला का विशद विवेचन है, पर अभी तक इसका पूर्ण अध्ययन नहीं किया जा सका।

दूसरा ग्रन्थ भी शिल्प सम्बन्धी है। इसमें सड़क, पुल, नहर आदि के निर्माण का वर्णन है। इनके अनेक प्रकार के स्वरूपों का कथन ग्रन्थ में किया गया है। इसके मूल लेखक का नाम नील लिखा हुआ है। इसका संस्कृत अनुवाद अकबर के मन्त्री खानखाना की आज्ञा से किया गया। वर्तमान पुस्तक में पैतालीस हजार चार सौ

अस्सी श्लोक मिलते हैं। अनुवादक का नाम सुखदेव शर्मा लिखा है। उसने लिखा है कि वह मथुरा क्षेत्र में स्थित गोकर्णेश्वर घाट पर रहने वाले माथुर ब्राह्मण वसुदेव शर्मा का पुत्र था। इस पुस्तक में श्लोकों के साथ साथ उनकी संक्षिप्त व्याख्या भी दी हुई है।

खेद है कि ये दोनों महत्वपूर्ण पुस्तकें उक्त रायबहादुर साहब द्वारा १९२४ ई० में ही विलायत भेज दी गई थीं। प्राचीन शिल्पशास्त्र सम्बन्धी बहुत कम ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं और अब तक के मिले हुए इस विषय के ग्रन्थों में उपर्युक्त ग्रन्थ सब से अधिक विशाल हैं। अभी तक इन ग्रन्थों का सम्यक्रूपेण अध्ययन नहीं हुआ, अन्यथा हमें प्राचीन भारतीय शिल्प के संबंध से अनेक महत्वपूर्ण बातें विदित होतीं हैं। पहले ग्रन्थ में पाये हुए उल्लेख से सिद्ध होता है कि मथुरा के क्षत्रप, जिन्होंने यहां लगभग ढाई सौ वर्ष तक शासन किया था, विद्याव्यसनी थे तथा पुस्तकालयों का महत्व समझते थे।*

*शिल्प-शास्त्र पर अब तक मयमतम्, शिल्परत्नम्, तंत्रसमुच्चय, काश्यप-शिल्पम्, मानसार, मानसोल्लास आदि ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं और प्रकाशित हो चुके हैं।

ब्रज का इतिहास

[श्री० मदनमोहन नागर एम० ए०, क्यूरेटर प्रॉविंशल म्यूज़ियम, लखनऊ]

१—राजनैतिक इतिहास

अ—पूर्वकाल—ब्रज-मंडल की राजधानी मथुरा उत्तरी-भारत के प्राचीन स्थानों में एक बड़े महत्व की जगह है। हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता जगत्पूज्य भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की जन्मभूमि होने के कारण यह नगरी लगभग ५००० वर्षों से भागवद्‌धर्म का एक प्रधान केन्द्र माना जाता है। यहाँ पर हिंदुओं की अत्यंत बढ़ी-चढ़ी दशा को देख कर बौद्धों और जैनों ने भी इसे अपने धर्म का केन्द्र बनाया। भगवान् बुद्ध के समय में मथुरा आर्यावर्त्त की सात महापुरियों में से एक गिनी जाती थी और सूरसेन प्रदेश की राजधानी थी। इस समय यहाँ 'अवन्तिपुत्र' नाम का राजा राज्य करता था, जो वत्सवंश के सम्राट् चंडप्रद्योत का दौहित्र था। अंगुत्तर-निकाय नाम के बौद्ध ग्रंथ से यह मालूम होता है कि अपने जीवन काल में एक बार भगवान् बुद्ध भी मथुरा पधारे थे। उस समय इस नगर का शासन इतना बिगड़ा हुआ था और राजवंश की शक्ति इतनी हीन थी कि तथागत के मन पर इस नगरी का संस्कार अच्छा नहीं पड़ा और वे फिर दूसरी बार यहाँ नहीं आये। अशोक के अवदानों से पता चलता है कि ई० पू० ३ री शती के लगभग यह नगर अशोक के विस्तृत राज्य के अंतर्गत था और कला-कौशल के नाते बड़ी उन्नत अवस्था में था। परखम (c.i. चित्र १) बड़ौदा, भरतपुर, झींग का नगला आदि स्थानों से प्राप्त यक्ष-मूर्तियाँ इसी काल की हैं जो मथुरा की उच्च-कोटि की स्थापत्य-कला का परिचय देती हैं।

किंतु, मथुरा का सच्चा तथा अनुसन्धान (Research) की

कसौटी पर कसा हुआ इतिहास हमें शुंगकाल यानी ई० पू० १८५ से मिलता है जब यह प्रदेश शुंग राजाओं की लंबे-चौड़े राज्य का पश्चिमी सूबा था। यद्यपि शुंग राजाओं से साक्षात् संबंध रखनेवाला कोई भी स्मारक हमें अभी तक यहाँ से नहीं मिला है फिर भी उस समय की कला के सैकड़ों नमूनों से, जो मथुरा और उसके आस-पास की खुदाई में अब तक मिले हैं, यह स्पष्टरूपेण प्रतीत होता है कि ई० पू० दूसरी शताब्दी में यह स्थान धर्म और कला के लिए दीपक की भाँति जगमगाता था। इसी समय पश्चिमोत्तर प्रदेश में हिंदी-यूनानियों (Indo-Greeks) का बोलबाला हुआ और युग पुराण की गार्गी संहिता तथा कलिंग के राजा खारवेल की हाथीगुंफा वाली प्रशस्ति से यह जाना जाता है कि ई० पू० १५० के लगभग मथुरा शुंग नरेश पुष्यमित्र के हाथ से निकलकर यवनराज दिमित्रिय (Demetrius) के अधीन होगया था। ई० पू० १४० के लगभग दिमित्रिय की मृत्यु के पश्चात् जब हिंदी-यूनानियों का राज्य अपने ही गृह-युद्ध के कारण शिथिल होकर कई टुकड़ों में विभक्त होगया तो शुंगों ने मथुरा को पुनः (यवनों से छीन कर अपने राज्य में) मिला लिया। पर यह हालत अधिक दिन न टिक सकी और ई० पू० १०० के लगभग यह नगर शुंगों के हाथ से फिर निकलकर पश्चिमोत्तर भारत के शक-क्षत्रपों के अधीन होगया। क्षत्रपवंश ने ई० पू० ५७ के लगभग तक मथुरा पर राज्य किया। हगान और हगामष इस वंश के सबसे पहिले सम्राट् थे, जिन्होंने साथ-साथ मथुरा पर राज्य किया। क्षत्रपवंश के सबसे प्रतापी नरेश महाक्षत्रप राजुल और उसका बेटा महाक्षत्रप शोडाष थे, जिन्होंने मथुरा में यमुना नदी के किनारे एक विशाल सिंह-स्तंभ बनवाकर अपने को अमर किया। अभाग्यवश इस स्तंभ का तो कुछ पता नहीं चला पर इसका शीर्षभाग (Capital) इस समय लंदन के सुप्रसिद्ध ब्रिटिश म्यूज़ियम मे सुरक्षित है। यह मथुरा के चकत्तेदार लालपत्थर का बना है और इस पर पीठ से पीठ सटाकर बैठे हुए दो शेर तराशे गये हैं। शिखर के सारे सतह पर उस ज़माने से पश्चिमोत्तर भारत की खरोष्ठी-लिपि और प्राकृत भाषा में एक लेख खुदा है, जिससे यह ज्ञात होता है कि यह सिंह-स्तंभ प्राचीन थेरवाद शाखा के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के बौद्ध भिक्षुओं को भेंट चढ़ाया गया था, जिन्होंने मथुरा में रहने वाले महायान शाखा के अनुयायी महासंघिक

नाम के विरोधी दल के गुरुओं से शास्त्रार्थ करने के लिए प्राचीन नगर (आधुनिक जलालाबाद) नाम के नगर मे एक कट्टर सर्वास्तिवादी पंडित को बुलाया था। इसके अतिरिक्त इसी लेख में महाक्षत्रप राजुल की रानी कंबोजिका के भी यहाँ पर एक विहार बनवाने का उल्लेख आया है जो गुहा-विहार के नाम से प्रसिद्ध था। खुदाई में जो संस्मारक अब तक मिले हैं उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मथुरा की राजनैतिक तथा सामाजिक दशा क्षत्रपों के समय में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और वह पूर्व और पश्चिम की संधि पर एक प्रधान केन्द्र बन गयी थी। ई० पू० ५७ के लगभग शुंगों के हाथ में फिर एक बार राजसत्ता आई और उन्होंने मथुरा में अपनी एक शाखा स्थापित की। गोमित्र और विष्णुमित्र इस शाखा के सबसे नामी राजा थे जिन्होंने ई० पू० २० शताब्दी तक राज्य किया।

किंतु मथुरा के इतिहास में सबसे गौरवपूर्ण समय कुषाण राजाओं का है, जिन्होंने ई० स० १ से ३०० तक यहाँ लगातार राज्य किया। इस काल में कला, साहित्य, शिल्प, व्यवसाय, वाणिज्य आदि सभी दिशाओं में सभ्यता की परम उन्नति हुई, जिसके कारण कुषाण-युग वास्तव में मथुरा के इतिहास में 'स्वर्णयुग' कहलाता है। इस स्वर्णयुग की बढ़ी-चढ़ी कारीगरी की छाप हमें पूरे तौर से ब्रज-मंडल से प्राप्त मूर्तियों आदि में दिखाई पड़ती है। इतना ही नहीं वरंच इस युग के लिए तो मथुरा सारे आर्यावर्त्त में एक प्रकार से स्थापत्य कला (lithic art) का सबसे प्रधान केन्द्र होगया था और अपने लाल चकत्तेदार पत्थर की बनी हुई मूर्तियाँ सुदूर कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, राजगृह आदि जगहों को भेजता था। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना भगवान् बुद्ध की मानुषीरूप में मूर्तियों का बनना था। (चित्र २ अ-ब) इसके अतिरिक्त जैनों के चौबीस तीर्थङ्करों को तथा हिंदुओं के अनेकों पौराणिक देवी-देवताओं को मानुषी रूप में मूर्तिमान करने का श्रेय भी इसी युग के शिल्पियों को था। इस समय के शिल्प के नमूने ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व रखते हैं। कारण, इनमें से बहुतों पर ऐसे लेख खुदे हुए हैं, जिनसे कुषाण राजाओं के नाम, उनके राज्यकाल की अवधि तथा उस समयके राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इन लेखों से हम कुषाण राजाओं का क्रमिक इतिहास (Chronology) इस

प्रकार संकलित कर सकते हैं:—महाराजा कुषाण अथवा कडफाइसिस प्रथम, जिसने कुषाण राज्य की नींव लगभग ई० सन् १ में डाली। उसका बेटा विमतक्षम या कडफाइसिस द्वितीय, जिसने लगभग ई० सन् ४० से ७७ तक राज्य किया (चित्र ३)। इसने आर्य्यावर्त्त के कुछ प्रदेशों को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। वह कट्टर शैव था और अपने को बड़े गर्व के साथ 'माहेश्वर' कहता था। इसने सोने और ताँबे के अनगिनत सिक्के अपने राज्य में चलाये। इन सिक्कों पर एक ओर तो मोटा चोगा, सिलवार तथा गिलगिटी बूट पहने हुए राजा की और दूसरी ओर अपने वाहन बैल के सहारे खड़े हुए त्रिशूलधारी भगवान शंकर की मूर्तियाँ अंकित हैं। विमकडफाइसिस के बाद कुषाण साम्राज्य की बागडोर कनिष्क के हाथ में आई। यह कुषाण-वंश का सबसे प्रतापी राजा था (चित्र ४)। इसने ई० सन् ७८ से १०१ तक राज्य किया, इसका राज्य पामीर के पठारों से लगाकर पूर्व में मगध तथा दक्षिण में विन्ध्याचल तक फैला हुआ था। मथुरा इसके पूर्वीय राज्य की राजधानी थी। इसके जमाने में सारे उत्तरी भारत में साहित्य, धर्म और कला का उत्कर्ष हुआ और मथुरा इस उन्नति का प्रधान केन्द्र था। महाराज कनिष्क स्वयं बड़ा विद्वान् था और विद्वानों का बहुत आदर करता था। बुद्ध-चरित्र और सौंदरानंद काव्यों का लेखक अश्वघोष और महायान पंथ का आदि प्रवर्त्तक आर्य वसुमित्र इसी की सभा के रत्न थे। विद्वानों का मत है कि महाराज कनिष्क के ही राज्यकाल में बुद्ध मूर्तियों का बनना सर्व प्रथम प्रारंभ हुआ। इसके अतिरिक्त इसके काल में अनेकों पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी बनीं जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय भगवान् कार्तिकेय की एक मूर्ति है, जो ई० स० ८९ अर्थात् शक संवत् ग्यारह में स्थापित की गई थी और कला तथा सौन्दर्य की दृष्टि से अतुल है। यह मूर्ति हाल ही में एक कुएँ से प्राप्त हुई है और इस समय मथुरा के संग्रहालय को सुशोभित कर रही है (चित्र ५)। कनिष्क के बाद कुषाण साम्राज्य का अधिकार हुविष्क को मिला। मथुरा से पाये गये लेखों से यह ज्ञात होता है कि हुविष्क ने ई० सन् १०७ से १३८ तक राज्य किया था। इसके राज्यकाल के एक लेख से पता चलता है कि मथुरा जिले के माँट नामक गाँव में इसके दादा के बनवाये हुए एक देवकुल की मरम्मत करायी गयी थी

इस देवकुल में कुषाण राजाओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित थीं जिनमें से प्राप्त महाराज विमतक्षम और कनिष्क की मूर्तियाँ इस समय मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस वंश का अंतिम प्रतापी राजा वासुदेव था जिसने ई० सन् १४५ से १६८ तक राज्य किया। वासुदेव के लेख अब तक हमें केवल मथुरा से ही प्राप्त हुए हैं, जिससे यह अनुमान होता है कि उसके जीवन काल में ही कुषाण साम्राज्य की नींव शिथिल होगई थी और उत्तरापथ का पश्चिमांश व अफगानिस्तान उसके हाथों से निकल गया था। इसी समय पूर्व में गुप्त राजाओं का तथा पश्चिम में सुराष्ट्र और मालवा के क्षत्रपों का बोलबाला हुआ पर मथुरा के 'देवपुत्रशाही शाहानुशाही' राजाओं की स्थानीय शाखा यहाँ पर लगभग ई० सन् की तीसरी शताब्दी तक राज्य करती रही, जब कि गुप्त साम्राज्य के साथ यह प्रदेश उसी में अंतर्हित होगया। गुप्त राज्य की नींव ई० सन् २५० के लगभग महाराज श्रीगुप्त ने डाली थी और इस वंश ने ई० सन् ५०० तक उत्तरी भारत पर अखंड राज्य किया। मथुरा से इस वंश के सबसे प्रतापी राजा चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के दो लेख मिले हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि ई० सन् ३८० में मथुरा गुप्त राज्य के अंतर्गत थी। गुप्त युग भारतवर्ष के इतिहास में कला, साहित्य, विज्ञान आदि के उत्कर्ष की दृष्टि से 'स्वर्णयुग' माना जाता है और इस काल में मथुरा ने भी कला-कौशल में खूब उन्नति की। इसका प्रमाण यहाँ से उस समय की पायी गयी बहुत-सी मूर्तियाँ हैं जो गुप्त कला के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में गिनी जाती हैं। मथुरा के संग्रहालय में प्रदर्शित भिक्षु यशदिन्न द्वारा बनाई गई भगवान् बुद्ध की प्रतिमा (A 5)(चित्र ६) इसी युग के महान् कलाकारों की पवित्र कृति है, जिसमें शांति और आनन्द के भावों का अनुपम संमिश्रण किया गया है। लेकिन सभ्यता तथा शांति की यह दशा अधिक दिनों तक न रह सकी और पाँचवीं शताब्दी के अन्त में मध्य एशिया के रहने वाले जंगली हूणों ने अपने नायक तोरमाण और मिहिरकुल के सञ्चालन में उत्तरी भारत को लूट डाला और बली गुप्त साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। हूण लोग बौद्ध धर्म के कट्टर शत्रु थे इसलिए इन्होंने भारतवर्ष के समस्त बौद्ध स्थानों को लूटपाट कर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मथुरा को भी इन आक्रमणकारी

हूणों की ध्वंसलीला का शिकार होना पड़ा और इस कारण यहाँ के कितने ही स्तूप, बिहार, संघाराम आदि बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट हो गये। पर सौभाग्यवश हूणों की राज्यसत्ता अधिक दिनों न चल सकी और ई० सन् ५३० में बालादित्य और यशोधर्मा नामक राजाओं के नेतृत्व में उस समय के नरेशों के संघ द्वारा मिहिरकुल बिल्कुल परास्त कर भारत से निकाल दिया गया। इसके बाद यद्यपि हर्षवर्धन, ललितादित्य यशोवर्मन, मिहिरभोज आदि अनेकों प्रतापी नरेशों के राज्य में मथुरा रहा पर इस समय की कला के जो नमूने हमें मिले हैं वे इतने कम और हीन हैं कि उनके आधार पर मथुरा का ठीक-ठीक इतिहास गढ़ना असंभव सा है और जब हम उत्तर मध्य युग (१०००-१२००A. D.) में पहुँचते हैं तो यह टिमटिमाता हुआ दीपक भी बुझ जाता है। हूणों के आक्रमण से मथुरा की सभ्यता को इतना प्रचंड धक्का लगा कि वह फिर यहाँ कभी नहीं पनप सकी। साथ ही साथ लोप हो गई यहाँ की वह सारी कला भी जो उत्तरी भारत में निरंतर ७०० वर्षों तक सूर्य के समान चमकती थी।

(आ) उत्तरकाल—इसके पश्चात भारतीय इतिहास के साहित्य में मथुरा का जो उल्लेख हमें मिलता है वह महमूद गजनी के नवें आक्रमण से सम्बन्धित है। यह आक्रमण सन् १०१७ ई० में हुआ था, और इसका पूर्ण विवरण हमें अल-उत्बी की 'तारीख-इ-यमीनी' में मिलता है। कहा जाता है कि महमूद ने सर्वप्रथम बरन-आधुनिक बुलन्दशहर के किले को जीत कर, काफिरों के एक नेता कूलचन्द के किले को जीतने के लिए, पैर बढ़ाया। कूलचन्द एक शक्तिशाली नायक था। उसने महमूद से लड़ने के विचार से 'घने जङ्गल' में अपने सैन्य व हाथियों को संगठित किया परन्तु भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। अपने को पराजित हुआ जान कर उसने अपनी स्त्री को अपने ही हाथ से मृत्यु की गोद में सुला दिया, और स्वयं भी आत्महत्या कर ली। महमूद ने उसके शहर को खूब लूटा और मंदिरों को जिनमें कई लोहे के सिखचों से सुदृढ़ बनाये गए थे और जिनमें कितने ही बड़े-बड़े काष्ठ स्तम्भों से परिवृत थे, जलाकर भूमिशायी कर दिया। यद्यपि इस अवतरण में मथुरा या महावन का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि उपर्युक्त ग्रन्थ में कूलचन्द के किले को 'मंज' कहे जाने से तथा 'घने जङ्गल' शब्द के महावन के पर्यायवाची होने से यही

प्रतीत होता है कि इस वर्णन में मथुरा नगरी का ही इङ्गित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस नगर का नाम 'महारूतुलाहिन्द' अर्थात् जहाँ मन्दिर इत्यादि बड़ी संख्या में पाये जाते हों कहा गया है। जिसके आधार पर फरिश्ता इत्यादि यवन इतिहासकारों ने इसे मथुरा का ही रूपान्तर माना है।

इतिहासकारों के मतानुसार मथुरा इस समय ब्राह्मण धर्म विशेषतः आधुनिक कृष्ण-भक्ति का केन्द्र बन चुका था और इसी के फलस्वरूप महमूद को यहाँ के मन्दिरों में अतुल धनराशि मिली थी।

सन् १०१७ के पश्चात् से अकबर के समय तक इस नगरी का इतिहास अज्ञात सा है। यवन शासकों के आतंक के कारण मन्दिरों का समृद्धशाली होना प्रायः रुक-सा गया था क्योंकि उनकी गृद्ध-दृष्टि से लेने वाले और देने वाले दोनों बचना चाहते थे। सम्भवतः इसी-लिए जिस मथुरा नगरी में बौद्ध और जैन संस्कृति के अवशेष अब तक अगणित संख्या में पाये जाते हैं वहाँ पर पौराणिक धर्म के मन्दिर आदि या उसके ध्वंसावशेष बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। तत्कालीन यवन इतिहास में इस नगरी के उल्लेख भी नाम-मात्र ही को हैं। सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१६) के शासन काल का वर्णन करते हुए 'तारीख-इ-दौदी' का लेखक कहता है कि बादशाह इतना कट्टर मुसलमान था कि उसने मथुरा के मन्दिरों का पूर्ण विध्वंस कर उसमें की प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ कसाइयों को बांटो के काम में लाने लिए दे दीं। पर वह इतने से ही संतुष्ट न रहा, उसने सब बड़े-बड़े मन्दिरों को सरायों में परिवर्तित कर दिया और हिन्दुओं के सारे धार्मिक आचार बन्द करा दिए।

जिस समय बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित किया उस समय (१५२६) महावन में मरघूब गुलाम सम्भवतः शासक के पद पर था। जुबदत-उल-तवारीख के लेखक शेख नूर-उल-हक ने शेरशाह द्वारा आगरे से दिल्ली तक एक मार्ग बनवाये जाने के सिलसिले में मथुरा के उन जङ्गलों का भी उल्लेख किया है जिनमें रहने वाले डाकुओं का आतंक फैला हुआ था। मथुरा के ये जङ्गल मध्यकाल में मुगल सम्राटों के आखेट के प्रमुख स्थान बने थे। अबुलफज़ल हमें बतलाता है कि किस प्रकार अकबर ने उसके एक नौकर के ऊपर

झपटने वाले शेर को धाराशायी किया था। जहांगीरनामे से भी ज्ञात होता है कि इन्हीं वनों में किस प्रकार एक शेर हाथी पर बैठी हुई नूरजहाँ की गोली का शिकार हुआ था। शाहजहां ने भी नदी के उस पार महावन से चार शेरों की बलि ली थी जिसका विवरण हमें शाहनामे में बड़े विशद शब्दों में मिलता है।

अकबर के उदार शासन काल में मथुरा पुनः उन्नति के सोपान पर चढ़ने लगा। इसी समय गोवर्धन और वृन्दावन के प्रमुख मन्दिरों का निर्माण हुआ। १५७० के लगभग वृन्दावन के सन्तों की कीर्ति इतनी अधिक फैली कि स्वयं मुगल-सम्राट् अकबर उनके दर्शन का लोभ संवरण न कर सका। उसकी आँखों पर पट्टी बाँध कर उसे वृन्दावन स्थित निधिवन के कुञ्जों में ले जाया गया और एक ऐसी चमत्कार झाँकी के दर्शन कराये गये कि हठात् उसे इस भूमि के पावित्र्य का लोहा मानना पड़ा। इसी समय कुछ सामन्त राजाओं ने वृन्दावन में मन्दिर निर्माण की बात चलाई और इस घटना के फल-स्वरूप श्री गोविन्ददेव, गोपीनाथ, जुगुलकिशोर और मदनमोहनजी के मन्दिरों का निर्माण हुआ। अकबर ही के शासन काल में अनेक शासन सम्बन्धी सुधार किये गये और हिन्दुओं को अनेक धार्मिक सुविधाएँ भी दी गईं।

जहाँगीर के राज्यकाल में मथुरा के इतिहास में कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुए। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना ओरछाधिपति वीरसिंहदेवजी द्वारा ३३ लाख रुपया लगाकर यहाँ एक बड़े मन्दिर के निर्माण की थी। इससे ज्ञात होता है कि जहाँगीर ने भी अपने पिता के ही समान हिन्दुओं के प्रति उदार नीति का अवलम्बन किया था। मथुरा से सम्बन्धित दूसरा उल्लेख जहाँगीर ने स्वयं किया है कि किस प्रकार उसने इस नगर के समीप विद्रोही राजकुमार खुर्रम, जो आगे चलकर शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, तथा उसके सेनापति सुन्दरराय और दरब को पराजित किया।

शाहजहाँ के राज्यकाल में भी मूर्तिध्वंस के अधिक उल्लेख नहीं मिलते। उसके समय के मथुरा के कुछ शासकों की नामावली हमें शाह-नामे में मिलती है, जिन्होंने कुछ सराएँ इत्यादि यहाँ बनवाईं परन्तु इससे मथुरा के इतिहास पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। शाहजहाँ

के राज्यकाल में यहाँ का अन्तिम शासक अलिवर्दीखान का पुत्र जाफर था।

मथुरा का इतिहास औरङ्गजेब के जीवन से दो प्रमुख घटनाओं के कारण सम्बन्धित है। प्रथम तो यह कि यहाँ उसके पुत्र महमूद सुलतान का जन्म हुआ था और दूसरे यहीं पर सन् १६५८ में उसने मुराद के साथ विश्वासघात कर उसे बन्दी बनाया और अन्त में उसके रक्त से रञ्जित हाथों से अपने राज्य की नींव डाली थी।

सन् १६६० में अब्द-उन-नबी यहाँ का शासक नियुक्त हुआ। उसकी बनवाई हुई मस्जिद अब तक विद्यमान है। आधुनिक मथुरा की नींव इसी के द्वारा पड़ी। यह अब्द-उन-नबी वही है जिसे यवन इतिहासकारों ने प्रथम सामूगढ़ के युद्ध में दारा का पक्षपाती बतलाया है। किन्तु कहा जाता है कि औरङ्गजेब के पक्ष को स्वीकार करने के एक सप्ताह बाद ही वह इटावा का फौजदार नियुक्त हुआ। तत्पश्चात वह सरहिन्द भेजा गया और अन्त में मथुरा का शासक नियुक्त किया गया। मासीर-इ-आलमगीरी के लेखक के कथनानुसार अब्द-उन-नबी सज्जन, धार्मिक व उत्तम शासनकर्ता था। इसकी मृत्यु एक स्थानीय विद्रोह के दमन करने में हुई और इसी घटना को महत्व देकर औरङ्गजेब ने मथुरा पर अपनी हिन्दुविद्वेषिणी तलवार उठाई, जिसके फलस्वरूप कितने ही अच्छे अच्छे मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। ओरछाधिपति के बनवाये हुए केशवदेवजी के तथा वृन्दावन के अन्य अच्छे अच्छे मन्दिरों के सुन्दर गगनचुंबी शिखर औरङ्गजेब को फूटी आँखों भी नहीं सुहाते थे। अतः उसने इन्हें धूलिधूसरित कर मासीर-इ-आलमगीरी के अनुसार मिथ्या देवताओं का नाश किया। इस ध्वंसानुष्ठान की पूर्णता मथुरा वृन्दावन के नामों को क्रमशः इस्लामाबाद और मोमीनाबाद में परिवर्तित करने पर हुई। किन्तु ये नये नाम बढ़ती हुई पौराणिक धर्म की शक्ति के आगे चिरस्थायी न हो सके।

औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात मुगल-साम्राज्य शिथिल होने लगा। उधर दक्षिण में मराठे अत्यधिक नोच-खसोट करने लगे थे। फर्रुखाबाद के बंगश नवाब सारे दोआब पर हाथ साफ किये बैठे थे। उत्तर में रोहिले भी धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ाये जा रहे थे। इतना

ही नहीं वरन् दिल्ली व आगरे के समीपवर्ती सरदार अपने को स्वतंत्र घोषित करने की सोच रहे थे। इनमें जिस शक्ति ने मुगल-साम्राज्य को उसके केन्द्र में ही सबसे अधिक छिन्न-भिन्न किया वह जाटों की थी। चूरमान नामक एक जाट नायक ने इस शक्ति की नींव डाली थी। उसने अपने में इतनी क्षमता उत्पन्न करली कि वह मुगल-साम्राज्य से टक्कर ले सके। जिस समय औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी सिंहासन के लिए आपस में युद्ध कर रहे थे, उस समय जाट अपनी शक्ति संचित करने में संलग्न थे। कुछ ही समय में इनकी शक्ति इतनी बढ़ी कि फर्रुखसियर ने सिंहासन पर बैठते ही इन्हें अपनी ओर मिलाने के लिये चूरमान को बहादुरखान की पदवी से भूषित किया।

सन् १७२२ में ठाकुर बदनसिंह, जो चूरमान का भतीजा था, अम्बर के जयसिंह की सहायता से डीग में जाटों का राजा बना। उसने मथुरा जिले के सहार नामक गाँव में एक भव्य प्रासाद बनवाया और वह बुढ़ापे में यहीं पर रहने लगा। उसके ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल के समय में जाट-शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँची। १७२५ में मराठे दिल्ली जीतने की लालसा से ग्वालियर प्रदेश तक बढ़ आये। दिल्ली के बादशाह ने मुहम्मद बंगश को उनके साथ लड़ने को भेजा। बंगशखाँ कई वर्ष तक मरहठों की बाढ़ रोके रहा। किन्तु सन् १७३४ में हार कर उसे पीछे हटना पड़ा। उस समय मराठों की अनेक टुकड़ियाँ आगरे के प्रदेश में घुस आईं और लूटपाट मचाने लगीं। सन् १७३७ में दिल्ली के बादशाह ने सादतखां सफदरजंग के सेनापतित्व में एक बहुत बड़ी सेना भेजी जिसकी मुठभेड़ मराठों से इतमादपुर नामक स्थान पर हुई। इधर मराठों ने एक ओर तो शाही सेना से मुकाबला किया तथा दूसरी ओर डीग के रास्ते से दिल्ली पर धावा बोल दिया। यद्यपि इस हमले में मुगल सेना को काफी नुकसान हुआ तथापि मराठों को इससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ और थोड़े ही दिनों बाद उन्हें वापिस लौटना पड़ा। मुगलों और मराठों की इस मुठभेड़ में सूरजमल को अपनी शक्ति बढ़ाने का अच्छा अवसर मिल गया। परन्तु कुछ ही दिनों में सारे भारत में आपसी झगड़ों तथा नादिरशाह दुर्रानी के भयावह आक्रमण के कारण जो अस्थिरता पैदा हो गई थी उसके दुष्परिणाम मथुरा को भी भोगने पड़े और यह प्रदेश कभी मराठों द्वारा और कभी यवनों द्वारा आक्रमित होता

रहा। सन् १७६१ मे पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ। इसमें मनोभेद के कारण सूरजमल ने मराठों का साथ नहीं दिया, फलत: युद्ध में मराठों की अत्यधिक हानि हुई और सूरजमल सुरक्षित रहा। इसी बीच उसने आगरे के क़िले पर धावा बोल कर खूब लूटपाट की तथा कुछ दिनों के लिये उसे अपने अधिकार मे कर लिया।

सूरजमल के मरने के पश्चात् ब्रज प्रदेश में बड़ी अस्थिरता उत्पन्न हो गई। १७७१ में मराठों ने भरतपुर को जा घेरा वहाँ पर काफी धन प्राप्त कर लेने के बाद वे मथुरा की ओर बढ़े परन्तु बीच में जाटों ने उन्हें पुन: घेर लिया इससे कुपित होकर मराठों ने उन्हें समूल उच्छेदित करने का बेड़ा उठाया। किसी प्रकार सत्तर लाख रुपया देकर जाटों ने अपनी जान बचाई तथा यमुना के पूर्व की ओर का प्रदेश अपने अधिकार में रखा। इसके उपरान्त सन् १७७२ में नजबखां ने मथुरा के भूभाग पर आक्रमण किया। इस समय जाटों को यवनों से अनेक युद्ध करने पड़े जिसमें अधिकतर जाट-शक्ति का ह्रास होता रहा और अन्ततोगत्वा सन् १७७४ में जाटों का स्वातंत्र्य सूर्य कुछ काल के लिये अस्त हो गया। केवल करद राजा के नाते भरतपुर तथा उसके आसपास मे नौ लाख की आय का भू-प्रदेश उनके हाथ में रहा।

१७७४–१७८२ तक मथुरा दिल्ली साम्राज्य का ही अंग बना रहा। परन्तु इसके पश्चात आन्तरिक समस्यायों के कारण दिल्ली के तत्कालीन वज़ीर अफ़रासियाबखाँ को मराठा सरदार माधोजी सिंधिया की सहायता लेनी पड़ी। माधोजी मराठों का शक्तिशाली नायक था। उसने अपनी सेना को यूरोपीय पद्धति से शिक्षित किया था। साम्राज्य-विस्तार का ऐसा सुन्दर अवसर भला कब चूकता ? उसने उसी समय दिल्ली के लिये प्रस्थान किया ; परन्तु भाग्यवशात वज़ीर की इन्हीं दिनों हत्या हो गई थी, अत: माधोजी को अनायास ही दिल्ली का अधिकार मिल गया। वहाँ के तत्कालीन परावलम्बी बादशाह ने माधोजी को अपना सेनापति बनाया और उसे दिल्ली तथा आगरे के सूबे का शासन-प्रबन्ध भी सौंप दिया इसके बदले मे माधोजी ने बादशाह को ६५००० रुपया मासिक देने का वचन दिया। इस प्रकार अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के पश्चात् सिंधिया ने धन-संग्रह करने का विचार किया। इस उद्देश की पूर्ति के लिए

उसने राजपूतों से कर लेना और मुसलमानों की जागीरों का छीनना आरम्भ किया। इसके फलस्वरूप बहुतेरे मुसलमान जागीरदार उसके विरुद्ध हो गए। और उन्होंने सैन्यबल से विरोध करना प्रारम्भ किया। शाहीसेना भी जिसने अब तक सिन्धिया का साथ दिया था, उसके विरुद्ध हो गई। अब तो सिन्धिया ने अपने को अकेले पाकर दिल्ली पर राज्य करने का विचार त्याग दिया और ग्वालियर लौटना ही उचित समझा। १७८७ में विद्रोही यवन-नायक गुलामक़ादिर और इस्माइलबेग ने आगरे के किले को घेर लिया। इस किले का संरक्षण माधोजी का सेनापति लखबादादा जाटों को सहायता से कर रहा था, परन्तु उसके छक्के छूटते देख माधोजी को सहायता के लिए बढ़ना पड़ा। फतेहपुरसीकरी के युद्ध में मराठों और जाटों की सम्मिलित सेना को यवन सेना से बुरी तरह परास्त होना पड़ा। इसके दो ही मास उपरान्त दक्षिण से राणाखान के नेतृत्व में सहायता आ गई और सिन्धिया ने पुनः आगरे के किले पर अधिकार प्राप्त कर लिया। अब इस्माइलबेग और गुलामक़ादिर दोनों दिल्ली भागे परन्तु मुगल बादशाह ने उनका मुँह देखना भी अस्वीकार कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर एक अङ्ग रक्षक की सहायता से उन्होंने वृद्ध बादशाह के नेत्रों की ज्योति छीनकर अपने को सदा के लिए कलंकित किया। इधर माधोजी ने शक्ति-संचय कर दिल्ली पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया।

मथुरा माधोजी का अत्यन्त प्रिय वास स्थान था। प्रारम्भ से ही गुसाईं हिम्मतबहादुर को उसने इसका प्रबन्ध सौंपा था। हिम्मतबहादुर के चातुर्य के कारण यवन विद्रोह के समय भी यह भू-प्रदेश पद-दलित होने बचा रहा। जब माधोजी मथुरा था उसी समय गुलामकादिर बन्दी बनाकर उसके सामने लाया गया और यहीं पर माधोजी की आज्ञा से उसकी गदहे पर उल्टे मुँह सवारी निकाली गई, अङ्गविच्छेद किया गया और उसी अवस्था में वह दिल्ली भेज दिया गया परन्तु मार्ग में मरता हुआ जानकर ले जाने वालों ने उसे एक वृक्ष पर लटका दिया।

इसके बाद सन १८०२ तक मथुरा मराठों के अधिकार में रहा और उसके इतिहास में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। अतः

जाटों ने यवनों के विरुद्ध सिंधिया का बराबर साथ दिया था और इसके लिए माधोजी ने मथुरा-आगरा के ११ परगने उन्हें दे दिए। इसके परिणाम स्वरूप जाट भी सन् १८०३ तक मराठों के मित्र बने रहे।

सन् १८०३ में पेशवा और अंग्रेजों में संधि हो गई। इसके फलस्वरूप सिंधिया और भोंसला दोनों को अंग्रेजों की शक्ति अत्यधिक बढ़ने का भय उत्पन्न हुआ। और वे दोनों आपसी वैमनस्य को छोड़कर अंग्रेजों से लड़ने के लिए सन्नद्ध हो गये। ठीक यही बात अवध के नवाबों के साथ भी थी। मराठों की तरह उसे भी यह आशंका होने लगी कि अंग्रेजो की बढ़ती हुई शक्ति के कारण सम्भवत: उसे दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि के प्रदेशों का आधिपत्य न मिल पाये। इस कारण से वह भी अंग्रेजों से टक्कर लेने की तैयारी करने लगा। ईस पर सन् १८०३ में लार्ड लेक एक बड़ी सेना लेकर दोआब की ओर बढ़ने लगा। कानपुर और अलीगढ़ ले लेने के बाद वह दिल्ली की ओर बढ़ा और एक ही दिन में वहाँ अधिकार जमाकर तथा कर्नल डेविड ऑक्टरलोनी को वहाँ का रेजीडेण्ट नियुक्त कर उसने आगरे की ओर पैर बढ़ाया। इसी समय सन् १८०५ में मथुरा सर्वप्रथम अँग्रेजों के हाथ लगा। कर्नल लेक ने सिंधिया को संधि करने पर बाध्य किया जिसके फलस्वरूप सिन्धिया को यह प्रदेश जिसकी आय कई लाख रुपयों की थी, अँग्रेजों को देना पड़ा।

इन दिनों होलकर शान्त पड़ा रहा। उसके हृदय में द्वन्द्व चल रहा था कि वह किसका साथ दे। यदि वह अंग्रेजों के विरुद्ध सिंधिया की सहायता देता तो उसे सिंधिया की शक्ति के अत्यधिक बढ़ जाने का भय था, और उसके विपरीत यदि अंग्रेजों की सहायता करता तो अंग्रेज शक्तिशाली बनते। अन्ततोगत्वा सिंधिया को अपने से अधिक शक्तिशाली बनने देना होलकर को अनुचित जान पड़ा और वह अकर्मण्य बना बैठा रहा। परिणाम यह हुआ कि आगे चल कर उसे भी एकाकी अंग्रेजों से दो हाथ करने पड़े। इधर-उधर कुछ लूट-पाट करने के बाद उसने लार्ड लेक से संधि करने की इच्छा प्रदर्शित की। परन्तु उसके प्रस्ताव कुछ अनुचित होने के कारण संधि की माँग ठुकरा दी गई और दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ कर दिया गया। युद्ध का पलड़ा कभी इस ओर झुकता तो कभी उस ओर। इस युद्ध

में मथुरा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण एक महत्व का सैनिक केन्द्र बन गया था। प्रथमतः कर्नल ब्राउन ने उस पर अधिकार जमाया। परन्तु कुछ ही दिनों में होलकर के दबाव के कारण उसे भागना पड़ा। परन्तु होलकर भी वहाँ अधिक दिनों न जम सका और लार्ड लेक के आक्रमण के फलस्वरूप उसे वहाँ से हटना पड़ा। उसके बाद होलकर ने दिल्ली को घेर लिया और लेक भी दिल्ली में घिरी सेना को सहायता देने चल पड़ा। इधर मराठी सेना ने जो इधर उधर छिप रही थी, डीग की ओर बढ़ना आरम्भ किया। इसी बीच कर्नल फ्रेसर एक बड़ी सेना लेकर गोवर्धन की ओर चल पड़ा। कुछ दिनों तक पड़ाव डालने के उपरान्त दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। युद्ध में विजय अँग्रेजों के हाथ रही परन्तु उन्हें अपना सेनापति खोना पड़ा। उधर फर्रुखाबाद के युद्ध में भी लार्ड लेक द्वारा होलकर पराजित हुआ और उसे भागना पड़ा। इस पराजय के पश्चात् यद्यपि होलकर बहुत दिनों तक जीवित रहा तथापि उसकी धाक उत्तर भारत में कदापि न जम सकी। इस प्रकार सन् १८०५ से मथुरा अंग्रेजों के अधिकार में आया और इसके बाद वह एक बहुत महत्व का सैनिक केन्द्र बना। १८२४ से यह शासन का भी केन्द्र बनाया गया।

१८५७ में मथुरा भी भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध से प्रभावित हुआ और उसने उसमें भाग लिया। उन दिनों यहाँ के कलेक्टर का नाम मार्क थार्नहिल था। मथुरा में अंग्रेजो ने धन का अच्छा संग्रह किया था जिसे वे आगरे हटाना चाहते थे। परन्तु भारतीय सेना ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। अन्य स्थलों की भाँति यहाँ भी अंग्रेजों को पहले तो बुरी तरह हराया गया। परन्तु शहर के धनिकों ने उनका पूरा साथ दिया। इसके फलस्वरूप सैनिक शिविर में तो खूब उथल पुथल हुई परन्तु नगर॰ छावनी की अपेक्षा शान्त रहा। थार्नहिल पहले तो साथियों को लेकर आगरे भाग गया था किन्तु बाद में उन्हीं धनकुबेरों के आश्रय में लौट कर शहर की आन्तरिक व्यवस्था को देखने लगा। उसने शनैः शनैः दमननीति का अवलम्बन किया और उसी के बल पर 'विद्रोही' मथुरा में शान्ति स्थापित की गई। इसके अनन्तर उन धनिकों को जिन्होंने संकट के समय अंग्रेजों का साथ दिया था उपहार में अनेकों जागीरें दी गईं। इसके अनन्तर मथुरा का इतिहास उन्नति का ही प्रतीक है।

२—धार्मिक इतिहास

(अ) पूर्वकाल—ब्रज से प्राप्त मूर्तियों, शिलालेखों, आदि से वहाँ का धार्मिक इतिहास भी संकलित किया जा सकता है। ईस्वी पूर्व की दूसरी शती से ई० सन् की छठी शताब्दी तक मथुरा उत्तरी भारत से बौद्ध, जैन तथा हिन्दू धर्म का एक प्रधान केन्द्र रहा और यहाँ के तक्षक भारतीय कला के विकास की प्रमुख धारा के तट पर खड़े होकर अपनी अनुपम कला का परिचय देते रहे। सबसे प्राचीन संस्मारक जो हमें इस स्थान से प्राप्त हुए हैं वे शुङ्ग काल के हैं। जिनसे हमें विदित होता है कि उस काल मे ब्रज में हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों ही मतावलम्बी अपने २ धर्म का बिना किसी आपसी भेदभाव अथवा वैमनस्य के पालन करते थे। इस युग में बौद्धों के बुद्ध तथा जैनों के तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ बनाना प्रारम्भ नहीं हुआ था। उनकी पूजा केवल चिह्नों यथा, पद्म, स्तूप, बोधिवृक्ष, चरणपादुका, आदि से होती थी। किन्तु भागवद् धर्म के अनेकों देवी-देवताओं की यथा शिव-लिङ्ग, मुख लिङ्ग (चित्र ७) बलराम (चित्र ८), श्रीलक्ष्मी (चित्र ९) आदि की मूर्तियाँ बनना प्रारम्भ हो गई थीं। इसी समय पश्चिमोत्तर भारत (गान्धार) में यूनानी राजाओं का बोलबाला हुआ जिसके फलस्वरूप भारतीय कला में यूनानी देवताओं तथा यूनानी विषयों का भी चित्रण होने लगा। इस विदेशी कला का प्रभाव मथुरा की कला पर भी पड़ा जिसके फलस्वरूप हमें यहाँ से यूनानी विषयों यथा हरक्युलीस द्वारा सिंह का पछाड़ना (चित्र १०), मधुपान (चित्र ११-१२) आदि की मूर्तियाँ मिली हैं। ई० पूर्व की पहली शताब्दी में मथुरा पर शक-क्षत्रपों का राज्य था। उनके एक लेख से ज्ञात होता है कि मथुरा में। इस समय सर्वास्तिवादिन् सम्प्रदाय की धाक थी। यह सम्प्रदाय प्राचीन थेरवादी सम्प्रदाय की एक शाखा थी। कहा जाता है कि जब पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में थेरवादी और महासंघिक धार्मिक विषयों पर एक मत न हो सके तो थेरवादी बौद्धसंघ से अलग होगये और उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत में अपना एक नया केन्द्र स्थापित कर लिया। उपरोक्त लेख से हमें विदित होता है कि मथुरा में स्थित थेरवादी भिक्षुओं ने यहाँ के अपने प्रतिद्वन्द्वी महासंघिक आचार्यों को अपने सम्प्रदाय की बातें अवगत कराने के लिए एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी को नगर

(आधुनिक जलालाबाद) से बुलाया था। इस प्रकार धार्मिक उद्देश्य के लिए दार्शनिकों का विभिन्न स्थानों में यातायात प्राचीन भारत की एक विशेषता थी। अन्य लेखों से हमें पता चलता है कि आगे चल कर मथुरा में महासंघियों का ही बोलबाला रहा। महासंघिक दल की सबसे बड़ी देन भगवान् बुद्ध की मानवी रूपमें मूर्ति थी। इस समय उत्तरी भारत में कुषाण सम्राटों का राज्य था जो लगभग तीन सौ वर्षों तक रहा। भारतीय कला तथा मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से यह समय बड़ा ही क्रियात्मक था और इसी युग में मथुरा के कलाकारों ने बौद्ध, जैन और हिन्दू तीनों प्रमुख धर्मों के देवी-देवताओं को मूर्तिमान किया। इस युग की कला के लिए सम्पूर्ण मध्य भारत मथुरा का ऋणी था। कारण यहां के शिल्पियों द्वारा निर्मित मूर्तियाँ श्रावस्ती, कुशीनगर, साँची, कौशाम्बी, तक्षशिला, राजगृह, आदि सुदूर प्रान्तों को भेजी जाती थीं और उन्हीं के आधार पर वहाँ के तक्षक प्रतिमाएँ गढ़ते थे। इस काल में मथुरा में हिन्दुओं के प्रायः सभी प्रमुख देवी-देवताओं के यथा त्रिदेव, विष्णु, ब्रह्म, शिव-पुरुष तथा लिङ्ग दोनों विग्रहों में, अग्नि (चित्र १३), कार्तिकेय, कामदेव, भगवान् कृष्ण (चित्र १४), सूर्य (चित्र १५) तथा उनके अनुचर, दुर्गा, महिषासुर मर्दिनी पार्वती, बौद्धों के बुद्ध तथा बोधिसत्वों के तथा जैनों के चौबीसों तीर्थंकरों (चित्र १६), मातृकाओं, आदि के स्वरूप निश्चित हो चुके थे। इसके बाद के ३०० वर्षों में भी, जिसे भारतवर्ष के इतिहास में गुप्तकाल कहते हैं और जो भारतीय धर्म, संस्कृति, कला आदि की उन्नति के लिए 'स्वर्ण युग' माना जाता है, इन देवी-देवताओं की अनेकों मूर्तियाँ बनती रहीं और कुषाणकाल में दिये गये रूपों का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। गुप्त युग की एक विशेषता महाविष्णु अथवा विश्वरूप विष्णु (चित्र १७) की मूर्तियाँ थीं। इनमें विष्णु के तीन मुख होते हैं जिनमें बीच वाला मुख तो साधारण तथा अगल-बगल वाले मुख वराह और नृसिंह के दिखाये गये हैं। मूर्तियों में पीछे प्रभामण्डल पर त्रिदेव, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, नवग्रह, आदि चित्रित होते हैं। इसके पश्चात्, हूणों तथा यवनों के हमलों के कारण मथुरा की राजनैतिक महत्ता फीकी पड़ गई और फलस्वरूप वह धार्मिक क्षेत्र में भी उतना उन्नत न रहा। आनन्द-कन्द भगवान कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण वह केवल एक प्रसिद्ध तीर्थ तथा यात्रा स्थान बना रहा।

(आ) उत्तरकाल—

किन्तु अवनति की यह दशा बहुत दिनों न रही और भारतवर्ष के मध्यकालीन धार्मिक इतिहास में मथुरा तथा वृन्दावन भक्तिप्रधान वैष्णवधर्म के लिए पुनः सर्वप्रमुख केन्द्र बने और आज भी उसी चोटी के स्थान पर आसीन हैं। वैष्णव-धर्म में प्रमुख तया निम्न चार संप्रदाय हैं:—श्रीवैष्णव (२) निम्बार्क (३) माध्व और (४) विष्णु स्वामी या वल्लभ सम्प्रदाय।

(१) श्रीवैष्णव संप्रदाय बहुत दिनों तक के लिये वृन्दावन वासियों को अज्ञात सा ही था। इसका पदार्पण वहां पर श्री रंगजी के भव्य मन्दिर के निर्माण होने के साथ हुआ। यह सम्प्रदाय वैष्णवों में प्राचीनतम माना जाता है। इसकी नींव प्रसिद्ध संत रामानुजाचार्य (११-१२ शती) द्वारा डाली गई थी। इस संप्रदाय के अनुयाइयों के भालपट्ट पर सदैव बड़ा सा श्वेत और रक्त चंदन का त्रिपुण्ड्र लगा रहता है। परन्तु अन्य लोगों की भाँति ये लोग राधा को आराध्या नहीं मानते। 'ॐ रामाय नमः' उनका आदि मंत्र है। यह संप्रदाय तें कल्लई और वेद कल्लई नामक दो उपशाखाओं में विभक्त है :—इन दोनों के त्रिपुण्ड्र तथा सिद्धान्तों में किंचित भिन्नता है। श्री रंगजी के मंदिर को पूजा विधान तें कल्लई शाखा के सिद्धान्तों के अनुसार है।

(२) निम्बार्क वैष्णवों का प्रमुख मंदिर मथुरा के समीप ध्रुव नामक टीले पर है। इस संप्रदाय के संस्थापक निम्बार्काचार्य नाम से विख्यात हैं क्योंकि उन्होंने अपने तपःसामर्थ्य से अपने अतिथि के भोजन कर चुकने तक सूर्य को एक समीपवर्ती निंब-वृक्ष पर अवतरित होने को बाध्य किया था। निंबार्क संप्रदायियों का कोई भी लिखित ग्रंथ नहीं मिलता। यद्यपि वे अपने सैद्धान्तिक ग्रंथों की नामावली प्रस्तुत करते हैं तथापि न तो वे उनके लेखकों तथा उनके मन्तव्यों को जानते हैं और न वे अपने सिद्धान्तों का पूर्ण विवेचन ही कर सकते हैं।

(३) माध्व वैष्णव व्रज भर में इतस्ततः बिखरे हुए हैं। और इनका कोई उल्लेखनीय मंदिर या केन्द्र नहीं है। इस सम्प्रदाय के आदि-पुरुष मध्वाचार्य थे जिनका जन्म ११९९ में दक्षिण भारत में

हुआ था। कहते हैं कि इन्होंने नौ वर्ष की अवस्था में ही गीता पर भाषा टीका की थी। इस सम्प्रदाय के अनुयायी त्रिरेखा-त्मक त्रिपुण्ड्र लगाते हैं, जिसमें मध्यरेखा कृष्णवर्ण की होती है और पार्श्ववर्ती रेखायें श्वेत चन्दन की।

(४) विष्णु स्वामी सम्प्रदाय अब वल्लभ सम्प्रदाय के नाम से विख्यात है और इसका प्राचीन नाम 'विष्णु स्वामी सम्प्रदाय' अब लुप्तप्राय हो गया है। कहा जाता है कि इसके सारे सिद्धान्त श्री गोकुल के गुसांई वल्लभाचार्यजी द्वारा आमूल संशोधित किए गए थे। अतः इस सम्प्रदाय के अनुयायी अब वल्लभ संप्रदायी ही कहे जाते हैं। वल्लभाचार्यजी का जन्म सन् १४७६ में चंपारण्य ग्राम में हुआ था। शैशव के समाप्त होते-होते ही इन्होंने अपना अध्ययन पूर्ण कर लिया था। दक्षिण में प्रारम्भ से ही इनका प्रभाव खूब जमा। वल्लभाचार्य के हृदय में कृष्ण-भक्ति के कारण ब्रज-प्रेम का स्रोत प्रारम्भ से ही बह रहा था। सन् १५२० में इन्होंने गोवर्धन में श्री-नाथजी का मंदिर बनवाया। बालोपासना के मूल प्रवर्तक होने के कारण गोकुल पर इनकी विशेष प्रीति थी। इनका शिष्य संप्रदाय भी खूब बढ़ा और उन्होंने ब्रज क्षेत्र भर में कितनी बैठकें तथा मन्दिर बनवाये।

इन चार प्राचीन संप्रदायों के अतिरिक्त वृन्दावन तीन अर्वा-चीन संप्रदायों का भी बड़ा भारी केन्द्र है। ये संप्रदाय वंगीय या गौड़ीय वैष्णव, राधावल्लभी तथा स्वामी हरिदास के अनुयाइयों के हैं। इन तीनों संप्रदायों में भी वंगीय वैष्णवों का सबसे अधिक प्रभुत्व वृन्दावन में है क्योंकि इस संप्रदाय के जन्मदाता चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप और सनातन ने ही वृन्दावन को मध्यकालमें पुनरुज्जीवित किया था। चैतन्य का जन्म बंगाल के नाड़िया ग्राम में १४८५ में हुआ था। कहा जाता है कि इनका विवाह वल्लभाचार्य की कन्या से हुआ था। १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने लौकिक व्यवहारों से नाता तोड़ दिया और भगवदाराधना करने में तत्पर हुए। मथुरा से जगन्नाथ तक के तीर्थाटन में छः वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त ये जगन्नाथ पुरी में ही स्थित हुए और लोगों में भगवत् कथा का प्रसार करने लगे। ४२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने देह

त्याग किया। इनके शिष्यों में अद्वैतानंद व नित्यानंद तो जगन्नाथ में ही रह गये परन्तु अन्य छः गोसाईयों ने वृन्दावन को अपना वास स्थान बनाया। चैतन्य संप्रदाय का मूल-तत्व कृष्ण-नाम के संकीर्तन में ही निहित है। तुलसी की माला व नासिका से भालपट्ट के ऊपरी भाग तक लगा हुआ श्वेत चंदन का तिलक इस संप्रदाय के अनुयायियों के विशेष चिह्न है। चैतन्य संप्रदाय के वृन्दावन-वासी आचार्यों के अनेक ग्रन्थ पाये जाते हैं। श्रीरूप, सनातन श्रीजीव गुसाईं, आदि इस पंथ के प्रमुख आचार्य थे।

राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक का नाम 'हरिवंश' था। इनके पिता का नाम व्यास व माता का तारा था। हरिवंश जी ने अपने आयुष्य के आरंभकाल को वृन्दावन ही में बिताना उचित समझा। मार्ग में इन्हें एक ब्राह्मण मिला, जिसने अपनी दो कन्याओं तथा श्री राधावल्लभजी की एक प्रतिमा को भगवान् की आज्ञा के अनुसार उन्हें समर्पित करना चाहा। हरिवंशजी ने तीनों को स्वीकार किया और प्रतिमा को वृन्दावन में स्थापित किया और यहीं से राधावल्लभी संप्रदाय का प्रारंभ हुआ। यही हरिवंश, श्री हितहरिवंश के नाम से भी विख्यात हैं। इनके सबसे प्रसिद्ध शिष्य ओरछा के व्यासजी थे जिनके विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। प्रसिद्ध लेखक व कवि ध्रुवदास जी हरिवंशजी के प्रमुख शिष्यों में थे। इनके लगभग ८२ ग्रन्थों के नाम ज्ञात है।

तृतीय संप्रदाय के जन्मदाता स्वामी हरिदासजी थे इस संप्रदाय के महन्तों को विवाहादि करने की सुविधा है। वृन्दावन में बाँके विहारी का मन्दिर इनका प्रमुख केन्द्र है। सारे भारत में यही एक मन्दिर पूर्णतया इनके अधिकार में है। सजावट, शिल्पकला इत्यादि की दृष्टि से यह एक अपूर्व वस्तु है। स्वामी हरिदास का जन्म सं० १५५७ में हुआ था। बचपन से इनका ध्यान पूजा की ओर अधिक था। २५ वर्ष की अवस्था में विरक्त हो कर ये निधिवन में तपश्चर्या करने लगे और शनैः-शनैः उक्त संप्रदाय के प्रवर्तक बन गये। इनकी निस्पृहता, दृढ़भक्ति तथा अन्य गुणों के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। मुगलकालीन प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्हीं का शिष्य था। विट्ठलविपुल इनके पहले शिष्य थे। भक्तमाल के अनुसार इनकी मृत्यु संवत् १६३७

में हुई जो अशुद्ध है। क्योंकि उस समय तानसेन का आश्रयदाता सम्राट् अकबर जो हरिदासजी का गायन सुनने के लिए वृन्दावन आया था सिंहासन पर आसीन भी नहीं हुआ था। यह माना जा सकता है कि हरिदास का समय ईसा की १६-१७वीं शताब्दी में था।

इन प्रमुख संप्रदायों के अतिरिक्त मलूकदासियों का तथा प्राणनाथियों का भी अड्डा व्रजप्रदेश है यद्यपि ये पंथ अत्यन्त सीमित और साधारण कोटि के हैं।

ब्रज की लिपि और लेख

[श्री कृष्णाचार्य एम० ए०, साहित्य-रत्न]

ब्रज का नाम भारत में सुप्रसिद्ध है। प्रसिद्धि का मुख्य कारण श्रीकृष्ण हैं। इस तथ्य में सन्देह नहीं, किन्तु गम्भीर साहित्य और इतिहासज्ञ जानते हैं कि शूरसेन प्रदेश श्रीकृष्ण के समय से भी पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। भारत के शासकों की पीढ़ियों में दो वंशों का नाम प्रसिद्ध है—मनु से सूर्यवंश और एल से चन्द्रवंश की गाथा ही भारत का प्राचीन इतिहास है। दूसरे वंश में चक्रवर्ती यदु हुए। उन्हीं का प्रतापशाली एक यादव वंश के नाम से बहुत बड़े काल तक स्थायी रहा। यह यदुवंश वैदिक था, वेद में शूरसेन प्रदेश का पता नहीं लगता, लेकिन इतना निश्चित है कि श्रीकृष्ण से भी कई शताब्दी पूर्व ये यदुवंशी ब्रज को अपनी मातृभूमि बना चुके थे।

इन यदुरक्त के सम्राटों ने ब्रज की बहुत सेवा और उन्नति की। यहाँ के जङ्गलों को काटा तथा नगर और ग्रामों का निर्माण किया। मानवधर्मशास्त्र में मध्यदेश के कई आदर्श जनपदों में शूरसेन का नाम है और बताया है कि यहाँ के आर्यों का चरित्र और सभ्यता अनुकरणीय है। ब्रज के वीर महाभारत युद्ध में अनुकरणीय पराक्रम दिखला गये थे। जिस समय भीष्म पाण्डवों से युद्ध कर रहे थे उस समय शूरसेन के योद्धाओं का प्रधान सेनापति भीष्म की अंगरक्षा का भार सौंपा गया था। द्रोणाचार्य तो इन पर इतना विश्वास रखते थे कि अपने नायकत्व में उन्होंने शूरसेनी वीरों को कुरुक्षेत्र की प्रथम पंक्ति में रखा था।

संस्कृति और क्षत्रियत्व के क्षेत्र से पृथक कला पक्ष पर भी अगर हम दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि मौर्य काल से भी एक पीढ़ी पहिले से लेकर शुंग और कुषाण युगों में होते हुए नाग राजाओं के तथा और भी आगे चल कर गुप्त सम्राटों की छत्र छाया में ब्रज ने जो कलात्मक अभिव्यक्ति की वह समस्त भारतीय राष्ट्र के अभिमान की वस्तु है!

भाषा और लिपि

ब्रज ने भाषा और साहित्य पर भी अपनी विशिष्टता की छाप लगाई है। शौरसेनी शैली और भाषा का आदर तो बड़े बड़े काव्य शास्त्रियों ने किया ही था किन्तु यह सर्व विदित है कि उत्तरी भारत की मागधी और शौरसेनी दो प्रधान भाषाओं में से दूसरी ने परम्परा को जीवन दान देने में बहुत काम किया। देवानांप्रिय अशोक के समय प्रचलित ब्राह्मीलिपि में लिखी जाने वाली बोलचाल की भाषा में कुछ समय उपरान्त प्रान्तीय भेद बढ़ने लगा। भाषा के साथ साथ लिपि में भी यह भेद दृष्टिगोचर हुआ। शूरसेन प्रदेश भाषा-गौरव के साथ साथ लिपि वैशिष्ट्य को भी न भूला। रणकुशलता, कलाप्रियता तथा आचार-विचारों की सभ्यता के साथ साथ समस्त ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति के साधन लिपि द्वारा ब्रज ने अपना मस्तक किस प्रकार ऊँचा रखा यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है। भारत की प्रधान राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी के विकास में ब्रज ने किस प्रकार गौरवमय भाग लिया, हम यहाँ कुछ विस्तार के साथ इस विषय की चर्चा करेंगे।

ब्राह्मी का संक्षिप्त इतिहास

भारतीय परंपरा में यह चर्चा बराबर मिलती रही है कि भारत की राष्ट्रीय लिपि का नाम ब्राह्मी था। लेकिन यह लिपि कैसी थी, किस तरह लिखी जाती थी तथा इसका प्रयोग भारत के किस किस स्थान में होता था इनमें से किसी एक प्रश्न का भी समाधान नहीं हो पाता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में इस लिपि का पता लग गया। इस खोज का इतिहास अत्यन्त आकर्षक तथा हमारे लिये शिक्षा का विषय है।

बात यह थी कि इतिहासकारों को अशोक के शिला लेख तथा स्तंभ लेख बराबर मिलते जाते थे, लेकिन यह किसी को पता न था कि इन पर ब्राह्मी लिपि में पाली भाषा अंकित है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों जिज्ञासुओं की इनके रहस्य को जानने की अधिकाधिक उत्कण्ठा बढ़ी। प्रयत्न तो फीरोजशाह तुगलक के समय से ही प्रारंभ हुआ, लेकिन उस समय पुरातत्वशास्त्र का जन्म

भी नहीं हुआ था। फिर भला लिपि कैसे पढ़ी जाती? फिर भी, ई० सन् १३५६ में फीरोज ने मेरठ और तोपरा (फिरोजाबाद) से अशोक की दो लाटों को राजधानी लाने की आज्ञा दी। किन्तु रिविर साथियो! बयालीस फुट लंबी तथा दो सौ मन से भी अधिक भारी लाट को लाया कैसे जाय? भारी समस्या थी विशेषकर उस समय कठिनाई का अनुमान हम कर सकते हैं कि जब कि क्रेनों का नाम भी न था। रेल, मोटर का सहारा भी न था। लेकिन फिर भी चुनार के बलुई पत्थर के पचीसों खंभ जब भारत के प्रत्येक कोने में आज से सवा दो हजार वर्ष पहले पहुँचाये जा सकते थे तब फीरोजशाह मेरठ से दिल्ली तक की दूरी पर शाही शक्ति पर बट्टा नहीं लगने देना चाहता था। सौभाग्य से, इन खम्भों के लाने का विस्तृत वर्णन उस समय के प्रसिद्ध इतिहासकार शम्सेसिराज ने किया है। उसका मत था कि—

"यह दोनों स्तंभ पाँडवों के समय से खड़े हुए है। लेखक ने बहुत से अच्छे इतिहासकारों की पुस्तकें पढ़ी हैं और उनसे उसने जाना है कि ये दोनों खंभे भीमसेन की छड़ियाँ थीं। इनको लेकर वह टहलने जाया करता था। उस आदमी का डीलडौल विशाल था। काफिरों की पुस्तकों में लिखा है कि भीम नित्य एक सहस्र मनुष्यों को निगल जाया करता था।"

"जब खँभे को खोद कर नीचे रखने के अच्छे से अच्छे उपाय सोच लिये गये तब अड़ौस-पड़ौस के आदमियों, पैदल तथा घुड़सवारों तक को वहाँ आने की आज्ञा मिली। वह सब अपने अपने औजार लेकर धाए। जब सब आ गये तब धरती में रुई बिछादी गई। खँभे के नीचे स्थान चारों ओर से खोद कर रस्सियों के सहारे खँभे को धीरे-धीरे लिटा दिया गया उसे खाल और पत्तियों से ढक दिया गया।"

"बयालीस पहियों की एक वृहत् गाड़ी बनी। हर पहिये में एक-एक रस्सी बँधी। इसके उपरान्त खंभों को मोटे-मोटे रस्सों के सहारे हजारों आदमियों ने उठा कर धीरे से गाड़ी पर रख दिया। प्रत्येक पहिये की रस्सी पर दो सौ आसिक लगे और खंभे को यमुना के किनारे लाए। सुल्तान इस अवसर पर खंभे को देखने आए। सैकड़ों नावें इकट्ठी हुईं। और फिर बड़ी बुद्धिमानी से उसे नाव पर रख दिया गया। इस तरह भीमसेनकी छड़ी को यथास्थान रख दिया गया।"

"उसे पुनः सीधा खड़ा कर गाड़ने की चिंता हुई। हज़ारों आदमियों ने मोटी-मोटी रस्सियों के सहारे आधा गज धरती से उठाया और फिर उसके नीचे लकड़ियाँ लगादी गईं इसी तरह धीरे-धीरे कई दिनों में सीधा कर स्थापित किया गया।"

"खंभे के नीचे के भाग में कुछ लिखा था। इसे पढ़ने के लिये बहुत से हिन्दू और ब्राह्मण बुलाये गये, पर उस पर अंकित लिपि को कोई न पढ़ सका। कहा जाता है कि कुछ काफिरों ने सुल्तान से कहा कि यह पाँडवों के समय से यहीं खड़ा है, बहुत से सम्राट् इसे अपने अपने यहाँ लेजाने की चेष्टा करेंगे, किंतु फीरोज़शाह के अतिरिक्त और कोई इस कार्य में सफल न हो सकेगा।"

हाँ, तो मैं लिपि पढ़ने की बात कह रहा था। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है कि ई० सन् की चौदहवीं शताब्दी के पहले ही अपने देश की प्राचीन लिपि ब्राह्मी तथा उससे निकली हुई ई० सन् की ६ वीं शताब्दी की लिपियों का पढ़ना लोग भूल गये थे, किन्तु पिछली अर्थात् ७ वीं शताब्दी से इधर की लिपियाँ संस्कृत और प्राकृत के विद्वान, जिनको प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों के पढ़ने का अभ्यास था, प्रयत्न करने से पढ़ सकते थे।

कहा जाता है अकबर ने भी इसे पढ़वाने का निष्फल प्रयत्न किया। सन् १६१५ में यूरप से टास कारयट नामक यात्री आया। उसने भी इसे देखकर अपनी बुद्धि की परीक्षा की और कहा 'इस खंभे में यूनानी भाषा लिखी है।' उसके मत से यह लेख और स्तम्भ सिकंदर ने बनवाये थे। साथियो! आज हम भले ही इन विदेशी वक्ताओं के विचारों का उपहास करें, किन्तु यह बात विचारणीय है कि पुराने यूरोपीय सज्जन भी भारतवासियों को अक्ल से दूर समझते थे, और समझते थे कि उत्तमकोटि के कार्य तो हम ही कर सकते हैं।

विस्मृत लिपि की खोज

भारतीय इतिहास की प्राचीन सामग्री के अनुसंधान की दृष्टि से ई० सन् १७८४ का समय प्रत्येक इतिहास प्रेमी को याद रखना चाहिये। क्योंकि उसी वर्ष १५ जनवरी के दिन सर विलियम जोन्स ने एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना कराई। इस समय तक यूरप के

विद्वान् संस्कृत साहित्य से प्रभावित हो चुके थे तथा जर्मनी, फ्राँस और इँगलेण्ड के संस्कृत प्रेमी भारत का चक्कर लगाने लगे थे। यही समय था जब कि भूली हुई लिपि को पढ़ने का प्रयत्न वैज्ञानिक ढङ्ग से प्रारम्भ हुआ।

अशोक के लेख पढ़ना आसान न था! सबसे प्रथम चार्ल्स विल्किन्स ने बंगाल के राजा नारायणपाल के लेख पढ़े। इसके उपरान्त राधाकान्त शर्मा ने दिल्ली में चौहान राजाओं के तीन लेख पढ़े। कन्नौज में मौखरी वंश का राजा अनन्तवर्मन हर्ष से पहिले ही राज्य कर चुका था। उसके लेख जे० एच० हेरिङ्गटन ने अत्यन्त परिश्रम के बाद पढ़े। उपरोक्त अभिलेख नागरी से मिलते जुलते थे, अतः उनका पढ़ना कुछ कठिन न था। मुख्य कठिनाई गुप्त और मौर्य राजाओं के लेखों को पढ़ने में हुई। क्योंकि एक वंश आज से पन्द्रह शताब्दी पूर्व राज्य कर चुका था, दूसरा तेईस शताब्दी पूर्व! गुप्त सम्राटों की ब्राह्मी लिपि की खोज में चार्ल्स विल्किन्स ने हाथ लगा दिया था किन्तु इसकी पूरी वर्णमाला का पता कप्तान ट्रायर, डा० मिल और प्रो० प्रिंसेप ने ही कठोर परिश्रम के उपरान्त लगाया था। इन तीनों में भी प्रिंसेप का नाम भारत की राष्ट्रीय लिपि के पुनरुद्धार की दृष्टि से अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है।

अशोक की लिपि की खोज

अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि की खोज का इतिहास और भी अधिक मनोरंजक है। विद्वान् इसकी वर्णमाला का पता लगाने में संलग्न थे कि सन् १८३६ में सी० एच० लेसन को अगाथोकिल्स नामक यूनानी राजा का सिक्का हाथ लगा। यह राजा भारत के सीमान्त प्रदेश में मीनान्डर के उपरान्त राज्य करता था। इस मुद्रा में एक ओर तो यूनानी अक्षरों में 'अगाथोक्लियस' लिखा था और दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि में कुछ लिखा था। बस, लेसन ने सोचा कि हो न हो दूसरी ओर भी यही नाम है। अतः इतने अक्षरों का पता लग ही गया—र ज अ ग थु क य स। जर्मनी के भाषा शास्त्री ब्यूहलर ने लिखा है कि महाशय प्रिंसेप ने प्रायः सब अक्षरों का पता लगा लिया था, उसने 'उ' और 'ओ' को पहिचानने में ही गलती की। श्री ग्रियर्सन महो-

ने गया में ई, ऊ, श, ष, ल, को पहिचाना। ऊ और श के दूसरे रूप का पता कनिंघम ने सिक्कों के आधार पर लगाया। सेनार्ट ने 'ष' के एक रूप का पता लगाया। हार्नेली ने दूसरे रूप का पता लगाया। ब्यूहलर को ल का पता लगा। तो यह हुई ब्राह्मी के पुनरुद्धार की कहानी। यह भी एक कितनी ऐतिहासिक घटना है कि इसके पुनरुत्थापन का श्रेय यूरोपीय सज्जनों को है।

ब्रज की प्रथम लिपि

अब हम ब्रज की लिपियों की बात करेंगे। अशोक की लिपियो से पहिले की गिने गिनाये तीन चार ब्राह्मी के नमूनों का ही पता लगा है। वे ये हैं—'ईराण' की मुद्राएँ, कनिंघम ने इन्हें पूर्व अशोक कालीन कहा है। पटना की राजमुद्राऐं भी अशोक से पहले की हैं। इनमें नदय=नंदाय और अगपलस=अंगपालस्य नामक प्रसिद्ध हैं। ये मुद्रायें ईसा से ४०० वर्ष पूर्व से लेकर ५०० पूर्व तक की हैं। अब देखना यह है कि क्या मथुरा इतनी पुरानी लिपियों की साक्षी नहीं देता ? यह गौरव की बात है कि मथुरा संग्रहालय में विशाल काय यक्ष की मूर्ति पर पूर्व मौर्य कालीन लेख है। ब्यूहलर महाशय ने इसको पुरानी मौर्य लिपि माना है, लेकिन यह चौथी शती की लिपि हो सकती है। इस प्रकार मथुरा से काफी पुरानी लिपि की प्राप्ति का श्री गणेश होता है।

इसके अतिरिक्त शुंगकालीन लिपि भी मथुरा के अभिलेखों में सुरक्षित हैं। जैन लेखों में जो कङ्काली टीले से प्राप्त हुए हैं, और जिनका संपादन जर्मन विद्वान् ब्यूहलर ने किया है इसी समय के हैं। इनकी संख्या बहुत है, यह संस्कृत मिश्रित पाली में हैं। ये भी जैन तीर्थंकरों की चरण चौकियों में निर्माणकर्त्ताओं की ओर से उत्कीर्ण कराये गये हैं। इन सब जैन लेखों की लिपियाँ एक ही समय की नहीं हैं। ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शताब्दी तक के लेख इसमें सुरक्षित हैं। इनमें वह लेख तो कुषाण कालीन ही है जिनमें हुविष्क आदि के नाम का उल्लेख हुआ है।

इसके उपरान्त क्षत्रपों का समय आता है। गुजरात, तक्षशिला मथुरा आदि में इनकी कई शाखाएँ राज्य कर रहीं थीं। मथुरा में महा-

क्षत्रप राजुल और उसके पुत्र सोडास की चरण चौकियों पर लेख मिले हैं। यह संयोग की बात है कि मथुरा के अधिकांश लेख मूर्तियों पर हैं—चाहे वह मूर्ति देवता की हो, चाहे सम्राट की और चाहे, उपशासक की। आगे चलकर हम देखेंगे कि कनिष्क की मूर्ति भी मथुरा जिले में लिपि से अंकित मिली है। क्षत्रपों की लिपि का समय ठीक-ठीक नहीं आंका जा सकता है। ईसा की प्रथम शताब्दी पूर्व से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी बाद तक का अनुमान होता है। क्षत्रपों की लिपि कुषाण युग से पहले की है।

४ — कुषाण लिपि

मथुरा कुषाण साम्राज्य के स्वर्ण युग का प्रतीक है। ब्रज में सम्राट कनिष्क से लेकर उसके वंशज हुविष्क और वाशिष्क या वासुदेव की मुद्राएँ तथा लेख प्राप्त हुए हैं। मथुरा कुषाणकालीन भारत की ब्राह्मी लिपि का प्रतिनिधित्व पूर्ण रूप से करता है। कुषाणकालीन पुरातत्व की सामग्री दो स्थानों पर ही प्राप्त है, लाहौर संग्रहालय में तथा मथुरा संग्रहालय में। लाहौर संग्रहालय सिक्कों की दृष्टि से ही धनी है लेकिन मथुरा का संग्रहालय कुषाण कालीन सभ्यता को संपूर्ण रूप से व्यक्त करता है। मूर्तिकला, मृण्मूर्त्ति, वेदिकाएँ, चामर ग्राहिणी तथा अन्य अलङ्करण चिह्नों के रूप में कुषाण सभ्यता के चिह्न आज भी जीवित हैं। इन कलाकृतियों पर प्राप्त लिपि का मथुरा के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। भारतीय लिपि शास्त्र के पण्डित ब्यूहलर ने कहा था कि कुषाण कालीन मथुरा की लिपि में ऐसी विशेषता है कि वह प्रथम दृष्टि से ही पहिचानी जासकती है कि यह कुषाण-कालीन लिपि है। इतिहास का विद्यार्थी उसको पहिचानने में त्रुटि नहीं कर सकता। कुषाण लिपि के अक्षर नाटे किन्तु दुहरे शरीर के हैं जो अपनी चौड़ाई से सबको आकर्षित करते हैं। साथियो! ऊपर हमने कहा था कि ब्रज में कनिष्क की मूर्ति मिलती है उस पर तत्कालीन लिपि में स्पष्ट रूप से 'महाराज कनिष्क' बड़े सुडौल अक्षरों में लिखा है। विशालकाय मूर्ति एक तरह की कुर्सी पर बैठी है, दुर्भाग्य से उसका मस्तक नहीं है। पैरों में ऊँचाई तक चढ़े हुए बन्द जूते, शरीर पर ओवरकोट जैसा ऊपर का वस्त्र, कमर में दाँई ओर लटकती हुई तलवार एक विदेशी शासक का स्मरण दिलाती है जो शकं सभ्यता से प्रभावित था, जो शीत प्रधान

देश का निवासी था। घुटनों के नीचे लिखी भारतीय लिपि ही परोक्ष रूप से उसके बौद्ध धर्मावलंबी होने का आभास देती है। कुषाण-कालीन लिपि राजपूताना और साँची में प्राप्त हुई है।

यहाँ कुषाण राजाओं के समय का संकेत करना आवश्यक है। इतिहास में कालनिर्णय की दृष्टि से सबसे अधिक विवाद का विषय कनिष्क है। कनिष्क के सम्बन्ध में ६-७ स्थापनाएँ हैं। जिनमें कनिष्क को सबसे पीछे लेजाने वालों में वे लोग हैं जो उसे ५७ ई० पूर्व में मानते हैं, दूसरी ओर वह विद्वान हैं जो उसका समय १५० ई० बताते हैं, शेष स्थापनाएँ इनके बीच की है दोनों स्थापनाओं के बीच में दो सौ वर्ष का अन्तर। कनिष्क का निर्णय न होने से कनिष्ककालीन लिपि के काल का निर्णय करना भी अत्यन्त कठिन है।

५—गुप्त राजाओं की लिपि

गुप्त सम्राटों की स्वर्ण मुद्राओं से स्पष्ट है कि कुषाण कालीन लिपि का विकास गुप्त सम्राटों के समय हुआ, और इस तरह हम कह सकते हैं कि कुषाण राजाओं के समय की लिपि अशोक और गुप्त-सम्राटों के मध्य के समय की द्योतक है। गुप्तमुद्राओ में कुषाणकालीन कोणीय 'य' तो चलना ही था।

ब्रज भाग्यवान् है कि वह गुप्तकालीन लिपि का प्रतिनिधित्व भी करता है। इनमें एक तो वह है जिसका सम्पादन ब्यूलर ने जैन अभिलेखों के साथ किया है, यह भी जैन लेख ही है। किन्तु सब से प्रसिद्ध वह लेख है जो 'चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्तम्भ लेख' के नाम से प्रसिद्ध है। इस लेख में गुप्त संवत् ६१ अङ्कित है। यह ई० सन् ३८० में सम्पादित हुआ था।

भाषाशास्त्र-विदों ने गुप्त लिपि के दो भेद किये हैं—पूर्वी शैली और पश्चिमी शैली। भेद का आधार ल, ष, ह का भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखा जाना है। महाशय फ्लीट ने गुप्त सम्राटों के लेखों का प्रामाणिक सम्पादन प्रकाशित किया है। उसमें दोनों ही शैलियों के नमूने पर्याप्त संख्या में हैं। पूर्वीय शैली का प्रसिद्ध उदाहरण मन्त्री हरिषेण रचित समुद्रगुप्त की प्रयाग वाली स्तम्भ प्रशस्ति है। इतिहास और साहित्य की दृष्टि से तो इस लेख का महत्व अभूतपूर्व

हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य, कौतूहल और आह्लाद होगा कि समुद्रगुप्त की यह प्रशस्ति देवानांप्रिय अशोक के स्तम्भ पर ही उत्कीर्ण है—इस ऐतिहासिक स्तम्भ में एक ओर अशोक का 'धम्मघोष' सुरक्षित है तो दूसरी ओर समुद्रगुप्त का 'भेरी घोष' मुद्रित है।

मथुरा वाला चन्द्रगुप्त का लेख पश्चिमी लिपि शैली का उदाहरण है। यह लेख मथुरा में चाण्डूल माण्डूल की बगीची से प्राप्त हुआ था। पश्चिमी लिपि-शैली के भी दो भेद हैं—कौणीय और गोलाकार। चन्द्रगुप्त द्वितीय का लेख कोणीय भेद का उदाहरण है। ब्रज में गोलाकार लिपि का उदाहरण नहीं मिलता, हाँ, पास ही में, दिल्ली में महाराजा चन्द्र का लौह-स्तम्भ इस भेद का सुन्दर उदाहरण है।

नागरी

ब्राह्मी लिपि की एक विशेषता यह भी थी कि अक्षर शब्दों के साथ सटाकर लिखे जाते थे, ठीक आज की तरह शिरोरेखा देने की चाल न थी। लेकिन सातवीं शती के अन्त से शिरोरेखा देने की प्रणाली ने जोर पकड़ा, और समय के साथ परिवर्तित ब्राह्मी शिरोरेखा के साथ नागरी कहलाने लगी। यों आठवीं और नवीं शताब्दी की नागरी से आज की नागरी का मिलान किया जाय तो बहुत अन्तर मालूम होगा। लेकिन हाँ दो-चार दिनों के ही अभ्यास से इस नागरी को पढ़ने में सुभीता हो सकता है तथा यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

(२)

एक बात और। नागरी का विस्तार दक्षिणी भारत और उत्तरी भारत में ही नहीं हुआ। दसवीं शताब्दी से गुजरात, राजपूताना, उत्तरी दक्षिणी भारत में ताड़-पत्रों पर लिखी लिपि एकदम नागरी है। इतना ही क्यों, उसी समय के नैपाल में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपि नागरी है। नागरी के इस विस्तार का एकमात्र कारण यही था कि वह ब्राह्मी की एकमात्र स्वाभाविक उत्तराधिकारिणी लिपि थी। इस दृष्टि से राष्ट्र-लिपि के लिये अगर नागरी का नाम आगे रक्खा जाता है तो यह सर्वथा उचित है क्योंकि उसके औचित्य का रहस्य दृढ़ भूमि पर स्थित है।

सातवीं शती के प्रारम्भ से भारत में अन्तिम साम्राज्यवादी केन्द्रीय सत्ता स्थापित हुई। मेरा इङ्गित वर्धन साम्राज्य की ओर है। साहित्यकार सातवीं शताब्दी से हिन्दी का जन्म मानते हैं, उसी समय से नागरी का जन्म भी होने लगा था। ब्राह्मी का लोप होने लगा, लोक से वह लिपि विस्मृत होने लगी।

६—नागरी लिपि

अब हमें आज की लिपि की उत्पत्ति का समाचार भी जान लेना चाहिये, तभी तो हम आधुनिक भारत और उसमें जुटे हुए ब्रज की लिपि के रहस्य को जान सकेंगे। पीछे हम पश्चिमी कोणीय ब्राह्मी (गुप्त शैली का एक भेद) की चर्चा कर आए हैं। इसी कोणीय लिपि का विकसित रूप नागरी है। इस लिपि की प्रथम अवस्था ई० सन ६३५ के लगभग अंशवर्मन तथा अपसाद लेख के आदित्यसेन वाली लिपि में पाते हैं। लेकिन नागरी का स्पष्ट आभास आठवीं शताब्दी से १० वीं शताब्दी तक के समय के भीतर ही लगता है। नवीं शताब्दी का ग्वालियर का लेख और दसवीं शताब्दी का गोस्साव लेख उसी अवस्था के द्योतक है। ऊपर जितने भी उदाहरण नागरी लिपि के सम्बन्ध में हैं, वे केवल नागरी प्रवृत्ति के द्योतक है।

ब्यूहलर महोदय लिखते हैं कि नागरी का पूर्ण और प्रथम उदाहरण उत्तरी भारत में नहीं मिला है। प्रथम उदाहरण राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग का लेख है। यह ई० सन् ७५४ में लिखा दानपत्र है। इसके उपरान्त ई० स० ८५१ और ८७७ में लिखे कन्हेरी अभिलेखों का स्थान है, यह सिलाहार राजाओं की करनी थी। उत्तरी भारत में नागरी लिपि का प्रथम उदाहरण ई० सन् ७९४ का मिला है। यह है महोदय के महाराजा विनायकपाल का दानपत्र। ब्यूहलर का अनुमान है कि कनारसी देश की नागरी के लेखक उत्तरी भारत के ब्राह्मण थे। अतः उत्तरी नागरी भी आठवीं शताब्दी में अवश्य प्रचलित रही होगी। लेकिन नवीं शताब्दी में हमको उत्तरी नागरी में बहुत कम लेख दिखलाई पड़ते हैं। ई० सन् ९५० के बाद तो नागरी लिपि की वह बाढ़ आई कि ११ वीं शताब्दी में उत्तरी भारत की लिपि होकर ही रही। मथुरा से इस समय का कोई लेख अभी प्राप्त नहीं हुआ है। आठवीं से दसवीं शताब्दी के बीच का।

अजयपाल का लेख : सं० १२०७

किन्तु इस समय के अभिलेख ब्रज के गर्भ में अवश्य ही छिपे पड़े होंगे। मेरे इस अनुमान की पुष्टि कनिंघम महोदय के इस कथन से होती है कि सातवीं शती में प्रसिद्ध मथुरा एक बड़ा साम्राज्य की राजनगरी थी, उस समय ह्वेन साँग ने इसका विस्तार ८३३ वर्ग मील लिखा है। कनिंघम लिखते हैं कि अगर चीनी यात्री के कथन को हम सत्य मान लें तो मथुरा का विस्तार दक्षिण में आगरा से भी और दूर इसकी सीमा नरवर और शिवपुरी तक माननी होगी और पूर्व में सिंध। इतने विस्तृत साम्राज्य के प्रतीक-प्रमाण अवश्य छिपे पड़े हैं।

मध्यकालीन नागरी में अजयपाल की प्रशस्ति उल्लेखनीय है। यह केशवदेव के टीले पर प्राप्त हुई थी। तीस पंक्तियों में यह शुद्ध संस्कृत का लेख है। कई दृष्टियों से यह लेख महत्त्वपूर्ण है। नागरी का उदाहरण तो है ही—दूसरी बात यह है कि यह सं० १२०७ (=1150-51 A.D) में पाल और कुलधर कवि ने यह प्रशस्ति गाई थी तथा सोमल ने इसको पत्थर की लकीरों में जड़ दिया। यह अजयपाल इतिहासकारों के मत से बयाना-श्रीपठा के यदुवंशी क्षत्रिय थे, इस लेख में छोटी सी क्षत्रिय वंशावली सुरक्षित है। ब्रज के लेखों में यही लेख ऐसा है कि जिसमें राजा का नाम, संवत, प्रशस्तिकार तथा शिल्पी का नाम भी स्पष्ट रूप से अंकित है।

उपसंहार

आपने देखा कि ब्रजभूमि ने इतने अभिलेख भारतीय इतिहास को समृद्ध करने के लिये दिये हैं। आपने यह भी देखा कि ये लेख भारतीय परंपरा की अधिकांश कड़ियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, अर्थात् ब्रज से प्राचीन भारतीय लिपि का इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अवसर पर हमको यह बात नहीं भूल जानी चाहिये कि तक्षशिला, नालंदा, सारनाथ, अहिच्छत्र या मोहेंजोडेरो की भाँति ब्रज में पुरातत्वज्ञों ने वृहत् प्रयत्न नहीं किये हैं। अभी तक की सामग्री तो फुटकर प्रयास का ही शुभ परिणाम है। अनेक इतिहासकारों की तरह मेरा भी यह दृढ़ विश्वास है कि अगर ब्रजभूमि में बड़े पैमाने पर खुदाई का कार्य किया जाय तो अकेला ब्रज भारत की लिपि का पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करने में तो समर्थ होगा ही;

साथ ही उन राजवंशों का पता भी लगेगा जिनका संकेत भर पुराणों में हुआ है या उन राजाओं का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत हो सकेगा जिनका नाम हमें मथुरा से प्राप्त कुछ सिक्कों पर मिला है।

आधुनिक अनुसंधानों से इस विश्वास की पुष्टि ही हुई है कि मथुरा प्राचीन काल में राजनीति और संस्कृति का केन्द्र रहा है। वैदिक-काल से चला आता हुआ यादववंश बहुत काल तक अपने शासन की केन्द्रीय भूमि मथुरा को बनाये रहा। मथुरा की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है। अपने पश्चिम के प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र मालवा तथा उसकी राजनगरी अवन्तिका से द्वितीय शासन केन्द्र मगध का मार्ग मथुरा होकर ही है। मथुरा दिल्ली से हो उत्तर में तक्षशिला जाने का रास्ता है। दक्षिण भेदन के लिये भी प्राचीन भारत में मथुरा होकर जाना ही ठीक पड़ता था। अतः जो सम्राट् मथुरा को पकड़ लेते थे वह आसपास की चारों ओर की परिस्थितियों से लाभ उठा सकते थे। लेकिन, आज का पुरातत्व भी मथुरा के इतिहास पर गंभीर और उद्‌घाटनकारी समाचार देने में समर्थ नहीं है। कुषाणवंश की उत्पत्ति, उनका शासनकाल, आदि सब कुछ सन्देहास्पद है। नाग-राजाओं के सम्बन्ध में भी पुराणों के सहारे भी हम कितना जान पाये हैं ? सिक्कों से प्राप्त राजाओं के नाम भी आज तक की स्थिति में मृतप्राय: हैं और यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक कोई क्रांति-कारिणी खोज न हो। मथुरा का राजनीतिक वैभव आज भी अंधकारा-च्छादित है, मानों मथुरा में महान् केन्द्रीय सत्ताओं का अभाव ही रहा हो। मथुरा का सारा प्राचीन वैभव ब्रज की रज में सुप्त औरलुप्त है।

लिपि और भाषा की दृष्टि से भी, ठीक राजनीतिक दारिद्र्य की तरह, ब्रज में कुछ काम नहीं हुआ है। यह तो हम जानते ही हैं कि ब्रज ने शौरसेनी शैली को जन्म दिया, तथा उसीसे कदंबखंडियों, पुलिनों और करील वेष्टित कंकरीली डगरों में रहने वाले ब्रजवासियों द्वारा संस्कृत के समान मधुर और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा का जन्म हुआ है। जिस समय ब्रजभाषा का उत्थान हो रहा था उस समय अन्य प्रान्तों की भाषायें भी स्वस्थ अँगड़ाई ले रही थीं, लेकिन यह गौरव ब्रजभाषा को ही प्राप्त है कि वाणी का सिद्ध आह्वान उसी से संभव हुआ। यह साहित्य अपने आप में तो धनाढ्य और गतिशील

था ही, साथ ही उसने अपनी शक्ति से सौराष्ट्र से लेकर बंग देश तक तथा पञ्चनद् से लेकर नर्मदा के पार तक रस में निमज्जित होने वाले 'जनों' की आत्मा को गुदगुदाया। और आपको यह भी ज्ञात होगा उसी शौरसेनी अपभ्रंश प्रसूता ब्रजभाषा से कालान्तर में पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी का भेद खड़ा हुआ, और उसी पश्चिमी हिन्दी को आज हम खड़ीबोली, हिन्दी या राष्ट्रभाषा के नाम से स्मरण करते हैं। रासौ का अध्ययन करने वाले जानते हैं कि खड़ीबोली के रूप उसमें मिलते हैं, और आगे चल कर ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ीबोली का विकास खुसरो की भाषा में देख पड़ता है। खड़ी-बोली और ब्रजभाषा के मूल में एक ही भाषा है और एक ही साहित्यिक परम्परा है। ब्रजभाषा तो शीघ्र ही प्रतिष्ठित पद पर पहुँच चुकी थी। लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि खड़ीबोली को लोग गँवारू बोली, या भाषा कह कर दुतकार दिया करते थे। ऐसे आड़े समय में ब्रजभाषा खड़ीबोली का वर्धन और संस्करण करती रही। खड़ीबोली के लालन-पालन में ब्रजभाषा का प्रमुख हाथ है और इस तथ्य की सचाई को जानने के लिए हमें कबीर से लेकर आज तक के संतों की वाणियों की छानबीन करनी होगी। वार्ताओं का अध्ययन करना होगा। यह देखना होगा कि दिल्ली के सदासुखलाल और इन्शाअल्ला खाँ और आगरा के पं० लल्लूलालजी ही हिन्दी के उत्थान में किस प्रकार सहायक हो सके थे। सदलमिश्र तो बिहार के थे, लेकिन वह भी ब्रजभाषा जानते थे तथा उनकी भाषा में ब्रज का क्षीण पुट है।

उपरोक्त दृष्टि से आज की हिन्दी का विचार होना ही चाहिए। इस सत्प्रयत्न से हमको भाषा और लिपि सम्बन्धी प्रकाश मिलेगा ही।

ब्रज से प्राप्त लेखों की संख्या सौ से अधिक है। इनमें तीन चौथाई लेख जैन संप्रदाय से संबन्धित हैं। बाकी के लेखों में आधे से अधिक बौद्ध संप्रदाय के हैं। अधिकाँश लेख मूर्तियों के नीचे चरण पादुकाओं में उत्कीर्ण हैं, जिनकी भाषा मिश्रित है। ये सब क्षत्रप कुषाणकालीन हैं। गुप्तकालीन लेखों की भाषा संस्कृत है। शेष में कुछ लेख स्तम्भों पर हैं लेकिन वह दो चार ही हैं। जैसे राजुवुल और सोडास के लेख, माथुरों का यूप लेख तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्तम्भ-लेख। राजवंश से सम्बन्धित होने के कारण ये सब अत्यन्त महत्व के

है। क्योंकि अधिकांश लेख धार्मिक संप्रदायों के हैं, अतः उनसे सांस्कृतिक झांकें सी मिलती हैं, लेकिन राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश नहीं पड़ता। उनसे मथुरा के राजनीतिक इतिहास पर अब तक कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है।

मुद्रा सम्बन्धी टिप्पणी

मथुरा से प्राप्त सिक्कों पर भी ब्राह्मी लिपि है। ये सिक्के चार वर्गों में रखे जा सकते हैं। भारतीय राजाओं के सिक्के—इनका समय मौर्यकाल से लेकर शुंग युग तक है। पुराणों से इन राजाओं का पता नहीं लग पाता है। इनमें से अधिकांश की लिपि शुंगकालीन है।

दूसरे वर्ग में क्षत्रप, राजुवुल और सोडास के सिक्के हैं। इनको कुषाण पूर्व माना जाता है। इनके अभिलेख भी मिले हैं। अतः यह निश्चित है कि इन्होंने मथुरा में राज्य किया तथा ये विदेशी थे।

तीसरे वर्ग में कनिष्क, हुविष्क और वासिष्क या वासुदेव के सिक्के हैं। इनकी लिपि कुषाण कालीन है। सिक्कों की लिपि पर तो अलग से ही विचार किया जा सकता है, यों मोटे रूप से इनका काल विभाजन तो हो ही चुका है।

मैं आप लोगों का अधिक समय नहीं लेना चाहता, लेकिन इतना जानना आवश्यक है कि भारतीय इतिहास और साहित्य में मथुरा का स्थान है और उस स्थान की तुलना तक्षशिला काशी, सारनाथ, नालन्द, अहिच्छत्र और मोहेन्जोदरो से नहीं की जा सकती। कारण स्पष्ट है। तक्षशिला और काशी विद्या के केन्द्र थे, सारनाथ और नालन्द बौद्ध धर्म के केन्द्र थे। अहिच्छत्र की सामग्री अभी पूर्ण रूप से हमारे सम्मुख नहीं है। हाँ मोहेन्जोदरो की सभ्यता अपने में पूर्ण थी। मथुरा का महत्व समन्वय में है—वह आर्य संस्कृति के तीनों प्रधान शाखाओं—वैदिक, जैन और बौद्ध का दिग्दर्शन है। भविष्य की ओर हमारी टकटकी लगी है, और जिज्ञासु इतिहासकार, शूरसेन प्रदेश के गौरव के दर्शनों की इच्छा को मानस में जागृत रखते हुए तब तक मौनव्रत धारण कर अनुशीलन करते रहेंगे जब तक कि उसका नया अध्याय प्रारम्भ न हो जाय।

"राष्ट्रीय सभ्यता के इतिहास का प्रमुख साधन

प्राचीन ग्रन्थ-संशोधन !

[ले०—श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव, नायब सूबा मुरैना, ग्वालियर]

प्रत्येक राष्ट्र के प्रमुख अंग मानव समाज की उत्क्रांति अर्थात विकास पर विचार किया जावे तो हमें मानना पड़ेगा कि जहाँ मानव की आदिम अवस्था में विकारों का विभिन्न रूपों में प्रकटीकरण करते हुए विभिन्न विचार प्रदर्शन के विभिन्न साधन जुटाये गये, वहीं सभ्यता के इतिहास की नींव पड़ी। वन्यावस्था में सभ्य-समाज के योग्य साधन जुटाना भी सम्भव नहीं था, अतएव उनकी धीरे-धीरे प्रगति होती गई—लगभग २५–३० वर्ष पूर्व मुम्बई विश्वविद्यालय की उच्च कक्षा की व्याख्यान माला में एक विचार छिड़ पड़ा था कि पहिले प्राकृत का उद्भव हुआ या संस्कृत का ? और तत्कालीन कुछ प्रमुख विद्वानों ने एक स्वर से यही निर्णय किया था कि संस्कृत का अर्थ सुधरी हुई भाषा है, अतएव प्रारम्भिक भाषा का रूप प्राकृत ही होना चाहिये, किन्तु इधर भाषा शास्त्री उसके ठीक विरुद्ध निर्णय दे रहे हैं कि संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत मागधी, अर्ध-मागधी, शौरसेनी और अनन्तर हिन्दी-मराठी-बंगाली, और गुजराती आदि विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ। यही बात मानव सभ्यता के विकास क्रम के लिये भी लागू होती है। विचार प्रदर्शन के लिये लिपि का उद्गम बहुत देर से हुआ। इसी कारण इतिहास के प्रस्तरयुग, लोह-युग, ताम्रयुग आदि के नामकरण किये गये। आरम्भ में मूर्त्ति रूप में शिल्प, फिर गृह-भवन की वास्तु, आदान-प्रदान के लिये विभिन्न-चिन्हों के सिक्के, घटनायें अंकित करने के लिये लिपियुक्त शिलालेख और शास्त्र-कला-नीति आदि को स्थायी रूप देने के लिये भोजपत्र, शाल-पत्र, ताड़पत्र और सबसे अन्त में कागज का अन्वेषण होकर उस पर ग्रन्थ अंकित किये जाने लगे। सर ऑरेल स्टीन ने मध्य एशिया और खोतान प्रदेश के रेती में धँसे हुए खंडहरों के तहखानों में ताड़पत्रों के अनेक

ग्रन्थ ढूँढ़ निकाले हैं। किंवदती है कि सातवीं शताब्दी में चीन देश में कागज का प्रचार हो चुका था, किन्तु इतिहास संशोधकों का यह मत है कि भारत में ग्यारहवीं शताब्दी के अनन्तर ही कागज का प्रचार हुआ, जिसका श्रेय मुसलमान आक्रमणों को ही दिया जा सकता है। तभी से कागज पर ग्रन्थ, परवाने, सनदें, महजर, करीने आदि लिखे जाने लगे। सुदूर दक्षिण प्रान्त, काँगड़ा और काश्मीर में तथा नवद्वीप आदि विद्या के केन्द्रों में ताड़पत्र पर ग्रन्थ अंकित करने की प्रथा भी प्रचलित रही, किन्तु सर्वसुलभ साधन कागज के द्वारा ही ज्ञानप्रचारक मार्ग निश्चित किया गया।

मानव सभ्यता के विविध साधनों को ही इतिहास माना जाता है और नृतत्व के सिद्धान्तों से लगाकर लिखित साधनों का भी उसमें अन्तर्भाव किया जाता है। इसी से भगवान वेदव्यासजी ने महाभारत के प्रणयन के समय इतिहास का महत्व बतलाते हुए, स्पष्ट रूप से कहा है कि—

इतिहास प्रदीपेन मोहा वारण घातिना।
लोकगर्भ ग्रहं कृतस्वं यथावत् संप्रकाशितम् ॥

उक्त ध्येय को सामने रखकर ही आज हम देख रहे हैं कि विद्वत् जगत में कहीं भूगर्भ संशोधन की चर्चा है, तो कहीं रसायन की। कोई मानव आचार-विचार की जाँच-पड़ताल में लगा हुआ है, तो कोई श्रुतिगम्य लोककथा, लोकगीत एकत्र कर रहा है, कोई लिखित साधन सिक्के, शिलालेख, ताम्रशासन, ग्रन्थ आदि की शोध और चर्चा में व्यस्त है। यों तो मानव ज्ञान की अनेक शाखा-प्रशाखायें मानी गई हैं किन्तु उनमें से प्रमुख निम्न हैं—

(१) राजनैतिक इतिहास—अर्थात् प्रस्तर, लोह, ताम्रयुग से लगाकर वर्तमान काल तक की विभिन्न घटनाओं का इतिहास।

(२) सैनिक तथा नाविक इतिहास—इसमें विभिन्न काल के युद्ध-साधन तथा वृहत्तर भारत में उपनिवेशित जातियों के नाविक साधन भी अन्तरभूत हैं।

(३) आर्थिक इतिहास—इसमें व्यापार, खेती, कला, मजदूरी, भाव आदि का सन्निवेश होगा।

(४) साहित्यिक इतिहास—विभिन्न प्रान्तों के परस्पर आदान-प्रदान के साधन।

(५) धार्मिक इतिहास—आचार-व्यवहार और प्रायश्चित जिसमें कुलाचार, देशाचार, ग्रामाचार, आदि भी सम्मिलित हैं।

(६) विभिन्न पन्थ और सम्प्रदायों का इतिहास—सनातन धर्म, नाथपन्थ, जैनधर्म, वैष्णव, वाममार्ग आदि।

(७) सामाजिक इतिहास -समाज का रीति-व्यवहार।

(८) शास्त्रों का इतिहास—इसमें वेद, मन्त्र, तन्त्र, न्याय, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष, गणित, मीमांसा, आयुर्वेद, रसविद्या आदि का अन्तर्भाव होता है।

(९) कलाओं का इतिहास—इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, सिक्के, शस्त्र, कपड़े, स्थापत्य आदि समाविष्ट हैं।

कई पश्चिमीय जिज्ञासुओं के आरम्भिक प्रयत्नों तथा हमारे देशनिवासी विद्वानों ने यद्यपि हमारी सभ्यता की उक्त ज्ञान-शाखाओं में संशोधन करने का प्रयत्न किया है किन्तु कुछ शाखाओं को छोड़कर अभी तक वह कार्य सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। विभिन्न कार्य-कर्त्ताओं के लिये उक्त कार्य-क्षेत्र कितना व्यापक है यह बताने के लिये ही हमने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की ऊपर चर्चा की है।

अब हम अपने लिये सौंपे हुए निश्चित विषय लिखित ग्रन्थों की शोध सम्बन्धी चर्चा करें। इतिहास के साधनों में सर्वश्रेष्ठ साधन लिखित ग्रन्थ ही कहे जा सकते हैं। सन् १८६८ ई० में भारत सरकार ने विभिन्न प्रान्तों में हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की खोज की नींव डाली, जिसके परिणामस्वरूप बंगाल की एशियाटिक सोसायटी, बम्बई, मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर, बड़ौदा ग्वालियर आदि की सरकारों, डाक्टर कीलहार्न, बूलर, पीटरसन, बर्नेल, भांडारकर, राधाकृष्ण आदि के प्रयत्नों से ग्रन्थ संशोधन का जो अपूर्व कार्य हुआ है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। आरम्भ में संस्कृत ग्रन्थों का ही संशोधन आरम्भ हुआ था, किन्तु अनन्तर मराठी, बंगाली, गुजराती, फ़ारसी, उर्दू, कनाड़ी आदि भाषाओं के संशोधन का भी कार्य आरम्भ हुआ और कहा जा सकता है कि उसके

आधार पर भारतीय सभ्यता क इतिहास का स्वरूप ही पलट गया। हमारे देश के प्राचीन ग्रन्थ तथा यूरोप, चीन, तिब्बत, लंका के लेखकों और मुसलमानों द्वारा लिखित ग्रंथों ने हमारे देश के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। यदि इन सब प्रयत्नों का परिचय कराया जावे तो एक बहुत बड़ा पोथा बन जावेगा। केवल यहाँ पर दो उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा कि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर हमारे इतिहास में क्या परिवर्तन हुआ। महान पराक्रमी सम्राट् समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त का कोई नाम नहीं जानता था, किन्तु देवी चन्द्रगुप्त नाटक के कुछ अवतरण के आधार पर गुप्त साम्राज्य के इतिहास के एक नये परिच्छेद का पता चल गया। पृथ्वीराज रासो, परमानन्द कवि का शिवभारत, कम्पराय चरित्र, मूषक वंश काव्य आदि प्राचीन ग्रन्थों के उपलब्ध हो जाने से ही हमें कई ऐतिहासिक तत्वों की जानकारी हुई है। हिन्दी में भी सौभाग्य से प्राचीन ग्रन्थों के शोध का कार्य काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने आरम्भ किया और उस दिशा में कुछ व्यक्तिगत प्रयत्न भी हुए, जिससे आज हम हिन्दी साहित्य की रूप रेखा जानने में समर्थ हुए हैं, किन्तु ग्रन्थ संशोधन कार्य के लिए जिस मुख्य संदर्भ साधन की आवश्यकता है, उस ओर अभी तक हिन्दी की किसी संस्था या संशोधक का ध्यान नहीं गया। गत ८० वर्षों में भारतवर्ष में तथा विदेशों के ग्रन्थ संग्रहालयों में जो संस्कृत ग्रंथ उपलब्ध हुए या विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों की ओर से जो सूचियाँ और टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं उनके आधार पर डाक्टर ऑलफ्रेट ने दो बृहत् खण्डों में 'कैटैलॉगस कैटैलागोरम्' नामक संदर्भ सूची का निर्माण किया, जिसमें अब तक के ज्ञात अज्ञात तथा प्रकाशित अप्रकाशित संस्कृत कवि लेखकों के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी कृतियों का भी उल्लेख किया है, जिसकी सहायता से कोई भी संशोधक निर्विवाद रूप से बता सकता है, कि उसको प्राप्त कवि या उसकी रचना अज्ञात या अप्रकाशित है, या नयी ?

उक्त ग्रन्थ का मूल्य १२०) रुपये है, और वह पुराना पड़ जाने, अप्राप्य तथा नूतन संशोधन का उसमें समावेश न होने के कारण मद्रास विश्वविद्यालय के द्वारा उक्त ग्रन्थ का एक अंधयावत (uptodate) संस्करण प्रकाशित करने का आयोजना की गई है। मराठी

भाषा में भी आरंभ में प्रसिद्ध साहित्य इतिहास कार श्रीभावेजी ने मैराठी के प्रकाशित अप्रकाशित कवि और उनके ग्रन्थों की एक संक्षिप्त सूची प्रकाशित की थी; किन्तु अनन्तर उसका परिवर्धित संस्करण 'संत कवि काव्य सूची' प्रकाशित हुआ जिसमें कवि का जन्म, समय, उसका विशेष, संक्षिप्त परिचय, माता पिता ग्राम आदि तथा उसकी रचनाओं की समग्र सूची देदी गई है। जिससे खोज में कोई नया ग्रंथ मिलने पर कोई भी यह बता सकता है कि वह अब तक ज्ञात था, या अज्ञात। गुजराती में भी उक्त प्रकार की एक सूची का संकलन किया गया है, और वास्तव मे जब तक ऐसे संदर्भ ग्रंथ उपलब्ध न हो तो संशोधन का कार्य क्यों व कैसे हो सकेगा ? नाई की पेटो में जब-तक नेहन्नी, उस्तरे को धार लगाने के लिये प्रस्तर आदि न हो तो उसका कार्य कदापि संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि नागरी-प्रचारिणी सभा के एक संशोधक महाशय गोरखपुर या लाहौर पहुँचे, और सौभाग्य से उन्हें किसी ब्राह्मण के घर या मंदिर में कुछ हस्तालिखित हिन्दी ग्रन्थ प्राप्त होगये। उनमें महाकवि सुन्दरजी लिखित बारहमासा नामक एक काव्य खंड मिल गया, किन्तु सुन्दरजी की रचनाओं का एक ही स्थान पर उल्लेख कहीं नहीं मिलता। साहित्य के इतिहासों में या संकलित ग्रंथों में जो माहिती है, वह भी अधूरी भ्रमपूर्ण। यदि सुन्दरजी के जीवन की प्रमुख घटनायें, उनका जन्म मातापिता, निवास स्थान, दिल्ली का राजाश्रयकाल, प्रकाशित अप्रकाशित ग्रंथों की संख्या, सुन्दर नामधारी विभिन्न कवियों का एक ही स्थान पर उल्लेख आदि अंकित, हो तो उस संशोधक को नूतन प्राप्त ग्रन्थ किस कवि का हो सकता है, यह बात बेखटके बताने में कोई असुविधा न होगी और न उसे काशी पहुँच कर निरीक्षक महोदय का परामर्श, पुरानी खोज की रिपोर्टें, शिवसिंह सरोज, मिश्रबन्धु विनोद आदि के टटोलने की आवश्यकता ही पड़ेगी। अभी तो हिन्दी के छापेखाने प्रचलित हुए तबसे लगा कर आज तक के प्रकाशित ग्रन्थों की प्रामाणिक सूची भी प्रकाशित नहीं हुई है; फिर हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की 'कैटेलॉगस कैटेलागोरम' प्रकाशित होना तो दूर की बात है। महाराष्ट्रज्ञान-संशोधक स्वर्गीय डॉक्टर श्रीधर केतकरजी ने अपने बृहत्ग्रन्थ ज्ञानकोष (विश्व-

कोष) की रचना के पूर्व सन् १८०५ से १६१५ ई० तक की प्रकाशित मराठी पुस्तकें तथा मराठी मासिक और साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों की एक वृहत् सूची केवल इस उद्देश्य से प्रकाशित की थी कि मराठी भाषा में अब तक किन विद्वानों ने किस विषय पर क्या और कहाँ लिखा था, जिसके आधार पर उस विषय का विवेचन करते समय उन पूर्व विचारों का समीकरण या सङ्कलन किया जा सके। उक्त सूची का मूल्य २५) था, जो अब अप्राप्य है। गत वर्ष प्रसिद्ध मुद्रण शास्त्रज्ञ श्रीदातेजी ने उक्त सूची का एक अद्ययावत् संस्करण प्रकाशित किया है, जिसका मूल्य ७५) रु० हैं, और उसके संदर्भ से इस बात का शीघ्र ही परिज्ञान हो सकता है कि अब तक कितना और किस प्रकार का साहित्य मराठी में प्रकाशित हो चुका है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने यहाँ संग्रहीत आर्यभाषा पुस्ककालय की एक अधूरी सूची प्रकाशित की है, जिसमें केवल ५-६ सहस्र ग्रन्थों का अधूरा परिचय दिया है। इसी प्रकार सभा की ओर से सम्वत् १६५७ से लगाकर सं० १६६८ तक हस्तलिखित ग्रन्थ शोध सम्बन्धी जो विवरण अँग्रेजी में प्रकाशित हुये उनके आधार पर हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है किन्तु वह अत्यन्त निकम्मा संदर्भ-ग्रंथ कहा जा सकता है। डाक्टर आलफ्रेट तथा तद्विषयक अन्य भाषा के सन्दर्भ साधन ग्रंथ उपलब्ध होते हुए बाबू श्यामसुन्दरदासजी की पैनी दृष्टि में संदर्भ ग्रंथों की रचना और उसका महत्व कैसे ओझल हो गया, समझ में नहीं आता है। अतएव यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सबसे पहिले ग्रन्थ शोधकों की सुविधा के लिये आठवीं शताब्दी की सिद्ध कवियों की रचनाओं से लगाकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के समय तक की हिन्दी कवि काव्य सूची प्रकाशित की जाना परम आवश्यक है। अब हम ग्रन्थशोध कार्य के लिये जिन प्रमुख बातों की आवश्यकता है, उनका परिचय करायेंगे साथ ही इतिहास-काव्य आदि संशोधन में किस प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं, इसका भी उल्लेख करेंगे। महाराष्ट्र के ख्यातनामा—साहित्य संशोधक धूलिया (धुल) निवासी श्रीयुत शंकररावदेव ने सूत्र रूप मे संशोधक में निम्न गुणों का होना आवश्यक बताया है—

स्वदेशेतिहास ज्ञान- शास्त्र ज्ञान।

संस्कृत-फारसी भाषा, लिपि ज्ञान ॥
कार्यनिष्ठ:, कविकाव्यज्ञान ।
कष्ट, प्रेम मृदुजिह्वा, कल्पकता ॥

और वास्तव में बिना उक्त गुणों के कोई भी संशोधन का कार्य कदापि नहीं कर सकता, यथा—

(१) स्वदेशेतिहास-ज्ञान—हिन्दी में वीर काव्य की रचना का समय क्यों उद्भुत हुआ इसका कारण भारतीय इतिहास के सूक्ष्म अवलोकन से ही जाना जासकता है। विदेशी यवनों के आक्रमणों के कारण भारतीय सभ्यता छार छार हो रही थी। उस समय समाज में नवजीवन फूँकने के लिये वीर रचना का प्रचार करना ही आवश्यक था। मुसलमानों के राज्य की जड़ जमने पर उनके धर्म का विविध रूपेण प्रचार होने लगा, तब हमारे यहाँ के कर्मण्य सन्तों ने शान्त रस की रचना के द्वारा समाज में कर्तव्य की जागृति की। शाही आश्रय-प्रश्रय में आमोद-प्रमोद में व्यस्त राजा बाबू के लिये रीति काव्य शृङ्गारादि की रचना की। गई और विभिन्न आश्रयदाताओं की अभिरुचि के अनुसार उनके आश्रित कवियों ने विभिन्न प्रकार की रचनाएँ कीं; अतएव बिना तत्कालीन इतिहास का परिज्ञान हुए इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता कि किस कवि ने किस आश्रयदाता के लिये किस प्रकार की रचना की। छत्रपति संभाजी के लिये वे विलासी थे अतएव कवि कलश जैसा उनका आश्रित कवि नायिका भेद जैसा विप्रलब्ध शृङ्गारयुक्त रचना निर्मित करसका किन्तु यदि कल कोई किसी अज्ञात शृङ्गारिक रचना को भूषण की बताकर वह छत्रपति शिवाजी महाराज के लिये रची गई थी, इस बात को कहे तो वह भी कभी विश्वास योग्य नहीं माना जायगा क्योंकि न तो महाराज को शृंगार आदि के लिये अवकाश ही था और न भूषण ही वैसी कृति लिख सकते थे; अतएव बिना अपने देश के इतिहास का ज्ञान हुए ग्रंथ संशोधन का कार्य नहीं हो सकता।

(२) शास्त्र ज्ञान - ज्ञान की विविध शाखाओं के संशोधन का भी अब शास्त्र बन चुका है। लिपि शास्त्र, मुद्राशास्त्र, मूर्ति-शिलपादि उन्हीं के अंगोपांग है। ग्रंथ किस प्रकार के कागज पर लिखा हुआ है, उसकी लिखावट कैसी है, प्रतिलिपिकार साक्षर भी है या केवल किराये

का टट्टू। बावन मातृकाओं (स्वर-व्यञ्जन) और अक्षर वटिकाग्रन्थ की कैसी है आदि बातें जानना संशोधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परिचायक टिप्पणी लिखने में भी योग्यता चाहिये। नागरी प्रचारिणी-सभा की ओर से ग्रन्थ परिचय सम्बन्धी जो फार्म प्रकाशित हुए है, वे यथावत नहीं कहे जा सकते। अतएव हम अपना अनुभव जन्य एक नमूना लिखे देते हैं। प्रोफेसर सत्येन्द्रजी ने ग्रन्थशोधन विधि मे जो चर्चा की है, वह भी लाभदायक है।

(३) **संस्कृतभाषा ज्ञान** — ग्रन्थशोधन के लिये तद्भव, तत-सम शब्दों की जांच परख के लिये संस्कृत भाषा जानने की बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि प्रायः सभी भारतीय भाषायें संस्कृत संभूत ही हैं। भारत मे यवनों का अधिक समय तक आधिपत्य रहने के कारण हमारी भाषा पर फारसी का भी बड़ा प्रभाव पड़ा; अतएव शब्दों के मूल और धातु जानने के लिये वह भाषा भी जानना आवश्यक है।

(४) **लिपिज्ञान**—ज, य, ण, आदि अक्षरों का विकास विभिन्न शताब्दियों मे हुआ है। १२वीं, १५वीं, १७वीं और १६वीं, शताब्दि की लेखन प्रणाली विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग थी; अतएव जबतक अक्षरविन्यास का ज्ञान नहीं होगा, वह व्यक्ति योग्य संशो-धक नहीं कहा जासकता।

(५) **कार्यनिष्ठा** - सबसे महत्व का गुण संशोधक में यही होना चाहिये। यदि एक शिकारी वध्य जीव को अपने कब्जे मे न कर सका तो वह शिकार ही कैसे करेगा? मठ, मंदिर और पंडितों के यहां तो आपको यही जवाब मिलेगा कि वहां कोई सामग्री नहीं है; अतएव संशोधक को उसका पीछा पकड़ना ही आवश्यक है। मकान की दूसरी तीसरी मंजिल पर उपेक्षित रूप में भले ही ग्रन्थ पड़े सड़ रहे हों, किन्तु न उसका स्वामी जिज्ञासुओं के पूछने ताछने पर एक धनिक की नाईं अपनी पूंजी पर इठलाने लग जाता है और अपने वस्तु को बताने तथा टिप्पणियाँ लेने में सहायता करने को भी आनाकानी करने लगता है; किन्तु कार्यनिष्ठ संशोधक परिचय पत्र, द्रव्य का आयिश आदि के बलबूते पर इच्छित वस्तु प्राप्त करही लेता है। संशोधक को बड़ा पीछा पकड़ना पड़ता है। संशोधक के अनुभव भी बड़े मनोरञ्जक

और विचित्र होते है कभी कभी तो संशोधक को उस व्यक्ति के मृत्युकाल तक बाट जोहनी पड़ती है, जिससे उनके उत्तराधिकारी के द्वारा सामग्री साध्य होसके।

(६) **कवि काव्य ज्ञान**— इसके विषय में हम ऊपर लिख ही चुके हैं कि हिन्दी में अभी तक वे ज्ञात कवि और उनकी रचनाओं का एक ही स्थान पर संदर्भ नहीं मिलता, जिससे वर्तमान संशोधकों को बड़ी कठिनाई होती है। प्राप्त ग्रन्थ ज्ञात है या अज्ञात संशोधक को यह तो सूची से ही ज्ञात हो सकता है।

(७) **कष्ट**— प्राचीन वस्तुओं की खोजका कार्य वास्तव मे देखा जावे तो किरायेदार लोगों से नहीं हो सकता, जिन्हें उस विषय की स्वाभाविक अभिरुचि हो, वे ही वह कार्य यथावत रूप मे कर सकते है। स्वान्तः सुखाय कार्यकर्ता ही उस दिशा मे प्रशंसनीय स्थायी कार्य कर सकते हैं, वैतनिक कार्यकर्ता को किसी स्थान पर कोई वस्तु होने का पता चले तो वह एकाध बार जाकर पूछताछ करेगा, अधिक से अधिक दूसरी बार भी जायेगा? किन्तु पीछा तो वही पकड़ सकेगा, जिसको उस कार्य की लगन हो। स्वर्गीय आदर्श संशोधक इतिहासाचार्य राजवाड़ेजी ने काबुल से लगाकर कन्या कुमारी तक भूख प्यास सहकर पैदल यात्रा की थी, तब कहीं वे अमर कार्य कर सके। जिसके पास कोई संग्रह होता है वह उसका महत्व नहीं जनता। अधिकांश लोग इसी प्रकार के होते हैं और जब उन्हें उस वस्तु को बताने के लिये आग्रह किया जाता है तो वे उसे अत्यन्त गोपनीय समझते हैं। तथा उसे बताने में हीले हवाले करते रहते है। हफ्तों, महीनों और वर्षो तक कभी-कभी उनका पीछा पकड़ना पड़ता है। मैं गत पच्चीस वर्षों से प्राचीन वस्तुओं की खोज का कार्य करता हूँ, मेरे अनुभव की बातें बड़ी मनो-रञ्जक, विषादकारक और कभी कभी निराशा में परिवर्तित होने वाली भी सिद्ध हुई, किन्तु फिर भी साध्य के ध्येय को नहीं छोड़ा, जिससे अन्त में सफलता भी मिली। प्राचीन वस्तुओं का संशोधन आत्म-तुष्टि का अपूर्व उदाहरण होता है, जो भुक्तभोगी ही जानते हैं। पहाड़ खोदकर चूहा निकलना की कहावत की नाईं संशोधकों को अगाढ़ परि-श्रम के अनन्तर जो साधन प्राप्त होता है, उसका भौतिक या आर्थिक

रूप से कोई महत्व नहीं रहता, हाँ! प्राचीन सांस्कृति का साधन एकत्रित होने के कारण उसका नाम और यश अवश्य ही स्थायी हो जाता है। महाराष्ट्र साहित्य सम्राट केलकरजी ने संशोधकों के विषय में एक व्यङ्गात्मक सुभाषित की रचना की है, जिसका आशय यह है कि "संशोधक महाशय का महत्व रंगविरंगे किन्तु जीर्ण और उड़े हुए रङ्ग के चित्रों से विभूषित होता है, उसका सिंहासन जीर्ण लेख युक्त पत्थर और उसके वस्त्र दीमक के खाये हुए प्राचीन कागजात होते हैं। उनके कोष में भी पुराने सिक्के अर्थात मुद्रायें रहतीं हैं; किन्तु बाजार में उसका कोई मूल्य नहीं होता, संदेहात्मक स्वभाव के कारण उसकी आँखों पर सर्वदा मैग्नीफाइङ्गग्लास चढ़ा रहता है। उसके आसपास अश्रद्धा और तर्क-वितर्क का जमघट बना रहता है। उस शून्य राज्य मे राज्य करने वाले राजा की मुद्रा अर्थात सिक्का सोनेका भी रहता है; किन्तु उसकी आज्ञा से वितस्त भर जमीन भी किसी को नहीं मिल सकती तथा सेनादल की तो बात ही क्या, वृक्ष का पत्ता भी वह नहीं हिला सकता।" यद्यपि उक्त बातें विनोद-गर्भित हैं और उससे प्रत्यक्ष रूप में संशोधक की मखौल उड़ाई गई है, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो ये निस्वार्थी और शुद्ध ज्ञानाभिलाषा की ही परिचायक हैं। मूल सुभाषित निम्न है—

"उद्ध्वस्तवर्ण रुचि चित्र कलापरम्यः
विच्छिन्न लेखन पुराण शिलासनस्थः।
दुष्कीट भुक्त शतपत्र पटोत्तरीयः
निर्मूल्यनाणकगणैः परिपूर्ण कोशः।
नष्टाधिकार परिहासितगर्व मुद्रः
संदेह वृत्ति वंशवृहद्दर्पणेत्र दृष्टिः
अश्रद्धावितर्क परिचारक वेष्टितांगः संशोधकः
खलु प्रशास्ति विशून्यराज्यम्॥"

संशोधन कार्य के लिये किस प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते है, इस बात का परिचय कराने के लिये यहां कुछ स्वानुभवजन्य बातें लिखी जाती हैं। सन् १८६४ में शिवपुरी में अँग्रेजी छावनी रहा करती थी। वहाँ के एक अँग्रेज सेनापति पेशावर में रह चुके थे। उन्हें पुरानी वस्तुओं के संग्रह करने का चाव था। अतएव उन्होंने पेशावर-तक्षशिला

आदि स्थानो से इन्डोग्रीक्स सिक्के एकत्रित किये थे। कुछ दिन के अनन्तर शिवपुरी में ही उन महाशय की मृत्यु होगई। जब उनका माल नीलाम हुआ, उस समय अन्य सामान के साथ, अन्य की दृष्टि मे नगण्य उन सिक्कों का डिब्बा भी एक बनिये ने खरीद लिया। सन १६१७ में मै वहाँ पहुँचा और मुझे जब उन सिक्कों का पता चला, तब मैंने उन्हे प्राप्त करने की इच्छा प्रगट की, किन्तु वे वणिक महाशय कह उठे कि जब से वे सिक्के उनके पास आये हैं, तब से वे खुशहाल होगये हैं, अतएव वे उन्हें दे नहीं सकते। मैं भी चुपचाप रह गया। आठ नौ वर्ष के पश्चात् जब मै वहाँ तहसीलदार होकर पहुँचा, और वे सिक्के प्राप्त करने की इच्छा प्रगट की तो आनन-फानन में वे सेठ महाशय मेरे मकान पर आये, और उन्होने सहर्ष सिक्कों का वह डिब्बा मुझे भेंट कर दिया। उनके प्राप्त करने मे मुझे कितना संयम प्रयत्न और कष्ट उठाने पड़े, यह मैं ही जानता हूँ। उज्जैन के एक मठ में ग्रंथों का एक अच्छा संग्रह था, किन्तु मठाधीश उन्हें बताने में आनाकानी कर रहे थे। अन्त में मुझे अपना उद्देश्य साध्य करने के लिये कुछ द्रव्य व्यय करने की सूझी। सबसे पहिले मैंने उस मठ और मठाधीश का फोटो खींचा। फिर उस मठ के ग्रन्थ-संग्रह को व्यवस्थित रखने के लिये दो थान कपड़ा खरीद कर दिया। अनन्तर मठाधीश महाशय ने कहा कि उनके संग्रह में महादाजी सिंधिया की कविता है। मैंने उसे देखना चाहा तो कहा कि बस्तों मे ढूँढ़ लो। तीन चार दिवस के कठिन परिश्रम के अनंतर उनके वृहत्संग्रह से मैंने वह ग्रन्थ ढूँढ़ निकाला, किन्तु मठाधीश महोदय उसकी नकल करवाने या उसे मकान पर नोट्स लेने के लिये ले जाने देने तक को राजी नहीं हुए। बड़ी कठिनता से कुछ प्रलोभन के बलबूते पर उन्होंने एक रात्रि के लिये मुझे पुस्तक देना स्वीकार किया। पुस्तक हाथ पड़ते ही मैं दूसरे दिन वहाँ से अपने घर चल दिया और उसकी नकल करके आठ दिवस के अनंतर क्षमा याचना और १०) रुपया दक्षिणा के साथ मूलग्रन्थ वापिस कर दिया, जिससे वह संग्रह माधवविलास नामक ग्रंथ रूप में प्रकाशित कर सका। अर्थात् संशोधन कार्य मे कभी कभी उच्च ध्येय के कारण डंडे सहे करने के लिये भी बाध्य होना पड़ता है। एक और महाशय के यहां संस्कृत ग्रँथों का अच्छा संग्रह था। एक संशोधक महाशय उनके यहाँ से कुछ ग्रन्थ पढ़ने लेगये।

और उन्होंने वापिस नहीं किये, जिससे वे संग्राहक महाशय बिदक गये और मेरी तरह अन्य कोई महाशय उनसे जिज्ञासा करते तो वे उत्तर देते कि उनका संग्रह उनके शव के साथ ही जला दिया जावेगा। मैंने उनके परिचित और आश्रयदाताओं की उन तक शिफारिशें भी पहुँचाई, किन्तु मैं सफल न हो सका। वर्षों तक प्रतीक्षा करने के अनन्तर उनकी मृत्यु के बाद उनकी विधवा की सहायता से मैंने वह संग्रह देखा, जिसमें १५ वीं १६ वी शताब्दी के नल-दमयन्ती चम्पू जैसे अपूर्व ग्रन्थ प्राप्त हुए, अर्थात् संशोधन के लिए योग्य अवसर की भी बाट जोहनी पड़ती है। ग्वालियर के एक मठाधीश का मनोरञ्जक वर्णन सुनने लायक है। उनके यहाँ कुछ संग्रह होने का पता चला तो मैं महीनों उनके अभिवचनानुसार प्रति रविवार को जाता और खाली हाथ लौट आता। मठ के आश्रयदाता एक सरदार तथा महन्तजी के अनुयायी एक शिष्य की शिफारिशें भी लड़ाईं। अन्त में मैं स्वयम उनका भक्त बन गया और वार्षिक गुरुपूजन भी करने लगा, तब कहीं महन्त महोदय पसीजे और उन्होंने एक दिन रविवार को संग्रह बताने का अभिवचन दिया। मैं निश्चित समय पर पहुँचा और मठ के तहखाने से सैकड़ों ग्रंथ बाहर निकाले, जिसमें दस बीस मरे हुए चूहे और सड़े गले कागजों का ढेर भी निकाला। इसी में मुझे मठ को अग्राहार में दिए हुये पाँच गाँवों की बीस्वर यशवन्तराव होल्कर की दी हुई सनदें, सातवीं शताब्दी का एक ताड़-पत्र का ग्रंथ (शारदा लिपि में लिखा हुआ) तथा अन्य कुछ सामग्री प्राप्त हुई, जिसके आधार पर मैं यथासम्भव नोट्स भी लेता गया। आठ नौ घंटे परिश्रम करने के अनन्तर दूसरे दिन नोट्स लेने के उद्देश्य से वह सामग्री ज्यों की त्यों रख छोड़ने का मैंने महन्त महोदय से विनय-अनुनय भी किया, किन्तु दूसरे दिवस पहुँच कर देखा तो महन्तजी के पट्ट शिष्य महाशय ने वह सामग्री तहखाने में दबाकर उस पर ताला ठोक दिया और मुझे उसके नोट्स लेने से साफ इन्कार कर दिया। तो भी मैं प्राप्त सामग्री के आधार पर मठ संस्थापक सन्त कवि का चरित्र तलाश करने में समर्थ हुआ। तीन चार वर्षों तक के प्रयत्न और उठाई-धराई का भी यथावत् परिणाम नहीं निकला। इसी से कहा जा सकता है कि संशोधक को केवल स्वान्तः सुखाय अपार कष्ट करने की आदत डालनी चाहिए।"

(८) प्रेम — जिनके यहाँ से सामग्री हस्तगत करनी हो उनमें जब तक घुलने-मिलने, सौहार्द्र य बताने और परस्पर प्रेम और विश्वास उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त नहीं होगी, तब तक सामग्री का संग्रह करने में सफलता मिलना कठिन है। यदि वध्य वस्तु आरंभ ही में छिटक जाय, तो शिकारी क्या कर सकता है? प्राप्य वस्तु को प्रकाशित करने से तुम्हारे बाप-दादाओं का नाम होगा, भविष्य में तुम्हें इससे लाभ पहुँचेगा, तुम्हारा भी परिचय देश देशान्तर में हो जायगा आदि ममत्व की बातें जब तक गले न उतारी जायँ तब तक वस्तु प्राप्त करना कठिन होता है। जिस प्रकार मेसमेरिज़म व हिपनाटिज़म का प्रयोग किये बिना माध्यम के द्वारा इच्छित बातें ज्ञात नहीं हो सकतीं, उसी प्रकार ग्रन्थ स्वामी को अपने वश में न कर लिया जावे, तब तक वह वस्तु हस्तगत नहीं होती। अतएव संशोधक को सहृदय होना ही चाहिये। यह अत्यन्त आवश्यक गुण है।

(९) मृदुजिह्वा — प्रियभाषण का सुभाषित जिसने पढ़ा है, वही उसका महत्व जान सकता है। स्वर्गीय इतिहासाचार्य राजवाड़ेजी बड़ी लगन वाले निस्पृह किन्तु भक्की थे, वे कभी-कभी कटुभाषण द्वारा अत्यन्त अप्रिय भी बन जाते थे। एक समय आप ग्वालियर के शास्त्री महाशय का संग्रह देखने गये। उनका सांवला सा चेहरा और भद्दा रहन-सहन देखकर शास्त्री महाशय ने उनसे पूछा कि क्या आप कुछ जानते भी हैं, तब वे सहसा बोल उठे "मैं महा मूर्ख हूँ"। तब तो हमें मूर्ख को कोई बात बताना अभीष्ट नहीं है। यह जवाब शास्त्री जी से पाते ही आप तपाक से कह उठे, "ठीक है, आपकी मृत्यु हो जाने के बाद जब आपकी विधवा इन ग्रन्थों को रद्दी में बाजार में बेचेगी तब मैं उन्हें खरीदकर देखूँगा।" परिणाम यह निकला कि राजवाड़े जी उस संग्रह को देखने से वंचित रह गये, यदि मृदुभाषण उनमें होता तो वे बहुत अधिक कार्य कर सकते थे; अतएव संशोधकों को दूसरों पर अपना प्रभाव डालने के लिये मृदुभाषी होना आवश्यक है।

(१०) कल्पकता — इतिहास संशोधक को कल्पना के आधार पर प्राचीन वस्तुओं की टोह में रहना चाहिये। मैं भिण्ड ज़िले में नायब सूबा की हैसियत से एक ग्राम में दौरे को गया। वहाँ के मंदिर का पुजारी

गौड़ जाति का था। मैंने उससे पूछा 'गौड़ तो जयपुर प्रान्त के निवासी होते हैं। तुम यहाँ कैसे? गौड़ों का मुख्य पेशा कत्थक का होता है।" तब उसने कहा कि आपने ठीक कहा मेरे दादा जयपुर में कत्थक का पेशा करते थे, जो रींवा नरेश महाराज रघुराजसिंह के आश्रित थे। उनका विवाह इस ग्राम में हुआ और दहेज में मंदिर मिला। मैंने पूछा तो तुम्हारे यहाँ नृत्य-संगीत सम्बन्धी कुछ साहित्य होगा ही। फिर दूसरे दिन मैं मंदिर पहुँचा और भगवान को २) चढ़ाये। उसी लोभ से प्रभावित होकर उसने अपने मकान के दूसरे मंजिल पर कोने में पड़े हुए बस्ते मुझे लाकर बताये जो कम से कम २५-३० वर्षों से खोले तक नहीं गये थे, किन्तु मुझे सौभाग्य से उन्हीं में, संगीत, नृत्य, भजन, अकलनामा, चकता की परम्परा आदि अपूर्व सामग्री प्राप्त हुई। ब्राह्मणों (पंडित-पुराणिक) के गृह, मंदिर, मठ आदि में प्राचीन ग्रंथ, बनिये-ठटेरों के यहां पुरानी मुद्रायें, भाट-चारणों के यहाँ मौखिक साहित्य, राजपूतों, जागीरदारों व काजियों आदि के यहाँ सनदें, फरमान और पुराने देवालयों, सतीस्तभों, छतरियों पर शिलालेख तथा शीतला माता के संग्रहों में प्राचीन शिल्पों के अवशेष ढूँढने में संशोधकों को अपनी कल्पना का उपयोग करना पड़ता है। किसी स्थानिक व्यक्ति की सहायता से प्राचीन सामग्री आसानी से टटोली व साध्य की जा सकती है। अपने पैरों पर खड़े रहना और अपनी कल्पना से नूतन सामग्री ढूँढ निकालना ही यथार्थ प्रतिभा का परिचायक होता है। संशोधक में यही गुण अधिक मात्रा में होना आवश्यक है।

ऊपर संशोधकों के मुख्य एवं आवश्यक गुणों का संक्षेप में अनुभवजन्य उदाहरणों से परिचय दिया गया है। साधन सामग्री की चिकित्सा और मीमांसा अनुभव से ही की जा सकती है। यदि उस क्षेत्र में किसी ने कार्य किया हो भी तो उसका अनुभव अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। लिपिशैली, माप प्रकार, लेखक का निवास, ग्राम, आश्रयदाता का परिचय, रचनाकाल आदि विषय की बारीकियाँ और खूबियाँ जानना और प्रगटीकरण महत्व का होता है। स्थानीय और प्रान्तीय संशोधक अपने-अपने स्थान पर जितनी सुलभता से कार्य कर सकते हैं उतनी सफलता बाहर के नौकर संशोधकों को प्राप्त होना कठिन है। हिन्दी में श्री कृष्णबिहारीजी मिश्र

द्वारा प्राचीन साहित्य सम्बन्धी चर्चा करने वाला साहित्य-समालोचक पत्र प्रकाशित किया गया था, अभी ओरछा से भी लोकवार्ता का प्रकाशन आरम्भ हुआ था, किन्तु वह पत्र भी अकाल में ही काल-ग्रसित होगया। यदा-कदा नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्राचीन साहित्य की चर्चा सुनाई देती है, किन्तु परभाषाओं में उस विषय के स्वतन्त्र पत्र प्रकाशित होते हैं। अनेक प्रान्तीय भाषाओं की संस्थाओं के पाक्षिक, मासिक, और वार्षिक अधिवेशन होकर उनमें नूतन संशोधित ग्रन्थ, कवि तथा प्राचीन साहित्य सम्बन्धी चर्चा भी होती रहती है। भगवान् करें हिन्दी में भी ऐसी संस्थायें स्थापित हों, जो लगन के संशोधक तैयार करें और उनके प्रयत्न सामयिक पत्रों के रूप में प्रकाशित होकर नवयुवकों में प्राचीन साहित्य सम्बन्धी श्रद्धा बढ़ाने का साधन उपलब्ध हो जाय।
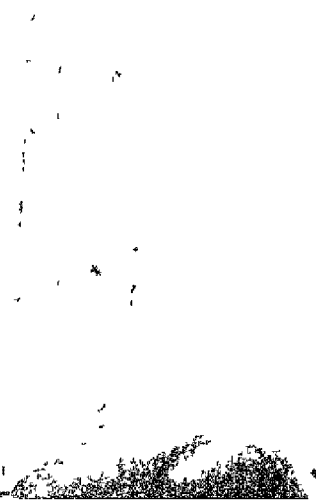
ब्रजभाषा साहित्य का प्रवृत्तिगत विकास

[व्याख्याता:—श्री गुलाबराय एम० ए०]

ब्रजभाषा की महत्ता— खड़ी बोली के साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व ब्रजभाषा का सबसे अधिक साहित्यिक मान रहा है। वह हिन्दी साहित्य-जगत की राष्ट्रभाषा के स्पृहणीय पद पर आसीन थी। वह अपनी वास्तविक एवं प्रभावगत व्यापकता के कारण अपने इस पद को सवा सोलह आने सार्थक कर रही थी। जहाँ-जहाँ कृष्णोपासनाका प्रभाव रहा है, वहाँ-वहाँ ब्रजभाषा का साम्राज्य रहा है—कुछ कुछ वैसा ही जैसा कि भूषण ने शिवराज के अधिकार के संबंध में कहा है 'पूरब पछाँह देस दच्छिन से उत्तर लौं, जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज कौ'। ब्रजभाषा का क्षेत्र शौरसेन प्रदेश में ही सीमित नहीं रहा, वरन् मीरा और नरसी महता के कारण राजस्थान और गुजरात तक फैला हुआ था। वैष्णवों का कृष्णभक्ति सम्बन्धी साहित्य चाहे वह बंग भाषा में ही क्यों न हो, ब्रजबोली के नाम से प्रख्यात है। सुदूर दक्षिण में भूषण ने छत्रपति शिवाजी का यशगान कर ब्रजभाषा की विजय वैजयंती स्थापित की थी।

भारत में सदा से मध्यदेश की भाषा का बोलबाला रहा है। शौरसेनी प्राकृत सब प्राकृतों में मुख्य गिनी जाती रही है। कुछ आचार्य तो उसका महाराष्ट्री से तादात्म्य करते हैं और शेष प्राकृतों का उसके मापदंड से मापा जाना बतलाते हैं। शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश दोनों से ही उनकी उत्तराधिकारिणी ब्रजभाषा का अधिक मान रहा है।

ब्रजभाषा की कुछ विशेषताएँ— ब्रजभाषा का मान बे-मुल्क के नवाबों का सा केवल शाही आभिजात्य पर ही निर्भर न था। वह अपने अपूर्व नाद-सौन्दर्य में पूर्ववर्तिनी भाषाओं से भी चार कदम आगे बढ़ी हुई थी और अर्थ गांभीर्य में भी किसी से पीछे न थी। उसके व्याकरण की विशेषताएँ बतलाना या तो डा० धीरेन्द्र वर्मा या

किशोरीदास वाजपेयी का काम है। मेरे लिए व्याकरण तो व्याकरण के मूलस्रोत माहेश्वर सूत्रों में अभिव्यक्त होने वाले डमरूनाद से अधिक सार्थक नहीं हो पाया है। 'प्राप्ते सन्निहिते मरणे' की बात को तो मैं छोड़ दूँगा क्योंकि मृत्यु का नाम ही बुरा है, फिर बच्चन जी के शब्दों में 'उस पार न जाने क्या होगा।' किन्तु उसके आगे की बात अवश्य कहूँगा। 'नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे' कह कर अपने व्याकरण संबंधी अज्ञान पर सुन्दर दार्शनिक आवरण डाल लेना चाहता हूँ। फिर भी यह कहा जा सकता है कि मुख-सुख और श्रुति-मधुरता के जितने भाषा-शास्त्र सम्बन्धी साधन हैं वे सब ब्रजभाषा की उच्चारणगत विशेषताओं मे उदारतापूर्वक अपनाये गये हैं। ब्रजभाषा न पश्चिम की खड़ी बोली की भाँति खड़ी और न पूरब की भाँति पड़ी है। उसके सर्वनाम, विशेषण और भूतकालिक कृदन्त न तो खड़ीबोली के हमारा छोटा, बड़ा, गया आदि की भाँति आकारान्त हैं जिनमें पूरा मुँह खोल कर दीनता से मुँह बा देने का प्रयोग सार्थक होता है और जिनमें सारी संचित प्राणशक्ति का दिवाला निकल जाता है और न अवधी की सी हमार, छोट, बड़काब आदि लघ्वन्त शब्द सम्बन्धी उच्चारण की कृपणता है जिनमें कंजूसों की मुट्ठी की तरह ओष्ठपुट बन्द हो जाते हैं। उसके शब्द ओकारान्त होते हैं, जिनके उच्चारण में न ओष्ट बिलकुल चौपट-खुल जाते हैं और न बन्द ही रहते हैं। ब्रजभाषा में संधियों से भी पूरा-पूरा लाभ उठा कर मुख-सुख की पूर्ण साधना की गई है। अवधी इकार बहुला है और ब्रजभाषा यकार बहुला। अवधी का उ ब्रजभाषा में व हो जाता है। अवधी में उ के पश्चात आ का उच्चारण भी ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं है। उसके दुआ और कुआर ब्रजभाषा में द्वार, क्वार हो जाते हैं। ब्रजभाषा में श का स, ण का न, व का ब हो जाना उसकी कोमल प्रकृति का द्योतक है। खैर, हमारा विषय ब्रजभाषा का व्याकरण नहीं है, उसका साहित्य है। मैं इस प्रसंगान्तर में इसलिए पड़ गया कि बता सकूँ कि ब्रजभाषा साहित्य की व्यापकता के क्या कारण हैं। मेरी समझ में संक्षेप में इसके तीन कारण हैं—

१. कृष्णोपासना का आश्रय।

२. श्रुति-माधुर्य।

३. मानवी भावों के कोमल और सरस पक्ष से सम्बन्ध।

व्रजभाषा-साहित्य का प्रारंभिक काल—व्रजभाषा काव्य के बाल्यकाल का सीधा परिचय हम लोगों को बहुत कम है। हिन्दीसाहित्य-गगन के सूर्य सूर में हमको प्रथम दर्शन उसके पूर्व यौवन-काल में होते हैं। बाल्यकाल उसका अनुमेय मात्र है। यत्र-तत्र उसकी झाँकी हमको अवश्य मिली है। किन्तु उस बाल्यकाल और यौवन-काल में किसी विकाससूत्र का पाना बहुत कठिन है। गुरु गोरखनाथ में हमे उसके गद्य की झलक मिलती है। उस समय यदि गद्य लिखा जा सका तो पद्य शायद उससे भी पूर्व अस्तित्व में आ चुका होगा। आचार्य शुक्लजी ने संवत् १४०० के करीब के गद्य का जो नमूना दिया है, वह इस प्रकार है:—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। है कैसे परमानन्द, आनन्दस्वरूप हैं शरीर जिन्हि को, जिन्हि के नित्य गाए तें शरीर चेतन्नि और आनन्दमय होतु है।"

शुक्लजी के [illegible] [illegible] [illegible] रूप से कबीर और सूर के [illegible] इस प्रकार है—

> है हरि भजन को परमान
> नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते निसान,
> भजन को परताप ऐसो तिरे जल पाषान,
> अधम भील, अजाति गनिका चढ़े जात विमान।

दूसरा पद उन्होंने बैजू बावरे का जो तानसेन के गुरु थे, बतलाया है। वह इस प्रकार है—

> मुरली बजाय रिझाय लइ मुख मोहन नें
> गोपी रीझ रही रस तानन सों
> सुध बुध सब बिसराई
> बैजू बनवारी बंसी अधर धरी, वृंदावन चंद बस किए सुनत ही कानन

सेन कवि के एक कवित्त को प्रकाश में लाने के लिए हम पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के ऋणी हैं। श्रद्धेय मिश्रबंधुओं ने शिवसिंह सरोज के आधार पर सेन कवि का काल १५०३ बतलाया है। सेन का कवित्त इस प्रकार है—

जब ते गोपाल मधुवन को सिधारे आली
मधुवन भयो मधुदानव विषम सों
सेन कहैं सारिका सिखंडी खंजरीट सुक
मिल कै कलेस कीनों कालिंदी कदम सों।

यों तो पृथ्वीराज रासो की भाषा को डा० श्यामसुन्दरदासजी ने पिंगल कहा है—पिंगल-डिंगल के विरोध में ब्रजभाषा का परिचायक है। वह पिंगल केवल सुव्यवस्थित छंदबद्धता और भाषा की प्रांजलता के कारण ही नहीं है, वरन् उसमें ब्रजभाषा का प्रभाव भी है। उसमें योकारांत क्रियाओं का बाहुल्य है। यह बात राजस्थानी के व्यापक गुण के रूप में भी ली जा सकती है। कबीर के कहे जाने वाले पद में भी संदेह हो सकता है। सेन के काल में भी अंतर होने की सम्भावना है, किन्तु बैजू के पद से यह अवश्य संकेत मिलता है कि सूर से पहले कम से कम ब्रजभाषा गीत-काव्य की एक मौखिक परंपरा अवश्य थी और उसमें कृष्ण के रूपमाधुर्य का—यदि दार्शनिक भाषा के प्रयोग के लिए अप्रतीत्व दोष से मेरी भाषा लांछित न की जाय तो मैं कहूँगा कि समवाय सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। ब्रज वनिताओं का सा ब्रजभाषा का कृष्ण प्रेम आज तक उसकी नस नस में प्रवेश किए हुए है। 'लरिकाई को प्रेम अलि कहौ कैसे छूटे।'

कृष्ण काव्य की परंपरा।—कृष्ण काव्य की लोकप्रियता हिन्दी, बंगला आदि प्रांतीय साहित्यों तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसके मूलतन्तु संस्कृत और प्राकृत साहित्य में दूर तक दृष्टिगोचर होते हैं। कृष्ण की महत्ता और लोकप्रियता कृष्णोपासना की व्यापकता और प्राचीनता पर निर्भर है। विष्णु की महत्ता वैदिक काल में ही प्रस्थापित हो चुकी थी। विष्णु शब्द 'विश' धातु से बना है। वैदिक काल में उनका सूर्य से तादात्म्य रहा है। गीता में भी यह बात स्वीकृत हुई है, 'आदित्यानामहं विष्णुः'। वामनावतार की कथा का जो संकेत हम को बीज रूप से ऋग्वेद में मिलता है—

विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा च निदधे पदं समूढ़मस्य पांशुरे (ऋ० १, २, ७२)

वह उनकी व्यापकता का द्योतक है। विष्णु के अवतारों में जितनी प्रसिद्धि और पूजा राम और कृष्ण को मिली, उतनी और किसी को नहीं। राम (सब में रमने वाले) और कृष्ण अपने वासुदेव नाम से व्यापकता के द्योतक होने के कारण विष्णु के ही पर्याय हैं।

वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः;
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्वाद् विष्णुरुच्यते ।

अर्थात, सब भूतों में वसने के कारण अपनी दीप्ति के कारण देवताओं की उत्पत्ति के स्थान होने के कारण ये वासुदेव कहलाते हैं, और विराट रूप होने के कारण विष्णु कहलाते हैं।

ऋग्वेद में भी विष्णु का गौओं से सम्बन्ध रहा है। इस सम्बन्ध में डा० नलिनी मोहन सान्याल ने लिखा है कि ऋग्वेद में (१, २२, १८) विष्णु गोपा नाम से अभिहित हुए हैं । ऋग्वेद (१, १५४, ६) में विष्णुलोक में बहुश्रृंग-विशिष्ट गायों का उल्लेख है। मैंने स्वयं वेदों के दर्शन तो शायद आर्य-समाज की कृपा से कर लिये हों, किन्तु उन्हें पढ़ा नहीं है। फिर भी मुझे विश्वास है कि यह उल्लेख ठीक है। इसमें अर्थभेद हो सकता है। किन्तु बीज रूप से गोपाल कृष्ण सम्बन्धी मनमोहक कथाओं की आधारभूमि उपस्थित करने के लिए इतना उल्लेख पर्याप्त है। छांदोग्य उपनिषद् (३, १७, ६) में देवकी पुत्र कृष्ण घोर आंगिरस के शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पाणिनी के समय वासुदेवक शब्द वासुदेव सम्प्रदाय की व्यापकता का साक्षी है। छांदोग्य उपनिषद् में आई हुई शिक्षाओं का गीता के मंतव्यों से साम्य होने के कारण छांदोग्य और गीता के कृष्णों का तादात्म्य किया जाता है। वे एक न भी हों, पर इससे यह अवश्य प्रमाणित हो जाता है कि कृष्ण नाम की प्रसिद्धि वैदिक काल में भी थी।

राधा रानी का नाम इतना पुराना नहीं प्रतीत होता। श्रीमद्भागवत में राधा नाम का उल्लेख नहीं है, इस बात को वैष्णव आचार्यों ने स्वीकार किया है। राधा नाम का नितान्त अभाव न था। अमरकोष में विशाखा नक्षत्र का दूसरा नाम राधा है। राधा का नाम न होते हुए भी श्रीकृष्णजी की बाल और यौवन लीलाओं का माधुर्य पक्ष श्रीमद्भागवत् तथा पद्मपुराण में विकसित हो चुका था। पुराण ही नहीं, कवि-कुल-गुरु कालिदास, जो अपने धार्मिक विश्वासों में शैव प्रतीत होते हैं, कृष्णलीला तथा भगवान कृष्ण के विहार-स्थान वृन्दावन और गोकुल के माधुर्य से प्रभावित थे। वे मेघदूत में इन्द्र-धनुष से सुशोभित मेघ की उपमा मोर-मुकुट-मंडित गोपवेश-धर विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण से देते हैं। देखिए,

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः-पू० मे० १५

इतना ही नहीं रघुवंश में भी भगवान कृष्ण की सुन्दरता को उपमान बनाया गया और वृन्दावन और गोकुल के प्राकृतिक माधुर्य का प्रशंसात्मक शब्दों में उल्लेख हुआ है । इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर उसकी सखी सुनन्दा मथुरा के राजा सुषेण की ओर इशारा करके कहती है:—

त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः ।
वक्षःस्थलव्यापि रुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ॥
सम्भाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तर पुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ॥
अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥
—रघुवंश, छठा सर्ग ४८, ४९, ५०

कालिदास से पूर्व भास ने भी बाल-चरित में कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है ।

राधा का उल्लेख भी हम को प्राकृत तथा संस्कृत के साहित्य ग्रन्थों में मिलता है । हाल सप्तशती में एक श्लोक आता है, जिसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है—

मुखमारुतेन त्वं कृष्णगोरजो राधिकाया अपनयन ।
एतासां वल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥

ध्वन्यालोक में भी एक श्लोक उद्धृत है जिसमें राधा का उल्लेख है—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां ।
[illegible] लतावेश्मनाम् ॥

यह तो अवैष्णव साहित्य की बात रही । वैष्णव साहित्य तो राधा-कृष्ण की लीलाओं से ओत-प्रोत है । वैष्णवों में सबसे पहले निम्बार्काचार्य ने राधा की उपासना को महत्व दिया । वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि आचार्यों ने इस महत्व को और भी व्यापक बनाया । जयदेव ने अपनी कोमलकांतपदावली द्वारा विलास-कला कौतूहल में सरस मनवालों के लिए हरि-स्मरण का साधन प्रस्तुत किया—

यदि हरिस्मरणे सरस मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमलकान्तपदावली,
शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।

विद्यापति ने भी इसी सूत्र को लेकर सरस काव्य-रचना की। चैतन्य महाप्रभु द्वारा ही जयदेव, विद्यापति और चंडीदास के गीत-काव्य की भावलहरी वृन्दावन तक प्रवाहित हुई। चैतन्य महाप्रभु और उनकी शिष्य-परम्परा द्वारा भक्ति के अन्तर्गत जिस मधुर व उज्ज्वल रस की विवेचना हुई उसमें नायिका भेद के लिए आश्रय मिला, यद्यपि इनके नायिका भेद का आधार आलंकारिकों के आधार से कुछ भिन्न था तथापि उसमें नायिकाओं के विभिन्न भेदों का विवेचन मिलता है। इस प्रकार कृष्ण-काव्य पर तीन मुख्य प्रभाव थे—

(१) श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में वर्णित श्रीकृष्णजी की लीलाएँ।

(२) निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों की भक्ति-सम्बन्धिनी मीमांसाएँ।

(३) चैतन्य महाप्रभु द्वारा लाई हुई जयदेव, विद्यापति और चंडीदास की गीत-परम्परा तथा कीर्तन की प्रवृत्ति।

ये तो मूल प्रभाव थे। इन प्रभावों के अतिरिक्त स्थानीय लोकगीतों का भी प्रचलन होगा। संत-साहित्य के गीत जन समुदाय में लोकप्रिय हो चुके थे। सूफियों के प्रेम-प्रधान गीतों का भी चलन था। देवमन्दिरों की गीतवाद्य-प्रधान उपासना पद्धति ने भी कृष्ण-भक्त कवियों की गीतकाव्य रचना में प्रोत्साहन दिया होगा। इस धार्मिक और संगीत-प्रधान वातावरण में कृष्ण-काव्य की रचना हुई। कृष्ण-प्रेम की इस धारा ने भक्ति-साहित्य को ही प्रभावित नहीं किया, वरन् रीतिकालीन साहित्य को भी यह अनुप्राणित करती रही।

भक्तिकाल की मानसिक पृष्ठभूमि—

साहित्य का विकास तत्कालीन जातीय जीवन और उसमें प्रवाहित होने वाली विचार धाराओं पर निर्भर रहता है। कवि और साहित्यकार अपनी विशेष संवेदनशीलता के कारण समाज के वायु

मण्डल में बिखरी हुई विचार-तरंगों को रेडियो के आकाशी (Ariel) की भाँति ग्रहणकर अपनी कल्पना और अभिव्यञ्जना के बल पर जनता के लिए ग्राह्य बना देते हैं। हिन्दी साहित्य भी समाज की गति के साथ प्रतिस्पंदित हुआ है। वीरगाथा-काव्य संघर्ष युग की देन है। किन्तु उसमें संघर्ष की मारकाट और एक छोटे राज्य को ही देश मानने की संकुचित पर सच्ची वीर भावना के साथ प्रेमाश्रित स्त्री-परित्राण भावना से उत्पन्न शृङ्गारिकता का भी पुट है। उन दिनों वसुन्धरा की भाँति रमणी भी वीरभाग्या नहीं, आजकल की भाषा में वीर-पूज्या रही। काव्य उन दिनों राज्याश्रित अवश्य था, किन्तु कुछ उदार भावना के साथ। कवि स्वयं भी वीरोल्लास में प्रवाहित हो जाता था। उस समय के वीरों की वीरता में दैवी-भावना भी मिश्रित रहती थी और प्रचलित लोककथाएँ भी उनके जीवन के साथ अनुस्यूत रहती थीं। इसी कारण इस साहित्य में लोकसाहित्य के लक्षण उत्पन्न हो गये थे। फिर भी इस युग की चिन्ता-धारा राजाओं और उनसे सम्बन्धित वीरों तक ही सीमित रही। उसमें हृदय की सचाई, भावुकता और आलंकारिकता थी, किन्तु चिन्ता और विचार की कमी थी। क्रिया का प्राधान्य चाहे वह कुछ विकृत रूप मे ही रहा हो—अवश्य था।

हिन्दू शक्ति के ह्रास हो जाने पर वीरों को प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति कुछ निरर्थक सी हो गई। 'निर्वाण दीपे किं तैल्यदानम्' उस समय हार की मनोवृत्ति का प्राधान्य था। देश में नैराश्य की छाया थी। ऐसी मनोवृत्ति की दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, या तो किसी दूसरे क्षेत्र में अपनी उच्चता प्रमाणित कर मानसिक क्षोभ को दूर करने की सचेत अथवा अवचेतनगत प्रवृत्ति या विलासिता के कृत्रिम आनन्द की मदिरा में अपनी विफलताओं को भुला देने का प्रलोभन। एक प्रवृत्ति स्वस्थमन की है। दूसरी शैथिल्य जर्जरित अस्वस्थ मन की। पहली प्रवृत्ति भक्तिकाल में विकसित हुई और दूसरी का आभास हमको रीतिकाल में मिलता है। यह एक प्रवृत्ति-मात्र है। सारे रीति-काल को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उदाहरण समझना उसके साथ अन्याय करना है।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। साहित्य और कला में भी वह

अपना अस्तित्व रखता था। जाति के उस उग्रता-भाव ने धार्मिक और मानसिक जागृति को कुछ विशेष गति प्रदान की। इसके अतिरिक्त जब धर्म और संस्कृति का संरक्षण लोहे की धार से होना असंभव सा प्रतीत होने लगा, तब विचारों के परकोटे को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता प्रबल हो उठी। स्मृतियों की टीकाएँ बनीं, दर्शनों के भाष्य तैयार हुए, जिनके द्वारा भक्ति-भावना को दृढ़ करने के लिए शास्त्रीय आधार उपस्थित किया गया। साहित्य के क्षेत्र में आलंकारिक ग्रंथ रचे गये। संघर्षजन्य भौतिक क्रिया की अपेक्षाकृत कमी मानसिक क्रिया से संतुलित हो उठी। उस समय आलस्यजन्य विलासिता नहीं उत्पन्न हुई थी और न जनता का मन शैतानी कारखानों (Devil's workshop) के रूप में परिणत हुआ था।

शान्ति स्थापित हो गई थी, किन्तु सामाजिक विषमताएँ अपना अस्तित्व जमाये हुए थीं। ये दो प्रकार की थीं—एक हिन्दू-मुसलमानों की, दूसरी अवर्ण-सवर्ण की। इन विषमताओं को दूर करने की आवश्यकता थी। सवर्ण और अवर्ण की विषमता को दूर करने की प्रवृत्ति बौद्ध-धर्म में विकसित हो चुकी थी। हीनयान में समता की भावना संघ के कठोर नियमों से शासित थी। उस शासन की प्रतिक्रिया महायान में हुई और वह वज्रयान और सहजयान में तंत्रवाद के सहारे वाममार्ग की उच्छृङ्खलता तक पहुँच कर हिन्दू धर्म में लीन हो गयी थी किंतु उसमें अपनी स्वतंत्रता की छाप हठयोग-प्रधान गोरखपंथ को उत्तराधिकार के रूप मे प्रदान कर दी थी। परिस्थितियों ने उस विचारधारा से भी लाभ उठाया। गोरखपंथ में समता की भावना के साथ महायान की भक्ति-भावना और शेष तंत्रों से मिली हुई अद्वैत भावना भी थी। शॉकर अद्वैतवाद विद्वानों की मंडली में अपना मानसिक प्रभाव जमाये हुए था। उसकी प्रतिक्रिया में उठी हुई रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, बल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद और मध्वाचार्य के द्वैतवाद की विचारधाराएँ विचार क्षेत्र को तरंगित कर रही थीं। इन्हीं धाराओं के अन्तर्गत रामानुज से प्रभावित रामानन्दी सम्प्रदाय और मध्व, बल्लभ तथा निम्बार्क से प्रभावित चैतन्य महाप्रभु के गौड़िया सम्प्रदाय ने जन्म लिया। रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्दी सम्प्रदाय में रामोपासना

का प्राधान्य रहा और शेष तीन सम्प्रदायों में कृष्णोपासना का। इन सब प्रतिक्रियात्मक विचारधाराओं में तीन व्यापक सूत्र थे। (१) विचार का भाव से समन्वय। (२) ईश्वर से किसी रूप में रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना और अपने उद्धार तथा सुधार के लिए भगवत् कृपा का अवलम्बन। (३) भक्ति का द्वार जनता के लिए खोलकर भक्ति को व्यापकता देना।

इन सब मानसिक विचार धाराओं ने साहित्य को प्रभावित किया, और साहित्य से इनको बल मिला। साहित्य में भावना का पुट रहने के कारण उसमें विचारों में वेग और संक्रामकता उत्पन्न करने की क्षमता रहती है।

यहाँ पर यह बता देने की आवश्यकता है कि मुसलमानों के पैर जम जाने पर शांति के सदुपयोग और एक दूसरे के निकट आने की भी भावना दोनों ओर था। मुसलमानों में सब लोग नितान्त बर्बर प्रकृति के न थे। उनके पास भी धर्म, साहित्य और कला थी। उनमें कुछ मुलायम तबियत के लोग भी थे। हिन्दुओं में आर्थिक और आध्यात्मिक भाव की प्रधानता होते हुए भी सामाजिक पक्ष की उपेक्षा न थी। कुछ समझौते की ओर प्रवृत्त थे, कुछ अपनी संस्कृति अक्षुण्ण रखना चाहते थे।

भक्तिकाल की साहित्यिक धाराएँ—

उपर्युक्त विवेचन में हम देख चुके हैं कि इस जागृति के दो पक्ष थे, एक आध्यात्मिक, और दूसरा सामाजिक। आध्यात्मिक पक्ष में शंकराचार्य के ब्रह्मवाद, गोरखपंथियों का हठयोग-प्रधान निर्गुणवाद, वैष्णव सम्प्रदायों के अन्तर्गत रामोपासना और कृष्णोपासना की सगुण धाराओं तथा सूफियों की प्रेम भावना का प्राधान्य था। इनसे प्रभावित इस युग में साहित्य की चार धाराएँ चलीं। शंकराचार्य के ब्रह्मवाद और मायावाद, गोरखपंथ के हठयोग और सामाजिक समतावाद, रामानन्द के भक्तिवाद तथा सूफियों की प्रेम-पीर लेकर कबीर की निर्गुण धारा चली। सामाजिक पक्ष में सुधार और समता की भावना थी, और कुछ अक्खड़पन के साथ। किन्तु सारा निर्गुण साहित्य ऐसा न था। दादू, पीपा, रैदास, मलूकदास, आदि में समता भाव सौम्य भाव के साथ था। नानक आध्यात्मिक बल का

आतंक बल के साथ योग करना चाहते थे। निर्गुण से प्रभावित फ़ारसी प्रेमवाद से समन्वित प्रेममार्गी कवियों की साहित्यिक धारा चली। उसने किसी अंश में हठयोग को भी अपनाया था। इन्होंने सामाजिक समन्वय हिन्दी भाषा, हिन्दू कथाओं और संस्कृति को अपनाकर करना चाहा।

गोरखपंथ के प्रति प्रतिक्रिया को लेकर और वैष्णव विचार धारा से प्रभावित होकर राम और कृष्ण भक्ति की शाखाओं ने जन्म ग्रहण किया। उन्होंने पांडित्य और आभिजात्य का गर्व दूर कर भगवत कृपा को प्राधान्य दिया। अजामिल, गणिका, निषाद, शबरी, गीध आदि के उदाहरणों से सामाजिक विषमताओं की कटुता दूर की गई। वैष्णव मत में कम से कम ईश्वर के लिए कुल-अकुल का विचार न था—

काहू के कुल नाँहि विचारत !
अविगत की गति कही कौन सों पतित सजन को तारत।

तुलसी ने वर्णाश्रम की मर्यादा के साथ अपना संदेश दिया। सूर ने वर्णाश्रम का विरोध तो नहीं किया, किन्तु तुलसी की तरह उसको महत्ता भी नहीं दी। इन सब धाराओं में पारस्परिक भेद के साथ कुछ भाव समन्विति भी थी, जिसके कारण वे एक सूत्र में बँध सकीं। इस भाव समन्विति के सूत्र थे—

(१) आत्म-समर्पण की भावना
(२) गुरुभक्ति
(३) नाम-महिमा
(४) प्रेम मार्गी कवियों को छोड़कर शेष तीन में प्राकृतिक जनों की प्रशंसना और गुण गान से विरक्ति (प्रेम मार्गी कवियों में प्राकृत जनों का गुण गान का लक्ष्य आध्यात्मिक ही था)।

भक्ति काल में कृष्ण काव्य का स्थान—

जैसा ऊपर कहा गया है पंडितों ने भक्ति की दार्शनिक व्याख्या की, कवियों ने अपनी प्रतिभा के वाष्प-यंत्र में आचार्यों की दार्शनिक गरिष्ठता नीचे निकाल कर भक्ति के शुद्ध रागात्मक रूप का जनता में

प्रचार किया। कबीर की वाणी में दार्शनिक गरिष्टता के साथ प्रेम का अवलेह मिला हुआ था। उसके अनुपान से वह जनता के गले में उतर सका। फिर भी उसमें शर्बत मिले हुए कुनीन मिक्सचर की सी उभयपक्षी डाट-फटकार की कटुता थी। कबीर ने निर्गुणवाद की दरिद्रता और नग्नता पर जो शृंगारिक आवरण डालना चाहा था, वह उनकी झीनी-बीनी चादर की भाँति इतना झीना था कि उसके द्वारा निर्गुणवाद की शुष्कता छिप न सकी। शून्य महल की सेज शून्य ही पड़ी रही। प्रेम-मार्गी कवियों ने लौकिक कथाओं के सहारे प्रेम भाव की साधना, रूपक, अन्योक्तियों, शुक्ल जी के शब्दों में, समासोक्ति द्वारा की। उन्होंने लौकिक के स्थूल आधार पर खड़े होकर व्यंजना की सीढ़ी से ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने उसे प्रकृति में भी व्याप्त देखना चाहा। उनका आलंबन सगुण तो हुआ, किन्तु साकारता न प्राप्त कर सका। उसमें हिन्दू कहानियों का आधार अवश्य था, किन्तु उनकी विदेशी गंध दूर न हो सकी और उनका अध्यात्मपक्ष व्यंग्य रहने के कारण वह प्रबल न हो सका। लोगों का ध्यान उसके भौतिक पक्ष की ओर अधिक रहा।

तुलसी और सूर ने राम-कृष्ण की भक्ति के आधार पर जो रासायनिक पाक तैयार किया, वह इतना मधुर था और किसी अंश में पौष्टिक भी कि जनता ने उसे बड़े प्रेम के साथ ग्रहण किया। और उसका बिना समालोचकों की कृपा का मुखापेक्षी बने, बिना लाउड-स्पीकरों के बिना अखबारों के मुख पृष्ठ पहले से सुरक्षित कराये, बिना सिनेमा स्लाइडों के प्रदर्शन आदि प्रचार और विज्ञापनों के सुलभ साधनों को अपनाये और राज्याश्रय का तिरस्कार करते हुए भी जनता में पूर्ण स्वागत हुआ।

कृष्ण रसायन में चाहे राम रसायन की अपेक्षा पौष्टिकता कुछ कम हो, किन्तु स्वाद अधिक था। मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों से उसका सीधा सम्बन्ध था। वैसे इस काल का सभी काव्य लोक-साहित्य कहे जाने की क्षमता रखता था, किन्तु कृष्ण काव्य जनता के हृदय के साथ निकटतर सम्बन्ध स्थापित कर सका। उसने भगवान कृष्ण की बाल और यौवन लीलाओं के वर्णन द्वारा जीवन के सौन्दर्य पक्ष का उद्घाटन कर जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करदी। जो लोग

जीवन को सत्य और सरस मानते हैं, वे ही उसकी रचा के लिए सचेष्ट हो सकते हैं

आध्यात्मिक पक्ष में राम और कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति का आरम्भ सगुण और साकार था और उनका भौतिक प्रत्यक्ष तो नहीं, किन्तु मानसिक प्रत्यक्ष अवश्य हो सकता था। साहित्य के लिए जैसे व्यक्तित्व-प्रधान आलम्बन की अपेक्षा की जा सकती थी, वह आलंबनत्व राम और कृष्ण दोनों ही में था। किन्तु सूर और अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य के आलम्बन लोक-जीवन से अधिक निकट थे। वे जन-जीवन से दूर राज भवनों के रहनेवाले न थे। उनमें ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का सहज आकर्षण था। उनके माधुर्यमय चरित्र में चाहे जीवन की अनेक रूपता न हो, किन्तु उसका स्पंदन एक विशेष रूप से दिखाई देता था। यहाँ पर कबीर, जायसी, तुलसी के काव्य में आलंबन के साथ तुलना करना, अप्रासांगिक न होगा।

कबीर का ब्रह्म मुसलमानी भावना के अनुकूल परात्पर था। उसका निवास या तो सातवें, नहीं चौदहवें लोक से भी परे था, या अपने ही शरीर के अन्दर हठयोग की त्रिपुटी में। जायसी के उपास्य में अतीत की अपेक्षा व्यापकता का भाव अधिक था। उसका प्रतिबिंब संसार में देखा जा सकता था। जायसी ने पद्मावती की छाया जो दर्पण में दिखलाई थी, उसका एक आध्यात्मिक पक्ष भी था। संसार में परमात्मा का प्रतिबिम्ब ही दिखाई देता है। संसार का जितना सौन्दर्य है, वह उसी की छाया है—नैन जु देखा कमल भा। किन्तु उसका बिम्ब मन और कल्पना के भी अगोचर था। इसीसे घबरा कर सूर ने कहा था—

> रूप-रेख गुन-जानि जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
> अगोचर सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन पद गावै ॥

यही बात उन्होंने गोपियों द्वारा उद्धव से कहलाई है, देखिए:—

> रूप न रेख बरन बपु जाके संग न सखा सहाई।
> ता निरगुन सों प्रीति निरंतर क्यों निबहै री माई ॥
> जल बिनु तरङ्ग चित्र बिनु भीतिहि बिनु चित ही चतुराई।
> अब ब्रज में यह नई रीति कछु ऊधो आनि चलाई ॥

मालूम नहीं आचार्य शुक्लजी को रहस्यवाद और निर्गुणवाद

के खण्डन की प्रेरणा कहाँ से मिली थी। शायद उनका मानसिक झुकाव ही ऐसा था, किन्तु ऐसे पदों ने उनकी भावनाओं को और भी दृढ़ बना दिया होगा। तुलसी ने भी सगुण का पक्ष लिया, किन्तु उन्होंने दोनों को एक करके एक दूसरे के सापेक्ष बना दिया। तुलसी ने सगुण को निर्गुण की अपेक्षा महत्ता भी अधिक दी है, किन्तु वे सूर की अपेक्षा निर्गुण की ओर अधिक झुके हुए हैं। वे अपने इष्टदेव को किसी पक्ष से खाली नहीं रखना चाहते थे—

'अगुन अरूप अलख जग जोई। भगत हेत सगुन सो होई ॥

सूर में भी निर्गुण का स्थान है, किन्तु कुछ कम। कोरे ज्ञान-वाद का दोनों ने विरोध किया, तुलसी ने सीधे तौर से और कुछ अक्खड़पन के साथ—अलखहिं का लखे राम नाम जपु नीचु। सूर और नन्ददास ने कान्ता की सम्मत काव्य बात को सगुण की प्रतिष्ठा करायी है, सार्थक करते हुए काव्यात्मक ढङ्ग से नन्ददासजी कुछ दार्शनिकता परभी उतर आए थे।

सूर और तुलसी दोनों सगुणवादी थे, किन्तु दोनों की उपा-सना में भेद था। तुलसी के उपास्य थे मर्यादापुरुषोत्तम राजाधिराज कोशलाधिपति राम। उनके साथ बराबरी की बात सोचना भी पाप था, इसीलिए उन्होंने दास्यभाव को अपनाया। किंतु सूर आदि अष्टछाप के कवि और उनके प्रभाव के रसखानादि अन्य कवि जनों के उपास्य थे यशोदानन्दन, गोपालों और गोपियों के प्रेमी और उनके जीवन में घुल मिल जाने वाले कृष्ण। तुलसीदासजी ने प्राकृतजनों का गुणगान के लिए तो कह दिया—सिर धुनि गिरा लागि पछिताना, यह बात कृष्ण भक्त कवियों में भी थी—सन्तन कहा सीकरि सो काम। किन्तु भगवत् पक्ष में वे ऐश्वर्य के उपासक थे। वे अज, निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार, सच्चिदानन्द ब्रह्म को पृथ्वी पर तो उतार लाये, किन्तु अपने मर्यादावाद से मजबूर होकर राजसिंहासन से नीचे न ला सके। राज-सिंहासन से नीचे उतरे तो बनवासी होकर। यद्यपि तुलसी के दास्य भाव में हृदय की कोमलता और आत्मसमर्पण की भावना थी, तथापि उसमें न सूर की सी प्रेमकी घनिष्ठता और न वात्सल्य की चिंता—

संदेसो देवकी सों कहियो
हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करत नित रहियो।

सूर के अतिरिक्त और कहीं खोजने पर भी कठिनाई से मिलेगी। कृष्ण-भक्त कवियों ने परस्पर भगवान को मर्त्यलोक में उतार कर उन्हें पूर्ण समता भाव से लोकजीवन में घुला-मिला दिया।

'मैं सब पतितन को टीकौ' आदि

प्रारम्भिक पदों को छोड़ कर जो महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व के कहे जा सकते हैं, सूर में पूर्ण समता भाव के दर्शन होते हैं। ग्वाल-बाल भगवान से निर्भीकता पूर्वक कहला सकते हैं—खेलत मे को काकौ गुसैयाँ...... अति अधिकार जनावत याते है कछु अधिक तुम्हारे गैयाँ ? यह समता भाव तो सूर के वात्सल्य को तुलसी की पहुँच के बाहर बना देता है। कृष्ण की प्रेमिकाएँ उनकी राजनीतिज्ञता की हँसी उड़ा सकती हैं—हरि है राजनीति पढ़ि आयो। उनके शहरीपन के साज-शृङ्गार पर व्यंग्य कर सकती है "दिना चार ते पहिरन सीखे पट पीताम्बर तनियाँ, सूरदास प्रभु तजी कामरी अब हरि भये चिकनियाँ'। ब्रज-भाषा के कृष्णकाव्य में जो ग्रामीण प्राकृतिक जीवन की पुकार है, वह अन्यत्र नहीं सुनाई पड़ती। मथुरा के वैभव में डूबे हुए स्वयं कृष्ण भगवान वृन्दावन के प्राकृतिक जीवन को नहीं भूल सकते—

> ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
> हंससुता की सुन्दर कगरी और कुञ्जन की छाँही॥
> वै सुरभी वे वच्छ दोहिनी खरिक दुहावन जाहीं।
> ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहिगहि बाँहीं॥

प्रेम में भय और विषमता को स्थान नहीं रहता। इसी प्रेम-भाव से प्रेरित गोपियाँ कृष्ण का मूल्य एक छला से भी ठहराती हैं—जाहिगो काहू तिय को अभूषण तौ लला न छला के मोल बिके हो। घनानन्द ने प्रेमोन्मत्त गोपियो द्वारा कृष्ण को जो रस रूप में बिकवाया है—

> एक डोलै बेचति गुपालहि दहेड़ी धरें
> नैनिनि समायौ सोई बैननि जनातु है।
>
> × × ×
>
> गोकुल बधून की बिकानि पै।

रीतिकाल

ब्रजभाषा की दूसरी मूल प्रवृत्ति रीतिकाल की है। हम देख चुके हैं कि साहित्य की गति क्रिया-प्रतिक्रियात्मक स्पन्दन के रूप में होती है, प्रतिक्रियाएँ भी कभी-कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल। वीरगाथा काव्य राज्याश्रित था। भक्तिकाल की कम से कम तीन धाराएँ राज्याश्रय से स्वतन्त्र थीं। कृष्ण भक्तों का 'सन्तन कहा सीकरी सों काम। आवत जात पन्हैयाँ टूटैं, बिसरि गयो हरि नाम।' और तुलसी के 'कीन्हे प्राकृत जन गुणगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछि-ताना' इस बात के प्रमाण हैं। प्रेममार्गी कवियों ने यदि बादशाही वक्त की वन्दना की तो उसका कारण था। वह यह कि एक तो मस-नवीन पद्धति में बादशाहे वक्त की वन्दना एक आवश्यक विधि थी और दूसरा यह कि वह बादशाहे वक्त उनके ही धर्म का था। इससे कोई हीनता भाव नहीं उत्पन्न हो सकता था। रीतिकाल में कविता फिर राज्याश्रित हो गई।

मुसलमान लोग भारत में बस गये थे। अकबर ने राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए थे और उन्हें अपना विश्वास-पात्र बनाकर दासता की बेड़ियों पर सोने का झोल फेर दिया था या कहिए कि मखमल का खोल चढ़ा दिया था। हिन्दू बाज पराये पानि पर बैठ कर अपने ही जाति के पक्षियों को मारने लगे थे। मुगल साम्राज्य में कला को भी प्रोत्साहन मिला—आगरे में शाहजहाँ का प्रस्तरीभूत अश्रुबिन्दु शुभ्रज्योत्स्ना धौत धवल कीर्तिस्तम्भ के रूप में आज भी वर्तमान है। पराजय मनोवृत्ति की दूसरी प्रतिक्रिया—यानी हास-विलास के आनन्द की मदिरा में अपनी निराशा को डुबो देने की प्रवृत्ति जाग उठी थी। वीर केसरी धर्मध्वजा के फहराने वाले महाराणा प्रताप के स्वातन्त्र्य के जीतोड़ प्रयासों की विफलता ने राजाओं को संघर्ष के पथ से हटाकर वातावरण की अनुकूलता प्राप्त करने के पथ की ओर अग्रसर कर दिया था। जयदेव ने जो हरि-स्मरण की रसायन में विलास, कला, कौतूहल का अवलेह मिलाया था उसकी सञ्जीवनी-शक्ति सूर और कृष्णभक्त कवियों तक सीमित रही। पीछे से रसायन की मात्रा तो कम होती गई और अवलेह का मधुर-मधुर स्वाद अधिक प्रबल हो गया । लोगों को तो नहीं,

सम्पन्न वर्ग को उस अवलेह मात्र की मदिरा की सी चाट पड़ गई। साधन साध्य बन गया। कविजनों को राधा-गोविन्द के स्मरण का बहाना चाहे थोड़ी-बहुत मात्रा में रहा हो किन्तु उनकी कविता यशसे और अर्थकृते और कुछ-कुछ व्यवहारविदे के भौतिक ध्येय की साधिका बन गयी। कवि जनों को भी खस के मकानों, गुलगुली गिलमों और सम्भव है सुराही और प्याले का भी चस्का लग गया। कभी-कभी बिहारी जैसे सिद्धहस्त कवि दुसह दुराज प्रजान की बात अलङ्कार विधान में ले आते थे किन्तु बहुत कम। संस्कृत और प्राकृत के ग्रन्थों की रस, ध्वनि और अलङ्कारों के विवेचन से बोझिल परम्परा हिन्दी के भक्ति-प्रधान काव्य के प्रवाह में ऊपर तो न उठ सकी किन्तु कभी-कभी बिहारी की ससिमुखी सटपटाती हुई नायिका की भाँति भक्ति के घूँघट पट में से रहीम के बरव नायिका भेद, तुलसी की बरवै रामायण, सूर के दृष्टि-कूटों और नन्ददास की रसमञ्जरी आदि के रूप में अपनी मोहक रूप छटा की पावक झर की झार दिखा जाती थी। 'मोहे न नारि नारि के रूपा' का सिद्धान्त घोर कलिकाल में अपनी स्वयं सिद्धता खो बैठी—भक्ति भी माया के चक्कर में पड़ गई। सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों में जो तुलसी के मर्यादावाद की प्रतिक्रिया थी वह स्वस्थ थी किन्तु रीतिकालीन कवियों में वह अस्वस्थ हो गयी। कविता कामिनी ने रीति की गगरी से विवेचन का जल ठनका दिया और वह रीति की रीती गगरी अलङ्कार रूप से धारण कर अनाव श्रृङ्गार के साथ चलने लगी। भक्ति का सांप (मैं उसको बुरे अर्थ में नहीं लेता हूँ, बनियों में तो नाग को माया कहते हैं) निकल गया लोग लकीर पीटते रह गये। भक्तिकाल की भाव-समन्विति पर प्रकाश डालते हुए मैंने कहा था कि उस काल की प्रवृत्तियों में नामोपासना का एक व्यापक सूत्र था। वह सूत्र क्षीण हो गया था किन्तु टूटा नहीं था। शायद उसी प्रभाव से भक्ति-काव्य के प्रतिष्ठित आलम्बन राधा और कृष्ण का नाम रीति-काव्य में अनुस्यूत हो गया। इस प्रवृत्ति में जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास तथा गौड़िया सम्प्रदाय के उज्ज्वल नीलमणि आदि ग्रन्थों का भी प्रभाव पड़ा। यद्यपि गौड़िया सम्प्रदाय की रस विवेचन पद्धति कुछ भिन्न थी तथापि उस साहित्य में राधामाधव नायक-नायिका के ही रूप में अधिक देखे गये थे। इन सब कारणों से जहाँ प्राचीन रीति सम्बन्धी कविता लौकिक थी वहाँ हिन्दी की नायिका-भेद की कविता अलौकिक ह

गयी किन्तु उसकी अलौकिता नाम को ही थी। हिन्दू जाति की धार्मिक मनोवृत्ति अपना क्षीण प्रभाव बनाये हुए थी। किन्तु राधा-कृष्ण का उसमें से व्यक्तित्व निकल गया था। रीतिकालीन कवि उनके हर प्रकार के नायक और नायिका के रूप में देखे जा सकते थे। भक्त भी अपने इष्टदेव को हर एक रूप में देखता है किन्तु रीतिकाल के कवि उनको एक रूप में संस्कृत में लिखने वाले को अपने पाठक के मानसिक धरातल की परवाह नहीं रहती। वह चुने हुए पण्डितों के ही लिए लिखता है। बिचारे हिन्दी वाले को यह ख्याल रहता है कि भाषा में भी लिखकर जिसकी प्रसन्नता के लिए लिखा जाय वह भी न समझे तो लिखना सार्थक नहीं। इसीलिए बिहारी जैसे कवि ने रीति का मानसिक आधार ही लिया। लक्षणों को अपने मन में रख कर उदाहरण को ही दिया। कुछ लोग जैसे मतिराम, देव, पद्माकर, भिखारीदास आदि ने लक्षण के साथ उदाहरण रचे। केशव ने रीतिग्रन्थ भी लिखे और अपनी रामचन्द्रिका को अपनी कविप्रिया के उदाहरण रूप लक्ष्य ग्रन्थ बनाया। उस समय शृङ्गार का आधार रहा। भूषण ने रीतिकाल के प्रभाव में लक्षण ग्रन्थ तो लिखा किन्तु उदाहरण वीर-रस का दिया।

कुछ लोग आचार्य शुक्लजी से सहमत होकर केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक न मानें किन्तु लक्षणों के लिए उदाहरण ग्रन्थ लिखने की रीतिकाल की मूल प्रवृत्ति का पूर्ण विकास हमको केशव में मिलता है। यह तो चुनाव की बात है कि केशव ने दण्डी और रुय्यक की अलङ्कार को सर्वस्व माननेवाली पद्धति को अपनाया और अधिकांश लोगों ने चिन्तामणि के अनुकरण में रस और ध्वनि की समन्वित पद्धति को। खैर उसके प्रवर्तक चाहे कोई हों वह खूब पल्लवित हुआ; उसमें हम फूल और पल्लवों की शोभा देख सकते हैं, फलों के कम दर्शन होते हैं। उसमें कला लोकोपयोगिता के परे थी—वह स्वामिनः सुखाय और स्वान्तः सुखाय दोनों थी, किन्तु स्वामिनः सुखाय का पक्ष कुछ प्रबल था। उसमें वर्ण्य की अपेक्षा वर्णन का अधिक महत्व था। जहाँ तुलसीदासजी अपनी कविता का श्रेय 'इहि में रघुपति नाथ उदारा' को देते हैं, वहाँ भगवान का नाम रहता अवश्य था किन्तु नाम मात्र रूप से। जहाँ भक्तिकाल की कविता में कवि

अपने व्यक्तित्व की परवाह न करते हुए भी अपने व्यक्तित्व को छिपा नहीं सका था वहाँ रीतिकाल का कवि व्यक्तित्व की परवाह न करते हुए भी उसे सामने नहीं ला सका है। वह बँधे हुए ढाँचों में ही अपने व्यक्तित्व को व्यक्त कर सका है। इसीलिए उसमें निजीपन का अभाव रहा है।

रीतिकाल में राधाकृष्ण का सजीव व्यक्तित्व नहीं रहा था वरन् वे रीति के साँचों में ढली मूर्तियाँ बन गये थे। कविता हुक्मी हो गई थी। सरस्वती देवी का हंस मोतियों के प्रलोभन से उनको शीघ्र ही कवियों की जिह्वा पर ला खड़ा कर देता था। कभी-कभी वे स्वयं भी कृपा करती थीं। रीतिकाल में निरा चासलेट साहित्य ही नहीं उत्पन्न हुआ।

रीतिकालीन कवियों में कला का प्राधान्य होते हुए भी कृष्ण-लीला का आधार था और उस आधार पर कुछ सजीव कविताएँ भी हुईं। इस आधार को पकड़ लेने से संस्कृत कवियों की अपेक्षा हिन्दी के कवियों के उदाहरणों में कुछ अधिक सजीवता थी। रीति-काल में कृष्णासक्त कवियों के प्रबन्धात्मक मुक्तक भी शुद्ध मुक्तक रह गये। राज दरबारों की प्रतिद्वन्द्विताओं ने मुक्तक की चाल को और भी बढ़ा दिया था। रस-प्रेम की अपेक्षा रस-लोलुपता बढ़ गयी थी। लोलुप मन अधीर हो जाता है। धैर्य स्वास्थ्य का चिह्न है। प्रबन्ध-काव्य का रस धैर्य साध्य है। राजसी अधीरता में मुक्तक का प्राधान्य होना स्वाभाविक है। ये मुक्तक पदों के रूप में न होकर कवित्त सवैयों के रूप में प्रचार में आये।

कृष्ण-काव्य के मुक्तकों में जीवन की अनेक रूपता किसी अंश में थी। रीतिकाल के कवियों में वह अनेक रूपता केवल शृङ्गार की अनेक रूपता रह गयी थी। चैतन्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत उज्ज्वल नीलमणि और भक्ति रसामृतसिंधु आदि ग्रन्थ लिखे गये उनमें नायिकाओं के काफी भेद-प्रभेद थे किन्तु वे कुछ मनोवैज्ञानिक अधिक थे। भक्ति के प्राधान्य के कारण विलासिता का अंश रहा भी हो तो अवचेतनगत ही रहा, ऊपर नहीं उभरा। हिन्दी के कवियों में वह ऊपर उभर आया था। संस्कृत के श्लोकों और प्राकृत की गाथाओं में भी वह ऊपर आ गया था। हिन्दी के कवियों ने फिर भी संयम से।

काम लिया। हिन्दी कवियों के रीति ग्रन्थों में राधागोविंद के सुमिरैन के बहानों से तो कुछ और अधिक रहा, किन्तु उसमें बौद्धिक भाव-पक्ष की अपेक्षा कलापक्ष अधिक रहा। बौद्धिक पक्ष का नितान्त अभाव न था। केशव, देव, भिखारीदास के विवेचन अपनी पद्धति की नवीनता रखते हैं। सरदार कवि की रसिकप्रिया से रसनिष्पत्ति जैसे जटिल प्रश्न की कुछ चलती सी व्याख्या हुई है। आचार्यत्व और कवित्व शक्ति दोनों साथ-साथ चल सकती हैं। पण्डितराज जगन्नाथ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। 'कवि करोति काव्यानि रसंजा-नाति पंडित.' अथवा 'उपजहि अनत अनत छबि लहहिं' की बात सर्वथा ठीक नहीं हैं। पण्डितराज ने तो इस बात को दावे से कहा कि उन्होंने सब उदाहरण अपने ही दिये हैं। कस्तूर के सृजन की क्षमता रखने वाला मृग क्या अन्य कुसुमों के सौरभ से आकर्षित हो सकता है! ऐसी ही मनोवृत्ति देव, मतिराम आदि हिन्दी के कवियों की थी। पंडितराज भी शाहजहाँ के समकालीन थे। और वे भी उसी विला-सिता के प्रवाह में बह रहे थे किन्तु उनमें कवित्व और आचार्यत्व दोनों का अच्छा समन्वय था। हिन्दी में विवेचन की अपेक्षाकृत कमी के दो कारण मालूम पड़ते हैं—एक तो गद्य का विकसित न होना, दूसरा आश्रयदाताओं के मानसिक धरातल को स्पर्श करने की इच्छा। इसीलिए नायिकाभेद का कुछ प्राधान्य रहा। फिर भी वे नारी सौन्दर्य के कुछ मनमोहक चित्र दे सके। बिहारी का 'खरी पातरी हू लगति भरी सी देह', देव का 'गोरो सो मुख ओरो सो बिलानो जात' अथवा मतिराम का 'ज्यों-ज्यों निहारे नियरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निखरे सी निकाई' ऐसे वर्णन हिन्दी कविता के शृङ्गार कहे जा सकते हैं। रीतिकाल की कविता में सामाजिक चित्रण है किन्तु उसमें इतर, चोवा, जरतारी की सारी, झूले और फाग का ही उल्लेख अधिक है। उन वर्णनों में हृदय की अपेक्षा कल्पना, शब्दजाल और अलङ्कारिक चमत्कार का प्राधान्य है। गुलगुली गिलमों की सम्पन्नता में पोषित स्वच्छन्द कल्पना और रूप विवेचन की सहज मोहकता के साथ सस्ती वाहवाही लूटने की चाह अथवा नायिकाओं के वर्णन में सूक्ष्म भेद-प्रभेदों से पाठकों में या अलहगौड़ों में भी और की सो आश्चर्य-चमत्कृत होने की भावना उत्पन्न करने की महत्वाकांक्षा नायिका-भेद सम्बन्धी साहित्य के बाहुल्य के लिए उत्तरदायी कही

जा सकती है। उस साहित्य में भाव विश्लेषण की सूक्ष्मता और वर्णन के सौष्ठव का साहित्यिक मूल्य अवश्य है किन्तु नैतिक मूल्यों का प्रायः अभाव ही रहा। उस समय की वर्णनशैली अब भी ब्रजभाषा साहित्य को प्रभावित कर रही है।

वर्तमान युग

हिन्दी साहित्य के वर्तमान युग का आरम्भ भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र से हुआ। भारतेन्दुजी में यद्यपि भक्तिकाल की भक्तिभावना और रीति-काल की चमत्कारिकता के प्रभाव प्रबल रूप से वर्तमान हैं तथापि उनकी कविता द्वारा रीतिकाल के अवरुद्ध वातावरण में देशभक्ति और समाज-सुधार के नये वातायन खुल गये हैं। हरिश्चन्द्र-युग में ब्रज-भाषा का प्राधान्य रहा। एक बार फिर कविता में नये जीवन का सञ्चार हुआ और कविता देशभक्ति की ओर झुकी। द्विवेदी युग में खड़ीबोली की कविता ने धीरे-धीरे ब्रजभाषा का स्थान ले लिया, फिर भी ब्रजभाषा का जादू मिटा नहीं। श्रुति माधुर्य के लिए अब भी वह अपनी प्रतिद्वंद्विनी नहीं रखती।

यद्यपि ब्रजभाषा में खड़ीबोली की अपेक्षा रूढ़िवाद और प्राचीन परम्परा का आदर अधिक है तथापि वह नये प्रभावों से अछूती न रह सकी। वह भी देशभक्ति की भावनाओं को अपनाने में समर्थ हुई। कविवर सत्यनारायणजी उन कवियों में से हैं जिनकी वाणी में देशभक्ति कालमय रूप से प्रस्फुटित हुई। उन्होंने देशभक्ति के स्फुट गीत भी लिखे, 'माधव आप सदा के कोरे' के कोरे आदि पदों में सरकार पर कुछ व्यंग्य भी किये और भ्रमरदूत जैसे खण्डकाव्यों में प्रसङ्गवश देशभक्ति की भावनाओं का समावेश कर दिया। 'देशहि में भयो विदेश' अथवा 'हम कोरिन कौं कारे ही कारे' आदि की उक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं।

नवीन युग के ब्रजभाषी कवियों में सत्यनारायणजी के अति-रिक्त रत्नाकरजी, वियोगीहरि, शबरी काव्य के कर्ता, दैत्यवंश के कर्ता हरदयालसिंहजी, दुलारेलालजी प्रमुख हैं। रत्नाकरजी में तो प्राचीन प्रभाव ही अधिक है किन्तु गङ्गावतरण में देश की कल्याण की चाह अधिक है और उसमें वीरकाव्य का सा ओज भी

है। वियोगी हरि जी ने तो वीरसतसई ही लिखी और वीररस के कुछ गीत भी लिखे हैं। शबरी काव्य भी युग की माँग को पूरा करती है। दैत्यवंश में उपेक्षितों को प्रकाश मे लाने और पतितों में भी उच्चता दिखाने की भावना है। इस प्रकार ब्रजभाषा साहित्य भी समय की अनुकूलता प्राप्त कर रहा है और उसके लिए यह लाञ्छन सार्थक नहीं हो सकता कि उसने विलासिता के साहित्य की पुष्टि की है। उसमें सभी प्रकार के भाव मिल सकते हैं। देखने के लिए सहृदय दृष्टि चाहिए। 'गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो है'।
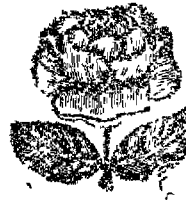
आर्थिक और राजनैतिक रोगों की महौषधि

ब्रज संस्कृति

[पं० श्रीराम शर्मा, सम्पादक 'विशालभारत']

गान्धीवाद, ग्राम्य संस्कृति और ब्रज-संस्कृति पर्यायवाची शब्द हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् चारों ओर से ग्राम-सुधार, ग्रामोन्नति, आर्थिक उन्नति तथा वास्तविक स्वतन्त्रता की चर्चा है, पर लोग भारत की आजादी के मूल तत्वों को भूल जाते हैं और अमेरिकनों तथा योरोपियनों की नकल में लगे हुए हैं। जब अँगरेज लोग भारतवर्ष में आये तब उन्होने देखा कि भारतवर्ष की जान देहातों में है और देहातों से ही हर प्रकार की शक्ति का सृजन होता है। देहात की शक्ति का विवेचन यदि एक ही शब्द में करें तो इस प्रकार कह सकते हैं कि भारतवर्ष की शक्ति का कारण यह था कि प्रत्येक घर में कताई होती थी, और घर घर रोटी होती थी। अँग्रेजों ने अपनी कूटनीति तथा आर्थिक प्रलोभनों से घर-घर की कताई तो लगभग मिटादी पर घर-घर से वे रोटी करना नहीं खतम कर सके। दूसरी बात जो अँग्रेजों ने की वह यह कि गाँव वालों को उन्होंने कच्चा माल तैयार करने का साधन बना दिया। पहले हमारे जीवन का मूल-मन्त्र यह था कि जो काम घर में हो सकता है वह गाँव में न कराया जाय। जो काम गाँव में हो सकता है वह शहर में न कराया जाय और जो शहर में हो सकता है वह विदेश में न कराया जाय। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लगभग स्वाव-लंबी था और इसीलिए संस्कृति और साहित्य की सरिता शहरों की ओर प्रवाहित होती थी। देहात ही एक प्रकार से भारतीय जीवन के 'डाइनमो' थे। पर अंगरेजी राज्य ने स्थिति बदल दी और आज भी भारतवासी मोह-पाश में बँधे हुए हैं। सबसे दुख की बात तो यह है कि पढ़ेलिखों पर झूठी अँगरेजियत का जादू सा चढ़ा हुआ है। कहने को तो वे ब्रज-संस्कृति की चर्चा करेंगे पर आचरणों में तो वे अँग्रेजि-यत के नक्काल बने हुए हैं। ब्रज-संस्कृति—उसे आप गाँधीवाद तथा ग्राम संस्कृति भी कह सकते हैं—के मानी हैं सर्वोदय-समाज की स्थापना। उसका मूल-मन्त्र है 'सर्वहित सुखाय'। स्पष्ट शब्दों में ब्रज-

संस्कृति के मानी हैं अपने कपड़े की समस्या को स्वयं हल करना, अपने कते हुए सूत के कपड़े पहनना. गोपालन करना और गाय के दूध से बनी हुई वस्तुओं का इस्तेमाल करना। भगवान कृष्ण ने जो गायें चराई थीं उसके पीछे ग्राम-संस्कृति का प्रचार था। भैंसों की चर्चा तो उस समय कहीं थी ही नहीं! कंस जैसे राक्षसी वृत्ति के व्यक्ति ने भी भैंसों की शरण नहीं ली, पर आज तो मथुरा में शायद ही कोई ऐसी दुकान हो जहाँ शुद्ध गोरस मिलता हो। कितने हैं ऐसे ब्रजवासी जो देहाती उद्योग-धन्धों पर ही अवलंबित हों। इस प्रकार के जीवन के मानी कट्टर पन्थी होने के नहीं वरन् एक विचार के अनुयायी होने के मानी जरूर हैं। जो व्यक्ति अपने हाथ के कते सूत का कपड़ा पहनेगा, जो गोरस पान करेगा, तथा दुग्ध से बनी चीजों को खायगा तथा देहात के उद्योग-धन्धों से बनी वस्तुओं का ही व्यवहार करेगा वह साम्राज्य-वादी प्रवृत्ति का पोषक नहीं हो सकता। वह आसुरी शक्ति, कंस की शक्ति का पुजारी बन ही नहीं सकता।

आज देश में उथल-पुथल मची हुई है। आजादी के चौराहे पर हम खड़े हुए हैं। हमारी संभावनाएँ इतनी विशाल हैं कि हम चाहे तो कंस के मार्ग को, साम्राज्यवादी मार्ग को—पूँजीवादी मार्ग को—, अपना सकते हैं और दूसरे देशों की स्वतंत्रता का अपहरण भी कर सकते हैं। ऐसी शक्ति हममें है। अगले २० वर्षों में हम इस योग्य हो जायेंगे यदि हमने उपर्युक्त कंसवृत्ति को अपनाया कि हम बर्मा, मलाया, स्याम, अफगानिस्तान और ईरान की आजादी को हड़प लें। पर यदि हम कृष्ण के अनुयायी बने. ब्रज-संस्कृति को अपनाया तो हमें, अँगरेजियत के चकाचौंध से मुँह मोड़ना पड़ेगा और कपड़ों के लिए मिलों का बहिष्कार करना होगा, गाय की पूँछ पकड़नी होगी अर्थात् हमें भौतिक मूल्यांकन की अपेक्षा मानवी मूल्यांकन को महत्व देना होगा और उसी पर आचरण करना होगा। इस समय तो कंस प्रवृत्ति का बोला-बाला है। ब्रज-संस्कृति भगवान कृष्ण का संदेश तो किताबों और पुस्तकों में ही रह गया है, व्यावहारिक जीवन में तो कंस का बोलबाला है—

यदि हम इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचें तो हमें, मानना पड़ेगा कि ब्रज-संस्कृति के   के लिए ही नहीं वरन् उसके प्रचार

के लिए काफी संघर्ष करना है। उसी संघर्ष में कृष्ण के आधुनिक रूप महात्मागाँधी का बलिदान हुआ है। अगर ब्रज-संस्कृति की स्थापना और पुनरुद्धार की कभी भी आवश्यकता है, यदि अणुबम्ब का कोई भी जवाब है तो वह है ब्रज-संस्कृति। यह ठीक है कि ब्रज-संस्कृति के प्रचार में और उस पर आचरण करने पर कठिनाइयाँ आयँगी पर कठिनाइयों से कृष्ण के कृपालुओं को क्या डर। अपने ही धर्म में अपना कर्त्तव्य-पालन करने में यदि निधन भी हो जाय तो वह श्रेयस्कर है—परधर्म कंस के धर्म—साम्राज्यवादी धर्म का आचरण करना तो भयावह है।

(पृष्ठ २२८ का शेषांश)

पृ० ४२	शब्द नामक ज्योति आ०	”	दूसरे शब्द नामक ज्योति—जीवन के अंधेरे कोठों को प्रकाश से भर देगी।
पृ० ४३	डंडागील	”	डंडागोल
पृ० ४४	लोवा	”	लावा
पृ० ४४	आंव्रि	”	आँवि
पृ० ४५	विचरने	”	विचारने
पृ० ४५	कठोर	”	कठिन

शुद्धि-पत्र

पृ० ३० (नीचे से दूसरी पंक्ति)—सब का हित सुख निहित है। निहित का कुछ अर्थ नहीं, अपूर्ण होना चाहिए।

पृ० ३२	अपरिचिन	होना चाहिए	अपरिमित
पृ० ३२	अर्वत्ता	,,	अर्थवत्ता
पृ० ३२	सोइद	,,	'खोइद'
पृ० ३२	भाँग	,,	धान
पृ० ३२	हाथ	,,	दृश्य
पृ० ३२	एक दिन	,,	प्रतिदिन
पृ० ३३	अप्रिय बातचीत	,,	अगली बातचीत
पृ० ३३	अहिछला	,,	अहिच्छत्रा
पृ० ३४ (पं० १)	गढ़ाकर	,,	गड़ाकर
पृ० ३४	पारस्परिक शंका	,,	पारस्परिक संकर
पृ० ३४	करावदार	,,	कटावदार
पृ० ३५	दाको-गाको	,,	दालें-गालो
पृ० ३५	वृद्धि सम्बन्धी	,,	वृष्टि सम्बन्धी
पृ० ३५	ऋतुओं	,,	ऋतुओं
पृ० ३५	व्यवस्था	,,	व्याख्या
पृ० ३५	फगुनेटा	,,	फगुनहटा
पृ० ३६	वौर	,,	बौर
पृ० ३६	ऐसी मत आइयो	,,	रीती मत आइयो
पृ० ३७	मखड़ी	,,	रूखड़ी
पृ० ३७	व्याक जंघा	,,	काक जंघा
पृ० ३७	पाठन	,,	पाठ्य
पृ० ३७	परीक्षा के बोझ	,,	परीक्षा का बोझ
पृ० ३८	क्रोंच	,,	क्रौंच
पृ० ३८	अययन	,,	अध्ययन
पृ० ४१	ग्राग-प्रा०	,,	प्रा० ग्राग

(शेष पृष्ठ २२७ पर)
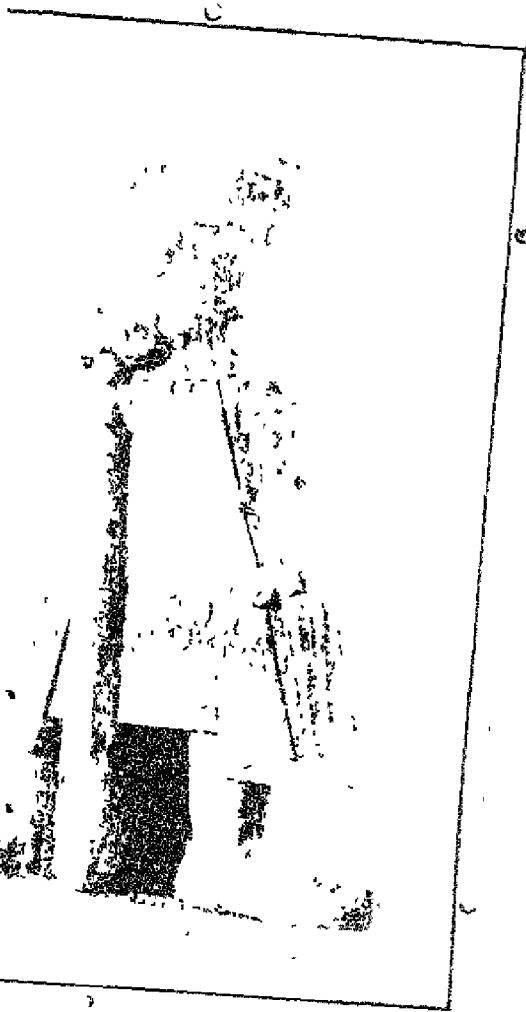
कुषाण सम्राट कनिष्क
पृ० १२४, १५८

(नं० ३०४१) लक्ष्मी अभिषेक

१६७
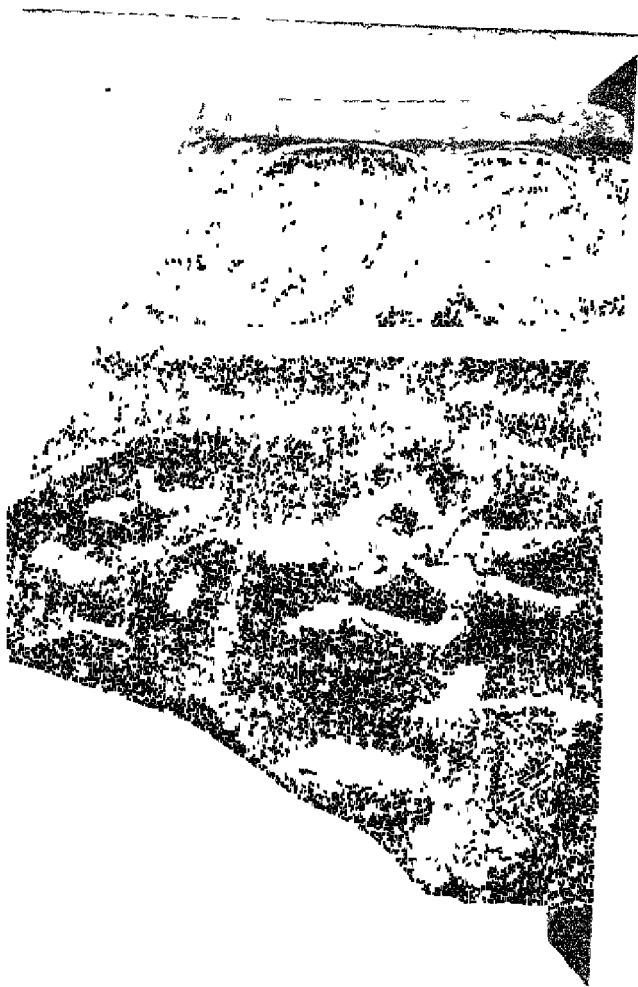
कमलालया लक्ष्मी (सामने तथा पीछे का दृश्य)

पृ० १२४ ।

आसवपायी कुबेर

पृ० १३६

(सं० २८००) मधुपान का

पृ० १९८, १६७

(सं० २८८०) अग्नि

० १२३, १६८
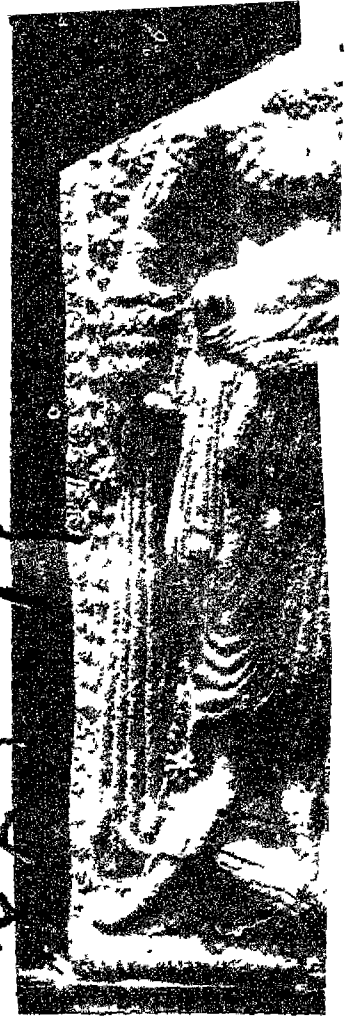
कामदेव (कुप

पृ० १

सर्वश्रेष्ठ रूसी और सोवियत पुस्तकमाला

मक्सिम गोर्की

जीवन की राहों पर

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक नरोत्तम ना
संपादक योगेन्द्र कुमार ना

М. Горький

В ЛЮДЯХ

На языке хинди

पहला संस्करण १९५७

दूसरा संस्करण १९७७

सोवियत संघ में मुद्रित

Г 70302-808 / 040 77 61-75

१

यह लीजिये, मै अब नगर के बड़े बाज़ार की "फ़ैन्सी जूता" पर नौकरी करने आ गया हू।

मेरा मालिक है नाटा और गोल-मटोल, जिसके बादामी रंग के आदि-अन्त का कुछ पता नही चलता, जिसके दांत हरे और आंखे पनीली है। मुझे वह अंधा सा लगता है और इस बात की जांच लिए मैने मुंह बनाया।

धीमे, परन्तु दृढ़ लहजे मे उसने कहा:

"तोबड़ा न बना!"

मुझे यह अच्छा नही लगा कि ये धूमिल आंखे मुझे देखत यह विश्वास नही हुआ कि वे सचमुच देख सकती है। शायद केवल यह अटकल लगायी है कि मै मुह बनाता हूं?

"मैने कहा न कि अपनी थूथनी को काबू मे रख!" होठों को लगभग हिलाये बिना उसने पहले से भी अधिक ध मे कहा।

"हाथो को नहीं खुजला," उसकी रूखी फुसफुसाहट मेरी हुई आई। "याद रख कि तू नगर के बड़े बाज़ार की बड़ी दरवाजे पर बुत बने सीधे-सतर खड़े रहना तेरा काम है!

मुझे मालूम नही था कि बुत क्या होता है और अपन हाथों को न खुजलाना भी मेरे वश की बात नहीं थी: मेरे दोनो हाथ लाल चकत्तों और रिसते घावों से भरे

मेरे हाथो को देखते हुए मालिक ने पूछा:

"घर पर तू क्या काम करता था?"

मैने बताया। उसकी मटकी जसी खोपडी हिल उठी जिस पर उसके मटमैले बाल मानो लेई से चिपके हुए थे। उसने डंक सा मारा:

"चिथड़े बटोरना तो भीख मांगने से भी बुरा है, चोरी करने से भी बदतर है!"

"मैंने चोरी भी की थी," कुछ गर्व के साथ मैंने ऐलान किया।

यह सुनकर उसने बिलाव के पंजो की तरह काउण्टर पर अपने हाथ रखे और सहमकर अपनी सूनी-सूनी आंखों से मेरी ओर ताकते हुए फुंकार उठा:

"क्या-आ-आ? क्या कहा तूने—चोरी भी करता रहा है?"

मैने स्पष्ट किया कि किस चीज की और कैसे मैने चोरी की थी।

"खैर, इस घटना को तो हम बहुत महत्त्व नहीं देगे। लेकिन अगर तूने मेरे जूतों या मेरे पैसों पर हाथ साफ़ किया तो बालिग होने से पहले ही मै तुझे जेल भिजवा दूंगा..."

उसने यह शान्त भाव से कहा, मै डर गया तथा उससे और भी अधिक घृणा करने लगा।

मालिक के अलावा दुकान पर दो आदमी और काम करते थे—याकोव मामा का बेटा, मेरा ममेरा भाई साशा और लाल चेहरे वाला एक कारिंदा, बहुत ही चलता पुर्जा और चिकना-चुपड़ा व्यक्ति। साशा खूब ठाठदार मालूम होता—लाल से रंग का कोट, कलफ लगी कमीज और टाई डाटे हुए। घमण्ड के मारे वह मेरी ओर देखता तक नहीं था।

नाना मुझे अपने साथ लेकर जब पहली बार मालिक के पास आये और साशा से उन्होंने मुझे काम सीखने में मदद देने के लिए कहा तो साशा शान में आते हुए भौंहें चढ़ाकर बोला:

"इससे कह दीजिये कि मेरी बात माने।"

मेरे सिर पर अपना हाथ रखकर उसे नीचे झुकाते हुए नाना बोले:

"इसकी बात मानना। यह तुम से बड़ा है—उम्र और काम के लिहाज से भी..."

साशा ने आंखों को टेरा और बोला:

"नाना की सीख याद रखना, समझा!"

और उसने पहले दिन से ही अपने बड़प्पन का खूब रोब जताना शुरू कर दिया।

लेकिन मालिक उसे भी डांटता था। एक दिन बोला :

"काशीरिन, यह आंखें टेरना बन्द करो।"

"जी नहीं... मैं... मैं कहां?.." साशा ने सिर झुकाते हुए जवाब दिया।

पर मालिक आसानी से पीछा छोड़नेवाला नहीं था। बोला :

"और यह सिर क्यों लटका लिया है? कहीं ग्राहक तुझे बकरा न समझ बैठें।"

ऐसे मौक़े पर कारिंदा ख़ुशामद भरी हंसी हंसता, मालिक के मोटे होंठ बेढंगेपन से फैल जाते और साशा शर्म से बुरी तरह लाल होकर काउण्टर की ओट में छिप जाता।

मुझे इस तरह की जुमलेबाजी अच्छी नहीं लगती थी। बहुत से शब्द मेरी समझ में भी नही आते और कभी-कभी ऐसा लगता था मानो ये लोग किसी अजनबी भाषा में बातें कर रहे हों।

जब कोई महिला दुकान में आती तो मालिक जेब से हाथ बाहर निकालकर मूंछों पर फेरता और अपने चेहरे पर मानो एक मीठी मुस्कान चस्पां कर लेता। उसके कपोलों पर झुर्रियों की बन्दनवार सज जाती, लेकिन उसकी खोहनुमा आंखें ज्यों की त्यों ही रहतीं। कारिंदा तनकर सीधा हो जाता, उसकी कोहनियां दोनों बाजू शरीर से सट जातीं और उसके हाथ सम्मान का प्रदर्शन करते हुए फड़फड़ा उठते। नजर का टेरना छिपाने के लिए साशा डरे-डरे अपनी आंखों को मिचमिचाने लगता और मैं दरवाजे से चिपका हुआ लुक-छिप कर अपने हाथों को खुजलाता और ग्राहक का हृदय जीतने के उनके कौशल को देखता रहता।

पांव में जूता पहनाते समय किसी महिला के सामने घुटनों के बल खड़ा हुआ कारिंदा हाथों की उंगलियों को आश्चर्यजनक ढंग से फैला लेता। उसके हाथ सिहरते होते और वह कुछ इस अन्दाज से महिला के पांव का स्पर्श करता मानो डरता हो कि वह कहीं टूट न जाये, हालांकि पांव बहुधा मोटा और बेडौल होता था—झुके कंधों वाली उस बोतल के समान जो उलटाकर गरदन के बल खड़ी कर दी गई हो।

एक बार ऐसी ही एक महिला ने सिमटते और अपना पांव छुड़ाते हुए कहा :

"हाय राम, तुम तो बहुत गुदगुदी करते हो।"

जी, शिष्टतावश, कारिंदे ने झटपट जवाब दिया।

महिला के चारों ओर मैं कुछ इस तरह मंडराते कि हंसी रोकने के लिए मैं अपना मुंह दरवाज़े की ओर कर लेता। लेकिन कारिंदे के तौर-तरीके कुछ इतने मज़ेदार होते थे कि मुझसे रहा न जाता और मैं मुड़-मुड़ कर देखता। और मुझे लगता कि लाख कोशिश करने पर भी मैं अपनी उंगलियों को इतनी नफ़ासत के साथ कभी नहीं फैला सकूंगा, न ही दूसरे लोगों के पांवों में जूते पहनाने की कला में कभी इतनी दक्षता प्राप्त कर सकूंगा।

अक्सर मालिक काउण्टर के पीछे एक छोटे से कमरे में चला जाता और साशा को भी वहीं बुला लेता। अब जूता खरीदने के लिए दुकान में आई महिला के सामने कारिंदा ही रह जाता। एक बार लाल बालों वाली किसी स्त्री के पांव छूकर उसने अपनी उंगलियों की चिकोटी बनायी और उसे चूम लिया।

"ओह, बड़े शैतान हो तुम!" स्त्री ने निश्वास छोड़कर कहा।

कारिंदे ने गाल फुलाये और आह-ऊह के सिवा उसके मुंह से और कुछ न निकला।

कारिंदे की मुद्रा देखते ही बनती थी। मुझे इतने ज़ोरों से हंसी छूटी कि मेरे पांव डगमगा गये। संभलने के लिए मैंने दरवाजे का हत्था पकडा, वह मेरा बोझ न संभाल पाया, झटके से दरवाजा खुला और मेरा सिर कांच से जा टकराया। कांच टूटकर ज़मीन पर आ गिरा। कारिंदे ने यह देखा तो गुस्से में खूब हाथ-पांव पटके, मालिक ने सोने की भारी अंगुठी मेरे सिर पर कई बार मारी, साशा ने भी मेरे कान ऐंठने की कोशिश की और शाम को घर लौटते समय मुझे डांटते हुए वह कड़े स्वर में बोला:

"अगर इसी तरह की हरकतें करेगा तो निकाल देंगे! आखिर इतना हंसने की क्या बात थी?"

और उसने समझाया कि जब दुकान का कारिंदा महिलाओं को अच्छा लगता है, तो माल खूब बिकता है।

"ज़रूरत न होने पर भी महिला एकाध फालतू जोड़ा खरीदने चली आयेगी ताकि मन को अच्छा लगनेवाले कारिंदे को देख सके। क्या तू इतनी सी बात भी नहीं समझता? तेरे साथ माथापच्ची करना भी..."

साशा के ये शब्द मुझे बुरे लगे। कोई भी तो मेरे साथ माथापच्ची नहीं करता था, साशा तो खास तौर पर।

हर रोज सबेरा होते ही बावर्चिन मुझे साशा से एक घंटा पहले ही जगा देती। वह एक बीमार और चिड़चिड़े स्वभाव की स्त्री थी। उठते ही मै समोवार गर्म करता, जितने भी अलावघर[1] थे सब के लिए लकड़ी लाता, जूठे बरतन मांजता, कपड़ों को ब्रुश से झाड़ता और अपने मालिक, कारिंदे तथा साशा के जूतों पर पालिश करता। दुकान में झाड़ू देता, गर्द साफ़ करता, चाय बनाता, जूतों के बण्डल लोगों के घरों पर पहुंचाता और उसके बाद भोजन लाने घर जाता। जब तक मै ये सभी काम निपटाता द्वार पर साशा मेरी जगह संभालता और इस काम को अपनी शान के खिलाफ समझ मुझपर बरस पड़ता :

"कद्दू की दुम, तेरे बदले मुझे यहां चाकरी बजानी पड़ती है!.."

मै आजाद जीवन बिताने का आदी था,—खेतों और जंगलो मे, मटमैली ओका नदी के तट या कुनाविनो की रेतीली सड़कों पर। अपना वर्तमान जीवन मुझे उबा देनेवाला और कष्टप्रद मालूम होता। मुझे अपनी नानी की याद आती, अपने मित्रों का अभाव अखरता। यहां कोई ऐसा न था जिससे दो घड़ी बातें कर मै अपना जी बहलाता। जीवन का जो कुत्सित तथा बनावटी रूप यहां मुझे घेरे था, उससे मेरा दम घुटने लगता।

बहुधा ऐसा होता कि कोई महिला आती और बिना कुछ खरीदे ही दुकान से विदा हो जाती। तब वे तीनों अपने को आहत अनुभव करते। मालिक चाशनी मे पगी अपनी मीठी मुसकान को तहाकर जेब मे रख लेता और आदेश देता :

"काशीरिन, जूतों को उठाकर एक ओर रख दो!"

"उसे भी यहीं आकर अपनी थूथनी दिखानी थी, सूअरनी कही की! घर बैठे-बैठे जब मन नहीं लगा तो कमीनी बाजार की धूल छानने चली आई। अगर वह मेरी जोरू होती तो मै..."

उसकी पत्नी एक दुबली-पतली, काली आंखों और लम्बी नाक वाली

---

[1] बेकरी की भट्टी जैसे अलावघर पुराने रूस मे सभी घरो मे होते थे और अब भी गांवो मे होते है। अलावघर मे खाना पकाया जाता था और वह घर को गरम भी रखता था। इसके अलावा अलावघर के ऊपर और उसकी बगल मे लोग सोते थे।—सं०

स्त्री थी। वह उसपर चीखती-चिल्लाती थी, और ऐसे कसकर खबर लेती थी मानो पति न होकर वह उसका चाकर हो।

बहुधा, सभ्य ढंग से गरदन झुका-झुकाकर और चिकने-चुपड़े वचनों की बौछार करते हुए वे परिचित महिला को विदा करते और जब वह चली जाती तो उसके बारे में गंदी और लज्जाहीन बातें करते। तब मेरे मन में होता कि मैं भागकर बाजार में उस महिला के पास जाऊं और उसे वह सब बताऊं जो उन्होंने उसके बारे में अपने मुंह से उगला था।

जाहिर है, यह तो मैं जानता था कि पीठ पीछे लोग एक-दूसरे के बारे में बुरी बातें कहने के आदी होते हैं, लेकिन ये तीनों तो सभी लोगों के बारे में विशेष रूप से ऐसे भली-बुरी बातें करते मानो इस धरती पर वे ही सबसे अच्छे हों और अन्य सब पर फब्तियां कसने के लिए ही उन्हें इस दुनिया में भेजा गया हो। वे अधिकांश लोगों से ईर्ष्या करते थे, उनके मुंह से किसी की प्रशंसा न निकलती और हरेक के बारे में अपने जखीरे में कुछ न कुछ कुत्सित बातें जमा रखते थे।

एक दिन दुकान में एक युवती आई: चमकदार आंखें, गुलाबी कपोल, बदन पर मखमल का चोगा जिसपर काले फ़र का कालर लगा था। काले फर से घिरा उसका चेहरा किसी अद्भुत फूल की भांति खिला हुआ था। जब उसने अपना चोगा उतारकर साशा की बांह पर डाला, तो उसका सौन्दर्य और भी लौ देने लगा। उसके कानों में हीरों के बुंदे चमक रहे थे, और नीले-भूरे रंग की खूब चुस्त पोशाक में उसके शरीर की कमनीय रेखाएं और भी उभर आई थीं। उसे देखकर मुझे अतीव सुन्दर वसिलीसा की याद हो आई। मुझे लगा कि अगर और भी कुछ नहीं तो यह गवर्नर की पत्नी अवश्य होगी। उसके स्वागत-अभिवादन में वे फ़र्श चूमने लगे, अग्नि-पूजकों की भांति उसके सामने दोहरे हो गये, मधु में डूबे शब्दों की उन्होंने झड़ी लगा दी। तीनों के तीनों उतावले होकर पागलों की भांति दुकान में इधर से उधर मंडराने लगे। शोकेसों के कांच में उनके अक्स झलकते और ऐसा मालूम होता मानो प्रत्येक चीज लपटों से घिरी है, पिघलकर एकाकार हो रही है और जैसे अभी, देखते-देखते, वह एक नया रूप और नया आकार-प्रकार ग्रहण कर लेगी।

जल्दी से जूतों का एक कीमती जोड़ा खरीदने के बाद जब वह चली गयी तो मालिक ने चटकारा भरा और फुंकारते हुए बोला:

कुतिया है कुतिया

"सीधी बात है – एकट्रैस!" कारिंदे ने भी तिरस्कारपूर्वक कहा।

और वे एक-दूसरे को उस महिला के यारो तथा रंगीन जीवन के किस्से सुनाने लगे।

दोपहर का भोजन करने के बाद मालिक झपकी लेने के लिए दुकान के पीछे वाले छोटे कमरे में चला गया। मौक़ा देख मैंने उसकी सोने की घड़ी उठाई, उसका ढक्कन खोला और उसके पुर्जों में कुछ सिरका चुआ दिया। मालिक की जब आंखें खुलीं और घड़ी हाथ में लिये जब वह बड़बड़ाता हुआ दुकान में आया, तो मेरे आनन्द की सीमा न रही।

"यह एक नयी मुसीबत देखो – मेरी घड़ी एकाएक पसीने से तर हो गई! इस तरह की बात पहले कभी नहीं हुई थी। घड़ी और पसीने मे एकदम तर! कहीं कोई मुसीबत तो नही?.."

दुकान की इस दौड़-धूप और घर के सारे काम-काज के बावजूद ऊब मुझे हर वक़्त घेरे रहती और मैं बार-बार यही सोचता: ऐसा क्या करू कि ये लोग परेशान होकर मुझे दुकान से निकाल दें?

हिमकणों से आच्छादित लोग दुकान के दरवाज़े के सामने से तेज़ी से गुजरते। ऐसा मालूम होता मानो उन्हें किसी को दफ़नाने के लिए क़ब्रगाह मे जाना था, लेकिन देर हो गई और अब जनाज़े तक पहुंचने के लिए वे तेज़ी से क़ब्रगाह की ओर लपके जा रहे है। माल ढोनेवाली गाड़ियों में जुते घोड़े बर्फ़ में धंसे पहियों को खींचने के लिए ज़ोर लगाते। ईसाई चालीसे के दिन थे। दुकान के पीछे वाले गिरजे के घंटे की उदास ध्वनि प्रति दिन कानो से आकर टकराती। घंटा बजता ही रहता और ऐसा मालूम होता मानो कोई तकिये से सिर पर प्रहार कर रहा हो जिस से चोट तो नहीं लगती, मगर इन्सान बुद्धू और बहरा सा होता जाता है।

एक दिन जब मैं आंगन में दुकान के दरवाज़े के नज़दीक माल की एक नयी पेटी खोल रहा था, गिरजे का चौकीदार मेरे पास आया। टेढ़ी कमर वाला यह बूढ़ा कपड़े की गुड़िया की भांति लिजबिज और ऐसा खस्ताहाल था मानो कुत्तों ने घेरकर खूब नोचा-खरोचा हो।

"खुदा के बन्दे, तुम मेरे लिए गालोशों का एक जोड़ा ही दुकान से चुरा लो, एं?" उसने कहा।

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। वह एक खाली पेटी पर बैठ गया, उसने जम्हाई ली, मुंह के सामने सलीब का चिन्ह बनाया और फिर बोला:

"चुरा लो, ऐं?"

"चोरी करना अच्छा नहीं है," मैंने उसे बताया।

"फिर भी करते है। मेरे बुढ़ापे का ख्याल करो।"

वह उन लोगों से भिन्न और रुचिकर था जिनके बीच मे रह रहा था। मैंने महसूस किया कि उसे इस बात का पक्का विश्वास था कि मै चोरी करने के लिए तैयार हू और मै एक जोड़ा गालोश उठाकर खिड़की से चुपचाप उसे पकड़ा देने को राजी हो गया।

"अच्छी बात है," खुशी का कोई खास भाव प्रकट किये बिना वह शांत भाव से बोला। "कहीं मुझे चकमा तो नही दे रहे? ठीक है, ठीक है, तुम उनमें से नहीं हो जो चकमा देते है।"

क्षण भर चुपचाप बैठा हुआ वह अपने बूट के तले से नम और गंदी बर्फ़ को कुरेदता रहा, फिर मिट्टी का पाइप सुलगाया और एकाएक मुझे डराते हुए बोला:

"और अगर मै तुम्हे चकमा दे दूं, तो? उन्हीं गालोशो को लेकर तुम्हारे मालिक के पास जाऊं और कहूं कि तुमने आधे रूबल में उन्हें मेरे हाथ बेच दिया है, ऐं? उनका दाम है दो रूबल से भी ज्यादा, और तुमने बेच दिया उन्हें आधे रूबल मे! मिठाई के लिए, ऐं?"

गूंगे की भांति मैंने उसकी ओर देखा, मानो उसने जो धमकी दी थी, उसे पूरा कर भी चुका हो। और वह आंखे अपने जूते पर टिकाये और पाइप से नीला धुआं छोड़ते हुए नकियाते स्वर में धीरे-धीरे कहता गया:

"और अगर ऐसा हो कि खुद तुम्हारे मालिक ने ही मुझे सिखाया हो कि 'जाओ, जाकर मेरे इस छोकरे की जांच करो कि वह चोरी तो नहीं करता', तब क्या कहोगे तुम?"

"मै तुम्हे जूते नहीं दूंगा," झुंझलाकर मैंने कहा।

"नहीं, एक बार वचन देने के बाद तुम अब पीछे कैसे हट सकते हो?"

उसने मेरा हाथ थाम लिया और मुझे अपनी ओर खींचा। फिर अपनी ठंडी उंगली मेरे माथे पर मारते हुए बोला:

तुमने न सोचा न समझा और झट से तैयार हो गये जूते भेंट करने को—लो, ले लो?!"

"खुद तुम्हीं ने तो इसके लिए कहा था।"

"कहने को तो मै दुनिया भर की चीजो के लिए कह सकता हूं। मै कहूं कि गिरजे को लूटो, तो क्या तुम लूटोगे? भला आदमी पर भी क्या भरोसा किया जा सकता है? अरे, मेरे भोंदू भट्टू!.."

उसने मुझे धकेलकर अलग कर दिया और खड़ा हो गया।

"मुझे चोरी के गालोश नहीं चाहिये। फिर मैं कोई रईस भी नहीं हूं जो गालोशो के बिना रह नहीं सकता। मैं तो मजाक कर रहा था... तुम्हारी सादगी के लिए मैं तुम्हें गिरजे के घंटेघर पर चढ़ने दूंगा, ईस्टर के दिन आना। तुम घंटा बजाओगे, और वहां से तुम्हें नगर का समूचा दृश्य दिखाई देगा।"

"नगर तो मेरा देखा-भाला है।"

"घंटेघर से वह और भी सुन्दर दिखाई देता है।"

धीमे डगों से, जूतों की नोक को बर्फ़ में गड़ाते हुए वह गिरजे के कोने के पास से मुड़कर आंखो से ओझल हो गया। मै उसे जाते हुए देख रहा था और एक दुःखद बेचैनी से डरते-डरते सोच रहा था—बूढ़ा क्या सचमुच मुझसे मजाक कर रहा था या मालिक ने मेरी जांच करने के लिए ही उसे भेजा था? दुकान पर लौटने का मुझे साहस नहीं हुआ।

साशा आंगन में निकल आया और चिल्लाकर बोला:

"इतनी देर से कमबख्त यहां क्या कर रहा है!"

एकाएक गुस्से की लहर मेरे शरीर में दौड़ गई और मैने संड़ासी दिखाकर उसे धमकाया।

मै जानता था कि वह और कारिंदा मालिक के यहां चोरी करते है। बूट या जूतो का एक जोड़ा उठा कर वे अलावघर की चिमनी में छिपा देते और दुकान बन्द करते समय चोरी के जूतों को कोट की आस्तीनों में छिपाकर घर ले जाते। मुझे यह अच्छा नही लगता था और इससे मुझे डर भी महसूस होता था। मालिक की चेतावनी को मैं भूला नहीं था।

"तुम चोरी करते हो न?" मैने साशा से पूछा।

"नही, मै नहीं," उसने कठोरता से स्पष्ट किया। "कारिंदा करता है। मैं तो केवल उसकी मदद करता हूं। वह कहता है—मै जैसा कहूं,

वैसा करो। अगर मैं वैसा न करूं तो वह किसी समय भी मुझे अपनी गंदी चाल में फंसा सकता है। और मालिक तो खुद भी दुकान में कारिंदे का काम कर चुका है, सभी कुछ जानता है। हां, तू अपना मुंह बन्द रखियो।"

बोलते समय वह बराबर आईने में अपना चेहरा देखता और अपनी टाई को ठीक करता रहा। उसकी उंगलियां कारिंदे के अन्दाज में फैली हुई थीं। वह लगातार मुझपर अपना रोब जमाता, भारी आवाज़ में मुझपर चिल्लाता और आदेश देते समय ऐसे हाथ आगे बढ़ाता मानो मुझे धकेल रहा हो। कद में मैं उससे लम्बा और मजबूत था, लेकिन हड़ीला और बेडौल। इसके उलट वह मांसल था, नर्म-नर्म और चिकना-चुपड़ा। फ्राक कोट और पतलून पहने हुए वह मुझे बड़ा रोबीला लगता था, किन्तु उसमें कुछ हास्यास्पद तथा अप्रिय चीज़ भी थी। वह बावर्चिन से घृणा करता था, जो अजीब सी स्त्री थी—यह समझना असंभव था कि वह अच्छी है या बुरी।

"मुझे तो लड़ाई-भिड़ाई सबसे ज्यादा पसन्द है," अपनी दमकती हुई काली आंखों को बरबट्टा सी खोलकर वह कहती। "मुर्गे लड़ें या कुत्ते या दहकान—मेरे लिए सब बराबर है!"

अगर आंगन में कभी मुर्गों या कबूतरों की लड़ाई शुरू हो जाती तो वह हाथ का काम छोड़कर खिड़की पर जम जाती और दीन-दुनिया से बेखबर, लड़ाई खत्म होने तक वहीं खड़ी रहती। जब सांझ होती तो वह साशा और मुझसे कहती :

"यहां बैठे-बैठे क्या मक्खियां मार रहे हो, लड़को! बाहर निकलो, खूब लड़ो-भिड़ो, जोर आजमाई करो!"

साशा झुंझला उठता :

"मैं लड़का नहीं हूं, मूर्खों की नानी! मैं छोटा कारिंदा हूं!"

"मैं यह नहीं मानती। जब तक तुम्हारी शादी नहीं हो जाती, मेरे लिए तो तुम लड़के ही रहोगे!"

"मूर्खों की नानी, बोले मूर्खों की बानी!"

"शैतान अक्लमन्द है पर खुदा उसे प्यार नहीं करता।"

उसकी उक्तियां साशा को खास तौर से बहुत खिजाती थीं। साशा उसे चिढ़ाता तो वह अपनी दृष्टि से उसे ध्वस्त करते हुए कहती :

"अरे तिलचट्टे, तू भगवान की गलती है!"

साशा ने कई बार मुझे इस बात के लिए उकसाने की कोशिश की कि मैं उसके तकिये में पिनें खोंस दूं, या जब वह सोती हो उसके मुंह पर काली पालिश या काजल पोत दूं, या इसी तरह की कोई अन्य हरकत करूं। लेकिन मैं नावर्षिन से डरता था और वह बहुत ही उचटी हुई सी नींद सोती थी। बहुधा ऐसा होता कि वह सोते-सोते जग जाती, लैम्प जलाती और कहीं कोने में नज़र गड़ाए ताकती रहती। कभी-कभी वह उठकर अलावघर के पीछे मेरे बिस्तरे के पास चली आती, मुझे झंझोड़ती और बैठी हुई आवाज़ में फुसफुसाती :

"न जाने क्यों मुझे नींद नहीं आती, आल्योशा। डर सा लगता है। कुछ बात ही कर।"

और मैं जागता-ऊंघता सा उसे कोई कहानी सुनाता और वह अपने बदन को आगे-पीछे झुलाती हुई चुपचाप बैठी सुनती रहती। मुझे ऐसा प्रतीत होता मानो उसके गर्म बदन से मोम और लोबान की गंध आ रही हो, और यह कि वह जल्दी ही मर जायेगी, शायद इसी क्षण मुंह के बल फ़र्श पर गिरेगी और दम तोड़ देगी। डर के मारे मैं जोर से बोलने लगता, लेकिन वह हमेशा टोक देती :

"शी, तू उन हरामजादों को भी जगा देगा और वे समझेंगे कि तू मेरा प्रेमी है।"

वह हमेशा एक ही मुद्रा में और एक ही जगह पर बैठती—बदन को एक दम झुकाकर दोहरा किए, हाथों को घुटनों के बीच खोंसे और हड्डियां भर रह गई अपनी टांगों से उन्हें कसकर दबाये हुए। वह गाढ़े का लबादा पहनती थी। लेकिन चपटी छातियों वाले उसके शरीर की पसलियां, पिचके हुए पीपे की सलवटों की भांति, उस मोटे लबादे में से भी साफ़ उभरी हुई दिखाई देतीं। बड़ी देर तक वह इसी तरह चुपचाप बैठी रहती और फिर सहसा फुसफुसा उठती :

"मर जाऊं तो इन सब दुःखों से जान छूट जाये..."

या किसी अदृश्य से पूछ लेती :

"मैंने अपने जीवन के दिन पूरे कर लिये—तो क्या हुआ?"

"अब सो जा!" मुझे बीच में ही टोककर वह कहती, सीधी हो जाती और उसका धूमिल शरीर रसोई के अंधेरे में चुपचाप विलीन हो जाता।

साशा उसकी पीठ पीछे उसे डायन कहता।

एक दिन मैंने उसे उकसाया :

"उसके मुंह पर कहो तो जानें!"

"मैं क्या उससे डरता हूं?" उसने जवाब दिया।

फिर तुरन्त ही उसने अपने माथे को सिकोड़ा और बोला :

"नहीं, मैं उसके मुंह पर नहीं कहूंगा। कौन जाने, वह सचमुच ही डायन हो..."

सभी के प्रति वह चिड़चिड़ेपन और तिरस्कार का भाव अपनाये रहती और मेरे साथ भी कोई रू-रियायत न बरतती। सुबह के छ. बजे ही वह मेरी टांग पकड़कर खींचती और चिल्लाती :

"बहुत खर्राटे ले चुका! अब उठकर लकड़ी ला, समोवार गर्म कर, आलू छील!.."

उसका चिल्लाना सुनकर साशा की भी आंख खुल जाती।

"क्या आसमान सिर पर उठा रखा है?" वह बड़बड़ाता। "मैं मालिक से जाकर शिकायत करूंगा कि मुझे सोने नहीं देती।"

नींद न आने के कारण सूजकर लाल हुई उसकी आंखें साशा की दिशा में कौंध जातीं और अपने हड्डियों के ढांचे से वह रसोई में द्रुत गति से उठा-धरी करने लगती।

"मुआ कहीं का! भगवान की गलती! मेरे पाले पड़ता तो चमड़ी उधेड़कर रख देती!"

"नासपीटी!" साशा उसे कोसता और फिर बाद में, दुकान जाते समय, मुझसे कहता। "मैं इसका पत्ता कटाकर छोड़ूंगा। इसकी आंख बचाकर मैं खाने में नमक झोंक दूंगा। जब हर चीज जहर मालूम होगी तो मालिक इसे निकाल बाहर करेंगे। या फिर मिट्टी का तेल। तू यह क्यों नहीं करता?"

"और तू?"

"डरपोक!" वह भुनभुनाकर कहता।

और बावर्चिन हमारे देखते-देखते मर गई। एक दिन समोवार उठाने के लिए झुकते ही वह सहसा ढेर हो गई, मानो किसी ने उसकी छाती पर आघात किया हो। वह बाजू के बल लुढ़क गई, उसकी बांहों में ऐंठन हुई और मुंह से खून टपकने लगा।

हम दोनों तुरन्त ही भांप गए कि वह मर चुकी है, लेकिन भय से

ग्रस्त हम वही खड़े-खड़े केवल उसे देखते रहे, मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। आखिर साशा भाग कर रसोई से बाहर गया और मैं, खिड़की के पास, रोशनी मे किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा। मालिक आया, चिन्ताग्रस्त भाव से झुका, उसके चेहरे का स्पर्श किया और बोला:

"अरे, यह तो सचमुच मर गई। यह कैसे हुआ?"

कोने में रखी हुई चमत्कारी सन्त निकोला की छोटी सी प्रतिमा के सामने झुकते हुए मालिक ने तुरन्त सलीब का चिन्ह बनाया और प्रार्थना पूरी करने के बाद दरवाजे की ओर मुंह करके चिल्लाया:

"काशीरिन, भागकर जाओ और पुलिस को ख़बर करो!"

पुलिस वाला आया, इधर-उधर कुछ खटर-पटर करने के बाद उसने बख्शीश अपनी जेब मे डाली और चला गया। इसके शीघ्र बाद ही मुर्दा ढोने वाले एक ठेले को अपने साथ लिए वह लौटा। सिर और पांव पकड़कर उन्होने बावर्चिन को उठाया और उसे बाहर ले गए। मालिक की पत्नी ने दरवाजे से झांककर मुझ से कहा:

"फ़र्श साफ कर डाल!"

और मालिक ने कहा:

"यह भी अच्छा हुआ कि वह सांझ के समय ही मरी..."

मेरी समझ मे नही आया कि इसमे क्या अच्छाई थी। जब हम सोने के लिए बिस्तर पर गए, तो साशा बहुत ही नम्रता से बोला:

"लैम्प न बुझाना!"

"क्यों, डर लगता है?"

उसने अपना सिर कम्बल मे ढंक लिया और बहुत देर तक चुपचाप पड़ा रहा। रात भी एकदम चुप और निस्तब्ध थी मानो वह भी कान लगाकर कुछ सुनना चाहती हो, किसी चीज की प्रतीक्षा मे हो। और मुझे ऐसा लग रहा था मानो अगले ही क्षण घंटा बजने लगेगा और नगर के लोग भय से आक्रान्त होकर इधर-उधर भागना और चिल्लाना शुरू कर देंगे।

साशा ने कम्बल से अपना सिर बाहर निकालकर अपनी थूथनी की एक झलक दिखाते हुए धीमे स्वर में कहा:

"चल, अलावघर पर चलकर दोनों एक साथ सोए?"

"वहां तो बहुत गर्म होगा।"

कुछ देर तक चुप रहकर उसने कहा :

"कैसे वह मर गई—एकदम, न? और मैं उसे डायन समझ रहा था। नींद नहीं आती..."

"मेरा भी यही हाल है।"

उसने बताना शुरू किया कि किस प्रकार मुर्दे अपनी कब्रों में से उठकर आधी रात तक नगर का चक्कर लगाते और अपने सगे-सम्बन्धियों तथा घरों की खोज करते हैं।

"मुर्दों को केवल अपने नगर की याद रहती है," वह धीरे-धीरे बता रहा था, "गली-मोहल्लों और घरों की नहीं..."

निस्तब्धता अब और भी गहरी हो गई और मानो अंधेरा भी अधिकाधिक घना होता जा रहा था। साशा ने अपना सिर उठाया और पूछा :

"मेरे संदूक की चीजें देखेगा?"

मैं बहुत दिनों से यह जानना चाहता था कि उसने अपने संदूक में क्या-क्या छिपा रखा है। वह हमेशा उसको ताला लगाये रखता था। और उसे खोलते समय अजीब सावधानी बरतता था। अगर मैं कभी झांककर देखने की कोशिश करता तो वह डांटकर पूछता :

"क्या चाहिये तुझे? है?"

जब मैंने देखने की इच्छा प्रकट की तो वह उठकर बिस्तर पर बैठ गया और सदा की भांति मालिकाना अन्दाज में उसने आदेश दिया कि मैं संदूक को उठाकर उसके पांव के पास रखूं। कुंजी को एक जंजीर में डालकर उसने सलीब के साथ गले में पहन रखा था। अंधेरे कोनों की ओर नजर डालकर रोब के साथ उसने अपनी भौंहों को सिकोड़ा, ताला खोला और अन्त में ढक्कन पर इस तरह फूंक मारकर मानो वह गर्म हो, संदूक खोला। संदूक में अंडरवेयर के कई जोड़े रखे थे। उसने उन्हें बाहर निकाल लिया।

संदूक का आधे से भी ज्यादा हिस्सा गोलियों के बक्सों, चाय के पैकटों के रंग-बिरंगे कागजों, सार्डीन मछली और काली पालिश की खाली डिब्बियों से भरा था।

"यह सब क्या है?"

"अभी दिखाता हूं..."

संदूक को अपनी टांगों के बीच रखकर उसने उसपर झुकते हुए धीमी आवाज़ से गाया :

"हे परम पिता, स्वर्ग में वास करनेवाले..."

मुझे उम्मीद थी कि संदूक में खिलौने देखने को मिलेंगे। मैं खिलौनों से सदा वंचित रहा था और खिलौनों के प्रति बनावटी उपेक्षा का भाव दिखाता था, किन्तु मन ही मन उनसे ईर्ष्या करता था जिनके पास खिलौने होते थे। यह सोच कर मैं मन ही मन प्रसन्न होता कि साशा के पास, उसकी गम्भीरता और रूखेपन के बावजूद खिलौने हैं जिन्हें शर्म के मारे उसने छिपा रखा है। उसकी यह लज्जा मेरी समझ में आती थी।

उसने पहले डिब्बे को खोला और उसमें से चश्मे का फ़्रेम निकाला। उसने उसे अपनी नाक पर लगाया, मेरी ओर कड़ी नजर से देखा और फिर बोला :

"इस में शीशे नहीं हैं तो क्या हुआ। बिना शीशों के भी इसका वैसा ही रोब पड़ता है।"

"ज़रा मुझे दो। मैं भी लगाकर देखूं!"

"यह तेरी आंखों से मेल नहीं खाता। ये काली आंखों के लिए है और तेरी आंखें कुछ भूरी है।" उसने मुझे मालिक के अन्दाज़ में समझाया। किन्तु फ़ौरन ही उसने भयभीत सा होकर सारी रसोई में नजर दौड़ाई।

पालिश के एक डिब्बे में तरह-तरह के बटनों का ज़ख़ीरा मौजूद था।

"ये सब मुझे सड़क पर पड़े हुए मिले हैं!" उसने शेखी बघारते हुए कहा। "खुद मैंने ही जमा किए हैं। पूरे सैंतीस हैं..."

तीसरे डिब्बे में पीतल की बड़ी-बड़ी पिनें थीं; ये भी सड़क पर पड़ी मिली थीं। फिर आये जूतों के बक्सुवे – घिसे-पिटे, तुड़े-मुड़े और सालिम, बूटों तथा जूतों के बकल, छड़ी की हाथीदांत की मूठ, दरवाज़े का पीतल का हत्था, एक जनानी कंघी और सपनों तथा भाग्य का भेद बतलानेवाली एक पुस्तक। इनके अलावा इसी तरह की अन्य बहुत सी चीज़ें थीं।

चिथड़ों और हड्डियों की खोज करते समय अगर मैं चाहता तो एक महीने के भीतर इससे दस गुना कबाड़ जमा कर सकता था। साशा के इस ज़ख़ीरे को देखकर मुझे बड़ी निराशा और झुंझलाहट हुई और उसके प्रति दया से मेरा मन भर गया। वह प्रत्येक चीज़ को बड़े ध्यान से

देखता, बड़े चाव से अपनी उंगलियों से उन्हें सहलाता, उसके मोटे होंठ बड़े रौब के साथ आगे को फैले हुए थे, उभरी हुई आंखें बड़े प्यार और ध्यान से चीजों को देखती थीं, लेकिन चश्मे के फ्रेम ने, उसके बचकाने चेहरे को हास्यास्पद बना दिया था।

"इस सब का क्या करोगे?"

चश्मे के भीतर से उसने मुझपर एक उड़ती हुई नजर डाली और अपनी आयु के अनुरूप फटी हुई सी भारी आवाज में बोला:

"बोल, तुझे कुछ भेंट कर दूं?"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये.."

एक क्षण तक वह कुछ नहीं बोला। मेरे इन्कार करने और उसके जखीरे में दिलचस्पी न दिखाने से स्पष्टतः उसके हृदय को ठेस लगी थी।

"एक तौलिया ले आ," आखिर उसने धीरे से कहा, "इन सब चीजों को चमकाएंगे। देख न, इनपर कितनी धूल जमा हो गई है।"

सब चीजों को चमकाने और उन्हें संदूक में रखने के बाद वह करवट लेकर दीवार की ओर मुंह करके लेट गया। बाहर बारिश शुरू हो गई थी, छत से पानी टपक रहा था और हवा खिड़कियों पर थपेड़े मार रही थी।

"जरा जमीन सूख जाने दे, बगीचे में तुझे एक ऐसी चीज दिखाऊंगा कि दंग रह जायेगा," मेरी ओर मुंह किए बिना ही उसने कहा।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप बिस्तर में घुस गया।

कुछ क्षण बाद वह सहसा उछलकर खड़ा हो गया, दीवार को अपनी उंगलियों से नोचने लगा और आश्चर्यचकित करनेवाली दृढ़ आवाज में बोला:

"मुझे डर लग रहा है... भगवान, मुझे डर लग रहा है! मुझपर दया करो, भगवान! यह क्या है?"

तब भय से मुझे भी पसीना छूटने लगा, शरीर ठंडा पड़ गया। मुझे लगा मानो बावर्चिन मेरी ओर पीठ किए खिड़की के पास खड़ी है, शीशे से माथा सटाए, ठीक उसी मुद्रा में जिसमें वह मुर्गों का लड़ना देखा करती थी।

दीवार को नोचता और लातें पटकता हुआ मास्हा रो रहा था। मैं उठा और लपककर मैंने रसोई के फ़र्श को ऐसे पार किया मानो उसपर दहकते

अगारे बिछे हों। उसके बिस्तर में घुसकर मैं उसकी बगल में लेट गया।

बहुत देर तक हम दोनों की आंखों से आंसू बहते रहे और अन्त में हम थककर सो गये।

कुछ दिन बाद कोई त्यौहार था। केवल दोपहर तक हमने काम किया। दोपहर का भोजन घर जाकर करना था। जब मालिक और उसकी पत्नी विश्राम करने के लिए चले गए तो साशा ने भेद भरे ढंग से मुझसे कहा :

"आ मेरे साथ!"

मैंने अन्दाज़ लगाया कि वह कोई ऐसी चीज़ दिखाना चाहता है जिसे देखकर मैं दंग रह जाऊंगा।

हम बगीचे में गए। दो घरों के बीच भूमि की एक संकरी पट्टी पर लाइम के लगभग दस-पन्द्रह पेड़ खड़े थे जिनके सबल तनों पर काई जमी थी और जिनकी नंगी-बूची, जीवन शून्य टहनियां आकाश का मुंह ताक रही थीं। उनमें कौवों का एक घोंसला तक नहीं था। वृक्ष कब्रिस्तान के स्मारकों की भांति खड़े थे। लाइम के इन पेड़ों के सिवा यहां और कुछ नहीं उगा था, न कहीं कोई झाड़ी थी, न घास ही। पगडंडियों की ज़मीन तपे लोहे की भांति कड़ी और काली पड़ गई थी और आस-पास की वे जगहें भी, जो पिछले वर्ष के गले-सड़े पत्तों से आच्छादित नहीं थीं, खड़े पानी की तरह काई की पतली-पतली परत से ढकी हुई थीं।

साशा घर के कोने के पास से मुड़ा और सड़क की ओर वाले बाड़े की दिशा में बढ़कर लाइम के एक पेड़ के नीचे रुक गया। वहां एक मिनट तक खड़े रहकर उसने पड़ोस के एक घर की धुंधली खिड़कियों को ताका, घुटनों के बल धरती पर बैठ गया, पत्तों को अपने हाथों से खोदकर उसने अलग कर दिया और तब पेड़ की गांठ-गठीली जड़ दिखाई दी। जड़ के पास ही दो ईंटें ज़मीन में धंसी हुई थीं। उसने ईंटों को खींचकर बाहर निकाल लिया। उनके नीचे छत के टीन का एक टुकड़ा रखा था। टीन के नीचे लकड़ी का चौकोर तख्ता था। अन्त में मुझे एक बड़ी सी खोह दिखाई दी जो जड़ के नीचे तक चली गयी थी।

साशा ने एक दियासलाई जलाई और मोमबत्ती के टुकड़े को रोशन किया। फिर मोमबत्ती के टुकड़े को छेद के भीतर ले जाते हुए बोला :

"इधर देख। बस, डरना नहीं..."

लेकिन डरा हुआ वह खुद था, यह बात प्रत्यक्ष थी। मोमबत्ती उसके हाथ में कांप रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, होंठ बेहूदा ढंग से लटक गये थे, आंखें नम थीं और उसका दूसरा खाली हाथ, बार-बार फिसलकर, पीठ पीछे पहुंच जाता था। मुझे भी उसके डर ने ग्रस लिया। अत्यन्त सावधानी के साथ मैंने जड़ के नीचे देखा जो खोह की मेहराब का काम देती थी। साशा ने अब तीन मोमबत्तियां जला ली थीं जिनकी नीली रोशनी से खोह आलोकित थी। वह एक साधारण बालटी जितनी गहरी और उससे अधिक चौड़ी थी। उसकी दीवारों पर रंगीन कांच और चीनी के टुकड़े जड़े थे। बीच में एक चबूतरा सा था जिसपर एक छोटा सा ताबूत रखा था। ताबूत पर टीन की कतरन लिपटी थी और उसका आधा भाग गोटे जैसी किसी चीज से ढंका हुआ था। इस आच्छादन के भीतर से गौरे के भूरे पंजे और चोंच दिखाई पड़ रही थी। सिर की ओर एक नन्ही सी टिक-टिकी थी जिसपर पीतल की एक छोटी सी सलीब रखी थी और तीन ओर मिठाई की रुपहली और सुनहरी पन्नियों से बने चमचमाते हाल्डरों में मोमबत्तियां जल रही थीं।

मोमबत्तियों की नुकीली लौ खोह के मुंह की ओर लपलपा रही थी। खोह के भीतरी भाग में बहुरंगी रोशनी के चकत्तों और चमक की हल्की चमचमाहट फैली थी। मिट्टी तथा पिघलते हुए मोम की गंध और सड़ायन के भभके मेरे चेहरे से आकर टकरा रहे थे और खोह के भीतर की खण्डित इन्द्रधनुषी आभा मेरी आंखों में नाच तथा थिरक रही थी। इन सब की वजह से मेरा डर तो विलीन हो गया, लेकिन अचरज की एक बोझिल भावना ने उसका स्थान ले लिया।

"सुन्दर है न?" साशा ने पूछा।

"यह सब किस लिये है?"

साशा ने बताया :

"यह एक समाधि है। कैसी लगती है न?"

"मैं नहीं जानता।"

"और ताबूत में गौरे का शव है। कौन जाने कभी कोई ऐसा चमत्कार हो कि यह शव एक पवित्र स्मारक का रूप धारण कर ले, क्योंकि उसे किसी कसूर के बिना अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था..."

"क्या तुझे यह मरा हुआ ही मिला था?"

नहीं। यह उड़कर सायबान से आ गया था। अपनी टोपी फेंककर मैंने इसे पकड़ लिया और दबोचकर मार डाला।"

"क्यों?"

"यों ही..."

उसने मेरी आंखों में देखा और फिर पूछा:

"बढ़िया है न?"

"नहीं!"

वह खोह के ऊपर झुका, जल्दी से उसने उसपर लकड़ी का तख्ता ढक दिया, फिर टीन रखा और ईंटों को पहले की तरह ही जमा दिया। इसके बाद वह खड़ा हो गया और घुटनों पर से धूल झाड़ते हुए कड़े स्वर में बोला:

"तुझे यह क्यों पसन्द नहीं आया?"

"मुझे गौरे पर दया आ रही है।"

उसने अंधे की तरह मुझे एकटक देखा और फिर मेरी छाती पर हाथ मारते हुए चिल्ला उठा:

"काठ का उल्लू! तू मुझसे जलता है, बस और कुछ नहीं! इसीलिए कहता है कि तुझे यह पसन्द नहीं आया! शायद तुझे इस बात का भी घमंड है कि कनात्नाया सड़क के अपने बग़ीचे में तेरा करतब इससे कहीं अधिक सुन्दर था?"

"और नहीं तो क्या," मैंने बेहिचक जवाब दिया और मुझे उस कोने की याद हो आई जो कि मैंने अपने लिए सजाया था।

साशा ने अपना कोट उतारकर ज़मीन पर फेंक दिया। उसने अपनी आस्तीनें चढ़ा लीं, थूककर अपनी हथेलियों को मला और बोला:

"अगर ऐसी बात है तो आ जा मैदान में!"

लड़ने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। मुझपर तो पहले से ही शक्ति क्षीण करनेवाली उदासी हावी थी और अपने ममेरे भाई के क्रुद्ध चेहरे की ओर देखना भी मुझे भारी मालूम हो रहा था।

वह लपककर मेरी ओर झपटा, छाती पर सिर मारकर उसने मुझे गिरा दिया और मेरे ऊपर चढ़ बैठा।

"जीना चाहता है या मरना?" वह चिल्लाया।

परन्तु मैं उससे ज्यादा मज़बूत था और मेरा खून पूरी तरह खौल

उठा था। अगले ही क्षण वह हाथों को सिर से आगे फैलाये हुए मुंह के बल धरती पर जा गिरा और खरखरी आवाज में सांस लेने लगा। भयभीत होकर मैंने उसे उठाने की कोशिश की, लेकिन दुलत्तियां झाड़कर उसने मुझे अलग कर दिया। इससे मैं और भी आशंकित हो उठा। मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं। इसी असमंजस में मैं एक तरफ को हट गया और तब उसने अपना सिर उठाकर कहा:

"अब तू बचकर नहीं जा सकता। जब तक मालिक यहां नहीं आता, मैं ऐसे ही पड़ा रहूंगा। मालिक खोजता हुआ जब यहां आयेगा मैं तेरी शिकायत करूंगा और वह तुझे निकाल बाहर करेगा!"

उसने कोसा और धमकियां दीं। उसकी बातों से मुझे बहुत क्रोध आया और मैं मुड़कर फिर खोह की ओर लपका। ईंटों को मैंने उखाड़ डाला, ताबूत और गौरे को उठाकर दूर, बाड़े के उस पार, फेंक दिया और भीतर का सारा ताम-झाम खोद-खोदकर उसे पांव से रौंद डाला।

"ले, यह ले! और देख, यह गई तेरी समाधि!"

मेरे इस क्रोध का उसपर अजीब प्रभाव पड़ा: वह उठकर बैठ गया, अपना मुंह कुछ खोले और भौंहें सिकोड़े, मेरी ओर निर्वाक ताकता रहा। जब मैं तोड़-फोड़कर चुका तो वह इतमीनान से उठा, उसने अपने को झाड़ा और कोट पहनकर शान्त स्वर में द्वेषपूर्वक बोला:

"अब देखियो क्या होता है। जरा ठहर तो! मैंने यह खास तौर से तेरे लिए ही बनाया था। यह एक टोना था—समझा!"

मेरी तो जैसे जान निकल गई। उसके शब्दों के आघात ने मेरे घुटने ढीले कर दिये। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरे शरीर की हर चीज ठंडी पड़ गई हो। मुड़कर एक बार भी देखे बिना वह वहां से चल दिया। उसकी शान्ति ने मुझे पूर्णतया पस्त कर दिया था।

मैंने निश्चय किया कि अगले ही दिन इस नगर, मालिक, साशा और उसके जादू-टोने, इस समूचे बेमानी और भयावह जीवन को छोड़कर यहां से चल दूंगा।

अगली सुबह को नयी बावर्चिन मुझे जगाते समय चिल्ला उठी:

"हे भगवान, तेरे थोबड़े को यह क्या हुआ है?.."

मुझे ऐसा लगा कि मेरा हृदय जवाब दे रहा है। हो न हो, टोने ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है। अब कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

लेकिन बावर्चिन पर हंसी का कुछ ऐसा दौरा सवार हुआ और वह इस तरह खिलखिलाकर हंसी कि मैं खुद भी हंसे बिना न रह सका। मैंने उसके आईने में झांककर देखा। मेरे चेहरे पर काजल की एक मोटी परत चढ़ी थी।

"यह साशा की करतूत है न?" मैंने पूछा।

"और नहीं, तो क्या मैंने किया है?" बावर्चिन ने हंसते हुए कहा।

मैंने जूतों पर पालिश करना शुरू किया। जैसे ही मैंने एक जूते में अपना हाथ डाला कि मेरे हाथ में एक पिन गड़ गई।

"यही है साशा के जादू-टोने का असर!" मैंने मन ही मन कहा।

पिनें और सुइयां सभी जूतों में छिपी थीं और इस चतुराई से कि मेरे हाथों में गड़े बिना न रहें। तब मैंने ठंडे पानी से भरा डोल उठाया और उसे ओझे के सिर पर उंडेल दिया जो अभी तक सो रहा था, या नींद का बहाना किए पड़ा था।

लेकिन मेरा मन अभी भी भारी था। ताबूत, गौरा, उसके भूरे और सिकुड़े हुए पंजे, उसकी छोटी सी मोमियाई चोंच और उसके चारों ओर की चमचमाहट जो इन्द्रधनुषी आभा की समानता का निष्फल प्रयास कर रही थी... यह सब मेरे दिमाग में इतना छा गया था कि उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल था। ताबूत ने मेरी कल्पना में भीमाकार रूप धारण कर लिया, पक्षी के पंजे बढ़ने और आकाश की ओर अधिकाधिक ऊंचे उठने लगे, एक दम सजीव और स्पन्दनशील!

मैंने उसी सांझ सब कुछ छोड़-छाड़कर भागने की योजना बनाई। लेकिन दोपहर के भोजन से ठीक पहले जब मैं तेल के स्टोव पर शोरबा गर्म कर रहा था, मैं सपने देखने में रम गया और शोरबा उबलने लगा। स्टोव बुझाने की उतावली में मैंने उसपर रखा बरतन अपने हाथों पर गिरा लिया। नतीजा यह हुआ कि मुझे अस्पताल भेज दिया गया।

अस्पताल का वह दुःस्वप्न मुझे याद है: थरथराते, पीले शून्य में सिर पर कफन से लपेटे भूरी और सफ़ेद आकृतियों के दल प्रकट होते, कराहते और भनभनाते, एक लम्बा आदमी, जिसकी भौंहें मूंछों के समान थीं, बैसाखी लिए, अपनी काली लम्बी दाढ़ी को बराबर नचाता और चिल्लाता रहता:

"महापूजनीय धर्मपिता को खबर करूंगा!"

अस्पताल के पलंग मुझे ताबूत की याद दिलाते थे। छत की ओर नाक ताने उनपर लेटे हुए मरीज़ मुझे मृत शरीरों की भांति मालूम होते। पीली दीवारें डोलने लगतीं, छत में बादबान की भांति लहरें उठतीं, फर्श उभारा लेता और पलंग आगे-पीछे झूमने लगते। प्रत्येक चीज़ भयानक और बिना भरोसे की थी। खिड़कियों से बाहर पेड़ों की नंगी-बूची टहनियां तिरछी नजर आती थीं और कोई उन्हें झकझोरता रहता था।

दरवाज़े के पास एक दुबली-पतली, लाल सिर वाली, लाश भी नाचती। छोटे-छोटे हाथों से कफ़न को खींचकर वह अपने चारों ओर समेटती और चीखती :

"मुझे पागलों की जरूरत नहीं!"

और बैसाखी वाला आदमी चिल्लाता :

"महापूजनीय धर्मपिता को..."

नानी-नाना और दूसरे सभी लोगों से मैंने हमेशा यही सुना था कि अस्पताल में लोगों को भूखा मारा जाता है। मेरे मन में यह बात बैठ गई कि मैं भी अब दो-चार दिन का ही मेहमान हूं। चश्मा लगाए एक स्त्री जो कफ़न सा लपेटे थी, मेरे निकट आई और बिस्तर के सिरहाने लटकी सलेट पर उसने खड़िया से कुछ लिखा। खड़िया के कुछ कण भुरभुराकर मेरे बालों में आ गिरे।

"तुम्हारा क्या नाम है?" उसने पूछा।

"कोई नाम नहीं।"

"तुम्हारा नाम तो है न?"

"नहीं।"

"बकवास न करो, नहीं तो मार पड़ेगी।"

मार पड़ेगी, इस बात का तो मुझे पहले से ही विश्वास था। और इसीलिए तो मैंने उसे कोई जवाब नहीं दिया था। बिल्ली की भांति फूं-फूंकर बिल्ली की भांति ही वह चोर पांवों से विलीन हो गई।

दो लैम्प जला दिये गये जिनकी पीली बत्तियां किसी की खोई हुई दो आंखों की भांति छत से लटकी थीं—झूलती और चकित भाव से टिमटिमाती मानो दोनों फिर एक-दूसरे के निकट आने का प्रयत्न कर रही हों।

"आओ, ताश की एक बाज़ी खेलें," किसी ने कोने में से कहा।

"केवल एक ही बांह से मैं कैसे खेल सकता हूं?"

"ओह, तो उन्होंने तुम्हारी एक बांह साफ कर दी, क्यों?"

मेरे मन में यह बात बैठते देर नहीं लगी कि ताश खेलने के कारण ही उसकी बांह काटी गई है और मैं सोचने लगा कि मारने से पहले न जाने मेरी क्या दुर्गति की जायेगी।

मेरे हाथों में जलन होती थी और वे बुरी तरह दुखते मानो कोई मेरी हड्डियों को नोच रहा हो। भय और दर्द से मैं मन ही मन कराहता और अपनी आंखों को बन्द कर लेता जिससे मेरे आंसू किसी को न दिखाई दें, लेकिन वे उमड़ आते और मेरी कनपटियों पर से बहकर कानों तक पहुंच जाते।

रात घिर आई। मरीज अपने-अपने बिस्तरों पर पहुंच गए. भूरे कम्बलों के नीचे उन्होंने अपने आप को छिपा लिया और निस्तब्धता प्रति क्षण गहरी होती गई। केवल एक आवाज थी जो कोने में से आकर इस निस्तब्धता को भंग करती थी:

"कोई नतीजा नहीं निकलेगा। दोनों ही पशु हैं—पुरुष भी और स्त्री भी..."

मैं नानी को पत्र लिखना चाहता था कि अभी, जब तक मैं जिंदा हूं, मुझे चोरी-छिपे यहां से ले जाये। लेकिन मैं लिखता कैसे... न तो मेरे हाथ काम करते थे और न ही लिखने के लिये कोई चीज थी। मैंने तय किया कि यहां से भाग चलना चाहिए।

ऐसा मालूम होता मानो रात अधिकाधिक बेजान होती जाती थी मानो उसने कभी विदा न होने का निश्चय कर लिया हो। दबे पांव फ़र्श पर उतर कर मैं दोहरे दरवाजे की ओर चला। दरवाजे का एक भाग खुला था और वहां, गलियारे में, लैम्प के नीचे रखी टेकवाली बेंच पर, तम्बाकू के धुएं से घिरे साही जैसे एक सिर पर मेरी नजर पड़ी। बाल उसके सफ़ेद थे और उसकी धंसी हुई आंखें एकटक मुझपर जमी थी। मैं छिप नहीं पाया।

"यह कौन मटरगश्ती कर रहा है? यहां आ!"

आवाज में गर्मी थी। धमकी का उसमें जरा भी पुट नहीं था। मैं उसके पास गया और दाढ़ी से भरे एक गोल चेहरे पर मेरी नजर पड़ी। सिर के सफेद बाल खूब बढ़े हुए थे और रुपहले आलोक की भांति चारों ओर फैले थे। उसकी पेटी से तालियों का एक गुच्छा लटक रहा था।

उसके बाल और दाढ़ी कुछ और कम होते तो वह सन्त पीटर के समान दिखाई देता।

"अच्छा तू वह जले हाथों वाला है? रात के समय वहां क्यों घूम रहा है? यह बात यहां के उसूल-कायदों के खिलाफ है।"

उसने धुएं का एक बादल मेरे मुंह की ओर छोड़ा, अपनी बांह मेरे गले में डाली और अपनी ओर खींचते हुए बोला:

"डर लगता है?"

"हां।"

"शुरू-शुरू में यहां सभी को डर लगता है। लेकिन डरने की कोई बात नहीं है, मैं जो पास में हूं। मैं किसी का बुरा नहीं होने दूंगा... तम्बाकू पियेगा? नहीं, ऐसा नहीं कर। अभी तू छोटा है, कोई दो वर्ष और ठहर जा... तेरे मां-बाप कहां हैं? नहीं हैं मां-बाप! बिल्कुल ठीक–उनकी तुझे जरूरत भी क्या है? उनके बिना भी जिया जा सकता है। बस डरना नहीं चाहिये!"

उसके शब्द मुझे अच्छे लगे। इतने अच्छे कि कह नहीं सकता। बहुत दिनों से किसी ऐसे आदमी से मेरी भेंट नहीं हुई थी जो सीधे-सादे, मित्रतापूर्ण और समझ में आनेवाले शब्दों में बात करता हो।

वह मुझे वापिस मेरे पलंग पर ले गया।

"कुछ देर मेरे पास बैठो," मैंने अनुरोध किया।

"जरूर बैठूंगा," उसने उत्तर दिया।

"तुम कौन हो?"

"मैं सिपाही हूं, असली सिपाही, काकेशिया वाला। मोर्चे पर भी जा चुका हूं–इसके बिना तो काम ही कैसे चल सकता था? सिपाही तो लड़ाइयों के लिए ही जीता है। मैं हंगेरियाइयों से लड़ा हूं। चेर्केसों और पोलों से लड़ा हूं। युद्ध, मेरे भाई, एक बहुत ही बड़ी शैतानी चीज है!"

एक क्षण के लिए मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं और जब मैंने उन्हें खोला तो उसी जगह पर, जहां सिपाही बैठा था, मुझे काली पोशाक में अपनी नानी दिखाई दी। सिपाही अब मेरी नानी की बगल में खड़ा था। वह कह रहा था:

"सो कोई जीवित नहीं बचा, सब मर गए। क्यों, यही न?"

बाड़ मे सूरज खिलवाड़ कर रहा था—हर चीज को सुनहरे रंग मे रंगकर छिप जाता और फिर सभी को चकाचौंध कर देता मानो कोई बालक शरारत कर रहा हो।

नानी ने झुककर पूछा :

"यह क्या हुआ, मेरे लोटन कबूतर? तुम्हे लुंज बना दिया? मैंने उस लाल सिर वाले शैतान से कहा था कि..."

"एक मिनट ठहरो। कानून-कायदे के अनुसार मै अभी सब ठीक किए देता हूं," सिपाही ने जाते हुए कहा।

"सिपाही तो हमारे बलाखना का रहनेवाला निकला है..." अपने कपोलों से आंसू पोंछते हुए नानी ने कहा।

मुझे अभी भी ऐसा मालूम हो रहा था मानो मै सपना देख रहा हूं और इसलिये चुप रहा। डाक्टर आया. उसने मेरे हाथों की मरहमपट्टी की और इसके बाद नानी और मै एक बग्घी मे शहर की सड़कों पर जा रहे थे।

"और तुम्हारे वो नाना का दिमाग तो एकदम सफ़ाचट हो गया है," नानी ने बताया, "इतने कंजूस हो गये है कि तुम्हारी आंखों में से भी अपनी चीज निकाल ले। और हाल में उनके नये दोस्त समूर कमाने वाले ख्लीस्त ने तेरे नाना की भजन संहिता मे से सौ रूबल का एक नोट तिड़ी कर लिया। इसके बाद वह कुहराम मचा कि कुछ न पूछो,—अरे बाप रे!"

सूरज खूब चमक रहा था और बादल आकाश मे सफ़ेद पक्षियो की भांति तैर रहे थे। हम जमी हुई वोल्गा पर बिछे तख़्तों का रास्ता पार कर रहे थे, तख़्तों के नीचे बर्फ भनभनाकर उभरती थी, पानी छपछपाता था, लाल गिरजे के गुम्बदों की सुनहरी सलीबें चमचमा रही थी। रास्ते में हमें बड़े मुंह की स्त्री मिली जो हाथों में मुलायम बिलो की टहनियो का गट्ठा लिए आ रही थी। वसन्त आ रहा था, शीघ्र ही ईस्टर का उत्सवकाल शुरू हो जाएगा!

मेरा हृदय लवा पक्षी की भांति फड़क उठा।

"नानी, बहुत प्यार करता हूं मै तुम्हे!"

नानी को इससे जरा भी अचरज नही हुआ।

"यह स्वाभाविक ही है, तुम मेरे नाती जो हो," नानी ने शान्त भाव

उसके बाल और दाढ़ी कुछ और बड़े होते तो वह सन्त पीटर के समान दिखाई देता।

"अच्छा तू वह जले हाथों वाला है? रात के समय यहां क्यों घूम रहा है? यह बात यहां के उसूल-कायदों के खिलाफ है।"

उसने धुएं का एक बादल मेरे मुंह की ओर छोड़ा, अपनी बांह मेरे गले में डाली और अपनी ओर खींचते हुए बोला:

"डर लगता है?"

"हां।"

"शुरू-शुरू में यहां सभी को डर लगता है। लेकिन डरने की कोई बात नहीं है, मैं जो पास में हूं। मैं किसी का बुरा नहीं होने दूंगा.. तम्बाकू पियेगा? नहीं, ऐसा नहीं कर। अभी तू छोटा है, कोई दो वर्ष और ठहर जा... तेरे मां-बाप कहां है? नहीं हैं मां-बाप! बिल्कुल ठीक— उनकी तुझे जरूरत भी क्या है? उनके बिना भी जिया जा सकता है। बस डरना नहीं चाहिये!"

उसके शब्द मुझे अच्छे लगे। इतने अच्छे कि कह नहीं सकता। बहुत दिनों से किसी ऐसे आदमी से मेरी भेंट नहीं हुई थी जो सीधे-सादे, मित्रतापूर्ण और समझ में आनेवाले शब्दों में बात करता हो।

वह मुझे वापिस मेरे पलंग पर ले गया।

"कुछ देर मेरे पास बैठो," मैंने अनुरोध किया।

"जरूर बैठूंगा," उसने उत्तर दिया।

"तुम कौन हो?"

"मैं सिपाही हूं, असली सिपाही, काकेशिया वाला। मोर्चे पर भी जा चुका हूं—इसके बिना तो काम ही कैसे चल सकता था? सिपाही तो लड़ाइयों के लिए ही जीता है। मैं हंगेरियाइयों से लड़ा हूं। चेर्केसों और पोलों से लड़ा हूं। युद्ध, मेरे भाई, एक बहुत ही बड़ी शैतानी चीज है!"

एक क्षण के लिए मैंने अपनी आंखें बन्द कर ली और जब मैंने उन्हें खोला तो उसी जगह पर, जहां सिपाही बैठा था, मुझे काली पोशाक में अपनी नानी दिखाई दी। सिपाही अब मेरी नानी की बगल में खड़ा था। वह कह रहा था:

"तो कोई जीवित नहीं बचा, सब मर गए। क्यों, यही न?"

वार्ड में सूरज खिलवाड़ कर रहा था—हर चीज को सुनहरे रंग में रंगकर छिप जाता और फिर सभी को चकाचौंध कर देता मानो कोई बालक शरारत कर रहा हो।

नानी ने झुककर पूछा :

"यह क्या हुआ, मेरे लोटन कबूतर? तुम्हे लुंज बना दिया? मैंने उस लाल सिर वाले शैतान से कहा था कि..."

"एक मिनट ठहरो। क़ानून-कायदे के अनुसार मैं अभी सब ठीक किए देता हूं," सिपाही ने जाते हुए कहा।

"सिपाही तो हमारे बलाखना का रहनेवाला निकला है..." अपने कपोलों से आंसू पोंछते हुए नानी ने कहा।

मुझे अभी भी ऐसा मालूम हो रहा था मानो मैं सपना देख रहा हूं और इसलिये चुप रहा। डाक्टर आया, उसने मेरे हाथों की मरहमपट्टी की और इसके बाद नानी और मैं एक बग्घी में शहर की सड़कों पर जा रहे थे।

"और तुम्हारे वो नाना का दिमाग तो एकदम सफ़ाचट हो गया है," नानी ने बताया, "इतने कंजूस हो गये है कि तुम्हारी आंतों में से भी अपनी चीज निकाल ले। और हाल में उनके नये दोस्त समूर कमाने वाले ख्लोस्त ने तेरे नाना की भजन संहिता में से सौ रूबल का एक नोट तिड़ी कर लिया। इसके बाद वह कुहराम मचा कि कुछ न पूछो,—अरे बाप रे!"

सूरज खूब चमक रहा था और बादल आकाश मे सफेद पक्षियों की भांति तैर रहे थे। हम जमी हुई वोल्गा पर बिछे तख्तों का रास्ता पार कर रहे थे, तख्तों के नीचे बर्फ़ भनभनाकर उभरती थी, पानी छपछपाता था, लाल गिरजे के गुम्बदों की सुनहरी सलीबें चमचमा रही थीं। रास्ते में हमें बड़े मुंह की स्त्री मिली जो हाथों में मुलायम विलो की टहनियों का गट्ठा लिए आ रही थी। वसन्त आ रहा था, शीघ्र ही ईस्टर का उत्सवकाल शुरू हो जाएगा!

मेरा हृदय लवा पक्षी की भांति फड़क उठा।

"नानी, बहुत प्यार करता हूं मैं तुम्हें!"

नानी को इससे जरा भी अचरज नहीं हुआ।

"यह स्वाभाविक ही है, तुम मेरे नाती जो हो," नानी ने शान्त भाव

से कहा बड़बोली बने बिना कह सकती हूं कि माता मरियम की मेहरबानी से पराये भी मुझे प्यार करते हैं।"

फिर, मुस्कराते हुए बोली :

"शीघ्र ही वह उत्सव मनाएगी – बेटे का पुनर्जन्म होगा! लेकिन मेरी बेटी वार्या..."

और वह चुप हो गई...

२

नाना से आंगन में ही मेरी मुलाक़ात हो गई। घुटनों के बल बैठे वह कुल्हाड़ी से एक लकड़ी को नोकीला बना रहे थे। उन्होंने ऐसे कुल्हाड़ी ऊपर उठाई, मानो मेरे सिर पर फेंककर मारना चाहते हों। फिर अपनी टोपी उतारते हुए व्यंग्यपूर्वक बोले :

"आ गए नवाब साहब, हमारे अत्यन्त माननीय महामहिम! आइए, स्वागत है आपका! नौकरी को भी धता बता आए? अच्छा है, अब करना जो मन में आए। बस, मेरे सिर न पड़ना! अरे तुम लोग..."

"हमें मालूम है, मालूम है," नानी ने हाथ झटककर नाना का मुंह बंद कर दिया। कमरे में जाकर समोवार गर्म करते हुए नानी बोली :

"तुम्हारे नाना इस बार सब कुछ गंवा बैठे। उन्होंने अपनी सारी जमा पूंजी अपने धर्मपुत्र निकोलाई को सूद पर दी और शायद रसीद तक न ली। पता नहीं कैसे क्या हुआ, लेकिन नाना एकदम सफ़ाचट रह गए। सारी पूंजी गायब हो गई। और यह सब इसलिए हुआ कि हमने कभी ग़रीबों की मदद नहीं की, दीन-दुखियों के प्रति कभी दया भाव नहीं दिखाया। सो भगवान ने सोचा : काशीरिन परिवार के साथ मैं ही क्यों भलमनसाहत बरतूं? और सभी कुछ ले लिया..."

उसने मुड़कर देखा और कहा :

"भगवान का हृदय कुछ पसीजे, बूढ़े को वह इतना कष्ट न दे, इसका मैं थोड़ा-बहुत उपाय कर रही हूं। रात को मैं जाती हूं और अपनी मेहनत की कमाई में से चुपचाप कुछ पैसे बांट देती हूं। चाहो तो आज तुम भी मेरे साथ चलो। मेरे पास कुछ पैसे हैं..."

नाना ने भुनभुनाते हुए भीतर पांव रखा।

क्या मकोसने की फिक्र मे हो?

"तुम्हारी कोई चीज़ नहीं हड़प रहे हैं," नानी ने कहा, "चाहो तो तुम भी हमारे साथ शामिल हो सकते हो। सब को पूरा पड़ जाएगा।"

वह मेज पर बैठ गए और धीमी आवाज़ में बोले.

"एक प्याला भर दो..."

कमरे मे प्रत्येक चीज़ जैसी की तैसी थी, सिवा इसके कि मां वाले कोने में उदास सूनापन छाया था और नाना के बिस्तर के पास वाली दीवार पर कागज का एक टुकड़ा लटका था जिसपर छापे के बड़े-बड़े अक्षरों मे यह लिखा हुआ था :

"यीसू, मेरी आत्मा का उद्धार करना और जीवन की हर घड़ी, हर पल में तुम्हारा पावन नाम मुझे याद रहे।"

"यह किसने लिखा है?"

नाना ने कोई जवाब नही दिया। कुछ रुककर नानी ने मुस्कराते हुए कहा :

"इस कागज़ का मूल्य सौ रूबल है!"

"तुम्हें मतलब!" नाना ने चिल्लाकर कहा। "मेरा धन है, मैं चाहे गैरो में लुटाऊं!"

"लुटाने को अब रहा ही क्या है, और जब था तब एक-एक पाई दात से पकड़ते थे," नानी ने शान्त भाव से कहा।

"चुप रहो!" नाना चीख उठे।

यहां हर चीज़ वैसी ही थी, ठीक पहले जैसी।

कोने में एक ट्रंक पर कपड़े रखने की टोकरी रखी थी। उसमें कोल्या सो रहा था। वह जाग उठा। पलकों में छिपी उसकी आखों की नीली चमक मुश्किल से ही दिखाई देती थी। वह अब और भी उदास, खोया-खोया सा, एक छाया मात्र रह गया था। उसने मुझे पहचाना नहीं और चुपचाप मुंह मोड़कर अपनी आंखें बन्द कर लीं।

बाहर गली में दुःखद समाचार सुनने को मिले। व्याखिर मर चुका था—पावन सप्ताह के दौरान उसे चेचक माता उठा ले गई। हाबी अपना बधना-बोरिया उठाकर नगर चला गया था, जब कि याज की टांगों को लकवा मार गया था और वह घर से बाहर तक नहीं निकल पाता था। यह सब बताते हुए काली आंखों वाले कोस्त्रोमा ने झुंझलाकर कहा :

देखते देखते सब उठ गए.

"सब कहां, एक व्याख्रिर ही तो मरा है?"

"एक ही बात है। हमारी गली में जो नहीं रहा, उसे एक तरह से मरा हुआ ही समझो। मिलना-जुलना और दोस्ती सब बेकार है। किसी से दोस्ती करो, जान-पहचान बढ़ाओ और तभी उसे कहीं काम पर भेज देते है या वह मर जाता है। तुम्हारे अहाते में, चेस्नोकोव घर से, कुछ नये लोग आए है–येव्सेयेन्को परिवार के लोग। उनमें एक लड़का है। ल्यूश्का नाम है उसका। लड़का बिलकुल ठीक और खूब चुस्त है। उसके अलावा दो लड़कियां है। एक छोटी है और दूसरी लंगड़ी, बैसाखी लेकर चलती है। देखने में बड़ी सुन्दर है।"

एक मिनट तक कुछ सोचने के बाद उसने इतना और जोड़ दिया:

"मैं और चूर्का उससे प्रेम करते है और हम हर घड़ी लड़ते-झगड़ते है।"

"लड़की से?"

"लड़की से नहीं, एक-दूसरे से। लड़की से तो बहुत कम ही झगड़ते है।"

यह तो मैं जानता था कि बड़े लड़के और यहां तक कि बड़े लोग भी प्रेम में फंस जाते है और इसका भद्दा मतलब भी जानता था। मुझे परेशानी और कोस्त्रोमा के लिए दु:ख हुआ, उसके गोल-मटोल शरीर और गुस्से से भरी काली आंखों की ओर देखते हुए झेंप महसूस हुई।

उसी शाम को मैंने उस लंगड़ी लड़की को देखा। सीढ़ियों से आंगन में उतरते समय उसकी बैसाखी नीचे गिर पड़ी और वह, मोम जैसी उंगलियों से जंगले को थामे वहीं खड़ी रह गई–असहाय और क्षीणकाय। मैंने बैसाखी को उठाना चाहा, लेकिन मेरे हाथों में बंधी पट्टी ने बाधा दी। हताश और झुंझलाहट से भरा मैं काफी देर तक बैसाखी को उठाने की कोशिश करता रहा और मुझसे कुछ ऊंचाई पर खड़ी हुई वह धीरे-धीरे हंसती रही।

"तेरे हाथों को क्या हुआ?" उसने पूछा।

"जल गए।"

"और मैं लंगड़ी हूं। तू हमारे इसी अहाते में रहता है? तुझे अस्पताल में बहुत दिनों तक रहना पड़ा? मुझे तो बहुत दिन लगे थे!"

उसने उसांस भरकर इतना और जोड़ दिया:

बहुत ही दिन था।

वह पुराना, मगर एकदम साफ धुला फ्राक पहने थी जिसपर घोड़े के नीले लाल छपे थे। ढंग से संवारे गये बालों की एक मोटी और छोटी सी चोटी उसके वक्ष पर पड़ी थी। उसकी आंखे बड़ी और गम्भीर थीं जिनकी शान्त गहराइयों में नीली अग्नि दमकती थी और उसके क्षीण, तीखी नाक वाले चेहरे को आलोकित करती थी। उसकी मुस्कराहट भी प्यारी थी। लेकिन मुझे वह अच्छी नहीं लगी। रोगी जैसा उसका समूचा शरीर जैसे यह कहता प्रतीत होता था :

"कृपया मुझे न छूना!"

यह कैसे हुआ कि मेरे साथी इसके प्रेम में पड़ गए?

"मैं बहुत दिनों से बीमार हूं," खुशी से, यहां तक कि आवाज में कुछ गर्व का पुट लाते हुए उसने मुझे बताया। "हमारी पड़ोसिन ने मुझपर टोना कर दिया था। लड़ाई तो उसकी हुई मेरी मां से और इसका बदला लेने के लिए उसने टोना कर दिया मुझपर... अस्पताल में डर लगा?"

"हां..."

उसकी उपस्थिति में मुझे बड़ा अटपटा लग रहा था और इसलिये मैं कमरे में चला आया।

आधी रात के करीब नानी ने धीरे से मुझे जगाया।

"चलोगे नहीं? दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारे हाथ जल्दी ठीक हो जाएंगे..."

उसने मेरी बांह पकड़ी और मुझे पकड़े हुए अंधेरे में इस तरह ले चली मानो मैं अंधा हूं। रात काली और नम थी, हवा तेज गति से बहने वाली नदी की भांति थमने का नाम नहीं लेती थी और रेत इतनी ठंडी थी कि पांव सुन्न हुए जाते थे। नगरवासियों के घरों की अंधेरी खिड़कियों के पास नानी सावधानी से जाती, तीन बार सलीब का चिन्ह बनाती, खिड़की की ओटक पर पांच कोपेक और तीन बिस्कुट रखकर एक बार फिर सलीब का चिन्ह बनाती और तारकहीन आकाश की ओर आंखें उठाए फुसफुसाकर कहती :

"स्वर्ग की पवित्र रानी, सबपर दया करना – हम सभी तो पापी हैं तुम्हारी नजरों में, देवी मां!"

अपने घर से हम जितना ही दूर होते जा रहे थे, अंधेरा उतना ही घना होता जा रहा था, सन्नाटा बढ़ता जा रहा था। ऐसा मालूम होता था मानो रात के आकाश की अतल गहराइयों ने चांद और तारों को सदा के लिए निगल लिया हो। एक कुत्ता भागकर कहीं से आया और मुंह बाए हमारे सामने खड़ा हो गया। अंधेरे में उसकी आंखें चमक रही थीं। भय के मारे मैं नानी से चिपक गया।

"डरो नहीं," नानी ने कहा, "कुत्ता ही तो है। भूत-प्रेत इस समय बाहर नहीं निकलते, मुर्गे बोल चुके है।"

नानी ने कुत्ते को पुचकारा और उसका सिर थपथपाते हुए कहा:

"देख कुत्ते, मेरे नाती को डरा नहीं, समझा?"

कुत्ते ने मेरी टांगों से अपना बदन रगड़ा और हम तीनों आगे बढ़े। नानी बारह खिड़कियों के पास गई और उनकी ओटक पर अपना 'गुप्त दान' रख लौट आई। आकाश उजला हो चला। सलेटी घर अंधकार में से उभर आए, नापोल्नाया गिरजे की बुर्जी शक्कर की भांति सफेद चमकने लगी, कब्रिस्तान की ईंटों वाली चारदीवारी में अधिक दरारें दिखाई देने लगीं।

"तुम्हारी यह बूढ़ी नानी तो थक गई," वह बोली, "अब घर चलना चाहिए। औरतें जब सवेरे उठेंगी तो देखेंगी कि माता मरियम ने उनके बच्चों के लिए कुछ भेज दिया है। जब घर में पूरा नहीं पड़ता तो थोड़ा सहारा भी बहुत मालूम होता है। तुमसे क्या कहूं आल्योशा कि लोग कितनी ग़रीबी में जीवन बिताते है और कोई ऐसा नहीं है जिसे उनका कुछ ध्यान हो:

> अमीर आदमी नहीं करता चिन्ता भगवान की,
> क़यामत के दिन की और भगवान के न्याय की।
> सोने की माया में वह है कुछ ऐसा फंसा,
> ग़रीबों के प्रति दिल में न उपजे दया।
> मरने पर जाएगा सीधा नरक,
> सोने की माया में होगा गरक!

"दुःख की बात तो यही है। हम एक-दूसरे का ध्यान रखते हुए जीवन बिताएं तो भगवान भी हम सबका ध्यान रखें। मुझे इस बात की खुशी है कि तुम अब फिर मेरे पास आ गए..."

मैं अस्पष्ट सा यह अनुभव करते हुए मानो मैंने किसी एसी चीज का सम्पर्क प्राप्त किया हो जिसे कभी नहीं भूला जा सकता, शान्त भाव से खुश था। मेरे बराबर में लाल रंग की लोमड़ी जैसी थूथनी और सदय तथा क्षमा-याचना सी करती आंखों वाला कुत्ता चल रहा था।

"क्या यह अब हमारे साथ ही रहेगा?"

"क्यों नहीं, अगर इसका मन करता है तो हमारे साथ ही रहे। यह देखो, मैं इसे बिस्कुट दूंगी, मेरे पास दो बच रहे हैं। आओ, कुछ देर बेंच पर बैठ कर सुस्ता लें। मुझे थकान मालूम हो रही है..."

हम एक फाटक के पास रखी हुई बेंच पर बैठ गए। कुत्ता हमारे पांव के पास पसरकर सूखे बिस्कुट को चिचोड़ने लगा। नानी बताने लगी:

"पास ही में एक यहूदिन रहती है। उसके नौ बच्चे हैं, ऊपर-तले के। 'कहो कैसे चल रहा है,' एक दिन मैंने उससे पूछा। उसने कहा, 'चलना क्या है, बस भगवान का ही भरोसा है।'"

नानी के गरम बदन से चिपककर मेरी आंख लग गई थी।

जीवन एक बार फिर तेज गति से बह चला—छलछलाता और हिलोरें लेता हुआ। प्रत्येक नये दिन की प्रशस्त धारा अनगिनत घटनाओं की छाप मेरे हृदय पर छोड़ती जो कभी मुझे विस्मय-विमुग्ध या चिन्तित करती, ठेस पहुंचाती या सोचने को विवश करती।

लंगड़ी लड़की से यथासम्भव बार-बार मिलने, उससे बातें करने, या दरवाजे के पास पड़ी बेंच पर उसके साथ केवल चुपचाप बैठे रहने की इच्छा मेरे हृदय में भी शीघ्र ही प्रबल हो उठी। उसके संग चुपचाप बैठने में भी सुख मिलता। वह नन्हे से पक्षी की भांति साफ-सुथरी रहती और दोन प्रदेश के कज्जाकों के जीवन का सुन्दर वर्णन करती। अपने चाचा के साथ, जो घी-मक्खन बनाने के किसी कारखाने में मिस्तरी थे, एक लम्बे अर्से तक वह दोन प्रदेश में रह चुकी थी। इसके बाद उसके पिता, जो फिटर का काम करता था, नीज्नी नोव्गोरोद चले आए।

"मेरे एक चाचा और हैं जो खुद जार के यहां नौकरी करते हैं।"

छुट्टी की शाम को गली के सब लोग अपने घरों से बाहर आ जाते। लड़के-लड़कियां कब्रिस्तान की ओर निकल जाते जहां वे घेरे बनाकर गाते-नाचते, मर्द लोग शराबखानों में पहुंचते और गली में केवल स्त्रियां तथा

बच्चे ही रह जाते। स्त्रियां बेंचों या घरों के पास रेत पर ही बैठ जातीं और लड़ाई-झगड़ों तथा इधर-उधर की अपनी बातों से आकाश सिर पर उठा लेतीं। बच्चे गेंद और गोरोद्की* के खेल खेलते और उनकी माताएं खेल में दक्षता दिखानेवालों की प्रशंसा करतीं या अनाड़ीपन का परिचय देनेवालों का मजाक उड़ातीं। इतना शोर होता मगर वह मजा आता कि भुलाए न भूलता। बड़ों की उपस्थिति और उनकी दिलचस्पी से हम बच्चे और भी जोश में आ जाते और अपनी पूरी चुस्ती-फुर्ती दिखाते हुए बढ़कर होड़ करते। लेकिन, खेल में हम चाहे कितना भी क्यों न डूबे हों, कोस्त्रोमा, चूर्का और मैं लंगड़ी लड़की के पास जाने और अपनी हिम्मत का बखान करने का समय निकाल ही लेते।

"तुमने देखा ल्युद्मीला, कैसे एक ही चोट में मैंने सभी निशानों को गिरा दिया?"

वह कई बार अपना सिर हिलाकर मधुर ढंग से मुस्करा देती।

पहले हमारा समूचा दल हमेशा खेल में एक ही ओर रहने की कोशिश करता था, लेकिन अब मैंने देखा कि चूर्का और कोस्त्रोमा विरोधी पक्षों में रहना पसंद करते हैं, और एक-दूसरे के खिलाफ अपनी समूची शक्ति तथा चतुराई लगा देते हैं, यहां तक कि मारपीट और रोने-धोने की नौबत आ जाती है। एक दिन दोनों को अलग करने के लिए बड़ों को हस्तक्षेप करना पड़ा और उनपर पानी उंडेला गया मानो, आदमी न होकर वे कुत्ते हों!

ल्युद्मीला उस समय बेंच पर बैठी थी। अपना सही-सालिम पांव वह धरती पर पटकती और जब लड़नेवाले गुत्थम-गुत्था होकर लुढ़कते हुए उसके निकट आते तो वह उन्हें अपनी बैसाखी से दूर धकेल देती और भय से चीखकर कहती:

"बन्द करो यह लड़ाई!"

उसका चेहरा पीला पड़ जाता, मानो बेजान हो। आंखें धुंधली और फटी-फटी सी हो जातीं। ऐसा मालूम होता मानो उसे दौरा आनेवाला हो।

---

*रूस में खेला जानेवाला एक खेल जिसमें एक चौकोर घेरे में खड़े रखे लकड़ी के बेलनदार टुकड़ों को दूर से डंडा मारकर घेरे में से बाहर निकाला जाता है। —सं०

एक अन्य बार गोरोद्की के खेल में चूर्का से बुरी तरह हार खाने के बाद कोस्त्रोमा परचूनी की एक दुकान में जई की पेटी के पीछे मुंह छिपाकर दुबककर बैठ गया और सुबक-सुबककर मूक ढंग से रोने लगा। भयानक दृश्य था। उसने अपनी बत्तीसी इतने जोरों से भींच ली थी कि उसके जबड़े के पुट्ठे खूब उभर आए और उसका क्षीण चेहरा मानो पथरा गया हो। उसकी काली उदासी भरी आंखों से बड़े-बड़े आंसू गिर रहे थे। मेरे दम-दिलासा देने पर उसने आंसुओं के कारण रुंधे कण्ठ से फुसफुसाकर कहा :

"देख लेना... मैं उसके सिर पर ईंट दे मारूंगा .. तब उसे पता चलेगा!"

चूर्का बहुत उद्धत हो गया। गली के बीचोबीच इस तरह चलता मानो स्वयंवर में जा रहा हो—सिर पर तिरछी टोपी रखे, जेबों में हाथ डाले।

वह दांतों के बीच से थूक की पिचकारी छोड़ना सीख गया और यकीन दिलाता :

"मैं जल्दी ही सिगरेट पीना सीख लूंगा। दो बार तो मैं पी भी चुका हूं, लेकिन मतली आती है।"

मुझे यह सब अच्छा न लगता। मैं देख रहा था कि मेरा साथी मुझसे दूर होता जा रहा है और मुझे प्रतीत होता कि इसके लिये ल्युद्मीला ही जिम्मेदार है।

एक शाम को जब मैं अपने बटोरे हुए चिथड़ों और हड्डियों की छानबीन कर रहा था ल्युद्मीला अपनी बैसाखी पर झूलते तथा अपना दाहिना हाथ हिलाते हुए मेरे पास आई।

"नमस्ते!" तीन बार अपने सिर को हल्का सा झटका देते हुए उसने कहा। "कोस्त्रोमा तेरे साथ गया था?"

"हां।"

"और चूर्का?"

"चूर्का अब हमारे साथ नहीं खेलता। और यह सब तेरा ही दोष है। वे दोनों तुझसे प्रेम करते है और इसीलिए आपस में लड़ते है..."

उसका चेहरा लाल हो उठा, किन्तु व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोली :

"यह और लो। मैं किसलिये दोषी हूं?"

"तूने उन्हें अपने से प्रेम क्यों करने दिया?"

"मैं क्या उनसे कहने गई थी कि तुम मुझसे प्रेम करो?" उसने गुस्से से जवाब दिया और यह कहते हुए चली गई। "यह सब बकवास है! मैं उनसे बड़ी हूं। मैं चौदह साल की हूं। अपने से बड़ी लड़कियों से भी क्या कोई प्रेम करता है?"

"तुझे बड़ा पता है!" उसके हृदय को आहत करने के लक्ष्य से मैंने चिल्लाकर कहा। "दुकानदार क्लीस्त की बहन इतनी बूढी हो गयी फिर भी ढेर सारे लड़के उससे छेड़खानी करते रहते हैं!"

बैसाखी को रेत में गहरी गड़ाते हुए ल्युद्मीला मेरे पास लौटी।

"तू खुद कुछ नहीं जानता," उसने आंसुओं से भीगी आवाज में जल्दी-जल्दी कहा। उसकी सुंदर आंखों में बिजली कौंध रही थी। "दुकानदार की बहन तो एक आवारा औरत है, लेकिन मैं—तू क्या मुझे भी वैसी ही समझता है? मैं अभी छोटी हूं। किसी को भी अभी मुझे छूना या चिकोटी नहीं काटना चाहिये। अगर तूने "कामचदाल्का" उपन्यास का दूसरा भाग पढ़ा होता तो तू इस तरह की बातें नहीं करता!"

वह सुबकियां लेती हुई चली गई। मुझे उसपर तरस आया। उसके शब्दों में सचमुच कुछ सचाई थी जिससे मैं परिचित नहीं था। मेरे साथी क्यों उसे चिकोटी काटते हैं? तिसपर यह भी कहते हैं कि वे उससे प्रेम करते हैं...

अगले दिन ल्युद्मीला से अपनी ग़लती माफ कराने के लिए मैंने दो कोपेक की उसकी मनपसन्द मीठी गोलियां खरीदीं।

"लोगी?"

"जा यहां से! मैं तुझसे दोस्ती नहीं रखना चाहती," उसने जबर्दस्ती गुस्से में भरकर कहा।

लेकिन उसी क्षण उसने यह कहते हुए गोलियां ले लीं:

"इन्हें कागज़ में तो लपेट लिया होता। ज़रा अपने हाथ तो देख, कितने गंदे हैं।"

"मैंने इन्हें बहुत धोया, लेकिन ये साफ़ ही नहीं हुए।"

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसका हाथ सूखा और गर्म था। उसने मेरा हाथ उलट-पलटकर देखा।

"कितना ख़राब कर लिया तूने हाथ..."

"तेरी उंगलियां भी तो छिदी हुई हैं..."

"यह सुई की मेहरबानी है। मैं बहुत सीती हूं..."

कुछ मिनट रुककर, इधर-उधर ताकने के बाद उसने सुझाव दिया: "चल, कहीं छिपकर बैठें और "कास्चदाल्का" पढ़ें। क्या ख्याल है?"

छिपकर बैठने की जगह खोजने में काफ़ी समय लग गया। अन्त में हमने निश्चय किया कि हमाम घर की ड्योढ़ी ठीक रहेगी। वहां अंधेरा जरूर था, लेकिन हम खिड़की के पास बैठ सकते थे जो सायबान और कसाईखाने के बीचवाले गन्दे मैदान की ओर खुलती थी। लोग बिरले ही उधर आते थे।

सो वह वहां, खिड़की के पास बैठ गई। उसकी लगड़ी टांग बेंच पर फैली थी और अच्छी सलामत टांग फ़र्श पर। एक खस्ताहाल पुस्तक उसकी आंखों के सामने थी और उसके मुंह से नीरस तथा समझ में न आनेवाले शब्दों की धारा प्रवाहित हो रही थी। लेकिन मुझे उसने अभिभूत कर लिया। फर्श पर बैठा हुआ मैं उसकी गम्भीर आंखों से निकलती दो नीली लपटों को पुस्तक के पन्नों पर तिरते हुए देख सकता था—कभी वे आंसुओं के कारण धुंधली हो जातीं और वह थरथराती आवाज में, समझ में न आनेवाले अनजाने शब्द-समूहों का उच्चारण करती। मैं इन शब्दों को पकड़ता और विभिन्न प्रकार से जोड़-तोड़ बैठाकर उन्हें एक छंद में बांधने की कोशिश करता। इसका नतीजा यह होता कि किताब में क्या कहा गया है वह बिल्कुल मेरे पल्ले न पड़ता।

मेरे घुटनों पर कुत्ता सोया हुआ था। मैंने उसका नाम पवन रख छोड़ा था। कारण कि वह लम्बा और झबरीला था, बहुत ही तेज दौड़ता था और चिमनी में पतझड़ की हवा की तरह आवाज निकालता था।

"सुन रहा है?" लड़की ने पूछा।

मैंने चुपचाप सिर हिलाकर हामी भर दी। शब्दों का आल-जाल मुझे अधिकाधिक विचलित कर रहा था और मैं अधिकाधिक बेचैनी और व्यग्रता के साथ, शब्दों को एक नये क्रम में गूंथकर उन्हें किसी गीत के शब्दों का रूप देना चाहता था, जिसमें प्रत्येक शब्द मानो सजीव होता है तथा आसमान के तारे की तरह उज्ज्वल जगमगाता है।

जब अंधेरा हो गया तो ल्युद्मीला ने अपना थका हाथ जिसमें वह पुस्तक थामे थी, नीचे कर लिया।

बढ़िया है न? देखा न

इस शाम के बाद से हमाम घर की ड्योढ़ी में अक्सर हमारी बैठक जमती। और सबसे बड़े सन्तोष की बात तो यह थी कि ल्युद्मीला ने शीघ्र ही "कामचलाऊ" का पीछा छोड़ दिया। मैं उन्हें यह नहीं बता सका कि यह अन्तहीन पुस्तक किस बारे में है। अन्तहीन इसलिए कि दूसरे भाग के बाद (जिससे हमने इसे पढ़ना शुरू किया था) तीसरा भाग सामने आया और ल्युद्मीला ने बताया कि चौथा भाग भी है।

बादल-बरखा के दिनों में तो वहां बैठने में विशेष आनन्द आता, केवल शनिवारों को छोड़कर क्योंकि शनिवार के दिन हमाम घर गर्म किया जाता था।

वर्षा झमाझम बरसती और किसी को घर से बाहर न निकलने देती। फलतः हमारे अंधेरे कोने के पास किसी के भी फटकने का कोई खटका न रहता। ल्युद्मीला की जान इस बात से बेहद सूखती थी कि कहीं हम पकड़े न जाएं।

"तुझे पता है कि हमें इस तरह बैठा देखकर वे क्या सोचेंगे?" वह धीरे से पूछती थी।

यह मैं जानता था और इसलिए पकड़े जाने से मैं भी डरता था। वहां हम घण्टों बैठे बातें करते। कभी मैं उसे नानी की कहानियां सुनाता और कभी ल्युद्मीला मेद्वेदित्सा नदी के तटवर्ती कज्जाकों के जीवन का वर्णन करती।

"वहां के क्या कहने!" उसांस भरकर वह कहती। "यहां की भांति नहीं। यहां तो केवल भिखारी ही रह सकते हैं..."

मैंने निश्चय किया कि बड़ा होने पर मैं जरूर मेद्वेदित्सा नदी की सैर करूंगा।

शीघ्र ही हमाम घर की ड्योढ़ी में हमारी बैठकों का सिलसिला खत्म हो गया। ल्युद्मीला की मां को एक समूर कमानेवाले के यहां काम मिल गया और वह सवेरे ही घर से चली जाती, उसकी बहन स्कूल में पढ़ती थी और भाई एक टाइल फ़ैक्टरी में काम करता था। जब मौसम खराब होता तो खाना बनाने, कमरे और रसोई को ठीक-ठाक करने में मैं उसका हाथ बंटाता।

"हम-तुम पति-पत्नी की तरह ही रहते हैं," वह हंसकर कहती।

केवल हम एकसाथ नहीं सोते सच पूछो तो हमारा जीवन उनसे अच्छा है—पति तो कभी अपनी पत्नियों की मदद नहीं करते।"

जब भी मेरे पास कुछ पैसे होते मैं कोई मिठाई खरीद लाता और हम दोनों चाय बनाते, पीते और बाद मे ठंडा पानी डालकर समोवार को ठंडा कर देते जिससे ल्युद्मीला की चिड़चिड़ी मां यह न ताड़ सके कि हमने समोवार को गर्म किया था। कभी-कभी नानी भी आकर हमारे साथ बैठ जाती, लैस बुनती या कसीदा काढ़ती और हमें बहुत ही बढ़िया कहानियां सुनाती और जब नाना बाहर चले जाते तो ल्युद्मीला हमारे यहा आती और दीन-दुनिया की चिन्ता से मुक्त हम खूब मौज मनाते।

नानी कहती :

"कितना ठाठदार जीवन है हमारा। अपने पैसे से जो जी में आये, वही करो।"

वह हमारे मिलने-जुलने को बढ़ावा देती।

"लड़के-लडकी की दोस्ती अच्छी चीज है केवल उन्हे कोई अटपटी हरकत नही करनी चाहिए..."

और अत्यन्त सीधे-सादे ढंग से नानी हमे बताती कि 'अटपटी हरकत' से उसका क्या मतलब है। वह बहुत सुन्दर प्रेरणापूर्ण ढंग से अपनी बात कहती और मै सहज ही समझ जाता कि फूलो को उस समय तक नहीं छेडना चाहिए जब तक कि वे पूरी तरह से खिल न जाएं, अन्यथा न तो वे सुगंध देंगे और न ही उनमे फल आएंगे।

'अटपटी हरकत' करने की मेरी कोई इच्छा नही थी, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि ल्युद्मीला और मै उन चीजो के बारे मे बातें नही करते थे जिनका जिक्र आने पर साधारणतया चुप्पी साध ली जाती है। हां, कभी-कभी ऐसे विषयों पर बाते चल ही पडती थीं, क्योंकि स्त्री-पुरुष सम्बन्धो के भोडे चित्र बहुत अक्सर और बेहद परेशान करनेवाले रूप में हमारी आंखों के सामने आते थे और हमें हद से ज्यादा विक्षुब्ध करते थे।

ल्युद्मीला के पिता येव्सेयेन्को की उम्र चालीस से कम न होगी। था वह छैलछबीला: घुंघराले बाल, घनी मूंछ और भारी भौंहें जो एक अजीब गर्वीले अन्दाज में नाचती रहती थीं। स्वभाव का इतना चुप्पा कि देखकर अचरज होता। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उसे कभी बोलते सुना

हो। जब वह अपने बच्चों को प्यार करता तो गूंगे-बहरों की भांति आवाज़ करके रह जाता और अपनी पत्नी को पीटते समय भी उसके मुह से एक शब्द न निकलता।

पर्व-समारोहों की शामों को नीले रंग की कमीज, चौड़ी मोरियों की मखमली पतलून और पालिश किये गये चमकदार जूते पहने, कंधे पर बड़ा सा एकार्डियन लटकाये वह घर से निकलकर फाटक पर आ खड़ा होता – चुस्त और दुरुस्त, परेड के लिए तैयार सैनिक की भांति। शीघ्र ही फाटक के सामने चहल-पहल शुरू हो जाती। लड़कियों और स्त्रियों के दल बत्तखों के झुंड की भांति सामने से गुजरते। कभी वे कनखियों से देखतीं – कुछ छिपकर पलकों की ओट में से। कभी वे खुलकर नजरें लड़ातीं – मानो भूखी आंखों से उसे चटकर जाना चाहती हों। उधर वह अपना अधर फैलाये काली आंखों से उनका अंग-अंग टटोलता। आंखों की इस मूक बातचीत का और पुरुष के सामने स्त्रियों की इस मनहूस तथा धीमी गतिविधि में कुत्ते-कुतियों की हरकत जैसी कोई अप्रिय चीज होती थी। ऐसा लगता था कि जिसको भी वह चाहेगा, जिस किसी की ओर भी वह अपनी पुरुष दृष्टि से इशारा करेगा, वही उसके सामने आकर बिछ जाएगी, सड़क की धूल चाटने लगेगी।

ल्युद्मीला की मां बड़बड़ाती:

"क्या बकरे की भांति आंखें नचा रहा है – निर्लज्ज तोबड़ा!" लम्बी, दुबली-पतली, लम्बोतरा और धब्बोंवाला चेहरा, मियादी बुखार के बाद छोटे-छोटे छंटे हुए बाल – वह घिसी हुई झाड़ू जैसी लगती थी।

ल्युद्मीला बगल में ही बैठी होती और इधर-उधर की बातें करके सड़क से अपनी मां का ध्यान हटाने का निष्फल प्रयत्न करती।

"मेरी जान न खा, लंगड़ी चुड़ैल!" बेचैनी से अपनी आंखें मिचमिचाते हुए उसकी मां बुदबुदाकर कहती। उसकी छोटी-छोटी मंगोली आंखों में एक अजीब सूनापन और स्थिरता दिखाई देती – मानो उन्होंने किसी चीज को छुआ हो और फिर उसीसे चिपककर, वहीं की वहीं स्थिर रह गई हों।

"गुस्सा न करो मां, इससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा," ल्युद्मीला कहती. "ज़रा उस चटाई बनानेवाले की विधवा को तो देखो, उसने क्या सिंगार किया है!"

मा उस लम्बी-तड़गी विधवा की ओर देखती। फिर आंसुओं में भीगे स्वर में निर्ममतापूर्वक कहती, "मैं इससे बढ़कर सिंगार करती अगर तुम तीनों न होते। भीतर और बाहर, तुम लोगों ने कुछ भी बाक़ी नहीं छोड़ा, मुझे पूरी तरह से नोच खाया!"

चटाई बनानेवाले की विधवा छोटे से मकान जैसी लगती थी। उसका वक्ष छज्जे की भांति आगे को निकला हुआ था। कसकर बांधे हुए हरे रूमाल से घिरा उसका लाल चेहरा ऐसा मालूम होता था मानो वह एक झरोखा है जिसे सांझ के सूरज की लाली ने रंग दिया है।

येव्सेयेन्को अपना एकार्डियन संभालता और वक्ष से सटाकर बजाने लगता। बड़े रंग थे वाद्य-यंत्र में, उससे निकलती ध्वनियां कहीं खींच ले जातीं, गली के तमाम बच्चे खिंचे चले आते, वादक के पैरों में गिरते और मुग्ध होकर रेत पर बुत बने बैठे रहते।

येव्सेयेन्को की पत्नी फुंकार छोड़ती, "ज़रा ठहर तो, वो दिन दूर नहीं जब तेरी खोपड़ी तोड़ दी जायेगी।"

वह चुप्पी साधे तिरछी नजर से उसकी ओर देखता।

चटाई बनानेवाले की विधवा ख़लीस्त की दुकान के सामने वाली बेंच पर तन्मय सी बैठी रहती। उसका सिर एक ओर को झुका होता और भाव-विभोर होकर वह संगीत सुनती रहती।

क़ब्रिस्तान के उस पार का मैदान छिपते हुए सूरज की लाली से सिन्दूरी हो उठता और गली एक तेज नदी का रूप धारण कर लेती जिसमें रंग-बिरंगे शोख कपडो मे लिपटे मांस के लोथड़े तैरते और बच्चे बगूलो की भांति चक्कर लगाते। गर्म हवा मादक हो उठती। धूप में तपी रेत से पंचमेली गंध उठती जिसमे बूचड़खाने से आनेवाली रक्त की बोझिल गंध सब से तेज होती। समूर कसानेवालो के अहातो से खालों की नमकीन तेजाबी गंध आती। स्त्रियो की बकबक और चुचुआहट, नशे में धुत्त पुरुषों का शोर, बच्चो की तेज चिल्लाहट और एकार्डियन के मन्द सप्तक के स्वर मिलकर एक ऐसे संगीत का रूप धारण कर लेते जिसकी धड़कन दूर-दूर तक सुनाई देती—मानो प्रसवमान धरती अथक रूप से गहरी उसांसें ले रही हो। सभी कुछ फूहड़, नग्न और भोंडा होता, और इस कुत्सित जीवन के प्रति जो इस हद तक निर्लज्ज पाशविकता में डूबा था, व्यापक तथा सबल विश्वास का संचार करता। अपनी शक्ति की डींग मारते हुए,

वह उदासी और व्यग्रता के साथ उसकी निकासी के लिए मार्ग खोज रहा था।

और इस शोर-शराबे में से कभी-कभी कुछ ऐसे शानदार शब्द उभरकर आते जो हृदय में चुभ जाते और स्मृति में जमकर बैठ जाते:

"सभी एक साथ मत टूट पड़ो, यह ठीक नहीं है बारी-बारी से पीटना चाहिये..."

"जब हम खुद अपने पर रहम नहीं करते तो दूसरे ही हम पर क्यों रहम करें?.."

"क्या खुदा ने मज़ाक के लिए ही लुगाई को बनाया था?..'

रात घिरने लगती। वायु में और भी ताज़गी आ जाती। शोर-शराबा शान्त हो चलता। लकड़ी के घर मानो बढ़ और फैलकर छायाओं का बाना धारण कर लेते। सोने का समय हो जाता। बच्चों को घरों में खदेड़ दिया जाता, कुछ वहीं बाड़ों के नीचे, अपनी माताओं के पावों पर या गोद में सो जाते। रात आने पर बड़े बच्चे भी अधिक शान्त, अधिक नम्र हो जाते। येव्सेयेन्को, न जाने कब, विलीन हो जाता—मानो वह छाया बनकर उड़ गया हो। चटाई बनानेवाले की विधवा भी गायब हो जाती और एकार्डियन की गहरी ध्वनि अब कब्रिस्तान के उस पार कहीं बहुत दूर से आती मालूम होती। ल्युद्मीला की मां, शरीर को दोहरा किए, बैंच पर बैठी रहती। उसकी पीठ बिल्ली की भांति कमान सी झुकी होती। मेरी नानी पड़ोसिन के पास जो जनाई और शादी-ब्याह का जोड़ बैठाने का काम करती थी, चाय पीने चली जाती। यह पड़ोसिन एक भारी-भरकम और मजबूत पुट्ठों वाली स्त्री थी। उसके चेहरे पर बत्तख की चोंच जैसी नाक चिपकी थी। उसके मर्दाने वक्ष पर 'मौत के मुंह में जाते हुओं की रक्षा' नामक सोने का एक तमगा लटका रहता था। हमारी गली में सभी उससे डरते थे। वे उसे डायन, जादू-टोने करनेवाली समझते थे। लोगों का कहना था कि एक बार वह लपटों की परवाह न कर, जलते हुए घर में घुस गई थी और किसी कर्नल के तीन बच्चों तथा बीमार पत्नी को अकेली ही बाहर निकाल लाई थी।

नानी और उसमें मित्रता थी। गली में आते-जाते जब भी वे एक-दूसरे को देखतीं तो उनके चेहरों पर, दूर से ही, एक खास हार्दिकतापूर्ण मुसकराहट खेल जाती।

एक दिन कोस्त्रोमा, ल्युद्मीला और मैं फाटक के पास बेंच पर बैठे थे। चूर्का ने ल्युद्मीला के भाई को लड़ने के लिए ललकारा था, वे एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हुए, धूल में हाथ-पांव पटक रहे थे।

ल्युद्मीला सहमते हुए अनुरोध कर रही थी- "बन्द करो यह लड़ाई!"

कोस्त्रोमा की काली आंखें ल्युद्मीला पर जमी थीं। कनखियों से उसे देखते हुए वह शिकारी कालीनिन का किस्सा सुना रहा था। कालीनिन एक बूढ़ा खुर्राट था। उसकी आंखों से मक्कारी टपकती थी और समूची बस्ती में वह बदनाम था। हाल ही में वह मरा था लेकिन उसका ताबूत कब्रिस्तान में दफ़नाया नहीं गया, बल्कि अन्य क़ब्रों से अलग ऊपर ही छोड़ दिया गया। उसके ताबूत का रंग काला था और पाये ऊंचे थे। ढक्कन पर, सफेद रंग में सलीब, बर्छी, एक डंडा और दो हड्डियों के चित्र बने थे।

बूढ़ा हर रात अपने ताबूत से उठता है और किसी चीज़ की खोज में, पहले मुर्गे के बांग देने तक, कब्रिस्तान में इधर-उधर भटकता रहता है।

"ऐसी डरावनी बातें क्यों करते हो!" ल्युद्मीला ने अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा।

"मुझे जाने दो!" ल्युद्मीला के भाई के चंगुल से अपने को छुड़ाते हुए चूर्का चिल्लाया और खिल्ली उड़ाने के अंदाज में कोस्त्रोमा से बोला। "क्यों झूठ बोल रहा है? मैंने खुद अपनी आंखों से उन्हें ताबूत को दफ़नाते और क़ब्र के पत्थर के लिए एक खाली ताबूत रखते हुए देखा है... और जहां तक उसके भूत बनकर रात को क़ब्रिस्तान में भटकने की बात है, तो इसे नशे में धुत्त लोहारों ने खुद अपने मन से ही गढ़ लिया है!.."

"हम तो तब जानें जब तुम एक रात क़ब्रिस्तान में जाकर बिताओ!" उड़ती हुई नजर से भी उसकी ओर देखने का कष्ट न कर कोस्त्रोमा ने बिगड़कर जवाब दिया।

दोनों में बहस छिड़ गयी। उदासी से अपना सिर झटकाते हुए ल्युद्मीला ने अपनी मां से पूछा:

"क्यों मां, क्या रात को मृतात्माएं चक्कर लगाती हैं?"

दूर से आयी हुई प्रतिध्वनि की तरह मां ने जवाब दिया, "हां, लगाती हैं।"

दुकानदारिन का बीस वर्षीय मोटा-थलथल और लाल गालों वाला बेटा वालेक हमारे पास आया और हमारा विवाद सुनकर बोला:

"तीनों में से अगर कोई भी सुबह तक ताबूत पर लेटा रहे, तो मैं उसे बीस कोपेक और दस सिगरेट देने के लिए तैयार हूं। अगर डरकर भागे तो मुझे जी भरकर उसके कान खींचने का अधिकार होगा। बोलो, क्या कहते हो?"

सभी झेंपकर चुप हो गये। ल्युद्मीला की मां ने इस खामोशी को तोड़ते हुए कहा:

"मूर्खता की बातें न कर! बच्चों को इस तरह के काम करने के लिए उकसाना क्या अच्छा है?.."

"मुझे एक रूबल दे तो मैं जाने को तैयार हूं," चूर्का बुदबुदाया।

"बीस कोपेक में जाते नानी मरती है, क्यों?' कोस्त्रोमा ने डंक सा मारते हुए कहा। फिर वालेक से बोला, "तुम इसे एक रूबल भी दोगे तब भी नहीं जाएगा। बेकार की डींग मार रहा है।"

"अच्छी बात है। ले रूबल!"

चूर्का जमीन से उठा और बाड़ के साथ-साथ चलता हुआ चुपचाप तथा धीरे-धीरे वहां से खिसक गया। कोस्त्रोमा ने मुंह में अपनी उंगलियां डालकर उसके पीछे जोर से सीटी बजाई और ल्युद्मीला व्यग्र स्वर में कह उठी:

"हाय राम... आखिर इतना बढ़-चढ़कर बोलने की जरूरत ही क्या थी?"

"कायर हो तुम सब!" वालेक ने कोंचते हुए कहा। "और गली के सब से बढ़िया लड़ैत समझे जाते हो। पिल्ले कहीं के..."

उसका इस तरह कोंचना मुझे अखरा। यह मोटा वालेक हमें कभी अच्छा नहीं लगता था। वह हमेशा बच्चों को कोई न कोई शैतानी करने के लिए उकसाता, लड़कियों और स्त्रियों के बारे में गंदे किस्से सुनाता और बच्चों को उनकी खिल्ली उड़ाना सिखाता। बच्चे उसके कहने में आ जाते और बाद में इसका बुरी तरह फल भुगतते। न जाने क्यों, मेरे कुत्ते से उसे खास चिढ़ थी। वह हमेशा उसपर पत्थर फेंकता और एक दिन तो उसने रोटी के टुकड़े में सूई रखकर उसे खिला दी।

लेकिन चूर्का का इस तरह से मुंह की खाकर खिसक जाना मुझे और भी ज्यादा अखरा।

मैंने वालेक से कहा:

ना दे रूबल मै जाता हू।

मेरी खिल्ली उड़ाते और मुझे डराते हुए वह ल्युद्मीला की मां के हाथ मे रूबल देने लगा।

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए, मैं नहीं रखूंगी तुम्हारा रूबल!" ल्युद्मीला की मां ने कड़ाई से कहा और गुस्से में भरकर चली गई।

ल्युद्मीला ने भी रूबल लेने से इन्कार कर दिया। वालेक हमारा अब और भी अधिक मजाक उड़ाने लगा। मैं बिना रूबल लिए ही जाने को तैयार था कि तभी नानी आ गई। उसने सारा हाल सुना, रूबल अपने हाथ में ले लिया और शान्त स्वर में मुझसे कहा:

"अपना कोट पहन लेना और एक कम्बल भी साथ ले लेना, सुबह होते ठंड हो जाती है..."

नानी के शब्दों ने मुझे यह उम्मीद बंधाई कि मेरे साथ कोई बुरी बात नहीं होगी।

वालेक ने शर्त रखी कि सुबह होने तक सारी रात मै ताबूत पर बैठा या लेटा रहूं, किसी भी हालत में वहां से न हटूं चाहे ताबूत हिले-डुले या उस समय डगमगाए जब बूढ़ा कालोनिन उससे बाहर निकलना शुरू करे। अगर मै उसपर से कूदकर जमीन पर खड़ा हो गया तो बाजी हाथ से जाती रहेगी।

"ध्यान रहे," वालेक ने चेतावनी दी, "मैं सारी रात तेरी निगरानी करूंगा।"

जब मैं क़ब्रिस्तान के लिए रवाना हुआ तो नानी ने मुझपर सलीब का चिन्ह बनाया और मुझे सलाह दी:

"अगर तुम्हे कुछ दिखाई भी दे तो अपनी जगह से हिलना नहीं। बस, माता मरियम का नाम लेना, सब ठीक हो जाएगा..."

मैं तेज डगों से चल दिया। एक ही चिन्ता मुझे थी। वह यह कि जिस किस्से को मैने उठाया है, वह जल्दी से जल्दी पूरा हो जाए। वालेक, कोस्त्रोमा तथा अन्य कुछ लड़के भी मेरे साथ हो लिए। ईंटों की दीवार को पार करते समय मेरी टांग कम्बल में फंस गई और मै गिर पड़ा। लेकिन मै फुर्ती से उछलकर खड़ा हो गया मानो खुद धरती ने पीछे से लात मारकर मुझे फिर से खड़ा कर दिया हो। दीवार के दूसरी ओर से

हंसने की आवाज सुनाई दी। मेरे हृदय में जैसे एक झटका सा लगा और सारे बदन में फुरफुरी सी दौड़ गई।

ठोकरें खाता हुआ मैं काले ताबूत के पास पहुंचा। एक ओर से वह रेत में धंसा था, दूसरी ओर उसके छोटे-छोटे, मोटे पाये दिखाई दे रहे थे। लगता था मानो किसी ने उसे उठाने की कोशिश की हो और उसे जगह से हिलाया हो। मैं ताबूत के सिरे पर, उसके पायों के ऊपर बैठ गया और इधर-उधर नजर डाली. छोटे-छोटे टीलों की भांति उभरी कब्रों का क़ब्रिस्तान भूरे सलेटी रंग की सलीबों का घना जंगल सा मालूम होता था। सलीबों की लपलपाती हुई छायाएं मानो हाथ फैलाकर कब्रों के टूहों की सख्त घास का आलिंगन करती प्रतीत होती थीं। कब्रों के बीच कहीं-कहीं, दुबले-पतले, क्षीण भोज वृक्ष उगे थे जिनकी डालें एक-दूसरे से पृथक क़ब्रों के बीच सम्पर्क स्थापित कर रही थीं। उनकी परछाइयों की लेस को बेधती हुई घास की सूखी पत्तियां नज़र आती थीं। भूरे रंग की ये सूखी पत्तियां सबसे भयानक थीं। कब्रिस्तान का गिरजा बर्फ के एक टीले की भांति खड़ा था और गतिहीन बादलों में क्षीणकाय चांद चमक रहा था।

याज़ के पिता—'निकम्मे आदमी'—ने बड़ी अलसाहट के साथ गश्त का घंटा बजाया। हर बार, जब वह घंटे की रस्सी खींचता तो वह छत की चादर से रगड़ खाकर पहले तो दर्दीली आवाज पैदा करती और उसके बाद छोटे घंटे की शोक में डूबी लघु आवाज़ सुनाई देती।

मुझे चौकीदार की बात याद हो आई। वह अक्सर कहा करता था, "भगवान उनींदी रातों से बचाये"।

सभी कुछ भयानक और दमघोंट था। रात ठंडी थी, फिर भी मैं पसीने से तर हो गया। अगर बूढ़े कालीनिन ने अपने ताबूत में से निकलना शुरू किया तो क्या मैं भागकर चौकीदार की कोठरी तक भी पहुंच सकूंगा या नहीं ?

मैं क़ब्रिस्तान के कोने-कोने से परिचित था। याज़ और अपने अन्य साथियों के साथ यहां आकर बीसियों बार हम धमाचौकड़ी मचा चुके थे। और वहां, गिरजे के पास, मेरी मां की क़ब्र थी...

अभी सब कुछ नींद की गोद में नहीं गया था। बस्ती की ओर से क़हक़हे और गीतों के टुकड़े अभी भी सुनाई दे रहे थे। पहाड़ियों पर से

लबे के उन खड्डों से जहां मजदूर रेत खोदकर निकालते थे, या पड़ोस के कालोज्निक्का गांव से, एकार्डियन के चीखने और मुबकियां री लेने की आवाज आ रही थी। सदा नशे में धुत्त रहनेवाला लोहार मियाचोव कब्रिस्तान की दीवार के उस पार लड़खड़ाता तथा गीत गाता हुआ जा रहा था। सुनकर मैं उसे पहचान गया :

ओ हमारी अम्मा
के पापवा है कम्मा
और न किसी को चाहवे
बबुआ ही उसे भावे...

जीवन और चहल-पहल की इन आखिरी सांसों को सुनकर कुछ हिम्मत बंधी, लेकिन घंटे की प्रत्येक टनटन के साथ सन्नाटा गहरा होता गया और चरागाहों को डुबोने और उन्हें छिपा लेनेवाली नदी की भांति निस्तब्धता ने हर चीज का अस्तित्व मिटा दिया, अपने में उसे समा लिया। आत्मा सीमाहीन, अथाह शून्य में तैर रही थी और अंधेरे में दियासलाई की तरह बुझ जाती थी—शून्य के एक ऐसे महासागर में वह पूर्णतया विलीन हो गई जिसमें केवल हमारी पहुंच से दूर रहनेवाले तारे जीवित रहते और जगमगाते हैं और जमीन पर हर मुर्दा और अवांछनीय चीज गायब हो गयी।

कम्बल को अपने चारों ओर लपेटकर और पांव सिकोड़कर मैं बैठा था। मेरा मुंह गिरजे की ओर था और हर बार जब भी मैं हिलता-डुलता, ताबूत चरमर करता और रेत किरकिरा उठती।

मेरे पीछे जमीन से किसी चीज के टकराने की ठक से आवाज हुई—पहले एक बार, फिर दूसरी बार, और इसके बाद ईंट का एक ढेला ताबूत के पास आ गिरा। यह भयावह था, लेकिन मैंने तुरंत भांप लिया कि वारोक और उसके साथी मुझे डराने के लिए दीवार के उस पार से ये सब फेंक रहे हैं। यह सोचकर कि दीवार के उस पार लोग मौजूद हैं, मेरी दिलजमई हुई।

अपने आप ही मां के बारे में विचार आने लगे... एक बार उसने मुझे तभी आ पकड़ा था जब मैं सिगरेट पीने की कोशिश कर रहा था और वह मुझे मारने लगी। तब मैंने उससे कहा था :

"नहीं मारो। बिना मारे ही मेरा बुरा हाल है। मतली आती है.

मार के बाद मैं अलावघर के पीछे जा छिपा। मां की आवाज कानों में आई, वह नानी से कह रही थी:

"कितना हृदयहीन लड़का है। इसके मन में किसी के लिए ममता नहीं है..."

मां की यह बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ था। वह जब भी मुझे मारती-पीटती थी तो मुझे उसपर तरस आता था, उसके लिए झेंप अनुभव होती थी: बिरले ही वह मुझे उचित और ऐसी सजा देती थी, जो मेरी करनी के अनुरूप होती।

दुःख पहुंचानेवाली चीजों की जीवन में कोई कमी नहीं थी। अब इन लोगों को ही लो जो दीवार के उस पार मौजूद थे। उन्हें अच्छी तरह से मालूम था कि यहां, इस क़ब्रिस्तान में, अकेले बैठे रहना ही कुछ कम भयानक नहीं था। लेकिन वे थे कि मेरी रूह को और भी अधिक कब्ज करने पर तुले थे। आखिर क्यों?

मेरा मन हुआ कि चिल्लाकर उनसे कहूं:

"शैतान तुम्हें जहन्नुम रसीद करे!"

लेकिन क़ब्रिस्तान में शैतान का नाम लेना खतरनाक था। कौन जाने उसे वह कैसा लगे? वह जरूर कहीं पास में ही होगा।

रेत में अबरक के कणों की बहुतायत थी और वे चांद की रोशनी में हल्की चमक दिखा रहे थे। उन्हें देखकर मुझे याद आया कि एक दिन जब बेड़े पर लेटा हुआ मैं ओका नदी के पानी को देख रहा था, ठीक मेरी आंखों के सामने सहसा एक नन्ही सी मछली प्रकट हुई थी, लोट-पोटकर उसने मानवीय गाल का रूप धारण कर लिया था, पक्षियों जैसी छोटी सी गोल आंख से उसने मेरी ओर ताका था और फिर पेड़ से गिरे पत्ते की भांति फरफराती, डुबकी लगाकर पानी की गहराइयों में गायब हो गई थी।

मेरी स्मृति अत्यन्त क्रियाशील हो उठी और जीवन की विभिन्न घटनाओं को उभारकर मानो इनके जरिये उन तमाम डरावनी चीजों से अपनी रक्षा करने लगी जिनकी इस समय मेरी कल्पना जोर-शोर से रचना कर रही थी।

यह लो मजबूत पांवों से रेत में खड़बड़ करती एक साही मेरी ओर

आई। उसे देखकर मुझे घर के कोने-कोने में छिपे भूत का ध्यान हो आया जो ऐसा ही छोटा और इतना ही भोला होता होगा।

इसके साथ ही मुझे यह भी ध्यान आया कि कैसे नानी गुसलखाने के सामने उकडूँ बैठकर यह मन्त्र पढ़ा करती थी :

"मेरे नन्हे भूत, मुये तिलचट्टों को ले जा! .."

दूर, नगर के ऊपर जो मेरे दृष्टि-क्षेत्र से परे था, आकाश में उजाला फैलने लगा। प्रातःकाल की ठंडी हवा से मेरे गाले सिहरने-सिकुड़ने लगे। नींद के मारे मेरी पलकें भारी हो गईं। मैं कम्बल ओढ़कर गुड़ी-मुड़ी हो गया—जो भी होना हो, सो हो!

नानी ने आकर मुझे जगाया। वह मेरी बगल में खड़ी कम्बल को खींच रही थी और कह रही थी :

"उठो अब! ठिठुर तो नहीं गये? कहो, डर लगा?"

"डर तो लगा, लेकिन किसीसे कहना नहीं। लड़कों को नहीं बताना!"

"इसमें छिपाने की क्या बात है?" नानी ने कुछ अचरज से पूछा। "अगर डर नहीं लगता, तो बड़ाई की बात ही क्या..."

हम दोनों घर की ओर चले। रास्ते में नानी ने प्यार से कहा :

"मेरे लोटन कबूतर, दुनिया में हर चीज का खुद तजुर्बा करके देखना होता है... जो खुद सीखने से कन्नी काटता है, उसे दूसरे भी नहीं सिखाते..."

सांझ तक मैं अपनी गली का "हीरो" बन गया। जो भी मिलता, मुझसे पूछता :

"डर नहीं लगा?"

और मैं जवाब देता : "डर तो लगा!"

सिर हिलाकर वे जवाब देते :

"अरे, देखा न!"

दुकानदारिन ने बड़े विश्वास के साथ जोरों से घोषणा की :

"इसका मतलब यह है कि कालीनिन का क़ब्र से निकलकर चक्कर लगाना एकदम झूठी बात है। अगर यह बात सच होती तो क्या वह इस लड़के से डरकर क़ब्र में ही दुबका रहता? नहीं, टांग पकड़ कर वह इतने जोरों से इसे क़ब्रिस्तान से बाहर फेंकता कि जाने कहां जाकर गिरता!"

ल्युद्मीला ने मुझे चाव भरे अन्दाज से देखा और मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो नाना भी मुझसे खुश हैं–उनकी मूंछें खिली हुई थी। केवल चूर्का ऐसा था जो जलकर बोला :

"इसे कौन खटका? इसकी नानी तो जादूगरनी ठहरी!"

३

मेरा भाई कोल्या सुबह के छोटे सितारे की भांति योंही चुपचाप ओझल हो गया। वह, नानी और मैं बाहर सायबान में जमा लकड़ियों के ढेर पर सोते थे जिनपर पुराने चिथडे और गूदड फैले थे। पास ही छेदों भरी लकड़ियों की बनी दीवार के पीछे मकान-मालिक का मुर्गीघर था। अलसाई और पेट में दाना पड़ी मुर्गियों की कुटकुट और उनके परों की फड़फड़ाहट हम हर सांझ सुनते और हर सुबह स्वर्णिम मुर्गे की जोरदार बांग से हमारी आंख खुल जाती।

"ओ, तेरा बेड़ा ही गरक हो." नानी बुदबुदाती।

मैं पहले ही जग गया था और दीवार की दराजों में से आनेवाली सूरज की किरणों और उनमें तैरते धूल के रुपहले कणों को देख रहा था जो परियों की कहानी के शब्दों की भांति चमचमा रहे थे। लकड़ियों के ढेर से चूहे खड़बड़ कर रहे थे और छोटे-छोटे लाल कीड़े जिनके परों पर काली चित्तियां थीं. घूम-फिर रहे थे।

मुर्गियों की बींट और कूड़े-कचरे की गंध से घबराकर कभी-कभी मैं सायबान से बाहर निकल आता और छत पर चढ़कर वहां से पड़ोसियों को जागते हुए देखता–डीलडौल में लम्बे-चौड़े, नींद से बोझिल और मुंदी हुई सी आंखें!

एक खिड़की में से खेवैये फ़ेरमानोव का, जो एक गुमसुम शराबी था, झबरा सिर प्रकट होता। अपनी गुम्मा सी आंखों को मिचमिचाकर वह सूरज की ओर देखता और मुंह से सूअर की भांति आवाज़ निकालता। फिर नाना की शक्ल दिखाई देती–वे तेज़ी से अहाते में आते अपने सिर के गिने-चुने लाल बालों को दोनों हाथों से ठीक करते हुए। ठंडे पानी से नहाने की जल्दी में वह गुसलखाने की ओर लपके जाते। मकान-मालिक

की बातूनी बावर्चिन नजर आती, जिसका चेहरा झांइयोंवाला और नाक नुकीली थी। वह कोको पक्षी से मिलती-जुलती थी। खुद मालिक भी किसी बूढे और मोटे कबूतर जैसा था और अहाते के अन्य सब लोग भी मुझे किसी न किसी पशु या जंगली जन्तु की याद दिलाते थे।

सुहावनी और उजली सुबह थी, लेकिन मेरा मन भारी था और कहीं दूर खेतों की ओर जाने को जी चाहता था, जहां मेरे सिवा और कोई न हो। मैं जानता था कि लोग हमेशा की भांति उजले दिन पर अवश्य कालिख पोत देंगे।

एक दिन जब मैं छत पर लेटा हुआ था, नानी ने मुझे बुलाया और सिर हिलाकर बिस्तरे की ओर इशारा करते हुए धीमे से बोली :

"कोल्या तो मर गया..."

लड़के का नन्हा शरीर मलमल के लाल तकिये से लुढ़ककर फ़ैल्ट की चटाई पर आ गया था। उसका नीला सा बदन उघड़ा हुआ था। कमीज सिकुड़-सिमटकर गरदन से लिपट गई थी और उसका फूला हुआ पेट तथा फोड़ों से भरी बदनुमा टांगें दिखाई दे रही थीं। उसके हाथ अजीब ढंग से कमर के नीचे धंसे हुए थे मानो उसने उठने का प्रयत्न किया हो, लेकिन उठ न सका हो। उसका सिर एक ओर को कुछ झुक गया था।

कंघे से अपने बालों को सुलझाते हुए नानी बोली, "भगवान ने अच्छा किया जो इसे अपने पास बुला लिया। भला, इस मरियल शरीर को लेकर यह जीता भी किस तरह ?"

पैरों को थपथपाते, मानो नाचते हुए नाना भी आ गए और बहुत ही सावधानी से उन्होंने बच्चे की मुंदी हुई आंखों को छुआ। नानी ने झल्लाकर कहा :

"बिना धुले हाथों से इसे क्यों छू रहे हो ?"

नाना बुदबुदाए :

"दुनिया में पैदा हुआ... दो-चार दिन सांस ली, दाना-पानी चुगा—और बस फुर्र..."

नानी ने बीच में टोका, "यह कैसी बेकार की बातें कर रहे हो ?"

नाना ने बहकी-बहकी नजर से नानी की ओर देखा और अहाते की तरफ जाते हुए बोले :

4*

इसे दफनाने के लिए मेरे पास एक दमड़ी भी नहीं है। तुम से जो बने, करना..."

"धिक्कार है तुझ बदकिस्मत को!"

मै बाहर खिसक गया और शाम होने पर ही घर लौटा।

कोल्या को अगले दिन सवेरे दफना दिया गया। मै गिरजे मे नही गया और जब तक सारा कार्य समाप्त नही हो गया, अपनी मां की कब्र के पास बैठा रहा। मा की कब्र खोदकर खोल दी गई थी ताकि मेरा छोटा भाई उसी में दफनाया जा सके। मेरा कुत्ता और याज का बाप भी मेरे साथ बैठे थे। याज के बाप ने करीब-करीब मुफ्त में ही कब्र खोद दी थी और मेरे पास बैठा अपनी इस उदारता की शेखी बघार रहा था।

"जान-पहचान की बात है, नहीं तो एक रूबल से कभी कम न लेता..."

मिट्टी के पीले गढ़े से बदबू आ रही थी। मैंने उसमे झांककर देखा और काले नम तख्तों पर मेरी नजर पड़ी। मेरे जरा सा भी हिलने पर रेत की पतली-पतली धाराएं सरसराकर गढ़े के तल में गिरने लगती जिससे अगल-बगल झुर्रियां सी बन जाती। इसीलिए मै जान-बूझकर हिलता ताकि रेत उन तख्तों को ढंक दे।

याज के बाप ने धुएं का कश खीचते हुए कहा, "शैतानी नही कर।"

नानी अपने हाथों में एक छोटा सा सफेद ताबूत लिये आयी। 'निकम्मे आदमी' यानी याज का बाप–गढे मे कूद गया, नानी के हाथो से उसने ताबूत लिया और उसे वहीं काले तख्तों के पास, जमा दिया। फिर वह उछलकर गढ़े से बाहर आ गया और अपनी टांगो तथा फावड़े से रेत को गढ़े में भरने लगा। उसका पाइप धूपदान की भांति धुआं छोड़ रहा था। नानी और नाना ने भी चुपचाप उसका हाथ बंटाया। न कोई पादरी था, न भिखारियो का जमघट। सलीबो के इस जंगल में बस, हम चारों ही थे।

चौकीदार को मजदूरी देते समय नानी ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा:

"लेकिन तुमने मेरी बेटी का ताबूत भी झंझोड़ डाला, क्यों?"

"मैं क्या करता? मैंने तो पास की क़ब्र तक की ज़मीन भी खोद डाली। इसमें परेशानी की कोई बात नहीं।"

नानी ने जमीन तक माथा झुकाकर कब्र को प्रणाम किया, नाक बिसूरी, हुकी और क़ब्र से चल दी। अपने घिसे हुए फ़ाक कोट को ठीक करते तथा टोपी के छज्जे के नीचे अपनी आंखों को छिपाते हुए नाना भी पीछे-पीछे हो लिए।

सहसा नाना ने कहा, "ऊसर भूमि मे हमने अपना बीज डारा था।" और मेड़ पर से उड़नेवाले कौवे की भांति लपककर नाना हम सब से आगे निकल गए।

मैने नानी से पूछा :

"नाना ने यह क्या कहा?"

नानी ने जवाब दिया, "वही जाने उनके अपने विचार हैं।"

बड़ी उमस थी। नानी धीमे डगों से चल रही थी। गर्म रेत में उसके पांव धंस जाते थे। रह-रहकर वह रुक जाती और रूमाल से अपने माथे का पसीना पोछती।

आखिर साहस बटोरकर मैने नानी से पूछा, "क़ब्र के भीतर जो वह काला-काला दिखाई देता था, क्या वह मां का ताबूत था?"

"हां," नानी ने झुंझलाकर जवाब दिया। "वह बूढ़ा खूसट न जाने कैसी कब्र खोदता है!.. एक साल भी नहीं हुआ और वार्या सड़ गयी। यह सब रेत की वजह से हुआ है। पानी रिस-रिसकर भीतर पहुंच जाता है। अगर चिकनी मिट्टी होती, तो अच्छा रहता..."

"क़ब्र मे क्या सभी सड़ने लगते है?"

"हां, सभी। केवल सन्तों को छोड़कर..."

"लेकिन तुम कभी नहीं सड़ोगी!"

नानी रुक गई, मेरी टोपी ठीक की और फिर गम्भीर स्वर में बोली :

"ऐसी बातों के बारे में नहीं सोचना, ऐसा करना ठीक नहीं। सुना तुमने?"

लेकिन मैंने मन ही मन सोचा :

"कितनी दुखद और कितनी कुत्सित होती है मृत्यु! कितनी घिनौनी!"

मेरी बहुत बुरी हालत थी।

जब हम घर पहुचे तो देखा कि नाना ने समोवार गर्म कर रखा है और मेज़ सजी है। नाना ने कहा :

"चाय तैयार है। आज मैं सबके लिए अपनी ही पत्तियां डालूंगा। ओह, कितनी उमस है!"

फिर वह नानी के पास गए और उसके कंधे को थपथपाते हुए बोले:

"चुप क्यों है, वार्या की मां?"

नानी ने हाथ हिलाया और बोली:

"तुम्हीं बताओ, मैं क्या कहूं?"

"यही तो! भगवान की मार इसी को कहते हैं। धीरे-धीरे सभी कुछ तीन-तेरह होता जा रहा है... अगर परिवार के लोग मिलकर रहते, हाथ की उंगलियों की भांति..."

नाना ने एक मुद्दत से इतने कोमल और इतने शान्तिपूर्ण अन्दाज में बातें नहीं की थीं। मैं नाना की बातें सुनता हुआ यह आशा कर रहा था कि उनकी बातें मुझे अपने हृदय के दुःख और उस पीले गढ़े को भूल जाने में मदद देंगी जिस की बगल में वे काले-काले नम धब्बे दिखाई दिए थे।

परन्तु नानी तेज़ आवाज़ में बोल उठी:

"चुप भी रहो। इन शब्दों को रटते तुम्हारा जीवन बीत गया, लेकिन क्या कभी उनसे किसी का भला हुआ? होता भी कैसे, सारी उम्र तुम लोगों को नोचते-खाते ही रहे, जैसे जंग लोहे को खाता है..."

नाना ने भिनभिनाकर नानी की ओर देखा और फिर चुप हो गए।

सांझ के समय फाटक पर ल्युद्मीला को मैंने सुबह का सारा हाल बताया। लेकिन मेरी बातों का उसपर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा।

"अनाथ होना अच्छा है। अगर मेरे मां-बाप मर जाएं तो अपनी बहिन को अपने भाई के पास छोड़ मैं जीवन भर के लिए मठ में चली जाऊं। इसके सिवा मैं और कर भी क्या सकती हूं? लंगड़ी होने की वजह से मेरा विवाह कभी होगा नहीं—मैं काम कर नहीं सकती। और अगर विवाह हो भी गया तो मैं लंगड़े बच्चों को ही जन्म दूंगी..."

मोहल्ले की अन्य सभी सयानी स्त्रियों की भांति बड़ी समझदारी से उसने बातें कीं, लेकिन उस सांझ के बाद न जाने क्यों उसमें मेरी दिलचस्पी खत्म हो गयी। सच तो यह है कि मेरा जीवन भी कुछ ऐसे ढर्रे पर चल पड़ा कि उससे मिलने का मौक़ा तक न मिलता।

भाई की मृत्यु के कुछ दिन बाद नाना ने मुझसे कहा:

आज जल्दी सो जाना कल सूरज निकलते ही मैं तुझे जगा दूंगा और दोनों लकड़ियां बटोरने जंगल चलेंगे..."

नानी ने कहा, "और मैं जड़ी-बूटियां बटोरकर लाऊंगी।"

हमारी बस्ती से डेढ़-दो कोस दूर, दलदली भूमि में, भोज और चीड़ वृक्षों का जगल था। सूखे वृक्षों और टूटी हुई टहनियों की वहां भरमार थी। एक बाजू वह ओका नदी तक और दूसरे बाजू मास्को जानेवाली सड़क से भी परे तक फैला था। उसकी फुनगियों के ऊपर देवदार वृक्षों का एक घना झुण्ड एक ऊंचे, काले तम्बू के रूप में दिखाई देता था जो 'सावेलोव का अयाल' कहलाता था।

काउण्ट शुवालोव इस सारी दौलत के मालिक थे और इसकी कोई खास देखभाल नहीं की जाती थी। कुनाविनो के निवासी इसे अपनी सम्पत्ति समझते थे और इसमें से सूखी झाड़ियां बटोर ले जाते थे और कभी-कभी तो जानदार वृक्षों तक को काट डालते थे। पतझड़ शुरू होते ही हाथों में कुल्हाड़ियां और कमर में रस्सी बांधे दसियों लोग यहां से जाड़े भर के लिए ईंधन ले जाते थे।

पौ फटते ही हम तीनों ओस में भीगे रुपहले-हरे खेत में चले जा रहे थे। हमारे बाईं ओर ओका नदी के पार द्यात्लोवी पहाड़ियों की पीली ढलानों के ऊपर, श्वेत नीज्नी नोव्गोरोद के हरे-भरे बाग़-बग़ीचों और गिरजों के सुनहरे गुम्बजों के ऊपर आलसी रूसी सूरज धीरे-धीरे उदय हो रहा था। शान्त और गंदली ओका नदी की ओर से हवा के हल्के-हल्के और नींद में मदमाते झोंके आ रहे थे। सुनहरी रंग के बटरकप झूल रहे थे, ओस के बोझ से झुके बैंगनी ब्लूबेल फूल मूक दृष्टि से धरती को निहार रहे थे, रंग-बिरंगे सदाबहार फूल कम उपजाऊ धरती पर मुरझाये से हिलडुल रहे थे और गुलाबी रंग की वे कलियां—रात की सुंदरी शोभा—लाल सितारों की भांति चटक रही थीं।

काली फ़ौज जैसा जंगल हमारी ओर बढ़ता आ रहा था। पंखों वाले चीड़ वृक्ष भीमाकार पक्षियों की भांति मालूम होते थे और भोज वृक्ष सुघड़ युवतियों जैसे लगते थे। दलदली भूमि की तेज़ाबी गंध मैदान में फैल रही थी। मेरा कुत्ता अपनी लाल जीभ निकाले मेरे साथ-साथ चल रहा था, वह एकाएक रुक जाता, नाक सिकोड़कर कुछ सूंघता और असमंजस में पडकर लोमडी जैसा अपना सिर हिलाता।

नाना नानी की ऊनी जाकेट और बिना छज्जे की पुरानी तथा पिचकी हुई सी टोपी पहने थे। वह आख मिचकोडते, मन ही मन मुस्कराते, अपनी पतली टांगो को बडी सावधानी से उठाते हुए दबे पाव चल रहे थे। नानी नीला ब्लाउज और काला घाघरा पहने थी तथा सिर पर सफेद रुमाल बाधे थी। वह इतनी तेजी से लुढ़कती-दुलकती चल रही थी कि साथ देना मुश्किल था।

जंगल के हम जितना ही नजदीक पहुचते जा रहे थे, नाना की चेतनता भी उतनी ही अधिक बढती जा रही थी। वह कुनमुनाए, गहरी सांस खींचकर उन्होंने फेफड़ों मे खूब वायु भरी और बोलना शुरू किया—पहले कुछ अटक-अटककर और अटपटे अन्दाज में, फिर मानो उनपर नशा सा छा गया, और वह चुहचुहाते हुए तथा सुन्दर रूप मे कहते गये।

"जंगल भगवान के लगाए हुए बाग-बगीचे हे। अन्य किसी ने नहीं बल्कि हवा ने—भगवान के मुंह से निकली दैवी सांस ने—इन्हे लगाया है... जिगुली की बात है, बहुत पहले की जब मै जवान था और बजरा खींचने का काम करता था... आह, अलेक्सेई, तुझे वह सब देखना भला कहां नसीब होगा जो मै देख चुका हूं! ओका के किनारे-किनारे, कासीमोव से लेकर मूरोम तक, बस जंगल ही जंगल। या फिर वोल्गा के उस पार—ठेठ उराल तक—जंगलों के सिवा और कुछ नहीं! मानो एक अन्तहीन और अद्भुत सौन्दर्य हिलोरे ले रहा हो!.."

नानी ने कनखियो से उन्हे देख और मुझे आख मारकर नाना की ओर इशारा किया, और नाना थे कि अपनी धुन में चले जा रहे थे—टीलो और ठूंठों से ठोकर खाते, लड़खड़ाते और सभलते और मानो अंजुलि भर-भरकर हल्के-फुलके शब्दों को बिखेरते, जो मेरी स्मृति में जमकर बैठते जाते थे।

"बजरा तेल के पीपों से लदा था और हम उसे खींच रहे थे। सन्त मकारी के दिन मेला होता है न, उसी में हमें पहुंचना था। हमारे साथ मालिक का कारिंदा था। नाम किरील्लो, पुरेख का निवासी। और एक पुराना, अनुभवी मजदूर था, तातार, कासीमोव का रहनेवाला—और अगर मै भूलता नहीं तो आसफ़ उसका नाम था... हां तो, जब हम जिगुली पहुंचे, बहाव के प्रतिकूल ऐसी आंधी आई कि उसके थपेड़ो ने हमारी जान ही निकाल ली, पांव वहीं के वहीं रुक गये, दम फूल गया और हम बस

हांफते ही रह गये। सो हम तट पर आ गये और सोचा कि कुछ दलिया ही पका लें। मई का महीना था और धरती पर बसंत छाया था। वोल्गा अच्छा-खासा सागर बनी हुई थी और हंसों के झुंड की भांति, हजारों की संख्या में झागदार लहरें कास्पियन सागर की ओर तैरती चली जा रही थीं। और वसंत का हरियाला बाना धारण किए ज़्गुली की पहाड़ियां आसमान छूती थीं, आसमान में सफेद बादल विचर रहे थे और सूरज धरती पर सोना बरसा रहा था। सो हम सुस्ताने बैठ गए, जी भरकर प्रकृति के इस समूचे सौन्दर्य का हमने पान किया और हमारे हृदय में तरलता छा गई, हम एक-दूसरे के प्रति अधिक दयालु हो गये। उत्तरी हवा चल रही थी, लेकिन यहां तट पर बड़ा सुहावना मालूम होता था और भीनी-भीनी सुगंध आ रही थी। सांझ ढलते ही हमारा किरील्लो जो बड़ी उम्र और गम्भीर स्वभाव का मर्द था, उठकर खड़ा हो गया और अपने सिर से टोपी उतारकर बोला, 'हां तो जवानो, अब न मैं तुम्हारा मुखिया हूं और न नौकर। तुम अब अकेले ही अपना काम संभालना। मुझे जंगल बुला रहे हैं, सो मैं चला!' हम सब घबरा गये। जहां के तहां मुंह बाये बैठे रहे। भला ऐसा भी कभी हुआ है? मालिक के सामने जवाबदेह व्यक्ति के बिना कैसे काम चल सकता है—मुखिया के बिना लोग कैसे आगे बढ़ सकते हैं! माना कि यह हमारी जानी-पहचानी वोल्गा ही थी, लेकिन इससे क्या, सीधे रास्ते पर भी भटका जा सकता है। लोग तो मूर्ख जानवर ठहरे, एकदम दयाहीन। सो हम डर गये। लेकिन वह था कि अपनी जिद्द पर अड़ा रहा, 'मैं बाज आया इस जीवन से। गड़रिये की भांति तुम्हें हांकते रहना मुझे पसन्द नहीं। मैं तो जंगल में जाऊंगा!' हम में से कुछ थे जो उसकी मरम्मत करने और उसे रस्सियों से बांधकर जकड़ने के लिए उतावले हो उठे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो उसके पक्ष में थे। वे चिल्लाए, 'ठहरो!' और पुराना तातार मजदूर बोला, 'मैं भी चल दिया!' अब तो मामला बिल्कुल ही चौपट था। मालिक पर तातार की दो फेरों की मजदूरी चढ़ी थी, और यह तीसरा फेरा भी आधा पूरा हो चुका था। उन दिनों को देखते हुए खासी बड़ी रकम उसे मिलती। रात होने तक हम चीख़ते-चिल्लाते रहे। अंधेरा घना होने पर एकदम सात जने चले गए—अब हम चौदह या सोलह ही रह गए। ऐसा होता है जंगल का जादू।"

क्या वे डाकू बन गये?

"कौन जाने, डाकू बन गये या संन्यासी। उन दिनों यह सब एक जैसा ही मामला समझा जाता था।"

सलीब का चिन्ह बनाते हुए नानी ने कहा:

"आह माता मरियम, क्या हाल हो गया है तेरी सन्तानों का! देखकर हृदय कराह उठता है।"

"शैतान के चंगुल में न फंसे, इसीलिए तो भगवान ने हम सब को बुद्धि प्रदान की थी.."

हम ने दलदल के टीलों और चीड़ वृक्षों के मरियल झुरमुटों के बीच से जानेवाली एक नम पगडंडी पर बढ़ते हुए जंगल में प्रवेश किया। मुझे लगा कि पुरेख निवासी किरील्लो की भांति अगर हमेशा जंगल में ही रहा जाए तो कितना बढ़िया हो। जंगल में न लड़ाई-झगड़ा था, न नशे में धुत्त लोगों की चीख-पुकार थी, न कोई छीना-झपटी थी। वहां न तो नाना की घृणित कंजूसी की याद बनी रहेगी, न मां की रेतीली कब्र की। हृदय को दुखाने और जी को भारी बनानेवाली प्रत्येक चीज़ भूल जायेगी।

जब हम एक सूखे स्थल पर पहुंचे तो नानी ने कहा:

"यह जगह ठीक है। बैठकर अब कुछ पेट में भी डाल लें।"

अपनी टोकरी में से नानी ने रई की रोटी, हरा प्याज़, खीरे, नमक और कपड़े में लिपटा घर का पनीर निकाला। नाना ने उलझन में पड़ते हुए आंखें मिचमिचाकर इन सब चीज़ों की ओर देखा।

"हे भगवान, मैं तो अपने साथ खाने को कुछ लाया ही नहीं!.."

"हम सब इसी में निबट जाएंगे..."

देवदार के एक ऊंचे वृक्ष के तांबे जैसे तने से पीठ लगाकर हम बैठ गए। वायु में बिरोजे की गंध फैली थी, खेतों की ओर से हल्की बयार बह रही थी, घास की पत्तियां झूम रही थीं, अपने सांवले हाथों से नानी तरह-तरह की जड़ी-बूटियां तोड़ती और मुझे बताती जातीं कि सन्तजौन घास कौन-कौन रोग को दूर करती है, कंटीली झाड़ी में क्या जादू असर भरा पड़ा है, कि चिपचिपा दलदली गुलाब भी गुणों में किसी से कम नहीं है।

नाना हवा से गिरे वृक्ष काट रहे थे और मेरा काम था कि कटी लकड़ियों को बटोरकर एक जगह जमा करते जाना। लेकिन मैं खिसककर

नानी के पीछे-पीछे जंगल की गहराइयों में चला गया। वृक्षों के सबल और सशक्त तनों के बीच नानी मानो तैर रही थी और रह-रहकर जब वह नम, सींकों से ढकी धरती की ओर झुकती तो ऐसा मालूम होता जैसे पानी में डुबकी लगा रही हो। नानी चलती हुई बराबर अपने आप से बातें करती जाती थी:

"अब इन खुमियों को देखो, कितनी जल्दी निकल आईं—यानी इस बरस ज्यादा नहीं होंगी। हे भगवान, गरीबों का ध्यान रखने में तुम भी चूक जाते हो! जिनके घर में चूहे डण्ड पेलते हैं, उनके लिए तो ये खुमियां भी बहुत बड़ी न्यामत हैं!"

मैं चुपचाप और बहुत सावधानी से नानी के पीछे-पीछे जा रहा था और इस बात की बड़ी कोशिश कर रहा था कि मुझपर उसकी नजर न पड़े। कभी भगवान, कभी मेंढकों और कभी घास-पात से उसकी बातों में मैं बाधा डालना नहीं चाहता था...

लेकिन नानी ने मुझे देख ही लिया।

"नाना के पास जी नहीं लगा, क्यों?"

काली धरती हरे बेल-बूटों से सजी थी। उसकी ओर बार-बार झुकती हुई नानी मुझे बताती रही कि कैसे एक बार भगवान को बहुत गुस्सा आया। मानवजाति से वह इतने नाराज हो गए कि उन्होंने समूची धरती को बाढ़ से प्लावित कर दिया, जितने भी जीवधारी थे, सभी डूब गए!

"लेकिन माता मरियम ने, समय रहते, अपनी टोकरी उठाई, सभी बीजों को बटोरकर उसमें रखा और फिर सूरज से बोलीं, 'इस छोर से उस छोर तक, सारी धरती अपनी किरनों से सुखा दो, लोग तुम्हारा गुणगान करेंगे!' सो सूरज ने धरती को सुखा दिया और माता मरियम ने छिपाकर रखे हुए बीजों को बो दिया। भगवान ने अब धरती की ओर देखा: वह फिर पहले की भांति हरी-भरी और आबाद थी—ढोर-डंगर, पेड़-पौधे और आदमी, सभी वहां मौजूद थे... भगवान के तेवर चढ़ गए। बोले, 'किसने यह दुस्साहस किया है?' तब माता मरियम ने सारी बात बता दी। लेकिन खुद भगवान को भी कुछ कम दुःख न था—धरती को उजड़ा-उजड़ा और सुनसान देखकर उनका हृदय भी मसोस उठता था। सो वह बोले, 'तुमने यह अच्छा किया जो धरती को आबाद कर दिया, माता मरियम!'"

नानी की यह कहानी मुझे पसंद आई। लेकिन इसे सुनकर मुझे अचरज भी हुआ। पूरी गम्भीरता के साथ मैंने पूछा:

"क्या सचमुच ऐसा ही हुआ था? माता मरियम तो प्रलय के बहुत बाद पैदा हुई थी न?"

अब नानी के चकित होने की बारी थी।

"तुम्हें यह बात कहां से मालूम हुई?"

"स्कूल में—किताबों में लिखी है..."

यह सुन नानी का जी कुछ हल्का हुआ। बोली:

"स्कूलों में तो ऐसी ही बातें सिखाते हैं? और किताबें—भूल जाओ तुम उन्हें। दुनिया भर की झूठी बातों के सिवा उनमें और लिखा ही क्या है?"

और वह धीरे से, खुशमिजाजी से हंस दी:

"बेवकूफों की बात तो देखो। कहते हैं, भगवान पहले से मौजूद थे, माता बाद में आई। भला, जब माता ही नहीं थी तो भगवान को जन्म किसने दिया?"

"मुझे क्या मालूम?"

"मुझे क्या मालूम—स्कूल में यही तो पढ़ाया जाता है—मुझे क्या मालूम!"

"पादरी ने बताया था कि माता मरियम ने याकिम और अन्ना के यहां जन्म लिया था।"

"इसका मतलब यह है कि वह मरीया याकिमोवना थी।"

नानी का पारा एकदम गरम हो गया। कड़ी नजर से मेरी आंखों में देखकर बोली:

"अगर फिर कभी ऐसी बात मुंह से निकाली तो देख लेना, मुझसे बुरा कोई न होगा।"

कुछ देर बाद नानी ने समझाया:

"माता मरियम सदा से है—अन्य सबसे भी बहुत पहले से। भगवान ने उनके गर्भ से जन्म लिया और फिर..."

"और ईसा मसीह?"

नानी ने उलझन में पड़कर आंखें मूंद लीं।

"ईसा मसीह... ईसा... अरे हां...?"

मैंने देखा कि नानी से जवाब देते नहीं बन रहा है। यह मेरी जीत थी। नानी को मैंने सृष्टि के रहस्यों में उलझा दिया था, और यह मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

हम जंगल में बढ़ते ही गए और ऐसी जगह पहुंचे जहां सूरज की सुनहरी किरनें नीले धुंधलके को बींध रही थीं। सुहावना और सुखद जंगल अपनी निजी और निराली आवाज से गूंज रहा था—सपने में डूबी उनींदी आवाज, जो खुद हमें भी स्वप्निल बना रही थी, अपने साथ-साथ हमें भी सपनों की दुनिया में खींच रही थी। कहीं क्रासबिल पक्षी टिटिया रहे थे, कहीं टिटमाइस चहचहा रहे थे, कहीं कुकू के खिलखिलाकर हंसने की आवाज आ रही थी, कहीं ओरियोल सीटी बजा रहे थे, ईर्ष्या से भरे गोल्डफिंच निरन्तर गीत गाने में मगन थे और वे विचित्र फ़िंच पक्षी—विचारों में डूबे हुए अपना एक अलग शब्दजाल बुन रहे थे। मरकती मेंढक हमारी टांगों के पास उछल रहे थे, और जड़ों की ओट में सांप अपना सुनहरा फन ऊपर उठाये उनको ताक में था। नन्हे दांतों से चटर-पटर करती एक गिलहरी, अपनी दुम फुलाए, देवदार वृक्ष की टहनियों में से कौंद गई। इतनी चीजें थीं कि बस देखते ही रहो। और मन फिर भी यही कहता रहे कि अभी और देखो, बस देखते ही जाओ।

देवदार वृक्षों के तनों के बीच भीमाकार आकृतियों की एक छाया सी दिखाई देती और अगले ही क्षण हरी गहराइयों में, जहां नीला और रुपहला आकाश झलक रहा था, विलीन हो जाती। धरती पर गहरी काई का शानदार क़ालीन बिछा था जिसपर नीले और लाल जंगली फलों के गुच्छों की कसीदाकारी बनी हुई थी। हरी घास के बीच लाल जंगली बेरियां रक्त की बूंदों की भांति चमकती थीं और खुमियों की भीनी तेज गंध जी को ललचा रही थी।

नानी ने उसांस लेते हुए माता मरियम का नाम लिया, "दुनिया की जोत, माता मरियम।"

ऐसा मालूम होता था मानो जंगल उसका हो, और वह जंगल की। भारी-भरकम भालू की भांति झूमती वह चल रही थी, हर चीज़ को देखती, हर चीज पर मुग्ध होती और कृतज्ञता के शब्द गुनगुनाती। ऐसा लगता मानो सहृदयता उसके शरीर से प्रवाहित होकर जंगल में बह रही हो। नानी का पांव पड़ने पर जब काई दबकर सिमटती-सिकुड़ती और

घाव उठ जाने पर जब वह फिर से उभरती फलती तो ~~ एक खास आ
की झलमात होती।

जंगल में घूमते-घूमते मैं सोचने लगा कि कितना अच्छा हो अ
मैं डाकू बन जाऊं और अमीरों को लूटकर गरीबों का घर भरूं। कि__
अच्छा हो अगर इस दुनिया में सभी खुशहाल और खाते-पीते हों, न वे
एक-दूसरे से जलें, न कुत्सित कुत्तों की भांति एक-दूसरे पर गुर्राएं! और
कितना अच्छा हो कि नानी के भगवान और माता मरियम के पास जाकर
मैं उनसे भेंट करूं और उन्हें बताऊं—सम्पूर्ण सत्य उनके सामने खोलकर
रख दूं कि लोग कितना दुःखद और कितना भयानक जीवन बिताते हैं
और मरने के बाद भी कितनी बुरी तरह एक-दूसरे को निकम्मी रेत में
दफनाते हैं। और यह कि कितने अधिक और अनावश्यक दुःखों ने धरती
को दबोच रखा है। और जब मैं यह देखता कि माता मरियम पर मेरी
बात का असर हुआ है, मेरी बात का वह यकीन करती है, तो मैं उनसे
कुछ ऐसी बुद्धि मांगता जिससे दुनिया की चीजों को बदला जा सके, उन्हें
पहले से बेहतर बनाया जा सके। मैं उनसे, माता मरियम से, कहता कि
मुझे कुछ ऐसा बनाओ जिससे लोग मेरा विश्वास करें और मैं निश्चय ही
उनके लिए अच्छे जीवन का रास्ता खोज निकालता। माना कि मैं अभी
छोटा ही था, लेकिन इससे क्या? ईसा मसीह मुझसे एक ही साल तो
बड़े थे और एक से एक उनकी बातों को सुनने के लिए आते थे!

एक दिन मैं अपने विचारों में इतना डूबा था कि मुझे कुछ ध्यान न
रहा और एक गहरे, खोहनुमा गढ़े में मैं जा गिरा। एक ठूंठ की डाल से
रगड़ खाकर मेरी पसलियां चरमरा गईं और सिर की चमड़ी उधड़ गई।
गढ़े की तलहटी में ठंडे और चिपचिपे कीचड़ में मैं धंसा पड़ा था। मन
ही मन खीज और शर्म से मैं गड़ा जा रहा था। चिल्लाकर नानी को डराना
मैं नहीं चाहता था, लेकिन इसके सिवा और चारा भी क्या था। इसलिये
मैंने उसे पुकारा।

नानी ने पलक मारते मुझे बाहर निकाल लिया और सलीब का चिन्ह
बनाते हुए बोली:

"शुक्र है परमात्मा का! गढ़ा नहीं, यह तो भालू की मांद है।
गनीमत समझो कि वह इस समय मांद में नहीं है। लेकिन अगर वह
मौजूद होता तो?"

और नानी आंसुओं के बीच हंसने लगी। इसके बाद एक झरने पर ले जाकर नानी ने मेरे घाव धोए, दर्द दूर करने के लिए छालों पर कुछ पत्ते रखे, अपनी कमीज फाड़कर उनपर पट्टी बांधी और मुझे रेलवे-गार्ड की झोपड़ी में ले गई। मैं इतनी कमजोरी महसूस कर रहा था कि अपने पांवों घर नहीं पहुंच सकता था।

फिर भी लगभग हर दिन मैं नानी से कहता:

"चलो, जंगल चलें!"

और नानी बड़ी खुशी से इसके लिए तैयार हो जाती। हम रोज जंगल जाते, जड़ी-बूटियां और जंगली फल बटोरते, खुमियां और जंगली बादाम जमा करते। इन सब चीजों को नानी बाजार में ले जाकर बेचती और इससे जो पैसा मिलता, उससे हम गुजर करते।

पतझड़ बीतने तक यही सिलसिला चलता रहा।

नाना का वही हाल था। "मुफ्तखोर!" नाना चीखते, यद्यपि उनकी खाने की चीजों को हम छूते तक नहीं थे।

जंगल मुझमें मानसिक शान्ति और खुशहाली की भावना जागृत करता, और यह भावना मुझे अपने हृदय के दुःख और मन खट्टा करनेवाली अन्य सभी बातों को भूलने में मदद देती। साथ ही मेरी अनुभूति तीव्र होती जाती, जंगल में देखने-परखने की मेरी शक्ति का भी अद्भुत विकास हुआ, मेरी दृष्टि पैनी हो गई, मेरे कान आवाजों को और भी तेजी से पकड़ने लगे। मेरी स्मरण-शक्ति बढ़ी और दिमाग का वह खाना जिसमें देखी-सुनी चीजें जमा रहती हैं, और भी बड़ा हो गया।

और नानी—उसकी कुछ न पूछो। जितना ही मैं उसे देखता, उतना ही चकित होता। नानी की सूझ-बूझ मुझे अधिकाधिक चकित और अधिकाधिक कायल करती जाती। यों तो मैं नानी को हमेशा ही अन्य सबसे अलग, और अन्य सबसे ऊंचा समझता था—धरती के जीवों में सबसे अधिक सहृदय, सबसे अधिक समझदार। और मेरे इस विश्वास को नानी ने हर घड़ी पुष्ट ही किया। एक दिन की बात है। सांझ का समय था, खुमियां बटोरने के बाद हम घर लौट रहे थे। जंगल के छोर पर पहुंचकर नानी सुस्ताने के लिए बैठ गई और मैं कुछ और खुमियां बटोरने की आशा से, पेड़ों के पीछे चल दिया।

सहसा नानी की आवाज सुन मैंने मुड़कर देखा। नानी पगडंडी के

बीचोंबीच शान्त भाव से बैठी थी और हमारी बटोरी हुई खुमियों की जड़ें काट-काटकर अलग कर रही थी। नानी के पास से ही भूरे रंग और पतले बदन का एक कुत्ता जीभ निकाले खड़ा था।

नानी कह रही थी, "जा, भाग यहां से! जा, भगवान तेरा भला करे!"

कुछ ही दिन पहले वालेक ने मेरे कुत्ते को जहर देकर मार डाला था। मेरे मन में हुआ कि इस नये कुत्ते को ही क्यों न पाल लिया जाए। मैं पगडंडी की ओर लपका। कुत्ते ने अपने सिर को मोड़े बिना ही कमान की भांति विचित्र ढंग से अपना बदन तान लिया और हरे रंग की अपनी भूखी आंखों से मेरी ओर देखा, फिर अपनी दुम को टांगों के बीच दबाए जंगल की ओर छलांगें भरने लगा। उसकी चाल-ढाल और तेवर कुत्तों जैसे नहीं थे, और सीटी बजाकर जब मैंने उसे बुलाना चाहा तो वह बेतहाशा झाड़ियों में घुस गया।

नानी ने मुसकराकर कहा, "देखा तुमने? धोखे में पहले मैंने भी उसे कुत्ता समझ लिया था। फिर देखा–दांत तो भेड़िये के हैं, और गर्दन भी! मैं तो डर ही गई: ठीक है, बोली, अगर तू भेड़िया है तो जा भाग यहां से! शुक्र है, गर्मियों में भेड़िये ज्यादा खूंख्वार नहीं होते..."

जंगल में भटकना तो नानी जैसे जानती ही नहीं थी। चाहे जो हो, घर का रास्ता ढूंढ़ पाने में वह कभी नहीं चूकती थी। घासपात की गंध से ही वह पता लगा लेती कि अमुक स्थान पर किस किस्म की खुमियां होती हैं और अमुक स्थान पर किस किस्म की। बहुधा नानी मेरी जानकारी की भी परीक्षा लेती:

"लाल खुमी किस पेड़ के नीचे उगती है? अच्छे और विषैले सिरोयेज्का की क्या पहचान है? पर्णांग झाड़ी की ओट में किस प्रकार की खुमियां उगती हैं?"

किसी पेड़ की छाल पर खरोंच का नन्हा सा निशान देखकर नानी गिलहरी के कोटर का पता लगा लेती। मैं पेड़ पर चढ़ता और गिलहरी के कोटर से जाड़े के लिए जमा सारे अखरोट निकाल लेता। कभी-कभी पूरी एक पसेरी तक अखरोट हाथ लग जाते।

एक बार, उस समय जब कि मैं पेड़ पर चढ़ा गिलहरी की जमा पूंजी निकालने में व्यस्त था, किसी शिकारी ने बन्दूक चलायी और एक

साथ सत्ताइस छर मेरे बदन मे घस गए। नानी ने ग्यारह छर्रे तो सुई से खोद-खोदकर निकाले, बाकी कई साल तक मेरे बदन मे ही घुसे रहे और धीरे-धीरे, एक-एक करके, अपने आप बाहर निकलते रहे।

नानी को दर्द के प्रति मेरी सहनशीलता बहुत पसन्द आयी।

उसने मेरी प्रशंसा की. "शाबाश, सहन है तो रहन है।"

खुम्मियों और अखरोटों की बिक्री से जब कभी कुछ फालतू पैसा मिल जाता तो वह रात को पास-पड़ोस के घरों का चक्कर लगाती और खिडकियों की ओटक पर अपना 'गुप्त दान' रख आती। लेकिन खुद चिथड़ों और पैबन्द लगे कपड़ो में ही लिपटी रहती। चाहे कोई त्यौहार हो या उत्सव, नानी की इस वेशभूषा में कभी कोई अन्तर न पड़ता।

नाना कुढकर बड़बड़ाते, "इसने तो भिखमंगों को भी मात कर दिया। देखकर शर्म मालूम होती है!"

"शर्म की इसमे क्या बात है? मै तुम्हारी बेटी तो हूं नही, जिसे ब्याहने की फिक्र हो..."

घर में अब नित्य ही खटपट होती।

"मैने क्या औरों से ज्यादा पाप किए है?" चोट खाए स्वर मे नाना चिल्लाते। "लेकिन भगवान है कि सारी सजा मुझे ही देने पर तुला है!"

नानी उन्हें और भी चिढ़ाती:

"शैतान को कोई भी धोखा नहीं द सकता।"

फिर, अकेले में, मुझे समझाती:

"देखो न, बूढ़े के सिर पर शैतान का भय किस बुरी तरह सवार है। डर के मारे जर्जर हुआ जा रहा है... ओह, बेचारा..."

गर्मी के उन दिनों में मैं बहुत तगड़ा हो गया, लेकिन जंगल ने मेरी मिलनसारी खत्म कर दी। अपने संगी-साथियों के जीवन और ल्युदमीला मे मेरी कोई दिलचस्पी नही रही। उसके सयानपन से मै ऊब चला...

एक दिन जब नाना नगर से लौटे तो वह बुरी तरह भीग गए थे। शरद के दिन थे और बारिश हो रही थी। नाना दरवाजे पर खड़े होकर गौरैया की भांति फड़फड़ाए और गर्व से तनते हुए बोले:

"तो, लफंगे, हो जा तैयार, कल से काम पर जायेगा!"

नानी ने झुंझलाकर पूछा:

"क्या कहा, कहां जायेगा?"

तुम्हारी बहन मात्र्योना के यहां—उसके लड़के के पास..."

"ओ, बापू, यह तुमने अच्छा नहीं सोचा।"

"चुप रह, बेवकूफ़ औरत! कौन जाने, वहां यह नक्शानवीस बन जाये!"

बिना कुछ कहे नानी ने अपना सिर झुका लिया।

उसी सांझ मैंने ल्युद्मीला को बताया कि मैं नगर जा रहा हूं।

वह खोयी-खोयी सी बोली, "मुझे भी कुछेक दिनों में शहर ले जायेंगे। पिता जी मेरी टांग कटवा देना चाहते हैं, टांग काट देने से मैं अच्छी हो जाऊंगी।"

गर्मियों में वह सूखकर और भी दुबली हो गई थी। उसके चेहरे पर नीलापन छा गया था और आंखें अब बहुत बड़ी दिखाई देती थीं।

मैंने पूछा, "डर लगता है?"

"हां," उसने जवाब दिया और बिना आवाज़ किए चुपचाप रोने लगी।

उसे उदास देखकर ढाढ़स बंधाने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नहीं था। नगर के जीवन से उसकी ही नहीं, खुद मेरी भी रूह कांपती थी। बहुत देर तक हम दोनों भारी उदासी में डूबे, चुपचाप, एक-दूसरे से चिपके बैठे रहे।

अगर गर्मियों के दिन होते तो मैं नानी के सिर पड़ता और कहता कि चलो, भीख मांगने चलें! नानी बचपन में यह काम कर भी चुकी थी और इसके लिए अब फिर तैयार हो जाती। ल्युद्मीला को भी हम अपने साथ ले लेते। वह एक छोटे से ठेले में बैठ जाती और मैं उसे खींचता...

लेकिन यह तो शरद के दिन थे। सड़कों पर नमी भरी हवाएं सनसनाती चलती थीं और आकाश अनगिनत बादलों से घिरा रहता था। धरती सिकुड़ गयी थी और गंदी, अभागिन सी लगती थी...

४

मैं अब फिर नगर में रहने लगा। सफ़ेद रंग का ताबूत जैसा एक दुमंजिला मकान था जिसमें बहुत से परिवार रहते थे। घर यों तो नया था, लेकिन खोखला और फूला हुआ सा लगता था, सात जन्म के भूखे

भिखारी की तरह जिसने एकाएक धनवान बन जाने पर तुरंत ही खा-खाकर अपना पेट अफरा लिया हो। उसकी बगल सड़क की ओर थी। दोनों मंजिलों में आठ-आठ खिड़कियां थीं और सड़क के रुख, जिधर मकान का सामना होना चाहिए था, हर मंजिल में चार-चार। नीचे की खिड़कियां अहाते में एक तंग गलियारे की ओर खुलती थीं, और ऊपर की खिड़कियों से बाड़े के उस पार गंदा खड्ड और धोबिन का छोटा सा घर दिखाई देता था।

असल में गली जैसी वहां कोई चीज नहीं थी। मकान के सामने यही गंदा खड्ड फैला था जिसपर दो जगह संकरे बांध बने हुए थे। उसका बायां छोर जेलखाने को छूता था। खड्ड में बस्ती का कूड़ा-करकट फेंका जाता था और उसकी तलहटी में गंदगी की एक मोटी हरी तह जम गई थी। दाहिने सिरे पर गंदा ज्वेज्दिन कुंड रिसता रहता था। खड्ड का मध्य भाग ठीक हमारे घर के सामने था जिसके आधे हिस्से में कूड़ा-कचरा भरा था और कंटीली झाड़ियां, घासपात तथा सरकंडे उगे थे। बाक़ी आधे हिस्से में पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोव्स्की ने अपना बग़ीचा लगा रखा था। बग़ीचे के बीच में हरे रंग में रंगी खपच्चियों से बना मंडप था। मंडप में ढेले फेंकने पर खपचियां झन्नाकर टूटती थीं।

जगह बेहद गंदी और बेहद ऊबाऊ थी। शरद ने यहां की कूड़ा-कचरा मिली चिकनी मिट्टी को बेरहमी के साथ कुरूप करके उसे लाल कोलतार सा बना दिया था जो पांवों में इतनी बुरी तरह चिमट जाता कि छुड़ाए न छूटता। छोटी सी जगह में गन्दगी की इतनी भरमार मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। खेतों और जंगलों की स्वच्छता में रमने के बाद नगर का यह कोना मुझमें निराशा भरता था।

खड्ड के उस पार टूटे-फूटे मटमैले बाड़ों की पांत दिखाई देती थी। दूरी पर उनमें भूरे रंग का वह मकान भी था जिसमें मैं जाड़ों में रहता था जब जूतों की दुकान में छोकरे का काम करता था। इस मकान को अपने इतना निकट देख मुझे और भी बुरा मालूम होता। क्यों मुझे फिर इसी सड़क पर रहना पड़ रहा है?

अपने नये मालिक से मैं पहले से परिचित था। वह और उसका भाई कभी मेरी मां से मिलने आया करते थे, और उसका भाई बड़े ही मजेदार ढंग से पिनपिनाकर कहता था:

आन्द्रइ पपा! आन्द्रई पपा!

दोनों के दोनों अब भी बिल्कुल वैसे ही थे। बड़े भाई की तोते जैसी नाक और लम्बे बाल थे। वह अच्छे दिल का आदमी मालूम होता था। छोटा भाई बीक्तर पहले की भांति अब भी वैसा ही घुड़मुंहा था, और उसके चेहरे पर भूरी बिंदियां थीं। उनकी मां–मेरी नानी की बहिन –बड़ी चिड़चिड़ी और झगड़ालू थी। बड़े लड़के का विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी काली आंखों वाली, मैदे के आटे की डबल रोटी की भांति सफ़ेद और मोटी-ताजी थी।

शुरू के कुछ दिनों में ही उसने मुझे दो-एक बार जताया:

"तेरी मां को मैंने चमकदार कांच के मोती जड़ा रेशमी लबादा दिया था..."

लेकिन न जाने क्यों, मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था कि उसने मां को रेशमी लबादा भेंट किया था, और यह कि मां ने उसे स्वीकार कर लिया था। अगली बार जब फिर उसने लबादे का जिक्र छेड़ा तो मैंने कहा:

"दिया था तो डींग क्यों मारती है।"

यह सुनकर वह सुन्न रह गई।

"क्या-आ-आ-आ? तूने मुझे समझ क्या रखा है?"

उसका चेहरा लाल चकत्तों से भर गया, आंखें बाहर निकल आयीं, उसने पति को आवाज दी।

कान में पेन्सिल खोंसे और हाथ में परकार लिए पति ने रसोईघर में पांव रखा। अपनी पत्नी की शिकायत सुनने के बाद उसने मुझसे कहा:

"इन्हें और दूसरे सबको यहां आप कह कर बुलाना चाहिए। और ज़बान को संभालकर रखना चाहिए!"

फिर वह बेसब्री से अपनी पत्नी की तरफ़ घूम गया:

"इस तरह की बकवास से मेरा दिमाग़ न चाटा करो!"

"बकवास... तुम इसे बकवास कहते हो! जब तुम्हारे अपने रिश्तेदार ही..."

"भाड़ में जाएं रिश्तेदार!" उसने कहा, और फिर लपककर चला गया।

मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता था कि ये लोग नानी के रिश्तेदार

है। मैंने देखा है कि सगे-सम्बन्धी एक-दूसरे से जितना बुरा व्यवहार करते हैं, उतना अजनबी भी नहीं कर पाते। एक-दूसरे की कमजोरियों और बेहूदगियों को जितना अधिक वे जानते हैं, उतना कोई बाहरी आदमी कैसे जान सकता है। सो वे जमकर एक-दूसरे के बारे में निंदा-चुगली करते हैं, बात बे बात आपस में लड़ते और झगड़ते हैं।

मुझे अपना मालिक पसंद आया। वह कुछ इतने मन-भावने ढंग से अपने बालों को पीछे की ओर झटका देता और उन्हें कानों की ओट में कर लेता कि बहुत ही भला मालूम होता। उसे देखकर न जाने क्यों मुझे 'बहुत खूब' की याद हो आती। वह अक्सर खूब खुलकर हंसता। हंसते समय उसकी सलेटी आंखें प्रसन्नता से चमकने लगतीं और उसकी तोते जैसी नाक के दोनों ओर बहुत ही लुभावनी झुर्रियां पड़ जातीं।

"यह चोंचें लड़ाना बन्द करो, कुड़क-मुर्गियो!" नम्रता के साथ मुस्कराते हुए वह अपनी मां और पत्नी से कहता, उसके छोटे-छोटे और खूब सटकर जमे हुए दांत मोती से झलकने लगते।

दोनों की दोनों आए दिन लड़तीं और झगड़ती थीं। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज होता कि कितनी जल्दी और कितनी आसानी से ये एक-दूसरे का मुंह नोचने पर उतर आती हैं। सुबह तड़के से ही दोनों बिना बाल बनाये, अस्त-व्यस्त कपड़ों में आंधी की भांति उखाड़-पछाड़ करतीं, कमरों में इस प्रकार घूमतीं मानो घर में आग लगी हो। दिन भर वे इसी प्रकार तोबा-तिल्ला मचाए रहतीं और केवल दोपहर के भोजन, चाय और सांझ के खाने के समय जब वे मेज पर बैठतीं तो घर में कुछ शान्ति दिखाई देती। खाने पर वे बुरी तरह टूटतीं और जब तक खाते-खाते थक न जातीं, उनपर मस्ती न छा जाती, खाती रहतीं; भोजन के समय बातें पकवानों की होतीं और बड़े झगड़े की तैयारी में रह-रहकर आलस भरी चूं-चूं होती। सास चाहे जो भी पकाती, बहू ताना कसे बिना नहीं चूकती:

"हमारी मां तो यह ऐसे नहीं बनातीं!"

"ऐसे नहीं तो इससे खराब बनाती है।"

"नहीं, इससे अच्छा बनाती है।"

"तो, जाओ, चली जाओ अपनी मां के पास।"

"मैं इस घर की मालकिन हूं!"

और मै कौन हूं?

तुमने फिर चोंचें लड़ाना शुरू कर दिया, कुड़क-मुर्गियो!" पति बीच में ही टोकता। "भेजा फिर गया है क्या तुम्हारा!"

घर मे हर चीज इतनी बेढंगी, बेडौल और अटपटी थी कि कहते नहीं बनता। रसोईघर से अगर भोजन के कमरे में जाना हो तो एक छोटे से, तंग और संकरे पाखाने में से गुजरना पड़ता था। ले-देकर समूचे फ्लैट मे एक ही पाखाना था। खाने की चीजे और समोवार सब इधर से ही ले जाकर मेज पर सजाया जाता था। इसपर नित्य ही मजाक होता और कोई न कोई मजेदार घटना घटती रहती। मेरे कामो मे एक काम यह भी था कि पाखाने की टंकी कभी खाली न होने पाए। मै रसोईघर में पाखाने के दरवाजे के ठीक सामने और बाहर की ओर जानेवाले दरवाजे की बगल में सोता था। मेरा सिर रसोईघर के अलावघर की गर्मी से भन्नाने लगता और पांव बाहर वाले दरवाजे से आनेवाली ठंडी हवा से सुन्न हो जाते। रात को सोने जाते समय मै फर्श पर बिछी तमाम चटाइयो को बटोरकर अपने पांवो पर डाल लेता।

बड़ा कमरा बहुत ही उदास और सूना-सूना सा लगता जिसमें खिड़कियों के बीच दीवार पर दो लम्बे आईने लटके थे, ताश खेलने की दो छोटी मेजें और बारह वीयेनी कुर्सियां पड़ी थीं, और "नीवा" पत्रिका से पुरस्कार में मिली और रुपहले चौखटों में जड़ी तसवीरें दीवारों के सूनेपन को तोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थीं। छोटी बैठक पंचरंगी गद्देदार मेज-कुर्सियों और अल्मारियों से अटी थी जिनके खानों मे चांदी के बरतनों और चाय पीने के सेटों की नुमाइश सी सजी थी। ये सब चीजें शादी में मिली थीं। रही-सही कसर पूरी करने के लिए छत से तीन लैम्प लटके थे जो आकार-प्रकार मे एक-दूसरे से होड़ लेते मालूम होते थे। सोने के कमरे में खिड़की एक भी नहीं थी। उसमें एक भीमाकार पलंग, ट्रंक और कपड़े रखने की अल्मारियों की भरमार थी जिनसे पत्ती के तम्बाकू और फ़ारसी बबूने की बू आती थी। ये तीनों कमरे हमेशा खाली पड़े रहते थे और समूचा परिवार भोजन करने के छोटे से कमरे मे ही कस-मसाता और हर घड़ी एक-दूसरे से टकराता रहता था। सुबह आठ बजे नाश्ता करने के तुरंत बाद मालिक और उसका भाई अपनी मेज को फैला लेते, सफ़ेद कागज की परतें, ड्राइंग के औजार, पेन्सिलें और रोशनाई

स भरी प्यालियां लाकर काम में जुट जाते। एक मेज के एक छोर पर रहता और दूसरा ठीक उसके सामने। मेज हिलती थी और समूचे कमरे को घेरे थी। जब कभी छोटी मालकिन और बच्चे को खिलानेवाली दाई बच्चों के कमरे से बाहर आतीं तो मेज से टकराए बिना न रहतीं।

तभी वीक्तर चिल्लाकर कहता :

"देखकर नहीं चला जाता!"

मालकिन आहत चेहरे से अपने पति की ओर देखती और कहती :

"वास्या, इसे मना कर दो कि मुझपर इस तरह न चिल्लाया करे।"

पति शान्त स्वर में समझाता :

"जरा संभलकर चला करो जिसमें मेज न हिले।"

"मेरे पेट हो रहा है और यहां इतनी चिचपिच है।"

"अच्छी बात है। हम अपना ताम-झाम उठाकर बड़े कमरे में चले जाएंगे।"

"हाय राम, तुम भी कैसी बातें करते हो? बड़ा कमरा मेहमानों को बैठाने की जगह है या काम करने की?"

पाखाने के दरवाजे में बूढ़ी मालकिन मात्र्योना इवानोव्ना का चेहरा दिखाई देता—चूल्हे में से निकले चुकन्दर की भांति लाल!

"उसकी बात तो सुनो, वास्या!" उसने चिल्लाकर कहा। "एक तुम हो कि काम करते-करते मरे जाते हो और एक यह है कि बच्चे-कच्चे जनने के लिए इसे चार कमरे भी छोटे पड़ते हैं! अच्छी राजकुमारी से शादी की है तुमने, जिसके भेजे में सिवा गोबर के और कुछ नहीं है!"

वीक्तर उपेक्षा से खिलखिला उठा। मालिक चिल्लाया :

"बस करो!"

लेकिन उसकी पत्नी, अपनी सास पर तीखे बाणों की बौछार करते और जी भरकर कोसते हुए मेज पर औंधी गिर पड़ी और लगी सिसकने :

"मैं यहां नहीं रह सकती! मैं गले में रस्सी बांधकर लटक जाऊंगी!"

"मुझे काम भी करने देगी या नहीं, कम्बख्त!" गुस्से से सफ़ेद होता हुआ पति चिल्लाया। "घर न हुआ पागलखाना हो गया! आखिर तुम लोगों का दोजख भरने के लिए ही तो मैं यहां खड़े होकर अपनी कमर तोड़ता हूं, कुड़क-मुर्गियो!.."

पहले-पहल ये झगड़े मुझे खूब भयभीत करते थे। एक बार तो मेरी जान ही सूख गई। मालकिन ने गुस्से में डबल रोटी काटने का चाकू उठाया, पाखाने में घुसकर भीतर से चटखनी चढ़ा ली, और लगी चुड़ैलों की भाँति चीखने-चिल्लाने। एक क्षण के लिए सारे घर में सन्नाटा सा छा गया। फिर मालिक भागकर दरवाजे के पास पहुँचा और झुककर एकदम दोहरा हो गया।

"मेरी कमर पर चढ़ जा, और शीशा तोड़कर दरवाजे की चटखनी खोल डाल!" उसने चिल्लाकर मुझसे कहा।

लपककर मैं उसकी पीठ पर चढ़ गया और मैंने दरवाजे के ऊपर का शीशा तोड़ डाला। लेकिन चटखनी खोलने के लिए जैसे ही मैं नीचे की ओर झुका कि मालकिन चाकू की मूठ से मेरे सिर पर प्रहार करने लगी। जो हो, दरवाजा मैंने खोल दिया। इसके बाद मालिक मालकिन पर बुरी तरह झपटा, उसे खींचता हुआ भोजन के कमरे में ले गया, और उसने उसके हाथ से चाकू छीन लिया। मैं रसोईघर में बैठा अपना चोट खाया सिर सहला रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि व्यर्थ ही मैंने इतनी मुसीबत मोल ली। चाकू इतना खुट्टल था कि गरदन तो दूर, उससे डबल रोटी तक नहीं काटी जा सकती थी। न ही मालिक की पीठ पर चढ़ने की कोई खास जरूरत थी। शीशा तोड़ने के लिए मैं कुर्सी पर भी खड़ा हो सकता था। फिर अच्छा होता अगर कोई बड़ा आदमी चटखनी खोलता—लम्बी बाँहें होने पर यह काम सहज ही हो जाता। इस दिन के बाद मैंने इस घर की घटनाओं से भयभीत होना छोड़ दिया।

दोनों भाई गिरजे में गाते थे। कभी-कभी काम करते समय भी वे धीमे स्वरों में गुनगुनाया करते। बड़ा भाई मध्यम सुर में गुनगुनाता:

उछलती लहरों में खोई,
प्रिय की प्रेम निशानी!

और छोटा भाई कोमल स्वर में साथ देता:

सुख-शान्ति हुई बिरानी
हुई सूनी जिन्दगानी!

बच्चों के कमरे से छोटी मालकिन दबी हुई आवाज में कहती: "तुम्हें हो क्या गया है? बेबी को सोने भी दोगे या नहीं?"

या फिर

वास्या, तुम घर-बीबी वाले आदमी हो। प्रेम की निशानियों के गीत गाते तुम शर्म से गड़ नहीं जाते! इसके अलावा गिरजे में प्रार्थना का घंटा भी बजता ही होगा..."

"अच्छा तो यह लो, हम अभी गिरजे के गीत गाना शुरू करते हैं..."

मालकिन जोर देकर कहती कि गिरजे के गीत हर कहीं नहीं गाए जा सकते—खास तौर से यहां। और पाखाने की ओर इशारा करके मालकिन 'यहां' का अर्थ जरूरत से ज्यादा स्पष्ट कर देती।

"हद है!" गुर्राते हुए मालिक कहते। "मकान बदलना ही पड़ेगा, नहीं तो इस घीचड़-पीचड़ में..."

मकान बदलने की भांति मालिक नयी मेज लाने का भी बहुधा राग अलापते थे। लेकिन तीन साल हो गए थे और मेज का अभी कहीं पता तक न था।

अपने पड़ोसियों के बारे में जब भी ये लोग बातें करते तो मुझे जूतों की दुकान वाले कुत्सित वातावरण की याद ताजा हो आती। वहां भी ऐसी ही बातें होती थीं। साफ़ मालूम होता कि मेरे ये मालिक भी अपने आपको नगर में सबसे अच्छा, एकदम दूध का धुला, समझते हैं। बेदाग नैतिकता और सदाचार के मानो सबसे अचूक नियम उन्हें मालूम है और उन नियमों की कसौटी पर वे सभी को बड़ी बेरहमी से कसते, हालांकि मेरे लिये ये नियम अस्पष्ट थे। उनकी इस आदत को देखकर उनके और उनके सदाचार के नियमों के प्रति मेरे मन में तीखा रोष घर करता और उनके इस सदाचार को पांव तले रौंदने में मुझे अब बेहद आनन्द आता।

मुझे भारी मेहनत करनी पड़ती: घर की महरी का सारा काम मैं ही करता, बुध के दिन रसोईघर में फ़र्श धोता, समोवार और पीतल के दूसरे बरतनों को रगड़-रगड़कर चमकाता, शनिवार के दिन समूचे घर तथा दोनों जीनों को साफ़ करता। अलावघरों के लिये लकड़ी काटता और जूठे बरतन मांजता, सब्जियां छीलता-काटता, टोकरी हाथ में लेकर अपनी मालकिन के साथ बाजार जाता, सौदा-सुलफ़ और दवाइयों के लिये किराने तथा दवा-फ़रोश की दुकानों के चक्कर लगाता।

मेरी बड़ी मालकिन, मेरी नानी की चिड़चिड़ी और झगड़ालू बहन, रोज सुबह ही छः बजे उठ जाती। जल्दी से हाथ-मुंह धोती, निरी लंबी

शमीज पहने देव-प्रतिमा के सामने घुटन के बल खड़ी होती, और बड़ी देर तक अपने जीवन, अपने बेटों और बहू के बारे में भगवान से शिकायतें करती।

"हे भगवान!" अपनी उंगलियों के छोर बटोरकर वह उनसे अपने माथे को छूते हुए रुआंसी आवाज में झींकना शुरू करती। "हे भगवान, मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती – बस, थोड़ी सी शान्ति चाहती हूं, इतनी कि मेरी आत्मा को कुछ चैन, थोड़ी सी राहत, मिल सके!"

उसके इस रोने-झींकने से मेरी आंखें खुल जातीं और कम्बल के नीचे लेटा मैं उसकी ओर देखता रहता, सहमे हृदय से भगवान के सामने उसका बिलखना-बिसूरना सुनता। बारिश से धुली रसोईघर की खिड़की में से शरद की सुबह उदासी से भीतर झांकती। और सूरज की ठंडी किरणों में उसकी धूसर आकृति जल्दी-जल्दी फ़र्श पर झुकती और बेचैन सलीब के चिन्ह बनाती रहती। उसके छोटे से सिर पर बंधा रूमाल खिसककर उतर जाता और उसके रंग-उड़े महीन बाल उसकी गर्दन और कंधों पर गिरने लगते। उसका बायां हाथ तेजी से हरकत करता और अपने रूमाल को फिर से सिर पर खिसकाते हुए वह बड़बड़ा उठती:

"यह चिथड़ा भी चैन नहीं लेने देता!"

सलीब का चिन्ह बनाते समय वह अपने माथे, कंधों और पेट पर जोरों से हाथ मारती और भगवान के दरबार में अपनी फरियाद की फुंकार छोड़ती:

"हे भगवान, अगर तुम्हें मेरा जरा सा भी ख्याल हो तो मेरी इस बहू को कसकर सजा देना। जिस तरह वह मेरा अपमान करती है और मुझे सताती है, वैसे ही तुम भी उसे आड़े हाथों लेना। और मेरे बेटे की आंखें खोलना, उसे इतनी समझ देना जिससे वह बहू की असलियत पहचाने, और वीक्तर को सही नजर से देख सके, और वीक्तर पर दया रखना, उसे अपने हाथ का सहारा देना, भगवान!.."

वीक्तर भी यहां, रसोईघर में ही, एक ऊंचे तख्ते पर सोता था। मां का रोना-झींकना सुन उसकी भी नींद उचट जाती और उनींदे स्वर में चिल्लाता:

"सबेरे ही सबेरे तुमने फिर रोना-कोसना शुरू कर दिया! तुमपर भी जैसे खुदा की मार है, मां!"

बस-बस, तू सोता रह! बहुत बातें न बना, मां फुसफुसा दबे हुए स्वर में कहती। इसके बाद, एक या दो मिनट तक, वह चुपचाप आगे-पीछे की ओर झूमती और फिर बदले की भावना से फनफनाकर चीख उठती:

"भगवान करे उनकी हड्डियां तक जमकर बर्फ हो जाएं, और उनका सारा खून सूख जाए!.."

मेरे नाना भी कभी इतनी कुत्सित प्रार्थनाएं नहीं करते थे।

प्रार्थना करने के बाद वह मुझे जगाती।

"उठ खड़ा हो! क्या नवाब की भांति ऐंड़ रहा है, जैसे इसीलिए हमने तुझे यहां रखा हो?.. उठ, समोवार तैयार कर और लकड़ियां भीतर लाकर रख। अहा, रात फिर चैलियां चीरना भूल गया, क्यों?"

उसकी फनफनाहट भरी बड़बड़ से बचने के लिए मैं खूब फुर्ती से काम करता, लेकिन उसे खुश करना असम्भव था। जाड़ों की बर्फीली आंधी की भांति सनसनाती वह रसोईघर में घूमती-फिरती और फुंकार उठती:

"शि-शि-शि, शैतान की औलाद! अगर वीक्तर को जगा दिया तो फिर देखना, कैसे कान उमेठती हूं! अच्छा जा, भागकर दुकान से सामान ले आ..."

नाश्ते के लिए मैं हर रोज़ दो पौंड डबल रोटी और छोटी मालकिन के वास्ते कुछ बंद खरीदकर लाता था। जब मैं रोटी लेकर घर लौटता तो दोनों सन्देह भरी नजर से उसे उलट-पलटकर देखतीं, हथेलियों पर रखकर उसका वजन जांचतीं और पूछतीं:

"यह कम तो नहीं है? इसके साथ क्या एक टुकड़ा और नहीं था? अच्छा, जरा इधर आकर अपना मुंह तो खोल!"

इसके बाद वे इस तरह चिल्लातीं मानो मैदान मार लिया हो:

"देखो, दूसरा टुकड़ा यह खुद चट कर गया—साफ निगल गया! इसके दांतों में रोटी चिपकी है!"

... मैं बड़ी खुशी से काम करता था—घर की गंदगी मिटाना मुझे बहुत पसंद था। बड़े मजे से मैं घर की धूल झाड़ता-बुहारता, फर्श को रगड़ता, पीतल के बरतनों को चमकाता, दरवाजों की मूठों और दस्तों को साफ़ करता। जब घर में शान्ति होती तो स्त्रियां अक्सर कहतीं:

"काम तो यह मेहनत से करता है।"

"और साफ़-सुथरा भी रहता है
लेकिन बहुत सरकश है।

"आखिर लालन-पालन करनेवाला कौन था?"

दोनों ही चाहती कि मै उनका मान करू, उनके साथ अदब से पेश आऊं। लेकिन मैं उन्हें नीम पागल समझता। उन्हे पसंद नहीं करता. उनका कहना नही मानता और हमेशा मुंह दर मुंह जवाब देता। छोटी मालकिन से जब यह छिपा न रहा कि कुछ बातो का मुझपर उलटा ही असर होता है तो उसने बारबार कहना शुरू किया:

"याद रख तुझे कंगलों के परिवार से लिया गया है। तेरी मां तक को मैने एक बार कांच के मोती जड़ा रेशमी लबादा पहनाया था!"

जब मुझसे नहीं रहा गया तो एक दिन मैने उससे कहा:

"तो उस लबादे के बदले मे क्या अब मै अपनी खाल उतार दूं?"

घबराकर वह चिल्लाई:

"हाय भगवान, यह तो घर मे आग ही लगा सकता है!"

यह सुनकर मैं सकपका गया—आखिर मै घर में आग क्यों लगाऊंगा?

मेरे बारे में दोनों हर घडी मालिक के कान खाती और वह मुझे सख्ती से डांटता:

"बस बहुत हो चुका। अगर अपनी हरकत से बाज न आए तो!.."

लेकिन एक दिन तंग आकर उसने अपनी पत्नी और मां को भी आड़े हाथो लिया:

"तुम दोनो की अक्ल भी न जाने कहां चरने गई है! जब देखो तब उस लड़के की गरदन पर सवार, मानो वह कोई घोड़ा हो! और कोई होता तो सब छोड़-छाड़ कभी का भाग गया होता, या काम करते-करते उसका अब तक कचूमर निकल गया होता!.."

यह सुन स्त्रियां बुरी तरह झुंझला उठीं और उनकी आंखो में आसू चमकने लगे। गुस्से में पांव पटकते हुए उसकी पत्नी चिल्लाई:

"और तुम्हारी बुद्धि क्या तुम्हारे इन झौवा भर लम्बे बालों में खो गई है जो खुद इसके सामने इस तरह की बातें करते हो? तुम्हारी बाते सुनने के बाद यह और भी सरकश हो जाएगा। तुम्हें इतना भी खयाल नहीं कि मेरा पैर भारी है।"

उसकी मा ने भी शिकायत के स्वर में रोना-बिसूरना शुरू किया।

"भगवान बुरा न करे, लेकिन मेरी बात गांठ बांध लो कि तुम लड़के को इस तरह सिर पर चढ़ाकर खराब कर डालोगे, वासीली!"

और दोनों तोबड़ा चढ़ाए वहां से खिसक गईं। मालिक अब मेरी ओर मुड़ा और सख्ती से बोला:

"यह सब तेरी करतूत का ही नतीजा है। मैं तुझे फिर नाना के पास वापस भेज दूंगा। मजे से चिथड़े बटोरते फिरना!"

अपमान का यह कड़वा घूंट मेरे गले में अटक गया। पलटकर मैंने जवाब दिया:

"तुम्हारे पास रहने से तो चिथड़े बटोरना कहीं अच्छा है! तुम मुझे यहां काम सिखाने के लिए लाए थे। लेकिन तुमने मुझे सिखाया क्या है—गधे की भांति केवल घर का बोझा ढोना!.."

मालिक ने हल्के हाथ से मेरे बाल पकड़ लिए और मेरी आंखों में देखते हुए अचरज के साथ कहा:

"बड़ा तेज़-तर्रार है तू! पर भाई ये चालें यहां नहीं चलेंगी... नहीं, बि-ल-कु-ल न-हीं!"

मुझे पूरा यक़ीन था कि वह मेरा बंधना-बोरिया गोल कर देगा। लेकिन दो दिन बाद पेन्सिल, रूलर, टीस्क्वेयर और काग़ज़ का एक पुलिन्दा लिए उसने रसोईघर में पांव रखा।

"चाकू साफ करने के बाद इसकी नकल उतार देना," उसने कहा।

यह किसी दुमंजिला मकान के अग्रभाग का नक्शा था जिसमें अनगिनत खिड़कियां और प्लास्तर की सजावट का काम बना था।

"लो, परकार संभालो। इससे सभी रेखाओं को पहले नापना और उसके बाद नुक्ते डालकर उनके छोरों के निशान बनाते जाना। फिर, रूलर की मदद से, नुक्तों को मिलाते हुए रेखाएं खींचना। पहले लम्बान के रुख में रेखाएं खींचना—ये पड़ी रेखाएं होंगी, फिर ऊपर-नीचे वाली रेखाएं खींचना—ये खड़ी रेखाएं होंगी। बस, इस तरह पूरी नकल उतार लेना!"

साफ़-सुथरा और सलीके का काम तथा कुछ सीखने का यह अवसर पाकर मुझे खुशी हुई, लेकिन काग़ज़ और परकार आदि की ओर मैं सहमी नज़र से देख रहा था और मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

फिर भी अगले ही क्षण हाथ धोकर मैं काम मे जुट गया। मैंने तमाम पड़ी रेखाओं के नुक्ते लगाए और रूलर से लकीरें खींचकर उन्हे जोड दिया। यह सब तो बड़े मजे में हो गया। बस, एक ही बात जरा गड़बड़ थी। न जाने कैसे, तीन लकीरें फालतू खिंच गई थीं। इसके बाद मैंने तमाम खड़ी लकीरो के निशान बनाए और उन्हे भी मिला दिया। और मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि यह तो कुछ और ही बन गया है। इस घर की शक्ल-सूरत एकदम बदली हुई थी। खिड़कियां ऊपर खिसककर दीवारों के बीच की खाली जगह में पहुंच गई थीं, और उनमें से एक तो घर की दीवार को पार कर हवा मे ही लटक रही थी। घर का मुख्य दरवाजा खिसककर दूसरी मंजिल पर पहुच गया था, कानिस छत के मध्य में आ पहुंची थी, और रोशनदान चिमनी पर आ लगा था।

सकपकाया सा बड़ी देर तक मै इस अजूबे की ओर देखता रहा। कोशिश करने पर भी मेरी समझ में न आया कि यह सब कैसे हो गया। आखिर समझने की कोशिश छोड़कर अपनी कल्पना के सहारे मैंने स्थिति को संभालने का निश्चय किया: सभी कार्निसों और छत की मुंडेर पर मैंने चिड़े-चिड़ियों, कौवों और कबूतरों की तस्वीरे बना दीं, और खिड़कियों के सामने की खुली जगहों को मैंने टेढ़ी-मेढ़ी टांगों वाले आदमियों से भर दिया। उनके हाथों मे मैंने एक-एक छतरी भी थमा दी, लेकिन उनके टेढ़े-मेढ़ेपन में इससे भी कोई खास कमी नहीं आई। इसके बाद समूचे कागज पर तिरछी लकीरें डाल मैं अपने मालिक के पास पहुंचा।

मालिक की भौंहें तन गईं, बालों में हाथ फेरते हुए और मुंह फुलाकर उसने पूछा:

"यह सब क्या है?"

"यह बारिश हो रही है," मैंने कहा, "बारिश में सभी घर टेढ़े-मेढ़े हो जाते है, क्योंकि खुद बारिश भी उल्टी-सीधी गिरती है। और पक्षी—ये सब पक्षी है—कार्निसो पर सिकुड़े-सिमटे बैठे हैं। जब बारिश होती है तो सदा ऐसा ही होता है। और ये लोग अपने-अपने घर पहुंचने की जल्दी में है। यह बीबी जी रपटकर गिर पड़ी है, और वह नींबू बेचनेवाला है..."

बहुत बहुत धन्यवाद मालिक ने मेज पर झुकते हुए कहा यहां तक कि उसके लम्बे बाल कागज पर खरखराने लगे उसका समूचा बदन हंसी से हिल रहा था।

"तेरा बेड़ा गर्क़ हो, चिड़े-जानवर!"

तभी छोटी मालकिन भी मटका सा अपना पेट लिये आ मौजूद हुई, और मेरी करतूत पर नज़र डालकर देखा।

"मार खाकर ही यह ठीक होगा!" उसने अपने पति को उकसाया।

मालिक पर इसका असर नहीं हुआ। बिना किसी झुंझलाहट के बोला:

"ओह नहीं, शुरू-शुरू में खुद मेरा भी यही हाल था..."

लाल पेन्सिल से उसने मेरी ग़लतियों पर निशान बना दिये और मुझे एक दूसरा काग़ज देते हुए बोला:

"फिर कोशिश करो। एक बार, दूसरी बार, तीसरी बार — जब तक ठीक न बने, इसे बनाते ही रहना!.."

मेरा दूसरा प्रयत्न पहले से अच्छा था। केवल एक खिड़की अपने स्थान से खिसककर बरसाती के दरवाज़े पर आ गई थी। लेकिन घर सूना-सूना सा रहा। यह मुझे कुछ अच्छा नहीं मालूम हुआ। सो सभी काट-छांट के लोगों से मैंने उसे आबाद कर दिया। खिड़कियों पर युवतियां बैठी पंखा झल रही थीं। युवक सिगरेट का धुआं उड़ा रहे थे और एक युवक जो सिगरेट नहीं पीता था, अपनी नाक पर अंगूठा रखकर और उंगलियां फैलाकर दूसरों को अनादरपूर्वक दिखा रहा था। बाहर पोर्च के आगे एक गाड़ी खड़ी थी और कुत्ता लेटा हुआ था।

मालिक ने गुस्से से पूछा:

"यह फिर क्या काटा-पीटी कर लाया है?"

मैंने बताया कि आदमियों के बिना घर बड़ा सूना-सूना सा लग रहा था। लेकिन उसने मुझे डांटना शुरू किया:

"यह क्या खुराफ़ात है! अगर कुछ सीखना चाहता है तो कायदे से काम कर! बेकार की ऊल-जलूल बातों से बाज आ!"

और अन्त में मूल से मिलता-जुलता दूसरा चित्र बनाकर जब मैं उसके पास ले गया तो वह बहुत खुश हुआ।

"देखा। अब ठीक बन गया न? अगर इसी तरह कोशिश करता रहेगा तो बड़ी जल्दी तरक़्क़ी करेगा!.."

और उसने मुझे एक नया काम सौंपा

हमारे अपने फ्लैट का एक नक्शा तैयार कर, जिसमें सब चीजें कायदे से दिखाना – कितने कमरे हैं और किस-किस जगह बने हैं। दरवाज़े और खिड़कियां कहां-कहां हैं। हर चीज़ अपनी ठीक जगह पर होनी चाहिए। मैं तुझे कुछ नही बताऊंगा, सारा काम खुद ही करना होगा।"

मै रसोईघर में आकर मन ही मन जोड-तोड़ बैठाने लगा कि कैसे क्या किया जाए।

लेकिन नक्शानवीसी का मेरा यह काम आगे नही बढ सका, तभी उसका अन्त हो गया।

बूढ़ी मालकिन मेरे पास आई और जले-भुने स्वर में बोली:

"तो अब नक्शानवीस बनना चाहता है, क्यो?"

उसने मेरे बाल पकड़े और मेरा सिर इतने ज़ोरों से मेज़ मे टकराया कि मेरी नाक और होंठ लहूलुहान हो गए। उसने हाथ-पांव पटके, खूब उछली और कूदी, मेरे नक्शे को उठाकर फाड़ डाला, औजारों को फ़र्श पर फेंक दिया और फिर, कूल्हों पर हाथ रख, विजेता के अन्दाज़ में चिल्लाई:

"ले, बना नक्शे! नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। पराये आदमी को काम मिले और भाई – एकमात्र सगा और मां-जाया भाई भागे?"

मेरा मालिक और उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी भी आ धमकी। तीनों के तीनो, चीखने और चिल्लाने, एक-दूसरे पर थूकने लगे। अन्त में स्त्रियां रोती-कलपती विदा हो गईं और मालिक ने मुझसे कहा:

"फिलहाल तू यह सब छोड़ दे, अभी मत पढ़ – देख हो रहा है क्या तूफान खड़ा कर दिया इन लोगो ने।"

उसकी यह हालत देख मुझे दुःख हुआ – कितना दबा-पिसा और कितना निरीह। एक घड़ी के लिए भी स्त्रियों की विल्ल-पों उसका पीछा नही छोड़ती थी।

मैंने पहले ही भांप लिया था कि बूढ़ी मालकिन को मेरा काम सीखना पसन्द नही है और रोड़े अटकाने में भी वह अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं छोड़ती थी। इसलिए, नक्शा बनाने बैठने से पहले, मैं उससे यह पूछना कभी नहीं भूलता था:

"अब और कोई काम तो नहीं है, मालकिन?"

खोजकर वह जवाब देता

"जब होगा तब अपने आप बना दूंगी। जा अब मेज पर अपने कौड़े-मकोड़े बना..."

और कुछ मिनट बाद ही, किसी न किसी काम के लिए वह मुझे अखवाकर भेजती या कहती:

"जीना साफ़ क्या किया है, निरी बेगार काटी है। कोने-कोने धूल से अटे पड़े हैं। जा, झाड़ू लेकर दोबारा साफ़ कर..."

लेकिन वहां पहुंचने पर मुझे कहीं कोई धूल नहीं दिखाई देती।

"तो मैं क्या झूठ बोल रही थी, क्यों?" वह चिल्लाकर मेरा मुंह बन्द करना चाहती।

एक बार कागजों पर क्वास[1] उलटकर उसने मेरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। दूसरी बार उसने पूजा के दीये का सारा तेल उडेल दिया। छोटी लड़की की भांति बचकानी चालाकी के साथ वह इस तरह की हरकतें करती, बच्चों की भांति अपनी इन हरकतों को वह छिपा नहीं पाती। इतनी जल्दी और इतनी आसानी से नाराज होते या हर चीज और हर व्यक्ति के बारे में इतने जोश के साथ शिकायतें करते मैंने अन्य किसी को न पहले, न बाद में देखा। शिकायतें करना सभी को अच्छा लगता है, लेकिन बड़ी मालकिन यह विशेष आनन्द के साथ करती थी मानो गीत गाती हो।

अपने बेटे से उसका प्रेम किसी पागलपन से कम नहीं था। इस प्रेम की शक्ति को मैं केवल मदांध ही कह सकता हूं, इसे देखकर मुझे हंसी भी आती और डर भी लगता। सुबह की पूजा-प्रार्थना के बाद वह अलावघर की सीढ़ी पर खड़ी हो जाती, और उसके ऊपर सोने के तख्ते पर अपनी कोहनियां टिकाकर पूरी तन्मयता से फुसफुसाती:

"मेरे भाग्य का सहारा, मेरे रक्त और मांस का टुकड़ा, हीरा सा खरा और फरिश्ते के परों सा हल्का-फुल्का! तू सो रहा है। सो, मेरे जिगर के टुकड़े, सो! मीठे सपनों की चादर अपने हृदय पर डालकर सो। और वह देख, सपनों में तेरी दुल्हिन तेरे लिए पलक-पांवड़े बिछाए है। कितनी सुन्दर—एकदम गोरी-चिट्टी, मानो राजकुमारी या किसी धनी

[1] क्वास—काली रोटी और तरह-तरह के फलों से बनाया गया पेय।—सं०

सौदागर की बेटी हो! तेरे दुश्मनों की कब्र खुद जाए, मां के गर्भ में ही उन्हें लकवा मार जाए! और तेरे मित्र सैकड़ों वर्ष जिएं, और झुंड की झुंड कुंवारी लड़कियां सदा तुझपर न्योछावर हों, हंसों के दल की भांति तेरे पीछे फिरती रहें!"

यह सुन मेरे पेट में बल पड़ जाते। औघड़ और काहिल वीक्तर देखने में बिल्कुल कठफोड़वे जैसा था—वैसी ही लम्बी नाक, वैसा ही पंचरंगा जिद्दी और मूर्ख!

मां की फुसफुसाहट से कभी-कभी उसकी नींद उचट जाती और उनींदे स्वर में वह बड़बड़ाता:

"तुम्हें शैतान भी तो नहीं उठा ले जाता, मां! क्या यहां खड़ी-खड़ी सीधे मुंह में थूक रही हो!.. जीना हराम है!"

इसके बाद, बहुत कर, वह चुपचाप नीचे उतर जाती और हंसते हुए कहती:

"अच्छा, सो, सो... नालायक!"

कभी-कभी ऐसा भी होता था: उसकी टांगें ढीली पड़ जातीं, और अलावघर के किनारे वह धम्म से ढह जाती, मुंह खोले और इस तरह हांफते हुए, मानो उसकी जीभ जल गई हो। तीखे शब्दों की फिर बौछार होती:

"क्या कहा कलमुंहे, तेरी अपनी मां को शैतान उठा ले जाये! कपूत, मेरी कोख में आते ही तू मर क्यों नहीं गया? तूने जन्म ही क्यों लिया, शैतान की दुम! मेरे माथे के कलंक!"

नशे में धुत्त गली के गंदे और बाजारू शब्द उसके मुंह से निकलते—भयानक और घिनौने!

वह बहुत कम सोती थी। नींद में भी जैसे उसे चैन नहीं मिलता था। कभी-कभी रात के दौरान वह कई बार अलावघर से नीचे उतरती, काउच के पास उस जगह पहुंचती जहां मैं सो रहा था, और मुझे जगा देती।

"क्यों, क्या बात है?"

"शोर न करो," सलीब का चिन्ह बनाकर और अंधेरे में किसी चीज़ की ओर देखते हुए वह फुसफुसाती, "ओह भगवान... मेरे मसीहा आलीजाह... सन्त वर्वारा... अकाल मृत्यु से हम सब की रक्षा करना!.."

फिर कांपते हाथों से वह मोमबत्ती जलाती। कुप्पे सी नाक वाला उसका चेहरा फूल जाता और व्याकुलता से भरी धूसर आंखें मिचमिचाती वह धुंधलके से विकृत चीजों को जोर लगाकर देखती। रसोई काफी बड़ी थी, लेकिन ट्रंकों और अलमारियों की फालतू भरमार ने उसे पिचपिच बना दिया था। चांद की रोशनी यहां आकर स्थिर और शान्त हो गई थी, और देव-प्रतिमाओं पर सदा चेतन आग की परछाइयां थिरक रही थी: दीवारों से सटे रसोई के छुरे कांटे हिमकणों की भांति चमक रहे थे और शेल्फ के सहारे लटकी काली कड़ाहियां बेडौल और बदनुमा अंधे चेहरों की भांति दिखाई देती थी।

बूढ़ी मालकिन हमेशा टटोल-टटोलकर, मानो नदी के पानी की थाह लेते हुए अलावघर से सावधानी से नीचे उतरती। फिर, अपने नंगे पांवों से छपछप करती हुई वह उस कोने में पहुंचती जहां कटे हुए सिर की भांति पानी भरने का एक डिब्बा लटका था। डिब्बे के इधर-उधर कान की भांति दो कुन्दे लगे थे। इसके नीचे गंदा पानी जमा करने की एक बाल्टी और पास में ही साफ पानी से भरा एक टब रखा था।

गट-गट आवाज करते हुए वह पानी डकारती और फिर खिड़की के शीशे पर जमी बर्फ की नीली परत के बीच से झांककर देखती।

होठों ही होठों में फिर फुसफुसाती:

"ओ भगवान, मुझपर दया करना, मेरी आत्मा पर तरस खाना!"

कभी-कभी वह मोमबत्ती बुझा देती और घुटनों के बल गिरकर तीखे स्वर में बुदबुदाती:

"किसी के हृदय में मेरे लिए प्यार-ममता नहीं है, मुझे कोई नहीं चाहता!"

अलावघर पर चढ़ते हुए वह चिमनी के दरवाजे के सामने सलीब का चिन्ह बनाती और फिर उसके भीतर हाथ डालकर देखती कि खटका ठीक जगह पर लगा है या नहीं। उसका हाथ कालिख से काला हो जाता, वह एक बार फिर गालियों का गोला दागती और तुरंत सो जाती मानो किसी अदृश्य शक्ति ने उसे तुरंत ही नींद में डुबो दिया हो। जब कभी वह मुझपर बरसती तो मैं सोचता: अफ़सोस कि उसकी शादी नाना से नहीं हुई, वह उनके होश ठीक रखती, और खुद इसे भी ठीक अपने जैसा ही एक जोड़ीदार मिल जाता। वह अक्सर अपना गुस्सा मुझपर

उभारती लेकिन कभी-कभी एसे दिन भी आते जब रूड या फल: उसका चेहरा कुम्हला जाता। उसकी आखो मे ग्रासू तरने लगते और वह अपनी बातों के सत्य मे विश्वास पैदा करनेवाले ढंग मे कहती :

"तुझे क्या पता, मेरे कलेजे में कितना दुःख भरा है। मैंने बच्चे जने, पाल-पोसकर उन्हे बड़ा किया और अपने पांव पर खड़ा होने लायक बनाया, लेकिन मुझे क्या मिला? रसोई मे बावर्चिन की भांति दिन-रात खटना और उनका दोजख भरना। बड़ा सुख मिलता है मुझे इस से? बेटा परायी लुगाई को घर मे लाया और अपना सगा खून भूल गया। और क्या यह ठीक है?"

"नही यह तो ठीक नही है," मै सच्चे हृदय से कहता।

"देखा? ये बातें है..."

और वह पूरी बेशर्मी के साथ, अपनी बहू की चादर उतारना शुरू करती :

"गुसलखाने मे मैंने उसे नहाते देखा है। पता नही, उसकी किस चीज पर वह इतना लट्टू है? ऐसी क्या रूपवती कहलावे है?.."

पुरुष और स्त्रियों के सम्बन्धों का जिक्र करते समय वह चुन-चुनकर गंदे से गंदे शब्दों का इस्तेमाल करती। शुरू-शुरू मे उसकी बातों से मुझे बडी घिन मालूम होती, लेकिन शीघ्र ही बड़े ध्यान और गहरी दिलचस्पी से मैं उसकी बाते सुनने लगा, क्योंकि मैं महसूस करता था कि उसके शब्दों के पीछे कोई कटु सत्य प्रकट होने के लिये कसमसा रहा था।

"लुगाई मे बड़ी ताकत है," हथेली को मेज पर पटपटाते हुए वह भनभनाती। "लुगाई ने भगवान को भी धोखा दे दिया था। समझा? हौवा की वजह से सभी लोगों को दोजख का मुंह देखना पड़ता है!"

स्त्री की शक्ति का बखान करने से वह कभी नहीं थकती, और हर बार मुझे ऐसा मालूम होता मानो इस तरह की बातें करके वह किसी को डरा रही है। उसकी यह बात मुझे कभी नही भूली कि "हौवा ने खुदा को भी धोखा दे दिया"।

हमारे अहाते में एक और घर था जो उतना ही बड़ा था जितना कि हमारा। दो इमारतों के आठ फ्लैटो में से चार में फ़ौजी अफ़सर रहते थे। फ़ौज का पादरी एक अन्य फ्लैट में रहता था। अहाते में साईसो, अर्दलियो की भरमार थी, बावर्चिनें, धोबिनें और घर की नौकरानिय

उनसे मिलने आती रहती था, रसोईघरों में नित्य ही नये गुल खिलते इश्क और आशनाई के शिगूफे छूटते, आंसुओं और मारपीट तक की नौबत आती। सिपाही आपस में लड़ते, खाई खोदनेवालों और घर-मालिक के मजदूरों तक से भिड़ जाते, औरतों को पीटते थे। अहाता क्या था, मानो हट्टे-कट्टे मर्दों की पाशविक और बेलगाम भूख का, नंगी कामुकता और वासना का सागर हिलोरें ले रहा था। मेरे मालिक लोग जब दोपहर का खाना खाते, चाय पीते या सांझ का भोजन करने बैठते तो कोरी कामुकता और बेमानी बर्बरता में डूबे इस जीवन और उसकी उखाड़-पछाड़ के गंदे किस्सों का पूरी बारीकी और बेशर्मी से चटखारे ले-लेकर बयान करते। बूढ़ी मालकिन अहाते की एक-एक बात की खबर रखती और रस ले-लेकर उसे दोहराती।

छोटी मालकिन चुपचाप इन किस्सों को सुनती और उसके गदराए हुए होंठों पर मुस्कराहट थिरकने लगती। वीक्तर हंसी से दोहरा हो जाता, लेकिन मालिक नाक-भौंह सिकोड़कर कहता:

"बस भी करो, मां! .."

"हाय राम, तुम्हें तो मेरा बोलना भी नहीं सुहाता!" मां शिकायत करती।

वीक्तर शह देता:

"बोले जाओ, मा। इस मे शर्म की क्या बात है? यहां सभी अपने लोग ही हैं..."

बड़े लड़के के हृदय में मां के प्रति तिरस्कार भरी दया का भाव था। वह हमेशा मां के साथ अकेला रहने से बचता, और अगर संयोगवश कभी ऐसा हो भी जाता तो मां उसकी पत्नी को लेकर शिकायतों का अम्बार लगा देती और अन्त में पैसे मांगने से कभी न चूकती। दो-तीन रूबल, कुछ रेजगारी निकालकर वह झट से उसके हाथ पर रख देता।

"तुम्हें पैसों की भला अब क्या जरूरत है, मां? यह नहीं कि मुझे देते दुःख होता है, लेकिन सवाल यह है कि लेकर करोगी क्या?"

"मुझे तो बस वह भिखारियों के लिये, चर्च मे मोमबत्तियां ले जाने के लिये.."

"भिखारियों की बात न करो, मां! वीक्तर का तुम सत्यानास करके छोड़ोगी!"

तुम्हें अपना भाई भी फूटी आखों नहीं सुहाता। यह बड़ा पाप है

बेचैनी से हाथ हिलाकर वह मां के पास से चल देता।

वीक्तर मुंहफट था और मां का जरा भी लिहाज नहीं करता था। खाने की चीजों पर वह बुरी तरह टूटता, और उसका मन कभी नहीं भरता। रविवार के दिन बडी मालकिन मालपूवे बनाती और उसके लिये कुछ मालपूवे निकालकर अलग रखना कभी नहीं भूलती। उन्हे मर्तबान मे छिपाकर वह काउच के नीचे रख देती जिसपर मै सोता था। गिरजे से लौटते ही वीक्तर सीधे मर्तबान पर झपट्टा मारता और बडबड़ाकर कहता :

"ऊट की दाढ़ मे जीरा! थोडे मालपूवे और रख देती तो क्या तेरा कुछ बिगड़ जाता। बूढ़ी चमरखट्टो!"

"ज्यादा बोलो नहीं। चुपचाप निगल जाओ। अगर किसी ने देख लिया तो..."

"तो क्या? मै साफ कह दूंगा कि शैतान की मौसी खुद इस बूढी खूसट ने मेरे लिए ये मालपूवे चुराकर रखे थे!"

एक दिन मैने मर्तबान निकाला और दो-एक मालपूवे खुद चट कर गया। वीक्तर ने मेरी खूब मरम्मत की। वह मुझसे उतनी ही घृणा करता था जितनी कि मै उससे। वह मुझे चिढाता, दिन मे तीन बार अपने जूतों पर मुझसे पालिश कराता, अपने तख्ते पर लेटने के बाद लकड़ी की पट्टियां खिसकाता और मेरे सिर का निशाना साधकर दराज के बीच से जोरो से थूकता।

अपने बड़े भाई की भाति जिसे बात-बात में 'कुड़क-मुर्गियो' या इसी तरह के दूसरे फ़िकरे कसने की आदत थी, वह भी कुछ खास ढले-ढलाए फिकरे दोहराने की कोशिश करता। लेकिन उसके फ़िकरे हद से ज्यादा बेहूदा और बेतुके होते थे।

"मां, अटैन्शन! मेरे मोज़े कहां है?"

बेमानी सवालों से वह मेरी जान खाता। जैसे :

"अलेक्सेई, बता 'बुलबुल' लिखकर हम उसे 'गुलगुल' क्यो पढते है? जिस तरह कुछ लोग 'चाकू' को 'काचू' कहते है, वैसे ही 'चाबुक' को 'बाचुक' क्यो न कहा जाए। और यह 'कुच' शब्द क्या 'कूची' से बना है? अगर ऐसा है तो..."

उनकी बोलचाल और बातचीत करने का ढंग मुझे बहुत बुरा लगता जन्म से ही नाना और नानी की साफ-सुथरी और सुघड़ भाषा की घुट्टी पीकर मैं बड़ा हुआ था। बेमेल शब्दों का गठबन्धन कर जब वे प्रयोग करते तो शुरू-शुरू में मुझे बड़ा अजीब लगता। मेरी समझ में न आता कि यह क्या गोरखधंधा है। "भयानक मजा", "इतना खाने का दिल है कि मर ही जाऊं", "भीषण प्रसन्नता", या इसी तरह के अन्य बेमेल शब्दों को जोड़कर वे इस्तेमाल करते। और मैं सोचता कि जो 'मजेदार' है वह 'भयानक' कैसे हो सकता है, भोजन या खाने के साथ मरने का भला क्या सम्बंध हो सकता है, और 'प्रसन्नता' के साथ 'भीषण' शब्द का जोड़ कैसे बैठ सकता है?

और मैं उनसे सवाल करता:

"इस तरह बोलना क्या ठीक है?"

झुंझलाकर वे जवाब देते:

"बस-बस, ज्यादा उस्तादी झाड़ने की कोशिश मत कर! नहीं तो तेरे कान तोड़ देंगे..."

मुझे यह भी गलत मालूम हुआ। कान भी क्या कोई पेड़-पौधा या फूल-पत्तियां हैं जिन्हें तोड़ा जा सकता है?

यह दिखाने के लिए कि मेरे कानों को सचमुच तोड़ा जा सकता है, उन्होंने मेरे कान खींचे। लेकिन मैं निश्चल खड़ा रहा और अन्त में विजय के स्वर में चिल्लाकर बोला:

"अहा, कान खींचने को तुम कान तोड़ना कहते हो! मेरे कान तो अभी भी वहीं हैं, जहां पहले थे!"

चारों ओर जिधर भी नजर उठाकर देखता, पूरी हृदयहीनता से लोग एक-दूसरे को सताते, दुनिया भर की चालें चलते और घिनौने नंगेपन का प्रदर्शन करते। यहां की गंदगी और नंगेपन ने कुनाविनो के काठ बाजार और चकलाखाने को भी मात कर दिया था जहां क़दम-क़दम पर बेसवा घर थे और हरजाई औरतों की सड़कों पर भरमार दिखाई देती थी। कुनाविनो की गंदगी और हृदयहीनता के पीछे तो फिर भी किसी ऐसी चीज का आभास मिलता था जिसने इस गंदगी और हृदयहीनता को अनिवार्य बना दिया था: जानलेवा गरीबी, भुखमरी और श्रम जिसने उबा देनेवाली घिसघिस का रूप धारण कर लिया था। यहां खाते-पीते लोग

रहते थे, चैन से जीवन बिताते थे, और श्रम के बदले गैरज़रूरी समझ में न आनेवाली हलचल मे डूबते-उतराते थे। यहां हर चीज़ तेज, झुंझलाहट भरी ऊब से रंगी हुई थी।

मेरी बुरी हालत थी, और जब कभी नानी मुझसे मिलने आती तब तो मानो मेरी जान पर ही बन आती। वह हमेशा पीछे के दरवाजे से रसोई मे दाखिल होती। पहले वह देव-प्रतिमाओं के सामने सलीब का चिन्ह बनाती, इसके बाद अपनी छोटी बहन के सामने झुकते समय वह एकदम दोहरी हो जाती। उसका इस तरह झुकना मुझे पूर्णतया कुचल देता, ऐसा मालूम होता मानो ढाई मन का बोझ मेरे ऊपर आ गिरा हो।

एकदम ठंडे, उपेक्षापूर्ण अन्दाज़ मे मालकिन कहती:

"अरे, तुम यहां कहां से टपक पड़ी, अकुलीना?"

नानी मेरी पहचान मे बाहर हो जाती। इस अन्दाज़ मे वह अपने होंठो को काटती कि उसके चेहरे का भाव एकदम बदल जाता। ऐसा मालूम होता मानो वह नानी का चेहरा नही है। वह वहीं, गंदे पानी वाले डोल के पास, दरवाजे के साथ लगी बेंच पर चुपचाप बैठ जाती और मुंह से एक शब्द भी न निकालती–एकदम गुमसुम, मानो उसने कोई अपराध किया हो। अपनी बहन के सवालो के जवाब भी वह दबे और सहमे हुए से स्वर में देती।

मुझसे यह सहन न होता। झुंझलाकर कहता:

"यह तुम कहां बैठ गयी?"

दुलार भरी कनखियो से वह मेरी ओर देखती, और प्रभावपूर्ण ढंग से कहती:

"बहुत ज़बान न चला। तू क्या इस घर का मालिक है?"

"इसके तो ढंग ही निराले है," बूढ़ी मालकिन कहती, "चाहे जितना इसे मारो या डांटो, पर यह हर बात में अपनी टांग अड़ाने से बाज नही आता!" और इसके बाद शिकायतो का सिलसिला शुरू हो जाता।

कभी-कभी बड़े ही कुत्सित ढंग से वह अपनी बहन को कोचती:

"तो अब मांग-तांग कर गुजर हो रहा है, अकुलीना?"

"बुरी बात क्या है..."

"जब लाज ही बाकी न रही तो बात ही क्या है!"

लोग कहते हैं ईसा मसीह भी मांग-तांग कर ही गुजर करते थे...

"यह तो मूर्खों की बातें हैं। नास्तिक ही ऐसी बातें करते हैं। और तुम बैठी उनकी बातें सुनती हो! ईसा मसीह क्या भिखारी था? वह भगवान का बेटा था। कहा गया है कि एक दिन वह आएगा और सभी के भले-बुरे कामों का जायजा लेगा—जो जिन्दा हैं उनके भी और जो मर गए हैं उनके भी—याद रखो! तुम गल-सड़कर चाहे धूल में क्यों न मिल जाओ, उसकी नजरों से फिर भी न छिप सकोगे। वह तुम्हें और तुम्हारे वालीलों से बदला लेगा, तुम्हारे घमंड के लिए और मेरे लिए, जब अपना धनी रिश्तेदार समझकर मैंने तुम्हारे आगे हाथ फैलाया था..."

नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया:

"मुझसे जो बना, तुम्हारे लिए सदा करती रही। और भगवान ने हमसे बदला लिया है तुम्हें मालूम है..."

"थोड़ा लिया है, थोड़ा..."

उसकी जबान रुकने का नाम नहीं लेती, और उसके शब्द नानी के हृदय पर कोड़े बनकर बरसते। मुझे बड़ा अटपटा मालूम होता और समझ में न आता कि नानी यह सब कैसे बरदाश्त करती है। नानी का यह रूप मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता।

तभी छोटी मालकिन कमरों में से आती और अहसान सा जताते हुए कहती:

"चलो, खाने के कमरे में चलो। हां-हां, सब ठीक है। बस, चली आओ!"

बड़ी मालकिन नानी को पीछे से आवाज देती:

"अपने पांव तो साफ़ कर लिए होते, चर्र-मर्र चरखे की माल!"

मेरे मालिक का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठता। नानी को देखते ही वह कहते:

"ओह, पंडिता अकुलीना! कहो, कैसी हो? बूढ़ा काशीरिन तो अभी जिन्दा है न?"

नानी के चेहरे पर अत्यन्त स्नेहपूर्ण मुस्कराहट खेलने लगती।

"और तुम्हारा क्या हाल है? क्या अब भी उसी तरह काम में जुटे रहते हो?"

"हां काम में ही जुटा रहता हूं। क़ैदी की तरह।"

मालिक के साथ नानी की बातचीत में अपनापन और सहृदयता का भाव रहता। वह इस तरह बातें करता जैसे बड़े छोटों से करते हैं। कभी कभी मालिक मेरी मां का भी जिक्र करता, कहता:

"वर्वारा वासील्येव्ना... क्या औरत थी — दिलेर और ताक़तवर!"

"तुम्हें याद है न," नानी की ओर मुंह करते हुए उसकी पत्नी कहती, "मैंने उसे एक लबादा दिया था — काले रेशम का, और शीशे के मोती जड़ा!"

"हां, हां, याद है..."

"एकदम नया मालूम होता था..."

"ऊंह, लबादा, सबादा — जीवन का कबाड़ा!" मालिक बड़बड़ाया।

"यह क्या — क्या कहा तुमने?" उसकी पत्नी संदेहपूर्वक पूछती।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं... सुखी दिन गुजर जाते हैं, अच्छे लोग गुज़र जाते हैं.."

पत्नी के माथे पर चिन्ता की रेखाएं दौड़ गईं। बोली:

"मेरी समझ में नहीं आता — यह क्या बातें कर रहे हो तुम?"

इसके बाद नानी नवजात बच्चे को देखने चली गई और मैं चाय के बरतन आदि साफ करने के लिए रह गया। मालिक ने धीमे और विचारमग्न से स्वर में कहा:

"बड़ी अच्छी है नानी तेरी..."

उसके इन शब्दों को सुनकर मेरे हृदय में कृतज्ञता पैदा हो गयी। लेकिन अकेले में मुझसे नहीं रहा गया। दुःखते हृदय से मैंने नानी से कहा:

"तुम यहां आती ही क्यों हो? क्या तुम नहीं देखती कि ये किस क़िस्म के लोग हैं?.."

"हां अल्योशा, मैं सब कुछ देखती हूं," नानी ने उसास भरते हुए कहा और मेरी तरफ देखा। नानी के अद्भुत चेहरे पर एक बहुत ही कोमल मुसकराहट जगमगा उठी, और मैंने तुरंत लज्जा का अनुभव किया। सचमुच, नानी की आंखों से कुछ छिपा नहीं था — वह सब कुछ देखती थी, सभी कुछ जानती थी, वह उस उथल-पुथल तक से परिचित थी जो कि उस समय मेरे हृदय में हो रही थी।

नानी ने चौकस होकर इधर-उधर नजर डाली और यह देखकर कि आस-पास में कोई नहीं है, मुझे अपनी बांहों में खींच लिया और उमड़ते हुए हृदय से बोली :

"अगर तुम न होते तो मैं यहां कभी नहीं आती – इन लोगों से भला मेरा क्या वास्ता? फिर नाना बीमार हैं और उनकी बीमारी के चक्कर में मेरा सारा समय चला जाता है। मैं कुछ काम नहीं कर पाती, इसलिए हाथ भी तंग है। उधर बेटा मिखाइलो ने अपने साशा को धता बता दिया है, सो उसका खाना-पीना भी मुझे ही जुटाना पड़ता है। इन्होंने तुम्हें छः रूबल साल देने का वायदा किया था। सो मैंने सोचा कि अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम एक रूबल इनसे मिल ही जाएगा। क्यों, आधा साल तो होने आया न तुम्हें इनके यहां काम करते?.." नानी और भी नीचे झुक गई और फुसफुसाकर मेरे कान में कहने लगी : "उन्होंने मुझसे तुम्हें डांटने के लिए कहा है। शिकायत करते थे कि तुम कहना नहीं मानते। कुछ दिन और यहां टिक जाओ – एक-दो साल, जब तक खुद मजबूत नहीं हो जाते – निभा लो किसी तरह, निभाओगे न?"

मैंने वादा तो कर लिया, लेकिन था यह बेहद कठिन। तुच्छ, ऊबाऊ, खाने की भाग-दौड़ में सिमटा यह जीवन मेरे लिए बड़ा भारी बोझ था। मुझे ऐसा मालूम होता मानो दुःस्वप्नों की दुनिया में मेरा जीवन बीत रहा है।

कभी-कभी मेरे मन में होता कि यहां से भाग चलूं। लेकिन कम्बख्त जाड़ा अपने पूरे जोर पर था। रात को बर्फ़ की आंधियां चलतीं, अटारी में हवा सांय-सांय करती और ठंड से जकड़ी लकड़ी की छतें चरमरा उठतीं। ऐसे में भागकर मैं जाता भी कहां?

बाहर जाकर खेलना मेरे लिए मना था, सच तो यह है कि मुझे खेलने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। जाड़े के छोटे दिन योंही काम की चकर-घिन्नी में गायब हो जाते थे।

लेकिन मुझे गिरजे जरूर जाना पड़ता – एक तो शनिवार के दिन सन्ध्या-प्रार्थना के लिए, दूसरे त्योहार के दिन दोपहर की प्रार्थना के लिए।

गिरजे जाना मुझे अच्छा लगता था। किसी लुके-छिपे सूने कोने की मैं खोज करता और वहां जाकर खड़ा हो जाता। देव-प्रतिमाओं को दूर

मालिक के साथ नानी की बातचीत मे अपनापन और सहृदयता का भाव रहता। वह इस तरह बातें करती जैसे बड़े छोटों से करते हैं। कभी-कभी मालिक मेरी मां का भी जिक्र करता, कहता:

"वर्वारा वासील्येव्ना... क्या औरत थी—दिलेर और ताक़तवर!"

"तुम्हें याद है न," नानी की ओर मुंह करते हुए उसकी पत्नी कहती, "मैंने उसे एक लबादा दिया था—काले रेशम का, और शीशे के मोती जड़ा!"

"हां, हां, याद है..."

"एकदम नया मालूम होता था..."

"ऊंह, लबादा, सबादा—जीवन का कबाड़ा!" मालिक बड़बड़ाया।

"यह क्या—क्या कहा तुमने?" उसकी पत्नी संदेहपूर्वक पूछती।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं.. सुखी दिन गुज़र जाते है, अच्छे लोग गुज़र जाते हैं..."

पत्नी के माथे पर चिन्ता की रेखाएं दौड़ गई। बोली:

"मेरी समझ मे नही आता—यह क्या बातें कर रहे हो तुम?"

इसके बाद नानी नवजात बच्चे को देखने चली गई और मै चाय के बरतन आदि साफ करने के लिए रह गया। मालिक ने धीमे और विचारमग्न से स्वर मे कहा:

"बड़ी अच्छी है नानी तेरी..."

उसके इन शब्दो को सुनकर मेरे हृदय में कृतज्ञता पैदा हो गयी। लेकिन अकेले मे मुझसे नही रहा गया। दुःखते हृदय से मैंने नानी से कहा:

"तुम यहां आती ही क्यों हो? क्या तुम नहीं देखती कि ये किस किस्म के लोग है?.."

"हां अल्योशा, मैं सब कुछ देखती हूं," नानी ने उसास भरते हुए कहा और मेरी तरफ़ देखा। नानी के अद्भुत चेहरे पर एक बहुत ही कोमल मुसकराहट जगमगा उठी, और मैने तुरंत लज्जा का अनुभव किया। सचमुच, नानी की आंखो से कुछ छिपा नही था—वह सब कुछ देखती थी, सभी कुछ जानती थी, वह उस उथल-पुथल तक से परिचित थी जो कि उस समय मेरे हृदय में हो रही थी।

नानी ने चौकस होकर इधर-उधर नजर डाली और यह देखकर कि आस-पास में कोई नहीं है, मुझे अपनी बांहों में खींच लिया और उमड़ते हुए हृदय से बोली :

"अगर तुम न होते तो मैं यहां कभी नहीं आती—इन लोगों से भला मेरा क्या वास्ता? फिर नाना बीमार है और उनकी बीमारी के चक्कर में मेरा सारा समय चला जाता है। मैं कुछ काम नहीं कर पाती, इस लिए हाथ भी तंग है। उधर बेटा मिखाइलो ने अपने साशा को धता बता दिया है, सो उसका खाना-पीना भी मुझे ही जुटाना पड़ता है। इन्होंने तुम्हें छः रूबल साल देने का वायदा किया था। सो मैंने सोचा कि अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम एक रूबल इनसे मिल ही जाएगा। क्यों, आधा साल तो होने आया न तुम्हें इनके यहां काम करते?.." नानी और भी नीचे झुक गई और फुसफुसाकर मेरे कान में कहने लगी: "उन्होंने मुझसे तुम्हें डांटने के लिए कहा है। शिकायत करते थे कि तुम कहना नहीं मानते। कुछ दिन और यहां टिक जाओ—एक-दो साल, जब तक खुद मजबूत नहीं हो जाते—निभा लो किसी तरह, निभाओगे न?"

मैंने वादा तो कर लिया, लेकिन था यह बेहद कठिन। तुच्छ, ऊबाऊ, खाने की भाग-दौड़ में सिमटा यह जीवन मेरे लिए बड़ा भारी बोझ था। मुझे ऐसा मालूम होता मानो दुःस्वप्नों की दुनिया में मेरा जीवन बीत रहा है।

कभी-कभी मेरे मन में होता कि यहां से भाग चलूं। लेकिन कम्बख्त जाड़ा अपने पूरे जोर पर था। रात को बर्फ़ की आंधियां चलतीं, अटारी में हवा सांय-सांय करती और ठंड से जकड़ी लकड़ी की छतें चरमरा उठतीं। ऐसे में भागकर मैं जाता भी कहां?

बाहर जाकर खेलना मेरे लिए मना था, सच तो यह है कि मुझे खेलने की फुरसत ही नहीं मिलती थी। जाड़ों के छोटे दिन योंही काम की चकर-घिन्नी में गायब हो जाते थे।

लेकिन मुझे गिरजे जरूर जाना पड़ता—एक तो शनिवार के दिन सध्या-प्रार्थना के लिए, दूसरे त्यौहार के दिन दोपहर की प्रार्थना के लिए।

गिरजे जाना मुझे अच्छा लगता था। किसी लुके-छिपे सूने कोने की मैं खोज करता और वहां जाकर खड़ा हो जाता। देव-प्रतिमाओं को दूर

से देखने में बड़ा अच्छा लगता – ऐसा मालूम होता मानो पत्थर के धूसर फर्श के ऊपर प्रवाहित मोमबत्तियों के सुनहरे प्रकाश की अशान्त धारा में देव-प्रतिमाओं की वेदी तैर रही हो। देव-प्रतिमाओं की काली आकृतियों में हल्का सा कम्पन पैदा होता और राज-द्वारों की सुनहरी झालरें झूमकर झिलमिला उठतीं। नीचे से शून्य में लटकी मोमबत्तियों की लौ सुनहरी मधुमक्खियों की भांति मालूम होती और स्त्रियों तथा लड़कियों के सिर फूलों की भांति दिखाई देते।

सहगान शुरू होता और हर चीज मानो उसकी स्वरलहरियों के साथ थिरकने लगती, हर चीज मानो इस पार्थिव जगत से ऊपर उठकर परियों के लोक में पहुंच जाती, समूचा गिरजा हौले-हौले डोलने लगता, मानो काजर की भांति गहन, अंधेरे शून्य में पालना झूल रहा हो।

कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि गिरजा किसी झील में गोता लगाकर दुनिया की आंखों से दूर, खूब गहराई में, छिप गया है जिससे कि वह अपना एक अलग और अन्य सब से भिन्न जीवन बिता सके। यह भावना शायद नानी की एक कहानी का फल थी जो कितेज नगर के बारे में थी। अपने चारों ओर की हर चीज के साथ-साथ मैं भी बहुधा उनींदा सा झूमने लगता – सहगान की स्वरलहरियां मुझे थपकियां देतीं, फुसफुसाकर बोली गयी प्रार्थनाएं और पूजा करनेवालों की उसांसें मेरी पलकों को मूंद देतीं, और मैं नानी की उस उदासी भरी मधुर कहानी को मन ही मन गुनगुनाने लगता :

सुबह का था समय, शुभ और पवित्र।
बज रहे थे घंटे गिरजों में मातिन प्रार्थना के।
तभी किया धावा धर्म-द्वेषी तातार लुटेरों ने
घोड़ों पर कसे जीन, कील-कांटों और अस्त्रों से लैस
घेर लिया आनन-फ़ानन में प्यारे नगर कितेजग्राद को!
        ओ इस दुनिया के प्यारे स्वामी,
        ओ प्यारी मरियम पवित्र!
खुदा के बन्दों की खातिर उतरो इस धरती पर,
न पड़े कोई विघ्न उनकी पूजा-प्रार्थना में,
दैवी प्रकाश से हो नागरिकों के हिय का अंधेरा दूर!
        पवित्रता तेरे मन्दिर की कर सके न कोई नष्ट,
        न रौंदी जाए लाज नगर कन्याओं की,

न फिर वह बच्चे के गलो पर लेप
न आए बड़े बूढ़ो और दुबलो पर आंच।

परम पिता जेहोवाह ने यह सुना
और सुना मां मरियम पवित्र ने।
कर दिया उन्हे विचलित और व्यथित
लोगो के क्रन्दन और दुःख की गुहारों ने।

और दिया आदेश परम पिता जेहोवाह ने
अपने सबसे बड़े फरिश्ते मिखाईल को:
मिखाईल, मानव-लोक मे जरा जाओ तो
कितेजग्राद की धरती को जरा हिलाओ तो
फटे धरती और फूट पड़े पानी के स्रोते
छिप जाए कितेजग्राद, पानी की लहरों में
तातार लुटेरों की पहुंच से दूर—बहुत दूर!
और खुदा के बन्दे
हों, अपनी प्रार्थनाओं में संलग्न,
अविरल और अविश्रान्त,
सुबह, सांझ और आठों याम, वर्ष प्रति वर्ष—
बहे जब तक जीवन की अनन्त धारा!

उन दिनो नानी की कविताएं मेरे रोम-रोम मे वैसी ही समायी थीं जैसे मधुमक्खियों के छत्ते मे शहद। यहा तक कि मेरे विचार और कल्पनाएं तक उन्हीं कविताओं के सांचे मे ढली होती थी।

गिरजे में जाकर मैं प्रार्थना नहीं करता था, नाना की द्वेष भरी मिन्नतों और मानताओं तथा उदास ईश-प्रार्थनाओं को नानी के भगवान के सामने दोहराते मेरी जुबान अटकती। मुझे पक्का यकीन था कि नानी का भगवान उन्हें उतना ही नापसंद करेगा जितना कि मै करता हूं। इसके अलावा वे सब किताबो में छपी-छपायी थीं। दूसरे शब्दो मे यह कि किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति की भांति भगवान को भी वे जबानी याद होंगी।

इस कारण जब कभी मेरा हृदय किसी मधुर उदासी से दुखता या बीते हुए दिन के छोटे-मोटे आघातों से कराह उठता तो मै अपनी निजी प्रार्थनाएं रचने का प्रयत्न करता। और उसके लिए मुझे कोई खास प्रयास भी नहीं करना पड़ता। अपने दुखी जीवन पर मै एक नजर डालता और शब्द अपने आप आकार रूप ग्रहण कर प्रकट होने लगते:

भगवान ओ मेरे भगवान
हूं मैं कितना दुखिया
बिनती मेरी,
झटपट मुझे बड़ा बना दे!
बहुत सहा–सह चुका बहुत मैं,
न होना मुझपर गुस्सा
गर हो जाऊं मैं तंग
और कर दूं इस जीवन का अन्त!

मरती यहां सभी की नानी
नहीं सिखाते, नहीं सिखाते
खाक–धूल, कुछ नहीं बताते
और यह बुढ़िया आफत की परकाला
जीवन को जंजाल बनाती,
सदा डांटती, कान खींचती।
कर दे उसका मुंह काला।
भगवान, ओ मेरे भगवान,
हूं मैं कितना दुखिया!

खुद रची हुई इन "प्रार्थनाओं" में से कितनी ही मुझे आज दिन भी याद हैं। बचपन में जिस तरह दिमाग़ काम करता है, उसकी छाप कभी-कभी हृदय पर इतनी गहरी पड़ती है कि मृत्यु के दिन तक नहीं मिटती।

गिरजे में बहुत ही सुहावना मालूम होता। वहां मैं उतने ही सुख और सन्तोष का अनुभव करता जितना कि पहले खेतों और जंगलों में करता था। मेरा नन्हा हृदय जो अभी से ही रात-दिन की चोटों से छलनी और जीवन की बेहूदगियों से विषैला हो चुका था, धुंधले, पर रंग-बिरंगे सपनों में तैरने लगता।

लेकिन मैं केवल तभी गिरजे जाता जब बला की ठंड पड़ती या जब नगर में बर्फ़ानी आंधियां सनसनातीं और ऐसा मालूम होता मानो आकाश भी जमकर बर्फ़ हो गया हो, कि हवा ने उसे बर्फ़ के बादलों में बदल दिया हो, और धरती पर इतनी बर्फ़ गिरती कि पूरी की पूरी ढंक जाती, जमकर वह भी बर्फ़ हो जाती और ऐसा मालूम होता मानो उसके हृदय की धड़कन अब फिर कभी नहीं सुनाई देगी।

रात के सन्नाटे मे मुझे नगर मे घूमना अधिक अच्छा लगता। कभी इस सड़क पर घूमता तो कभी उस। एकदम निराले कोनों की मैं खोज करता। तेजी से मेरे डग उठते, मानो पर लगे हों। मैं सड़क पर ऐसे ही तैरता जैसे आकाश मे चांद तैरता है, बिना किसी संगी-साथी के, अपने आप मे अकेला। मेरी परछाई मुझसे आगे चलती, प्रकाश मे चमकते हिमकणों पर पड़ उन्हे ढक देती और हास्यास्पद ढंग से खम्बों तथा बाड़ों से टकराती। खाल का भारी-भरकम कोट पहने, हाथ मे लाठी और साथ मे अपना कुत्ता लिए चौकीदार सड़क के बीचोबीच गश्त लगाता दिखाई देता।

उसका भारी-भरकम आकार देखकर मुझे लगता कि लकड़ी का कुत्ता-घर न जाने कैसे आगन मे से लुढ़ककर सड़क पर आ गया था और किसी अज्ञात मंज़िल की ओर आगे बढ़ चला था। और दुखी कुत्ता उसके पीछे हो लिया था।

कभी-कभी खिलखिलाती जवान लड़कियों और उनके चहेतों से मुठभेड़ होती और मैं मन ही मन सोचता कि ये लोग भी गिरजे से भाग आए हैं।

खिड़कियां रोशनी से चमचमाती रहती। उनकी दराजों में से स्वच्छ हवा में कभी-कभी एक अजीब किस्म की गंध आती—भीनी और अपरिचित गंध जो एक भिन्न प्रकार के जीवन का आभास देती। खिड़की के पास रुककर मैं कान लगाकर सुनता था और यह पता लगाने का प्रयत्न करता कि किस तरह के लोग यहां रहते है, कैसा जीवन वे बिताते है। उस समय जबकि सभी भले लोगों को संध्या-प्रार्थना मे शामिल होना चाहिए, ये लोग हंसते और अठखेलियां करते है, खास क़िस्म का गिटार झनझनाते और खिड़कियों मे से मधुर स्वर-लहरियां प्रवाहित करते है।

दो सूनी सड़कों—तिखोनोव्स्काया और मरतीनोव्स्काया—के कोने पर स्थित एक नीचा, एकमंजिला घर मुझे खास तौर से अजीब मालूम हुआ। सर्दियां ख़त्म होने के त्यौहार से पहले की बात है। मौसम बदल चला था और बर्फ़ पिघलने लगी थी। इन्हीं दिनों, चांदनी खिली रात मे, इस घर के पास से मै गुजरा और वहीं उलझकर रह गया। गर्म भाप के साथ-साथ खिड़की मे से एक अद्‌भुत आवाज भी आ रही थी, ऐसा मालूम होता था मानो कोई बहुत ही मजबूत और बहुत ही दयालु व्यक्ति होंठों को बन्द किये गा रहा हो। बोल तो समझ में नही आते थे, लेकिन धुन

बहुत ही जानी पहचानी और समझी-बूझी मालूम होती थी। मैं उसे समझ भी लेता, लेकिन उसके साथ जिस बेसुरे ढंग से तार का बाजा झनझना रहा था, वह मानो गीत के प्रवाह और उसकी बोधगम्यता को छिन्न-भिन्न कर रहा था। मैं समझ गया कि किसी जादू भरे, हृदय को मरोड़ देने की अद्भुत शक्ति से सम्पन्न वायलिन से यह संगीत प्रवाहित हो रहा है और वहीं सड़क के किनारे पत्थर के बने पीढ़े पर बैठ गया। संगीत का एक-एक स्वर वेदना में डूबा था। कभी-कभी उसका स्वर इतना जोरदार हो जाता कि लगता मानो समूचा घर थरथरा उठा है, खिड़कियों के कांच झनझनाने लगे है। पिघली हुई बर्फ छत पर से टपाटप गिरती, और आंसुओं की बूंदें मेरे गालों पर से ढुलकतीं।

मैं अपने आप में इतना खो गया था कि चौकीदार के आने का मुझे पता तक नहीं चला। धक्का देकर उसने मुझे पीढ़े पर से गिरा दिया।

"यहां किस लोफ़री की ताक में बैठे हो?" उसने पूछा।

मैंने बताया:

"जरा संगीत!.."

"संगीत सुन रहा था, – ऊह! बस, नौ-दो ग्यारह हो जाओ यहां से!"

मैं जल्दी से इमारतों के पीछे से घूमकर फिर उसी घर के सामने आ गया। लेकिन अब कोई संगीत सुनाई नहीं दे रहा था। खिड़की में से अब चुहल और अठखेलियों की उल्टी-पल्टी आवाजें आ रही थीं जो उस उदास संगीत से इतनी भिन्न थीं कि मुझे लगा मानो वह संगीत मैंने सपने में सुना था।

क़रीब-क़रीब हर शनिवार को मैं उस घर के पास पहुंचने लगा, लेकिन वह संगीत केवल एक ही बार और सुनने को मिला। वसन्त के दिन थे। पूरी आधी रात तक, बिना रुके, संगीत चलता रहा। इसके बाद जब मैं घर लौटा तो खूब मार पड़ी।

जाड़ों की रातें, आकाश में तारे जड़े हुए और नगर की सूनी सड़कें, मैं खूब घूमता और तरह-तरह के अनुभव बटोरता। मैं जान-बूझकर दूर की बस्तियों की सड़कें चुनता। नगर की मुख्य सड़कों पर जगह-जगह लालटेनें जलती थीं। मेरे मालिकों की जान-पहचान के लोगों में से अगर कोई मुझे देख लेता तो उन्हें खबर कर देता कि मैं संध्या-प्रार्थनाओं से

शायद रहता हूं इसके सिवा नगर की मुख्य सड़कों पर शराबियों पुलिस वालों, और शिकार की खोज में निकली हरजाई स्त्रियों से टकराने पर घूमने का सारा मजा किरकिरा हो जाता था। केन्द्र से दूर की निराली सड़कों पर मैं निश्चिन्त होकर घूमता। चाहे जहां जाता और निचले तल्ले की चाहे जिस खिड़की में झांककर देखता—बशर्ते कि उस पर परदा न पड़ा हो, या पाले ने उसे ढक न दिया हो।

इन खिड़कियों में से मैं अनेक प्रकार के दृश्यों की झांकी लेता। कहीं लोग प्रार्थना करते दिखाई देते, कहीं चूमा-चाटी करते, कहीं एक-दूसरे के बाल नोचते, कहीं ताश खेलते और कहीं, पूरी गम्भीरता से, दबे हुए स्वरों में बातचीत करते। एक के बाद दूसरे दृश्य मेरी आंखों के सामने से गुजरते—मछलियों की भांति मूक, मानो सन्दूकची के शीशे पर आंखें गड़ाए मैं बारह मन की धोबन वाला खेल देख रहा हूं।

निचले तल्ले की एक खिड़की में से दो स्त्रियों पर मेरी नजर पड़ी—एक युवती, दूसरी कुछ बड़ी। दोनों मेज पर बैठी थीं। उनके सामने मेज के दूसरी ओर लंबे बालों वाला एक छात्र बैठा था और खूब हाथ हिला-हिलाकर वह उन्हें कोई पुस्तक पढ़कर सुना रहा था। युवती कुर्सी में पीठ लगाए बैठी थी और बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसकी भौंहें सिकुड़ गई थीं। बड़ी स्त्री ने जो बहुत ही दुबली-पतली थी और जिसके बाल ऊन के गोले मालूम होते थे, सहसा दोनों हाथों से अपना मुंह ढंक लिया, उसके कंधे हिलने लगे। छात्र ने अपनी पुस्तक नीचे पटक दी, युवती उछलकर खड़ी हो गई और भागकर कमरे से बाहर चली गई। तब छात्र उठा और मुलायम बालों वाली स्त्री के सामने घुटनों के बल गिरकर उसके हाथ चूमने लगा।

एक अन्य खिड़की में से एक लम्बतड़ंग दाढ़ी वाले आदमी पर मेरी नजर पड़ी। लाल ब्लाउज पहने एक स्त्री को वह अपने घुटनों पर इस तरह झुला रहा था मानो वह कोई छोटा बच्चा हो। साथ ही वह कुछ गाता भी मालूम होता था। कारण कि रह-रहकर वह भद्दा सा अपना मुंह खोलता और दीदे मटकाता। स्त्री खिलखिलाकर दोहरी हो जाती, पीछे की ओर झुकती और अपनी टांगों को हवा में नचाने लगती। वह फिर उसे सीधा बैठाता, गाता और वह फिर खिलखिलाकर दोहरी हो जाती। बहुत देर तक मैं उन्हें देखता रहा और तभी वहां से हिला जब

समझ गया कि उनका यह गाना और खिलखिलाना सारी रात इसी तरह चलता रहेगा।

यह तथा इसी तरह के अन्य कितने ही दृश्य मेरी स्मृति में सदा के लिए अंकित हो गए। इन दृश्यों को बटोरने में बहुधा मैं इतना उलझ जाता कि घर देर से पहुंचता और मालिकों के हृदय में सन्देह का कीड़ा कुलबुलाने लगता। वे पूछते :

"किस गिरजे में गया था? कौन से पादरी ने पाठ किया था?"

वे नगर के सभी पादरियों को जानते थे। उन्हें यह भी मालूम था कि कब कौनसी प्रार्थना होती है। मैं झूठ बोलता तो वे आसानी से पकड़ लेते।

दोनों स्त्रियां नाना वाले क्रोधमूर्त्ति भगवान की पूजा करती थीं—एक ऐसे भगवान की जो चाहता कि सब उससे डरें, सब उसका आतंक मानें। भगवान का नाम सदा उनके होंठों पर नाचता रहता, उस समय भी जब कि वे लड़ती-झगड़तीं।

"जरा ठहर तो कुतिया, भगवान तेरी ऐसी ख़बर लेगा कि तू भी याद रखेगी!.." वे एक-दूसरी पर चीख़तीं।

ईसाई चालीसे के पहले रविवार को बूढ़ी मालकिन मालपुवे बना रही थी जो कड़ाई में ही चिपककर जलते जा रहे थे।

"इन मरों को भी मेरी ही जान खानी थी!" झुंझलाकर वह चिल्लाई। आग की तपन से उसका मुंह तमतमा रहा था।

सहसा कड़ाही की गंध सूंघकर उसके चेहरे पर घटा घिर आई, कड़ाही को उठाकर उसने फ़र्श पर पटक दिया और चीख़ उठी :

"ओह मेरे भगवान, कड़ाही से घी की गंध आ रही है! पवित्र सोमवार के दिन मैं इसे तपाकर शुद्ध करना भूल गई! मैं अब क्या करूं, हे भगवान!"

वह घुटनों के बल गिर गई और आंखों में आंसू भरकर भगवान से फ़रियाद करने लगी :

"क्षमा करना भगवान, मुझ पापिन को क्षमा करना, मुझपर तरस खाना। मेरी तो बुद्धि सठिया गई है, भगवान!.."

मालपूवे कुत्ते के सामने डाल दिये गये। कड़ाही भी तपाकर शुद्ध कर ली गई। लेकिन इसके बाद, जब भी मौका मिलता, छोटी मालकिन बड़ी मालकिन को इस घटना की याद दिलाकर कोंचने से न चूकती।

तुम तो चालीसे के पाँच दिनो मे आ आ लगी कड़ाही मे मालपूवे बनाती हो झगड़ा होने पर वह कहती।

घर मे जो भी बात होती, वे भगवान को घसीटना न भूलती। अपने तुच्छ जीवन के हर अंधेरे कोने मे वे भगवान को भी अपने साथ खींचकर ले जाती। ऐसा करने से मरे-गिरे जीवन मे कुछ महत्व और बड़प्पन का पुट आता तथा वह (जीवन) प्रत्येक क्षण किसी ऊंची शक्ति की सेवा में लगा हुआ लगता। हर ऐरी-गैरी चीज के साथ भगवान को चस्पां करने की उनकी आदत मुझे दबाती. अनायास ही कोनों-कोनों में मेरी नजर पहुंच जाती, और मुझे ऐसा मालूम होता मानो कोई अदृश्य आंखे मुझे ताक रही हैं। रातों के अंधेरे में डर के ठंडे बादल मुझे घेर लेते। उनका उदय रसोई के उस कोने में होता जहां धुएं से काली पड़ी देव-प्रतिमाओं के सामने दिन-रात एक दिया जलता रहता था।

ताक से लगी हुई दोहरे चौखटे की एक बड़ी सी खिड़की थी। खिड़की के उस पार नीले शून्य का अनन्त विस्तार दिखाई देता था। ऐसा मालूम होता मानो यह घर, यह रसोई, और यहां की हर चीज जिसमें मै भी शामिल था, एकदम कगारे मे अटके हों और अगर जरा सा भी हिले-डुले तो वहां से ठंडे इस नीले शून्य मे, तारों से भी परे पूर्ण निस्तब्धता के सागर में, डूबते चले जाएंगे, ठीक वैसे ही जैसे पानी में फेंका गया पत्थर डूबता चला जाता है। सिकुड़ा-सिमटा, हिलने-डुलने तक का साहस न करते हुए मै दीर्घकाल तक दुनिया के प्रलयकारी अन्त की प्रतीक्षा में निश्चल पड़ा रहता।

यह तो अब याद नही पड़ता कि इस डर से किस प्रकार मैने छुटकारा प्राप्त किया, लेकिन इस डर से मेरा पीछा छूट गया, और सो भी बहुत जल्दी ही। स्वभावतः नानी के भगवान ने मुझे सहारा दिया, और मुझे लगता है कि उन दिनों मे भी एक सीधी-सादी सचाई का मैंने साथ नहीं छोड़ा था। वह यह कि मैने कोई गलती नही की है, और अगर मै बेक़सूर हू तो दुनिया में कोई कानून ऐसा नही है जो मुझे सजा दे सके, और यह कि दूसरों के गुनाहों के लिए मुझे कठघरे मे नही खड़ा किया जा सकता।

दोपहर की प्रार्थना से भी मैं गायब रहने लगा—खास तौर से वसन्त के दिनों मे। प्रकृति के नवयौवन का अदम्य उभार गिरजे के आकर्षण पर पानी फेर देता। इसके अलावा मोमबत्ती खरीदने के लिए अगर मुझे कुछ

पसे मिल जाते तब तो कहना ही क्या! मोमबत्तियों के बजाय मैं गोटियां खरीदता और खूब खेलता। प्रार्थना का सारा समय खेल में बीत जाता और घर में अदबदाकर देर से पहुंचता। एक बार प्रसाद और मृतकों की प्रार्थना के लिए मुझे दस कोपेक मिले और मैंने उन्हें भी ऐसे ही उड़ा दिया। नतीजा इसका यह हुआ कि जब गिरजादार वेदी से थाल लिए उतरे तो मैंने अन्य किसी के प्रसाद पर हाथ साफ़ किया।

खेलने का मुझे बेहद शौक़ था, और खेल से मैं कभी नहीं थकता था। मेरा बदन तगड़ा और चपल था। गेंद, गोटियां और गोरोद्की में खूब खेलता था। शीघ्र ही समूची बस्ती में मेरा सिक्का जम गया।

चालीसे के दिनों में मुझे भी गुनाह-मुक्ति के चक्र में से गुज़रना पड़ा। हमारे पड़ोसी पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोव्स्की के सामने मुझे अपने गुनाह स्वीकार करने थे। मेरे मन में उनका आतंक बैठा था और वे सब शैतानी हरकतें मेरे हृदय में खड़बड़ मचा रही थीं जो कि मैं उनके ख़िलाफ़ आजमा चुका था। पत्थर मारकर उनके मंडप की खपच्चियों के मैंने परख़चे उड़ाए थे, उनके बच्चों को मारा-पीटा था और अन्य बहुत से जुर्म किए थे जिनकी वजह से वह मुझे बहुत बड़ा पापी समझ सकते थे। एक-एक करके सभी कुछ मुझे याद आ रहा था, और उस समय जब अपने गुनाह स्वीकार करने के लिए मैं उस छोटे और ग़रीब से गिरजे में जाकर खड़ा हुआ, तो मेरा हृदय बुरी तरह धकधक कर रहा था।

लेकिन पादरी दोरीमेदोन्त उस समय मानो भलमनसाहत का पुतला बना हुआ था।

"ओह, तुम तो हमारे पड़ोसी हो... अच्छा तो अब घुटनों के बल बैठ जाओ, बताओ, क्या-क्या गुनाह किये हैं?"

उसने मेरे सिर पर भारी मख़मल डाल दिया। मोम और लोबान की गंध से मेरा दम घुटने लगा, बोलना मुश्किल हो रहा था और दिल भी नहीं कर रहा था।

"अपने बड़ों का कहना मानते हो?"

"नहीं!"

"कहो, मैंने गुनाह किया!"

अनायास ही, न जाने कैसे, मैं कह उठा:

"प्रसाद चुराया था।"

क्या यह क्या कहा ? कहां चोरी की ... एक क्षण रुककर पादरी ने स्थिर भाव से पूछा।

"तीन सन्तों के गिरजे में, पोक्रोव गिरजे में और संत निकोलाई ..."

"मतलब सभी गिरजों में ... बुरी बात है, बेटा। ऐसा करना पाप है—समझे ?"

"हां।"

"कहो, मैंने गुनाह किया! तुम बड़े नादान हो। क्या खाने के लिए प्रसाद चुराया था ?"

"कभी-कभी खाने के लिए, लेकिन कभी-कभी ऐसा होता कि गोटियों के खेल में मैं अपने पैसे हार जाता और प्रसाद के बग़ैर मैं घर लौट नहीं सकता था, इसलिए चोरी करके जान छुड़ाता..."

पादरी दोरीमेदोन्त ने दबे स्वर में बुदबुदाकर कुछ कहा, फिर दो-चार सवाल और किए। इसके बाद, कड़े स्वर में पूछा:

"क्या तुम भूमिगत छापेखाने से निकली पुस्तकें भी पढ़ते रहे हो ?"

यह सवाल ऐसा था जो मैं समझ नहीं सका। मेरे मुंह से निकला:

"क्या ?"

"वर्जित पुस्तकें, क्या तुमने कभी पढ़ी हैं ?"

"नहीं, मैंने नहीं पढ़ीं..."

"अच्छी बात है। तुम गुनाहों से मुक्त हुए... अब खड़े हो जाओ !"

मैंने कुछ अचकचाकर उसके चेहरे की ओर देखा। उसका चेहरा गम्भीर और दया के भावों से पूर्ण था। मैं कटकर रह गया। गुनाह मुक्ति के लिए भेजते समय मालकिन ने मेरी तो रूह ही क़ब्ज़ कर दी थी। ऐसी-ऐसी डरावनी बातें उसने बताई थीं कि अगर मैंने कुछ भी छिपाकर रखा तो मानो प्रलय ही हो जायेगी।

मैं बोला, "मैंने तुम्हारे मंडप पर पत्थर फेंके थे।"

"यह बुरा किया। लेकिन अब तुम भाग जाओ..."

"और तुम्हारे कुत्ते पर..."

पादरी ने जैसे सुना ही नहीं। मुझे विदा करते हुए बोले:

"चलो, अब किसकी बारी है ?"

विक्षोभ से भरा और धोखा खाया हुआ महसूस करते हुए मैं वहां से चला आया। जिस चीज़ को लेकर मन ही मन मैंने इतना तुमार बांधा

था और हृदय का एक एक तार झनझना उठा था वह कुछ भी तो नहीं निकली – इस में कोई भयानक बात नहीं थी, उलटे दिलचस्प थी रहस्यमय पुस्तकों की बात ही दिलचस्प थी। मुझे उस पुस्तक का ध्यान आया जिसे वह छात्र घर के निचले तल्ले में दो स्त्रियों को पढकर सुना रहा था। और मुझे 'बहुत खूब' का भी ध्यान आया। उसके पास भी काली जिल्द की कितनी ही मोटी-मोटी किताबें थीं जिनमें अजीबोगरीब चित्र बने हुए थे।

अगले दिन पन्द्रह कोपेक देकर मुझे यूखारिस्ट प्रसाद लेने भेजा गया। उस साल ईस्टर का उत्सव कुछ देर से आया था। बर्फ़ पिघल चुकी थी और खुश्क सड़को पर धूल के छोटे-छोटे बगूले उड़ते थे। मौसम रुपहला और खूब सुहावना था।

गिरजे की चारदीवारी के पास कुछ मजदूर गोटियां खेल रहे थे। मेरा मन ललचा उठा। मैंने सोचा, प्रसाद लेने से पहले एक-दो हाथ यहां भी हो जाएं तो क्या बुरा है। मैंने पूछा.

"मुझे भी खेलने दोगे?"

"खेल में शामिल होने के लिए – एक कोपेक – समझे!" लाल बाल और मुंह पर चेचक के दाग वाले एक मजदूर ने गर्व से ऐलान किया।

मैंने भी उतने ही गर्व से जवाब दिया:

"बाईं ओर से दूसरी जोड़ी, मैं तीन कोपेक रखता हूं!"

"पहले पैसे निकालो!"

और खेल शुरू हो गया!

मैंने पन्द्रह कोपेक का अपना सिक्का भुना लिया और तीन कोपेक गोटियों की जोडी पर रखे। जो कोई उस जोडी को गिरा देगा तीन कोपेक जीत लेगा, नहीं तो मैं उससे तीन कोपेक हासिल करता हूं। मेरा सितारा ऊंचा था। दो ने मेरे पैसों का निशाना लगाया, और दोनों ही चूक गए। मुझे छः कोपेक मिले। बड़ी उम्र के लोगों को मैंने मात दी, इससे मेरी हिम्मत बंधी...

तब खिलाड़ियों में से एक ने कहा:

"इस पर निगाह रखना – कहीं ऐसा न हो कि एकाध दांव जीतकर यह भाग निकले!.."

यह मेरे सम्मान पर चोट थी। मैंने तड़ाक से चिल्लाकर कहा:

"बाईं ओर, आखिरी जोड़ी पर, मेरे नौ कोपेक!"

मेरी इस बहादुरी का खिलाड़ियों पर कोई रोब नहीं पड़ा। लेकिन मेरी ही आयु का एक अन्य लड़का चेतावनी देते हुए चिल्लाया:

"संभल के – इसकी किस्मत तेज है। यह ज्वेज्दीन्का मुहल्ले का है, नक्शानवीस. मैं इसे जानता हूं।"

"नक्शानवीस है? वाह, भई, वाह..." एक दुबले-पतले मजदूर ने कहा जिसके बदन से चमड़े की गंध आती थी।

उसने सावधानी से निशाना साधा और मेरे दांव को पीट दिया।

"क्यों बच्चू, आई रुलाई?" मेरे ऊपर झुकते हुए वह बोला।

"दाहिनी ओर, आखिरी जोड़ी पर, तीन कोपेक और!" मैंने जवाब में कहा।

"देखते जाओ, मैं इसे भी नहीं छोड़ूंगा।" शेखी बघारते हुए उसने निशाना साधा पर चूक गया।

क़ायदे के अनुसार एक आदमी तीन से अधिक बार लगातार दांव नहीं लगा सकता। सो मैंने दूसरों की जोड़ियों को गिराना शुरू किया और इस तरह चार कोपेक और बहुत सी गोटियां जीतीं। इसके बाद दांव लगाने का जब मेरा नम्बर आया तो मैं अपनी सारी जमा पूंजी हार गया। ठीक इसी समय गिरजे की प्रार्थना खत्म हुई – घंटे बजने लगे, और लोग गिरजे से बाहर निकल आए।

"शादी हो चुकी है?" चमड़ा कमानेवाले मजदूर ने पूछा और मेरे बाल पकड़ने की कोशिश की।

मैं उसके चंगुल से निकल भागा और एक युवक के पास पहुंचा जो खूब बढ़िया कपड़े पहने गिरजे से निकला था। मैंने मुलामियत से पूछा:

"क्या तुम यूखारिस्ट प्रसाद लेकर आ रहे हो?"

"क्यों, तुम से मतलब?" सन्देह से देखते हुए उसने जवाब दिया।

मैंने उससे जानना चाहा कि यूखारिस्ट लेने में कैसे क्या हुआ, पादरी ने क्या कहा और यूखारिस्ट में शामिल होनेवाले को क्या करना था।

युवक ने घूरकर मुझे देखा और गरजते हुए बोला:

"अच्छा, तो यूखारिस्ट के वक़्त घूमता रहा, नास्तिक? मैं तुझे कुछ नहीं बताऊंगा – करने दे तेरे बाप को तेरी धुनाई!"

मैं अब घर की ओर लपका। मुझे पक्का यक़ीन था कि घर पर पूछ-ताछ होगी और यह बात खुल जाएगी कि मैं यूखारिस्ट में शामिल नहीं हुआ।

लेकिन बड़ी मालकिन ने मुझे बधाई देने के बाद केवल एक सवाल पूछा:

पादरी को तुमने क्या दिया?

पाँच कोपक," मैंने योंही अटकलपच्चू जवाब दे दिया।

"तू भी निरा भोंदू ही है!" बड़ी मालकिन ने कहा। "उसके लिए तो तीन भी बहुत होते, और बाकी दो तू अपने पास रख लेता!"

.. चारों ओर वसन्त छाया था। प्रत्येक दिन एक नया बाना धारण करके आता, बीते दिन से और भी ज्यादा उज्ज्वल तथा और भी ज्यादा सुन्दर। घास की नयी कोंपलों और भोज-वृक्ष की ताजी हरियाली से मादक गंध निकलती। बाहर खेतों में सुहावनी धरती पर लेटकर भरत पक्षी का चहचहाना सुनने के लिए मन बुरी तरह उतावला हो उठता। लेकिन मैं था कि यहां जाड़ों के कपड़ों पर ब्रुश करके उन्हें ट्रंक में बन्द करता, तम्बाकू की पत्तियां कूटता और गद्देदार फ़र्नीचर की गर्द झाड़ता—सुबह से रात तक ऐसे कामों में जुटा रहता जिन्हें न तो मैं पसंद करता था, और न आवश्यक ही समझता था।

और जो थोड़ा बहुत समय काम से बचता, वह भी यों ही बेकार चला जाता। मेरी समझ में न आता कि फ़ुरसत की इन घड़ियों का क्या करूं। हमारी गली एकदम सूनी थी, और उसकी सीमा से बाहर जाने की मुझे मनाही थी। हमारा अहाता खाई खोदनेवाले थके-हारे और चिड़चिड़े मजदूरों, फटेहाल बावर्चिनों और धोबिनों से अटा पड़ा था। और हर सांझ सांठ-गांठ के इतने बेहूदा और घृणित दृश्य दिखाई देते कि मैं विक्षुब्ध हो उठता और घबराकर अपनी आंखें बंद कर सोचता कि मैं अंधा क्यों न हुआ।

कैंची और कुछ रंगीन कागज लेकर मैं ऊपर अटारी में पहुंच जाता और फूल-पत्तियां काटकर उनसे छत के शहतीरों और खम्भों को सजाता। इससे मेरे मन की ऊब और नीरसता कुछ हलकी हो जाती। किसी ऐसी जगह जाने के लिए मेरा हृदय बुरी तरह ललकता जहां लोग कम सोते हों, कम झगड़ते हों और कभी न खत्म होनेवाले अपने रोने-झींखने से भगवान को या कभी न चूकनेवाले अपने कड़वे बोलों से लोगों को इस हद तक न सताते हों।

... ईस्टर के शनिवार को हमारे नगर में ओरान्स्की मठ से व्लादीमिर्स्काया मरियम की प्रतिमा का आगमन हुआ। यह प्रतिमा अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध थी। जून के मध्य तक वह हमारे नगर की

मेहमान थी और इस काम में एक-एक करके बस्ती के सभी घरों में उसे ले जाया जा रहा था।

एक दिन सुबह के समय मेरे मालिकों के घर भी उसका आगमन हुआ। मैं रसोई में बैठा बरतन चमका रहा था। एकाएक दूसरे कमरे से छोटी मालकिन सकपकाई सी आवाज में चिल्लाई :

"जाकर बाहर का दरवाजा खोल। ओरान्स्काया माता आ रही है!"

मेरे हाथ चिकनाई और पिसी हुई ईंट के चूरे से लथपथ थे। वैसी ही गंदी हालत मे मैं लपककर नीचे उतरा और बाहर का दरवाजा खोल दिया। दरवाजे पर एक युवक मठवासी खड़ा था। उसके एक हाथ में लालटेन थी, और दूसरे में लोबान का धूप-दान।

"अभी तक सो रहे हो?" उसने भुनभुनाकर कहा। "इधर आ, थोड़ा सहारा दे..."

दो नगरनिवासी मरियम की भारी प्रतिमा उठाए थे। वे उसे लेकर तंग जीने पर चढ़ने लगे। मैंने भी सहारा दिया। प्रतिमा के एक कोने के नीचे मैंने कंधा लगाया और अपने गंदे हाथों से उसे थाम लिया। हमारे पीछे कुछ गोल-मटोल मठवासी और थे जो अनमने अन्दाज मे भारी स्वर में गुनगुना रहे थे :

"मां मरियम सुनो टेर हमारी..."

उदास विश्वस्तता के साथ मैंने सोचा :

"माता मरियम जरूर इस बात का बुरा मानेगी कि मैंने गंदे हाथों से उसे छुआ और मेरे हाथ सूख जाते रहेंगे..."

दो कुर्सियों को जोड़कर उनपर एक सफ़ेद चादर बिछा दी गई। प्रतिमा को उन्ही पर टिका दिया गया। अगल-बगल दो युवक मठवासी उसे थामे थे—देखने में सुन्दर, चमकदार आंखें, मुलायम बाल और चेहरे प्रसन्नता से खिले हुए। ऐसा मालूम होता मानो वे कोई फरिश्ते हों।

पूजा-प्रार्थना शुरू हुई।

घने बालों में छिपे गांठ-गठीले से अपने कान की लोलकी को लाल उंगली से बार-बार छूते हुए एक लम्बे-चौड़े पादरी ने ऊंची आवाज में गया :

"मां मरियम, जगत जननी..."

अन्य मठवासियों ने अनमने भाव से साथ दिया :

पवित्र पत्थर मत छुआ करो

मैं माता मरियम को जी-जान से चाहता था। नानी ने मुझे बताया था कि दुखियों के आंसू पोंछने और उनके जीवन में आनन्द भरने के लिए मरियम ने ही धरती को फूलों से सजाया, हर उस चीज की रचना की जो भली और सुन्दर है। और जब उसके हाथों को चूमने की रस्म अदा करने का समय आया तो मैंने, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि बड़े क्या कर रहे हैं, कांपते हृदय से देव-प्रतिमा को होंठों पर चूम लिया।

एकाएक किसी के मजबूत हाथ का धक्का खाकर मैं दरवाजे के पास कोने में जा गिरा। यह तो मुझे याद नहीं कि मठवासी प्रतिमा को उठाकर कैसे विदा हो गए, लेकिन यह मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि मैं फर्श पर बैठा था, मेरे मालिक तथा मालकिन मुझे घेरे हुए थे और परेशान मुद्रा में दुनिया भर की अलाय-बलाय का जिक्र कर रहे थे जो मुझपर नाज़िल हो सकती थी।

"पादरी के पास चलकर हमें इसका उपाय पूछना चाहिए," मेरे मालिक ने कहा, और फिर मुझे हल्की सी डांट पिलाते हुए बोला:

"यह तूने क्या किया, बेवकूफ़! क्या तुझे इतना भी नहीं मालूम कि मरियम के होंठों को नहीं चूमा जाता? और तू स्कूल में पढ़ता था!.."

कई दिन तक एक इसी बात का हौल मेरे दिल में समाया रहा कि इसकी न जाने मुझे क्या सजा मिलेगी। यही क्या कम था कि गंदे हाथों से मैंने मरियम को छुआ, तिस पर मैंने गलत ढंग से उसे चूम भी लिया। निश्चय ही इसकी मुझे सजा मिलेगी, किसी प्रकार भी मैं छूट नहीं सकूंगा!

लेकिन, ऐसा मालूम होता था मानो मरियम ने अनजाने में किए गए इन गुनाहों को माफ़ कर दिया था। मेरे मन में बुरी भावना नहीं थी। प्रेम से अनुप्राणित होकर ही मैंने ये गुनाह किए थे। या फिर यह भी हो सकता है कि मरियम ने मुझे जो सज़ा दी वह इतनी हल्की थी कि इन भले लोगों की बारहमासी डांट-फटकार के चक्कर में मुझे उसका पता तक न चला।

कभी-कभी बूढ़ी मालकिन को चिढ़ाने के लिए मैं अफ़सोस भरे स्वर में कहता:

"मालूम होता है, मानो मरियम को मुझे सज़ा देना याद नहीं रहा! .."

“तू देखता रह, अभी आगे क्या होता है,” बड़ी मालकिन दर्पपूर्ण मुस्कान के साथ जवाब देती।

..चाय के गुलाबी लेबुलों, टीन के पन्नों, वृक्ष की पत्तियों और इसी तरह की अन्य छोटी-मोटी चीजों से अटारी में छत के शहतीरों और खम्बों को सजाते समय जो भी मन में आता मैं गुनगुनाने लगता और उसे गिरजे के गीतों की धुन में गूंथने की चेष्टा करता, जैसा कि रास्ते में कलमीक किया करते हैं:

बैठा हुआ अटारी में
कैंची लिये हाथ में
अब उठा हूं ऊब मैं!
गर होता कुत्ता मैं
न टिकता क्षण भर यहां
जहां रहना है दुश्वार!
चीखकर कहते सब:
बन्दकर यह तोबड़ा
कहना मान, न बड़बड़ा
नहीं तो फूटेगा खोपड़ा!

बूढ़ी मालकिन जब मेरी कारीगरी और सजावट देखती तो वह हुमहुमाकर सिर हिलाते हुए कहती:

“रसोईघर को भी क्यों नहीं ऐसे ही सजा देता?..”

एक दिन मालिक भी अटारी में आए, मेरी कारीगरी पर एक नजर डाली और उसांस लेते हुए बोले:

“तू भी अजीब है, पेशकोव। पता नहीं तेरा क्या बनेगा? क्या जादूगर बनने की तैयारी कर रहा है? कुछ कहा भी नहीं जा सकता...”

और उसने मुझे निकोलाई प्रथम के काल का पांच कोपेक का एक बड़ा सिक्का भेंट किया।

सिक्के को मैंने महीन तार के सहारे तमगे की भांति लटका दिया। मेरी रंग-बिरंगी सजावट के बीच उसे प्रथम स्थान मिला।

लेकिन अगले ही दिन वह गायब हो गया। मुझे पक्का यक़ीन है कि बूढ़ी मालकिन ने ही उसपर हाथ साफ़ किया होगा!

आखिर वसन्त के दिनों में मैं भाग निकला। सुबह को चाय के लिए मैं रोटी लेने गया था। मैं पावरोटी खरीद ही रहा था कि किसी बात पर पावरोटी वाले का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया, उसने उसके सिर पर भारी बटखरा दे मारा। वह बाहर की ओर भागी और सड़क पर आकर ढेर हो गई। चारों ओर लोग जमा हो गए और उसे एक गाड़ी में डालकर अस्पताल ले चले। मैं भी लपककर गाड़ी के साथ-साथ हो लिया और इसके बाद, पता नहीं कैसे, एकदम अनजाने में ही वोल्गा के तट पर पहुंच गया। मेरी मुट्ठी में बीस कोपेक का सिक्का था।

वसन्त का दिन वसन्ती मुसकान की वर्षा कर रहा था। वोल्गा के पाट का कोई वार-पार नहीं था, विशाल धरती कोलाहलमय थी। लेकिन मैं—मैं था कि उस दिन तक चूहे की भांति एक बिल में जीवन बिता रहा था। मैंने निश्चय किया कि अपने मालिक के घर अब नहीं लौटूंगा, न ही अपनी नानी के पास कुनाविनो जाऊंगा। नानी को मैंने वचन दिया था, और उसे पूरा न कर सकने के कारण उसके सामने जाते मुझे झिझक मालूम होती थी। और नाना तो जैसे ऐसे अवसरों के लिए लपलपाते ही रहते थे।

दो या तीन दिन तक मैं नदी-तट पर यों ही मटरगश्ती करता रहा। भाईचारे में घाट-मजदूर खाना खिला देते, घाट पर ही उनके साथ मैं रात को सोता। आखिर उनमें से एक ने कहा:

"इस तरह मुफ्तखोरी से काम नहीं चलेगा, बलुआ! "दोब्री" जहाज में नौकरी क्यों नहीं कर लेते? रसोईघर में तश्तरियां साफ करने के लिए उन्हें एक आदमी की जरूरत है..."

मैं चल दिया। बारमैन एक लमतड़ंग दाढ़ी वाला आदमी था—सिर पर रेशम की काली टोपी, और चश्मे के भीतर से झांकतीं धुंधली सी आंखें। सिर उठाकर उसने मेरी ओर देखा और धीरे से बोला:

"दो रूबल महीना। पासपोर्ट ला।"

मेरे पास पासपोर्ट नहीं था। बारमैन ने एक क्षण कुछ सोचा। फिर बोला:

"मां को ले आ!"

भागा हुआ मैं नानी के पास पहुंचा। नानी ने मेरे इस नये क़दम का समर्थन किया और नाना को भी [illegible] व्यवसायी के दफ़्तर में भेजा ताकि वह मेरे लिए पासपोर्ट ले आए। और खुद मेरे साथ जहाज पहुंची।

"बहुत ठीक," बारमैन ने उड़ती नज़र से हमारी ओर देखा। "मेरे साथ चला आ।"

वह मुझे जहाज के पिछले हिस्से में ले गया जहां तगड़े बदन का बावर्ची सफ़ेद पोशाक पहने और टोपी लगाये मेज़ के पास बैठा था। वह चाय पी रहा था और साथ ही एक मोटी सिगरेट से धुआं उड़ा रहा था। बारमैन ने मुझे उसकी ओर धकेलते हुए कहा:

"यह बरतन साफ़ करेगा।"

इसके बाद वह उल्टे पांव लौट गया। बावर्ची ने नाक सिकोड़ी, फिर अपनी काली मूछों को फरफराया और बारमैन को लक्ष्य कर फनफनाते हुए बोला:

"किसी भी ऐरे-गैरे को रख लेते हो, बस मजदूरी कम देनी पड़े!.."

अपने भारी-भरकम सिर को जिसके काले बाल खूब महीन छंटे हुए थे, झुंझलाकर उसने पीछे की ओर फेंका, फिर अपनी काली आंखों से मेरी ओर ताकते और अपने गालों को कुप्पा सा फुलाते हुए चिल्लाकर कहा:

"कौन है तू?"

यह आदमी मुझे कतई पसंद नहीं आया। इसके बावजूद कि वह सिर से पांव तक सफ़ेद कपड़ों में ढंका था, वह मुझे गंदा मालूम हुआ। उसकी उंगलियों पर खूब घने बाल थे, और उसके छाज से कानों पर भी बाल थे।

"मुझे भूख लगी है," मैंने कहा।

उसने अपनी आंखें मिचमिचाईं, और अचानक उसके चेहरे का रूखापन देखते-देखते गायब हो गया। प्रशस्त मुसकराहट से वह खिल उठा, उसके लाल गाल लहरियां लेते कानों तक फैल गए, और उसके बड़े-बड़े घोड़े जैसे दांत चमकने लगे। उसकी मूंछें विनम्र भाव से झुक गईं और वह एक मोटी-ताजी कोमलहृदया गृहिणी जैसा लगने लगा।

गिलास में बची चाय उसने जहाज से नीचे पानी में फेंक दी, फिर

आखिर वसन्त के दिनों में मैं भाग निकला। सुबह को चाय के लिए मैं रोटी लेने गया था। मैं पावरोटी खरीद ही रहा था कि किसी बात पर पावरोटी वाले का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया, उसने उसके सिर पर भारी बटखरा दे मारा। वह बाहर की ओर भागी और सड़क पर आकर ढेर हो गई। चारों ओर लोग जमा हो गए और उसे एक गाड़ी में डालकर अस्पताल ले चले। मैं भी लपककर गाड़ी के साथ-साथ हो लिया और इसके बाद, पता नहीं कैसे, एकदम अनजाने में ही वोल्गा के तट पर पहुंच गया। मेरी मुट्ठी में बीस कोपेक का सिक्का था।

वसन्त का दिन वसन्ती मुसकान की वर्षा कर रहा था। वोल्गा के पाट का कोई वार-पार नहीं था, विशाल धरती कोलाहलमय थी। लेकिन मैं—मैं था कि उस दिन तक चूहे की भांति एक बिल में जीवन बिता रहा था। मैंने निश्चय किया कि अपने मालिक के घर अब नहीं लौटूंगा, न ही अपनी नानी के पास कुनाविनो जाऊंगा। नानी को मैंने वचन दिया था, और उसे पूरा न कर सकने के कारण उसके सामने जाते मुझे झिझक मालूम होती थी। और नाना तो जैसे ऐसे अवसरों के लिए लपलपाते ही रहते थे।

दो या तीन दिन तक मैं नदी-तट पर यों ही मटरगश्ती करता रहा। भाईचारे में घाट-मजदूर खाना खिला देते, घाट पर ही उनके साथ मैं रात को सोता। आखिर उनमें से एक ने कहा :

"इस तरह मुफ्तखोरी से काम नहीं चलेगा, बलुआ! "दोब्री" जहाज में नौकरी क्यों नहीं कर लेते? रसोईघर में तश्तरियां साफ करने के लिए उन्हें एक आदमी की जरूरत है..."

मैं चल दिया। बारमैन एक लमतड़ंग दाढ़ी वाला आदमी था—सिर पर रेशम की काली टोपी, और चश्मे के भीतर से झांकतीं धुंधली सी आंखें। सिर उठाकर उसने मेरी ओर देखा और धीरे से बोला :

"दो रूबल महीना। पासपोर्ट ला।"

मेरे पास पासपोर्ट नहीं था। बारमैन ने एक क्षण कुछ सोचा। फिर बोला :

"मां को ले आ!"

भागा हुआ मैं नानी के पास पहुंचा। नानी ने मेरे इस नये कदम का समर्थन किया और नाना को भी धक्का-धकाकर व्यवसायी के दफ्तर में भेजा ताकि वह मेरे लिए पासपोर्ट ले आए। और खुद मेरे साथ जहाज पहुंची।

"बहुत ठीक," बारमैन ने उड़ती नजर से हमारी ओर देखा। "मेरे साथ चला आ।"

वह मुझे जहाज के पिछले हिस्से में ले गया जहां तगड़े बदन का बावर्ची सफेद पोशाक पहने और टोपी लगाये मेज के पास बैठा था। वह चाय पी रहा था और साथ ही एक मोटी सिगरेट से धुआं उड़ा रहा था। बारमैन ने मुझे उसकी ओर धकेलते हुए कहा:

"यह बरतन साफ करेगा।"

इसके बाद वह उल्टे पांव लौट गया। बावर्ची ने नाक सिकोड़ी, फिर अपनी काली मूंछों को फरफराया और बारमैन को लक्ष्य कर फनफनाते हुए बोला:

"किसी भी ऐरे-गैरे को रख लेते हो, बस मजदूरी कम देनी पड़े!.."

अपने भारी-भरकम सिर को जिसके काले बाल खूब महीन छंटे हुए थे, झुंझलाकर उसने पीछे की ओर फेंका, फिर अपनी काली आंखों से मेरी ओर ताकते और अपने गालों को कुप्पा सा फुलाते हुए चिल्लाकर कहा:

"कौन है तू?"

यह आदमी मुझे कतई पसंद नहीं आया। इसके बावजूद कि वह सिर से पांव तक सफेद कपड़ों में ढका था, वह मुझे गंदा मालूम हुआ। उसकी उंगलियों पर खूब घने बाल थे, और उसके छाज से कानों पर भी बाल थे।

"मुझे भूख लगी है," मैंने कहा।

उसने अपनी आंखें मिचमिचाईं, और अचानक उसके चेहरे का रूखापन देखते-देखते गायब हो गया। प्रशस्त मुसकराहट से वह खिल उठा, उसके लाल गाल लहरियां लेते कानों तक फैल गए, और उसके बड़े-बड़े घोड़े जैसे दांत चमकने लगे। उसकी मूंछें विनम्र भाव से झुक गईं और वह एक मोटी-ताजी कोमलहृदया गृहिणी जैसा लगने लगा।

गिलास में बची चाय उसने जहाज से नीचे पानी में फेंक दी, फिर

गिलास मे ताजी चाय उड़ेली और सासेज के एक बड़े टुकड़े के साथ पावरोटी का टुकड़ा मेरी ओर बढ़ा दिया।

"लो, यह खाओ," उसने कहा। "तुम्हारे मां-बाप तो हैं न? चोरी करना जानते हो? कोई बात नहीं, जल्दी ही सीख जाओगे। चोरी करने मे यहां सभी माहिर हैं!"

वह बोलता क्या, भौंकता था। वह इतनी कसकर हजामत बनाये हुए था कि उसके भारी-भरकम गाल नीले लगते थे। नाक के इर्द-गिर्द महीन लाल शिराओं का जाल बिछा था। उसकी कुप्पी सी लाल नाक मूंछों के साथ दखलन्दाजी करती थी, उसका निचला मोटा होठ उपेक्षा से नीचे लटक आया था और मुंह के कोने में एक सिगरेट चिपकी हुई थी। लगता था मानो वह अभी गुसलखाने से स्नान करके निकला हो। उसके बदन से भोज-वृक्ष की टहनियों और मिरचौनी वोद्का की गंध आ रही थी और उसकी गरदन और कनपटियों पर पसीने की बूंदे उभर आई थीं।

जब मै भर पेट खाना खा चुका तो उसने मेरे हाथ मे एक रूबल थमा दिया।

"अपने लिए दो एप्रन खरीद लेना। नहीं, रहने दो। मै खुद ही खरीदकर ला दूंगा!"

उसने टोपी को ठीक किया और रीछ की तरह भारी कदमों पर डगमगाता, पैरों से डेक को टटोलता चल दिया।

...रात का समय था। चंद्रमा उज्ज्वल छटा फैलाता हमारे जहाज से बायें चरागाहों की ओर भागता जा रहा था। पुराना सा मटमैले कत्थई रंग का हमारा जहाज, जिसकी चिमनी पर सफेद घेरा बना हुआ था, अलस भाव से पानी के रजत तल पर अपने चप्पूदार चक्कर से असमान छप-छप कर रहा था। जहाज को भेंटने के लिए नदी के काले तट धीरे-धीरे पानी पर परछाइयां डालते हुए उभर रहे थे; उनके ऊपर घरों की खिड़कियों में लाल झिलमिलाहट हो रही थी। गांव की ओर से गाने की आवाज आ रही थी—गांव की लड़कियां घेरे मे नाच-गा रही थीं और उनके गीत की टेक 'आयलूली' से 'हल्लिलूयाह' की धुन का धोखा होता था...

हमारा जहाज तारों के एक लम्बे रस्से के सहारे बजरे को खींच रहा था। इस बजरे का रंग भी मटमैला कत्थई था। डेक पर लोहे का एक

बड़ा सा कठघरा था और कठघरे में   और कठोर श्रम की सजा पाए कैदी बंद थे। खम्भों पर टंगे लालटेनों की मरियल मोमबत्ती की लौ की भांति चमक रही थी, और गहरे नीले आकाश में छोटे-छोटे तारे भी मोमबत्तियों की भांति जल रहे थे। बजरे पर निस्तब्धता छाई थी और चांद अपनी चांदनी लुटा रहा था। कठघरे की काली सलाखों के पीछे गोल धूमिल परछाइयां दिखाई देती थीं। यह कैदी वोल्गा को देख रहे थे। पानी छल-छल करता बह रहा था—पता नहीं वह रो रहा था, या सहमे हुए भाव से हंस रहा था। हर चीज में गिरजे का आभास मिलता था यहां तक कि तेल की गंध लोबान की याद दिलाती थी।

बजरे की ओर देखते-देखते मुझे अपने बचपन की याद हो आई: आस्त्राखान से नीज्नी की यात्रा, नकाब के समान मां का चेहरा और मेरी नानी जिसकी उंगली पकड़कर मैंने जीवन की इन कठोर, किन्तु दिलचस्प राहों पर पांव रखा। नानी की याद आते ही जीवन के घृणित और हृदय को कचोटनेवाले पहलू मानो गायब हो जाते, हर चीज बदल जाती, पहले से ज्यादा हृदयग्राही और ज्यादा सुखद बन जाती, और लोग ज्यादा प्रिय तथा बेहतर लगने लगते..

रात की सुन्दरता मुझे इतना उद्वेलित कर रही थी कि मेरी आंखें डबडबा आयीं। बजरा भी मुझे उद्वेलित कर रहा था। वह ताबूत की भांति दिखाई देता था और इस छलछलाती नदी के प्रशस्त वक्ष और इस सुहावनी रात की ध्यानोन्मुखी निस्तब्धता में उसका अस्तित्व बहुत ही अटपटा तथा बहुत ही बेतुका मालूम होता था। नदी-तट की असम रेखाएं जो कभी उभरतीं और कभी नीचे उतरती थीं, हृदय में स्फूर्ति का संचार करतीं और मन में अच्छा बनने तथा मानव-जाति का कुछ भला करने की भावना हिलोरें लेने लगती।

जहाज़ के हमारे यात्री भी कुछ निराले ही थे। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे सब के सब—बूढ़े भी और जवान भी, पुरुष भी और स्त्रियां भी—एक ही सांचे में ढले हों। कछुवे की चाल से हमारा जहाज़ चल रहा था। काम-काज वाले लोग डाकजहाज़ से सफ़र करते। और हमारे जहाज़ की शरण केवल मस्त निखट्टू ही लेते। सुबह से सांझ तक ये खाते और पीते-पिलाते, ढेर सारी तश्तरियों, छुरी-कांटों और चम्मचों को गंदा करते। और मेरा काम था इन तश्तरियों को साफ़ करना तथा छुरी-कांटों को

मस्कान। सुबह के छः बजे से लेकर रात के बारह बजे तक दम मारने को भी फुरसत नहीं मिलती। दोपहर के दो बजे से लेकर छः बजे तक और रात को दस से बारह तक, काम का जोर कुछ हल्का हो जाता। कारण कि भोजन करने के बाद यात्री केवल चाय, बीयर या वोद्का पीते। इन घंटों में सभी वेटर अर्थात मेरे सभी साहब खाली होते। फनेल के पास एक मेज पड़ी थी। चाय पीने के लिए आम तौर से यहीं उनका अखाड़ा जमता। दावर्ची स्मूरी, उसका सहायक याकोव इवानोविच, रसोई के बरतन मांजनेवाला मक्सिम और गालों की उभड़ी हड्डियों वाले चेचक के दागों से भरे चेहरे चिपचिपी आंखों वाला और कुब निकला वेटर सेर्गेई जो डेक पर यात्रियों को चीजें परसने का काम करता, सभी इस मण्डली में जमा होते। याकोव इवानोविच उन्हें गंदी कहानियां सुनाता और अपने सड़े हुए हरे दांत दिखाते हुए जब वह हंसता तो ऐसा मालूम होता मानो सुबकियां ले रहा हो। सेर्गेई का मेढकनुमा मुंह इस कान से उस कान तक फैल जाता। सदा रूखा मक्सिम चुप्पी साधे रहता और अनिश्चित रंग की अपनी बेजान आंखों से उन्हें ताकता।

बड़ा बावर्ची रह-रहकर अपनी गूंजती आवाज में चिल्ला उठता:

"आदमखोर! मोर्दोवियनों की औलाद!"

मैं इन सभी से घिनाता था। मोटा गंजा याकोव इवानोविच जब देखो तब केवल स्त्रियों का ही जिक्र करता, सो भी निहायत गंदे ढंग से। उसके भावशून्य चेहरे पर नीले चकत्ते पड़े थे। एक गाल पर मस्सा था जिसमें लाल बाल उगे थे, जिन्हें उमेठकर वह सुई सी बनाता। जहाज पर जैसे ही कोई चंचल और नरम स्वभाव की स्त्री सवार होती वह उसके सामने बिछ जाता और भिखारी की भांति छाया बना उसके साथ लगा रहता, चाशनी में पगे मिमियाते स्वरों में उससे बतियाता, उसके होठों पर झाग उफन आते जिन्हें उसकी गंदी जबान लपलपाकर तेजी से चाटती रहती। न जाने क्यों, मुझे ऐसा लगता कि जल्लाद भी ठीक इतने ही मोटे होते होंगे।

"औरतों को फुसलाना भी एक हुनर है!" वह सेर्गेई और मक्सिम को सिखाने लगा; वे मुंह बाये, मन ही मन उमड़ते-घुमड़ते, सुन रहे थे और उनके चेहरों पर लाली दौड़ रही थी।

गूंजती आवाज में स्मूरी घृणा से चिल्लाया:

फिर .... वह उठा और मुझसे बोला.

"पेशकोव, मेरे साथ आओ!"

जब हम उसके केबिन में पहुचे तो उसने मेरे हाथ में एक किताब थमा दी जिसपर चमड़े की जिल्द बंधी थी। फिर वह अपने तख्ते पर लम्बा पसर गया जो कोल्ड स्टोरेज रूम की दीवार से सटा था।

"इसे पढ़कर सुनाओ!"

मकारोनी सिवइयों की एक पेटी पर बैठकर मै अदब से पढ़कर सुनाने लगा।

"अम्बराकुलम में अगर तारे छिटके दिखाई दें तो इसका अर्थ है कि स्वर्ग के देवता तुम से प्रसन्न हैं, सारे कलुष और गंदगी से मुक्त होकर तुम दिव्य ज्ञान प्राप्त करोगे..."

सिगरेट जलाकर और मुंह से धुएं का बादल छोड़ते हुए स्मूरी भुनभुनाया :

"ऊंट के लाऊ! क्या लिखा है!.."

"अगर उघड़ी हुई बाईं छाती दिखाई दे तो इसका अर्थ है निष्कपट हृदय..."

"किसकी बाईं छाती?"

"यह तो कुछ नहीं लिखा।"

"मतलब स्त्री की... ओह, लुच्चे कहीं के!"

उसने आंखे बंद कर लीं और हाथों का सिरहाना बनाकर लेट गया। होठों के कोने से लगी अपनी सिगरेट को जो करीब-करीब बुझ सी चली थी, सम्भालकर उसने ठीक किया और इतने जोरों से कश खींचा कि उसके सीने के अन्दर से कोई सीटी सी आवाज आयी और उसका बड़ा चेहरा धुंए में डूब गया। कई बार बीच-बीच मे मुझे लगता कि वह सो गया है, मै पढ़ना बंद कर देता और उस मनहूस किताब की ओर चुपचाप देखता रहता।

लेकिन उसकी भौंकने जैसी आवाज सुनाई देती :

"पढ़ो, पढ़ो!"

"वेनेराब्ल ने जवाब दिया : देखो, मेरे नेकदिल फ़ेहर सूवेरियन..."

"सेवेरियन..."

सूबेरियन लिखा है

म्यूरी गेल्ली इसे। अन्त मे कुछ कविताएं छपी है। उन्हें पढ़ो."

मैंने पढ़ना शुरू किया :

ऐ अज्ञानियो, हमारी लीलाओं को जानने को तुम उत्सुक,
निष्फल नेत्र तुम्हारे देख न पायेंगे उन्हें कभी,
और न जानोगे तुम यह भी, कैसे गाते हैं फ़ेहर

"बस करो!" स्मूरी ने चिल्लाकर कहा। "यह भी कोई कविता है? लाओ, इसे मुझे दो!"

किताब को अपने हाथ मे लेकर उसने गुस्से से उसके मोटे, नीले पन्ने उल्टे-पल्टे और फिर गद्दे के नीचे ठूंस दिया।

"दूसरी लाकर पढ़ो!.."

मेरी मुसीबत को लोहे के कुन्दे और कीलकांटों से लैस काले रंग का उसका संदूक किताबों से अटा पड़ा था। इनमे ऐसी पुस्तके थीं: "सन्त ओमीर की वाणी", "तोपखाने के संस्मरण", "लार्ड सेडेनगाली के पत्र", "किताब नुक़सानदायक कीड़े खटमल के बारे मे और उन्हें मारने की, दूसरे कीड़ों को भी मारने के नुस्खो के साथ"; ऐसी भी पुस्तके थीं जिनका न आदि था, न अन्त। कभी-कभी बावर्ची मुझसे सब किताबे निकलवाता और उनके नाम पढ़वाता,—मै पढ़ता और वह गुस्से में बड़बड़ाता :

"शैतान कहीं के, लिखते क्या है, मानो औचक में मुंह पर तमाचा सा मारते हैं। और किस लिए—समझ मे नही आता। गेरवास्सी! भाड में जाए गेरवास्सी! अम्बराकुलम!.."

अटपटे और अजीब शब्द, ऐसे नाम जो न कभी देखे और न कभी सुने, स्मृति में आकर अटक जाते, उन्हे बार-बार दोहराने के लिए मेरी जीभ खुजलाने लगती—शायद उनकी ध्वनि से उनका अर्थ मेरी समझ मे आ जाये। खिड़की से बाहर कामा नदी गाती और छपछपाती रहती। मेरा मन डेक पर जाने के लिए उतावला हो उठता जहां बक्सो के बीच जहाजियों की चौकड़ी जमती। वे गीत गाते, दिलचस्प क़िस्से सुनाते या ताश के खेलों में यात्रियों की जेबें खाली करते। उनके साथ बैठकर उनकी सीधी-सादी बाते सुनना और कामा नदी के तटों, खम्बों की

भांति सीधे खड़े देवदारु वृक्षों के ऊंचे तनों और चरागाहों की ओर देखना जहां बाढ़ का पानी जमा होने से छोटी-छोटी झीलें बन गई थीं जिनमें नीला आसमान टूटे हुए आईने के टुकड़ों की भांति चमकता दिखाई देता था, बहुत अच्छा लगता था। हमारा जहाज तट से कटा हुआ था और उससे दूर भाग रहा था। लेकिन तट की ओर से थके हुए दिन के सन्नाटे में आंखों से ओझल किसी गिरजे के घंटों की आवाज हवा के साथ बहकर आती और आबाद बस्तियों तथा लोगों की हलचल की याद दिलाती। किसी मछियारे का डोंगा रोटी के टुकड़े की भांति पानी पर नाचता नजर आता। फिर एक गांव निकट आता दिखाई देता जहां छोटे लड़कों का एक दल पानी में छपछप खेल रहा था और लाल कमीज पहने एक किसान पीले फ़ीते की भांति फैली रेत पर चला आ रहा था। दूर से देखने पर हर चीज सुहावनी मालूम होती। हर चीज खिलौनों की भांति अजीब ढंग से रंग-बिरंगी और नन्ही-मुन्नी लगती है। मन करता है कि स्नेहसिक्त, दयार्द्र शब्द जोर-जोर से बोलूं ताकि किनारे वाले और बजरे वाले भी उन्हें सुन पायें।

कत्थई रंग का वह बजरा मानो मेरे मन में बसा था। मंत्रमुग्ध सा मैं घंटों बैठा उसके ठुके-पिटे से अग्रभाग को गंदला पानी चीरकर अपना रास्ता बनाते एकटक देख सकता था। हमारा जहाज गले में रस्सी बंधे सुअर की भांति उसे खींच रहा था। तारों का रस्सा जब ढीला पड़ता तो पानी से टकराता और इसके बाद, नाक के बल बजरे को खींचते समय, पानी को काटता हुआ फिर तन जाता और उसपर से पानी की प्रचुर बूंदें गिरतीं और वह फिर बजरे को गलही से खींचता। मन में होता कि बजरे पर जाकर उन लोगों के चेहरे देखूं जो जानवरों की भांति लोहे के कठघरे में बंद थे। पेर्म में जब उन्हें बजरे से उतारा जा रहा था, मैं भी जहाज से उतरने के तख्ते पर अपना रास्ता बना रहा था; दल के दल मटमैले जीव, थैलों के बोझ से दोहरे और अपनी जंजीरों को बजाते, मेरे पास से गुजरे। उनमें पुरुष थे, स्त्रियां थीं, उनमें बूढ़े थे और जवान थे, सुन्दर और असुन्दर, सभी तरह के लोग थे—ठीक वैसे ही जैसे कि सब लोग होते हैं, सिवा इसके कि वे दूसरी तरह के कपड़े पहने थे, और सिर-घुटे होने के कारण उनके चेहरे-मोहरे भद्दे दिखाई देते थे। वे जरूर डाकू ही रहे होंगे। लेकिन नानी तो डाकुओं के बारे में इतने

बढ़िया क़िस्से सुनाया करती थी! स्मूरी औरों से कहीं ज्यादा दबंग और जानदार लुटेरा मालूम होता था।

"भगवान ऐसे दिन न दिखाना!" बजरे की ओर देखते हुए वह बुदबुदाता।

एक दिन मैंने उससे पूछा:

"ऐसा क्यों है कि तुम खाना पकाते हो और दूसरे लोग–हत्या करते हैं, लूटते हैं?"

"खाना तो औरतें भी पकाती हैं, पर बावर्ची का काम वे नहीं करतीं। मैं बावर्ची हूं, समझा?" उसने थोड़ा हंसकर कहा। फिर एक क्षण कुछ सोच कर बोला:

"लोगों में अन्तर उनकी बेवक़ूफ़ी का होता है। कुछ लोग सयाने होते हैं, कुछ कूढ़ दिमाग़ और कुछ बिल्कुल गोबर गणेश। और समझदार बनने के लिए ठीक ढंग की–जैसे काला जादू तथा ऐसी दूसरी बहुत सी–किताबें पढ़नी चाहिये। सभी किताबें पढ़नी चाहिये तभी सही किताबों का पता लगेगा..."

वह मुझसे सदा यही कहता:

"पढ़ो, अगर कोई किताब समझ में न आए तो उसे सात बार पढ़ो। अगर सात बार पढ़ने पर भी समझ में न आये तो उसे बारह बार पढ़ो..."

स्मूरी जहाज पर हर किसी से, यहां तक कि सदा चुप रहनेवाले बारमैन से भी दो-टूक बातें करता था। बोलते समय उसका निचला होंठ उपेक्षापूर्वक लटका होता, मूंछें खड़ी हो जातीं और शब्द ऐसे निकलते मानो लोगों को ढेले मार रहा हो। लेकिन मेरे साथ वह मुलामियत से पेश आता, हालांकि उसकी इस हार्दिकता में भी कुछ ऐसी बात थी जिससे मुझे डर लगता था। कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि नानी की बहन की भांति उसके दिमाग़ का भी कोई पुर्जा ढीला है।

"पढ़ना बंद करो!.." वह मुझसे कहता और आंखें बंद किये नाक से सूं-सूं करते हुए देर तक चुपचाप पड़ा रहता, उसका भारी पेट उठता और गिरता, उसके हाथ सीने पर लाश की भांति आड़े रखे रहते, उसकी बालों वाली झुलसी हुई उंगलियां इस प्रकार मुड़तीं-मुड़तीं मानो वह अदृश्य सलाइयों से कोई अदृश्य मोज़ा बुन रहा हो।

फिर एकाएक वह बुदबुदाना शुरू करता

हां, भई। लो यह लो अक्ल और जियो। पर अक्ल तो कंजूसी से मिली है और वह भी बराबर नहीं। अगर कहीं सब एक से अक्लमंद होते, पर – नहीं... एक समझता है, दूसरा नहीं समझता और ऐसे भी हैं, जो समझना ही नहीं चाहते, क्यों!"

लड़खड़ाते हुए से शब्द उसके मुंह से निकलते और वह अपने सैनिक जीवन की कहानियां सुनाता। उसकी कहानियों में मुझे कभी कोई तुक नहीं दिखाई देती और वे मुझे हमेशा बेमजा मालूम होतीं, – खास तौर से इसलिए भी कि वह कभी शुरू से शुरू नहीं करता, बल्कि जहां से भी बात याद आ जाती, वहीं से सुनाना शुरू कर देता।

"तो रेजीमेंट के कमाण्डर ने उस सैनिक को तलब किया और उससे पूछा: 'तुम से लेफ़्टीनेन्ट ने क्या कहा था?' और उसने सभी कुछ बता दिया, कुछ भी छिपाकर न रखा, क्योंकि सैनिक का यह फ़र्ज़ है कि वह सच बोले। लेफ़्टीनेन्ट ने उसकी ओर इस तरह देखा मानो वह दीवार हो, फिर मुंह फेरकर सिर झुकाया। ऊंह!.."

बावर्ची को क्रोध आ रहा था, धुआं छोड़ते हुए वह बुदबुदाया:

"मानो मुझे मालूम ही हो कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं! उन्होंने लेफ़्टीनेन्ट को जेल में बन्द कर दिया, और उसकी मां... ओह, मेरे भगवान! मुझे तो कुछ भी सिखाया नहीं किसी ने..."

बड़ी उमस थी। इर्दगिर्द की हर चीज कांप और भनभना रही थी। केबिन की लौह-दीवार से बाहर जहाज का चप्पूदार चक्कर धम-धम करता घूम रहा था और पानी से छपछप कर रहा था। खिड़की में से पानी की चौड़ी धारा उमड़ती-घुमड़ती दिख रही थी, दूर चरागाह की हरियाली नजर आ रही थी और वृक्षों के झुरमुट आंखों के सामने उभरने लगे थे। सब आवाजों को सुनते-सुनते मेरे कान इतने आदी हो गये कि निस्तब्धता के सिवा मुझे अन्य किसी चीज का भान नहीं होता, हालांकि जहाज की गलही पर एक मल्लाह एकरस आवाज में बराबर दोहरा रहा था:

"सा-आ-त... सा-आ-त..."

मैं हर चीज से अलग रहना चाहता था, – न कुछ सुनना चाहता था, न करना, – बस किसी ऐसे कोने में छिप जाना चाहता था जहां रसोई की

गम और चिकनी गंध प्रवेश न कर सके और जहां बैठकर पानी पर तैरते हुए इस हलचल रहित और थके-हारे जीवन को अलसायी-उनींदी आंखों से देखा जा सके।

"पढ़ो!" झकझोरते हुए स्वर में स्मूरी ने आदेश दिया।

पहले दर्जे के वेटर तक उससे डरते और ऐसा मालूम होता मानो सहमा-सिमटा, घुन्ना और मुंहबंद बारमैन भी मन ही मन स्मूरी से भय खाता है।

"ऐ सूअर!" स्मूरी वेटरों आदि पर चिल्लाता। "इधर आ चोर, आदमखोर... अम्बराकुलम!"

मल्लाह और कोयला झोंकनेवाले उसकी इज्जत करते थे, यहां तक कि उसकी नजरों में अच्छा बनने का भी प्रयत्न करते थे। वह उन्हें शोरबे में से गोश्त की बोटियां निकालकर देता, उनके बाल-बच्चों और गांव के जीवन के बारे में पूछता। कालिख में सने और चिक्कट कोयला झोंकनेवाले बेलोरूसी लोग जहाज की तलछट समझे जाते थे। उन सभी को एक ही नाम – यागूत – से पुकारा जाता था और उन्हें चिढ़ाते थे:

"यागू, आगू, भागू..."

स्मूरी जब यह सुनता तो उसका पारा गर्म हो जाता। उसकी मूंछें फरफराने लगतीं, चेहरा तमतमा जाता और कोयला झोंकनेवालों से वह चिल्लाकर कहता:

"तुम इन कत्सापों* से डरते क्यों हो? इनका तोबड़ा क्यों नहीं तोड़ डालते!"

एक बार मल्लाहों के मुखिया ने जो शक्ल-सूरत से अच्छा तथा स्वभाव से चिड़चिड़ा था, उससे कहा:

"यागूत और खोखोल** – दोनों एक बराबर हैं।"

स्मूरी ने एक हाथ से उसकी पेटी दबोची और दूसरे से गरदन। फिर सिर से ऊंचा उठाकर उसे हिलाते-झंजोड़ते हुए चिल्ला उठा:

"बोल, निकाल दूं कचूमर?"

अक्सर झगड़े होते थे और कभी-कभी लड़ाई तक बढ़ जाते। लेकिन

---

*कत्साप – रूसी के लिए एक अपमानजनक शब्द। – सं०

**उक्राइनी के लिए एक अपमानजनक शब्द। – सं०

स्मरी को कभी कोई हाथ नहीं लगाता था एक तो इसलिए कि ताकत मे वह पूरा देव था, दूसरे इसलिए भी कि कप्तान की पत्नी उससे अकसर विनम्रतापूर्वक बाते करती थी। वह ऊंचे कद की स्त्री थी, मरदाना चेहरा और लड़कों की भांति सीधे कटे हुए बाल।

वह वोद्का बहुत पीता था, लेकिन मदहोश कभी नहीं होता। सुबह से वह पीना शुरू करता, चार पेगों में ही एक बोतल खाली कर देता, और फिर दिन भर बीयर चुसकता रहता। धीरे-धीरे उसका चेहरा लाल हो जाता, और उसकी काली आंखें इस तरह फैल जातीं मानो उनमे अचरज का भाव भरा हो।

कभी-कभी, साझ के समय, सफ़ेद रंग की भीमाकार प्रतिमा की भांति वह चुप्पी साधे डेक पर घंटों बैठा रहता और मुंह फुलाए पीछे छूटती हुई दूरी को घूरा करता। ऐसे क्षणों मे प्रायः सभी उससे और भी ज्यादा डरते, लेकिन मुझे उसपर तरस आता।

याकोव इवानोविच रसोई से बाहर निकलता, चेहरा लाल और पसीने मे तर वह अपनी गंजी खोपड़ी को खुजलाता और फिर निराशा से हाथ हिलाता हुआ गायब हो जाता। या वह दूर से कहता:

"मछली मर गई..."

"मिले-जुले सूप में डाल दो..."

"अगर कोई मछली का शोरबा या भाप मे पकी मछली मांगने लगा तो क्या करोगे?"

"बना डालो। वे सब चट कर जायेंगे!"

कभी-कभी साहस बटोरकर मै उसके पास चला जाता। बड़ी कठिनाई के साथ आंखें मेरी ओर घुमाकर वह पूछता:

"क्यों?"

"कुछ नहीं।"

"ठीक है..."

एक बार मैंने उससे ऐसे एक मौके पर पूछ ही लिया:

"तुम सभी को डराते क्यों हो—तुम तो दयालु हो?"

मेरी आशा के विपरीत वह झुंझलाया नहीं।

"मै केवल तुम्हारे साथ ही दयालु हूं," उसने जवाब दिया, और फिर कुछ सोचते हुए खुले दिल से बोला:

शायद यह ठीक है—मैं सभी के साथ दयालु हूं। केवल मैं दिखाता नहीं। लोगों को यह कभी नहीं दिखाना चाहिए, अन्यथा वे तुम्हें नोच खायेंगे। जो भला होता है, लोग उसपर इस तरह चढ़ बैठते हैं मानो वह दलदल के बीच सूखी मिट्टी का कोई टीला हो और वे उसे पांव तले रौंद डालते हैं। जाओ, बीयर उठा लाओ .."

एक के बाद एक कई गिलास बीयर पीने के बाद उसने अपनी मूंछों को चाटा और बोला:

"अगर तुम कुछ बड़े होते तो तुम्हें बहुत सी बातें सिखाता... मैं भी थोड़ी-बहुत काम की बातें जानता हूं—निरा बौड़म नहीं हूं... तुम पुस्तकें पढ़ो, पुस्तकों में काम की सभी बातें होनी चाहिए। किताबें फ़िजूल की चीज़ नहीं हैं। क्यों, कुछ बीयर पियोगे?"

"मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"यह अच्छी बात है। कभी नशा न करना। नशा एक बहुत बड़ी बला है। वोद्का शैतान की देन है। अगर मैं अमीर होता तो पढ़ने के लिए तुम्हें स्कूल भेज देता। अनपढ़ आदमी को पूरा बैल ही समझो। चाहो तो उसपर जुआ लाद दो, चाहे उसे काटकर खा जाओ—दुम फड़फड़ाने के सिवा वह और कुछ नहीं करता..."

कप्तान की पत्नी ने उसे गोगोल की एक पुस्तक दी: "भयानक प्रतिशोध"। मुझे यह पुस्तक बहुत पसंद आई। लेकिन स्मूरी गुस्से से चिल्ला उठा:

"निरी बकवास, परियों की कहानी जैसी। मैं जानता हूं—और दूसरी किताबें हैं.."

उसने मेरे हाथ से पुस्तक छीन ली और कप्तान की पत्नी से एक अन्य पुस्तक ले आया।

"लो, अब इसे पढ़ो—तारास—ज़रा देखो तो, इसका पूरा नाम क्या है? ढूंढो।" अपनी तरंग में बहते हुए उसने आदेश दिया। "वह कहती है कि बहुत बढ़िया कहानी है... लेकिन बढ़िया किस के लिए? हो सकता है कि यह उसके लिए बढ़िया हो, और मेरे लिए घटिया। और देखो न, अपने बाल कटा लिए! अपने कान भी क्यों नहीं कटा लिए?"

पुस्तक पढ़ते-पढ़ते जब मैं उस स्थल पर पहुंचा जहां तारास ने ओस्ताप को लड़ने के लिए ललकारा, बावर्ची भरभराई सी आवाज में हंसा।

"यह – सही है! और क्या?" उसने कहा। "तू विद्वान, मैं बलवान! क्या छापते हैं! ऊंट की औलाद!.."

वह ध्यान से सुन रहा था लेकिन बीच-बीच में भुनभुनाता भी जाता था।

"ऊंह, यह भी क्या बकवास है। एक ही वार में कंधे से कमर तक आदमी को नहीं काटा जा सकता। एकदम गलत। और बर्छी की नोक पर आदमी को भला कैसे उठाओगे, वह टूट न जाएगी? क्या मैं जानता नहीं, मैं खुद सैनिक रह चुका हूं..."

आन्द्रेई के विश्वासघात का प्रसंग सुनकर वह बुरी तरह आहत हो उठा:

"नीच जात है, न? लुगाई पर मर गया। थू!"

पर जब तारास ने अपने बेटे के सीने में गोली दागी तो स्मूरी उचककर बैठ गया, अपनी टांगों को उसने तख्ते से नीचे लटका लिया, उसके किनारे को दोनों हाथों से पकड़कर झुका और रोने लगा। आंसू धीरे-धीरे उसके गालों पर से लुढ़कते हुए फ़र्श पर गिरने लगे। नथुने फड़काते हुए वह बुदबुदाया:

"ओह, मेरे भगवान... मेरे भगवान..."

सहसा वह मुझपर चिल्ला उठा:

"पढ़ना क्यों बंद कर दिया, शैतान का पूत!"

वह और भी ज़ोरों से, फफक-फफककर रोने लगा उस समय जब ओस्ताप अपने प्राणदण्ड से पहले चीख उठा, "बापू! मुझे सुन रहे हो?"

"सभी कुछ समाप्त हो गया," स्मूरी भुनभुनाया। "कुछ भी बाक़ी नहीं बचा। ख़त्म भी हो गया? आह, सत्यानास हो इसका, पर लोग कैसे थे, हैं? यह तारास क्या आदमी था! हां, यह थे असली आदमी..."

उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और ध्यान से उसे देखता रहा, किताब की जिल्द आंसुओं से भीग गयी।

"बड़ी अच्छी किताब है! तबीयत खुश कर दी।"

इसके बाद "आइवनहो" का पाठ हुआ। स्मूरी को रिचर्ड प्लान्टागेनेट का चरित्र बहुत पसंद आया।

बादशाह हो तो ऐसा उसने रोबीली आवाज मे कहा मझे यह किताब उबानेवाली लगी।

आम तौर पर हमारी रुचि एक-दूसरे से भिन्न थी। "थोमस जोन्स की कहानी" ने, जो "लावारिस टाम जोन्स की जीवनी" का पुराना अनुवाद था, मुझे मंत्रमुग्ध कर लिया। लेकिन स्मूरी बड़बड़ाया:

"एकदम बकवास! भाड़ मे जाये तुम्हारा थामस। मुझे उससे क्या लेना? बढिया पुस्तको को खोजना चाहिए..."

एक दिन मैने उसे बताया कि मुझे मालूम है कि पुस्तको की एक और किस्म होती है: वर्जित पुस्तकें, जिन्हे केवल रात के समय तहखानों में बैठकर पढा जाता है।

उसकी आखे फैल गई, मूंछे फरफराने लगीं।

"क्या कहा तुमने? क्यो बेपर की उडा रहे हो?"

"मै झूठ नही कहता। पाप-स्वीकारोक्ति के समय खुद पादरी ने उनके बारे में मुझसे पूछा था, और उससे भी पहले मैने लोगो को उन्हें पढ़ते और उनपर आसू बहाते देखा है..."

चुंधी सी आंखों से उसने मेरी ओर देखा।

"आंसू बहाते देखा है? कौन था वह?"

"एक स्त्री जो सुन रही थी, और दूसरी तो डर के मारे भाग ही गई!.."

"जरा होश मे आओ, क्या बड़बड़ा रहे हो?" अपनी आखो को धीरे-धीरे सिकोड़ते हुए स्मूरी ने कहा। फिर कुछ रुककर बोला:

"बेशक कहीं होनी चाहिए... कोई गुप्त चीज... न होना असम्भव है... मेरी उम्र वैसी नही... और स्वभाव भी तो नही ... फिर भी..."

बिना रुके घंटो तक वह इसी तरह बाते कर सकता था...

एकदम अनजाने में ही मुझे पढ़ने की आदत पड गई और मै चाव के साथ किताबे पढ़ता, पुस्तको मे वर्णित जीवन वास्तविक जीवन से, जो अधिकाधिक दूभर होता जा रहा था, कही सुखद था।

स्मूरी की दिलचस्पी भी पुस्तकों में बढ़ती गई। अकसर वह मुझे अपना काम भी न करने देता। कहता:

"पेशकोव, चलो पुस्तक पढ़कर सुनाओ।"

यहा जूठ बर्तनों का ढेर लगा हुआ है

मक्सिम साफ़ कर लेगा।

स्मूरी बड़े बर्तन मांजनेवाले की गरदन दबोचकर उससे मेरा काम लेता, वह कांच के गिलास तोड़कर अपना बदला चुकाता। और बारमैन निश्चल आवाज़ मे मुझे चेतावनी देता.

"तुम्हें जहाज से निकाल दूंगा।"

एक दिन मक्सिम ने जान-बूझकर गंदे पानी के बरतन मे गिलास पड़े रहने दिये। मैने बरतन का गंदा पानी जहाज से नीचे फेका तो गिलास भी उसके साथ-साथ जा गिरे।

"यह क़सूर मेरा है," स्मूरी ने बारमैन से कहा। "गिलासों के दाम मेरे हिसाब में से काट लेना।"

वेटरों ने भी मुझसे जलना और कुढ़ना शुरू कर दिया। मुझे कोंचते हुए कहते:

"कहो किताबी कीड़े, खूब हराम की खाते हो आजकल!"

मेरा काम बढ़ाने के लिए वे जान-बूझकर रकाबियों को गंदा कर देते। मै समझता था कि इस छेड़छाड़ का अन्त अच्छा नहीं होगा और ऐसा ही हुआ भी।

सांझ का समय था। एक छोटे से घाट से एक लाल चेहरे वाली स्त्री हमारे जहाज पर सवार हुई। उसके साथ एक लड़की भी थी जो पीले रंग का रूमाल और गुलाबी रंग का नया ब्लाउज पहने थी। दोनो कुछ-कुछ नशे में थी। स्त्री बराबर मुस्कराती, झुककर सभी का अभिवादन करती और उसके मुंह से तोते की भांति शब्द निकलते:

"मुझे माफ़ करना, मेरे प्यारे! आज मैंने थोड़ी सी चढ़ा ली है। मेरे पर मुकदमा चला था और मैं बेदाग़ छूट गई, सो मै अब खुशी मना रही हूं..."

लड़की भी अपनी धुंधली आंखो से सभी पर डोरे डालती हंस रही थी और स्त्री को धकेल रही थी:

"अरी जा, सिरफिरी..."

जहाज के दूसरे दर्जे के डेक-रूम के पास उस केबिन के सामने जहां याकोव इवानोविच और सेर्गेई सोते थे, दोनो ने अपना अड्डा जमाया।

स्त्री तो शीघ्र ही कहीं गायब हो गई, और सगई लड़की की बगल से जाकर जम गया। उसका मेंढकनमा मुंह लालसापूर्वक फला था।

काम-काज से निबटकर उस रात सोने के लिए मैं मेज पर चढ़ा ही था कि सेर्गेई मेरे पास आया और मेरा हाथ खींचते हुए बोला:

"चल, हम आज तेरी जोड़ी मिलायेंगे.."

वह नशे में धुत्त था। मैंने उससे अपना हाथ छुड़ाना चाहा तो उसने मुझे मारा:

"चल!"

तभी मक्सिम भागा हुआ आ गया। वह भी नशे में धुत्त था। दोनों ने मुझे पकड़ा और डेक तथा सोते हुए यात्रियों के पास से खींचते हुए मुझे अपने केबिन की ओर ले चले। लेकिन दरवाजे के पास स्मूरी और ठीक दरवाजे के बीचोंबीच याकोव इवानोविच लड़की का रास्ता रोके खड़ा था। वह उसकी पीठ पर घूंसे बरसा रही थी और नशीली आवाज में बार-बार चिल्ला रही थी:

"जाने दो..."

स्मूरी ने मुझे मक्सिम और सेर्गेई के चंगुल से छुड़ा लिया, बाल पकड़कर उनके सिरों को एक-दूसरे से टकराया, और परे फेंक दिया—वे दोनों गिर पड़े।

"आदमखोर!" वह याकोव पर चिल्लाया और झटके से उसके मुंह पर दरवाजा बंद कर दिया। फिर मुझे धकियाते हुए गुर्रा उठा:

"दफा हो यहां से!"

मैं जहाज के दबूसे की ओर भाग गया। बादलों घिरी रात थी, नदी काली थी। जहाज के पीछे पानी में दो भूरी धारियां उफनती हुई अदृश्य तटों की ओर भागी जा रही थीं। इन धारियों के बीच बजरा घिसट रहा था। कभी दाहिनी और कभी बाईं ओर रोशनियों के लाल धब्बे दिखाई देते और फिर, किसी चीज को आलोकित किये बिना ही नदी के घुमावों के पीछे तुरंत गायब हो जाते। उनके ओझल हो जाने के बाद रात का अंधेरा और मेरे अन्तरमन को लगी चोट और गहरी होती चली गई।

बावर्ची आकर मेरे पास ही बैठ गया। गहरी सांस खींचकर उसने सिगरेट सुलगाई।

"क्या वे तुम्हें उस छछूंदर के पास ले जा रहे थे? बदजात कहीं के! मैंने सुना था, वे कैसे उसपर हाथ डाल रहे थे..."

तुमने उसे उनके चगुल से छुड़ाया?"

"उसे?" भद्दे से शब्दों मे उसने लड़की को कोसा और फिर भारी आवाज मे बोला:

"यहां सभी कमीने है! यह जहाज देहात से भी बदतर है। क्या तू कभी देहात मे रहा है?"

"नही।"

"देहात – पूरी मुसीबत है। जाड़ों में तो खास तौर से..."

उसने सिगरेट का टुर्रा पानी मे फेक दिया और कुछ रुककर बोला:

"इन सूअरो के झुंड के बीच तेरा सत्यानाश हो जायेगा! तुझे देखकर दु:ख होता है पिल्ले। दुःख तो मुझे सभी पर होता है। और कभी-कभी तो न जाने क्या करने को तैयार होता हूं... मन करता है कि घुटनों के बल गिरकर मै उनसे कहूं: 'यह तुम क्या कर रहे हो, हरामी पिल्लो! क्या तुम अंधे हो?' ऊंट कहीं के..."

जहाज ने देर तक सीटी की आवाज की, तार का रस्सा पानी मे गिरकर छपछपाया, घने अंधेरे में लालटेन की रोशनी झूल उठी जो इस बात की सूचक थी कि जहाज-घाट यहां है, और भी रोशनियां धुंधलके मे झिलमिलाने लगी।

"यहीं है वह 'नशीला जंगल'" बावर्ची बडबड़ाया। "नशीली नाम की नदी भी है। एक अफ़सर था 'शराबोब'। और एक पियक्कड़ नाम का क्लर्क भी... मै किनारे पर जाऊंगा..."

कामा प्रदेश की हट्टी-कट्टी स्त्रियां लम्बी डोलियों पर लकडी लादकर ला रही थीं। फुर्ती से छोटे-छोटे डग भरती, बोझ से झुकी, दो-दो के जोड़ों में जहाज के ईंधनघर तक आतीं और उसके काले मुंह मे जोरो से 'धाईशा-आ' की आवाज करती हुई लकड़ी के कुंदो को झोक देतीं।

जब वे लकड़ी लेकर आतीं तो मल्लाह उनकी टांगे खींचते, उनकी छातियों को पकड़कर मसकते और स्त्रियां कीकती हुई उनके मुंह पर थूकतीं। लकड़ियां उतारकर जब वे लौटती तो जहाजियो के धक्कों और चिकोटियो से बचने के लिए वे पलटकर अपनी डोलियो से उनपर वार करती। दसियों बार, हर फेरे में, मैं यह देख चुका था। जहां कहीं भी जहाज ईंधन लेता, इसी तरह के दृश्य दिखाई देते।

मुझे ऐसा मालूम होता मानो मै कोई बड़ा बूढ़ा आदमी हूं, लम्बे अर्से

से जहाज पर रह रहा हूं, और पहले से ही बता सकता हूं कि यहां अगले दिन, अगले सप्ताह, अगली शरद में या अगले वर्ष क्या होगा।

उजाला हो चला था। घाट से परे रेत के टीले पर देवदार के एक बड़े जंगल की शक्ल दिखाई देने लगी। जंगल की ओर स्त्रियां टीले पर जा रही थीं। वे हंसतीं, गीत गातीं और किलकारियां भरतीं। अपनी लम्बी डोलियों से लैस वे सैनिकों के दल की भांति दिखाई देतीं।

जी रोने को चाहता था। आंसू हृदय में उमड़-घुमड़ रहे थे, वह मानो उनमें उबल रहा था; इससे मुझे बहुत पीड़ा पहुंच रही थी।

लेकिन रोते मुझे शर्म मालूम हुई। सो मैं उठा और डेक साफ़ करने में मल्लाह शूरिन का हाथ बटाने लगा।

शूरिन उन जहाज़ियों में से था जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। पीला और बेरंग, जहाज के ओने-कोने में छिपकर बैठ बस अपनी छोटी आंखें मिचमिचाता रहता।

एक दिन मुझसे बोला :

"असल में मेरा नाम शूरिन नहीं, मूरिन है। जिस मां ने मुझे जन्म दिया, वह पूरी मूरी थी। और मेरी बहन—वह भी अपनी मां से कम नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि विधाता ने इन दोनों के भाग्य में यही लिख दिया था। भाग्य, मेरे भाई, उस पत्थर की भांति है जो गले में बंधा रहता है। तुम उबरने के लिए हाथ-पांव मारते हो, और वह तुम्हें ले डूबता है..."

और अब, डेक को साफ करते समय, धीमे स्वर में कहने लगा :

"देखा तूने, ये लोग लड़कियों को किस तरह मसकते और कचोटियां काटते हैं? कौन नहीं जानता कि अगर पीछे पड़े रहो तो सीली लकड़ी भी गरमा जाती है! मुझसे यह नहीं देखा जाता। नहीं भाई, मैं यह सब सहन नहीं कर सकता। अगर मैं लड़की होता तो ईसामसीह की क़सम खाता हूं, किसी अंधे कुंवें में डूब मरता... इंसान तो यों ही आज़ाद नहीं होता ऊपर से लोग उकसाते हैं। बधिये तो, भाई मेरे, कोई मूर्ख थोड़े ही हैं, कभी सुना है बधियों के बारे में? समझदार लोग हैं—भले जीवन का रास्ता खोजने में उन्हें देर न लगी। बस, मन को भटकानेवाली इन छोटी चीजों को जड़-मूल से काटकर फेंक दो और, शुद्ध शरीर हो, भगवान की सेवा करो..."

कप्तान की पत्नी हमारे पास से गुजरी। डेक पर पानी फैला था। अपने घाघरों को भीगने से बचाने के लिए वह उन्हें ऊंचा उठाए थी। वह हमेशा जल्दी उठ जाती थी। लम्बी और सुघड़, चेहरा कुछ इतना निष्कपट और भोलेपन का कुछ ऐसा भाव लिये कि मेरा मन ललक उठता, जी करता कि भागकर उसके पीछे जाऊं और अपना समूचा हृदय उंडेलते हुए उससे कहूं :

"मुझसे बातें कीजिये — कुछ तो कहिये!.."

जहाज धीरे-धीरे घाट से दूर होने लगा।

"चल दिये!" शूरिन ने कहा, और अपने हाथ से सलीब का चिन्ह बनाया...

६

सारापूल पहुंचने पर मक्सिम जहाज से चला गया। चलते समय उसने किसी से विदा तक न ली। बस, एकदम चुपचाप, शान्त और गम्भीर, वह जहाज से चल दिया। रंगीन स्वभाव की वह स्त्री भी हंसती और खिलखिलाती, उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। साथ में लड़की भी थी — मसली और मुरझाई सी, आंखें सूजी हुई। सेर्गेई कप्तान के केबिन के सामने देर तक बैठा रहा, दोनों घुटने टेके हुए। दरवाजे की चौखट को वह चूमता था, और रह-रहकर उससे अपना सिर टकराता था।

"मुझे माफ़ करो," झींकता हुआ वह कहता। "मैंने कुछ नहीं किया। वह सब मक्सिम का क़सूर था..."

मल्लाहों, बार वालों, यहां तक कि कुछ यात्रियों को भी मालूम था कि वह झूठ बोल रहा है। फिर भी वे उसे उकसा और बढ़ावा दे रहे थे :

"ठीक है, डटा रह। वह माफ कर देगा!"

कप्तान ने उसे भगाया, यहां तक कि ऐसी लात जमायी कि सेर्गेई फ़र्श पर गिर गया, लेकिन फिर माफ कर दिया। अगले ही क्षण सेर्गेई हाथों में नाश्ते की ट्रे लिए डेक पर इधर से उधर लपकता और मार खाये पिल्ले की भांति लोगों की आंखों में झांकते हुए नज़र आने लगा।

मक्सिम की जगह जिस आदमी को रखा गया, वह व्यात्का प्रदेश का रहनेवाला था और पहले फ़ौज में नौकरी कर चुका था। हड्डियों का ढांचा,

छोटा सा सिर और लाल भरा आगा। आते ही छोटे बावर्ची ने उसे मुर्गियां काटने भेज दिया। दो तो उसने काट डालीं, और बाकी डेक पर निकल भागीं। यात्रियों ने उन्हें पकड़ने की कोशिश की, और तीन मुर्गियां कुदककर जहाज से पानी में जा गिरीं। रसोईघर के पास लकड़ियों के ढेर पर निराशा से सिर झुकाये सैनिक बैठ गया, और फूट-फूटकर रोने लगा।

"अरे बुद्धू कहीं का हुआ क्या?" स्त्री ने अचरज में भरकर पूछा। "छिः, सैनिक भी कभी रोते हैं, क्या?"

सैनिक ने धीमे स्वर में कहा:

"मैं तो और लड़ाकू सैनिक था।"

यह कहना ही था कि उसका तो तमाशा बन गया। आध घंटा बीतते न बीतते जिसे देखिये वही जहाज में उसपर हंस रहा था। एक-एक करके लोग उसके एकदम नजदीक आते, उसके चेहरे पर आंखें गाढ़ देते और पूछते:

"क्या यही है?"

इसके बाद बहुत ही भोंडे और भद्दे ढंग से खिलखिलाकर वे उसकी हंसी उड़ाते, और हंसते-हंसते दोहरे हो जाते।

शुरू में सैनिक का ध्यान न तो उनकी ओर गया और न ही उनके खिलखिलाने और हंसने की ओर। वह केवल उसी जगह बैठा हुआ अपनी फटी पुरानी सूती कमीज की आस्तीन से अपने आंसुओं को इस तरह पोंछता रहा मानो उन्हें अपनी आस्तीन से छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। लेकिन शीघ्र ही उसकी लाल-भूरी आंखें गुस्से से दमकने लगीं और व्यात्का निवासियों के चुहचुहाते लहजे में उसकी जबान कतरनी सी चल पड़ी:

"इस तरह दीदे फाड़कर मुझे क्यों घूर रहे हो? तुम्हारी बोटी-बोटी नुचे, मुओ!.."

उसकी इस बात ने लोगों को और भी गुदगुदा दिया। वे आते और उसकी पसलियों में अपनी उंगलियां गड़ाते, उसकी कमीज और उसका एप्रन पकड़कर खींचते मानो बकरे के साथ खेल रहे हों। इस तरह भोजन का समय होने तक वे उसे पूरी बेरहमी से चिढ़ाते रहे। भोजन के बाद किसी ने लकड़ी के चमचे के हत्थे में निचुड़ा नींबू गड़ाकर उसे उसके एप्रन की डोरियों से पीठ पीछे बांध दिया। सैनिक जब इधर-उधर

हिलता-डुलता तो चमचा भी उसके साथ-साथ झकोले खाता और लोग उसे देख-देखकर हंसी के मारे दोहरे हो जाते। चूहेदानी में बंद चूहे की भांति वह छटपटाता और भुनभुनाता – उसकी समझ में न आता कि आखिर ये लोग इतना हंस क्यों रहे हैं।

बिना कुछ बोले, बड़ी गम्भीरता से, स्मूरी ने उसे देखा और उसका चेहरा किसी स्त्री के चेहरे की भांति कोमल हो उठा।

मुझे भी सैनिक पर तरस आया। मैंने स्मूरी से पूछा:

"कहो तो चमचे के बारे में उसे बता दूं?"

स्मूरी ने सिर हिलाकर अनुमति दे दी।

जब मैंने सैनिक को यह बताया कि वह क्या चीज़ है जिसपर सब लोग हंस रहे हैं तो उसका हाथ झपटकर चमचे पर पहुंचा, उसकी डोरी को उसने तोड़ डाला, फिर चमचे को फ़र्श पर पटक उसे पांव तले रौंदा और अपने दोनों हाथों से मेरे बाल पकड़कर मुझे खींचना शुरू कर दिया। फिर क्या था, हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गये और अन्य सब लोग तुरंत घेरा सा बनाकर बड़ी खुशी से हमारा तमाशा देखने लगे।

स्मूरी ने सब को इधर-उधर कर हमें एक-दूसरे से छुड़ा दिया। पहले उसने मेरे कान गरम किये, फिर सैनिक को कान से पकड़ लिया। अपना कान छुड़ाने के लिए जब ट्इयां से उसके बदन ने ऐंठना और बल खाना शुरू किया तो लोग उसे देख-देखकर उछल पड़े और उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। तालियों और सीटियों की आवाज़ से लोगों ने आसमान सिर पर उठा लिया और हंसी के मारे दोहरे हो गये।

"वाह रे मेरे शेर! देखता क्या है, मार सिर बावर्ची की तोंद में!"

लोगों के झुंड के इस जंगलीपन को देखकर मेरे मन में हुआ कि एक लट्ठा उठाकर इन सब के सिर चकनाचूर कर दूं।

स्मूरी ने सैनिक को छोड़ दिया और जंगली सूअर की भांति उसने अब लोगों की ओर रुख किया। उसके हाथ उसकी कमर के पीछे थे, उसके दांत चमक रहे थे और मूंछों के बाल फरफरा रहे थे।

"दफ़ा हो जाओ – अपनी-अपनी जगह! आदमख़ोर कहीं के..."

सैनिक एक बार फिर मेरी तरफ़ झपटा, लेकिन स्मूरी ने उसे एक हाथ से उठा लिया और इसी प्रकार उठाए-उठाए उसे पानी के नल तक ले गया। फिर पानी निकालते हुए उसने सैनिक का सिर नल के नीचे कर

दिया और उसके टट्टया मे बदन को पानी की धार के नीचे इस तरह उलट-पलटकर घुमाने लगा मानो वह चिथड़ों की गुडिया हो।

कुछ मल्लाह, उनका मुखिया और कप्तान का सहायक, लपककर बाहर निकल आये और एक बार फिर भीड़ जमा हो गई। भीड मे बारमन का सिर अन्य सबसे ऊंचा दिखाई दे रहा था, वह सदा की भांति चुप था, मानो बोलना जानता ही न हो।

सैनिक रसोईघर के पास लकडी के ढेर पर बैठ गया और कांपते हाथो से अपने जूते उतारने लगा। उसने उन चिथड़ो को निचोडा जो उसके पावो मे लिपटे थे। लेकिन वे सूखे थे जबकि बेतरतीबी से बिखरे हुए उसके बालो से पानी टपटप गिर रहा था। यह देख लोगों ने फिर हसना शुरू कर दिया।

"कुछ भी हो," सैनिक ने जोर लगाकर पतली आवाज मे कहा, "छोकरे को मै जीता न छोडूंगा।"

स्मूरी मेरा कंधा थामे था। उसने कप्तान के सहायक से कुछ कहा। मल्लाहो ने लोगों को तितर-बितर कर दिया। जब सब चले गये तो स्मूरी ने सैनिक से पूछा:

"बोलो, तुम्हारा अब क्या किया जाये?"

सैनिक कुछ नहीं बोला। जानवरो सी आंखो से बस मेरी ओर देखता भर रहा। उसका समूचा शरीर अजीब ढंग से बल खा रहा था।

"अटेंन्शन, बातों के शेर!" स्मूरी ने कहा।

"ठेंगा ले ले। यहां कोई फ़ौज-वौज नहो है।" सैनिक ने जवाब दिया।

बावर्ची अचकचा गया। उसके फूले हुए गाल पिचक गये, उसने थूका और मुझे अपने साथ घसीटता हुआ ले चला। मुझे भी जैसे काठ मार गया। बार-बार मुड़कर मै सैनिक की ओर देखता। स्मूरी बुदबुदाया

"बडा ढीठ है। ऐसे आदमी के मुंह कौन लगे?.."

तभी सेर्गेई लपककर हमारे पास आया और न जाने क्यो फुसफुसाकर बोला:

"वह तो अपना गला काटने पर उतारू है!"

"क्या?" स्मूरी के मुंह से निकला और वह तेजी से उल्टे पांव मुड़ चला।

हाथ मे बडा सा चाकू लिए जो मुर्गियो की गरदन हलाल करने तथा इंधन के लिए छिपटिया चीरने के काम आता था, सनिक उस केबिन के दरवाजे पर खड़ा था जिसमे वेटर रहते थे। चाकू कुंठित था, उसमे आरी जैसे दांते बन गये थे। केबिन के सामने लोग फिर जमा हो गये थे, और बालों से पानी चूते इस टुइंया से आदमी को देख रहे थे जो उनके लिए एक अच्छा-खासा तमाशा बन गया था। ऊपर को उठी नाक वाला उसका चेहरा जैली की भांति कांप रहा था, उसका मुंह जैसे खुले का खुला रह गया था, उसके होंठो में बल पड़ रहे थे और वह बार-बार बुदबुदा रहा था :

"जालिम ... ह-त्या-रे ..."

मै उछलकर किसी चीज पर खड़ा हो गया और उचककर लोगो के चेहरो को देखने लगा। खिलखिलाकर वे हंस रहे थे, और एक-दूसरे को कोहनियाते हुए कह रहे थे :

"अरे देखो, उसे देखो..."

अपने बच्चों जैसे दुबले-पतले हाथ से जब उसने पतलून के भीतर अपनी कमीज खोंसनी शुरू की तो मेरे पास ही खड़े हुए एक अच्छे-खासे डीलडौल वाले आदमी ने उसांस भरते हुए कहा :

"ठीक है। गरदन चाहे साफ हो जाये पर पतलून नही खिसकनी चाहिए..."

लोग और भी जोरों से हंसने लगे। सभी समझते थे कि यह मरदूद जान नहीं दे सकता। मेरा भी ऐसा ही खयाल था। लेकिन स्मूरी ने, उछलती सी नजर से देखने के बाद, लोगों को अपने पेट से धकियाते और इधर-उधर करते हुए उन्हे डांटना शुरू किया :

"हट जा यहां से, बेवकूफ कहीं का!"

समूह को एक व्यक्ति की भांति "बेवकूफ कहीं का" कहने की उसे आदत थी। चाहे कितने ही लोग क्यों न जमा हो, वह उनके पास जाता और उन सबको एकवचन में कहता :

"दफ़ा हो जा, बेवकूफ़ कही का!"

उसे ऐसा करते देख हंसी छूटती, लेकिन यह भी सच था कि आज, सुबह से ही, मानो सभी लोगों ने एक बहुत बड़े "बेवकूफ" का रूप धारण कर लिया था।

लोगों को तितर वितर करने के बाद वह सैनिक के पास गया और अपना हाथ फैलाते हुए बोला

"इधर दे चाकू..."

"सब बराबर है..." सैनिक ने कहा और चाकू की धार स्मूरी की ओर कर दी। स्मूरी ने चाकू मुझे थमा दिया और सैनिक को केबिन में धकेला.

"लेटकर सो जाओ! आखिर तुम्हे यह क्या सूझा?"

सैनिक सोने के तख्ते पर चुपचाप बैठ गया।

"यह तुम्हारे लिए कुछ खाना और थोड़ी सी वोद्का ले आयेगा। वोद्का पीते हो?"

"थोड़ी सी पी लेता हूं.."

"और देखो इसे हाथ न लगाना। तुम्हारी हंसी उड़ानेवालो में यह नहीं था। मैं कहता हू यह नही था..."

सैनिक ने धीमे स्वर मे पूछा:

"ये क्यो मेरी जान के पीछे पड़े है?"

कुछ क्षण तक स्मूरी चुप रहा। अन्त मे बोला:

"मुझे क्या मालूम?"

मेरे साथ रसोईघर की ओर जाते हुए स्मूरी बुदबुदाया:

"ऊंह, मरे को मारे शाह मदार! देखा तुमने? भाई मेरे, लोगो का वश चले तो तुम्हारी जान ही निकाल ले... बस, खटमलो की भांति चिपक जाते है, और बस, छोड़ने का नाम नही... खटमल तो क्या, उनसे भी बुरे..."

सैनिक के लिए जब मै कुछ रोटी, मांस और वोद्का लेकर उसके पास पहुंचा तो वह तख्ते पर बैठा स्त्रियो की भांति सिसक-सिसककर रो रहा था और उसका बदन आगे-पीछे हिल रहा था। रकाबी मेज पर रखते हुए मैंने कहा:

"यह लो, खाओ..."

"दरवाजा बंद कर दो।"

"अंधेरा हो जायेगा।"

"बंद कर दो, कहीं वे फिर न आ जाये..."

मै बाहर निकल आया। सैनिक मुझे अटपटा लगा। उसके प्रति मेरे

हृदय मे सहानुभूति या दया का कोई भाव पैदा नही हुआ। और मै वचन हो उठा—नानी ने सदा मुझे सीख दी थी:

"लोगो पर तरस खाना चाहिए, सभी अभागे है, मुसीबतों के मारे..."

"खाना दे आये?" वापस लौटने पर बावर्ची ने पूछा। "अब उसका क्या हाल है?"

"रो रहा है।"

"निरा पाजामा है... यह भी कोई सैनिक है क्या?"

"मुझे तो उसपर जरा भी तरस नहीं आया।"

"क्या? क्या कहा तुमने?"

"लोगों के साथ दया का बरताव करना चाहिए..."

स्मूरी ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने निकट खींच लिया।

"किसी पर जबर्दस्ती दया कैसे दिखाओगे, और झूठ बोलना तो और भी बुरा है। समझे?" उसने रोबीले स्वर में कहा। "इस तरह मोम बनने से काम नही चलेगा, अपने काम मे मस्त रहा करो..."

उसने मुझे अपने से दूर धकेल दिया। फिर उदास स्वर मे बोला:

"नहीं, यह जगह तुम्हारे लिए नही। तुम्हे कही और होना चाहिए। तुम यहां बेकार आ फंसे। लो, सिगरेट पी लो..."

यात्रियों के बरताव ने मेरे हृदय मे गहरी उथल-पुथल मचा दी। जिस बुरे ढंग से उन्होंने सैनिक को चिढाया और स्मूरी के उसका कान पकड़कर उठाने पर जिस कुत्सित ढंग से खिलखिलाकर वे हंसे, वह सब मुझे अकथनीय रूप से अपमानजनक तथा अवसादक लगा। इस घृणित और दयनीय स्थिति मे भी कोई हंसने की बात थी? उसमें उन्हे ऐसा क्या दिखाई दिया जो वे हंसी की अपनी इस बाढ़ को रोक नहीं सके?"

पहले की भांति वे अब फिर डेक पर सायबान के नीचे बैठे या लेटे हुए थे। उनके जबड़े चल रहे थे, वे पी और चबा रहे थे, ताश खेल रहे थे, शान्त और सुघड़ ढंग से बातें कर रहे थे, और नदी का नज़ारा देख रहे थे। उन्हें देखकर कोई सोच भी नहीं सकता था कि यही वे लोग थे जो एक घंटा पहले एकदम बेलगाम होकर उछल-उछलकर सीटियां बजा रहे थे। सदा की भांति वे अब फिर निश्चल और काहिल हो गए थे। मच्छरो या सूरज की रोशनी में चक्कर लगाते धूल के कणो की भांति

सुबह से साझ तक वे जहाज में [illegible] करते, इधर से उधर गोल-गर्दिश से घूमते। यह देखो, दसेक लोग उतरने के तख्ते के पास धक्का-मुक्की करते सलीब का चिन्ह बनाते जहाज से घाट पर उतर रहे हैं और घाट से उन्हीं जैसे लोग सीधे उसपर चढ़े आ रहे हैं, वे भी उन्हीं जैसे कपड़े पहने हैं और उन्हीं की भांति पोटले-पोटलियों के बोझ से झुके हैं

लोगों की इस निरन्तर आवा-जाही से जहाज के जीवन में कोई अन्तर न पड़ता। नये यात्री भी उन्हीं चीजों के बारे में बातें करते जिनके बारे में दूसरे कर चुके थे: जमीन और काम के बारे में, खुदा और स्त्रियों के बारे में। यहां तक कि उनके शब्दों के प्रयोग में भी कोई भिन्नता न होती:

"भगवान का हुक्म है कि इन्सान सब कुछ सहता जाये, सो सहता जा, बंदे। और कर ही क्या सकता है, आदमी की किस्मत ही ऐसी है"

इस तरह की बातों से मुझे बड़ी ऊब मालूम होती, मन झुंझलाने लगता। गंदगी से मेरा बैर था। न ही मैं यह सहन करना चाहता था कि मेरे साथ कोई दुखदायी, बेरहमी और गैर इन्साफ़ी का बरताव करे। मुझे पक्का विश्वास था, मैं महसूस करता था कि मैं इस तरह के बरताव के योग्य नहीं हूं। सैनिक न ही ऐसे बरताव के योग्य था। शायद वह खुद अटपटा दीखना चाहता था...

मक्सिम जैसे गम्भीर और दयालु आदमी को तो उन्होंने जहाज से निकाल दिया जब कि कुत्सित सेर्गेई की नौकरी पर कोई आंच नहीं आई। ये सारी बातें ठीक नहीं हैं। और क्यों ये लोग जो किसी को भी सहज ही इस हद तक सता सकते हैं कि वह पागल हो जाये, मल्लाहों के भोंडे से भोंडे आदेशों को दुम दबाकर मानते हैं और उनकी गंदी से गंदी गालियों और डांट-डपट को गले के नीचे योंही उतार लेते हैं?

"ऐ, बाड़े पर जमघट न लगाओ!" सुन्दर लेकिन क्रोध भरी आंखों को सिकोड़ते हुए मल्लाहों का मुखिया चिल्लाता। "जहाज सारा इधर झुक गया है! हट जाओ यहां से, शैतान के पिल्लो!"

शैतान के पिल्ले भाग के डेक के दूसरे बाजू पहुंच गये, और वहां से फिर उन्हें भेड़ों के रेवड़ की भांति खदेड़ा जाता:

"जाओ, मुओ..."

उमस भरी रातों में दिन के तपे हुए टीन के सायबान तले टिकना दूभर हो जाता। यात्री तिलचट्टों की भांति डेक पर बिखर जाते और जहां

भी जी करता पड रहते। हर घाट पर मल्लाह ठोकर और घसे मारकर उन्हे जगाते।

"ऐ, रास्ता छोड़ो! भागो अपनी-अपनी जगहो पर!.."

वे चौककर उठ बैठते और उनीदी आंखो से चाहे जिस दिशा मे चल देते।

मल्लाहों और यात्रियो में केवल इतना ही अन्तर था कि दोनो की वेशभूषा भिन्न थी। फिर भी वे यात्रियों को पुलिस वालों की भांति डांटते-फटकारते और इधर से उधर खदेड़ते।

लोगो के बारे में सब से मुख्य बात यह है कि वे संकोची, दब्बू और सिर पर जो आ पड़े उसे उदास भाव से सहन करनेवाले होते है और वे उस समय बहुत ही अजीब तथा भयानक मालूम होते है जब हुक्मबरदारी का उनका बांध एकाएक टूट जाता है और बर्बर उच्छृंखलता की एक ऐसी बाढ़ में वे डूबने-उतरने लगते है जो क्रूर, अर्थहीन और प्रायः उदासी भरी होती है। मुझे ऐसा मालूम होता मानो इन लोगों को यह भी पता नहीं है कि उन्हे कहां ले जाया जा रहा है और इस बात का भी उनके लिए कोई विशेष महत्व नहीं है कि जहाज उन्हें कहां उतारता है। जहां कही भी जहाज उन्हे उतारेगा, तट पर वे थोड़ी देर ही रहेगे और फिर इस या किसी दूसरे जहाज पर सवार हो जायेगे और वह उन्हे अन्य किसी जगह ले जायेगा। वे सब के सब कुछ भटके हुए से, घर-द्वारहीन थे, सारी पृथ्वी उनके लिए पराई थी और वे सभी पागलपन की हद तक बुजदिल थे।

एक दिन, आधी रात बीते मशीन मे किसी चीज के टूटने का बडे जोर से धमाका हुआ मानो किसी ने तोप दागी हो। देखते-देखते समूचा डेक भाप के सफेद बादल से घिर गया जो इंजन-घर से निकल रही थी और सभी दरारो में दिखाई दे रही थी। कोई अदृश्य कानफोड़ आवाज मे जोर से चिल्ला रहा था:

"गाव्रीलो! लाल सीसा, नमदा लाओ!"

मै इंजन-घर की बगल मे उसी मेज पर सोता था जहां मै तश्तरियां साफ करता था। धमाके की आवाज और मेज के हिलने से जब मेरी आंख खुली तब डेक पर सन्नाटा छाया था, मशीन भाप से सनसना रही थी और हथौड़ियां तेजी से खटा-खट कर रही थीं। लेकिन अगले ही क्षण डेक पर

यात्रियों ने अचानक चीख-पुकार ने आसमान सिर पर उठा लिया और लक्षण बड़ा भयानक सा लगने लगा।

धुंध की सफेद चादर को बींधकर, जो अब तेजी से झीनी पड़ती जा रही थी, बिखरे हुए बालों वाली स्त्रियां और मछलियों जैसी गोल आंखों वाले पुरुष घबराहट में इधर-उधर भाग रहे थे, एक-दूसरे को धक्का देकर गिरा रहे थे। सब के सब अपने पोटले-पोटलियों, थैलों और सूटकेसों से जूझ रहे थे, ठोकरें खा रहे थे और भगवान तथा सन्त निकोलाई से फ़रियाद कर रहे थे तथा एक-दूसरे को मार रहे थे। दृश्य भयानक था, और साथ ही दिलचस्प भी। लोगों की हरकतों को देखने और यह जानने के लिए कि वे क्या करते हैं, मैं भी उनके साथ-साथ चकरघिन्नी बना हुआ था।

जहाज पर रात में फैली बेचैनी का यह मेरा पहला अनुभव था और फौरन ही ऐसा लगने लगा कि यह सारा बवंडर गलती से हुआ है। जहाज उसी तेजी से चल रहा था। दाहिने तट पर, बहुत ही नजदीक, घसियारों के अलाव जल रहे थे। उजली रात थी। पूनो का ऊंचा भरा-पूरा चांद चांदनी बरसा रहा था।

लेकिन डेक पर लोगों की घबराहट बढ़ती जा रही थी। पहले दर्जे के यात्री भी निकल आये। कोई छलांग मारकर पानी में कूद गया। कुछ औरों ने भी उसका साथ दिया। दो किसान और एक पुरोहित ने लपककर लकड़ी के कुन्दे उठाये और उनसे डेक पर पेचों से कसी बेंचों में से एक उखाड़ डाली। दबूसे से मुर्गियों से भरा बड़ा सा पिंजरा पानी में फेंका गया। डेक के बीचोबीच, कप्तान के मंच की सीढ़ियों के पास एक किसान घुटनों के बल खड़ा होकर सामने से भागते हुए लोगों के सम्मुख झुक-झुककर भेड़िये की तरह चीख रहा था:

"ओ खुदा के सच्चे बन्दो, मैं पापी हूं!.."

एक मोटा साहब जो नंगे बदन, केवल पतलून पहने ही बाहर निकल आया था, छाती कूट-कूटकर चिल्ला रहा था:

"डोंगी, शैतान के बच्चो, डोंगी!"

मल्लाह भीड़ में झपटकर कभी एक की गरदन नापते, कभी किसी दूसरे के सिर पर घूंसा लगाते और ठोकरें मारकर उन्हें एक ओर पटक देते। स्मूरी भी रात के कपड़ों पर कोट डाले भारी धमक के साथ यहां

से कहा जा रहा था और गरजती हुई आवाज़ से हरेक को डांट रहा था :

"कुछ तो शर्म करो! अपने दिमाग का इतना दिवाला न निकालो! देखते नहीं, जहाज रुक गया है, रुका हुआ है। दो हाथ पर ही नदी का किनारा है। और वह देखो, उधर दो डोंगियां दिखाई दे रही हैं, आदमियों से लदीं। ये वही बेवकूफ़ हैं जो पानी में कूद पड़े थे। घसियारों ने सभी को बाहर निकाल लिया है!"

जहां तक तीसरे दर्जे के यात्रियों का संबंध है, उनको खोपड़ियों पर वह ऊपर से नीचे यों घूंसा मारता था कि वे डेक पर बोरों की भांति ढह जाते थे।

हंगामा अभी शान्त होने भी न पाया था कि लकदक कपड़े पहने एक स्त्री चम्मच हिलाते हुए झपटकर स्मूरी के पास पहुंची और उसके मुंह के सामने चम्मच हिलाते हुए चिल्लाकर बोली :

"यह क्या बदतमीज़ी है?"

भीगे हुए साहब ने उसे रोकते हुए और अपनी मूंछों को चूसते हुए झुंझलाकर कहा :

"छोड़ो इस मूसल-चंद को..."

स्मूरी ने अपने कंधे बिचकाये और घबराकर आंखें मिचमिचाते हुए मुझसे पूछा :

"यह बात क्या है भला? क्यों मेरे सिर पड़ी है यह? मैं तो इसे पहली बार देख रहा हूं!.."

एक किसान जो नाक से बहते हुए ख़ून को सुड़कने का प्रयत्न कर रहा था, चिल्लाया :

"लोग क्या हैं, पूरे डाकू हैं — डाकू!.."

पूरी गर्मियों में दो बार जहाज पर ऐसी भगदड़ मची थी और दोनों ही बार सचमुच के किसी ख़तरे ने नहीं, बल्कि ख़तरे के डर ने लोगों को बौखला दिया था। तीसरी बार यात्रियों ने दो चोरों को पकड़ा — उनमें से एक तीर्थयात्री के भेष में था और मल्लाहों से छिपकर यात्रियों ने पूरे एक घंटे तक उनकी ख़ूब मरम्मत की। अन्त में मल्लाहों ने उनके चंगुल से चोरों को छुड़ाया तो लोग उन पर भी झपटे। चिल्लाकर बोले :

"चोर चोर मौसेरे भाई!"

"तुम खुद चोर हो, और इसीलिए उन्हे भी छूट देते हो..."

चोरो को इस हद तक पीटा गया था कि वे बेहोश हो गए थे। और जब अगले घाट पर उन्हें पुलिस के हवाले किया गया, वे अपने पांव पर खडे भी नही हो सकते थे...

एक के बाद एक इस तरह की अनेक घटनाएं घटी, इस हद तक हृदय को कोचनेवाली कि दिमाग भन्ना जाता और समझ मे न आता कि लोग सचमुच मे नेक है या दुष्ट, दब्बू है या जानमार? आखिर क्या चीज़ है वह जो उन्हे इतनी क्रूरता और हवस की हद तक दुष्ट और इसी के साथ-साथ शर्मनाक हद तक दब्बू तथा दीन-हीन बनाती है?

स्मूरी से जब कभी मै इस बारे में पूछता तो वह सिगरेट से इतना धुआं छोड़ता कि उसका सारा मुंह ढक जाता और झुंझलाकर जवाब देता:

"आखिर तुमसे मतलब? लोग जैसे होते हैं, वैसे होते हैं... कोई चतुर होता है, और कोई एकदम बुद्धू। उनकी चिन्ता छोड़, और पुस्तको में मन लगा। उनमें तुझे सभी सवालों के जवाब मिल जायेंगे, अगर वे ठीक ढंग की हुईं..."

धार्मिक पुस्तके और सन्तो की जीवनियां उसे पसंद नहीं थी। उनका जिक्र आने पर कहता:

"वे तो पादरियो के लिए है, या फिर पादरियों के छोकरों के लिए..."

उसे खुश करने के लिए मैने एक पुस्तक भेंट करने का निश्चय किया। कजान पहुंचने पर मैने जहाज-घाट पर पांच कोपेक मे एक पुस्तक खरीदी: "किस्सा उस सिपाही का, जिसने जान बचायी प्योत्र महान की"। लेकिन उस समय वह नशे मे चूर था और गुस्से मे था और मुझे यह साहस नहीं हुआ कि मै उसे अपनी भेंट दूं, सो पहले खुद यह पुस्तक मैने पढ़ डाली। मुझे वह बेहद पसंद आई। हर बात थोडे में, बहुत ही साफ़-सुथरे, सीधे-सादे और इतने दिलचस्प ढंग से कही गई थी कि मै मुग्ध हो गया। मुझे पक्का विश्वास था कि वह भी उसे खूब पसंद करेगा।

लेकिन जब मैने उसे पुस्तक दी, तो हुआ यह कि उसने, चुपचाप, पुस्तक को हथेलियों के बीच दबोचकर उसकी गेंद सी बनायी और उसे पानी में फेंक दिया।

वह गई तेरी पुस्तक मूर्ख कहीं का उसने झल्लाकर कहा मैं तुझे शिकारी कुत्तों की तरह साध रहा हूं और तू जंगली चिड़िया ही खाना चाहता है!"

फ़र्श पर उसने अपना पांव पटका और मुझपर चिल्लाया:

"यह क्या किताब है? मैं सारी बकवास पढ़ चुका हूं। इसमें क्या लिखा है—सच लिखा है? कहो!"

"मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन मैं जानता हूं। अगर आदमी का सिर काट दिया जाये तो वह सीढ़ी से नीचे लुढ़क आयेगा और दूसरे लोग सूखी घास के अम्बार पर नहीं चढ़ेंगे—सैनिक इतने बेवकूफ़ नहीं होते! वे सूखी घास के अम्बार में आग लगा देते जिससे सारा झंझट ही मिट जाता! समझे?"

"हां।"

"देखा, यह बात है! और तुम्हारा वह प्योत्र जार—मैं जानता हूं कि उसके साथ कभी उस तरह की कोई घटना नहीं घटी। बस, अब दफ़ा हो जा यहां से!.."

मुझे लगा कि बावर्ची की बात सही है, लेकिन पुस्तक के साथ मेरा मन फिर भी उलझा रहा। मैंने उसे दुबारा खरीदा और एक बार फिर पढ़ा और इस बार यह जानकर खुद मुझे भी अचरज हुआ कि पुस्तक सचमुच में दो कौड़ी की थी। मुझे अपने ऊपर बड़ी शर्म आयी, और स्मूरी को मैं और भी ज्यादा आदर तथा भरोसे की नजर से देखने लगा और वह खुद, कारण चाहे जो भी हो, बहुधा मुझसे झुंझलाहट के साथ कहता:

"अह, तुम्हें तो लिखना-पढ़ना चाहिए। यह जगह तुम्हारे लिए ठीक नहीं..."

मैं भी कुछ ऐसा ही अनुभव करता कि यह जगह मेरे लिए नहीं है। सेर्गेई मेरे साथ बेहद बुरा बरताव करता। मेरी मेज पर से वह चाय के बर्तन उड़ा लेता और इस तरह यात्रियों से मिलनेवाले पैसे को बारमैन को सौंपने के बजाय अपने पास रख लेता। मैं जानता था कि इस तरह की कमाई को चोरी कहा जाता है। स्मूरी भी एक से अधिक बार मुझे चेता चुका था:

"ज़रा चौकस रहना। ऐसा न हो कि बेटर तुम्हारी मेज से चाय के बर्तनों का सफाया कर दे!"

इसी तरह की मेरे लिए और भी कितनी ही बुरी बातें थीं। अकसर मन में होता कि अगले ही घाट पर जहाज़ छोड़कर जंगलों की राह लूं। लेकिन स्मूरी की वजह से ऐसा न कर पाता। उसकी घनिष्ठता बराबर बढ़ती जा रही थी। इसके अलावा जहाज की निरन्तर गति का भी कुछ कम आकर्षण नहीं था। घाटों पर जब भी जहाज रुकता, मुझे बड़ा बुरा मालूम होता और किसी ऐसी घटना या चमत्कार की मैं प्रतीक्षा करता जिसकी बदौलत, पलक झपकते, कामा नदी से बेलाया और उससे भी खूब आगे व्यात्का या वोल्गा नदी की मैं सैर करूं, और नये तटों, नये नगरों तथा नये लोगों को देखने का मुझे अवसर मिले।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरे जहाजी जीवन का एकाएक और शर्मनाक ढंग से अन्त हो गया। एक सांझ, उस समय जब कि हम कज़ान से नीज़्नी की ओर यात्रा कर रहे थे, बारमैन ने मुझे अपने पास बुलाया। जब मैं उसके सामने हाजिर हुआ तो उसने दरवाजा बन्द कर दिया और क़ालीन चढ़े एक स्टूल पर उदास मुद्रा में बैठे स्मूरी से उसने कहा:

"लो, आ गया।"

"क्या तुम सेर्गेई को चम्मच और दूसरी चीजें देते हो?" स्मूरी ने रूखी आवाज़ में पूछा।

"मेरी आंख बचाकर इन चीजों को वह खुद अपने आप उठा लेता है।"

"देखता नहीं, पर पता है इसे।" बारमैन ने धीमे से कहा।

स्मूरी का मुट्ठी-बंधा हाथ धम से घुटने पर गिरा और फिर वह उसे सहलाने लगा।

"जरा ठहरो। ऐसी कोई जल्दी नहीं है," उसने कहा और रुककर किसी सोच में पड़ गया।

मैंने बारमैन की ओर देखा और उसने मेरी ओर, लेकिन मुझे ऐसा लगा मानो उसके चश्मे के पीछे आंखें हैं ही नहीं।

वह निःशब्द जीवन बिताता था, चलते समय जरा भी आवाज़ नहीं करता था और धीमे स्वरों में बोलता था। कभी-कभी उसकी रंग-उड़ी

दाढ़ी और खोखली आख किसी कोने मे झलकतीं और फिर तुरत विलीन हो जाती. सोने से पहले एक लम्ब अस तक घुटनो के बल वह देव-प्रतिमा के सामने बैठा रहता जिसके सामने, दिन हो चाहे रात, चौबीसो घंटे, एक दीया जलता था। दरवाजे मे बने पान के इक्के से छेद में से मैं उसे देखता था, लेकिन उसे प्रार्थना करते मै कभी देख नहीं पाया—घुटनों के बल बैठा हुआ वह केवल देव-प्रतिमा और दीये की ओर एकटक देखता, उसांस लेता और अपनी दाढ़ी सहलाता रहता था।

थोड़ी देर रुककर स्मूरी ने फिर पूछा:

"क्या सेर्गेई ने तुझे कभी पैसे दिये?"

"नहीं।"

"कभी भी नही?"

"नही, कभी भी नही।"

"यह झूठ नहीं बोलेगा," स्मूरी ने बारमैन से कहा।

"इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता," बारमैन ने धीमे स्वर मे जवाब दिया।

"चल अब!" मेरी मेज के पास आते और सिर पर हल्के से चपत जड़ते हुए स्मूरी ने चिल्लाकर कहा: "चुग़द! और चुग़द तो मै भी हूं जो तेरे बारे में चौकस नहीं रहा..."

नीज्नी में बारमैन ने मेरा हिसाब चुकता कर दिया। मुझे करीब आठ रूबल मिले। यह पहला मौका था जब मुझे अपनी कमाई की इतनी बड़ी रकम मिली थी।

विदा के समय स्मूरी उदास स्वर में बोला:

"आगे अपनी आंखें खुली रखियो, समझा? यह नहीं कि मुंह बाये मक्खियां पकड़ रहे है..."

कांच के रंग-बिरंगे मोती जड़ा तम्बाकू रखने का एक चमकदार बटुवा उसने मेरे हाथ में थमा दिया।

"यह ले, यह बहुत बढ़िया चीज है! मेरी मुंह-बोली बेटी ने यह मेरे लिए बनाया था... अच्छा अब जा! पुस्तके पढ़ना, उनसे बड़ा साथी तुम्हे और कोई नही मिलेगा!"

उसने मुझे बांहो के नीचे से पकड़ा, हवा मे उठाकर मेरा मुंह चूमा और फिर संभालकर मजबूती से मुझे घाट पर खड़ा कर दिया। मुझे

अपने पर भी दुःख हुआ, और उसपर भी। और जब वह, एकदम एकाकी, अपने भारी-भरकम, हिंडोले से झूलते शरीर को लिए घाट-मजदूरों को धकियाता हुआ जहाज की ओर लौट चला तो मैं बड़ी मुश्किल से अपने आंसुओं को रोक पाया...

उस जैसे न जाने कितने लोग,—इतने ही भले, इतने ही अकेले और जीवन से इतने ही छिटके हुए,—आगे भी मेरे जीवन में आये..

७

नानी और नाना अब फिर नगर में आ बसे थे। इस बार जब मैं उनके पास पहुंचा तो मेरा मन गुस्से से उमड-घुमड़ रहा था और हर किसी से लड़ने को जी चाहता था। मेरा हृदय भारी बोझ से दबा जा रहा था—आखिर क्यों और किस बिते पर मुझे चोर ठहराया गया था?

नानी ने मुझे बड़े प्यार से अपनाया, और तुरत समोवार गरम करने चली गई। नाना अपनी आदत के अनुसार चिंगारियां छोड़ने से न चूके:

"क्यों, कितना सोना बटोर लाया?"

खिड़की के पास बैठते हुए मैंने कहा:

"जो भी बटोरा, सब मेरी मिल्कियत है।"

बड़ी गंभीरता के साथ मैंने जेब में हाथ डाला, और सिगरेट का पैकेट निकालकर रोब के साथ धुआं उड़ाने लगा।

"ओहो," मेरी प्रत्येक हरकत का मुआयना करते हुए नाना ने कहा, "यह बातें है! यह शैतान की बूटी भी पीने लगा? बड़ी जल्दी लगी थी?"

"मुझे तो भेंट में तम्बाकू का बटुवा भी मिला है!" मैंने शेखी बघारी।

"तम्बाकू का बटुवा!" नाना चीख उठे। "तू क्या मुझे चिढ़ा रहा है?"

वह मेरी ओर झपटे। उनके पतले, मजबूत हाथ आगे बढ़े हुए थे और हरी आंखे चिंगारियां छोड़ रही थीं। मैंने उछलकर उनके पेट में सिर से टक्कर मारी। बूढ़ा वहीं फ़र्श पर बैठ गया और सन्नाटे से पूर्ण उन भारी क्षणों में, अंधेरी खोह की भांति हक्का-बक्का सा अपना मुंह बाये,

अचरज में आंखें मिचमिचाकर मेरी ओर देखता रह गया फिर शान्त भाव के साथ पूछा :

"तूने मुझे, अपने नाना को धकेला... मुझे... अपनी मां के सगे बाप को?"

"मेरी चमड़ी उधेड़ने में तुम्ही कौन कसर छोड़ते थे," यह समझकर कि सचमुच मुझसे एक घिनौनी हरकत हो गयी है मैं बुदबुदाया।

नाना, अपना सूखा हल्का-फुलका बदन लिए उठ खड़े हुए और मेरी बगल में आकर बैठ गए। मेरे हाथ से उन्होंने तपाक से सिगरेट छीन ली और उसे खिड़की से बाहर फेंक भय से कांपती आवाज में बोले :

"तू भी निरा काठ का उल्लू है! इस तरह की हरकत के लिए भगवान तुझे ताजिन्दगी माफ नहीं करेंगे!" फिर वह नानी की ओर मुड़े :

"देखा री अम्मा, और किसीने भी नहीं इसने मुझे मारा, हां, इसीने मुझे मारा! यक़ीन न हो तो खुद पूछ देखो!"

पूछना-ताछना तो दूर, नानी सीधी मेरे पास आई और बाल पकड़कर मुझे झंझोड़ने लगी।

"इसकी यही सजा है," नानी ने कहा और बालों को झटका सा देते हुए दोहराया, "यही सजा है..."

नानी की इस सजा ने, और खास तौर से नाना की घृणापूर्ण हंसी ने, मेरे शरीर को चोट तो नहीं पहुंचाई, लेकिन मेरे हृदय को बुरी तरह घायल कर दिया। नाना कुर्सी पर बैठे उचक रहे थे और घुटनों पर हाथ मारते हुए हंसते-हंसते कौए की तरह कां-कां कर रहे थे :

"ठीक, बहुत ठीक..."

नानी के चंगुल से अपने को छुड़ाकर मैं ड्योढ़ी में भागा, और वहां एक कोने में पड़ा रहा खिन्न और सूना-सूना सा। कानों में समोवार में पानी के खलबलाने की आवाज आ रही थी।

नानी आई और मेरे ऊपर झुकते हुए इतने धीमे स्वर में फुसफुसाकर बोली कि उसके शब्द बड़ी मुश्किल से सुनाई देते थे :

"बुरा न मानना, मैं तुम्हें सचमुच की सजा थोड़े ही दे रही थी। इसके सिवा मैं और करती भी क्या? तुम्हारे नाना तो बूढ़े आदमी है, और उनका तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। उन्होंने क्या कम किस्मत की मार खाई है? सारी हड्डियां टूटी हुई है, और उनका हृदय दुःखों से लबालब भरा

है। उन्हें और चोट पहुंचाना क्या अच्छी बात है? तुम अब नन्हे-मुन्ने तो हो नहीं, खुद सारी बातें समझ सकते हो... और तुम्हें समझना चाहिए, अल्योशा, नाना भी इस बच्चों की हालत में है."

नानी के शब्दों ने मरहम का काम किया। ऐसा मालूम हुआ मानो सुहानी बयार का झोंका हृदय को सहलाता हुआ निकल गया हो। नानी के शब्दों की प्यार भरी सरसराहट से मेरा हृदय हल्का हो गया। सारी दुखन जाती रही, लाज का मैंने अनुभव किया और मैं कसकर नानी से लिपट गया। नानी ने मुझे, और मैंने नानी को चूम लिया।

"जाओ, नाना के पास जाओ। डरो नहीं, सब ठीक हो जाएगा। केवल नाना के सामने एकाएक सिगरेट निकालकर अब फिर न पीने लगना। अभी वह तुम्हे सिगरेट पीता देखने के आदी नहीं है। इसके लिए कुछ तो समय चाहिए न?.."

जब मैंने कमरे में पांव रखा और नाना पर नजर डाली तो मेरे लिए हंसी रोकना मुश्किल हो गया। इस समय वह, सचमुच, बच्चों की भांति प्रसन्न थे। चेहरा खिला हुआ था, पांव पटक रहे थे और लम्बे-लम्बे बालों वाले अपने पंजों से मेज पर धमाधम तबला सा बजा रहे थे।

"बोल मरखने बकरे की औलाद, फिर आ गया,—टक्कर मारने का शौक क्या अभी भी पूरा नहीं हुआ? डाकू कहीं का! आखिर है तो अपने बाप का ही बेटा! मुंह उठाया और सीधे घर में चले आए, न सलीब का चिन्ह बनाया, न किसी से दुआ-सलाम की, और एक टुकड़ची सिगरेट मुंह मे दबाकर धुआं उड़ाना शुरू कर दिया! वाह रे, टकियल नेपोलियन!"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उनके शब्द चुक गए और वह थककर चुप हो गये। लेकिन चाय के समय उन्होंने फिर मुझे लैक्चर पिलाना शुरू किया:

"बिना लगाम के घोड़ा और बिना भगवान के डर का आदमी, दोनों एक से हैं। भगवान के सिवा और कौन हमारा मीत हो सकता है? इन्सान का सब से बड़ा दुश्मन है इन्सान!"

नाना के केवल इन शब्दों की सचाई ने तो मेरे हृदय को छुआ कि इन्सान ही इन्सान का दुश्मन है। इसके अलावा नाना ने जो कुछ कहा, उसका मेरे हृदय पर कोई असर नहीं हुआ।

देख अभी तू अपनी मौसी माव्योना के यहां लौट जा, और वहीं काम कर। इसके बाद चाहे तो बसन्त मे फिर किसी जहाज में नौकरी कर लेना। लेकिन जाड़ो भर तू उन्हीं के यहां रहियो, और उन्हें यह न बताइयो कि वसन्त में तू गोल हो जायेगा..."

"लेकिन यह तो धोखा देना होगा," नानी ने कहा जो अभी कुछ देर पहले सजा के नाम पर मुझे झूठमूठ हिला-झंझोड़कर खुद नाना को धोखा दे चुकी थी।

"धोखा दिये बिना जीया ही नही जा सकता," नाना अपनी बात पर जोर दे रहे थे, "जरा बता तो, धोखे के बिना कौन रहता है?"

उसी सांझ जब नाना धर्मग्रथ का पाठ करने बैठे तो मै और नानी फाटक से बाहर निकल आए और खेतों की ओर चल दिए। छोटा सा दो खिड़कियों वाला यह घर जिसमें नाना अब रहते थे, नगर के एकदम छोर पर, उस कनात्नाया गली के पिछवाड़े मे था, जहां किसी जमाने में उनका निजी मकान था।

"देखो न, घूम-फिरकर हम भी अब कहां आ बसे है!" नानी ने हंसते हुए कहा। "तुम्हारे नाना को कहीं शांति नहीं मिलती, सो वह बराबर घर बदलते रहते है। मुझे तो यह घर अच्छा लगता है, लेकिन नाना को यहां भी चैन नहीं है!"

हमारे सामने दो-ढाई मील लम्बा-चौड़ा, सूखे नालों से कटा-फटा मैदान फैला था। उसके अन्त में कज़ान जाने वाली सड़क थी जिसके किनारे भोज-वृक्ष खड़े थे। सूखे नालों मे से झाड़ियो की नंगी-बूची टहनियां निकली हुई थीं, सांझ के सूरज की ठंडी पड़ती हुई लाली में वे खून का दाग लगे हण्टरों की भांति मालूम होती थीं। हल्की हवा के झोके झाड़ियो को सरसरा रहे थे। पास वाले नाले के उस पार युवक-युवतियो के जोड़े टहल रहे थे और उनकी छाया-आकृतियां भी, झाड़ियों की भांति, हवा मे हिल रही थीं। दूर दाहिने छोर पर पुरातन पंथियो के कब्रिस्तान की लाल दीवार थी। यह कब्रिस्तान "बुग्रोव्स्की स्कीत" कहलाता था। बाईं ओर नाले के ऊपर जहां वृक्षों का एक काला सा झुरमुट दिखाई देता था, यहूदियो का कब्रिस्तान था। हर चीज पर नहूसत सी छाई थी, हर चीज मानो क्षत-विक्षत धरती से चुपचाप चिपटी हुई थी। शहर के छोर पर खड़े छोटे-छोटे घरो की खिड़कियां मानो सहमी हुई नजरों से धूल-अटी सड़क को

ओर ताकती रहती जिसपर भूख की मारी मुर्गियां गश्त लगाती थीं। देविच्ची मठ के पास से रंभाती हुई गायों का एक रेवड़ गुजर रहा था और पास की छावनी से फ़ौजी संगीत की आवाज आ रही थी—बैंड बज रहे थे।

कोई शराबी, पूरी बेरहमी से एकार्डियन बजाते हुए, लड़खड़ाते डगों से जा रहा था और ठोकरें खाते हुए बुदबुदा रहा था:

"तुझे खोज ही लूंगा कहीं न कहीं..."

सूरज की लाल रोशनी में आंखें मिचमिचाते हुए नानी बोली, "किसे खोज लेगा, बेवकूफ़! यहीं कहीं लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा, दीन-दुनिया का कुछ होश नहीं रहेगा और कोई ऐसा सफाया करेगा, तेरा यह एकार्डियन तक गायब हो जायेगा जिसे तू अपने हृदय से सटाये है..."

मैं चारों ओर देखता जाता था और नानी को अपने जहाजी जीवन के बारे में बताता भी जाता था। उस जीवन में जो कुछ मैं देख चुका था उसके बाद मुझे अपना मौजूदा वातावरण बहुत ही बोझिल मालूम दे रहा था और मैं उदास था। नानी मेरी बातों को बड़े चाव और ध्यान से सुन रही थी, वैसे ही जैसे कि मैं नानी की बातें सुनना पसन्द करता था और जब मैंने स्मूरी का जिक्र किया तो नानी ने अभिभूत होकर सलीब का चिन्ह बनाया और बोली:

"भला आदमी था, मां मरियम उसका भला करे। और देख, उसे कभी न भूलना! अपने दिमाग के कोठे में अच्छी चीजों को कसकर बन्द रखना और बुरी चीजों को,—बस, आंखें मूंदकर ठुकरा देना..."

जहाज से निकाले जाने की बात को नानी के सामने खोलकर रखना मुझे बेहद कठिन मालूम हुआ। लेकिन मैंने दांत भींचकर अपना जी कड़ा किया और जैसे भी बना, नानी को सब बता दिया। नानी के हृदय पर उसका जरा भी असर नहीं हुआ। सारी घटना सुनने के बाद उपेक्षा से इतना ही कहा:

"तुम अभी छोटे हो। जीना नहीं जानते..."

"सब एक-दूसरे से यही कहते हैं कि तुम जीना नहीं जानते," मैंने कहा, "किसानों को मैंने ऐसा कहते सुना है, जहाजी लोग भी ऐसा ही कहते थे, और मौसी मात्र्योना भी अपने बेटे के सामने यही राग अलापती थीं। आखिर जीना सीखने का क्या मतलब है?"

नानी ने अपने होंठ भींच लिए और सिर हिलाते हुए जवाब दिया
यह तो मैं नहीं जानती

"नहीं जानती तो फिर इस बात को बार-बार दोहराती क्यों हो?"

"दोहराऊं क्यों नहीं?" नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया। "लेकिन तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम अभी छोटे हो, इतनी कम उम्र में भला जीवन के रंग-ढंग तुम कैसे जान सकते हो? सच तो यह है कि जीवन को जानने का दावा कोई भी नहीं कर सकता, केवल चोरों को छोड़कर। अपने नाना ही को देखो — पढ़े-लिखे और काफ़ी चतुर हैं, लेकिन सब एकदम बेकार, कोई चीज़ अब साथ नहीं देती..."

"और तुम — तुम्हारा अपना जीवन कैसा रहा?"

"मेरा? अच्छा ही जीवन बिताया मैंने। और बुरा भी। हर तरह का..."

हमारे पास से लोग धीरे-धीरे गुज़र रहे थे, उनकी लम्बी परछाइयां उनके पीछे घिसट रही थीं और पांवों से उड़ी धूल धुएं की भांति उठकर परछाइयों पर छा जाती थी। सांझ की उदासी और भी बोझिल हो चली थी और खिड़की में से नाना के भुनभुनाने की आवाज़ आ रही थी:

"ओ भगवान, अपने गुस्से का पहाड़ मेरे सीने पर न तोड़! मुझे इतनी तो सज़ा न दे कि मैं बरदाश्त ही न कर सकूं..."

नानी मुसकराई।

"भगवान भी इसका रोना-झींकना सुनते-सुनते तंग आ गया होगा," उसने कहा। "हर सांझ इसी तरह हूकें भरते हैं, पर किस लिए? बूढ़ा तो हो गया है, जीवन में कोई भी साध बाक़ी नहीं रही, फिर भी मिमियाना और रोना-झींकना नहीं छूटता! हर सांझ इसकी आवाज़ सुनकर भगवान मुस्कराता होगा कि यह लो, वासीली काशीरिन फिर भुनभुना रहा है ... चलो अब, सोने का वक़्त हो आया..."

मैंने निश्चय किया कि अब गानेवाली चिड़ियों को पकड़ने का धंधा शुरू किया जाये। मुझे लगा कि इससे अच्छे पैसे मिल जायेंगे। मैं चिड़ियों को पकड़कर लाऊंगा और नानी उन्हें बाज़ार में बेच आया करेगी। सो मैंने एक जाल, एक फन्दा, लासे का कुछ सामान खरीद लिया और कुछ पिंजरे बना लिए। और लो सवेरा होते ही मैं सूखे नाले की झाड़ियों में

छिपकर बैठ गया और नानी एक बोरा और टोकरी लिए आस पास के जंगल में जाकर खुमियां, बेरों और जंगली मशरूमों की खोज में निकल गयी।

सितम्बर महीने का थका हुआ सा सूरज अभी-अभी निकला था। उसकी पीली किरणें कभी तो बादलों में ही खो जातीं और कभी रुपहले पंख की भांति फैलकर उस जगह भी पहुंच जातीं जहां मैं छिपा हुआ था। नाले के तल पर अभी भी परछाइयां तैर रहीं थीं और एक सफेद कुहरा सा उठ रहा था। नाले की खड़ी ढाल एकदम काली, और नंगी-बूची थी, दूसरी अधिक ढलवां ढाल पर मुरझी हुई और लाल, पीली और कत्थई पत्तियों वाली झाड़ियां उगी थीं। हवा के झोंकों से पत्तियां उड़-उड़कर नाले में छितर रही थीं।

तल की कंटीली झाडियों में गोल्डफ़िंच पक्षी चहचहा रहे थे और झिनझिनी पत्तियों के बीच उनके छोटे-छोटे बांके सिरों पर गुलाबी मुकुट झिलमिला रहे थे। मेरे अगल-बगल और आगे-पीछे कुतूहली गंगरे पक्षी टिटिया रहे थे, अपने सफ़ेद गालों को अनोखे ढंग से फुलाए वे मेले-ठेले के दिन कुनाविनो की युवतियों की भांति दुनिया भर का शोर मचा रहे थे। चपल-चतुर और रसीले—हर चीज की ओर वे लपकते, उसे छूने-कुरेदने के लिए ललक उठते, और इस प्रकार एक के बाद एक फ़ंदे में फसते जाते। इसके बाद वे इतनी बुरी तरह छटपटाते कि उन्हें देखकर हृदय मसोस उठता। लेकिन व्यापारी का मेरा धंधा सख्ती का है और मैं उन्हें पास के पिंजरे में बंद करके एक बोरी में डाल देता, अंधेरे में वे शान्त हो जाते।

बन-संजली की झाड़ी को सूरज की किरणों ने रंग दिया था। सिसकिन पक्षियों का एक झुंड उसपर आकर बैठा। सूरज की सुहानी किरणों में पक्षियों की ख़ुशी का वारपार नहीं था, अपने उछलने-कूदने में वे स्कूली लडकों से मिलते-जुलते थे। लालची, चौकस और अपनी गांठ का पक्का श्राइक पक्षी—जिसने गर्म प्रदेशों की ओर प्रयाण करने में देरी लगायी थी—बन-गुलाब की झूमती हुई टहनी पर बैठा हुआ चोंच से अपने परों को संवार रहा था और काली आंखों से शिकार की खोज में इधर-उधर देख रहा था। सहसा लार्क पक्षी की भांति ऊपर उड़कर उसने एक भौंरे को पकड़ा, उसे बड़े ध्यान से एक कांटे में बींधा और फिर बैठकर

चोर की भांति चौकन्नी अपनी मटमैली गर्दन को इधर उधर घुमाने लगा। एक पाइन-फिंच पक्षी जिसे पाने के लालच भरे सपने मैं कब से देख रहा था — सन्न से उड़ता हुआ मेरे पास से निकला — कितना अच्छा हो अगर इसे पकड़ सकूं! लाल रंग का बुलफिंच पक्षी, जनरल की भांति गर्वीला, अपने झुंड से अलग होकर सुस्ताने के लिए एक आल्डर झाडी पर आ बैठा और अपनी काली चोंच को ऊपर-नीचे करते हुए रोब से चिचियाने लगा।

जैसे-जैसे सूरज आकाश में ऊंचा उठता, वैसे-वैसे पक्षियों की संख्या भी बढ़ती जाती, वे और भी खुशी से चहचहाने लगते। समूचा नाला उनके संगीत से भर जाता, हवा के झोकों में झाड़ियों की निरंतर सरसराहट इस संगीत की मुख्य धुन थी। पक्षियों की बांकी आवाजों का उभार इस मृदु, मधुर और उदास सरसराहट को दबा न पाता। मुझे उसमे ग्रीष्म विदा-गीत की ध्वनि का आभास मिलता, वह मेरे कान में अनोखे शब्द फुसफुसाती, जो अपने आप गीत का रूप धारण कर लेते और बीते हुए जीवन के दृश्य बरबस मेरे स्मृति-पट पर मूर्त हो उठते।

सहसा कहीं ऊंचे से नानी की आवाज सुनाई दी:

"तुम कहां हो?"

वह नाले के कगार पर बैठी थी। पास ही जमीन पर रूमाल बिछा था और पावरोटी, खीरे, शलजम और कुछ सेब रूमाल पर सजे थे। इन सब बरकतों के बीच कट-ग्लास की एक बहुत ही सुन्दर मीना रखी थी जिसका बिल्लौरी काग नेपोलियन के सिर की आकृति का था। मीना में वोद्का छलछला रही थी जिसमें, उसे और भी सुगंधित बनाने के लिए, सन्तजौन नामक घास मिली हुई थी।

नानी ने गद्गद हृदय से सन्तोष की सांस छोडी:

"कितना अच्छा है यह सब, मेरे भगवान!"

"मैंने एक गीत बनाया है!"

"क्या सचमुच?"

मैंने कुछ इस तरह की पंक्तियां सुनानी शुरू कीं:

शिशिर निकटतर आता जाता,
होता है यह भान,
विदा, विदा ओ सूर्य ग्रीष्म के,
बिदा तुम्हें दिनमान!..

नानी मुझे बीच में ही टोककर बोली.

"ऐसा एक गीत तो मुझे पहले से ही याद है और तुम्हारे इस गीत से अच्छा है।"

और नानी ने गुनगुनाते हुए गीत सुनाया :

हाय, चल दिया सूर्य ग्रीष्म का
काली रातों से मिलने को, दूर, जंगलों के उस पार।
हाय, रह गयी मैं युवती तो
सब वसन्त की खुशियों के बिन, खोकर अपना प्यार...

सुबह-सवेरे गांव-छोर पर जब जाती,
मई महीने की मौजों की सुधि आती,
खुला-खुला मैदान, नहीं मुझको भाता
यौवन यहां लुटाया, याद मुझे आता।

अरी, सुनो तो तुम, सखियो प्यारी मेरी!
यहां, बर्फ की पहली चादर जब पाओ,
तुम निकाल दिल मेरा गोरी छाती से
उसी बर्फ़ में दफनाओ!

गीत रचने की अपनी क्षमता पर मुझे जो गर्व था, उसे जरा भी चोट नहीं पहुंची। नानी का यह गीत मुझे बेहद अच्छा लगा और गीत की कुंवारी लड़की के लिए मेरा हृदय भी वेदना से भर गया।

"देखा, कसक का गीत किस तरह गाया जाता है," नानी ने कहा। "यह गीत किसी कुंवारी लड़की का रचा हुआ है। वसन्त में उसका साजन उसके साथ था। लेकिन जाड़ा आते-आते वह विदा हो गया, उसे अकेली छोड़ गया शायद किसी दूसरी के पास चला गया और उसके हृदय की वेदना आंसू बनकर बह निकली और इन आंसुओं से इस गीत का जन्म हुआ... जिसके हृदय में कभी टीस नहीं उठी, उसके गीतों में तड़प भी कहां से आयेगी? देखा, कितना अच्छा गीत बनाया है उस लड़की ने!"

पक्षियों के बेचने पर पहली बार जब चालीस कोपेक हाथ में आये तो नानी चकित रह गई :

"कमाल हो गया। मैं तो सोचती थी कि इससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। सोचा कि छोटे लड़के की जिद्द है, लेकिन देखो न, यह तो भारी मुनाफे की चीज निकली!"

"तुमने तो सस्ते में ही बेच दिया..."

"सच ?"

जिस दिन बाजार लगता, वह एक रूबल या इससे भी अधिक कमाकर लाती और अपने इस अचरज को पचा न पाती कि छोटी-मोटी चीजों से भी कितना अधिक धन मिल सकता है!

"और कोई स्त्री दिन भर कपड़े धोकर या किसी दूसरे के घर जाकर बरतन-भांडे साफ़ करके मुश्किल से पच्चीस कोपेक कमाती है। और तुम खेल ही खेल मे इतना कमा लेते हो। नहीं, इसमें कोई तुक नहीं है। यह गलत है। और पक्षियों को पकड-पकड़कर पिंजरे में बन्द करना भी गलत है। यह अच्छा धंधा नहीं है, अल्योशा! तुम इसे छोड दो!"

लेकिन पक्षियों को पकड़ने का मुझे भारी चसका लगा। इसमे मुझे आनन्द आता और पक्षियों को छोड़ अन्य किसी को इससे जरा सी भी परेशानी नहीं होती थी और मै किसी पर निर्भर नहीं था। अब मै बढिया साज-सामान से लैस था। पुराने बहेलियों से मिल-जुलकर मैंने बहुत कुछ सीख लिया था। अब मैंने अकेले ही बीस-पच्चीस मील दूर स्थित कस्तोव्स्की जंगल में धावे मारने शुरू किए: यहां वोल्गा के तट पर, देवदार के ऊंचे वृक्षों के बीच कासबिलों या एक खास जाति के लम्बी दुम और सफेद रंग वाले बेहद सुन्दर और दुर्लभ गंगरों को पकड़ सकता था जिनकी पक्षियों के प्रेमी भारी कद्र करते थे।

प्रायः मैं सांझ के समय रवाना होता और रात भर कजान वाली सड़क पर चलता रहता—कभी-कभी शरद् की वर्षा में कीचड़ भरे रास्ते पर। मेरी कमर पर मोमिया थैला लदा होता जिसमे फुसलाऊ पक्षी होते और हाथ में रहती एक मोटी लाठी। शरद् की अंधेरी रातें ठडी और डरावनी होतीं—बहुत ही डरावनी!.. सड़क के किनारे बिजली-मारे पुराने भोज-वृक्ष खड़े होते और वर्षा में भीगी उनकी टहनिया मेरे सिर के ऊपर थीं; बाईं ओर पहाड़ी की तलहटी में जिधर वोल्गा बहती थी आखिरी जहाजो और बजरो के मस्तूलों की रोशनिया चमक उठतीं और तैरते हुए निकल जातीं, मानो वे किसी अतल गहराई में समाते जा रहे हों। उनके भोंपुओ और चप्पुओं के पानी में छप-छप करने की आवाजें सुनाई देतीं।

कच्चे लोहे सी कड़ी भूमि पर सड़क के किनारे गांवों के घर अंधेरे

झे से उठ खड़े होते कटखने भूख कुत्ते मेरी टांगों की ओर झपटते और रात का चौकीदार अपने खटखटे बजाते हुए भय से चीख उठता :

"कौन है? किसकी बला आयी है!"

मुझे डर लगता कि कहीं मेरे फंदे आदि न छीन लिए जाएं और इस लिए, चौकीदारों का मुंह बन्द करने के लिए, पांच कोपेक के सिक्के मैं सदा अपनी जेब में रखता। फ़ोकिनो गांव के चौकीदार से तो मेरी दोस्ती भी हो गई। हर बार मुझे देखकर वह आश्चर्यचकित सा आह-आह करता :

"फिर चल दिया! वाह रे, मेरे निडर, रात के पंछी!"

उसका नाम था नीफ़ोन्त। कद का छोटा, सफ़ेद बालों वाला। वह कोई सन्त लगता था। अकसर वह अपनी कमीज में हाथ डालता और शलजम या सेब, या मुट्ठी भर मटर के दाने निकालकर मुझे देते हुए कहता :

"ले, दोस्त, तेरे लिए थोड़ी सी सोगात रख छोड़ी थी, खा ले, मुंह मीठा कर ले।"

और वह गाव के छोर तक मेरे साथ चलता।

"अच्छा जा, भगवान तेरा भला करे।"'

मैं पौ फटने के साथ जंगल में पहुंचता, अपने जाल फैलाता, झांसे के पक्षियों के साथ लासे लटकाता और जगल के किनारे लेटकर दिन निकलने की बाट जोहने लगता। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हर चीज़ शरद् की गहरी नींद में डूबी हुई थी। धुंध-लिपटी पहाड़ियों की तलहटी में दूर-दूर तक फैली चरागाहों की हल्की सी झलक दिखाई दे रही है जिन्हें काटती हुई वोल्गा बह रही है। नदी के पार चरागाहें कुहासे में घुल रही हैं। बहुत दूर, चरागाहों के उस पार जंगलों के पीछे से उज्ज्वल सूरज अलस भाव से निकलता है, पेड़ों के काले अयालों पर रोशनियां दमक उठती हैं और देखते-देखते एक अद्भुत और रोम-रोम में व्याप्त हो जानेवाली हरकत शुरू हो जाती है: सूरज की किरणों में चांदी सी चमकती धुंध की चादर अधिकाधिक तेज़ गति से चरागाहों के ऊपर उठती है। झाड़ियां, पेड़ और सूखी घास के गांज मानो धीरे-धीरे धरती से सिर उठाने लगते हैं। लगता है जैसे कि सूरज की गर्मी पाकर चरागाहें

पिघलन और सभी दिशाओं में अपनी सुनहरी पीत आभा लेकर बहने लगी हैं। नदी-तट पर पहुंचे सूरज ने अब उसके निश्चल जल का स्पर्श किया है और ऐसा लगता है मानो समूची नदी उसी एक स्थल की ओर उमड़ चली है जहां सूरज ने डुबकी ली है। सोने का थाल ऊंचा उठता जाता है और चारों ओर खुशी के लाल गुलाल की वर्षा होने लगी है। शीत से सिकुड़ी-सिमटी और कांपती धरती में जान पड़ी है, वह कसमसाई है और अपनी कृतज्ञतापूर्ण उसांसों से शरद् की सोंधी सुगंध फैलाने लगी है। पारदर्शी वायु से धरती विशाल दिख रही है, वायु ने उसके विस्तार को निस्सीम रूप से बढ़ा दिया है। हर चीज मानो दूर धरती के नीले छोरों को छूने के लिए ललक रही है और अन्य सब को भी अपने इसी रंग में रंगने के लिए अपना मायाजाल फैला रही है। सूरज निकलने का यह दृश्य, इसी जगह से, बीसियों बार मैंने देखा है, और हर बार एक नयी दुनिया मेरी आंखों के सामने उभर आती है जिसका सौंदर्य हर बार नया होता है...

सूरज से, न जाने क्यों, मुझे खास तौर से प्रेम है। मुझे उसका नाम, उसके नाम की मधुर ध्वनियां, उनमें छिपी हुई झंकार बहुत अच्छी लगती है। आंखें बन्द करके सूरज की गरम किरणों की ओर मुंह करना, बाड़े की दरार या पेड़ की टहनियों के बीच से तीर सी निकलती किरण को हथेली पर पकड़ लेना मुझे बहुत अच्छा लगता है। नाना "राजा मिखाईल चेर्नीगोव्स्की और बोयारिन फेओदोर जिन्होंने सूरज के आगे सिर नहीं झुकाये" की बड़ी इज्जत करते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि वे बड़े कुत्सित, जिप्सियों की भांति काले और मनहूस मोर्दोविया के ग़रीबों की भांति चपड़-चुंधी आंखों वाले रहे होंगे। जब चरागाहों के पीछे से सूरज ऊपर उठता है तो मैं बरबस मुस्करा उठता हूं।

मेरे सिर के ऊपर चीड़ का जंगल गूंजता है। वह अपने हरे पत्तों से ओस की बूंदें झाड़ता है। और नीचे, पेड़ों की छाया में, पर्णांग झाड़ियों की नक्काशीदार पत्तियों पर ओस की बूंदें सुबह के पाले से जम गई हैं, ऐसा मालूम होता है मानो किसीने रुपहले बेल-बूटे काढ़ दिये हों। कत्थई घास बारिश से कुचली हुई है, धरती की ओर झुके हुए डण्ठल निश्चल पड़े हैं। लेकिन सूरज की किरणों का स्पर्श पाकर उनमें भी हल्की सी

कुनमुनाहट दौड़ जाती है, मानो जीवित रहने के लिए वे आखिरी प्रयास कर रहे हों।

पंछी जाग गये है। गंगरों ने भूरे रंग की गुलगुली गेंदो की भांति, डाल-डाल पर फुदकना शुरू कर दिया है। अगिया क्रासबिल देवदार की फुनगियो पर अपनी टेढी चोंचो से देवदार के शंकु तोड़ रहे है। देवदार की पजानुमा टहनी के छोर पर सफेद नटहैच पक्षी अपने लंबे पख हिलाता झूल रहा है, मनके सी काली आंख मेरे जाल की ओर सन्देह भरी तिरछी नजर से देख रही है। बिल्कुल अनायास ही सुनाई देता है, कैसे समूचा जंगल जो एक क्षण पहले तक गंभीर सा गहरे चिंतन मे डूबा था, अब सैकड़ों पछियो की सुस्पष्ट आवाजों से गूंज उठा है, धरती के सबसे पवित्र जीवों के कोलाहल से भर गया है। इन्हीं के रूप पर इस धरती पर सौंदर्य के पिता मानव ने अपने मन के सुख के लिए परियों, केरुबीम और सेराफ़ीम फ़रिश्तों की कल्पना की है।

पंछियों को पकड़ना दुःखद था और उन्हे पिंजरो में कैद करना शर्मनाक। उन्हें स्वच्छंद देखने से मुझे अधिक आनन्द प्राप्त होता। लेकिन शिकारी की लगन और पैसा कमाने की इच्छा का पलड़ा भारी पड़ता और मेरी संवेदनशीलता को झुका देता।

पक्षियों की चतुराई देखकर मुझे हंसी आती। नीले गंगरे ने ध्यान जमाकर जाल का सविस्तार अध्ययन किया, उसमे छिपे खतरे को समझ गया और बगल की ओर से जाकर छड़ो के बीच से बिना किसी खतरे के अंदर रखे बीजों को निकाल लिया। गंगरे बड़े चतुर हैं, पर उनमे जरूरत से ज्यादा कौतूहल भरा है और यह बात उन्हें ले डूबती है। शानदार बुलफिंच बुद्धू होते है। गिरजे की ओर जा रहे बस्ती के मोटे-ताजे लोगों की भांति वे मेरे जाल मे झुंड के झुंड आ फसते है। जब मै उन्हे बन्द करता हूं तब वे चौंक उठते हैं, भारी अचरज के साथ अपनी आखों को टेरते और अपनी मोटी चोंचों से मेरी उंगलियों को नोंचते है। क्रासबिल बड़ी शान्ति और शान से जाल में फंस जाता है। निराला फिंच—अज्ञात, किसी भी अन्य पक्षी से भिन्न—चौड़ी दुम से टेक लगाकर और अपनी लम्बी चोंच को अलस भाव से इधर-उधर घुमाते हुए देर तक जाल के सामने बैठा रहता है। वह गंगरों के पीछे-पीछे पेड़ों के तनो पर कठफोड़वे की तरह भागता है। भूरे रंग का यह छोटा सा पक्षी, न जाने क्यों, मुझे

बड़ा मनहूस मालूम होता, —एकदम अकेला, जिसके पास कोई नहीं फटकता, न ही वह किसी के पास फटकता है। मुटरी की भांति वह भी छोटी-छोटी चमकीली चीजें चुराना और उन्हें छिपाना पसन्द करता है।

दोपहर तक मैं अपना काम समाप्त कर लेता और जंगलों तथा खेतो में से होकर घर लौटता। सड़क का रास्ता पकड़कर गांवों से होकर जाने पर गांव के लड़के मेरे पिजरो को छीन लेते और मेरे जाल को तोड़ डालते। मैं यह भोग चुका था।

घर पहुचते-पहुंचते सांझ हो जाती। बदन थककर चूर-चूर हो जाता और पेट में चूहे कूदने लगते। लेकिन मुझे लगता था कि दिन में मै और बड़ा तथा बलवान हो गया हूं, मैने कुछ नयी बात जान ली है। इस नयी शक्ति के सहारे मै नाना के ताने-तिशनो को ठंडे दिल से सुनता था। यह देखकर नाना गम्भीरतापूर्वक मतलब की बात कहने लगते:

"छोड़ दो यह बेमतलब का धंधा, छोड़ दो! चिड़ियां पकड़कर दुनिया में आज तक कोई आगे नहीं बढ़ा! अपने लिए कोई ठिकाना खोजो और दिमाग की समूची शक्ति से एक जगह जमकर काम करो। आदमी का जीवन इसलिए नही है कि उसे ओछी बातो मे नष्ट किया जाये। वह भगवान का बीज है और अच्छी फसल पैदा करना उसका काम है! आदमी सिक्के की भाति है। अगर उसे ठीक ढंग से काम में लाया जाये तो वह अपने साथ और सिक्कों को भी खींच लाता है। क्या तुम जीवन को आसान समझते हो? नहीं, वह एक कठोर चीज है, बहुत ही कठोर! दुनिया अंधेरी रात के समान है जिसमे हर व्यक्ति को खुद मशाल बनकर अपने लिए उजाला करना होता है।" भगवान ने हम सभी को समान रूप से दस उंगलियां दी हैं, लेकिन हर आदमी दूर-दूर तक अपने पंजों को फैलाना और सभी कुछ दबोच लेना चाहता है। अपनी ताकत दिखानी चाहिये, अगर ताकत नहीं है तो—चालाकी दिखाओ। जो बड़ा नहीं, बलवान नहीं—वो इधर भी नहीं, उधर भी नहीं। लोगों के साथ मेल-जोल रखना, लेकिन यह कभी न भूलना कि तू अकेला है। बात सबकी सुनना, लेकिन विश्वास किसी पर न करना। आंखों देखी बात भी झूठी हो सकती है। जबान मुंह में रखना—घर और शहर जबान से नहीं,

रुपये और हथौड़े से बनते हैं। तू न तो खानाबदोश बरकीर है न कल्मीक जिनकी सारी पूंजी है जुएं और भेड़ें!..."

रात घिर आती और उनकी बातों का यह सिलसिला फिर भी खत्म न होता। उनके शब्द मुझे जबानी याद थे। जब वह बोलते तो उनके शब्दों की ध्वनि तो मुझे अच्छी लगती, लेकिन उनके अर्थ के बारे में संदेह रहता। वह जो कुछ कहते, उसे सुनकर एक ही बात समझ में आती। वह यह कि दो ताकतें हैं जो जीवन को कठिन बना रही हैं: भगवान और लोग।

खिड़की के पास बैठकर, अपनी चपल उंगलियों से तकली को फिर्की भांति नचाते हुए, नानी बेल-बूटों के लिए सूत कातती। नाना के शब्दों को देर तक वह चुपचाप सुनती, फिर एकाएक कह उठती:

"जैसी मां मरियम की इच्छा होगी, वही होगा!"

"यह क्या?" नाना चिल्लाते, "मैं भगवान को भूला नहीं, मैं भगवान को जानता हूं। बेअक्ल बुढ़िया, भगवान ने जमीन पर मूर्ख जन्मे हैं, क्या?"

...मुझे लगता था कि धरती पर सबसे अच्छी तरह से सैनिक और कज्जाक रहते हैं, उनका जीवन सीधा-सादा और मौजी है। अच्छा मौसम होने पर सुबह-सुबह वे आकर हमारे घर के सामने खाई के उस पार वाले मैदान में इधर-उधर बिखर जाते और उनका मजेदार जटिल खेल शुरू हो जाता: मजबूत और चतुर, सफ़ेद कमीजें पहने, हाथों में राइफ़लें ताने वे फुर्ती के साथ मैदान में दौड़ते, खाई में छिप जाते, बिगुल की आवाज सुनते ही फिर दौड़कर बाहर निकल आते और "हुर्रा" की आवाजों तथा फ़ौजी ढोल को कंपा देनेवाली धमाधम के साथ, सीधे हमारे घर की ओर रुख किये, तेजी से बढ़ने लगते। उनकी संगीनें चमचमातीं, मानो अगले ही क्षण वे हमारे घर पर टूट पड़ेंगे और सब कुछ उलट-पुलटकर उसे मलबे का एक ढेर बना देंगे।

मैं भी जोरों से "हुर्रा" की आवाज करता और उनके पीछे-पीछे दौड़ता। फ़ौजी ढोलों की जानलेवा आवाज सुन मेरे मन में कुछ नष्ट करने, किसी बाड़े को खींचकर गिराने या लड़कों को पकड़कर पीटने के लिए उतावली पैदा होती।

अवकाश के क्षणों में वे मुझे अपना घटिया तम्बाकू माखोरका पिलाते और अपनी भारी राइफलों से खेलने देते। कभी कभी उनमें से कोई मेरे पेट में अपनी संगीन की नोक गड़ा देता और गुस्से में भौंहों को चढ़ाकर बनावटी आवाज में चिल्लाता :

"अभी बींध दूंगा तिलचट्टे को!"

संगीन धूप में चमचमा उठती और उसमें जिन्दा सांप की भांति बल पड़ने लगते, ऐसा मालूम होता कि बस, अभी वह मुझे डस लेगी। इससे भय लगता था लेकिन उल्लास भय से भी अधिक होता था।

मोर्दोविया निवासी एक लड़के ने जो ढोलची था, मुझे ढोल बजाने की मूंगरियां पकड़ना सिखाया। पहले वह मेरी कलाइयां पकड़कर हाथों को दर्द होने तक घुमाता, फिर ढीली पड़ी मेरी उंगलियों में मूंगरियां थमा देता।

"हां, अब बजा – इक-टू, इक-टू! धाम-धा-धा-धम! बजा – बाया – हल्का, दायां – दबाके, धाम-धा-धा-धम!" चिड़िया जैसी गोल आंखों से वह मुझे घूरता और फटे हुए गले से रेंकता।

कवायद समाप्त होने तक मैं भी सैनिकों के साथ-साथ दौड़ता, फिर उनके साथ समूचे नगर में मार्च करता हुआ उनकी बैरकों तक जाता, उनके जोरदार गाने सुनता और उनके दयालु चेहरों को एकटक देखता रहता जो मुझे, एक सिरे से, अभी-अभी टकसाल से निकले सिक्कों की भांति एकदम नये और उजले मालूम होते।

एकरूप आदमियों का यह ठोस समूह उल्लासपूर्वक सड़क पर संयुक्त शक्ति का रूप लेकर बहता था, अपने प्रति मित्रता का भाव पैदा करता था। मन उसमें डूबने, उसमें प्रवेश करने के लिए उतावला हो उठता – जैसे कि कोई नदी में डूब जाता है या जंगल में प्रवेश करता है। डर इन लोगों को छू तक नहीं गया था। साहस के साथ हर चीज का ये सामना करते थे, कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके लिए अजेय हो, जिसे वे चाहें और प्राप्त न कर सकें, और सब से बढ़कर यह कि वे नेक दिल और सीधे-सच्चे थे।

लेकिन एक दिन, अवकाश के क्षणों में एक युवा सूबेदार अफ़सर ने मुझे मोटी सी सिगरेट भेंट की।

"यह लो, सिगरेट पियो। यह एक बहुत ही बढ़िया किस्म की सिगरेट है। तुम्हारे सिवा अगर और कोई होता तो उसे कभी न देता। तुम इतने अच्छे हो, इसीलिए मैं तुम्हे यह सिगरेट दे रहा हूं।"

मैने सिगरेट सुलगाई। वह पीछे हट गया। एकाएक सिगरेट से लाल लपट निकली और मै चौंधिया गया—मेरी उंगलियां, नाक और भौहे झुलस गयीं। भूरे तेज़ाबी धुएं ने नाक में वह दम किया कि छींकते-खांसते हुलिया तंग हो गया। आंखों के चौंधिया जाने और घबराहट के मारे मै उसी एक जगह खड़ा हाथ-पांव नचा रहा था। सैनिक मेरे चारो ओर घेरा बनाए खड़े थे और खूब खिलखिलाकर हंस रहे थे। मैं घर की ओर चल दिया। पीछे से उनके हंसने, सीटियां बजाने और गड़रियो जैसा हंटर फटकारने की आवाज़ आ रही थी। मेरी उंगलियों मे जलन थी, चेहरे में कांटे से चुभ रहे थे और आंखो से आंसू बह रहे थे। लेकिन इस पीडा से भी अधिक जानलेवा, अधिक परेशान करनेवाली चीज दुख और अचरज का वह भाव था जो मेरे हृदय को मथ रहा था और जिसे मैं समझ नहीं पा रहा था। आखिर उन्होने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? इतने भले लोग भी इस तरह की चीज मे कैसे आनन्द ले सके?

घर पहुंचने के बाद मैं ऊपर अटारी पर चढ़ गया, और बहुत देर तक वहां बैठा हुआ समझ में न आनेवाली बर्बरता के उन सभी मौकों को याद करता रहा जिनसे मेरा वास्ता इतना अकसर पड़ रहा था। सारापूल का वह ठुइंयां सा सैनिक मेरी कल्पना मे मूर्त हो उठा। एकदम सजीव रूप मे, मेरी आंखों के सामने खड़ा वह मुझसे मानो पूछ रहा हो:

"क्यों, समझा?"

शीघ्र ही मुझे कुछ और भी ज्यादा क्रूर तथा हृदय को और भी ज्यादा आहत करनेवाला अनुभव हुआ।

मैने पेचेर्स्काया स्लोबोदा के निकट उन बैरकों में भी जाना शुरू कर दिया जिनमे कज्ज़ाक रहते थे। कज्ज़ाक और सैनिकों से भिन्न थे—केवल इसलिए नहीं कि वे उनसे अच्छे कपड़े पहनते थे और मंजे हुए घुड़सवार थे, बल्कि इसलिए कि उनके बोलने का ढंग भिन्न था, वे भिन्न गीत गाते थे, और कमाल का नाचते थे। सांझ को घोड़ों की मलाई-दलाई करने के बाद सब कज्ज़ाक अस्तबल के पास घेरा बनाकर जमा हो जाते। नाटे क़द का लाल सिर वाला एक कज्ज़ाक घेरे के बीच में निकल आता और

अपने लहरदार बालो को पीछे की ओर झटकाकर नफीरी जसी तेज आवाज मे गाने लगता धीमे धीमे तनकर वह शान्त दोन या नीली डन्यूब के बारे मे उदास गीत गाता। प्रातः-पक्षी की भांति वह अपनी आंखे बंद कर लेता जो अकसर उस समय तक गाता रहता है जब तक कि वह निष्प्राण होकर धरती पर नही गिर पड़ता। उसके सलूके का गला खुला रहता जिसमे से उसकी हंसुली तपे हुए तांबे की लगाम की भांति दिखाई देती। और उसका समूचा शरीर तांबे की ढली हुई प्रतिमा मालूम होता। पतली टांगों पर झूलता, मानो उसके तले जमीन डोल रही हो, हाथो को लहराता, बंद आंखे, गूंजती आवाज—वह मानो इन्सान न रहकर बिगुलवादक का बिगुल या गड़रिये की बांसुरी बन गया हो। कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि वह अभी पीठ के बल धरती पर गिर पड़ेगा और प्रातः-पक्षी की भांति ही निष्प्राण हो जायेगा, क्योंकि उसने अपना सारा हृदय, अपनी सारी शक्ति गीत में लगा दी थी।

उसके साथी उसके इर्द-गिर्द खड़े हैं, हाथो को अपनी जेबो में डाले या कमर के पीछे किये। उनकी आंखे, बिना पलक झपकाये, उसके ताम्र चेहरे और लहराते हुए हाथों पर टिकी है और गिरजे के सहगान की भांति वे शान्त और गम्भीर ढंग से गा रहे है। ऐसे क्षणो मे वे सब—दाढी वाले भी और बिना दाढ़ी के भी—समान रूप से देव-प्रतिमाओं की भांति मालूम होते—लोगों से उतने ही अलग, उतने ही भयोत्पादक। और गीत इतना ही अनन्त जितना कि अनन्त राजपथ होता है, उतना ही समतल, चौड़ा और युगो-युगो का अनुभव अपने में समेटे हुए। गीत के स्वर रोम-रोम मे समा जाते हैं। न दिन का ज्ञान रहता है, न रात का। न बुढापे की सुध रहती, न बचपन की। सभी कुछ भूल जाता है! गायको की आवाजें निस्तब्धता मे डूब जाती हैं तो घोड़ों की गहरी उसांसे सुनाई देती है जिन्हें स्तेपी के विस्तारों की याद सता रही है। और खेतों की ओर से शरद् रात्रि के अदम्य आगमन की पदचाप सुनाई देती है। भीतर से एक उबाल सा उठता है और भावनाओ का यह भरा-पूरा और असाधारण उभार, देश की धरती और उसपर बसनेवाले लोगों के प्रति मौन अनुराग की यह व्यापक भावना, मेरे हृदय में उमड़ती-घुमड़ती और बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगती है।

मुझे ऐसा मालूम होता था कि तपे तांबे सा नाटे कद का यह कज्जाक निरा मानव नहीं है, बरन् वह मानव से बड़ा और उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है—वह मानव जीवधारियों से अलग और उनसे ऊपर, लोककथाओं का जीव है। मुझसे उससे बात करते नहीं बनता। वह मुझे कुछ पूछता तो खुशी से मेरा चेहरा खिल उठता और मैं शर्माता हुआ चुप रहता। उसे देखने, उसका गाना सुनने के लिए, एक वफादार कुत्ते की भांति, मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलते रहने को तैयार था।

एक दिन मैंने उसे अस्तबल के कोने में खड़ा देखा। वह हाथ चेहरे के पास करके अपनी उंगली में चांदी की एक सादी अंगूठी को बड़े ध्यान से देख रहा था। उसके सुंदर होंठ हिल रहे थे, उसकी छोटी-छोटी लाल मूंछें बल खा रही थीं। उसके चेहरे पर उदास और चोट खाया हुआ सा भाव मंडरा रहा था।

इसके बाद, एक दिन अंधेरी सांझ के समय स्ताराया सेन्नाया चौक के शराबखाने में मैंने उसे देखा। शराबखाने का मालिक गानेवाली चिड़ियों का बेहद शौक़ीन था, और मुझसे अकसर चिड़ियां ख़रीदा करता था। इस समय भी कुछ पिंजरे लेकर मैं उसके पास गया था।

कज्जाक बार के निकट, अलावघर और दीवार के बीच, बैठा था। उसके साथ एक मोटी थलथल स्त्री थी जो आकार-प्रकार में करीब-क़रीब उससे दूनी थी। उसका गोल-मटोल लाल चिकना चेहरा चमक रहा था था और वह बड़े चाव और लगन से कज्जाक की ओर देख रही थी, जैसे मां अपने बच्चे की ओर देखती है, उसकी नजर में कुछ-कुछ चिंता झलक रही थी। वह नशे में धुत्त था और उसके पांव मेज के नीचे बराबर कुलबुला रहे थे। वह जरूर ही स्त्री को ठोकर मार रहा था क्योंकि वह चौंककर भौंहे सिकोड़ती और धीमे स्वर में उससे अनुरोध करती:

"यह क्या हरकत है?"

कज्जाक बड़ी मुश्किल से अपनी भौंहें उठाता लेकिन वे फिर शिथिल सी गिर जातीं। गर्मी के मारे बुरा हाल था। उसने अपने कोट और कमीज के बटन खोल डाले और उसकी गरदन नंगी हो गई। स्त्री ने रूमाल सिर से खिसकाकर अपने कंधों पर डाल लिया, फिर अपनी हृष्ट-पुष्ट सफेद बांहों को मेज पर रखा और दोनों हाथों को मिलाकर इतने जोर से भींचा

कि उंगलियों के पोरवे लाल पड़ गये। जितना ही अधिक मैं उन्हें देखता उतना ही अधिक वह कज्ज़ाक मुझे नेक मां के लड़के की भांति मालूम होता जिससे कोई कसूर हो गया है। औरत उसे प्यार और ताने के साथ कुछ कह रही थी और वह लज्जित सा चुप था—उसके जायज़ तानों के जवाब में उसके पास कहने को कुछ नहीं था।

सहसा वह खड़ा हो गया, मानो किसी बिच्छू ने उसे काट लिया हो। अपनी टोपी को उसने माथे पर खींचा और थपथपाकर उसे खूब जमा लिया। इसके बाद, कोट के बटन बन्द किये बिना ही, वह दरवाज़े की ओर बढ़ा। स्त्री भी उठ खड़ी हुई।

"हम अभी लौट आयेंगे, कुज्मिच," स्त्री ने शराबखाने के मालिक से कहा।

लोगों ने उन्हें हंसी और फब्तियों के साथ विदा किया। किसी ने सख्ती के साथ गहरी आवाज़ में कहा:

"लौटने दो मल्लाह को—वो ससुरी की खबर लेगा।"

मैं भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। वे अंधेरे में मुझसे कोई बीसेक क़दम आगे चल रहे थे। कीचड़ भरे चौक को पारकर वे सीधे वोल्गा के ऊंचे तट की ओर चल दिये। मैंने देखा कि कज्ज़ाक अपने लड़खड़ाते पांवों से चल नहीं पा रहा है, और उसे संभालने के प्रयत्न में खुद स्त्री भी डगमगा जाती है। उनके पांवों के नीचे कीचड़ के पिचरने की आवाज़ तक सुनाई दे रही थी। स्त्री, दबे स्वर में, उससे बार-बार मिन्नत सी करती हुई पूछ रही थी:

"यह आप किधर चल दिये? बोलिये न, किधर?"

मैं भी उनके पीछे-पीछे कीचड़ में चलने लगा, हालांकि मेरा रास्ता दूसरा था। जब वे ढाल की पटरी पर पहुंचे तो कज्ज़ाक रुक गया, एक कदम पीछे हटा और फिर एकाएक स्त्री के मुंह पर भरपूर हाथ से तमाचा मारा। स्त्री भय और अचरज से चीख़ उठी:

"ओह राम, यह किसलिए?"

मैं भी चौंक उठा, और लपककर उसके पास पहुंचा। लेकिन कज्ज़ाक ने झपटकर स्त्री को कमर से उठा लिया, रेलिंग के उस पार फेंक दिया, और खुद भी उसके पीछे-पीछे कूद गया और दोनों, काले ढेर की भांति

घास उसी ढाल पर से नीचे लुढकते चले गये। मुझे जैसे काठ मार गया, और बुत की तरह वहीं खडा हुआ तडप-तड़प की, कपड़ो के फटने और कज्जाक के हांफने और भरभराने की, आवाज़ सुनता रहा। स्त्री, नीचे स्वर मे, रह-रहकर बुदबुदा रही थी :

"मै चिल्ला पड़ूंगी... मै चिल्ला पड़ूंगी!"

उसने जोरो से दर्द भरी आह मारी और सब तरफ़ सन्नाटा सा छा गया। मैने एक पत्थर टटोला और उसे नीचे लुढका दिया—घास की सरसराहट सुनाई दी। चौक पर शराबखाने का कांच का दरवाज़ा झनझना रहा था, कराहने-खांसने की आवाज़ आई जैसे कोई गिर पडा हो और उसके बाद फिर सन्नाटा छा गया, जिसके गर्भ मे आतंक और डर छिपा हुआ था।

ढाल के नीचे बड़े आकार की कोई सफेद सी चीज दिखाई दी। लड़खड़ाती सी, सुबकती और भुनभुनाती, वह धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही थी। वह स्त्री थी। भेड़ की भांति, दोनो हाथों और पांवों के सहारे, वह चढ़ रही थी। मैंने देखा कि उसका बदन कमर तक नंगा है। उसकी बड़ी-बड़ी गोल छातियां सफ़ेद दमक रही थीं, और ऐसा मालूम होता था मानो उसके तीन चेहरे हों। आख़िर वह रेलिंग से आ लगी, और मेरे पास ही उसपर बैठ गई। वह गरमाये हुए घोड़े की भांति हांफ रही थी, और अपने उलझे-बिखरे बालों को सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी। उसके सफ़ेद बदन पर कीचड़ के काले निशान साफ़ दिखाई देते थे। वह रो रही थी, मुंह साफ करती बिल्ली की सी हरकतों से अपने आंसुओं को पोंछ रही थी।

"हाय राम, कौन है?" मुझपर नज़र पड़ते ही वह धीमे से चिल्लाई। "भाग यहां से—बेशर्म कहीं का!"

लेकिन मुझसे भागा नहीं जाता। गहरे दुःख और अचरज से मैं बुत सा बन गया हूं। मुझे नानी की बहन के शब्द याद आते हैं :

"लुगाई मे बड़ी ताक़त है, हौवा ने भगवान को भी धोखा दे दिया था..."

स्त्री उठकर खड़ी हो गई। कपड़ों के नाम पर जो कुछ बच रहा था, उससे उसने अपनी छातियों को ढंका, और ऐसा करने के प्रयत्न में अब उसकी टांगें उघरी रह गई। तेज़ डगो से वह चल दी। तभी ढाल पर कज्जाक चढ़ता दिखाई दिया। उसके हाथ में कुछ सफ़ेद कपड़े थे जिन्हे वह

हवा में हिला रहा था। धीमे से उसने सीटी बजाई, कान लगाकर सुना, फिर प्रसन्न आवाज में बोला :

"दार्या! क्यों? कज्जाक जो चाहता है उसे लेकर ही छोड़ता है... तूने समझा कि मुझे नशा चढ़ा है? लेकिन नहीं, ना-आ-आ, यह तो बस तुझे ऐसा लगा था... दार्या!"

उसके पांव जमीन पर मजबूती से जमे थे। उसकी आवाज में नशे का नहीं, व्यंग्य का पुट था। नीचे झुककर स्त्री के कपड़ों से उसने अपने जूतों का कीचड़ पोंछा, और फिर बोला :

"यह ले, अपना स्वैटर ले जा! ज्यादा बन मत..."

और फिर जोर से स्त्रियों के लिए शर्मनाक नाम लेकर उसे पुकारा।

मैं पत्थरों के ढेर पर बैठा उसकी आवाज सुनता रहा—रात की निस्तब्धता में इतनी अकेली और इतनी दबंग।

मेरी आंखों के सामने चौक की लालटेनों की रोशनियां नाच रही थीं। दाहिनी ओर काले पेड़ों के झुरमुट के बीच कुलीन वर्ग की लड़कियों के स्कूल की सफेद इमारत दिखाई दे रही थी। अलस भाव से गंदे शब्दों को अपने मुंह से उगलता और सफेद कपड़ों को हिलाता कज्जाक चौक की ओर बढ़ा और एक दुःस्वप्न की भांति ओझल हो गया।

ढाल के नीचे, पंप-घर की ओर से, भाप निकालने के पाइप की सनसनाती आवाज आ रही थी। ढाल पर से खड़खड़ करती बग्घी जा रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। मैं विक्षुब्ध सा ढाल के किनारे-किनारे चलने लगा। हाथ में एक ठंडा पत्थर था जिसे मैं कज्जाक पर फेंक न पाया। सन्त जार्ज विजेता के गिरजे के पास चौकीदार ने मुझे रोका और झुंझलाकर पूछने लगा कि मैं कौन हूं और मेरी पीठ पर लटके थैले में क्या है।

मैंने उसे कज्जाक का सारा क़िस्सा बताया। हंसते-हंसते वह दोहरा हो गया, चिल्लाते हुए बोला :

"क्या हाथ मारा है!!... कज्जाक, भाई मेरे, बड़े घुइयां होते हैं। हमारा तुम्हारा मुकाबला क्या! और वो औरत, कुतिया..."

वह फिर हंसते-हसते दोहरा हो गया और मैं आगे बढ़ चला। मेरी समझ में न आया कि हंसी की ऐसी क्या बात उसने देखी?

अगर वह स्त्री मेरी मां या मेरी नानी होती तो? मैं सोचता और मेरा हृदय भय से कांप उठता।

८

बर्फ़ गिरना शुरू होते ही नाना मुझे फिर नानी की बहिन के यहां ले गये। बोले:

"कोई बुराई नहीं इसमें तेरे लिए, कोई बुराई नहीं।"

मुझे लगता था कि बीती गर्मियों में मैंने बहुत दुनिया देख ली है, मैं बड़ा हो गया हूं, मुझे कुछ अक्ल आ गई है, और मालिकों के यहां इस बीच ऊब और भी गहरी हो गई है। वैसे ही उन्हें अपने पेटूपन के कारण बदहज़मी होती रहती है, वे बीमार पड़ते रहते हैं और एक-दूसरे को ब्यौरेवार अपनी बीमारी का हाल बताते हैं, बुढ़िया की भगवान को गुस्से से भरी, ज़हरीली प्रार्थनाएं जारी हैं। छोटी मालकिन बच्चा जनने के बाद कुछ दुबली हो गई है, आकार में थोड़ी कम हो गई फिर भी पहले जैसे ही, जब वह गर्भवती थी, धीरे-धीरे और रौब से चलती है। जब वह बच्चों के कपड़े सीती है तो हमेशा एक ही गीत गुनगुनाती रहती है:

वान्या, वान्या, वानिचका
नन्हा वान्या, प्यारा वान्या
अपनी अम्मां की गाड़ी खींचेगा
अपनी अम्मां का कहना मानेगा...

अगर मैं कमरे में आ जाता तो वह तुरंत गाना बंद कर देती:

"क्या चाहिए?"

मुझे यकीन था कि इसके सिवा वह अन्य कोई गीत नहीं जानती।

सांझ होते ही मालिक लोग मुझे भोजन के कमरे में तलब करते और कहते:

"हां तो, सुना, जहाज़ पर तेरे साथ और क्या-क्या बीती?"

पाखाने के दरवाज़े के पास कुर्सी पर मैं बैठ जाता और उन्हें सारी बातें बताता। इस अनचाहे और अनचेते जीवन के बीच उस जीवन की याद

करना मुझे अच्छा लगता उसका वर्णन करने में मैं इतना डूब जाता कि मुझे अपनी मालकिनों की उपस्थिति तक का ध्यान न रहता। लेकिन यह हालत अधिक देर तक न टिकती। दोनों औरतों ने कभी जहाज़ पर यात्रा नहीं की थी। वे सवाल करतीं :

"फिर भी तुझे डर तो जरूर लगा होगा?"

मेरी समझ में नहीं आया कि डरना किस बात का?

"अगर कहीं गहरे में जाकर जहाज़ पानी में समा जाता तो?.."

मालिक खिलखिलाकर हंसता और मैं, यह जानते हुए भी कि जहाज़ गहरे पानी में नहीं डूबते हैं, स्त्रियों के हृदय में यह बात नहीं बैठा पाता। बूढ़ी मालकिन को पक्का यक़ीन था कि जहाज पानी में तैरता नहीं, बल्कि उसके पहिये सड़क पर चलनेवाली गाड़ी के पहियों की भांति नदी की तह में चलते है।

"अगर जहाज लोहे का बना है तो वह तैर कैसे सकता है? कुल्हाड़ी तो तैरती नहीं, एकदम डूब जाती है..."

"लेकिन डोल नहीं डूबता?"

"डोल की ख़ूब कही। एक तो वह छोटा होता है, और दूसरे खोखला..."

स्मूरी का और उसकी पुस्तकों का जब मैंने उनसे जिक्र किया तो उन्होंने सन्देह की नजर से मुझे देखा। बूढ़ी मालकिन को यक़ीन था कि पुस्तकें धर्मभ्रष्ट और बेवकूफ लोग ही लिखते है।

"और भजन संहिता किसने लिखी? और राजा दाऊद?"

"भजन संहिता की बात छोड़–यह एक पवित्र पुस्तक है। यों दाऊद राजा ने भी अपनी भजन संहिता के लिए भगवान से माफ़ी मांगी थी!"

"यह कहां लिखा है?"

"यहां मेरे हाथ पर जिसका तमाचा पड़ते ही तुझे सब पता चल जायेगा!"

वह सदा हर बात जानती थी और बड़े विश्वास के साथ हर बात की नुक्ताचीनी करती थी जो कि हमेशा बेहूदा होती थी।

"पेचोर्का गली मे एक तातार मरा तो मुंह के रास्ते उसकी जान निकली कोलतार की तरह–एकदम काली!"

'जान का मतलब है आत्मा' मैं बोला लेकिन वह तिरस्कार भरे स्वर में चिल्लाई:

"तातार के आत्मा नहीं होती, बेवकूफ!"

छोटी मालकिन भी पुस्तकों को हौवा समझती।

"किताबें पढ़ना बहुत बुरा है, खास तौर से कच्ची उमर में," वह कहती। "हमारे मोहल्ले में—ग्रेबेशोक गली में अच्छे-भले घर की एक लड़की भी किताबें पढ़ती थी और बस पढ़ते-पढ़ते पादरी से इश्क करने लगी। पादरी की घरवाली ने उसकी वो बेइज्जती की—तौबा, तौबा! भरी गली में, सारे लोगों के सामने..."

कभी-कभी मैं उन शब्दों को दोहराता जो मैंने स्मूरी की पुस्तकों में पढ़े थे। इन पुस्तकों में से एक में मैंने पढ़ा था, "असल बात यह है कि बारूद का किसी एक व्यक्ति ने आविष्कार नहीं किया, वह उन छोटे-छोटे प्रयोगों और खोज-कार्यों का नतीजा था जिनका लम्बा सिलसिला बहुत पहले ही शुरू हो चुका था।"

न जाने क्यों, ये शब्द मेरी स्मृति में जमकर बैठ गए। खास तौर से शुरू का टुकड़ा 'असल बात यह है कि' मुझे बहुत पसंद आया और मुझे लगा कि बात करने का यह ढंग काफ़ी जोरदार है। इसका इस्तेमाल करने के कारण मुझे बहुत दुःख भोगना पड़ा, हास्यास्पद दुःख। ऐसा भी होता है।

एक बार मालिकों ने जब मुझसे अपने जहाजी जीवन की और कोई कहानी सुनाने के लिए कहा तो मेरे मुंह से निकला:

"असल बात यह है कि अब और कुछ कहने के लिए बाकी नहीं रहा..."

सुनकर वे अचकचा गये और लगे मेंढक की भांति टर्राने:

"यह क्या? क्या कहा तूने?"

फिर चारों खूब खिलखिलाकर हंसे, और उन्होंने बार-बार दोहराना शुरू किया:

"असल बात यह है—ओ मेरे भगवान!"

मालिक तक ने मुझसे कहा:

"यह तो तुझे बुरी ही सूझी, सनकी!"

और काफी दिनों तक, वे मुझे 'असल बात' कहकर पुकारते और चिढ़ाते रहे:

अरे असल बात जरा इधर आ बच्चे ने फ़र्श गंदा कर दिया है। असल बात, इसे झटपट साफ़ तो कर दे!"

उनका यह बेमतलब चिढ़ाना मुझे बड़ा अजीब लगता। बुरा मानने के बजाय मैं अचरज से उनकी ओर देखता।

जानलेवा उदासी की धुंध मुझपर छाई रहती। उससे छुटकारा पाने के लिए मैं जी तोड़ काम करता। काम की कोई कमी नहीं थी। घर में दो बच्चे थे, दोनों गोद के। कोई भी दाई या आया उनके यहां टिक नहीं पाती थी—रोजाना बदलती रहती थी। नतीजा इसका यह कि बच्चों की देखभाल भी ज्यादातर मेरे ही सिर पड़ती। रोज मैं उनके पोतड़े धोता और हफ़्ते में एक बार जन्दार्मी झरने पर जाकर कपड़े पछाड़ता। वहां धोबिनें मेरी हंसी उडातीं:

"यह तू क्या औरतों का काम कर रहा है?"*

कभी-कभी, चिढ़कर, गीले कपड़ों के कोड़ों से मैं उनकी खबर लेता। कोड़े का जवाब वे भी कोड़े से देतीं। बड़ा मजा आता और उनके साथ खूब जी लगता।

जन्दार्मी झरना गहरी खाई में बहता था। यह खाई ओका नदी की ओर निकलती थी और वहां नगर से एक मैदान अलग कर देती थी जिसका नाम प्राचीन स्लाव देवता के नाम पर—यारीलो—था। ईस्टर के बाद सातवें सप्ताह में बृहस्पति के दिन नगर निवासी इस मैदान में जमा होते और सेमिक उत्सव मनाते थे। नानी ने मुझे बताया था कि उसकी युवावस्था तक लोग यारीलो देवता को मानते थे और उसकी पूजा किया करते थे। वे एक पहिए पर कोलतार में डुबोया पटुआ लपेटते और आग लगाकर उसे पहाड़ी पर से लुढका देते थे। लोग खूब शोर मचाते और गीत गाते। अगर पहिया ओका नदी तक पहुंच जाता तो समझते कि यारीलो ने उनका पूजन स्वीकार कर लिया है, ग्रीष्म ऋतु इस बार बहुत बढ़िया होगी, और घर-घर वसन्त छा जायेगा।

अधिकांश धोबिनें यारीलो मैदान में रहती थीं। फुर्ती उन सब में कूट-कूटकर भरी थी और कतरनी की भांति उनकी जबान चलती थी। नगर के जीवन की एक-एक बात उन्हें मालूम थी और दुकानदारों, क्लर्कों

---

*रूस में कपड़े धोने का काम केवल स्त्रियां करती थीं।—सं०

और अफ़सरों के बारे में, जिनके यहां वे कपडे धोती थीं, उनकी कहानियां बहुत ही दिलचस्प होती थी। जाडों के दिनों मे जब झरने का पानी बर्फ की भांति ठंडा हो जाता तो कपडे पछाडना बडा जालिम काम मालूम होता। स्त्रियो के हाथ सुन्न हो जाते और खाल तडकने लगती। लकडी की नांद पर, जिसनें पानी बहकर आता था, झुके-झुके कमर अकड़ जाती। सिर पर लकडी की एक गिरी-पड़ी सी छत थी जो न तो हवा से उनकी रक्षा कर पाती थी, न हिमकणों की बौछारों से। उनके चेहरे लाल और पाला मारे हो जाते, दुःखती हुई उंगलियों के जोड काम करने से इनकार कर देते, आंखों से पानी बहता, लेकिन उनका चहकना फिर भी एक क्षण के लिए बंद न होता, वे बराबर बतियाती रहतीं. ताजी से ताजी घटनाओ के बारे में एक-दूसरे से चर्चा करतीं, और लोगों तथा दुनिया भर की चीजों का निबटारा करने में असाधारण साहस का परिचय देतीं।

बातें करने में नताल्या कोज्लोव्स्काया उनमे सबमे तेज थी। आयु तीस से कुछ ऊपर, ताजी और हृष्ट-पुष्ट, जबान खास तौर से तेज और लचकीली, और खिल्ली उडाती सी आंखें। जब वह बोलती तो सबके कान उसकी ओर लग जाते, जब कोई बात सिर पर आ पड़ती तो सब उससे सलाह लेतीं और काम में दक्ष होने के कारण सब उसकी इज्जत करतीं। इसके अलावा उसकी इज्जत करने के कारणों में यह भी था कि वह बहुत ही साफ-सुथरे और सुघड़ ढंग से कपड़े पहनती थी, और यह कि वह अपनी लड़की को पढने के लिए स्कूल में भेजती थी। दो औदा भर गीले कपड़ों के बोझ से झुकी, पथ की रपटन से बचती, जब वह आती तो सबके चेहरे खिल जाते और वे हमदर्दी के साथ पूछतीं:

"तुम्हारी लड़की तो मजे में है न?"

"हां, अच्छी तरह है। पढ़ रही है। भला करे भगवान!"

"मेम बनेगी, हैं?"

"इसीलिए तो स्कूल मे भर्ती कराया है। साहबों की लाली, कहां से आ ली? सब हम मूर्ख गरीबों मे से ही तो, और कहां से? सारी बात विद्या की है, जितनी ज्यादा विद्या, उतने लंबे हाथ, उतना ज्यादा समेट लेगा इंसान, और जिसने ज्यादा ले लिया, उसने मामला जीत लिया... भगवान तो भेजता है हमें दुनिया में नादान बच्चे बनाकर, वापस मांगता है अक्लमंद बूढ़े, मतलब पढ़ना चाहिए!"

सहज विश्वास के साथ, बिना किसी दुविधा के, उसके मुह से शब्दों की धारा निकलती और सब. एकदम चुप होकर उसकी बाते सुनतीं। मुंह पर वे उसकी तारीफ करतीं और उसकी पीठ के पीछे भी। उसकी शक्ति, लगन और चतुराई देखकर वे चकित रह जातीं। लेकिन उस जैसा बनने की बात किसी को न सूझती। कोहनी तक अपनी बांहो की हिफाजत करने और अपनी आस्तीनों को भीगने से बचाने के लिए उसने उनपर फुलबूट के ऊपरी चमड़े को काट-छांटकर सी लिया था। यह देख सभी ने उसकी सूझ-बूझ की सराहना की, लेकिन अन्य किसी ने अपने लिए ऐसा नहीं किया और जब मैंने किया तो सबने मेरा मजाक उड़ाया।

"हो-हो-हो, महरिया की नकल करता है!"

उसकी लड़की के बारे में वे कहतीं:

"कौन बड़ी बात है। क्या हुआ, एक मेम और हो जायेगी, यही न? और कौन जाने, पढ़ाई पूरी भी होगी, पहले ही मर गई, तो..."

"पढ़े-लिखे ही कौन सुखी हैं? वो बाखीलोव की लड़की तो पढ़ती रही, पढ़ती रही। और फिर आप ही जाकर मास्टरनी बन गई। और मास्टरनी कहां ब्याहेगी..."

"और नहीं तो क्या! ब्याहनेवाले तो अनपढ़ी को भी ले जायेंगे, बस लेने को कुछ होना चाहिए..."

"लुगाई की अकल खोपड़ी में थोडे ही रखी है..."

अपने ही बारे मे जब वे इतनी निर्लज्जता से बातें करतीं तो बडा अजीब और अटपटा लगता। सैनिकों, जहाजियों और बेलदारों को स्त्रियो के बारे में दुनिया भर की उल्टी-सीधी बाते करते मैं सुन चुका था, और पुरुषों को आपस में डींग मारते और इस बात से अपने पुरुषत्व की माप करते भी मै देख चुका था कि कितनी स्त्रियो को उन्होने उल्लू बनाया। उन की बातों और व्यवहार में 'घाघरा-वर्ग' के प्रति दुश्मनी का भाव साफ झलकता, लेकिन जब कभी भी मैं किसी पुरुष के मुंह से उसकी 'विजयों' का वर्णन सुनता तो मुझे लगता कि वह डींग मार रहा है, उसकी बातों में सचाई कम है और व्यर्थ का तूमार अधिक।

धोबिनें एक-दूसरे से अपने प्रेम के क़िस्सों का बखान नहीं करती थीं, लेकिन पुरुषों का जब वे जिक्र करतीं तो उसमें हंसी उड़ाने और

बदला लेने का भाव झलकता जो इस कथन की पुष्टि करता कि लगाई से सचमुच एक ऐसी ताक़त है जिसे मात देना आसान नही है।

"मर्द कही भी जाये, किसी के साथ भी रहे," नताल्या ने एक दिन कहा, "पर घूम-फिरकर औरत के तलुवे ही चाटेगा।"

"तलुवे नही चाटेगा तो और क्या करेगा!" एक बूढी धोबिन ने फटे बांस जैसी आवाज में कहा। "साधु-सन्यासी तक पूजा-पाठ छोड़ औरत के पीछे खिंचे चले आते है!"

पानी की सुबकती छपाछप और कपड़ो के पछाडने की आवाजों के साथ बातो का यह सिलसिला चलता रहता और खाई के तल पर, इस सड़ांध भरी दरार में जिसे जाड़े की बर्फ तक अपनी शुद्ध चादरो से ढक नही पाती, निहायत नंगे और कुत्सापूर्ण ढंग से जन-सृष्टि के उस महान रहस्य का परदा उघाड़ा जाता जिसके फलस्वरूप सभी जातियों और सभी कबीलों का इस दुनिया मे आना सम्भव हुआ है। उनकी ये बाते मुझमे भयावनी घृणा पैदा करतीं और मेरे विचारो और भावनाओ को 'इश्क' की बातों से दूर भगाती, जिससे मै बुरी तरह से घिरा हुआ था। मेरे मन में यह बात घर कर गयी कि 'इश्क' का मतलब ही गंदी, कामुकता भरी बात है।

यह सब होने पर भी खाई में धोबिनों के साथ, या रसोईघरों मे अफसरों के अरदलियों अथवा तहखानों मे बेलदारो के साथ, समय बिताना मुझे कहीं अच्छा लगता। इसके मुकाबले में मालिकों के घर पर बोलने-चालने, सोचने और घटनाओ की एकरूपता केवल बोझिल तथा क्रोध भरी ऊब पैदा करती थी। मालिको का जीवन क्या था, खाने-पीने, सोने और बीमार पड़ने का एक कुत्सित चक्र था, या खाने की तैयारियां हो रही है, या सोने की; बाते पाप और मौत की ही करते थे, उससे वे बहुत डरते थे, चक्की में डाले दानो का सा उनका जीवन था, हर घडी यही डर कि अब पाट तले पिसे कि पिसे।

काम से छुट्टी मिलने पर मैं बाहर सायबान में चला जाता और लकड़ियां चीरने लगता। इस तरह मै अकेले रहने का प्रयत्न करता, लेकिन बहुत कम सफल हो पाता: अफ़सरों के अरदली, अदबदाकर, आ धमकते और अहाते के जीवन के बारे में बातें शुरू कर देते।

इन अरदलियों में से दो, येर्मोखिन और सीदोरोव, अक्सर मेरे

पास आते थे। येर्मोखिन कलूगा प्रदेश का रहनेवाला था। लम्बा क़द और कंधे झुके हुए, छोटा सिर, आंखें धुंधली और उसका समूचा शरीर, ऊपर से नीचे तक, मोटी और मज़बूत शिराओं का ताना-बाना मालूम होता था। वह काहिल और इतना बेवकूफ था कि उससे तबीयत भन्ना जाती थी। चाल-ढाल मे वह बेढंगा और सुस्त था। जब किसी स्त्री को देख लेता तो मिमियाने लगता और आगे की ओर यों झुकता मानो अभी उसके पांवों पर गिरकर ढेर हो जायेगा। बावर्चिनों और नौकरानियों पर वह इस तरह आनन-फानन डोरे डालता कि अहाते में सभी चकित रह जाते। सभी उससे ईर्ष्या करते, और भालू जैसी उसकी शक्ति से भय खाते। सीदोरोव तुला का रहनेवाला था। दुबला-पतला और कड़ियल। वह हमेशा उदास सा रहता, दबे हुए स्वर में बातें करता, और सहमा हुआ सा खांसता-खखारता। उसकी आंखों में जैसे डर झलक मारता और वे हमेशा अंधेरे कोनों की खोज करतीं। चाहे वह फुसफुसाकर बातें करता हो, या एकदम चुप बैठा हो, उसकी आंखें हमेशा सबसे अंधेरा कोना खोजतीं और वहीं चिपकी रहतीं।

"इधर क्या देख रहा है?"

"हो सकता है, कोई चूहा उधर से निकल आये। मुझे चूहे पसंद हैं– चुपचाप इधर-उधर भागते रहते है..."

अरदली मुझसे चिट्ठियां लिखवाते, कभी अपनी प्रेमिकाओं के नाम, कभी अपने घर वालों के नाम जो देहातो में रहते थे। मुझे चिट्ठियां लिखना अच्छा लगता, खास तौर से सीदोरोव की चिट्ठियां लिखने मे मेरा खूब जी लगता। हर शनिवार के दिन वह अपनी बहन के नाम चिट्ठी लिखाता, जो तूला में रहती थी।

वह मुझे अपने रसोईघर में ले जाता और एक मेज़ पर मेरी बगल में बैठ जाता। अपने सफ़ाचट सिर को तेजी से खुजलाता और मेरे कानो में फुसफुसाता:

"हा तो अब शुरू कर! सबसे पहले तो सिरी नामा लिख: 'मेरी अत्यन्त पूजनीय बहन, भगवान तुम्हें सदा खुश रखे,'–और जो सब लिखना चाहिये। अब आगे लिख: 'तुमने जो रूमाल भेजा था सो मुझे मिल गया, लेकिन यह तुमने ठीक नहीं किया, आगे तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, और इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यहां किसी चीज़

की जरूरत नहीं है, मैं बहुत अच्छी तरह से हूं'—असल में तो जिंदगी कुत्तों से भी बदतर है, पर तू यह नही लिख, लिख कि अच्छी है! वो तो अभी छोटी है—कुल चौदह साल की—उसे यह सब क्या जानना? अब आगे अपने आप लिख, जैसे तुझे सिखाया गया है."

और वह मेरे कंधे पर झुक जाता। उसके मुह से निकली बदबू भरी गर्म सांस मेरे मुंह पर आती और वह बराबर फुसफुसाकर कहता :

"और यह भी लिख दे कि वह लड़कों को अपने पास न फटकने दे, छातियों या और कहीं पर उनकी हवा तक न लगने दे। और लिख कि कभी किसी की मीठी बातों के बहकावे में न आये। अगर कोई मीठी बातें करे तो समझे कि वह उसे उल्लू बना रहा है, और उसका नास करने का जाल रच रहा है..."

खांसी रोकने के भारी प्रयास में उसका भूरा चेहरा लाल हो उठता, उसके गाल कुप्पा से हो जाते, आंखों मे आंसू आ जाते, वह कुर्सी पर कुलबुलाता और मुझे धकेलता।

"तुम बार-बार मेरा हाथ हिला रहे हो!"

"कोई बात नही, लिखता जा: 'साहब लोगो से खास तौर से बचकर रहना। ये पहली बार में ही मिट्टी खराब कर देते है। वे कुछ इस ढग से चिकनी-चुपड़ी बातें करते है कि एक बार अपने जाल में फंसाने के बाद तुम्हें वे कसबिन बनाकर ही छोड़ेंगे। अगर तुम रूबल जोड़ लो तो उसे पादरी के पास जमा करा देना, लेकिन यह देख लेना कि पादरी ईमानदार हो। अच्छा तो यह होगा कि उसे कही जमीन में गाड़कर छिपा दो ताकि किसी की नज़र न पड़े, और जिस जगह गाड़ो, उसे भूल न जाओ।'"

खिड़की के एक हिस्से में लगी टीन की फिरकी की चरचराहट में डूबी उसकी फुसफुसाहट हृदय को बुरी तरह कुरेदती है। सिर उठाकर मै कालिख लगे अलावघर और बरतन रखने की अलमारी की ओर देखता हूं जिसे मक्खियों के दाग़-धब्बों ने रंग रखा है। रसोई क्या है, गंदगी का घर है। खटमलों की भरमार है और धुएं, मिट्टी के तेल और जली हुई चर्बी की गंध से भरा है। अलावघर के ऊपर रखी छिपटियो मे तिलचट्टे सरसरा रहे है। मेरा हृदय बोझिल और उदास हो रहा है, और इस

ग़रीब सिपाही तथा उसकी बहन पर तरस के मारे आंखों मे आंसू उमड़ रहे है। क्या इस तरह जीना ठीक है, उचित है?

सीदोरोव की फुसफुसाहट से बेखबर मै लिखता ही जाता हूं। लिखता हूं कि जीवन कितना बोझिल, कितने दर्द और दुःखों से भरा है। और वह ठंडी सांस लेते हुए बोलता है:

"तूने ढेर सारा लिख दिया, शुक्रिया। अब उसे मालूम हो जायेगा कि किन-किन चीजों से उसे डरना चाहिये..."

"किसी भी चीज से डरना नहीं चाहिये!" मै झुंझलाकर कहता हूं, हालांकि मै खुद भी कितनी ही चीजों से डरता हूं।

खांसते हुए वह हंसता है और बोलता है:

"तू निरा बुगद है! डरे बिना भला कैसे रहा जाये? साहबों का डर, भगवान का डर और कम चीजें है डरने की क्या?"

जब उसे अपनी बहन का ख़त मिलता तो वह लपका हुआ मेरे पास आता। कहता:

"जरा जल्दी से पढ़कर सुना तो..."

और निराशाजनक हद तक छोटे तथा बेकार उस ख़त को जिसकी लिखावट समझना अच्छा-खासा मुश्किल काम होता, वह मुझसे तीन बार पढ़वाकर सुनता।

वह दयालु और नर्म स्वभाव का आदमी था। लेकिन स्त्रियों के प्रति उसका रवैया भी वैसा ही था जैसा कि दूसरे लोगो का—अनगढ़ और आदिम। चाहे-अनचाहे इन संबंधों को देखते हुए, जो अकसर मेरे आंखो के सामने ही विस्मयकारी तथा घृणित तेजी के साथ शुरू से अन्त तक विकसित होते थे, मै देखता कि किस तरह सीदोरोव औरत के सामने अपने कठोर सैनिक जीवन का रोना रोकर उनके हृदय में सहानुभूति जगाता, कैसे इस प्यार भरे झूठ से औरत को नशा चढाता और बाद मे येर्मोखिन से अपनी विजय का जिक्र करते समय मुंह बनाकर वह इस तरह जमीन पर थूकता मानो उसने कोई कड़वी दवा पी हो। यह देखकर मेरे कलेजे को चोट लगती और मै गुस्से से भरकर सिपाही से पूछता कि क्यो वे सब औरतों को धोखा देते है, उनसे झूठ बोलते हैं और बाद मे उनकी खिल्ली उड़ाते हुए उन्हें एक के बाद दूसरे के हाथो में उछालते हैं, और अकसर उन्हें मारते-पीटते भी हैं?

वह धीमे-धीमे हंसता और बोलता:

तेरे लिए इन सब बातों की ताक झाक करना ठीक नहीं। ये बातें बुरी हैं, सोलहों आना पाप हैं। तू अभी बहुत छोटा है। अभी तेरा समय नहीं आया..."

लेकिन एक दिन मैंने उसे सीधा और साफ़ जवाब देने पर विवश कर दिया। और उसका यह जवाब मैं उम्र भर न भूला।

"तेरी समझ में औरत यह नहीं जानती कि उसे उल्लू बनाया जा रहा है," आंख मारकर खखारते हुए उसने कहा। "वह इसे खूब अच्छी तरह जानती है। वह खुद चाहती है कि उसे उल्लू बनाया जाये। इस मामले में सभी झूठ बोलते हैं। ऐसा है यह मामला, सभी को शर्म मालूम होती है न? असलियत यह है कि कोई किसी से प्रेम नहीं करता, केवल मजे के लिए यह सब करते हैं! और यह एक बहुत ही शर्मनाक बात है कुछ दिन की कसर और है, बड़ा होने पर खुद तू भी यह सब सीख जायेगा! रात का अंधेरा इसके लिए जरूरी है, और अगर दिन हो तब भी किसी अंधेरे कोने की जरूरत पड़ती है। इस बात पर भगवान ने आदम और हौवा को स्वर्ग से निकाल दिया, और इसी की वजह से दुनिया में सभी दुखी हैं..."

यह सब उसने कुछ इतना खुलकर, सच्चे और उदास हृदय से कहा कि उससे एक हद तक मैं उसके इश्कों को बर्दाश्त करने लगा। उसके साथ मैं जितना घुलमिल गया, उतना येर्मोखिन के साथ नहीं। येर्मोखिन से तो मैं घृणा करता था। उसकी नाक में दम करने और उसका मजाक उड़ाने से कभी नहीं चूकता था। मेरा तीर निशाने पर बैठता और येर्मोखिन, मेरी जान का दुश्मन बना हुआ, बहुधा अहाते में मेरे पीछे झपटता, लेकिन उसका बेढंगापन साथ न देता और मैं साफ़ निकल भागता।

"इसकी मनाई है।" सीदोरोव कहा करता था।

यह वर्जित है, यह तो मैं भी जानता था, लेकिन मानव की सारी मुसीबतों और दुःख-दर्द की जड़ भी यही है, यह बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरती थी। यह देखते हुए भी कि लोग दुखी हैं, मैं इसपर विश्वास नहीं कर पाता था, क्योंकि उस असाधारण चमक से मैं परिचित था जो प्रेम में पड़े स्त्री-पुरुषों की आंखों में दिखाई देती थी। मैं प्रेमी-प्रेमिकाओं की अद्भुत हार्दिकता महसूस कर चुका था। हृदय का यह उत्सव देखना सदा प्रिय लगता था।

फिर भी जीवन और भी अधिक बोझिल और भी अधिक क्रूर होता लग रहा था, लगता था कि जीवन सदा-सदा के लिये उन सम्बन्धों और रूपों में जकड़ा हुआ है जिन्हें मैं आये दिन देखता रहा था। जो कुछ हर रोज अटलता के साथ आंखों के सामने आता रहता है, उससे अच्छा भी कुछ हो सकता है. ऐसी संभावना का विचार भी नहीं आता था।

लेकिन एक बार सैनिकों के मुंह से मैंने एक ऐसी घटना सुनी जिससे मेरा हृदय बुरी तरह झनझना उठा। हमारे अहाते के ही एक फ्लैट में एक कटर रहता था। वह नगर के सबसे अच्छे दर्जी की दुकान पर काम करता था। वह शान्त स्वभाव का बहुत ही भला आदमी था। वह रूसी नहीं था। उसकी पत्नी एक छोटी सी औरत थी—फकतदम, न कोई बच्चा, न कच्चा। दिन भर किताबें पढ़ा करती। शोर-गुल भरे अहाते में शराबियों से भरे घरों में वे दोनों अदृश्य और शान्त जीवन बिता रहे थे। वे कभी किसी को अपने घर नहीं बुलाते, न ही खुद कहीं जाते, एक रविवार को छोड़कर जब थिएटर देखने के लिए वे बाहर निकलते।

पति तड़के ही काम पर चला जाता, और गई रात लौटता। उसकी पत्नी जो देखने में चौदह-पन्द्रह साल की लड़की मालूम होती थी, सप्ताह में दो बार दोपहर के समय पुस्तकालय जाती। छोटे-छोटे डग भरती, डगमगाती हुई, मानो लंगड़ाती हो, स्कूली लड़कियों की सी सीधी-सादी, प्यारी, नयी, साफ, छोटे-छोटे हाथों में दस्ताने पहने और पुस्तकें उठाये जब वह गली में से गुजरती तो मैं उसे देखा करता। चिड़िया जैसा उसका चेहरा था, और छोटी-छोटी चपल आंखें। वह सारी इतनी सुन्दर थी मानो ताक पर रखी जानेवाली चीनी की गुड़िया। सैनिकों का कहना था कि उसके दाहिने बाजू की एक पसली गायब है, इसीलिये चलते समय वह इस अजीब ढंग से डगमगाती है। लेकिन मुझे यह प्रिय लगता और वह हमारे अहाते में रहनेवाली अन्य महिलाओं—अफसरों की बीवियों से एकदम भिन्न लगती। अपनी ऊंची आवाज, रंग-बिरंगे कपड़ों के बावजूद ये स्त्रियां घिसी हुई सी लगती थीं मानो वे अंधेरी कोठरी में बेकार की चीजों के बीच देर तक भूली-बिसरी पड़ी रही हों।

अहाते में कटर की छोटी सी पत्नी नीम पागल मानी जाती थी। लोगों का कहना था कि किताबों में उसने अपना दिमाग खो दिया था, और वह इस लायक भी नहीं रही कि घर का कोई काम कर सके। उसका

पति ही खुद बाजार से सौदा-सुलफ लाता है, खुद बावर्चिन को खाने का आदेश देता है। यह बावर्चिन भी कोई गैर-रूसी थी—भारी-भरकम और नकचढ़ी। उसकी एक लाल आंख थी जो बराबर बहती रहती थी और दूसरी आंख की जगह एक पतली गुलाबी पट्टी ही थी। घर की मालकिन का यह हाल था कि वह—पड़ोसियों के शब्दों में—सूअर मांस और गोमास तक में तमीज नहीं कर सकती थी। एक दिन वह बाजार गई और गाजर के बजाय मूली खरीदकर खूब बेवकूफ बनी!

तौबा, तौबा, जरा सोचो तो भला!

वे तीनों अहाते में पराये से लगते थे मानो योंही, संयोगवश, मुर्गियों के इस बड़े दरबे में आ टपके हों, आकाश में उड़नेवाले उन पक्षियों की भांति जो बर्फ़ीली हवा के थपेड़ों से बचने के लिये रोशनदान के रास्ते लोगों के किसी गंदे और दमघोट निवास में घुसकर शरण लेते हैं।

और अचानक अरदलियों के मुंह से मैंने सुना कि कटर की इस छोटी सी पत्नी के साथ उनके अफसर एक बहुत ही कमीना और बेहूदा खेल खेल रहे हैं: बिला नागा, करीब-करीब हर रोज उनमें से कोई उसके नाम परवाना भेजता, अपने प्रेम और हृदय की खुदर-पुदर का राग अलापता, उसकी खूबसूरती की तारीफ़ के पुल बांधता। जवाब में वह लिखती कि मुझे बख्शो। इस बात पर वह दुःख प्रकट करती कि उसे लेकर उनके हृदय की यह हालत हुई, और कामना करती कि भगवान उन्हें शीघ्र ही इस रोग से छुटकारा दिलाए। उसका ऐसा पत्र पाते ही सब अफसर जमा होकर उसे पढ़ते, जी भरकर हंसते, और फिर सब मिलकर नया पत्र लिखते जिसपर उनमें से कोई एक दस्तखत कर देता।

यह सब बताते समय अरदली भी हंसने और स्त्री की टांग खींचने में पीछे न रहते।

"यह लंगड़ी भी एकदम उल्लू है!" येर्मोखिन अपनी गहरी गूंजती हुई आवाज में कहता और सीदोरोव धीमी आवाज में हामी भरता:

"हरेक लुगाई चाहती है कि उसे कोई उल्लू बनाये। वह सब जानती है..."

मुझे यकीन नहीं हुआ कि कटर की पत्नी जानती है कि अफ़सर उसे उल्लू बना रहे हैं। और मैंने उसे तुरंत खबर देने का निश्चय कर लिया। एक दिन, यह देखकर कि बावर्चिन नीचे तहखाने में गई हुई है, पीछे

के जीने से   मैं उसके घर मे चढ़ गया। रसोईघर में मैंने प्रवेश किया, वह खाली था। फिर कमरो मे गया। वहा कटर की पत्नी दिखाई पडी। एक हाथ मे वजनदार सुनहरा प्याला और दूसरे में एक पुस्तक लिए वह मेज के पास बैठी थी। डर के मारे उसने पुस्तक अपनी छाती से सटा ली, और धीमे स्वर में चीख उठी :

"कौन है? देखो तो, आगुस्ता! कौन हो तुम?"

अटपटे से कुछ शब्द तेजी से मेरे मुंह से निकले और मुझे लगा कि प्याला या किताब दोनो में से कोई एक चीज अभी मेरे सिर से आकर टकराएगी। बैगनी रंग की बड़ी सी आरामकुर्सी पर वह बैठी थी, आसमानी रग का लबादा उसने पहन रखा था जिसमें नीचे झालर और गले तथा कलाइयो पर लेस लगी थी, और सुनहरे रंग के घुंघराले बाल उसके कधों पर लहरा रहे थे। ऐसा मालूम होता था जैसे गिरजे के राजद्वार की मेहराब के फ़रिश्तों में से एक यहां उतर आया है। आरामकुर्सी की टेक से चिपककर वह गोल-मटोल आंखो से नजर गड़ाकर मेरी ओर देखने लगी। पहले तो उसकी आंखों में गुस्से की लपक थी, फिर उसपर अचरज और मुसकराहट नजर आयी।

उसे सब कुछ बताने के बाद मै साहस खोकर दरवाजे की ओर मुड़ा।

"जरा ठहरो!" वह चिल्लाई।

प्याला उसने ट्रे मे टिका दिया, किताब को मेज पर पटककर उसने हथेलियो को मिलाया और बड़े आदमी की भरपूर आवाज में बोली :

"तुम भी कितने अजीब लडके हो... जरा इधर आओ!"

सहमा सा मै उसकी ओर बढ़ा। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया, और छोटी ठंडी उंगलियों से उसे थपथपाते हुए पूछा :

"क्यों, मुझे यह सब बताने के लिये किसी और ने तो तुम्हें नहीं भेजा? अच्छा-अच्छा, तुम्हारी बात का मै यकीन करती हूं, देखती हूं कि तुम खुद अपने मन से ही यहां आए हो..."

उसने मेरा हाथ छोड़कर अपनी आंखो को बंद किया और धीमी, खिची हुई आवाज में बोली :

"तो ये मुंहजले फौजी मेरे बारे में इस तरह की वाही-तबाही बकते है!"

आप यह जगह छोड क्यो नही देतीं यहा से कही और चली जाइये," बडो की भाति मैने सलाह दी।

"क्यो ?"

"वे आपको तंग कर मारेंगे।"

वह बड़े ही सुहावने ढंग से हंसी, फिर पूछा:

"क्या तुम पढ़ना-लिखना जानते हो? तुम्हे पुस्तके पढ़ने का चाव है ?"

"मुझे वैसे ही फ़ुरसत नहीं मिलती।"

"पढ़ने का चाव हो तो फ़ुरसत भी निकाल ही लोगे। अच्छा लो अब जाओ – धन्यवाद !"

उसने अपना हाथ आगे बढा दिया। अंगूठे और उंगली के बीच मे चांदी का एक सिक्का था। इस ठंडी चीज़ को लेने में मुझे शर्म आयी, लेकिन मुझसे इनकार करते नही बना और लौटते समय मैने उस सिक्के को जीने के खंबे पर छोड़ दिया।

गहरी और सर्वथा नयी छाप लेकर मैं इस स्त्री के यहां से लौटा। मेरे सामने मानो नयी उषा का उदय हुआ हो। कई दिन तक मुझपर उल्लास सवार रहा और उस खुले से कमरे तथा फ़रिश्ते की भांति आसमानी लबादा पहने कटर की पत्नी की याद में मै झूमता रहा। वहा की हर चीज में एक अनदेखा सौन्दर्य था। उसके पांव के नीचे गुदगुदा सुनहरा क़ालीन बिछा था और जाड़ों का ठिठुरा हुआ दिन, मानो उसके स्पर्श से अपने को गरमाने के लिए, रुपहली खिड़कियों में से भीतर झाक रहा था।

मेरा मन उसे एक बार और देखने के लिए ललक रहा था। किताब मांगने के बहाने अगर मैं उसके पास जाऊं तो कैसे रहे?

मै गया, और उसे ठीक उसी जगह पर बैठे देखा। इस बार भी वह अपने हाथों में एक किताब लिए थी। लेकिन इस बार उसके चेहरे पर लाल से रंग का रूमाल बंधा था, और उसकी एक आंख सूजी हुई थी। उसने मुझे काली जिल्द वाली एक किताब उठाकर दे दी और बुदबुदाकर कुछ कहा जो मै समझ नहीं सका। भारी हृदय से मैं पुस्तक लेकर चला आया। पुस्तक में से क्रेयोसोट और अनीसीड दवा की सुगंध आ रही थी। घर लौटने पर मैंने पुस्तक को एक काग़ज़ और साफ़ कमीज मे लपेटा

और ऊपर जाकर अटारी मे छिपा दिया मुझ डर था कि अगर पुस्तक मालिकों के हाथ पड़ गई तो वे उसे नष्ट कर डालेगे।

मेरे मालिक "नीवा" पत्रिका मंगाते थे, यह इसलिये कि इसमे पोशाकों के नमूने छपते थे और ग्राहको को मुफ्त उपहार मिलते थे। पत्रिका को वे पढ़ते कभी नहीं थे, केवल चित्रों को देखते और इसके बाद, सोने के कमरे में, कपड़े रखने की अल्मारी के ऊपर उसे डाल देते। साल पूरा होने पर वे उसकी जिल्द बंधवा लेते और पलंग के नीचे छिपाकर रख देते जाहां "चित्र-जगत" की तीन जिल्दें रखी हुई थी। जब कभी मै सोने के कमरे का फ़र्श धोता तो गंदा पानी किताबो के नीचे चला जाता। इनके अलावा मेरा मालिक "रूसी कोरियर" समाचारपत्र भी मंगाता था और साझ के समय उसे पढ़ते हुए बड़बड़ाता:

"शैतान जाने, यह सब क्यों लिखते है! निरी बोरियत है..."

शनिवार के दिन कपडे सुखाने के लिये जब मै ऊपर अटारी में गया तो मुझे किताब का ध्यान हो आया। मैने उसे बाहर निकाला, उसका कागज खोला और शुरू की पंक्ति पर नजर डाली:

"इन्सानो की भांति घरों की भी अपनी-अपनी शक्ल होती है।" इसकी सचाई ने मुझे स्तब्ध कर दिया। मैने आगे पढना शुरू किया और रोशनदान से सटा उस समय तक पढ़ता रहा जब तक कि ठंड के मारे वहां बैठे रहना असम्भव न हो गया। साझ को जब मेरे मालिक गिरजे चले गए तो पुस्तक के साथ मैने रसोईघर में अड्डा जमाया और पतझड़ के पत्तों की भांति पीले पड़े उसके जीर्ण पन्नों में इतना डूब गया कि कुछ सुध न रही। उन्होने मुझे दूसरी ही दुनिया में पहुंचा दिया, नये नामों और नये नाते-रिश्तों की दुनिया में, एक ऐसी दुनिया में जिसमे नेक नायक भी थे और खल नायक भी – इस दुनिया के उन सभी लोगों से भिन्न जिन्हें मै जानता-पहचानता और अपने चारो ओर देखता था। यह द-मौन्तेपिन का लिखा उपन्यास था। उनके सभी उपन्यासों की तरह वह भी लंबा तथा पात्रों और घटनाओ से भरे अजीब, द्रुत-प्रवाही जीवन का चित्र था। उपन्यास में हर चीज अश्चर्यजनक रूप से सीधी-सादी और स्पष्ट थी मानो पंक्तियों के पीछे कोई रोशनी छिपी हो जो हर बुरे और भले पहलू को उजागर करती, प्रेम और घृणा करने में मदद देती तथा एकजाल में घने फंसे लोगो के भाग्यों के उतार-चढ़ाव पर अपलक नजर रखने को

बाध्य करती थी। कुछ पात्रों को सहारा देने के लिए जी ललक उठता; और कुछ के प्रति घृणा होती, जी चाहता कि उन्हें रोका जाये। यह भूल जाता कि यह सारा जीवन, जो इतने अप्रत्याशित रूप में आंखों के सामने प्रकट हुआ है, केवल पुस्तक के पन्नों तक ही सीमित है, कागज के पन्ने से बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। घटनाओं के उतार-चढ़ाव में सब कुछ भूल जाता, एक पन्ने पर हृदय खुशी से नाच उठता और दूसरे पर निराशा के बादल छा जाते।

पढ़ने में मैं इस हद तक पूर्णतया डूब गया कि जब दरवाजे की घंटी बजी तो एकाएक मैं समझ नहीं सका कि उसे कौन बजा रहा है और किस लिए।

मोमबत्ती करीब-क़रीब सारी जल चुकी थी और मोमबत्तीदान में जिसे मैंने आज सुबह ही चमकाया था, पिघले हुए मोम की परत जमी थी। देव-प्रतिमा का दीया जिसे सदा चेतन रखना मेरा काम था, दीवट से खिसककर बुझ गया था। अपने अपराधों के चिन्हों को छिपाने के लिए मैंने रसोईघर में लपक-झपक शुरू की, किताब को मैंने अलावघर के नीचे खिसका दिया, और देव-प्रतिमा के दीये को ठीक करने लगा।

"बहरा हो गया क्या? घंटी की आवाज़ सुनाई नहीं देती?" कमरों में से भागकर आते हुए आया चिल्लाई।

मैं सदर दरवाजे की ओर लपका।

"क्या सो रहा था?" मालिक ने कड़े स्वर में कहा। उसकी पत्नी मुश्किल से सीढ़ी पर चढ़ते हुए भी चिचियाई कि मेरी वजह से उसे ठंड ने जकड़ लिया है। बुढ़िया ने भी लगे हाथ डांटना-डपटना शुरू कर दिया। रसोईघर में पांव रखते ही जली हुई मोमबत्ती पर उसकी नजर पड़ी और वह पूछताछ करने लगी कि मैं क्या कर रहा था।

मैं चुप था, मानो कहीं ऊंचाई से गिर पड़ा हूं और भय के मारे मेरी जान सूख गई कि किताब बुढ़िया के हाथों में पड़ जायेगी। और वह चिल्ला रही थी कि मैं एक दिन सारा घर जलाकर राख कर दूंगा। मेरा मालिक और उसकी पत्नी खाना खाने आये। बुढ़िया ने मेरी शिकायत की:

"देखो न, इसने सारी मोमबत्ती जला डाली। घर भी जला डालेगा..."

खाना खाते समय मुंह के साथ साथ उनकी जबान भी चलती रही और मुझ भला-बुरा कहने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। जाने-अनजाने मेरे सभी गुनाहों का उन्होंने ज़िक्र किया और मुझे चेताया कि मेरा अंजाम बुरा होगा। लेकिन मैं जानता था कि उनकी सारी डाट-फटकार के पीछे न तो कोई बुरी भावना है और न भली, बल्कि यह सब वे अपनी ऊब को डुबोने के लिए बोल रहे हैं। और यह देखकर मुझे बड़ा अजीब लगा कि पुस्तक के पात्रों के मुक़ाबले में वे कितने तुच्छ और कितने बेहूदा मालूम होते हैं।

खाना खाकर वे बोझिल हो गये और थके-थके सोने के लिए चल दिए। बूढ़ी मालकिन, झुंझलाहट भरी शिकायतों से कुछ देर तक भगवान की नाक में दम करने के बाद अलावघर पर चढ़कर चित हो गई। तब मैं उठा, अलावघर के नीचे से किताब निकाली और खिड़की के पास आया। उजली रात थी, आकाश में पूरा चांद चमक रहा था, लेकिन पुस्तक के छोटे-छोटे अक्षरों को पढ़ना मुश्किल था। हृदय में पढ़ने की ललक इतनी ज़ोरदार थी कि उसे दबा न सका। बरतनों के खाने में से मैंने ताम्बे का एक पतीला निकाला और चांद की किरणों का उसपर जो अक्स पड़ा, उससे पुस्तक के पन्नों को चमकाने की कोशिश की। लेकिन चमकने के बजाए पन्ने और भी धुंधले दिखाई देने लगे। तब मैं कोने में रखी बेंच पर खड़ा हो गया और देव-प्रतिमा के दीये की रोशनी में पढ़ने लगा। जब थकान के मारे टांगें जवाब देने लगीं तो मैं वहीं बेंच पर पड़कर सो गया। बूढ़ी मालकिन की चिल्लाहट और घूंसों ने मुझे जगा दिया। केवल रात का लबादा पहने, नंगे पांव, वह वहां खड़ी गुस्से में अपना लाल बालों वाला सिर झटक रही थी। उसका चेहरा गुस्से से तमतमा रहा था, मेरी पुस्तक अपने हाथ में लिए उसी से मेरे कंधों पर प्रहार कर रही थी, जिनसे बड़ा दर्द होता था। अलावघर के बगल में बने सोने के तख्ते से वीक्तर हूक रहा था:

"ओहो, यह चिल्लाना बंद करो, मां! जीना हराम कर रखा है..."

मैं सोच रहा था कि अब किताब की खैर नहीं, बिना फाड़े बुढ़िया दम न लेगी।

सुबह चाय के समय मेरी पेशी हुई।

"यह किताब कहां से लाया?" मालिक ने कड़े स्वर में सवाल किया।

स्त्रियां एक-दूसरी को टोकते हुए चिल्ला रही थीं। बीक्तर शक से भरा पुस्तक के पन्ने सूंघ रहा था और कह रहा था:

"इसमें से तो इत्र की गंध आती है, खुदा की क़सम..."

यह जानकर कि पुस्तक पादरी की है वे सब पुस्तक को उलट-पुलटकर देखने लगे और उपन्यास पढ़नेवाले पादरी पर झुंझलाहट तथा अचम्भा उतारने लगे। इससे उनका गुस्सा कुछ हल्का पड़ा, हालांकि मालिक मुझे फिर भी देर तक समझाता रहा कि पुस्तकें पढ़ना नुकसानदेह और खतरनाक हैं। बोला:

"यही किताबें पढ़नेवालों ने तो रेल की पटरियां उड़ा दी, लोगों को मारना चाहते थे..."

"तुम पागल तो नहीं हो गए!" भय और गुस्से भरी आवाज़ में मालकिन पति पर चिल्लायी। "क्या कह रहे हो इसे?"

मौन्तेपिन की पुस्तक लेकर मैं सैनिक के पास पहुंचा और जो कुछ बीता था, सब उसे कह सुनाया। बिना कुछ कहे सीदोरोव ने पुस्तक को अपने हाथ में ले लिया, छोटा सा संदूक खोलकर उसने एक साफ़ तौलिया निकाला, पुस्तक को उसमें लपेटा और फिर उसे संदूक में छिपा दिया।

"उनकी बात मत सुन। यहां आकर पढ़ लिया कर। मैं किसी से नहीं कहूंगा," उसने कहा, "और अगर तू आये और मैं उस समय नहीं मिलूं तो कुंजी देव-प्रतिमा के पीछे लटकी होती है। संदूक खोल और पढ़..."

पुस्तक के प्रति मालिकों के इस रवैये ने मेरी आंखों में एकदम उसे गम्भीर और भयोत्पादक रहस्य की ऊंचाई पर उठा दिया। यह तथ्य कि 'पुस्तकें पढ़नेवाले' कुछ लोगों ने किसी की हत्या करने के लिए रेल की पटरियां उड़ा दी थीं, मुझे विशेष दिलचस्प नहीं मालूम हुआ, लेकिन मुझे पाप-स्वीकारोक्ति के दौरान किया गया पादरी का सवाल याद आया। न ही मैं उस छात्र को भूला था जिसे मैंने निचले तल्ले के मकान में दो स्त्रियों के सामने पुस्तक पढ़ते देखा था, स्मूरी की याद भी मेरे दिमाग़ में ताज़ी थी जो 'सही ढंग' की पुस्तकों का जिक्र किया करता था। साथ ही काली बुरी पुस्तकें पढ़नेवाले उन फ़्रीमेसनों की भी मुझे याद हो आयी थी जिनका जिक्र करते हुए नाना ने मुझे बताया था:

"और उन दिनों जब ज़ार अलेक्सान्द्र पाव्लोविच ईश्वर प्रदत्त शासन

की बागडोर अपने हाथों मे सभाले थे, ऊंचे कुलीनों ने साजिश का ऐसा जाल बिछाया कि रूस की समूची जनता रोम के पोप के चंगुल में फस जाती, काफ़िर कहीं के! लेकिन भला हो जनरल अाराक्चेयेव का, ऐन वक्त पर आकर उसने सब को रंगे हाथ पकड़ लिया। उसने न किसी के ओहदे का ख्याल किया, न किसी की हैसियत का। बस, सब का पुलिन्दा बांधकर साइबेरिया के लिए रवाना कर दिया। गल-सड़कर वे भी उसी तरह खत्म हो गये जैसे कि हर सड़ी-गली चीज खत्म हो जाती है..."

'अम्बराकुलम में अगर तारे छिटके दिखायी दें' भी मुझे याद था, न ही मैं 'गेरवास्सी' और उन गम्भीर तथा खिल्ली भरे शब्दों को भूला था :

"ऐ अज्ञानियो, हमारी लीलाओं को जानने को तुम उत्सुक, निष्काम नेत्र तुम्हारे देख न पायेंगे उन्हें कभी!"

मुझे ऐसा मालूम हो रहा था मानो किसी महान रहस्य का भेद मेरी आंखों के सामने खुलनेवाला है और मैं इस तरह घूमता मानो मेरे सिर पर कोई भूत सवार हो। मै पुस्तक को जल्दी से जल्दी खत्म करना चाहता था। साथ ही यह भय भी मेरे हृदय को कचोटता रहता कि सैनिक के पास वह खो जायेगी या वह उसे किसी न किसी तरह खराब कर देगा। तब मैं कटर की पत्नी को क्या कहूंगा?

बूढ़ी मालकिन की नजर सदा मेरा पीछा करती और इस बात की ताक-झांक में रहती कि कहीं मैं अरदली के पास न खिसक जाऊं। वह मुझे बराबर डांटती रहती :

"किताबचाटू! जिसे बदमाशी सीखना हो वह बस किताबें पढ़ना शुरू कर दे। उस चुचमुंही को देखो न जो हर घड़ी किताबों मे ही डूबी रहती है, किताबों के पीछे जो अब घर के लिए सौदा-सुलफ लेने तक नहीं जा सकती। बस, अफ़सरों से चोंचें लड़ाया करती है। क्या मै नहीं जानती कि दिन-दहाड़े वे किस तरह उसके यहां जाते है!"

मै उतावला हो उठा कि चिल्लाकर बुढ़िया का मुंह बंद कर दूं :

"यह सफेद झूठ है! वह अफ़सरों से कतई चोंचें नहीं लड़ाती!"

लेकिन कटर की पत्नी की हिमायत में मै जबान खोलने का साहस नहीं कर सका। मुझे डर था कि कहीं बुढ़िया यह न भांप ले कि पुस्तक मै वहीं से लाया हूं।

कई दिन तक मैं बहुद परेशान रहा। मैं खोया-खोया सा रहता और चिंता भरी उदासी मुझे खा रही थी। रात को नींद न आती और हर घड़ी यही चिन्ता सताती कि द-मौन्तेपिन की अब खैर नहीं है। अन्तत एक दिन कटर की पत्नी की बावर्चिन ने मुझे अहाते में रोका और बोली:

"वह किताब लौटा दो!"

भोजन के बाद, उस समय जब कि मेरे मालिक झपकी ले रहे थे, मैं कटर की पत्नी के पास पहुंचा, परेशान और बुझा हुआ सा दिल लिए।

इस समय भी वह वैसी ही थी जैसी मैंने उसे पहली बार देखा था, सिवा इसके कि कपड़े दूसरे पहने थी। सलेटी रंग का घाघरा, काले रग की मखमली चोली, और खुले गले में फीरोजे का क्रास। एकदम मादा बुलफ़िंच की याद दिलाती थी।

जब मैंने उसे बताया कि मुझे पुस्तक ख़त्म करने का अवसर नहीं मिला और यह कि मेरे पढ़ने पर रोक लगा दी गई है तो इस बात की चोट और उसे एक बार फिर देखने की खुशी से मेरी आंखें भर आईं।

"थू, कितने गंवार लोग हैं!" अपनी कमान सी भौहों को चढ़ाते हुए उसने कहा। "शक्ल से तो तुम्हारा मालिक बहुत सुंदर लगता है। लेकिन तुम इतना परेशान मत हो, मैं कोई उपाय सोचूंगी। मैं उसे एक पत्र लिख दूंगी।"

इससे मेरे होश फ़ाख्ता हो गए। मैंने उसे बताया कि मालिकों को असल बात मालूम नहीं है। मैंने उनसे झूठमूठ कह दिया है कि पुस्तक पादरी से लाया हूं।

"नहीं, उन्हें पत्र नहीं लिखना," मैंने बिनती के स्वर में कहा, "वे केवल आपकी हंसी उड़ाएंगे और भी उलटी-सीधी सुनाएंगे। अहाते में सभी आपसे चिढ़ते हैं, आपका मजाक उड़ाते हैं, और कहते हैं कि आप बेवकूफ हैं और आपकी एक पसली गायब है.."

एक ही सपाटे में मैं यह सब कह गया और कहने के तुरत बाद सकपकाकर मैंने अनुभव किया कि मेरे शब्दों से उसके हृदय को चोट पहुंची होगी। उसने अपना ऊपर का होंठ दांतों से भींचा और हाथ अपने कूल्हे से इस तरह टकराया मानो वह घोड़े पर सवार हो। मैंने अपना सिर लटका लिया, मैं धरती में समा जाना चाहता था, लेकिन कटर की पत्नी धम्म से कुर्सी पर बैठ गयी और खूब खिलखिलाकर हंसने लगी।

ओह, कैसी मूर्खता है यह! लेकिन मैं क्या कर सकती हूं? मेरी ओर एकटक देखते हुए उसने अपने आप से ही पूछा। फिर एक लम्बी सांस छोड़ते हुए बोली, "तुम भी अजीब लड़के हो, बहुत ही अजीब!.."

उसके पास ही, आईने में मेरा अक्स पड़ रहा था: ऊंचे कल्ले, चौड़ी नाक से लैस चौखटा, माथे पर चोट का बड़ा सा निशान और बेतर्तीबी से हर तरफ बिखरे हुए बिना कटे बाल। क्या 'बहुत ही अजीब लड़का' ऐसा ही होता है? यह 'अजीब लड़का' नन्ही-मुन्नी चीनी की सुन्दर गुड़िया से बिल्कुल भी नहीं मिलता...

"पिछली बार मैंने तुम्हें पैसा दिया था। उसे तुम यहीं छोड़ गए, क्यों?"

"मुझे उसकी जरूरत नहीं..."

उसने एक सांस भरी।

"अच्छा, तो क्या किया जाए! अगर मालिक तुम्हे पढ़ने की इजाजत दे तो आना, मैं तुम्हे किताबें दूंगी..."

आईने के सामने ताक पर तीन पुस्तकें रखी थीं। मैंने जो अभी लौटाई थी, वह सबसे मोटी थी। उदास आंखों से मैंने उसे देखा। कटर की पत्नी ने अपना छोटा सा गुलाबी हाथ बढ़ाया और बोली:

"अच्छा, अब जाओ!"

मैंने बहुत सम्हलकर उसके हाथ का स्पर्श किया और तेजी से लौट आया।

उसके बारे मे लोग, शायद, ठीक ही कहते है कि वह कुछ नहीं जानती। बीस कोपेक के सिक्के को उसने पैसा कहा—बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह।

लेकिन उसका यह अल्हड़पन मुझे अच्छा लगा...

६

पुस्तकें पढ़ने की अपनी इस अचानक धुन के कारण क्या कुछ मुझे नहीं सहना पड़ा: अपमान के कड़ुवे घूंट मैंने पिये, हृदय मे लगी चोटों से मै कराह उठा। इस सबको जब मै याद करता हूं तो दुःख भी होता है और हंसी भी आती है।

कटर की पत्नी की पुस्तकें बहुत कीमती लगती थीं, और इस भय से कि बूढ़ी मालकिन उन्हें जला डालेगी मैंने उससे पुस्तकें लेने का ख्याल तक अपने दिमाग से निकाल दिया, और उस दुकान से जहां नाश्ते के लिए मैं पावरोटी खरीदने जाता था, चटख रंग की छोटी-छोटी पुस्तकें लाना शुरू कर दिया।

दुकानदार बहुत बदनुमा लड़का था — मोटे-मोटे होंठ, जब देखो तब पसीने में लथपथ, फोड़े-फुंसियों के दागों और नश्तरों से कटा-फटा थलथल और लेई सा चेहरा, पीलिया आंखें, और बादी-फूले हाथों की छोटी, भोंडी उंगलियां। सांझ होते ही हमारे मोहल्ले के छोकरों और छिछोरी लड़कियों का उस दुकान पर जमघट लगता। मेरे मालिक का भाई भी बीयर पीने और ताश खेलने के लिए लगभग हर सांझ वहां पहुंचता। सांझ के खाने का समय होने पर मुझे अक्सर दौड़ाया जाता कि लपककर उसे दुकान से बुला ला। एक से अधिक बार मैंने दुकान के पीछे एक छोटे से कमरे में दुकानदार की लाल गालों वाली और गोबर दिमाग बीबी को वीक्तर या और किसी छोकरे के घुटनों पर बैठे देखा था। लगता था कि दुकानदार बुरा नहीं मानता। न ही उसे उस समय बुरा मालूम होता जब उसकी बहन, जो ग्राहकों को निबटाने में उसका हाथ बंटाती थी, सैनिकों और गायकों और अन्य सभी के साथ जो जरा भी इशारा करते, चूमा-चाटी पर उतर आती। दुकान में बहुत ही कम बिक्री का सामान दिखाई देता। पूछने पर मालिक बताता कि अभी नया-नया ही काम शुरू किया है और दुकान का ढर्रा बैठाने के लिए उसे अभी तक समय नहीं मिला, हालांकि दुकान का कारबार उसने पतझड़ के दिनों में शुरू किया था। वह अपने ग्राहकों को गंदी तस्वीरें दिखाता और हर किसी को, जो भी इसकी इच्छा प्रकट करता, गंदी तुकबन्दियों की नकल करने देता।

प्रति पुस्तक एक कोपेक किराए के हिसाब से मैंने मीशा येव्स्तिग्नेयेव की पुस्तकें पढ़ डालीं जिनमें कोई जान नहीं थी। यह महंगा सौदा था। फिर इन पुस्तकों के पढ़ने में कतई मजा नहीं आता था। "गुय्राक अथवा अदम्य वफ़ादारी", "वेनिस का फ़ान्सिल", "कबरदीनों के साथ रूसियों का युद्ध, या तुर्क सुन्दरी जो अपने पति के ताबूत पर मर गयी" — इस तरह की किताबें मुझे जरा भी अच्छी न लगतीं और उन्हें पढ़कर मैं अक्सर झुंझला उठता। ऐसा मालूम होता, मानो ये पुस्तकें मुझे बेवकूफ समझकर

मेरी खिल्ली उड़ा रही हों। निहायत भोंडी भाषा और एकदम बे सिर पैर की असम्भव बातें उनमें भरी थीं!

"स्त्रेलत्सी", "यूरी मिलोस्लाव्स्की", "रहस्यमय सन्त", और "तातार घुड़सवार यापांचा"—ऐसी पुस्तकें मैं अधिक पसंद करता, कम से कम मेरे हृदय पर वे कुछ तो छाप छोड़तीं। लेकिन सबसे ज्यादा खुशी मुझे होती सन्तों की जीवनियां पढ़कर। इनमें गम्भीरता होती, उनकी बातों पर यक़ीन करने को जी चाहता, और कभी-कभी तो वे हृदय में गहरी उथल-पुथल मचा देतीं। जाने क्यों, महान सन्तों के बारे में जब मैं पढ़ता तो मुझे 'बहुत खूब' का ध्यान हो आता, स्त्री सन्तों के बारे में पढ़ता तो नानी का चित्र आंखों के सामने घूमने लगता और ऊंचे पादरियों के बारे में पढ़कर मुझे उन क्षणों की याद हो आती जिनमें कि नाना अपने श्रेष्ठतम रूप में दिखाई देते थे।

पुस्तकें पढ़ने के लिए मैं ऊपर अटारी की शरण लेता या फिर सायबान में उस समय पढ़ता जब मैं वहां लकड़ियां चीरने जाता। दोनों ही जगहें समान रूप से ठंडी और तकलीफदेह थीं। कभी-कभी अगर पुस्तक खास तौर से दिलचस्प होती या किसी वजह से मैं खुद उसे जल्दी से खत्म करना चाहता तो मैं रात को उठ बैठता और मोमबत्ती की रोशनी में पढ़ता। लेकिन बूढ़ी मालकिन की नजरों से यह छिपा न रहा कि रात में मोमबत्तियां छोटी हो जाती हैं। नतीजा यह कि वह अब मोमबत्तियों को लकड़ी की खपच्ची से नापती और खपच्ची को कहीं छिपाकर रख देती। इस खपच्ची को मैं अक्सर खोज निकालता और तोड़कर उसे भी जली हुई मोमबत्ती की लम्बाई का बना देता। जब कभी मैं ऐसा करने में चूक जाता और सुबह उठने पर वह देखती कि खपच्ची और मोमबत्ती की लम्बाई में अन्तर है, तो रसोईघर में इस बुरी तरह शोर मचाती कि सारे घर को सिर पर उठा लेती। एक दिन उसकी आवाज सुनकर वीक्तर झुंझला उठा और उसने तख्ते पर से चिल्लाकर कहा:

"यह टांय-टांय बन्द करो मां, जीना हराम कर रखा है! यह मोमबत्तियां जरूर जलाता है, न जलाए तो दुकान से लाई हुई पुस्तकें कैसे पढ़े। मुझे मालूम है! जरा अटारी पर जाकर देखो तो..."

बुढ़िया अटारी की ओर लपकी। एक पुस्तक उसके हाथ लगी जिसे उसने चीर-चीरकर दिया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह एक आघात था, लेकिन इसने पुस्तकें पढ़ने की मेरी लगन को और भी तेज़ कर दिया। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं था कि चाहे कोई सन्त ही क्यों न इस घर में चला आए, मेरे मालिक लोग उसे भी सबक पढ़ाना और उसे अपने मनचीते सांचे में ढालना शुरू कर देंगे। और यह वे अपनी ऊब को डुबोने के लिए करेंगे। अगर उन्हें कभी चीख़ना-चिल्लाना, दूसरे लोगों पर फतवे कसना और उनका मज़ाक उड़ाना छोड़ देना पड़े तो वे गूंगे हो जाएं, बोलने के लिए उनके पास कुछ न रहे और उन्हें अपने आपे की सुध रखने के लिए ज़रूरी है कि आदमी दूसरों के प्रति कोई रवैया अपनाये। मेरे मालिक लोग अन्य लोगों के प्रति केवल एक ही रवैया जानते थे—सिखानेवालों और निंदा करनेवालों का रवैया। अगर कोई अपने आपको खुद उनके सांचे में ढालने की कोशिश करता तो वे इसके लिए भी उसे आड़े हाथों लेने से न चूकते। यह उनकी घुट्टी में मिला हुआ था।

पढ़ने के लिए मुझे नित्य नये पैंतरे बदलने पड़ते। बूढ़ी मालकिन कई बार मेरी पुस्तकें फाड़ चुकी थी और अचानक मैं दुकानदार का कर्ज़दार हो गया—पूरे सैंतालीस कोपेक की भारी रकम का बोझ मेरे सिर पर लदा था। दुकानदार तुरंत अदायगी के लिए तकाज़ा करता और धमकी देता कि पावरोटी खरीदने के लिए जब मैं मालिकों के पैसे लेकर आऊंगा तो वह उनमें से काट लेगा।

"तब क्या होगा?" वह मुझे कोंचते हुए पूछता था।

उससे मुझे इतनी घिन मालूम होती कि मैं बरदाश्त न कर पाता। शायद उसने यह भांप लिया और दुनिया भर की धमकियां देकर मुझे सताने में वह ख़ास मज़ा लेता। मेरे दुकान में पांव रखते ही उसके नोचे-खोंचे से चेहरे पर मुसकराहट का लेप चढ़ जाता।

"क्यों, मेरा कर्ज़ा लाया?" वह धीमे स्वर में कहता।

"नहीं।"

यह उसे डराता, वह अपनी भौंहें चढ़ा लेता।

"नहीं? तो क्या कचहरी में तेरी शिकायत करूं? ताकि तेरी नालिश हो जाये और तुझे हवालात की सैर करनी पड़े?"

पैसा पाने का कोई रास्ता नहीं था। जो पगार मुझे मिलती थी, वह नाना के हवाले कर दी जाती थी। मेरी समझ में नहीं आता था कि

क्या किया जाए। जब मैंने दुकानदार से कुछ दिन की और मोहलत मांगी तो वह डबल रोटी की भांति मोटा और चौकट अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाकर बोला:

"चूम ले! मोहलत मिल जाएगी!"

लेकिन जब मैंने काउण्टर पर से बटखरा उठाकर उसके सिर का निशाना साधा वह डुबकी सी लगाकर चिल्लाया:

"अरे, अरे, यह क्या करता है? मै तो बस मजाक कर रहा था!"

मैं समझा था कि वह मजाक नही करता। उससे छुटकारा पाने के लिए मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मेरे मालिक की जेबों में छुट्टा रेजगारी पड़ी रहती थी। सुबह कोट साफ करते समय यह मै अक्सर देख चुका था। कभी-कभी जेब से निकलकर वह फर्श पर भी आ गिरती, और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक सिक्का लुढ़कता हुआ जीने के नीचे लकड़ियों के ढेर में जाकर ओझल हो गया। दूसरे कामो मे इसका मुझे कुछ ध्यान नहीं रहा और मै अपने मालिक को बताना भूल गया। बाद में, लकड़ियां उठाते समय, बीस कोपेक का वह सिक्का मुझे मिला। जब मैंने उसे मालिक को लौटाया तो उसकी पत्नी बोली:

"देखा तुमने? जेब मे रेजगारी छोड़ने से पहले गिन तो लिया करो!"

"अरे नही, यह चोरी नहीं करेगा, मुझे विश्वास है," मेरी ओर मुस्कराकर देखते हुए मालिक ने जवाब दिया।

और अब, चोरी के अपने निश्चय को पूरा करने के लिए जब मै आगे बढ़ा, मुझे मालिक के इन शब्दों और उसकी विश्वास भरी मुसकराहट का ध्यान हो आया। इससे मेरा काम और भी कठिन हो गया। कई बार मैंने उसकी जेब से रेजगारी निकाली, उसे गिना, और फिर उसकी जेब में ही डाल दिया। तीन दिन तक मैं अपने से संघर्ष करता रहा, और इसके बाद सारा मामला एकाएक आसानी से तय हो गया।

"पेशकोव, तुझे आजकल हो क्या गया है?" अनायास ही मेरे मालिक ने मुझसे पूछा, "तू अपने आपे में नही दिखाई देता। क्या तबीयत खराब है?"

अपनी परेशानी का कारण मैंने साफ़-साफ़ बता दिया।

"देखा न, किताबो ने तुझे किस उलझन में फंसा दिया है," भौहें चढ़ाकर उसने कहा। "वे कोई न कोई मुसीबत जरूर खड़ी करेंगी—यह तो पक्की बात है..."

उसने मुझे पचास कोपेक का सिक्का दे दिया। साथ ही सख्ती से चेतावनी दी :

"देख, बीबी या माँ के कानों में इसकी भनक तक न पड़े, नहीं तो तूफान बरपा हो जाएगा।"

इसके बाद, बहुत ही भले ढंग से हसते हुए, बोला :

"तू अपनी धुन का पक्का है, शैतान! लेकिन ठीक है, धुन का पक्का होना बुरा नहीं। बस, एक बात है। वह यह कि किताबों को धता बताओ। नये साल से मैं एक अच्छा अखबार मगा दूगा। उसे पढ़ा करियो..."

और लो, हर सांझ चाय और भोजन के बीच, मैं अपने मालिको को "मोस्कोव्स्की लीस्तोक" पढ़कर सुनाने लगा जिसमे वाश्कोव, रोवशानिन, रुद्निकोव्स्की और इसी तरह के अन्य कितने ही लेखको के उपन्यास ऊब के मारे लोगो के हाजमे के लिये छपते थे।

जोर-जोर से पढ़कर सुनाना मुझे अच्छा नही लगता था, इससे शब्दो का अर्थ पकड़ने में बाधा पहुंचती थी। लेकिन मेरे मालिक लोग बड़े ध्यान से, श्रद्धालु लालच से सुनते, नायको की बदमाशी पर आह भरकर अचकचाते और गर्व के साथ एक दूसरे को कहते :

"और हमे देखो तो—चैन से, शोर-शराबे से दूर जी रहे है, कोई लेना-देना नही, शुक्र है भगवान तेरा!"

वे हर चीज को गलत-सलत कर देते, प्रसिद्ध लुटेरे चूर्किन के कारनामो को वे गाड़ीवान फ़ोमा कुचीना के सिर मढ़ देते; नामों के बारे मे वे अदबदाकर गड़बड़ करते और मैं जब उनकी भूलों और उलझावों को सीधा करके उनके सामने रखता तो वे अचरज में भरकर कहते :

"वाह, कैसी याददाश्त है!"

अक्सर "मोस्कोव्स्की लीस्तोक" में लेओनीद ग्राबे की कवितायें भी छपतीं। मुझे वे बेहद पसंद आतीं और मै उन्हें अपनी कापी मे उतार लेता। लेकिन मेरे मालिक कवि पर फतवे कसते :

"देखो न, बुढ़ापे में इसे कविता का शौक चर्राया है।"

"उस जैसा शराबी-कबाबी और नीम पागल और करेगा भी क्या!"

स्त्रूज्किन और काउंट मेमेन्तो-मोरी की कविताएं भी मुझे बहुत अच्छी लगतीं, लेकिन बूढ़ी और छोटी दोनों मालकिनें इस राय पर अड़ जाती कि कविता निरी बकवास है :

"भांड़ और नाटकवालों के सिवा और कोई कविताओं मे बातें नहीं करता।"

जाड़ों की सांझें, छोटा सा कमरा, जिसमे सास लेते दम घुटता, और मालिकों की नजरें जो मुझपर जमी रहतीं, मेरा जी बुरी तरह उकता जाता। खिड़की से बाहर, मौत की भांति सन्नाटा खींचे रात फैली होती, जब तब बर्फ़ के चटखने की आवाज आती और लोग, बर्फ से सुन्न मछलियों की भांति, मेज के इधर-उधर गुमसुम बैठ रहते। या फिर तेज हवा अपने पंजो से दीवारो तथा खिड़कियो को नोचती-झकझोरती और चीखती-सनसनाती चिमनी में घुसती और नमदानों को खड़खड़ाती। जो कसर रह जाती उसे बच्चो के कमरे से उनका रोना-टर्राना पूरा कर देता। मेरा मन भीतर ही भीतर उबलता-उफनता और जी चाहता कि यहां से चुपचाप खिसक जाऊं, और किसी अंधेरे कोने में पहुंचकर भेड़िये की भांति हूंकना शुरू कर दूं।

मेज के एक छोर पर सिलाई या बुनाई का ताम-झाम लिए स्त्रियां बैठी होतीं, दूसरे छोर पर वीक्तर अनमने भाव से उस नक्शे पर झुका रहता जिसकी कि वह नकल उतारता होता। बीच-बीच मे वह चीखता भी जाता:

"मेज न हिलाओ, शैतान की दुमो! क्यो, इस घर मे रहने भी दोगी या नहीं?.."

कुछ हटकर एक बाजू मेरा मालिक बैठा था। उसके सामने एक लम्बा-चौड़ा चौखटा रखा था। चौखटे में एक मेजपोश कसा हुआ था और वह सुई-धागे से उसपर कसीदे का काम काढ़ रहा था। उसकी चपल उंगलियों के स्पर्श से लाल केकड़े, नीली मछली, वसन्ती तितलियां और पतझड़ के पीले पत्ते आकार ग्रहण कर रहे थे। ये डिजाइन खुद उसके बनाए हुए थे और उन्हें पूरा करते उसे तीन जाड़े बीत चुके थे। इस मेजपोश से अब वह पूरी तरह से उकता चुका था और अक्सर, अगर दिन में मै खाली हाथ होता तो मुझे बुलाकर कहता:

"चल, पेशकोव, यह मेजपोश तेरा इन्तजार कर रहा है। लग जा काम में!"

मैं कसीदा काढ़ने की मोटी सुई उठाता और मेजपोश पर अपना हाथ आजमाने लगता। अपने मालिक पर मुझे तरस आता और जैसे भी बनता,

मैं उसका हाथ बंटाने की कोशिश करता। मुझे ऐसा लगता था कि यह नक्शे बनाना, कसीदे काढ़ना, और ताश खेलना एक दिन वह छोड़ देगा और कोई दूसरा काम शुरू कर देगा, कोई ऐसा काम जो कुछ दिलचस्प हो, जो उसके उन सपनों से मेल खाता हो जिन्हें कि वह कभी-कभी देखा करता। काम करते-करते वह एकाएक रुक जाता और अचरज के भाव से इस तरह उसकी ओर निहारता मानो वह कोई एकदम अनजानी चीज़ हो। उसके बाल उसकी भौंहों से हाथ मिलाते और उसके गालों का स्पर्श करते, मानो वह कोई सन्यासी हो।

"क्या सोच रहे हो?" उसकी पत्नी पूछती।

"यों ही," वह जवाब देता और फिर अपने काम में जुट जाता।

मैं मन ही मन अचरज करता कि भला यह भी कोई पूछने की बात है कि कोई क्या सोच रहा है? फिर इस तरह के सवाल का कोई जवाब भी क्या दे सकता है? एक साथ, एक ही वक़्त में, बहुत सी चीज़ों के बारे में आदमी सोचता है—उन चीज़ों के बारे में जिन्हें कि उसकी आंखें इस समय देख रही हैं, उन चीज़ों के बारे में भी जिन्हें उसने कल या पिछले साल देखा था और इस तरह जितने भी चित्र आंखों के सामने उभरते हैं, सभी धुंधले और उलझे हुए, बराबर चलायमान और हर घड़ी बदलते हुए होते हैं।

"मोस्कोव्स्की लीस्तोक" के व्यंग्य लेख सांझ के लिये काफ़ी नहीं पड़ते। मैंने सुझाव दिया कि पलंग के नीचे पड़ी पत्रिकाओं को पढ़ना शुरू किया जाये।

"वे भी कोई पढ़ने की चीज़ हैं?" छोटी मालकिन ने अविश्वास के साथ कहा। "उसमें सिवा तस्वीरों के और होता ही क्या है?"

लेकिन पलंग के नीचे अकेला "चित्र-जगत" ही नहीं था, "ओगोन्योक" पत्रिका भी थी। उसे निकालकर हमने सालियास कृत उपन्यास "काउंट त्यातिन-बाल्तीइस्की" पढ़ना शुरू किया। मेरे मालिक को इस उपन्यास का मूढ़ सा नायक बहुत पसंद आया। युवा रईस के मुसीबतों भरे कारनामों पर वह बेरहमी के साथ आंसू निकल आने तक हंसता और चिल्लाता:

"ओह, कितनी मज़ेदार चीज़ है!"

"सब मनगढ़न्त है उसकी पत्नी कहती यह दिखाने के लिये कि वह भी अपना दिमाग रखती है।

पलंग के नीचे पड़े साहित्य ने मेरा एक बड़ा काम किया। इन पत्रिकाओं को रसोइघर मे ले जाने और उन्हे रात को पढ़ने का अधिकार मैंने जीत लिया।

मेरे सौभाग्य से बुढिया बच्चों के कमरे मे अपना बिस्तर लगाने लगी— आया ने रात-दिन पीना शुरू कर दिया था। वीक्तर को मेरे पढ़ने न पढ़ने की कोई चिन्ता नहीं थी। जब सब सो जाते तो वह चुपचाप कपड़े पहनता और सज-धजकर सुबह तक के लिये बाहर खिसक जाता। मोमबत्ती मुझे नही दी जाती, उसे अपने साथ दूसरे कमरे मे ले जाया जाता और मै बिना रोशनी के रह जाता। मोमबत्ती खरीद लाने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। तब मै मोमबत्तियो के पिघले हुए मोम को चुपचाप बटोरने लगा और उसे एक खाली टीन की डिब्बिया मे जमा कर देता। मोम के ऊपर देव-प्रतिमा के दीये मे से कुछ तेल भी डाल लेता। फिर धागो को बटकर एक बत्ती बनाता और इस तरह तैयार किए अपने लैम्प को, जो रोशनी से अधिक धुआं देता था, अलावघर के ऊपर जमा देता।

भारी-भरकम जिल्दों के पन्नों को जब मैं पलटता तो लैम्प की नन्ही लाल लौ कांपने और दम तोड़ने लगती। बत्ती बार-बार खिसककर पिघले हुए सुगंध भरे तरल मोम में डूबने लगती, और धुए से मेरी आंखें कड़ुवा उठती। लेकिन ये सब झंझट-बाधाएं उस आनन्द में डूब जातीं जिसके साथ मै तस्वीरों को देखता और नीचे छपे परिचयों को पढ़ता।

ये चित्र मेरे सामने दुनिया को फैलाते और बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने उसे अद्‌भुत नगरो, गगनचुम्बी पहाड़ो और सुंदर समुद्र तटों से सजा दिया। जीवन मे एक सुंदर फैलाव आ रहा था। भांति-भांति के नगरों, लोगो और काम-धंधों की बहुलता धरती को और भी आकर्षक बना देती, वह मुझे और भी रंग-बिरंगी मालूम होती। अब वोल्गा के उस पार के विस्तारो को देखते हुए मै जानता था कि उनमें निरा सूनापन नही है। पहले इन विस्तारो को जब मै देखता था तो अदबदाकर उदास हो उठता था: अन्तहीन सपाट चरागाहे, काले धब्बों सी इक्की-दुक्की झाड़ियां, चरागाहो से परे जंगल की कटी-फटी सी दीवार, चरागाहो के ऊपर धुंधली सी ठंडी नीलिमा। सूनी और उदास धरती। मेरा हृदय भी सूना हो जाता,

एक कोमल उदासी उसे मथनी सभी अरमान मरझा जाते सोचने के लिए कुछ बाकी न रहता, आंख मूद लेने को जी चाहता वीरानी का यह आलस, हृदय की हर आकांक्षा को सोख लेता, आशा उसके स्पर्श से बेजान हो जाती।

चित्रों के नीचे लिखे मजमूनो ने सीधी-सादी भाषा मे दूसरे देशो और दूसरे लोगो से मेरा परिचय कराया, अतीत और वर्तमान की बहुत सी घटनाओ के बारे मे बताया जिनमे से कई मेरी समझ में न आतीं, और इससे मेरा हृदय कचोट उठता। कभी-कभी, तीर की भांति, कुछ विचित्र शब्द मेरे दिमाग से आकर टकराते: 'अधितारिवकी', 'किलियज्म', 'चार्टिस्ट' आदि। ये शब्द मेरे जी का जंजाल बन जाते और मेरे दिमाग में घुसकर इतना फैलते-बढ़ते कि उनके सिवा और कुछ सुझाई न देता, और मुझे ऐसा लगता कि इन शब्दों के अर्थ का पता लगाए बिना मेरी समझ में कभी कुछ नहीं आएगा, मानो ये शब्द प्रहरियो की भांति सभी रहस्यों के द्वार पर खड़े हों। बहुधा, समूचे के समूचे वाक्य मेरे दिमाग में अटककर रह जाते, मांस में घुसी फांस की भांति खटकते और मेरे लिए अन्य किसी ओर ध्यान लगाना असम्भव कर देते।

एक दिन मैंने अजीब पक्तिया पढ़ीं:

पहने हुए इस्पाती जामा
काला और मौत सा गम्भीर
हूणों का सरगना अतीला
रौंद रहा रेगिस्तानों को।

उसके पीछे उसके योद्धा, काली घटा की भांति, उमड़-उमड़कर गरज रहे थे:

कहां है रोम,
कहां है शक्तिशाली रोम?

यह तो मै जानता था कि रोम एक नगर है, लेकिन ये हूण कौन थे? मुझे अब इस रहस्य का उद्घाटन करना था।

अनुकूल अवसर देख मैंने अपने मालिक से पूछा।

"हूण?" उसने कुछ अचरज से कहा। "शैतान ही जानता है कि यह क्या है? होगी ऐसी ही कोई बकवास..."

फिर उसने नाराजी के भाव से सिर हिलाया :

"पेशकोव, दुनिया भर का कबाड़ तूने अपने दिमाग में जमा कर लिया है, यह बहुत बुरा है!"

बुरा हो चाहे भला, मुझे तो इसका पता लगाना ही था।

मैंने अन्दाज लगाया कि हो न हो, फ़ौज के पादरी सोलोव्योव को जरूर मालूम होगा कि हूण कौन थे। अहाते मे मुठभेड़ होने पर मैंने उसके सामने अपना मसला पेश कर दिया।

वह एक मरियल सा आदमी था : पीले रंग का, रोगी और सदा चिड़चिड़ा। उसकी आंखे लाल थी, भौहें नदारद और छोटी सी पीली दाढ़ी।

"तुझे हूणों से क्या लेना?" अपनी काली लाठी को धूल में धंसाते हुए उसने उल्टे मुझे ही कुरेदा।

लेफ़्टिनेन्ट नेस्तेरोव के सामने जब मैंने अपना सवाल रखा तो वह जोरों से चिल्लाया :

"क्या-आ-आ?"

तब मैंने दवाफरोश से पूछने का निश्चय किया। वह काफी मिलनसार मालूम होता था। समझदार चेहरा, भारी-भरकम नाक जिसपर सुनहरा चश्मा चढ़ा हुआ था।

"हूण," दवाफ़रोश पावेल गोल्डबर्ग ने मुझसे कहा, "किरगिजों की भांति खानाबदोश जाति के लोग थे। अब वे नही है--सब के सब मर-खप गए।"

मुझे बड़ी निराशा हुई और झुंझलाहट ने मुझे घेर लिया, इसलिए नही कि हूण मर-खपकर लोप हो गए थे, बल्कि इसलिए कि जिस शब्द ने मुझे इतना सताया, उसका अर्थ इतना साधारण और मेरे लिए इतना बेकार सिद्ध हुआ।

फिर भी हूणों का मैं बेहद कृतज्ञ था। उन्हें लेकर इतनी परेशानियों में से गुजरने के बाद शब्द मुझे कम सताने लगे। और भला हो अतीला का, उसकी वजह से दवाफ़रोश से मेरी जान-पहचान हो गई।

भारी-भरकम और पण्डिताऊ शब्दो का सीधा-सादा अर्थ उसे मालूम था और हर रहस्य की कुंजी उसके पास थी। हाथ की दो उगलियो से वह अपने चश्मे को ठीक करता और मोटे शीशों के भीतर से घूरकर मेरी

आंखों मे देखता और इस तरह बोलना शुरू करता मानो अपने शब्दों को, कीलों की भांति, वह मेरे दिमाग मे ठोंक रहा हो:

"शब्द, मेरे मित्र, उसी तरह होते है जैसे पेड़ मे पत्ते, और यह जानने के लिए कि पत्तो का रूप-रंग ऐसा ही क्यो है, किसी दूसरे प्रकार का क्यो नहीं, यह जानना जरूरी है कि पेड किस प्रकार बढ़ता-पनपता है, अध्ययन करना चाहिए। पुस्तके, मेरे मित्र, एक सुन्दर बाग के समान है, जिसमें तुम्हे हर वह चीज मिलेगी जो सुहावनी और लाभदायक है..."

बड़े-बूढ़ो के वास्ते सोडा और मैगनीशिया लाने जिन्हे हमेशा पेट और छाती में जलन की शिकायत रहती थी, और छोटों के वास्ते लारेल का मरहम तथा अन्य छोटी-मोटी दवाइयां लाने मुझे अक्सर दवाफरोश की दुकान के चक्कर लगाने पडते। दवाफरोश की नपी-तुली सीखो की बदौलत पुस्तको के साथ मेरा लगाव और भी गहरा हो गया और अनजाने मे वे मेरे लिये उतनी ही अनिवार्य हो उठीं जितनी कि एक शराबी के लिए वोद्का।

पुस्तकें मुझे एक दूसरी दुनिया की सैर कराती, जिसमे आशा-आकांक्षाओ का सागर हिलोरे लेता, उसके भंवर में पड़कर लोग भले से भले और बुरे से बुरे काम करते। लेकिन जिस तरह के लोगो को मै अपने चारो ओर देखता था, उनमें न भले काम करने की सकत थी, न बुरे। किताबो मे जो कुछ लिखा था, उससे सर्वथा भिन्न–एकदम अलग जीवन वे बिताते थे, और उनके इस जीवन में खोजने पर भी कोई दिलचस्प चीज नजर नहीं आती थी। जो हो, एक चीज मेरे दिमाग मे साफ थी–वह यह कि मै वैसा जीवन नहीं बिताना चाहता था, जैसा कि वे बिताते थे...

चित्रों के नीचे मजमूनो से मुझे पता चला कि प्राग, लन्दन और पेरिस में, नगर के बीचोंबीच, न तो कूड़ा-करकट के पहाड़ दिखाई देते हैं, न गंद भरे नाले नजर आते हैं। वहां की सड़कें चौड़ी और सीधी होती हैं, और इमारतें तथा गिरजे सर्वथा भिन्न। और वहां के लोग लम्बे जाड़ो के मारे पूरे छः महीनों तक घरो में बन्द नही रहते, न ही वहां व्रत-उपवास के पैंतालीस दिन होते है जिनमे नमकीन बंदगोभी, खुमियों, जौ के आटे, और अलसी के घिनौने तेल मे तैरते आलुओ के सिवा और कुछ नहीं खाया जा सकता। व्रत-उपवास के दिनो मे पढ़ना गुनाह होता है इसलिए "चित्र-जगत" को उठाकर रख दिया गया, और मुझे भी इस सूने उपवासी जीवन का अंग बनने के लिए मजबूर किया

गया अब किताबों के जीवन से इस जीवन की तुलना करने के बाद मुझे यह और भी बेरंग, और भी बदनुमा मालूम होता। पुस्तकें पढ़ने पर मुझे लगता कि मेरी शक्ति बढ़ गई है, मैं अधिक स्वस्थ बन गया हूं और मै भारी लगन तथा आपा भूलकर काम मे जुट जाता था, क्योंकि मेरे सामने अब एक लक्ष्य होता: वह यह कि जितनी जल्दी काम खत्म होगा, उतना ही अधिक समय मुझे पढ़ने के लिए मिलेगा। अब किताबो के न रहने पर मै सुस्त और काहिल हो गया था, खोया-खोया सा घूमता, और एक ऐसी विकृत बेखबरी ने मुझे जकड लिया जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नही हुआ था।

मुझे याद है कि उन्हीं नीरस दिनो में एक रहस्यमय घटना घटी। सांझ का समय था सब लोग सोने की तैयारिया कर रहे थे। तभी बडे गिरजे का घंटा एकाएक बजना शुरू हुआ। सकपकाकर सभी लोग चौंके, और अधूरे कपड़ो में ही खिड़कियों पर जा खड़े हुए।

"यह खतरे का घंटा है? क्या कहीं आग लगी है?" वे एक-दूसरे से पूछ रहे थे।

अन्य घरों से भी लोगो के इधर-उधर डोलने और दरवाजों को बन्द करने की आवाजें आ रही थीं। एक आदमी, घोडे की लगाम थामे, अहाते मे भाग रहा था। बूढ़ी मालकिन चिल्ला रही थी कि गिरजा लूटा गया है। मालिक ने उसका मुंह बन्द करते हुए कहा:

"चुप भी रहो, मां, साफ़ तो सुनाई दे रहा है कि यह खतरे का घंटा नहीं है!"

"तब फिर क्या है, कही बडे पादरी तो नही मर गए!"

वीक्तर अपने तख्ते से नीचे उतर आया।

"मैं जानता हूं कि क्या हुआ है, मुझे सब मालूम है," कपड़े बदन पर डालते हुए वह बुदबुदा रहा था।

यह देखने के लिए कि कहीं आकाश में आग की दमक तो नजर नहीं आती, मालिक ने मुझे अटारी पर दौड़ा दिया। लपककर मै ऊपर चढ़ गया और रोशनदान मे से बाहर छत पर निकल आया। आकाश मे कहीं कोई लाली नहीं दिखाई दे रही थी। गिरजे का बड़ा घंटा अभी भी उसी गति से स्थिर और पालामारे वायुमण्डल को गुंजा रहा था। उनींदा नगर धरती से चिपटा हुआ था। नजर की पहुंच से बाहर लोग दौड़ रहे थे

और उनके पांवों के नीचे बर्फ के कचरने की आवाज आ रही थी। बर्फ पर गाड़ियों के दौड़ने की आवाज भी सुनाई पड़ रही थी। गिरजे के बड़े घंटे की आवाज हृदय को अधिकाधिक कंपा रही थी। मैं नीचे उतर आया। मैंने कहा :

"नहीं, आग तो नहीं लगी है।"

मालिक ने मेरी बात को सुना-अनसुना करते हुए "टटटट" की आवाज की। वह कोट और टोपी पहने था। उसने अपना कालर ऊपर खींच लिया और अनिश्चयता के साथ जूतों में पांव डालने लगा।

"बाहर न जाओ! मेरी मानो, बाहर न जाओ..." उसकी पत्नी ने रोकना चाहा।

"बको नहीं!"

वीक्तर भी कोट और टोपी पहने था और यह कहकर सभी को खिझा रहा था :

"मैं सब जानता हूं..."

जब दोनों भाई चले गए तो स्त्रियों ने मुझे समोवार गरम करने में जोत दिया और खुद खिड़कियों पर जमकर बैठ गईं। उसी समय मालिक ने दरवाजे की घंटी बजाई, तेज डगों से चुपचाप ऊपर आया, बड़े कमरे का दरवाजा खोला और भरभराई सी आवाज में घोषित किया :

"जार का कत्ल हो गया!"

"क्या कहा, जार की हत्या कर दी गई?" बुढ़िया ने चौंककर कहा।

"हां, कत्ल हो गया है। एक अफ़सर ने मुझे बताया। अब क्या होगा?"

इसी बीच वीक्तर ने दरवाजे की घंटी बजाई और अपना लबादा उतारते हुए झुंझलाहट में बोला :

"और मैंने तो सोचा था लड़ाई छिड़ गयी!"

इसके बाद सब शान्त होकर चाय पीने बैठ गए और चौकन्ने से होकर दबे स्वरों में बातें करने लगे। बाहर अब सन्नाटा छाया था। घंटे का बजना बंद हो गया था। दो दिनों तक वे लोग लगातार फुसफुसाते रहे, कहीं बाहर जाते और उनके यहां भी लोग आते और बारीकी के साथ किसी बात का वर्णन करते। मैंने बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मैं समझ नहीं सका कि आखिर हुआ क्या है। मालिक समाचारपत्र मुझसे छिपाते

थे, और जब सीदोरोव से मैंने यह सवाल किया कि ज़ार को क्यों मार डाला गया, तो वह धीमे स्वर से बोला:

"इस बारे में बातें करना मना है..."

समूची घटना जल्दी ही आई-गई हो गई, आए दिन के जीवन की घिस-घिस ने उसे पीछे डाल दिया, और इसके कुछ बाद ही एक बहुत ही अप्रिय घटना घटी।

रविवार का दिन था। परिवार के लोग सुबह की प्रार्थना में शामिल होने गिरजे गए थे। और मैं, समोवार गर्माने के बाद, घर की सफ़ाई करने में जुटा था। इसी बीच बड़ा बच्चा रसोईघर में घुस गया, समोवार की टोंटी को खींचकर उसने बाहर निकाल लिया और मेज के नीचे रेंगकर उससे खेलने लगा। समोवार के बीच के नलके में कोयले दहक रहे थे, जब सारा पानी निकल गया तो समोवार बुरी तरह गर्मा गया और उसके जोड़ तड़कने लगे। दूसरे कमरे में मैंने समोवार को गुस्से में भरकर अजीब आवाजें करते सुना। लपककर मैं रसोईघर में पहुंचा। यह देखकर मैं कांप उठा कि वह एकदम नीला पड़ गया है, और इस तरह कांप रहा है मानो उसे मिर्गी का दौरा पड़ा हो। जोड़ खुला नलका जिसमें टोंटी लगी थी, निराशा से गरदन लटकाए था, ढक्कन एक ओर खिसक गया था, हत्थों के नीचे टिन पिघल गया था और बूंद-बूंद टपक रहा था, और नीला-काला पड़ा समोवार ऐसा मालूम होता था मानो वह नशे में धुत्त हो। जब मैंने उसपर ठंडा पानी उंडेला तो वह सनसनाया और उदास भाव से फ़र्श पर ढह गया।

दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजा खोलते ही बूढ़ी ने पहला सवाल समोवार के बारे में किया:

"समोवार तो तैयार है न?"

"हां, तैयार है," संक्षेप में जवाब देकर मैं चुप हो गया।

भय और शर्म से कटकर ही मैंने शायद यह संक्षिप्त सा उत्तर दिया था। लेकिन यह भी मेरी गुस्ताखी में शुमार हो गया और उसी हिसाब से मेरी सज़ा भी दुगुनी कर दी गई। मेरी पिटाई की गयी। बुढ़िया ने देवदार की छिपटियों का इस्तेमाल किया। इनसे मुझे बहुत दर्द नहीं हुआ लेकिन पीठ पर त्वचा में अनगिनत फांसें खूब गहरी घुस गईं। सांझ तक

मेरी पीठ सूजकर तकिए की भांति हो गई, और अगले दिन दोपहर तक मेरे मालिक को मुझे लेकर अस्पताल जाना पड़ा।

डाक्टर इतना लम्बा और इतना पतला था कि देखकर हंसी छूटती थी। उसने मेरी जांच की, और फिर गहरी, स्थिर आवाज़ में बोला:

"इस जुल्म की मैं सरकारी हैसियत से रिपोर्ट करूंगा।"

मालिक का चेहरा लाल हो उठा, वह पांव घसीटने लगा, फिर बुदबुदाकर उसने डाक्टर से कुछ कहा, लेकिन डाक्टर ने अपनी नज़र से उसका सिर लांघकर कहीं दूर देखते हुए दो टूक शब्दों में कहा:

"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

फिर मेरी ओर मुड़ा। पूछा:

"क्या तुम शिकायत दर्ज कराना चाहते हो?"

मुझे बेहद दर्द हो रहा था लेकिन मैंने कहा:

"नहीं। जल्दी से मेरा इलाज करो।"

मुझे दूसरे कमरे में ले जाया गया, मेज पर मुझे लिटाकर डाक्टर ने चिमटी से फांसों को निकालना शुरू किया। चिमटी का ठंडा स्पर्श गुदगुदाता सा मालूम होता था। डाक्टर अपना काम भी करता जाता था, और बोलता भी जाता था:

"तुम्हारी चमड़ी को अच्छा संवारा है इन लोगों ने, दोस्त। इसके बाद तुम वाटरप्रूफ हो जाओगे..."

डाक्टर असहाय रूप से मुझे गुदगुदाते हुए जब अपना काम खत्म कर चुका तो बोला:

"बयालीस फांसें निकाली हैं, दोस्त, मैंने। याद रख लो, कभी शेखी बघारोगे। कल इसी समय आकर अपनी पट्टी बदलवा जाना। क्या तुम्हारी अक्सर मरम्मत करते है?"

"पहले अक्सर किया करते थे," मैंने एक क्षण सोचकर कहा।

डाक्टर ने अपनी गहरी आवाज़ में ठहाका मारा।

"सब कुछ अच्छा हो रहा, दोस्त, सब कुछ!"

जब वह मुझे मालिक के पास वापस ले गया तो उससे कहा:

"संभालो इसे, बिल्कुल नया बना दिया है। कल इसे फिर भेज देना पट्टी करवाने के लिए। तुम्हारी खुशकिस्मती है कि लड़का हंसोड़ है..."

गाड़ी में बैठकर जब हम घर लौट रहे थे तो मालिक ने कहा:

"पेशकोव, मैं भी खूब पिटता था। क्या किया जाये? और कितनी बुरी तरह मुझे मारते थे! तुम्हारे साथ कम से कम इतना तो है कि मैं थोडी-बहुत सहानुभूति दिखा सकता हूं, लेकिन मेरे साथ तो कभी कोई सहानुभूति नही दिखाता था। लोगो की यों कमी नही थी, लेकिन सहानुभूति के दो शब्द कहने के लिए कोई पास तक न फटकता... ओह, कुड़क-मुर्गियो!"

रास्ते भर वह बुरा-भला कहता रहा। मुझे उसपर तरस आया, और कृतज्ञता का भी मैंने अनुभव किया कि वह मेरे साथ इंसानो की तरह बाते कर रहा है।

जब हम घर पहुंचे तो सबने इस तरह मेरा स्वागत किया मानो वह मेरा जन्मदिन हो। स्त्रियो ने मुझे बैठाकर सारा हाल सुना कि डाक्टर ने किस तरह फांसों को निकाला और क्या-क्या कहा। वे सुनतीं और बीच-बीच में आह, आह की ध्वनि करती जातीं, अपने होठो पर जीभ फेरकर चटकारा लेती और इस या उस बात पर भौंहें चढाती। बीमारी-ईकारी में, दुःख और दर्द मे, हर उस चीज में जो आदमी को परेशान कर सकती है, उनकी विकृत दिलचस्पी ने मुझे चकित कर दिया।

मैंने देखा कि वे इस बात से खुश थीं कि मैंने उनके खिलाफ शिकायत दर्ज कराने से इनकार कर दिया। इससे उत्साहित होकर मैंने उनसे कहा कि अगर इजाजत हो तो कटर की पत्नी से पुस्तके मांग लाया करूं। उनसे अब इनकार करते नहीं बना, सिर्फ़ बुढिया ने चकित होकर कहा:

"बड़ा शैतान है तू!"

अगले ही दिन मैं कटर की पत्नी के सामने खड़ा था, और वह प्यार के साथ मुझसे कह रही थी:

"मैंने तो सुना था कि तुम बीमार पड़ गए हो और तुम्हें अस्पताल पहुंचा दिया गया है। देखो न, लोग भी कैसी-कसी अफ़वाह उड़ाते हैं?"

मैंने उसकी बात को काटा नहीं। उसे सच बात बताते मुझे शर्म मालूम हुई – ऐसी औघड़ और जी भारी करनेवाली बाते कहकर आखिर उसे क्यो परेशान किया जाए? मेरे लिए यही क्या कम खुशी की बात थी कि वह अन्य लोगों की तरह नहीं थी।

मैंने अब बड़े ड्यूमा, पौनसौन-द-तैरेल, मौन्तेपिन, जाकोल्ने,

गाबोरिओ, एमर और बुआगोबे की मोटी-मोटी जिल्दों को पढ़ना शुरू किया। मैं इन पुस्तकों को, एक के बाद एक, तेजी से पढ़ गया, और इन्हें पढ़कर मेरा हृदय खुशी से नाच उठा। मुझे लगा कि जैसे मैं उनके असाधारण जीवन का एक हिस्सा बन गया हूं। मधुर भावों का मुझमें संचार हुआ और स्फूर्ति का मैंने अनुभव किया। एक बार फिर हाथ का बना मेरा लैम्प चेतन होकर धुआं छोड़ने लगा, मैं रात भर, पौ फटने तक पढ़ता ही रहता। मेरी आंखें दुखने लगीं और बूढ़ी मालकिन मीठी आवाज में बोली:

"जरा ठहर, किताबचाटू! तेरे दीदे फूट जायेंगे, अंधा हो जायेगा!"

शीघ्र ही मैंने देखा कि ये तमाम दिलचस्प पुस्तकें, कथानकों में विविधता और मौके-महल में भिन्नता के बावजूद, एक सी बात कहती है। वह यह कि जो भले लोग हैं, वे हमेशा दुःख उठाते है और बुरे लोगों के हाथों उन्हें अनेक मुसीबतों का शिकार होना पड़ता है। बुरे लोग, भलों के मुकाबले में ज्यादा मजे में रहते है और उनसे ज्यादा चतुर होते है। और अन्त में, किसी चमत्कार के सहारे बुराई की सदा हार होती है और भलाई की सदा जीत। 'प्रेम' से भी मेरा जी उकता गया, जिसके बारे में पुस्तकों के सभी पुरुष और सभी स्त्रियां, सदा एक सी भाषा में, बातें करते थे। इससे मन तो ऊबता ही, साथ ही अनेक धुंधले सन्देहों को वह जन्म देता।

कभी-कभी, कुछ पन्ने पढ़ने के बाद ही यह साफ हो जाता कि अन्त में किसकी जीत होगी, और किसकी हार। और कथानक की गुत्थी का एकाध सिरा हाथ में आते ही मैं खुद उसे खोलना शुरू कर देता। पुस्तक को मैं अलग रख देता, गणित के सवाल की भांति मैं उसपर दिमाग लड़ाने लगता, और मेरे हल अधिकाधिक सही निकलते,—यह कि किस पात्र को हर तरह के सुखों का स्वर्ग नसीब होगा, और किसको जहन्नुम रसीद किया जायेगा।

लेकिन इस सब के पीछे मुझे सजीव और मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण सच्चाई की झलक मिलती थी, अन्य जीवन, अन्य संबंधों के दृश्य नजर आते थे। मैं अब साफ़-साफ़ देखता कि पेरिस के गाड़ीवान, मेहनत-मजदूरी करनेवाले, सैनिक और अन्य सब "निम्न" लोग नीज्नी नोव्गोरोद, कज़ान और पेर्म की ऐसी ही तलछट से भिन्न है, साहबों के सामने उनकी बोलती

बंद नहीं होती, उनके सहज भाव और स्वतंत्र चेतना को पाला नहीं मारता, खुलकर और साहस से वे बातें करते हैं। इस एक सैनिक को ही लीजिए जो उन सभी सैनिकों से भिन्न था जिनसे कि मेरा वास्ता पड़ चुका था— न वह सीदोरोव से मिलता था, न उस सैनिक से जिसे मैंने जहाज़ पर देखा था, न येर्मोखिन से। उसमें कहीं ज्यादा आदमियत थी। स्मूरी से वह कुछ-कुछ मिलता था, लेकिन उसमें स्मूरी जितना भोंडापन और पाशविकता नहीं थी। या फिर इस दुकानदार को लीजिए। वह भी उन सभी दुकानदारों से अच्छा था जिन्हें कि मैं जानता था। यही बात पादरियों के बारे में थी। वे भी मेरे जाने-पहचाने पादरियों से भिन्न थे। लोगों के साथ वे अधिक प्रेम और सहानुभूति का बरताव करते थे। कुल मिलाकर यह कि पुस्तकों के पन्नों में चित्रित दूसरे देशों का जीवन उस जीवन से ज्यादा अच्छा, ज्यादा सहज और ज्यादा दिलचस्प मालूम होता था जिसे कि मैं अपने चारों ओर देखता था। दूसरे देशों में लोग इतना अधिक और इतनी बर्बरता से नहीं लड़ते थे, आदमी के साथ उस तरह का कुत्सित खिलवाड़ नहीं करते थे जैसा कि जहाज के यात्रियों ने उस सैनिक के साथ किया था, और भगवान से प्रार्थना करते समय उस तरह की कुढ़न और जलन का परिचय नहीं देते थे जो बूढ़ी मालकिन में दिखाई देती थी।

पुस्तकों में खल-पात्रों की, कमीने और कफ़न खसोटनेवाले लोगों की कमी नहीं थी। और इस बात की ओर ख़ास तौर से मेरा ध्यान गया कि पुस्तकों के इन खल-पात्रों में भी समझ में न आनेवाली वह क्रूरता, और दूसरों को सताने की वह धुन नहीं दिखाई देती जिससे कि मैं इतना परिचित था। पुस्तकों के खल-पात्र क्रूरता का परिचय देते थे, लेकिन तभी जब उन्हें कोई मतलब साधना होता था। उनकी क्रूरता, बहुत कर ऐसी नहीं होती थी कि समझ में न आए। लेकिन मैं जिस क्रूरता से परिचित था, उसमें कोई तुक नहीं दिखाई देती थी, बिल्कुल बेमानी और बेमतलब, मनबहलाव के सिवा जिसका और कोई लक्ष्य नहीं था और जिससे किसी फ़ायदे की आशा नहीं थी।

हर नयी पुस्तक, रूस और दूसरे देशों के जीवन के बीच इस अन्तर और उनके भेद को उभारकर रखती, धुंधला असन्तोष मेरे हृदय में उमड़ता, और मेरा यह सन्देह जोर पकड़ने लगता कि इन पीले पड़े तथा गंदे कोनों वाले पन्नों में जो कुछ लिखा है, वह एकदम सच नहीं है।

अचानक गौनकोर्ट का उपन्यास "जम्गान्नो बन्धु" मेरे हाथों में पड़ा। मैंने उसे फौरन पढ़ डाला और एक नयी अनुभूति से विस्मित सा, जिसका मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था, मैं इस सीधी-सादी दुःख भरी कहानी को दुबारा पढ़ने लगा। इसमें न तो कोई पेचीदा कथानक था, न ही फालतू बनाव-सिंगार की चकाचौंध थी। यहां तक कि शुरू में यह कुछ रूखा और सन्तों की जीवनियों की भांति गम्भीर मालूम हुआ। इसकी भाषा इतनी नपी-तुली और सिंगार से इतनी कोरी थी कि पहले-पहल बड़ी निराशा हुई, लेकिन कुछ देर बाद ही उसके संक्षिप्त से शब्दों और सबल वाक्यों ने तीर की भांति सीधे मेरे हृदय में प्रवेश करना शुरू किया और इसने नट-बन्धुओं के जीवन-संघर्ष का इतना सजीव और सच्चा चित्र मेरी आंखों के सामने खड़ा कर दिया कि मेरे हाथ यह किताब पढ़ने के आनंद से कांपते थे। और उस समय जब मुसीबतों का मारा नट टूटी टांगें लिए बड़ी मुश्किल से ऊपर चढ़कर अपने भाई के पास पहुंचा जो अटारी में छिपकर जान से भी प्यारी अपनी नट-कला का अभ्यास कर रहा था, तो मैं फूट-फूटकर रोने लगा।

इस अद्भुत पुस्तक को कटर की पत्नी को लौटाते हुए मैंने इस जैसी ही एक और पुस्तक देने का अनुरोध किया।

"इस जैसी ही का क्या मतलब, भला?" उसने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ कहा।

उसकी इस व्यंग्यपूर्ण मुस्कान से मैं सहम गया और उसे यह समझा नहीं सका कि 'इस जैसी ही' से मेरा क्या मतलब है। वह बोली:

"यह कोई मजेदार पुस्तक नहीं है। जरा ठहरो, मैं तुम्हें एक बढ़िया पुस्तक ला दूंगी, बहुत ही दिलचस्प..."

कुछ ही दिन बाद उसने मुझे ग्रीनवुड कृत "एक आवारा लड़के की सच्ची कहानी" दी। पुस्तक का नाम मुझे कुछ चुभा, लेकिन पहला पन्ना पढ़ते न पढ़ते मेरे हृदय में आनंद की मुस्कान खिल गयी और इस मुस्कान के साथ ही मैंने पूरी पुस्तक अंत तक पढ़ डाली। कितने ही अंशों को तो दो-दो, तीन-तीन बार तक पढ़ गया।

तो दूसरे देशों में भी छोटे लड़कों को कुछ कम मुसीबतें नहीं उठानी पड़ती है! मेरी तो हालत इतनी बुरी बिल्कुल नहीं है सो हिम्मत खोने की कोई बात नहीं है!

ग्रीनवुड ने मुझे बड़ा सहारा दिया और इसके शीघ्र बाद ही एक ऐसी पुस्तक हाथ लगी जो सचमुच में 'सही ढंग' की थी—"यूजेनी ग्राण्डे"।

बूढ़े ग्राण्डे की कहानी पढ़कर मेरी आंखों के सामने अपने नाना का सजीव चित्र खड़ा हो गया। मुझे खेद हुआ कि पुस्तक इतनी छोटी है और साथ ही अचरज भी हुआ कि इसमें कितनी सचाई भरी है। यह एक ऐसी सचाई थी, जो मेरे लिए जानी-पहचानी थी तथा जिससे जीवन में मैं ऊब चुका था। लेकिन पुस्तक ने इसे एक नयी रोशनी में—शांत, कटुतारहित ढंग से प्रस्तुत किया। गौनकोर्ट को छोड़कर अन्य जितने भी लेखक मैंने पढ़े थे, मेरे मालिकों की भांति वे सब भी उतने ही निर्मम और चिड़चिड़े ढंग से लोगों की निंदा करते, अक्सर पाठक खल-नायक से सहानुभूति करने लगता और भले पात्रों की 'भलमनसाहत' से तंग आ जाता। यह देखकर मैं हमेशा परेशान हो उठता कि लाख सिर खपाने और हाथ-पांव मारने के बाद भी आदमी अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता, आगे नहीं बढ़ पाता—शुरू से लेकर आखिर के पन्ने तक, कदम-क़दम पर, यह भलमनसाहत ही उसके मार्ग में आड़े आती। पत्थर की दीवार की तरह वह उसके प्रयत्नों को विफल करती। माना कि खल-नायक की सारी चालें और सारे इरादे इस दीवार से टकराकर चकना-चूर हो जाते, लेकिन दीवार कोई ऐसी चीज नहीं होती कि उसके लिए हृदय में प्यार जगे, हृदय उसके साथ कुछ लगाव अनुभव करे। पत्थर की दीवार अपने आप में चाहे जितनी सुन्दर और मजबूत क्यों न हो, लेकिन उस आदमी को जिसके हृदय में दीवार के दूसरी ओर उगे सेबों को पाने की ललक है, न तो दीवार की सुन्दरता भली लगेगी, न उसके पत्थरों की मजबूती। और मुझे यह लगने लगा था कि जीवन में अधिकाधिक मूल्यवान और सजीव जो कुछ भी है, वह कहीं भलमनसाहत के पीछे छिपा हुआ है...

गौनकोर्ट, ग्रीनवुड और बाल्जाक के उपन्यासों में न तो खल-नायक थे और न भले नायक। केवल सीधे-सादे लोग थे, इतने सजीव कि देखकर अचरज होता। वे इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ते कि उन्होंने जो कुछ कहा या किया वह सब सचमुच ठीक उसी रूप में कहा या किया गया होगा, और ठीक इसी रूप में उसे कहा या किया जा सकता है, अन्य किसी रूप में नहीं।

अब मेरे लिए वह सुख कोई बेगानी चीज नहीं रहा जो किसी अच्छी पुस्तक, 'सही ढंग' की पुस्तक को पढ़ने से प्राप्त होता है। लेकिन ऐसी पुस्तकें पाना भी एक समस्या थी। कटर की पत्नी इसमें मेरी कोई मदद नहीं कर सकी।

"लो, यह कुछ अच्छी पुस्तकें है," कहती और मुझे आर्सेन होस्साये कृत "गुलाब, स्वर्ण और रक्त से रंजित हाथ" या बैलेयू, पाल द-काक अथवा पाल फेवाल के उपन्यास थमा देती। लेकिन ऐसी पुस्तकों को पढ़ना अब मुझे क़ाफ़ी भारी मालूम होता।

मरियाट और वर्नर के उपन्यास उसे पसंद थे, लेकिन मैं उन्हे पढकर ऊब गया। न ही मुझे श्पील्हागेन के उपन्यास पसन्द आए। लेकिन अवर्बाख की कहानियां मुझे खूब अच्छी लगीं। स्यू और ह्यूगो मुझे इतने पसन्द नही आए जितने कि वाल्टर स्काट। मैं ऐसी पुस्तकें चाहता जिन्हे पढकर मेरे हृदय के तार झनझना उठें, मेरा रोम-रोम ख़ुशी से नाच उठे, जो लेखनी के जादूगर बाल्जाक की पुस्तकों की भांति हों। चीनी की गुडिया के समान सुन्दर कटर की पत्नी भी अब मुझे कम अच्छी लगने लगी।

उसके यहां जाने से पहले मैं साफ़ सी कमीज पहनता, बालों में कंघी करता और हर वह उपाय करने में कोई कसर नहीं छोड़ता जिससे कि मैं कुछ भला दिख सकूं। इसमे कितनी सफलता मुझे मिलती थी, यह तो पता नहीं, लेकिन इतनी उम्मीद मैं अवश्य करता था कि भले आदमियो जैसी मेरी इस सजधज को देखकर वह मुझसे अधिक सहज और मित्रतापूर्ण भाव से बातें करेगी, और अपने साफ-सुथरे चेहरे को बिल्लौरी मुस्कान से मुक्त रखेगी। लेकिन वह मुसकराये बिना न रहती और थकी हुई सी मधुर आवाज में पूछती:

"तुमने पढ़ लिया इसे? पसन्द तो आई न?"

"नहीं।"

वह अपनी बारीक भौंहों को हल्का सा बल देती, और उसांस भरकर अपने उसी परिचित स्वर में गुनगुनाती:

"लेकिन क्यों?"

"यह सब तो मैं पहले ही पढ़ चुका हूं।"

"यह सब क्या?"

"यही प्रेम-प्रेम की बातें..."

आखें सिकोड़कर वह मीठी हंसी हंसती।

"अच्छा! पर प्रेम की बातें तो सभी पुस्तकों में लिखी होती हैं!"

बड़ी सी आरामकुर्सी पर बैठे हुए वह अपने छोटे-छोटे पावों को झुलाती, जिनमे वह रोएदार स्लीपर पहने थी, जम्हाई लेती, आसमानी लबादे को खींचकर अपने कंधों से जरा और सटा लेती तथा गोद में पड़ी पुस्तक को अपनी गुलाबी उंगलियों के छोरों से ठकठकाती।

मेरा जी चाहता कि उससे पूछूं:

"आप यहां से किसी दूसरी जगह क्यों नहीं चली जातीं? अफ़सर अभी भी आपके पास चिटें भेजते हैं और आपका मजाक उड़ाते हैं..."

लेकिन मेरा साहस साथ न देता और मैं, हाथ में 'प्रेम' सम्बन्धी मोटी पुस्तक और हृदय में निराशा लिए, वहां से चला आता।

अहाते में अब उसका और भी कुत्सित तथा बेहूदा मजाक उड़ाया जाता, दुनिया भर की उल्टी-सीधी बातें उसके बारे में की जातीं। इन गंदी और शायद झूठी बातों को सुनकर मेरा हृदय कचोट उठता। जब मैं उसके सामने न होता तो मुझे उसपर तरस आता, और उसे लेकर अनेक आशंकाएं मेरे हृदय को कुरेदने लगतीं। लेकिन जब मैं उसके सामने होता और उसकी पैनी आंखों, बिल्ली की भांति लचीले शरीर और हमेशा उल्लास भरे उसके चेहरे पर नजर डालता तो मेरी सारी हमदर्दी और आशंकाएं कोहरे की भांति गायब हो जातीं।

बसन्त में वह एकाएक कहीं चली गई और इसके कुछ ही दिन बाद उसके पति ने भी घर छोड़ दिया।

उनके कमरों में अभी कोई नया किरायेदार नहीं आया था, वे खाली पड़े थे। मैंने उनका चक्कर लगाया। सूनी दीवारों पर तुड़ी-मुड़ी कीलों या उनके छेदों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता था। दीवार के वे स्थल जहां तस्वीरें लटकी थीं, साफ़ उभरे हुए दिखाई देते थे। रोगनदार फर्श पर रंग-बिरंगे कपड़ों के चिथड़े, कागज के टुकड़े, दवाइयों की टूटी-फूटी डिबियां, इत्र की शीशियां और उनके बीच पीतल की एक बड़ी पिन दिखाई पड़ रही थी।

यह सब देखकर मेरा जी उदास हो गया और कटर की पत्नी को एक बार और देखने तथा उसके सामने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरा मन ललकने लगा...

कटर की पत्नी के चले जाने से भी पहले से हमारे घर के निचले हिस्से में काली आंखों वाली एक युवा महिला आ बसी थी। साथ में एक छोटी बच्ची और महिला की मा भी थी। मा बुढ़िया थी। उसके बाल सफ़ेद हो गए थे और कहरुबे के सिगरेट-होल्डर को मुह मे दबाए चौबीसो घंटे सिगरेट का धुआं उड़ाती रहती थी। युवा महिला बेहद खूबसूरत, गर्वीली और सब को अंगूठे के नीचे रखनेवाली थी। आवाज गहरी और मधुर, लोगों से बोलते समय वह कुछ इस अन्दाज से अपना सिर पीछे की ओर फेंकती तथा आंखो को सिकोड़ लेती मानो वे इतनी दूर हों कि साफ़-साफ़ न दिखाई पड़ते हों। क़रीब-क़रीब हर रोज उसका सैनिक नौकर जिसका नाम तुफायेव था, पतली टांगों वाले कत्थई घोड़े को लेकर उसके घर के सामने आ खड़ा होता और महिला इस्पाती रंग की घुड़सवारी की लम्बी मखमली पोशाक पहने, हाथो में कटोरीदार सफेद दस्ताने डाले और पांव में पीले ऊंचे बूट कसे बाहर निकल आती। एक हाथ से अपनी पोशाक का छोर थामे और बैंगनी पत्थर की मूठ वाला हण्टर पकडे दूसरे हाथ से वह घोड़े के नथुने थपथपाती। घोड़े की बत्तीसी चमक उठती, अपनी आंखों को वह घुमाता तथा कड़ी जमीन को खुरखुराता, और उसके समूचे बदन में एक सिहरन सी दौड़ जाती।

"रोबेर! रोबेर!" वह धीमे स्वर में गुनगुनाती और घोड़े की बहुत ही सुन्दर खमदार गरदन को जोर-जोर से थपथपाती।

फिर तुफ़ायेव के घुटने पर अपना पांव रखती, हल्के से उचककर फुरती से घोड़े पर सवार हो जाती और घोड़ा गर्व के साथ इठलाता-नाचता बाध के किनारे-किनारे चलने लगता। घोड़े पर वह कुछ इतने सहज भाव से बैठती मानो जन्म से ही घुड़सवारी करती आयी हो।

वह उन विरल सुन्दर स्त्रियों मे से थी जिनका सौन्दर्य सदा नया और निराला प्रतीत होता है, जिन्हें देखकर हृदय पर एक नशा सा छा जाता है, और रोम-रोम खुशी से नाचने लगता है। जब मैं उसकी ओर देखता तो ऐसा लगता कि डायना द-पौयतिये, रानी मार्गो, ला-वैलियेर तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की अन्य नायिकाओं का सौन्दर्य भी, बिला शक, ऐसा ही रहा होगा।

छावनी के फौजी अफ़सर उसे बराबर घेरे रहते। सांझ के समय उसके यहां खेला, प्यानो और गिटार बजाये जाते, नाच होते और गीत गाये जाते। अपनी ठिगनी टांगों पर उसके सामने फुदकने में आलेमोव नाम का एक मेजर अन्य सभी को मात कर देता। मोटा-ताज़ा बदन, सफ़ेद बाल और लाल चेहरा जिसकी चिकनाहट देखकर जहाज के किसी मैकेनिक के चेहरे का गुमान होता। वह गिटार बजाने में माहिर था, और युवा महिला के सामने इस तरह बिछ जाता था मानो वह उसका बहुत ही वफ़ादार और ज़मीन चूमनेवाला चाकर हो।

घुंघराले बालों वाली उसकी पांच वर्षीया बच्ची भी उतनी ही उज्ज्वल और सुन्दर थी जितनी कि वह खुद। अपनी बड़ी-बड़ी नीली सी आंखों से वह बड़े ही शान्त, गम्भीर और आशा भरे अन्दाज में देखती। उसकी इस गम्भीरता में बचपन से अधिक बड़प्पन का पुट दिखाई देता।

बच्ची की नानी पौ फटते ही उठ बैठती और गई रात तक घर के धंधों में जुटी रहती। भौंहें चढ़ा और मुंहबन्द तुफ़ायेव और थलथल तथा एंची-तानी महरी काम में बुढ़िया का हाथ बंटाती। बच्ची के लिए कोई आया नहीं थी और वह लगभग बिना किसी देख-भाल और निगरानी के, पल और बढ़ रही थी। ओसारे में या उसके सामने जमा कुन्दों के ढेर पर वह दिन भर खेलती रहती। सांझ होते ही मैं बहुधा उसके पास पहुंच जाता, उसके साथ खेला करता और वह मुझे बहुत प्यारी मालूम होती। शीघ्र ही वह मुझसे इतनी हिलमिल गई कि परियों की कहानियां सुनते-सुनते वह मेरी गोद में ही सो जाती। जब वह सो जाती तो मैं उठता और उसे अपनी बांहों में सभाले उसके बिस्तर पर सुला आता। देखते-देखते वह इतनी हिल गई कि जब तक मैं उसके पास जाकर उससे शुभरात्रि न कहता, वह सोने से इनकार कर देती। मैं उसके कमरे में पैर रखता, रोब के साथ वह अपना छोटा सा गुलाबी हाथ फैलाती और कहती:

"खुदा हाफिज कल तक के लिए। कैसे कहना चाहिए, नानी?"

"खुदा तुम्हें खैरियत से रखे," मुंह और पतली नाक में से धुएं की नीली धारें छोड़ते हुए उसकी नानी जवाब देती।

"खुदा तुम्हें खैलियत से लखे कल तक, औल मैं अब सोऊंगी।" वह दोहराती और लेस लगी अपनी रजाई में कुनमुनाने लगती।

कस तक नहीं बल्कि हमेशा खैरियत से रख उसकी नानी उसे ठीक करती।

"कल क्या हमेशा नहीं होता?"

'कल' शब्द से उसका खास लगाव था और जो भी चीज उसके मन को भाती उसे ही वह कल के खाने मे डाल देती। फूलो या टहनियो को वह मिट्टी मे गाड़ देती और कहती :

"कल यह बाग बन जाएगा..."

"एक दिन कल मै एक घोला खलीदूंगी और मम्मी की तलह उसपल सवाल होकल घूमने जाया कलूंगी..."

वह बहुत ही समझदार थी, लेकिन उत्साह और उछाह उसमे अधिक नहीं था। बहुधा खेलते-खेलते वह कुछ सोचने लगती और एकाएक पूछ बैठती :

"पादलियों के बाल औलतों जैसे को होते हैं?"

एक दिन कंटीली झाड़ी उसको चुभ गयी। वह उंगली से उसे धमकाते हुए कहने लगी :

"देखो, मैं भगवान से पलालथना कलूंगी औल वो तुम्हे बली सजा देंगे। भगवान सभी को सजा दे सकते है—मम्मी को भी..."

कभी-कभी एक शान्त, गम्भीर उदासी उसपर छा जाती, अपने बदन को वह मुझसे सटा लेती। नीली, आशा भरी आंखों से आकाश की ओर देखती और कहती :

"नानी कभी-कभी गुस्सा होती है, पल मम्मी कभी गुस्सा नहीं कलतीं, वो तो बस हंसती लहती हैं। मम्मी को सब पाल कलते हैं, कोंकि उनके मेहमान आते लहते हैं, आते लहते हैं औल मम्मी को देखते है, कोंकि वो बली सुंदल है। वो—पाली मम्मी है। ओलेसोव भी यही कहते है—पाली मम्मी!"

बचपन की भाषा में एक अनजानी दुनिया के बारे में जब वह मुझे बताती तो बड़ा अच्छा लगता। अपनी मां का जिक्र करते समय उसके उछाह और तत्परता का वारापार न रहता, एक नए जीवन की मुझे झांकी मिलती और रानी मार्गो की कहानी की मुझे याद हो आती। इससे पुस्तकों में मेरा बिश्वास और भी बढ़ता, अपने चारो ओर के जीवन में मैं और भी दिलचस्पी लेता।

एक दिन की बात है। साझ का समय था। मेरे मालिक घूमने गए थे और मैं, बच्ची को अपनी गोद में लिए, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। बच्ची की आखे झपक गई थी। तभी उसकी मां घोडे पर सवार बाहर से लौटी, लचक के साथ वह जीन से नीचे उतरी और झटके से सिर ऊचा करके पूछा :

"क्या सो गई है?"

"हां।"

"यह बात है..."

सैनिक तुफायेव लपककर आया और घोड़े को अपने साथ ले गया। हंटर को अपनी पेटी मे खोंसते हुए महिला ने अपनी बांहे फैलाई और मुझसे कहा :

"इसे मुझे दे दो।"

"मै खुद इसे पहुंचा दूंगा।"

"ऐ!.." पांव पटककर वह इस तरह चिल्लाई मानो मै घोड़ा हूं।

लड़की चौंक उठी, आंखे मिचमिचाकर उसने देखा, मां पर उसकी नजर पड़ी, और उसने भी अपनी बांहे फैला दी। दोनों भीतर चली गई।

डांट-डपट का मै आदी था। लेकिन इस महिला का चिल्लाना मुझे बहुत अटपटा मालूम हुआ। वह अगर हल्का सा इशारा भी करती तो सब उसकी आंखों के आगे बिछ जाते।

कुछ ही क्षण बाद एची-तानी महरी ने मुझे आवाज दी। बच्ची ने हठ पकड़ ली थी और बिना मुझसे विदा लिये बिस्तर पर सोने से इनकार कर दिया था।

कुछ गर्व के साथ मैंने ड्राइंगरूम में पांव रखा। महिला लडकी को गोद मे लिए बैठी थी और फुर्ती से उसके कपड़े उतार रही थी।

"लो, यह आ गया तुम्हारा अवधूत!" उसने कहा।

"यह अवदूत नहीं, यह तो मेया साथी है!"

"यह बात है? बहुत अच्छा। चलो तुम्हारे इस साथी को कोई चीज भेंट करते है। करे?"

"हां-हां, जलूल भेंट कलो मां!"

"अच्छा तो तुम अब झटपट अपने बिस्तर पर चली जाओ। मै अभी उसे कोई चीज देती हूं।"

"कल तक के लिए खुदा हाफिज़" हाथ फैलाते हुए लड़की ने कहा। "खुदा तुम्हें खैरियत से रखे, कल तक..."

"अरे, यह तुमने कहां सीखा?" उसकी मां ने अचरज से पूछा; "क्या नानी ने सिखाया है?"

"हां..."

जब लड़की सोने के लिए चली गई तो महिला ने मुझे अपने पास बुलाया :

"तुम क्या लेना पसंद करोगे?"

मैंने कहा कि मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है, अगर पढ़ने के लिए कोई किताब मिल जाए तो अच्छा हो।

उसने अपनी सुहावनी, महकती हुई उंगलियों से मेरी ठोड़ी को ऊपर उठाया और प्रसन्न भाव से मुस्कराते हुए कहा :

"अच्छा, यह बात है, तुम्हें किताबें पढ़ने का शौक है, है न? कौन-कौन सी किताबें पढ़ चुके हो?"

जब वह मुसकराती तो और भी सुन्दर लगती। मैं अचकचा गया और हड़बड़ाहट में जो दो-चार नाम याद आए, गिना दिए।

"इन पुस्तकों में क्या चीज तुम्हे अच्छी लगी?" उसने मेज़ पर हाथ रखकर और हल्के से उंगलियों को हिलाते हुए पूछा।

उसके बदन से फूलों की तेज़ और मीठी महक आ रही थी जिसमे घोड़े के पसीने की गंध भी कुछ अजीब ढंग से मिली हुई थी। अपनी लम्बी बरौनियों की ओट मे से वह मुझे बड़े ध्यान से परख रही थी। यह पहला अवसर था जब किसीने इस तरह मेरी ओर देखा था।

कमरा किसी पंछी का घोसला मालूम होता था—इस हद तक वह सुन्दर गद्देदार मेज़-कुर्सियों से भरा था। खिड़कियां पौधों की घनी हरियाली मे छिपी थीं। सांझ की धुंधली रोशनी में कलाबघर के बर्फ़ की भांति सफ़ेद टाइल चमक रहे थे। पास ही में काला प्यानो रखा था। दीवारों पर गिलट के धुंधले चौखटों में जड़ी सनदें लटक रही थीं। सनदों का कागज़ मटमैला पड़ गया था और उनपर स्लाव लिखावट में कुछ लिखा था। प्रत्येक चौखटे से एक डोरी लटकी थी जिसके छोर में एक बड़ी सी मोहर झूल रही थी। ये सभी चीज़ें, मेरी ही भांति, विनत और श्रद्धाभाव से उसकी ओर देख रही थीं।

मुझसे जितना बन सका, मैंने बताया कि मुसीबतों ने मेरे जीवन को कितना बोझिल और रसहीन बना दिया है. और यह कि पुस्तकें पढ़ने से कुछ देर के लिए जी जरा हल्का हो जाता है।

"अच्छा-आ, यह बात है?" उठते हुए उसने कहा। "बात तो बुरी नहीं है, बल्कि ठीक ही है... अच्छा, तो किताबें मैं तुम्हें दूंगी, लेकिन इस वक्त मेरे पास कोई नहीं है... हां, याद आया, अगर चाहो तो अभी इसे ले जा सकते हो..."

काउच पर पीली जिल्द की एक पुरानी सी पुस्तक पड़ी थी। उसे उठाकर उसने मुझे दे दिया।

"जब इसे पढ़ चुको तो इसका दूसरा भाग ले जाना—इसके चार भाग हैं..."

मेश्चेर्स्की लिखित "पीटर्सबर्ग के रहस्य" बगल में दबाए मैं वहां से लौट आया, और बड़े ध्यान से उसे पढ़ने बैठ गया। लेकिन पहले ही पन्नों से मुझे स्पष्ट हो गया कि मेड्रिड, लन्दन अथवा पेरिस के 'रहस्यों' के मुकाबले में पीटर्सबर्ग के 'रहस्यों' में कहीं अधिक बोरियत भरी है। ले-देकर पुस्तक में मुझे एक ही चीज पसन्द आई। वह चीज थी लाठी और आजादी के बीच संवाद:

"मैं तुमसे बढ़कर हूं," आजादी बोली, "क्योंकि मेरे पास बुद्धि है।"

"ओह नहीं, मैं तुमसे बढ़कर हूं, क्योंकि मैं सबल हूं," लाठी ने जवाब दिया।

कुछ देर तक दोनों बहस करती रहीं और फिर गरमाकर लड़ने पर उतर आईं। लाठी ने आजादी की खूब मरम्मत की, और जहां तक मुझे याद है घायल हो जाने के कारण उसे अस्पताल ले जाया गया जहां उसने दम तोड़ दिया।

पुस्तक में एक निहिलिस्ट* की बात हो रही थी। मुझे याद है कि

---

*निहिलिज्म (सर्वखंडनवाद)—१९वीं सदी के सातवें दशक में रूस में इस विचारधारा ने जन्म लिया। इसके अनुयायी, स्वतंत्र विचारों के मध्यमवर्गी बुद्धिजीवी कुलीन-बुर्जुआ रीतियों-परंपराओं और भू-दासता की विचारधारा का जोरदार खंडन करते थे।—सं०

पुस्तक के लेखक प्रिन्स मेश्चेर्स्की ने इस पात्र को एक ऐसा विषैला हौवा बनाकर पेश किया था जिसकी नजर पड़ने से मुर्गियां वहीं की वही ढेर हो जाती है। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो निहिलिस्ट शब्द अपमानजनक तथा अशिष्ट है। इसके अलावा और कुछ मेरे पल्ले नहीं पडा और इस बात से मेरा जी भारी हो गया। मुझे लगा कि अच्छी पुस्तकों को समझना मेरे बते से बाहर है। पुस्तक के अच्छी होने मे मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं था। मै यह सोच तक नहीं सकता था कि इतनी सुन्दर और रोबदार महिला का बुरी पुस्तकों से कभी कोई लगाव हो सकता है।

"क्यो पसन्द आई?" जब मै मेश्चेर्स्की का पीला उपन्यास लौटाने गया तो उसने पूछा।

मुझसे यह स्वीकार करते नहीं बना कि पुस्तक अच्छी नहीं लगी। डर था कि कहीं वह बुरा न मान जाए।

वह केवल हंस दी और पर्दा उठाकर अपने सोनेवाले कमरे मे गायब हो गई। कमरे में से वह लौटकर आई तो उसके हाथ मे चमड़े की नीली जिल्द बंधी एक पुस्तक थी।

"यह तुम्हे अच्छी लगेगी। लेकिन इसे गंदा न कर लाना, समझे!"

इसमें पुश्किन की कविताएं थी। एक ही बैठक में मै सारी कविताएं पढ़ गया। मैं एक ऐसी अनबुझ अनुभूति से ओतप्रोत था, जिसका अनुभव अनदेखे सुंदर स्थल पर पहुंच जाने पर होता है—सदा यह इच्छा होती है कि तुरत ही सारी जगह भाग-भागकर देख ली जाये। ऐसी अनुभूति तब होती है, जब बड़ी देर तक दलदली जंगल के काईदार चप्पों पर चलने के बाद, यकायक आंखों के सामने फूलो से भरा, धूप में नहाता सूखा मैदान खुलता है। एक क्षण के लिए हम उसे मंत्रमुग्ध से देखते रहते हैं, फिर आनंद-मग्न भागकर उसका पूरा चक्कर लगाते हैं और पैरों पर उर्वरा धरती की नरम घास के प्रत्येक स्पर्श से हृदय में खुशी की लहर दौड़ जाती है।

पुश्किन की कविताओं ने, उनकी सादगी और संगीत ने, मुझपर कुछ ऐसा जादू किया कि इसके बाद बहुत देर तक गद्य मुझे अस्वाभाविक लगने लगा और उसे पढ़ना अटपटा लगता। "रुस्लान और ल्युद्मीला" का

कथा-प्रवेश तो मानो नानी की श्रेष्ठतम कहानियों का निचोड़ था और कुछ पंक्तियों ने अपनी सच्चाई से मुझे मुग्ध कर दिया :

वहां, उन अनजानी पगडंडियों पर,
अनदेखे जंतुओं के पद-चिन्ह...

इन अद्भुत पंक्तियों को मैं बार-बार गुनगुनाता और मेरी आंखों के सामने हर डग पर ओझल हो जानेवाले उन पथों का चित्र मूर्त हो उठता जिनसे कि मै खूब परिचित था, वे पगडंडियां मेरी आंखों के सामने उभर आतीं जिनकी रौंदी हुई घास किसी के अभी-अभी उधर से गुजरने की कहानी कहती और घास की दबी-कुचली पत्तियों पर ओस के कण पारे की भारी बूंदों की भांति अभी भी चमकते होते। भरी-पूरी ध्वनि से युक्त पंक्तियां सहज ही जबान पर चढ़ जातीं। हर बात मे एक अजीब निखार दिखाई देता। मेरा रोम-रोम खुशी से भर जाता, जीवन अधिक आसान और सुहावना मालूम होता। कविताएं क्या थी नये जीवन का हर्ष-नाद थीं। कितनी अच्छी बात है कि मुझे पढना आता है!

पुश्किन की पद्यमय गाथाएं मेरे हृदय और समझ के लिए सबसे निकट थीं। कुछेक बार पढने पर मुझे जबानी याद हो गईं। जब मै सोने के लिए जाता तो चुपचाप लेटकर अपनी आंखें बंद कर लेता, उन्हें मन ही मन दोहराता और मुझे पता भी न चलता कि कब नींद आ गई। कभी-कभी मै अफ़सरों के साईसों-अरदलियों को भी उन्हे सुनाता। उनके चेहरे खिल जाते और वे चकित होकर कसमें खाते,—गालिया प्रशंसा के उद्‌गार बनकर उनके मुंह से प्रकट होतीं। सीदोरोव मेरा सिर सहलाता और धीमे स्वर में कहता :

"वाह, कितनी सुन्दर है, है ना?"

मालिकों से यह छिपा न रहा कि आजकल मैं किस रंग में डूबा हूं। बुढ़िया मुझे डांटना-झिड़कना शुरू करती :

"देखो तो, किताबों में मस्त हो गया है, शैतान की दुम, और समोवार तो चार दिन से साफ़ नहीं किया। दो-चार बेलने पड़े, तो पता चलेगा..."

लेकिन पुश्किन की कविताओं के सामने बेलने की भला क्या बिसात? जवाब में मैं पुश्किन की पंक्तियां गुनगुना उठता :

बदी से उसे प्यार,
काले दिल की चुड़ैल खुर्राट...

महिला मेरी नज़रों में और भी ऊंची उठ गयी। जो इतनी बढ़िया पुस्तकें पढ़ती थी! वह चीनी की गुड़िया नहीं थी...

पुस्तक को लौटाते समय मेरा जी भारी हो गया। उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और विश्वास के साथ बोली:

"यह तो तुम्हें पसंद आई है न! क्या तुमने कभी पुश्किन के बारे में सुना है?"

पुश्किन के बारे में एक पत्रिका में मैं कुछ पढ़ चुका था। लेकिन मैंने इसका ज़िक्र तक नहीं किया। मैं ख़ुद उसके मुंह से सुनना चाहता था कि वह क्या कहती है।

पुश्किन के जीवन और मृत्यु का थोड़े में कुछ हाल बताने के बाद वसंती दिन की भांति मुसकराकर उसने पूछा:

"देखा तुमने, स्त्री से प्रेम करना कितना ख़तरनाक होता है?"

अब तक जितनी भी पुस्तकें मैं पढ़ चुका था, उनके हिसाब से तो निश्चय ही यह ख़तरनाक था—ख़तरनाक, लेकिन साथ ही अच्छा भी। मैंने कहा:

"ख़तरनाक है, फिर भी सब प्रेम करते हैं! और स्त्रियां भी इससे तड़पती हैं..."

बरौनियों के पीछे से उसने मेरी ओर देखा, जैसे कि वह हर चीज़ को देखती थी। फिर गम्भीर स्वर में बोली:

"अच्छा, यह बात है? तुम यह समझते हो? तो मैं तुम्हें यही कहूंगी कि इस सत्य को कभी आंखों की ओट न होने देना!"

इसके बाद उसने पूछना शुरू किया कि कौन-कौन सी कविताएं मुझे ख़ास तौर से अच्छी लगीं।

मैं उसे बताने लगा। कई कविताएं मैं ज़बानी सुना गया। सुनाते समय उछाह के साथ मैं हाथ भी हिलाता जाता। वह चुपचाप, सन्नाटा खींचे, सुनती रही। फिर वह उठी और कमरे में टहलने लगी। गम्भीर स्वर में बोली:

"मेरे बेशकीमती नन्हे बंदर, तुम्हे स्कूल में जाना चाहिए। मै इस बारे में सोचूगी... जिनके यहां तुम काम करते हो, क्या वे तुम्हारे रिश्तेदार है?"

जब मैने बताया कि हां, रिश्तेदार है, तो उसने कुछ इस अन्दाज़ से 'ओहो' कहा मानो मेरी निंदा कर रही हो।

इसके बाद उसने मुझे "बेरांजे के गीतो" का एक संग्रह दिया। यह बहुत ही बढिया सुनहरी कोर और चमड़े की लाल जिल्द वाला संस्करण था। गीतों के साथ चित्र भी थे। इन गीतो में तीखी, झुलसा देनेवाली कडवाहट भी थी और सभी बाधा-बन्धनो को तोड़कर बहनेवाली ख़ुशी की लहर भी। इन दोनो का हृदय पर छा जानेवाला अद्‌भुत मेल था।

"बूढ़े भिखारी" के तीखे शब्दों से मेरी रगो में रक्त की रवानी रुक गई:

दुष्ट कीडा—करता परेशान है तुम्हें?
कुचल दो पैरों तले घिनौने कोड़े को!
तरस क्या, रौद डालो फ़ौरन!
क्यों मुझे पढ़ाया नहीं,
प्रचण्ड शक्ति को नही दिया निकास?
जाता कीड़ा भी चींटी बन!
मरता मै भी भाइयो की बांहों मे।
किंतु बूढा अकेला मै मरता हूं
मिले तुम्हें बदला,
पुकार यह करता हूं।

एक दूसरे गीत "रोता हुआ पति" को पढकर मैं इतना हंसा कि आंखों से पानी निकलने लगा। उसकी यह फबती मुझे ख़ास तौर से याद है:

हैं जो सीधे-सादे लोग
नहीं मन में जिनके कुछ खोट
सीख लेते वे ही जल्दी,
कला हंसने और हंसाने की!

अराज के गीत मेरी भावनाओं को मुंहजोर बनाते शतानी करने चुटकियां लेने तथा फबतियां कसने के लिए मुंह उकसाते और अटपटी तथा बुरी लगनेवाली बातें करने के लिए मेरा जी ललकता और शीघ्र ही मैंने यह सब शुरू कर दिया। उसकी पंक्तियां भी मुझे जबानी याद हो गईं और जब भी अरदलियों के रसोईघर में जाने का मौका मिलता, बेहद उत्साह के साथ मैं उन्हें सुनाता।

लेकिन, निम्न पंक्तियों की वजह से, मुझे जल्दी ही यह सब छोड़ देना पड़ा:

बरस सत्रह की छोकरी का,
कौन न पकड़े छोर!

इन पंक्तियों के बाद स्त्रियों को लेकर अत्यन्त घिनौनी चर्चा चल पड़ी। अपमान की भावना से मेरा दिमाग भन्ना गया, गुस्से के मारे मैंने पतीला उठाया और उसे सैनिक येर्मोखिन के सिर पर दे मारा। सीदोरोव और दूसरे अरदलियों ने लपककर उसके बेडौल पंजों से मुझे छुड़ाया। इसके बाद अफसरों के रसोईघरों में जाने का मैंने नाम नहीं लिया।

बाहर घूमने-फिरने की मुझे मनाही थी, और सच तो यह है कि मटरगश्ती के लिए समय भी नहीं मिलता था। पहले से कहीं ज्यादा काम मुझे अब करना पड़ता था। अब बरतन मांजने, झाड़ू-बुहारी देने और बाजार से सौदा-सुलफ़ लाने के अलावा मैं हर रोज चौड़े तख्तों पर कीलों से कपड़ा जमाता, फिर मालिक के खींचे हुए डिजायन उसपर चिपकाता, इमारती पशमीनों की नकलें उतारता और ठेकेदारों के बिलों की जांच-पड़ताल करता—मेरा मालिक मशीन की भांति सुबह से लेकर रात तक काम में जुटा रहता।

मेले की सार्वजनिक इमारतें उन दिनों सौदागरों के निजी हाथों में जा रही थीं। बाजारों को फिर से बनाने के काम में खूब आपाधापी चल रही थी। मेरे मालिक ने पुरानी दुकानों की मरम्मत करने और नयी दुकानें बनाने का ठेका लिया था। सीधी मेहराबों के पुनर्निर्माण, रोशनदानों को बनाने और इसी तरह की अन्य चीजों के नक्शे वह बनाता था। इन नक्शों तथा इनके साथ, लिफ़ाफ़े में पच्चीस रूबल का एक नोट लेकर मैं बूढ़े वास्तुकार के पास पहुंचता। वह लिफ़ाफ़ा संभालकर रख लेता और

नक्शा पर लिख देता. "नक्श सही हैं। सारा काम इनके मुताबिक मेरी निजी निगरानी मे हुआ है।" अंत में वह अपने दस्तखत बना देता। कहने की आवश्यकता नहीं कि निर्माणाधीन इमारते उसने देखी तक न थीं तथा जांच और निगरानी करने का तो सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि बीमारी ने उसे बेकार कर दिया था, और वह हमेशा घर के भीतर ही बंद रहता था।

मेले के इन्स्पेक्टर तथा अन्य कई जरूरी लोगों को भी मैं घूस का पैसा देने जाता और उनसे, अपने मालिक के शब्दों मे, 'विभिन्न क़ानूनों को ताक पर रखने का परमिट' ले आता। मेरे इन सब कामो से खुश होकर मालिक ने मुझे यह इजाजत दी कि सांझ के समय जब कभी वे बाहर घूमने जाए तो अहाते मे बैठकर मै उनका इन्तजार कर सकता हूं। ऐसा बिरले ही होता. लेकिन जब भी जाते तो आधी रात के बाद लौटते। इस तरह मुझे कई घंटे मिल जाते, ओसारे या उसके सामने पड़े कुंदों के ढेर पर मै अड्डा जमाता और रानी मार्गो के घर की खिडकियो पर नज़र जमाए वहां छनछनकर आते संगीत, चुहल की आवाजों को अवाक् सुनता रहता।

खिडकियां खुली होतीं। परदो और फूलों की बेलों की झिरियों में से मुझे अफसरों की सुन्दर आकृतियों की झलक दिखाई देती जो कमरे मे इधर से उधर मंडराते रहते। अद्‌भुत सादगी और सौन्दर्य से सदा सज्जित वह मानो कमरे में तैरती मालूम होती और गोल-मटोल थलथल मेजर उसके दामन से चिपका लुढकता-पुढ़कता रहता।

मन ही मन मैंने उसका नाम रानी मार्गो रख छोड़ा था। खिड़कियों पर मेरी आखें जमी होतीं और मन ही मन मै सोचता था:

"सो यह है वह इन्द्रधनुषी जीवन जिससे फ़्रांसीसी उपन्यासों के पन्ने रंगे रहते हैं!" मेरा जी अवबदाकर भारी हो जाता, और मेरा छोटा सा हृदय ईर्ष्या से बल खाने लगता जब मै रानी मार्गो के चारों ओर पुरुषो को इस तरह मंडराते भनभनाते देखता जैसे फूलों पर भौंरे मंडराते है।

कभी-कभी, लम्बे क़द और गम्भीर चेहरे वाले एक अफसर पर मेरी नजर पड़ती। अन्य लोगों के मुकाबले मे वह बहुत कम आता था। उसके माथे पर घाव का निशान था, और उसकी आंखें खूब गहरी धंसी थीं।

वह हमेशा अपनी वायलिन साथ लेकर आता वायलिन बजाने मे उसे कमाल हासिल था। तारो को जब वह छेड़ता तो राह चलते लोग ठिठककर सुनने लगते, मोहल्ले के लोग कुदो के ढेर पर आकर बैठ जाते, यहां तक कि मेरे मालिक भी—अगर वे उस समय घर पर होते—खिडकियां खोलकर मुग्ध भाव से सुनते, वायलिन बजानेवाले की सराहना करते। मुझे याद नही पड़ता कि मैने उनके मुंह से किसी की तारीफ सुनी हो,—केवल कैथीड्रल के पादरी को छोड़कर, और मैं जानता था कि मछली की मजेदार कचौरियो पर उनकी राल जितनी टपकती थी, उतनी किसी भी सगीत पर नहीं!

कभी-कभी, भरभरी सी आवाज में, अफसर गाता या कविताए सुनाता। गाते समय वह जोरों से सांस भरता, हथेली को माथे से सटा लेता। एक दिन, उस समय जब मैं खिडकी के नीचे बच्चो से खेल रहा था, रानी मार्गो ने उससे गाने के लिए अनुरोध किया। कुछ देर तक तो वह टालता रहा, फिर बहुत ही सुनिश्चित अन्दाज मे उसके मुंह से निकला:

> है केवल गीत को आवश्यकता सौन्दर्य की—
> सौन्दर्य को नहीं चाहिए गीत भी...

मुझे ये पंक्तियां बेहद पसंद आईं और, न जाने क्यो, इस अफ़सर पर मुझे तरस आया।

और उस समय तो मै निहाल हो जाता जब मेरी रानी पियानो पर अकेली बैठी होती, कमरे मे उसके सिवा जब और कोई न होता। मेरे मस्तिष्क और हृदय पर संगीत का एक नशा सा छा जाता, खिड़की के सिवा और कुछ न दिखाई देता, लैम्प की सुनहरी रोशनी में उसके कमनीय शरीर की रेखाएं और भी उभर आतीं; उसका गर्वीला चेहरा बहुत ही कोमल और सुन्दर मालूम होता और उसकी श्वेत उंगलियां पक्षियों की भांति पियानो के पर्दो पर फड़फड़ाती रहती।

मै उसे देखता रहता, संगीत की उदास स्वर लहरियां मेरे कानों का स्पर्श करतीं और मै अजीब-अजीब सपनों का ताना-बाना बुनने लगता: कहीं जमीन में गडा खजाना मेरे हाथ लग जाता है और मै वह सब उसे ही सौप देता हूं—वह धनवान हो! कल्पना में नये स्कोबेलेव का रूप धारण कर मैं तुर्कों के खिलाफ़ युद्ध करता, उनसे भारी हर्जाना लेकर नगर के सब से अच्छे हिस्से—ओत्कोस मे—उसके लिए एक घर बनवाता, ताकि

उसे हमारे इस घर में न रहना पड़े हमारे इस मोहल्ले से वह दूर चली जाए जहां सब एक स्वर से उसके बारे में गंदी बात करते और उसपर कीचड़ उछालते हैं।

हमारे अहाते में काम करनेवाले सभी नौकर-चाकर और उसमें आबाद सभी लोग, खास तौर से मेरे मालिक, रानी मार्गो के बारे मे भी वैसी ही कुत्सित बातें करते थे जैसी कि वे कटर की पत्नी के बारे में करते थे, अन्तर इतना ही था कि इसका जिक्र करते समय वे कुछ अधिक चौकन्ने हो जाते थे, धीमे स्वर मे चारो ओर देख-देखकर बोलते थे।

शायद वे उससे डरते थे। कारण कि वह किसी ऊंचे कुल के व्यक्ति की विधवा थी। तुफायेव ने एक बार मुझे बताया था,— और वह निरक्षर भट्टाचार्य नही, बल्कि पढ़ना जानता था और सदा इंजील का पाठ करता रहता था,— कि उसकी दीवार पर लटकी सनदें रूस के प्राचीन जारो ने — गोदुनोव, अलेक्सेई और प्योत्र महान ने — उनके पति के दादा-परदादाओं को दी थी। लोग शायद इसलिए भी इससे डरते थे कि कहीं वह बैंगनी पत्थर की मूठ वाले अपने हण्टर से उनकी खबर न लेने लगे। कहा जाता था कि एक बार इस हण्टर से उसने किसी बड़े अफ़सर की खूब मरम्मत की थी।

लेकिन फुसफुसाकर और धीमे स्वरों में कहे गए शब्द केवल इस लिए अच्छे नही हो जाते कि वे जोरो से नहीं कहे गए। मेरी रानी के चारों ओर ऐसी दुश्मनी के बादल मंडराते जो मेरी समझ में नहीं आती थी और मुझे सताती थी। वीक्तर डींग की हांकता कि एक बार आधी रात के बाद लौटते समय उसने रानी मार्गो के शयनकक्ष की खिड़की मे झांककर देखा। वह काउच पर सिर्फ़ सोने का लबादा पहने बैठी थी और मेजर घुटनो के बल झुका हुआ उसके पांव के नाखून काट रहा था और स्पंज से उसके पांव पखार रहा था।

यह सुनकर बूढ़ी मालकिन ने जमीन पर थूका और उसे झिड़क दिया। छोटी मालकिन के गाल बुरी तरह लाल हो गए।

"ओह वीक्तर!" वह चीख उठी। "तुझे जरा भी शर्म लिहाज नहीं है? और इन बड़े लोगों की चाल-ढाल भी निराली है— सौ घाट का पानी पिये बिना उन्हें चैन नही आता!"

मालिक केवल मुसकराकर रह गया, बोला कुछ नहीं। इसके लिए

मन ही मन मैने उसका भारी अहसान माना लेकिन यह डर बराबर बना रहा कि अपनी जबान खोलकर इस नक्कारखाने मे किसी भी क्षण हमदर्दी के साथ वह अपना स्वर मिला सकता है। स्त्रियो ने खूब सिसकारिया भरीं, आह और ओह का अम्बार लगा दिया और खोद-खोदकर एक-एक बात उन्होने वीक्तर से पूछी: महिला ठीक किस तरह बैठी थी, और मेजर ठीक किस प्रकार उसके सामने झुका हुआ था, और वीक्तर चुने हुए निवाले उनके सामने फेकता रहा:

"मेजर का थूथा एकदम चुकन्दर जैसा लाल था और जीभ बाहर निकल आई थी..."

मुझे इसमे शर्मिंदगी की ऐसी कोई बात नही दिखाई दी कि मेजर महिला के पाव के नाखून काट रहा था। लेकिन यह बात मेरे मन मे नही जमी कि उसकी जीभ बाहर निकली हुई थी। मुझे लगा कि यह घिनौना झूठ उसका मनगढ़ंत है।

"अगर यह ठीक नहीं था तो तुम खिडकी के भीतर नजर गड़ाए देखते कैसे रहे?" मैने कहा। "तुम कोई बच्चे तो हो नहीं..."

झिड़कियो की उन्होंने मुझपर बौछार की, लेकिन उनकी झिड़कियो की मुझे चिंता नही थी। मेरे मन मे एक ही लगन थी—लपककर जीने से नीचे उतर जाऊं और मेजर की भांति महिला के सामने घुटनो के बल झुककर कहूं:

"आप यहां से चली जाइये, इस घर को छोड़ दीजिये, मेरी बात मानिये!"

अब जब मै जान चुका था कि दुनिया में दूसरी तरह का जीवन और दूसरी तरह के लोग, दूसरी तरह के विचार और भावनाए भी है, तो यह अहाता और इस अहाते में बसनेवाले मुझे और भी ज्यादा घिनौने मालूम होते। कुत्सा का ऐसा जाल यहां फैला था कि उसमे सभी फसे थे,—एक भी माई का लाल ऐसा न था जो उससे बचा हो। फ़ौज का पादरी जो फटे हाल और सदा रोगी सा आदमी था, उसे भी इन लोगो ने नहीं छोड़ा था—चरित्रहीन पियक्कड़ के रूप में उसे बदनाम कर रखा था। मेरे मालिको की जबान जब चलती तो वे सभी अफ़सरों और उनकी पत्नियों को एक सिरे से पाप के कुण्ड में डुबा देते। स्त्रियों के बारे में सैनिकों की आये दिन एक सी बातो से मुझे उबकाई आने लगी थी और

सबसे ज्यादा उबकाई मालिका पर आती थी — उनके फतवों की असलियत, जिन्हें वे दूसरों पर करते थे, मैं खूब अच्छी तरह पहचानता था। दूसरों की छीछालेदर करना, उनके नुक्स निकालकर रखना, एक ऐसा मनोरंजन है जिसपर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, और बे-पैसे का यह मनोरंजन ही उनका एक मात्र मनबहलाव था। ऐसा मालूम होता मानो ऐसा करके वे खुद अपने जीवन की ऊब, नेकचलनी और घिसघिस का बदला चुका रहे हों।

रानी मार्गो के बारे में जब वे एक से एक गंदे क़िस्से बघारने लगते तो मेरा हृदय बुरी तरह उमड़ता-घुमड़ता और ऐसी-ऐसी बातें मुझे झझोड़ डालतीं जिनसे कि उस आयु में मेरा कोई वास्ता नहीं होना चाहिए था। कुत्सा फैलानेवालों के खिलाफ़ मेरे हृदय में जोरों से घृणा सिर उठाती, जी करता कि सबको चिढ़ाऊं, उनके लिए जीना हराम कर दूं। लेकिन कभी-कभी अपने पर और अन्य सब लोगों पर तरस की भावना मुझे घेर लेती। तरस की यह गुमसुम भावना मुझे घृणा से ज्यादा असह्य मालूम होती।

रानी मार्गो के बारे में मैं जितना जानता था, उतना वे नहीं, और मैं मन ही मन डरता कि कहीं उन्हें भी यह सब न मालूम हो जाए जो मैं जानता हूं।

त्योहारों के दिन सुबह के समय जब घर के लोग गिरजे चले जाते तो मैं अपनी रानी के पास पहुंच जाता। वह मुझे अपने शयनकक्ष में ही बुला लेती, और मैं सुनहरी गद्दियों से सुसज्जित एक छोटी सी आरामकुर्सी पर बैठ जाता, बच्ची उचककर मेरी गोदी में सवार हो जाती और मैं उसकी मां से उन किताबों के बारे में बातें करता जिन्हें मैं पढ़ चुका था। अपनी छोटी-छोटी हथेलियों पर गालों को टिकाए वह एक चौड़े पलंग पर लेटी रहती, कमरे की अन्य सभी चीजों की भांति उसके बदन पर भी सुनहरे रंग की रजाई पड़ी होती, चोटी में गुंथे हुए काले बाल उसके गेहुंआ कंधे पर लटके उसके सामने बिखरे होते और कभी पलंग की पट्टी से खिसककर फ़र्श तक झूलने लगते।

मेरी बातें सुनते समय कोमल नजरों से वह मुझे देखती और हल्की सी मुसकराहट के साथ कहती:

"अच्छा, यह बात है?"

मुझे ऐसा मालूम होता मानो सचमुच की रानी की भांति किसी ऊंचे सिंहासन से वह अपनी मुस्कान का दान कर रही हो। गहरी और कोमल आवाज़ में जब वह बोलती तो मुझे ऐसा लगता मानो वह कह रही हो:

"मै जानती हूं कि मै अन्य लोगो से ऊची, उत्कृष्ट हू, और यह कि वे मेरे लिए किसी मसरफ के नही है।"

उसकी आवाज़ से सदा यही एक ध्वनि निकलती।

कभी-कभी मै उसे आईने के सामने एक नीची सी कुर्सी पर बैठे हुए बाल संवारते देखता। उसके बाल भी उतने ही घने और लंबे थे जितने कि नानी के। वे उसके घुटनो और कुर्सी की बांहो पर छा जाते, उसकी पीठ पर से झूमते हुए फ़र्श को छूने लगते। आईने में मुझे उसकी गदराई हुई छातियां दिखाई देती। मेरी मौजूदगी में ही वह अपनी चोली कसती और मोजे पहनती, लेकिन उसका नगा बदन मेरे हृदय मे शर्मनाक भावनाए नहीं जगाता, बल्कि उसका सौन्दर्य एक आह्लादपूर्ण गौरव का मुझमें सचार करता। उसके बदन से सदा फूलों की महक निकलती जो वासना में डूबे विचारो और भावनाओं से कवच की भाति उसकी रक्षा करती।

मै मज़बूत बदन का और खूब भला-चंगा था। स्त्री-पुरुष के संबंधो के भेद मुझसे छिपे नहीं थे। लेकिन इन संबधों के बारे में लोगो को मै इतने गंदे और हृदयहीन ढग से तथा इस हद तक कुत्सित रूप में रस लेते हुए बाते करते सुन चुका था कि इस स्त्री के साथ किसी पुरुष के आलिगन की मैं कल्पना तक नही कर सकता था, मेरे मन में यह बात खूब गहरी पैठ गई थी कि उसके शरीर को अपने निर्लज्ज और दुस्साहसी हाथो से छूने का किसी को अधिकार नही है। मुझे पक्का यकीन था कि रसोईघरो और ओने-कोने वाले प्रेम से रानी मार्गो का कोई वास्ता नही हो सकता। वह जरूर ही किसी अन्य, ज्यादा ऊचे और भले आनन्द का, एक दूसरे ही प्रकार के प्रेम का, भेद जानती होगी।

लेकिन एक दिन काफ़ी दोपहर बीते जब मैंने उसके बैठने के कमरे मे पांव रखा तो मेरी रानी के खिलखिलाकर हंसने और शयनकक्ष वाले दरवाजे पर पडे पर्दे के पीछे किसी पुरुष के बोलने की आवाज़ सुनकर मै ठिठक गया।

"अरे ज़रा ठहरो तो!" वह कह रहा था। "तुम भी ग़ज़ब करती हो। कोई क्या कहेगा?"

मैं समझता था कि मझे उलटे पांव लौट जाना चाहिए, लेकिन मेरे पांवों ने मानो हिलने से इनकार कर दिया।

"कौन है?" उसने पूछा। "अरे, तुम हो? भीतर चले आओ!"

कमरा फूलों की महक में डूबा था। खिड़कियों पर परदे खिंचे हुए थे। कमरे में अंधेरा सा छाया था... रानी मार्गो ठोड़ी तक अपने बदन पर रजाई खींचे पलंग पर लेटी थी। उसके पास ही, दीवार की ओर मुंह लिए, वह वायलिन-वादक अफ़सर बैठा था। वह केवल एक कमीज़ पहने था। कमीज का गला खुला था और दाहिने कंधे से लेकर सीने तक घाव का एक निशान था—इस हद तक चटक लाल कि इस अध-उजियाले कमरे में भी साफ नजर आता था। उसके बाल कुछ अटपटे ढंग से बिखरे हुए थे। उसके उदास तथा घाव-लगे चेहरे को मैंने पहली बार मुसकराते हुए देखा। वह अजीब ढंग से मुसकरा रहा था और अपनी बड़ी-बड़ी स्त्रैण आंखों से मेरी रानी की ओर इस तरह देख रहा था मानो उसके सौन्दर्य को उसने पहली बार ही देखा हो।

"यह मेरा मित्र है," रानी मार्गो ने कहा, और मैं समझ नहीं पाया कि किसके लिए उसने इन शब्दों का इस्तेमाल किया था: मेरे लिए अथवा उस अफसर के लिए।

"अरे, तुम वहीं ठिठककर क्यों खड़े-खड़े रह गए?" उसकी आवाज़ जैसे कहीं बहुत दूर से आती मालूम हुई। "इधर आओ..."

जब मैं निकट पहुंचा तो उसने अपनी उघरी हुई गर्म बांह मेरे गले में डाल दी और बोली:

"बड़े होने पर तुम भी जीवन के सुख का आनन्द ले सकोगे... जाओ!"

किताब को मैंने ताक पर रख दिया, एक दूसरी पुस्तक उठाई और वहां से चला आया।

मेरे हृदय में कोई चीज कचर गई। स्पष्ट ही, एक क्षण के लिए भी मैं यह नहीं सोच सकता था कि मेरी रानी भी अन्य साधारण लोगों की भांति प्रेम करती होगी, न ही उस अफसर के बारे में ऐसी कोई बात मेरे दिमाग़ में आती थी। मैं उसकी मुसकान देख रहा था—वह खुशी के साथ मुसकरा रहा था, जैसे कोई बच्चा सहसा विस्मित होकर मुसकराता है, उसके उदास चेहरे का जैसे एकदम कायापलट हो गया था।

उसका हृदय निश्चय ही उसके प्रेम से डगमगा रहा था और यह कोई अनहोनी बात नहीं थी – ऐसा भला कौन था जो उसे प्रेम करने से अपने आप को रोक सकता ? और एक ऐसे आदमी पर जो इतनी सुन्दर वायलिन बजाता था और भावों में खूब गहरे डूबकर कविताएं सुनाता था, उसका प्रेम न्योछावर करना भी कोई अनहोनी घटना नहीं था...

इन दिलासों को पाने की जरूरत इस बात का स्पष्ट सूचक थी कि जो कुछ मैंने देखा है उसके प्रति और खुद रानी मार्गो के प्रति मेरे रवैये में जरूर कहीं न कहीं कोई खोट है। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई चीज खो गई हो। कई दिन गहरी उदासी ने मुझे घेरे रखा।

...एक दिन मेरे दिमाग पर जैसे शैतान सवार हो गया और मैंने जमकर उत्पात मचाया। पुस्तक लेने जब मैं महिला के पास पहुंचा तो उसने कड़ी आवाज में कहा :

"मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि तुम इतना जंगलीपन करोगे... शैतानी की भी एक हद होती है!"

मैं यह बरदाश्त नहीं कर सका, मेरा हृदय भर आया और मैंने उसे बताना शुरू किया कि मेरे लिए जीना कितना कठिन है, कि उस समय जब लोग उसके बारे में वाहीतबाही बकते हैं तो मेरे हृदय पर क्या गुजरती है। वह मेरे सामने खड़ी थी, उसका हाथ मेरे कंधे पर रखा था। पहले तो वह सन्नाटा खींचे चुपचाप सुनती रही, फिर एकाएक खिल-खिलाकर हंसी और मुझे हल्के हाथ से धकेलते हुए बोली :

"बस-बस, मैं यह सब जानती हूं। समझे, मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है!"

इसके बाद मेरे दोनों हाथ उसने अपने हाथों में ले लिए और बहुत ही कोमल आवाज में बोली :

"इन गंदी बातों पर जितना कम ध्यान तुम दोगे, तुम्हारे लिए उतना ही अच्छा होगा... पर तुम हाथ तो अपने ठीक से नहीं धोते..."

भला यह भी कोई कहने की बात थी, मेरी तरह अगर उसे भी बरतन मांजने, कमरों के फ़र्श और गंदे पोतड़े धोने पड़ते, तो मैं समझता हूं, उसके हाथ भी मुझसे कोई खास अच्छे न दिखाई देते।

"जब कोई अच्छी तरह से रहना और जीवन बिताना जानता है तो लोग उससे कुढ़ते और जलते हैं, और अगर वह नहीं जानता तो उसके

मुह पर थूकते हैं उसने गम्भीर स्वर में कहा फिर मुझे उचकाकर अपनी ओर खींचते हुए उसने गहरी नजरों से मेरी आखों में देखा और मुसकराते हुए बोली :

"क्या तुम मुझे चाहते हो?"

"हां।"

"बहुत?"

"हां, बहुत।"

"लेकिन – क्यों?"

"न जाने क्यों..."

"शुक्रिया। तुम बहुत ही प्यारे लड़के हो। बड़ा अच्छा लगता है जब मुझे कोई चाहता है..."

वह एक छोटी सी हंसी हसी और ऐसा मालूम हुआ मानो वह कुछ कहने जा रही हो, लेकिन एक उसास भरकर चुप हो गई। मेरे हाथों को वह अभी भी अपने हाथों में थामे थी।

"तुम्हे यहां आने की पूरी छूट है। जब भी मौका मिले, चले आया करो..."

उसके इस बुलावे का मैने पूरा फ़ायदा उठाया और उसकी मित्रता से मुझे भारी लाभ हुआ। दोपहर का भोजन करने के बाद मेरे मालिक जब झपकी लेते तो मैं तुरंत खिसक जाता और अगर वह घर पर होती तो उसके साथ एकाध घंटा या इससे भी अधिक समय बिताता।

"तुम्हे रूसी किताबे पढनी चाहिए, हमारे अपने रूसी जीवन को जानना-समझना चाहिए।" वह मुझे सीख देती और अपनी चपल गुलाबी उंगलियों से महकते हुए बालों मे पिने खोंसती रहती।

इसके बाद वह रूसी लेखकों के नाम बताती और फिर पूछती :

"इन्हें भूलोगे तो नहीं?"

बहुधा ऐसा होता कि वह सोचने लगती और एकाएक, मानो अपने आप को झिड़की देते हुए, कह उठती :

"मैं भी कैसी हूं? तुम यों ही घूमते हो, और मुझे याद तक नहीं रहता कि तुम्हारी पढ़ाई के लिए कुछ करना है..."

कुछ देर उसके पास बैठने के बाद, हाथों में कोई नयी किताब लिए, जब मै लपककर वापस लौटता तो हृदय मे एक नये निखार का अनुभव करता।

अक्साकोव की लिखी हुई पुस्तक जीवनवृत्त , बढ़िया रूसी उपन्यास "जंगलों में", चकित कर देनेवाले "शिकारी के संस्मरण"* मैं पढ़ चुका था। ग्रेबेन्को और सोल्लोगूब की कितनी ही पुस्तकें और वेनेवितीनोव, ओदोयेव्स्की तथा त्युत्चेव की कविताएं भी मैं पढ़ गया था। इन पुस्तकों ने मेरे हृदय को निखारा और उन खरोंचों तथा दाग-धब्बों को साफ कर दिया जो कटु और मैली-कुचैली वास्तविकता से रगड़ खाने के कारण मेरे हृदय पर पड़ गए थे। अच्छी किताबों का महत्व, उनके माने अब मैं समझता था और जानता था कि मेरे लिए उनका होना कितना जरूरी है। उन्हें मैं पढ़ता और एक अडिग विश्वास से मेरा हृदय भर जाता— मुझे लगता कि दुनिया में मैं अकेला नहीं हूं और, देर या सवेर, मैं अपना रास्ता खोज ही लूंगा!

नानी मुझसे मिलने आती। मैं उसे रानी मार्गो के बारे में बताता। मुग्ध कर देनेवाले शब्द मेरे मुंह से निकलते। नानी सुनती और चुटकी में भरपूर नास लेकर सूंघते हुए कहती:

"जी खुश हो गया सुनकर। भले लोगों की इस दुनिया में कमी नहीं। आंखें उठाकर जरा देखने भर की जरूरत है, यह नहीं हो सकता कि वे न मिलें।"

एक बार उसने कहा:

"कहो तो मैं भी उससे मिल जाऊं। तुम्हारे लिए उसका शुक्रिया ही अदा कर आऊंगी।"

"नहीं जाओ..."

"अच्छी बात है, मैं नहीं जाऊंगी... यह दुनिया भी कितनी सुन्दर है, ऐ मेरे भगवान! मैं तो इससे कभी विदा न लेने को राजी हूं!"

मुझे स्कूल भेजने की अपनी इच्छा को रानी मार्गो पूरा होते नहीं देख सकी। ईस्टर के बाद सातवें रविवार को, त्योहार के दिन, एक ऐसी दुःखद घटना घटी कि उसने मेरा बण्टाढार ही कर दिया होता।

त्योहार से कुछ समय पहले ही मेरी पलकें बुरी तरह सूज गई थीं और मेरी आंखें क़रीब-क़रीब पूरी पट हो गई थीं। मेरे मालिक घबराए कि कहीं मेरी आंखें न जाती रहें। खुद मेरे हृदय में भी यही डर समाया

---

*महान रूसी लेखक इवान तुर्गेनेव का एक कहानी संग्रह।—सं०

था। वे मुझ जान-पहचान के एक अच्छा डाक्टर के पास ले गये। हेइन्‌रिख रोद्‌जेविच उसका नाम था। मेरी पलकों को उलटकर उसने उनमे रोहों को चीरा और आंखों पर पट्टी बाधे निपट अधकार में अंधा बना कई दिन तक मै दुःख से कराहता रहा। त्योहार से एक दिन पहले पट्टी खुली और बिस्तर से उठते समय ऐसा मालूम हुआ मानो मैं कब्र मे से उठ रहा हूं जिसमे मुझे जिन्दा ही दफ़ना दिया गया था। अधा होने से बढ़कर भयानक और कुछ नही। जिसके सिर यह मुसीबत पडती है, उसके लिए दस में से नौ हिस्से दुनिया चौपट हो जाती है।

त्योहार का उल्लास भरा दिन था। आंखो की वजह से दोपहर से ही मुझे सब कामो से छुट्टी मिल गयी और अरदलियो से मिलने के लिए मै एक के बाद एक सभी रसोईघरो के चक्कर लगाने लगा। गम्भीर तुफ़ायेव को छोड़कर अन्य सब नशे में धुत्त थे। सांझ के समय येर्‌मोखिन ने सीदोरोव के सिर पर लकड़ी का ऐसा कुन्दा जमाया कि वह दरवाजे पर ही ढेर हो गया। येर्‌मोखिन की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और वह नाले मे कही छिप गया।

सारे अहाते मे सीदोरोव की हत्या की घबराहट भरी ख़बर फैल गयी। ओसारे के पास भीड़ जमा हो गई जहां, रसोई और दरवाज़े के बीच, सीदोरोव निश्चल पड़ा हुआ था। लोग दबे स्वरों में कानाफूसी कर रहे थे कि पुलिस को बुलाना चाहिए, लेकिन न तो कोई पुलिस बुलाने गया और न ही किसी ने उसके बदन को हाथ लगाने का साहस किया।

तभी धोबिन नताल्या कोज्लोव्स्काया वहां आई। वह बैंगनी रंग का नया फ़्राक पहने थी और अपने कंधों पर एक सफ़ेद रूमाल डाले थी। तमतमाकर लोगों को इधर-उधर करती और भीड़ को चीरती वह ड्योढ़ी में चली आयी, लाश के पास पहुंची और झुककर उसे देखने लगी।

"काठ के उल्लुओ, यह जिन्दा है!" उसने जोरों से चिल्लाकर कहा। "पानी लाओ!"

"अरी, तू क्यों बीच मे टांग अड़ाती है?" लोग चेतावनी देने लगे। "कही ऐसा न हो कि लेने के देने पड़ जाएं!"

"बक नहीं, पानी लाओ, पानी!" उसने इस तरह चिल्लाकर कहा मानो उसे आग बुझाने के लिए पानी की जरूरत हो। इसके बाद, बहुत ही कामकाजी ढंग से, उसने अपना नया फ़्राक खींचकर घुटनो पर चढ़ा

लिया झटककर अपना पेटीकोट नीचे खिसका लिया और सनिक का खून से लथपथ सिर अपने घुटने पर रख लिया।

डरपोक लोग जो वहां खड़े तमाशा देख रहे थे, भुनभुनाते और भला-बुरा कहते धीरे-धीरे छंट गए। ड्योढी के अध-उजियाले में धोबिन की छलछलाती हुई आंखों पर मेरी नजर पड़ी जो उसके गोल-मटोल चिट्टे चेहरे पर तमतमाती चमक रही थी। लपककर मै एक डोल पानी ले आया। वह मुझसे बोली कि इसे सीदोरोव के सिर और छाती पर उंडेल दू।

"लेकिन मुझे तर न कर देना, मै मिलने जा रही हूं।" चेताते हुए उसने कहा।

सैनिक को होश आ गया, उसने अपनी आंखे खोली और कराह उठा।

"इसे जरा उठा तो," नताल्या ने कहा और अपने हाथ आगे फैलाकर उसकी बगल में डाले जिससे कपड़े खराब न हों, और उसे थाम लिया। हम दोनो उसे उठाकर रसोईघर में ले गए और बिस्तर पर लिटा दिया। फिर एक गीले कपड़े से उसने उसका मुंह साफ किया, और बाहर जाते हुए बोली:

"कपड़ा गीला करके इसके माथे पर रखता रह। मै बाहर जाती हू और उस दूसरे उल्लू को अभी खोजकर लाती हूं। शैतान कही के! अभी क्या है, जब जेल में चक्की पीसनी पडेगी, तब सारा नशा उड़ जाएगा!"

खून के दाग लगा अपना पेटीकोट खिसकाकर उसने नीचे उतार दिया और एक कोने में फेंक दिया। फिर सावधानी से थपथपाकर कलफलगे अपने नये फ्राक को ठीक किया। इसके बाद वह बाहर चली गई।

सीदोरोव ने अपना बदन लम्बा फैला लिया, हिचकिया लेने और आहे भरने लगा। उसके सिर से काले रंग का खून टपक-टपककर मेरे नंगे पांव पर गिर रहा था। मुझे बड़ी घिन आई, लेकिन डर के मारे मुझसे अपना पांव हटाते नही बना।

मुझे बड़ी उदासी मालूम हुई। बाहर हर चीज त्योहार के रंग में रंगी थी और खुशी से छलछला रही थी, घर का ओसारा और फाटक नवजात भोज-वृक्षों से सजे थे, हर खम्बे पर मेपल और रोवन वृक्ष की टहनियों का सिंगार था, मोहल्ले में सब कुछ हरा-भरा दिख रहा था और प्रत्येक चीज नयी तथा यौवन से इठलाती मालूम होती थी। सवेरे से मुझे ऐसा

अग्लम हो रहा था मानो वसंत का यह उल्लास जल्दी ही विदा न होगा और जीवन अब अधिक उजला कूड़ करकट से साफ और खुशी से छलछलाता बीतेगा।

सैनिक ने उबकाई लेकर उल्टी कर दी। गर्म वोद्का और हरे प्याज की दमघोट गंध से रसोईघर भर गया। जब-तब धुंधले तथा चपटे चेहरे और चिपकी नाके खिड़की के शीशों से सटी हुई दिखाई देती, और चेहरे के दोनो ओर फैली हुई उसकी हथेलियां बेढंगे कानों की भांति मालूम होती।

सैनिक यह याद करते हुए कि कैसे क्या हुआ बड़बड़ा रहा था:

"यह क्या? क्या मैं गिर पड़ा था? येर्मोखिन? अच्छा दोस्त निकला..."

वह खांसा, खुमारी में उसने आंसू बहाए और रोने-झीकने लगा:

"मेरी बहिना... ओ बहिना..."

पानी मे भीगा, कीच में सना और गंधाता, वह उठा और अपने पांवो पर खड़े होने का उसने प्रयत्न किया, लेकिन चकराकर फिर बिस्तर पर ही ढह गया और भय से आंखों को टेरते हुए बोला:

"बिल्कुल ही मार डाला रे..."

यह सुनकर मुझे हंसी आ गई।

"कौन शैतान हंसता है?" धुंधली आंखों से मेरी ओर देखते हुए उसने कहा। "तू हंसता कैसे है? अरे, मै तो हमेशा के लिए मारा गया..."

और बड़बड़ाते हुए वह मुझे अपने दोनो हाथो से धकेलने लगा:

"पहले सोफ़ेत में पैगम्बर इल्यास, दूसरे आड़े वक़्त मे घोड़े पर सवार सन्त जार्ज, और तीसरे—हट जा भेड़िये मेरे रास्ते से!"

"पागल मत बन," मैंने कहा।

वह बेमतलब गुस्सा हो गया, दहाड़ने लगा, पैर रगड़ने लगा।

"मैं मारा गया, और..."

उसने अपने भारी, गंदे और ढीले हाथ से मेरी आंखो पर जोरो से प्रहार किया। मै चिल्लाकर अंधा सा बना जैसे-तैसे बाहर अहाते मे भागा जहां नताल्या येर्मोखिन की बांह पकडे उसे खींचती हुई ला रही थी और चिल्लाकर कह रही थी:

"चलता है कि नहीं, लद्दू घोड़े? यह क्या हुआ?" मुझे सभालते हुए उसने पूछा।

"लड़ता है..."

"लड़ता है?" नताल्या ने अचरज से कहा। फिर येर्मोखिन को झटकाकर बोली:

"शुक्राना भेज भगवान को, उसने तुझे इस बार बचा लिया!"

मैंने आंखों को पानी से धोया और ड्योढ़ी से ही भीतर झांककर देखा: दोनों सैनिक गले से लिपटे हुए नशीले मेल-मिलौवल से एक-दूसरे का मुंह चूम-चाट रहे थे और उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। इसके बाद वे नताल्या को गले से लगाने के लिए लपके, लेकिन थप्पड़ से खबर लेते हुए वह चिल्लाई:

"कुत्ते नहीं तो, खबरदार जो मेरी ओर जरा भी अपने पंजे फैलाए! मुझे भी क्या तुमने बबुवाइन समझा है। खैर इसी में है कि अपने मालिकों के आने से पहले एकाध झपकी लेकर भले आदमी बन जाओ। नहीं तो तुम्हारी जान पर आफत आयेगी।"

छोटे बच्चों की भांति उसने दोनों को लिटा दिया, एक को पलंग पर, दूसरे को फर्श पर। जब दोनों खर्राटे भरने लगे तो वह ड्योढ़ी में निकल आई।

"मेरी फ्राक तो चुरमुर हो गई है, और मैं थी कि लोगों से मिलने-जुलने के लिए घर से निकली थी। उसने तुझे मारा?.. बेवकूफ कहीं का! वोद्का जो न कराए थोड़ा है। तू कभी न पीना, मेरे बच्चे, इसकी लत कभी न डालना..."

फाटक के पास एक बेंच पर उसके पास ही बैठते हुए मैंने पूछा:

"तुम्हें शराबियों से डर नहीं लगता?"

"मैं किसी से नहीं डरती—कोई नशे में हो या न हो। मैं सभी को इससे क़ाबू में रखती हूं!" कसकर बंधी अपनी लाल मुट्ठी दिखाते हुए उसने कहा। "खसम मेरा, भगवान को प्यारा हो गया, वह भी कसकर पीता था। तो मैं, जब वो ज्यादा नशे में होता, मैं उसके हाथ-पांव रस्सी से जकड़ देती। और जब वो सो उठता, नशा उसका उतर जाता तो उसका पतलून खींचकर मोटी-ताज़ी और मजबूत संटियों से उसकी मरम्मत करती, 'खबरदार जो फिर कभी मुंह से लगाई, ब्याह किया तो

फिर पीने का कोई काम नहीं दिल बहलाने को बीवी है वोदका नहीं हां बस तब खबर लेती और जब तक मेरे हाथ जवाब न देते तड़ातड़ संटियां जड़ती रहती। संटियों की मार से वह इतना नर्म हो जाता कि चाहो तो चिथड़े की भांति उंगली पर लपेट लो!"

"तुम ताक़तवर हो," मैं कहता, और मुझे हौवा का ध्यान हो आता जिसने खुदा को भी चकमा दिया था।

नताल्या ने सांस खींचते हुए कहा:

"औरत को मर्द से भी ज्यादा ताक़त की जरूरत है,—उसके पास दो मर्दों के बराबर ताकत होनी चाहिए, लेकिन भगवान ने मर्दों को ज्यादा बलवान बना दिया। लेकिन मर्दों पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।"

वह बहुत ही इत्मीनान से, बिना किसी जलन या कुढ़न के, बोल रही थी। उसकी कोहनियां मुड़ी हुई थीं और उसके हाथ उसकी भरी-पूरी छातियों पर बंधे हुए थे। इसकी पीठ बाड़े से सटी थी और उसकी आंखें कूड़ा-करकट छितरे रोड़ों से भरे बांध पर उदास भाव से जमी थीं। उसकी सयानी बातों में कितना समय निकल गया, कितना नहीं, मुझे कुछ ध्यान न रहा। सहसा, बांध के दूसरे छोर पर, अपने मालिक पर मेरी नजर पड़ी। पत्नी के साथ, उसे अपनी बांह का सहारा दिए, वह इधर ही आ रहा था। धीमे डगों से, रोब के साथ, मुर्गे-मुर्गी के जोड़े की भांति तिरछी गरदन किए वे चले आ रहे थे। वे हमारी ही ओर देख रहे थे और आपस में कुछ बातें कर रहे थे।

मैं लपककर ओसारे का दरवाजा खोलने भागा। जीने पर चढ़ते हुए मेरी मालकिन ने तीखी आवाज में कहा:

"क्यों, धोबिनों से चुहल करने लगा? सीख लिया नीचे वाली से यह सब?"

बात इतनी बेसिर पैर की थी कि उसने मेरे हृदय को छुआ तक नहीं। मुझे अधिक दुःख इस बात से हुआ कि मालिक भी हल्की हंसी हंसते हुए बोला:

"हुआ क्या—इसका भी वक़्त आ गया है!.."

अगले दिन सुबह के समय जब मैं लकड़ी लेने सायबान में गया तो दरवाजे में बिल्लियों के लिए बने छेद के पास, मुझे एक खाली बटुवा

पड़ा हुआ मिला। इस बटुवे को सीदोरोव के हाथों में मैं बीसियों बार देख चुका था। सो मैं उसे लेकर तुरन्त सीदोरोव के पास पहुंचा।

"और पैसे कहां हैं?" अपनी उंगलियों से बटुवे के भीतर टटोलते हुए उसने पूछा। "एक रूबल और तीस कोपेक थे। निकाल इधर!"

उसने अपने सिर पर एक तौलिया लपेट रखा था। उसका चेहरा पीला और खिंचा हुआ सा था। अपनी सूजी हुई आंखों को मिचमिचाकर उसने मेरी ओर देखा और इस बात पर विश्वास करने से इनकार कर दिया कि मुझे जब बटुवा मिला तो वह खाली था।

तभी येर्मोखिन भी आ गया और उसपर अपना रंग चढ़ाते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश करने लगा कि मैं चोर हूं।

"इसी ने बटुवा खाली किया है," मेरी ओर सिर हिलाकर इशारा करते हुए उसने कहा, "कान पकड़कर इसे इसके मालिक के पास ले चल! कोई भी सिपाही किसी दूसरे सिपाही भाई की चोरी नहीं करेगा!"

उसके शब्दों से साफ मालूम होता था कि यह सब उसकी ही करतूत है, पैसा निकालकर उसने बटुवा हमारे सायबान में डाल दिया। मैंने आव देखा न ताव, उसके मुंह पर ही कहा:

"झूठा कहीं का, पैसे खुद तूने चुराये हैं!"

मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा यह अन्दाज सही है, क्योंकि मेरी बात सुनते ही डर और झुंझलाहट से उसका चेहरा तिकोनिया बन गया। वह चीखा:

"है कोई सबूत?"

लेकिन मैं सबूत कहां से देता। येर्मोखिन ने चीखकर मुझे पकड़ा और खींचता हुआ बाहर अहाते में ले गया। सीदोरोव भी चीखता हुआ पीछे-पीछे लपका। शोर सुनकर पड़ोसियों के सिर खिड़कियों से बाहर निकल आए। रानी मार्गो की मां भी दम साधे, निश्चल भाव से सिगरेट पीते हुए देख रही थी। यह सोचकर कि अपनी रानी की नजरों में मेरी अब कोई साख न रहेगी, मेरा सिर एकदम चकरा गया।

मुझे याद है कि सैनिकों ने मेरे हाथ जकड़ रखे थे। मेरे मालिक लोग उनके सामने खड़े थे, एक-दूसरे के स्वर से स्वर मिलाकर शिकायतें सुन रहे थे। छोटी मालकिन चिहुंक उठी:

"यह इसी की करतूत है। कल रात, फाटक के पास, यह धोबिन

से चुहल कर रहा था। इसको जब न खनखनाती होती, तो वह इसे हाथ तक न धरने देती..."

"ज़रूर यही बात है!" येर्मोखिन चिल्लाया।

मेरे पांवों के नीचे फ़र्श मानो हिल गया। सारे बदन में आग लग गई। झल्लाकर मैं मालकिन पर चिल्लाया और इसके बाद बुरी तरह मार खाई।

लेकिन पिटाई से मेरा हृदय इतना घायल नहीं हुआ जितना इस बात से कि रानी मार्गो मेरे बारे में अब क्या सोचेगी। उसकी नजरों में अपने को अब मैं कैसे ऊंचा उठा सकूंगा? बहुत बुरा था मेरा हाल उस समय।

सौभाग्य से देखते-देखते सारे अहाते और मोहल्ले के समूचे ओर-छोर में सैनिकों ने चोरी की यह घटना तेजी से फैला दी। सांझ होते न होते, उस समय जबकि मैं अटारी में मुंह छिपाए पड़ा था, मुझे नताल्या कोज्लोव्स्काया के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी:

"बड़ा नवाबजादा है जो मैं अपना मुंह बंद रखूं? बस, सीधी तरह से चला आ, मैं कहती हूं कि चला आ, ज्यादा नानुकर न कर। नहीं तो तेरे अफ़सर के सामने सारा भंडाफोड़ कर दूंगी और तू खिंचा-खिंचा फिरेगा!"

मैं फ़ौरन भांप गया कि हो न हो, यह तड़प-झड़प मुझसे ही संबंध रखती है। वह हमारे ओसारे के पास ही खड़ी थी और चिल्ला रही थी और उसकी आवाज अधिकाधिक तेज़ होती और अधिकाधिक जोर पकड़ती जा रही थी।

"कल तूने मुझे कितने पैसे दिखाये थे? कहां से आये वे तेरे पास—बता तो जरा?"

खुशी के मारे मेरा गला रुंध सा गया। सीदोरोव का मिनमिनाना भी सुनाई पड़ रहा था:

"ओह, येर्मोखिन, येर्मोखिन..."

नताल्या कह रही थी:

"और सिर पर पड़ी इस लड़के के—चोर भी बना, मार भी खाई?"

मेरा मन हुआ कि लपककर फ़ौरन नीचे पहुंच जाऊं और खुशी से झूमकर धोबिन को चूम लूं। लेकिन तभी, शायद खिड़की में से, मुझे अपनी मालकिन के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी:

"चुप रह छिनाल! लड़के को चोर किसीने नहीं समझा, न ही इसके लिए वह पिटा। उसने मार खाई अपनी बदतमीजी के लिए!"

"छिनाल तुम खुद हो, मेम साहिबा और ऊपर से मोटी गाय भी।"

उनकी यह तडप-झडप मेरे लिए मधुर सगीत थी। दिल पर लगी चोट और नताल्या के प्रति कृतज्ञता के आंसू मेरे हृदय मे उमड-घुमड़ आए और उन्हे रोकने के प्रयत्न मे दम घुटने लगा।

फिर मेरा मालिक, धीमे डगों से, अटारी मे आ गया और मेरे पास ही बाहर को निकली एक कडी पर बैठ गया।

"क्यो, भाई, पेशकोव, तेरी क़िस्मत ही खराब है," अपने बालो को ठीक करते हुए उसने कहा। "करे कोई, और भुगते कोई!"

कोई जवाब दिए बिना ही मैने मुह फेर लिया।

कुछ रुककर उसने फिर कहा:

"लेकिन इसमे भी कोई शक नही कि तू बेहद मुंहफटा है!"

"ठीक होने पर मै आपके यहां से चला जाऊंगा..." मैने कहा।

कुछ देर तक उसने कुछ नही कहा, चुपचाप बैठा सिगरेट का धुआ उड़ाता रहा। इसके बाद, सिगरेट के छोर पर अपनी नजर गड़ाए बोला:

"जैसा तू ठीक समझे। तू कोई बच्चा तो है नही, अपना भला-बुरा खुद सोच सकता है..."

और वह चला गया। सदा की भांति मुझे उसपर तरस आया।

चार दिन बाद मैने वह जगह छोड़ दी। मेरे मन में गहरी इच्छा थी कि रानी मार्गो के पास जाकर उससे विदा ले आऊं, लेकिन उस तक पहुंचने का साहस न बटोर सका और, सच बात तो यह है कि, मन ही मन मै यह उम्मीद बाधे था कि वह खुद मुझे बुलायेगी।

बच्ची से विदा लेते समय मैने कहा:

"अपनी मां से कहना कि मै उनका कृतज्ञ हूं और उन्हे बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं। कहोगी न?"

"हां," बहुत ही कोमल और प्यारी मुसकान के साथ उसने वचन दिया। फिर बोली, "विदा, कल तक के लिए, है ना!"

बीस वर्ष बाद उससे फिर मेरी भेंट हुई। तब वह राजनीतिक पुलिस के एक अफ़सर की पत्नी थी...

एक बार फिर मैंने जहाज में बरतन धोने का काम संभाला। इस जहाज का नाम था "पेर्म", बड़ा और तेज रफ्तार, हंस की भांति एकदम सफ़ेद। इस बार मेरा ओहदा था–किचन ब्वाय। मेरा काम बावर्चियों का हाथ बंटाना था। वेतन सात रूबल महीना।

जहाज का बारमैन एक गोल-मटोल गावदुम और बददिमागी से बफ़रा हुआ, गेंद सा गंजा आदमी था। हाथों को कमर के पीछे बांधे सुबह से सांझ तक वह डेक पर चक्कर लगाता, उस सूअर की भांति जो गर्मी और धूप से बौखलाकर किसी छायादार कोने की खोज में भटक रहा हो। उसकी पत्नी बार की शोभा बढाती। उम्र चालीस के ऊपर, सुंदर लेकिन मुर्झायी हुई सी। पाउडर इतना थोपती कि गालों पर से झड़ने लगता और सफ़ेद चिपचिपी धूल की भांति उसके भडकीले कपड़ो पर जमा होता रहता।

रसोईघर की बागडोर भारी वेतन पानेवाले बावर्ची इवान इवानोविच के हाथों मे थी जिसे सब नाटा भालू कहते। नाटा क़द, स्थूल शरीर, तोते जैसी नाक और सबको ठेंगे पर रखने वाली आखें। तबीयत का शौक़ीन, हमेशा कलफदार कालर लगाता, रोज़ दाढ़ी छीलता, इस हद तक कि उसके गालो की खाल मे नीलापन झलकता था। उसकी बलदार काली मूछें ऊपर को खड़ी रहतीं; जब भी खाली हाथ होता अपनी तपी हुई लाल उंगलियों से उन्हे बराबर ऐंठता और एक छोटे से गोल दस्ती शीशे में देखकर गर्व से तन जाता।

जहाज़ी याकोव शूमोव, जो भट्ठी में ईंधन डालने का काम करता था, जहाज के लोगों में सब से ज्यादा दिलचस्प था। चौकोर काठी, चौड़े कधे। नाक की नोक ऊपर को उठी हुई, चेहरा फावड़े की भांति चपटा, घनी भौंहों में छिपी भालू जैसी आंखें, दलदल की काई की भांति छल्लेदार दाढ़ी गालो को घेरे हुए, सिर पर इन घुंघराले बालों के गुथने से टोपी सी बन गयी थी, अपनी टेढ़ी-मेढ़ी उंगलियों को वह मुश्किल से उनके बीच से गुज़ार पाता।

वह ताश खेलने मे बहुत तेज था, बाज़ी पर पैसे लगाता था और खाने पर इस बुरी तरह टूटता कि देखकर अचरज होता। भूखे कुत्ते की

भांति वह रसोईघर के आस-पास ही लटका रहता। कभी बोटी के लिए हाथ फैलाता और कभी हड्डियों के लिए। सांझ को वह नाटे भालू के साथ चाय पीता और अपने जीवन के अजीब-ग़रीब क़िस्से सुनाता।

बचपन में वह रियाज़ान नगर के गड़रिये के साथ गुजर करता था। एक दिन कोई ईसाई साधु उधर से गुज़रा और उसके कहने-फुसलाने से वह मठ में भर्ती हो गया। नये साधु के रूप में वह चार साल तक मठ में रहा।

"आज दिन भी मैं साधु ही होता,—खुदा का एक काला सितारा," वह सरपट बोलता जाता, "पर एक तीर्थ यात्रिनी ने हमारे मठ में आकर सब गड़बड़ कर दिया। वह पेंजा की रहने वाली थी। क्या बताऊं, इस नन्ही सी औरत ने मेरा दिमाग़ ही पलट दिया। 'ओह कितना अच्छा, ओह कितना मजबूत!' मुझे देखकर वह चहकी। फिर बोली, 'एक मैं हूं, बेदाग विधवा, एकदम अकेली। चलो न मेरे साथ? घर-बाहर का काम करना। मेरा अपना घर है, मुर्गे-मुर्गियों के परों का धंधा करती हूं। बोलो, क्या कहते हो?'"

"मुझे भला क्या उज्र होता? मैं उसके साथ हो लिया। वह मुझे अपना सेवक बनाना चाहती थी, पर मैं उसका प्रेमी भी बन गया। तीन साल तक उसके साथ मौज की और..."

नाटा भालू अपनी नाक पर निकले मस्सों को व्यग्र भाव से देखते हुए उसकी बातें सुन रहा था। आखिर वह झुंझला उठा।

"सफेद झूठ बोलना कोई तुझसे सीखे!" बीच में ही उसने कहा। "झूठ बोलने से अगर सोना बरसता तो कारू का खजाना बटोर लेता!"

याकोव जुगाली सी करता मुंह चला रहा था। उसकी छल्लेदार सफेद दाढ़ी जबड़े के साथ ऊपर-नीचे हरकत कर रही थी और उसके छाज से कान फड़फड़ा रहे थे। बावर्ची के चुप हो जाने पर उसकी जबान फिर समगति से कैंची की भांति चलने लगी:

"उम्र में वह मुझसे बड़ी थी। जल्दी ही मैं उससे उकता गया। सच जानो, मैं उससे तंग आ गया और उसे छोड़ उसकी भतीजी पर मैंने डोरे डाले। एक दिन उसे इसका पता चल गया। फिर क्या था, उसने मेरी गरदन दबोची और लात मारकर घर से बाहर निकाल दिया..."

"यानी बाक़ायदा हिसाब चुकता करके उसने तुझे विदा कर दिया!" बावर्ची ने भी याकोव की ही भांति सहज भाव से कहा।

जहाजी याकोव ने चीनी की एक डली अपने मुंह में डाली और फिर कहना जारी रखा.

"इसके बाद सूखे पत्ते की तरह हवा के साथ मैं इधर-उधर उड़ता और भटकता रहा। फिर व्लादीमिर के एक बूढ़े फेरीवाले के साथ मेरा गठबन्धन हुआ। उसके साथ मैंने आधी दुनिया नाप डाली—बाल्कन पहाड़ों का नाम सुना है? मैं वहां गया। सभी तरह के रंग-बिरंगे लोगों को देखा—तुर्कों और रूमानियाइयों, यूनानियों और आस्ट्रियाइयों, दुनिया भर के लोगों से वास्ता पड़ा। एक से खरीदा, दूसरे को बेचा.."

"चोरी भी की?" बावर्ची ने पूरी गम्भीरता से पूछा।

"बूढ़े फेरीवाले ने किसी पर कभी हाथ साफ नहीं किया—नहीं, कभी नहीं। और उसने मुझे भी कहा था, पराये देशों में किसी चीज पर हाथ न डालना; उन देशों का रिवाज था कि अगर कोई मामूली से मामूली चीज भी चुराता तो उसका सिर साफ़ धड़ से अलग कर दिया जाता। लेकिन यह न समझना कि मैंने चोरी करने की कोशिश नहीं की। कोशिश तो मैंने की, लेकिन कुछ बना नहीं। एक दिन मैं एक व्यापारी के अस्तबल से घोड़ा खोलकर भागा। लेकिन भाग नहीं सका. उन्होंने मुझे पकड़ लिया, और यह समझ लो कि खूब मारा। मारने से जब उनका जी भर गया तो मुझे खींचते हुए थाने में ले गए। थाने वालों ने मुझे बंद कर दिया। सचमुच तो हम दो थे—एक असली और खूब खरा घोड़ा-चोर था, दूसरा मैं जिसे घोड़ा चुराने का केवल शौक चर्राया था कि देखो, इसमें क्या मजा आता है। हां तो उसी व्यापारी ने उन दिनों एक नया हम्माम बनवाया था और मैं उसमें अलावघर बना रहा था। अब हुआ यह कि वह बीमार पड़ गया और बुरे-बुरे सपनों में वह मुझे देखता और बस उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम। घबराकर वह बड़े अफ़सर के पास गया और उससे भिनभिनाकर बोला, 'उसे छोड़ दो। सपनों में भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। अगर मैं उसे माफ़ नहीं करूंगा तो कौन जाने, वह मेरी जान ही ले ले। कम्बख्त जादू जानता है, मुझे सपनों में परेशान करता है।' हां तो अफ़सर ने उसकी बात मान ली। मानता क्यों नहीं, वह बहुत बड़ा व्यापारी जो था। सो मैं थाने से बाहर निकल आया.."

"वे चूक गए। तुझे हर्गिज नहीं छोड़ना चाहिए था। तू इस लायक है कि गले से पत्थर लटकाकर तीन दिन तक तुझे पानी में छोड़ दिया

जाये ताकि भेजे में जो भूसा भरा हुआ है वह बह जाये, बावर्ची ने कहा।

याकोव तुरत सुर में सुर मिलाते हुए बोला:

"सच कहो, भूसा तो मुझमें कम नहीं है। सच पूछो तो इतना भूसा मुझमें भरा है कि सारे गांव के लिए काफी है..."

बावर्ची ने अपने कालर में उंगली गड़ाई, गुस्से से उसे खींचा और सिर हिलाते हुए झुंझलाहट भरी आवाज में शिकायत की:

"क्या बकवास है! ऐसा डगर जमीन पर चरता, पीता घूम रहा है पर किसलिए? जरा बता तो, तेरे जीने का मकसद क्या है?"

चटखारे भरते हुए याकोव ने जवाब दिया:

"यह मैं नहीं जानता। बस जीता हूं, क्योंकि जीता हूं। कोई लेटा रहता है, कोई चलता रहता है और बाबू कुर्सी ही तोड़ता रहता है, लेकिन अपना दोजख भरे बिना किसी को चैन नहीं पड़ता।"

बावर्ची और भी झुंझला उठा:

"तू इतना सूअर है कि कुछ कहते नहीं बनता। जानता है, सूअर क्या खाते हैं? तू बस वही है!.."

याकोव अचरज के साथ बोला:

"अरे, डांटते क्यों हो? सभी देहाती एक ही पेड़ की गुठलियां हैं। तुम मत डांटो, इससे मैं बेहतर तो हो नहीं चला..."

इस आदमी ने मुझे फौरन ही और काफी मजबूती से अपने आकर्षण में बांध लिया। चकित भाव से मैं उसकी ओर देखता और मुंह बाये उसकी बातें सुनता। मेरा जी उससे कभी न उकताता। मुझे लगता था कि उसे जीवन का कोई अपना ठोस ज्ञान है। वह हरेक से, बिना किसी बनावट के खुलकर बातें करता और उतना ही खुलकर अपनी फरफराती हुई भौंहों के नीचे से सब की ओर देखता। उसके लिए कोई नीचा नहीं था—कप्तान, बारमैन, और फ़र्स्ट क्लास के बड़े-बड़े मुसाफिर भी उसके लिए वैसे ही थे जैसे अन्य जहाजी, बार के बैरे, तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर और वह खुद।

कभी-कभी बनमानुष जैसी अपनी लम्बी बांहों को कमर के पीछे किए, कप्तान या मशीनिये के सामने खड़ा वह उनकी झिड़कियां सुनता। काहिली अथवा ताश के खेल में बेरहमी से किसी की जेब खाली करने पर वे उसे

डांटते-डपटते और वह चुपचाप सुनता रहता। स्पष्ट मालूम होता कि डांट-डपट का उसपर कोई असर नहीं पड़ रहा है और अगले ही घाट पर उसे जहाज से उतार देने की उनकी धमकियां उसके कानों से टकराकर हवा में छितर रही है।

'बहुत खूब' की भांति याकोव में भी एक अपना निरालापन था। वह अन्य लोगों से कुछ भिन्न, उनसे कुछ अलग कोटि का, मालूम होता था। और जैसे खुद उसे भी इस बात का विश्वास था कि वह औरों से अलग, उनकी पहुंच और समझ से बाहर है।

इस आदमी को मैंने कभी उदास होते या मुंह फुलाते नहीं देखा। न ही वह मुझे कभी एक लम्बे अर्से तक चुप्पी साधे दिखाई दिया। शब्दों की एक अंतहीन धारा, मानो उसकी इच्छा न होने पर भी उसके मुंह से निकलती रहती। जब भी उसपर डांट-डपट पड़ती, या वह कोई दिलचस्प किस्सा सुनता, तो उसके होंठ इस तरह हिलते मानो वह सुनी हुई बात को दोहरा रहा हो या अपनी बात कहता जा रहा हो। हर रोज अपना काम खत्म करने के बाद जब वह बाहर निकलता तो उसका सारा शरीर पसीने और तेल से लिथड़ा होता। नंगे पांव और बिना पेटी की गीली कमीज वह पहने होता जिसका गला खुला रहता और घने घुंघराले बालों से घिरा उसका सीना उसके भीतर से झांकता दिखाई देता। फिर मुंह से गहरी और एकरस आवाज निकलती और वर्षा की बूंदों की भांति डेक पर शब्दों की बौछार होने लगती।

"कहो, अम्मा, कहां जा रही हो? क्या कहा, चिस्तोपोल? मैं भी वहां रह चुका हूं। एक अमीर तातार किसान के यहां काम करता था। हां, अहसान गुबैदुलिन उसका नाम था। खुर्राट कहीं का, तीन-तीन बीवियां रखता था। मजबूत काठी और चुकन्दर सा लाल चेहरा। उसकी एक बीवी बस गुड़िया जैसी थी। छोटे क़द की इस तातार स्त्री के साथ मैंने भी मजे किये..."

कोई जगह ऐसी नहीं थी जहां वह न गया हो, और रास्ते में मिली कोई स्त्री ऐसी नहीं थी जिसके साथ उसने मजे न किए हों। बड़ी शान्ति और स्थिरता के साथ वह यह सब बाते बताता, मानो कड़ुवाहट और मान-अपमान का उसने अपने जीवन में कभी अनुभव न किया हो। पलक झपकते जहाज के दबूसे से उसकी आवाज सुनाई देती:

"है कोई ताश का खिलाड़ी? पत्ता-पटक छक्का, पंजा, — चले आओ जिसे ताश खेलना हो। ताश से बढ़िया चीज इस दुनिया में कोई नहीं है। मजे से बैठकर पत्ते फटकारो, और बड़े सौदागर की तरह आराम से धन बटोर लो!.."

'भला', 'बुरा', या 'कमीना' — ऐसे शब्द उसके मुंह से शायद ही कभी निकलते थे। उसके लिए हमेशा हर चीज़ 'लुभावनी' या 'आरामदेह' अथवा 'अजीब' होती थी। जब वह किसी सुन्दर स्त्री का ज़िक्र करता तो उसे 'गुड़िया सी सुन्दर' कहता, धूप निखरा रुपहला दिन उसे 'आरामदेह दिन' मालूम होता। उसका सब से प्रिय सम्बोधन था.

"गोली मारो!"

सब उसे काहिल समझते, लेकिन मुझे लगता कि दमघोट और सड़ाध भरे भट्टी-घर में वह भी उतनी ही लगन से जान तोड़ मेहनत करता था जितनी कि अन्य। यह बात दूसरी थी कि ईंधन डालनेवाले अन्य जहाज़ियों की भांति न तो वह कभी रोता-झींकता था, न ही वह काम के बोझ को लेकर कभी तोबा-तिल्ला मचाता था।

एक दिन मुसाफिरों में से किसी बूढ़ी स्त्री का बटुवा चोरी चला गया। शान्त और साफ़ सांझ थी। सभी उमंग से भरे थे। कप्तान ने बुढ़िया को पांच रूबल दिए और मुसाफ़िरों ने भी उसके लिए चन्दा जमा किया। जब उसे पैसे दिए गए तो उसने सलीब का चिन्ह बनाया और कमर तक झुकते हुए बोली:

"मेरे बेटो, मुझे तीन रूबल ज्यादा दे दिये। मेरे बटुवे में तो इतने रूबल थे भी नहीं!"

कोई प्रसन्न भाव से चिल्लया:

"ले लो, दादी अम्मा! यह अच्छा ही है कि पास में कुछ पड़ा रहे। वक़्त पर काम देगा..."

किसी अन्य ने एक बढ़िया फबती कसी:

"पैसा आदमियों से बढ़कर है। उसे कोई नहीं ठुकराता!"

लेकिन याकोव ने बुढ़िया के सामने एक निराला ही सुझाव रखा:

"फालतू पैसा मुझे दे दो। मैं इससे ताश खेलूंगा!"

सब हंसने लगे। समझे कि वह मज़ाक कर रहा है। लेकिन वह पूरी गम्भीरता से बुढ़िया के पीछे पड़ा था:

"लाओ, दादी अम्मा! एक पांव तो तुम्हारा कब्र में लटका है, तुम पैसों का क्या करोगी?"

यह देख सब उसपर बमक पड़े और उसे बुढ़िया के पास से दूर खदेड़ दिया। अचरज में आंखें फाड़ते हुए उसने मुझसे कहा:

"अजीब लोग है ये भी! भला ये क्यों बीच में टांग अड़ाते हैं? वह खुद कहती थी कि उसे फालतू पैसे नहीं चाहिए। ओह, तीन रूबल पाकर मेरी तबीयत हरी हो जाती..."

ऐसा मालूम होता मानो उसे धन की, सिक्कों की, शक्ल-सूरत से प्रेम हो। बातें करते समय उसे अपने पतलून पर सिक्का रगड़ना अच्छा लगता और फिर जब सिक्का खूब चमक जाता तो उसे अपनी टेढ़ी-मेढ़ी उंगलियों से पकड़े अपनी ऊपर को मुड़ी नाक के पास ले जाता और भौंहे हिला-हिलाकर उसे देखता। लेकिन वह लालची नहीं था।

एक बार उसने पत्ता-पटक खेलने के लिए मुझे बुलाया। लेकिन मैं खेलना नहीं जानता था।

"अरे, यह क्या—तू किताबें पढ़ लेता है," उसने अचरज से कहा, "लेकिन पत्ता-पटक खेल नहीं जानता। अच्छी बात है, मैं तुझे सिखाऊंगा। चल, पहले ऐसे ही खेलें, चीनी की डली की बाज़ी लगाकर..."

उसने आधा पौंड चीनी मुझसे जीती। वह जीतता जाता और चीनी की डली मुंह में रखता जाता। जब उसने समझा कि मैं अब खेलना सीख गया तो बोला:

"अब हम सचमुच का खेल खेलेंगे, पैसों की बाज़ी लगाकर। जेब में कुछ है?"

"पांच रूबल है।"

"मेरे पास भी ऐसे ही दो-एक रूबल होंगे।"

देखते-देखते मैं सभी कुछ हार गया। उसे वापस लौटाने की धुन में पांच रूबल के बदले मैंने अपने लंबे गर्म कोट की बाज़ी लगा दी, और उसे भी गंवा बैठा। फिर अपने नये ऊंचे जूतों को दांव पर रखा और उन्हें भी खो दिया। इसके बाद याकोव ने चिड़चिड़ाकर क़रीब-क़रीब गुस्से में कहा:

"नहीं, तू खेल नहीं सकता, जल्दी गरमा जाता है—फ़ौरन कोट भी बाज़ी पर और जूते भी बाज़ी पर! इसकी मुझे कोई जरूरत नहीं। यह

ले अपने कपड़े वापस और पसे भी चार रूबल एक रूबल मेरा तुझे अक़्ल देने का... ठीक है?

मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया।

"गोली मार!" मेरी कृतज्ञता के जवाब में उसने कहा। "खेल खेल है—मतलब मनबहलाव। लेकिन तू तो बाक़ायदा कुश्ती करने लगा। और यह गर्म दिमाग़ी तो लड़ाई में भी काम नहीं देगी,—खूबी इस बात में है कि विरोधी को ठंडे दिमाग़ में चित करो। फिर, गरम होने की बात भी क्या है? तू जवान है, और तुझे अपने को काबू में रखना चाहिए। एक बार चूका, पांच बार चूका, सात बार—फिर गोली मार! एक डग पीछे हट जा, दिमाग़ को ठंडा कर, और फिर जूझ पड़। समझा, खेल इस तरह खेला जाता है!"

वह मुझे बराबर अच्छा लगता और साथ ही बुरा भी। कभी-कभी जब वह बोलता तो मुझे अपनी नानी की याद हो आती। उसमें बहुत कुछ था जो मुझे अपनी ओर खींचता, लेकिन लोगों के प्रति उसकी स्थिर, गहन उदासीनता, जो लगता था अन्त तक उससे चिपकी रहेगी, मुझे उससे विमुख करती।

एक दिन सूरज छिपे दूसरे दर्जे के मुसाफ़िर, पेर्म के निवासी एक मोटे सौदागर ने इतनी पी ली कि लड़खड़ाकर जहाज से नीचे पानी में जा गिरा। वह बुरी तरह हाथ-पांव पटक रहा था और जहाज़ से कटी लाल-सुनहरे पानी की लीक में बहा जा रहा था। जहाज़ के इंजन तुरंत बन्द कर दिए गए और वह पहियेनुमा चप्पुओं के नीचे से झाग का बादल छोड़कर एकदम स्थिर हो गया। छिपते सूरज की लाली से झाग खून की भांति लाल हो रहा था। रक्तिम लाली के इस उमड़ते सागर में एक काला शरीर जो अब काफ़ी पीछे छूट गया था, छटपटा रहा था और पानी में से हृदयवेधी चीखें उठ रही थीं। मुसाफ़िर भी चिल्लाते और एक-दूसरे को धकियाते हुए जहाज के दबूसे पर जमा हो रहे थे। डूबनेवाले आदमी का गंजे सिर और तांबे जैसे रंग के चेहरे वाला एक साथी जो खुद भी नशे में धुत्त था, भीड़ को चीरता आगे बढ़ने के लिए चिल्ला रहा था:

"रास्ता छोड़ दो! मैं अभी उसे पकड़ लाऊंगा!"

दो जहाजी पानी में पहुंच चुके थे और तैरकर डूबते हुए आदमी की ओर बढ़ रहे थे। जान बचानेवाली एक नाव नीचे उतारी जा रही थी।

जहाजियों की चिल्लाहट और स्त्रियों की चिल्लपों को वेधकर याकोव की शान्त और गदराई हुई आवाज सुनाई दे रही थी :

"वह गर्म कोट पहने है, डूबने से भला कैसे बचेगा। अगर बदन पर भारी लबादा हो तो डूबना ते है। औरतों को लो,—आदमियों के मुकाबले वे क्यों इतनी जल्दी पानी की तह में बैठ जाती है? यह उनके घाघरों की करामात है। औरत पानी मे गिरी नही कि ढाई मन के पत्थर की भांति सीधी तल को छूकर ही दम लेती है... देखो, वह डूब भी चुका है, मै यो ही थोड़े कहता हूं..."

वह सचमुच डूब चुका था। करीब दो घंटे तक वे उसकी लाश की खोज करते रहे लेकिन बेकार, लाश नहीं मिली। उसका साथी जो अब होश में था, जहाज के दबूसे पर उदास बैठा बुदबुदा रहा था :

"देखो न, यह क्या हो गया? अब क्या होगा? उसके घरवालो के सामने क्या मुंह लेकर मै जाऊंगा, उनसे क्या कहूंगा? उसके घरवाले जो हैं..."

पीठ के पीछे अपने हाथ बांधे याकोव उसके सामने खड़ा हो गया और ढारस बंधाने लगा :

"रोओ मत सौदागर! कोई नहीं जानता कि मौत से किस भेष में मुठभेड़ होगी। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक आदमी अच्छा-भला खुमी खाता है और सीधे क़ब्र की राह लेता है। हजारों आदमी खुमियां खाकर मोटे-ताजे बन जाते है, लेकिन वह है कि उसे मौत दबोच लेती है। और यह खुमी भी आखिर है क्या?"

वह सौदागर के सामने खड़ा था—चौड़ा-चकला, चक्की के पत्थर की भाति ठोस, भूसी की भांति अपने शब्दों को बिखेरता हुआ। पहले सौदागर धीमे-धीमे रो रहा था और अपनी चौड़ी हथेली से दाढ़ी पर ढुरक आए आंसुओ को पोंछता जाता था। लेकिन याकोव के शब्दों के अर्थ ने जब उसके हृदय को छूना शुरू किया तो वह फुक्का मारकर चीख उठा :

"चले जाओ यहां से, शैतान के पूत! मेरा हृदय पहले ही दुःख रहा है, तुमने आकर उसे और कुरेदना शुरू कर दिया। भले लोगो, इसे ले जाओ यहां से! नहीं तो जाने मै क्या कर बैठूं!"

याकोव शान्त भाव से हटते हुए बोला :

लोग सचमुच में अजीब है। उन्हें भली बात कहो, तो मारने को दौड़ते है..."

कभी-कभी याकोव मुझे भोले दिमाग का आदमी लगता था, लेकिन बहुधा मै यह सोचता था कि वह केवल बनता है। मेरा जी बुरी तरह ललकता कि उसके मुंह से उन जगहों का हाल सुनूं, जहां वह हो आया है, उन चीजो के बारे मे जानूं जिन्हें वह देख चुका है। लेकिन इससे कुछ नहीं बनता। वह अपना सिर पीछे की ओर तान लेता, भालू जैसी काली आंखों को आधा मूंद लेता, अपने थलथल चेहरे को थपथपाता और आप बीती याद करते हुए धीरे-धीरे बातों की लड़िया खोलने लगता :

"आदमी ही आदमी, जहां भी जाओ, चींटियो के दल की तरह आदमी ही आदमी दिखाई देते है। यहां भी आदमी, वहां भी आदमी—ढेर के ढेर। उनमें भी ज्यादातर किसान, पतझड़ के पत्तों जैसे सारी दुनिया में बिखरे हुए। बुल्गार? सच, बुल्गारिया के लोगों को मैने देखा, और यूनानियो को भी, और सर्बिया—रूमानिया के लोगों और सभी तरह के जिप्सी भी देखने को मिले। लोग कैसे थे? ऊह, कैसे क्या होते? शहरो में शहरी लोग थे, और देहातो में देहाती। ठीक हमारी ही तरह एकदम मिलते-जुलते। उनमे से कुछ तो हमारी बोली भी जानते है। हां, ठीक से नहीं बोल पाते। मिसाल के लिए जैसे तातार और मोर्द्वोविया वाले। यूनानी हमारी बोली नही बोल सकते, पता नहीं वे क्या ऊल-जलूल बोलते है। सुनने में तो लगता है कि शब्द मुंह से निकल रहे है, लेकिन मतलब समझना चाहो तो कुछ पल्ले नहीं पड़ता। उनसे हाथ के इशारो से बात करनी पड़ती है। और वह बूढ़ा खुर्राट जिसके साथ मै काम करता था, यह दिखाने के लिए कि वह यूनानियों की बोली समझता है, हर घड़ी 'कारामारा, कालिमेरा' बड़बड़ाता रहता। वह सचमुच मे खुर्राट था, बड़ा ही चलता पुर्जा। उलटे उस्तरे से उनकी हजामत बनाता। क्या कहा तूने? यह कि वह कैसे थे? बार-बार यही सवाल दोहराता है! मेरे बुद्धू, यह भी कोई जानने की बात है? जरूर उनका रंग काला होता है, और ऐसे ही रूमानियो का भी—ये सब एक ही मजहब मानते हैं। बुल्गार भी काले होते है, लेकिन उनका मजहब हमारे जैसा है। और यूनानी—वे तुर्कों जैसे होते है..."

मुझे लगता कि वह सब कुछ नहीं बता रहा है, कोई चीज है जिसे वह छिपा रहा है।

पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों से मैं जानता था कि यूनान की राजधानी एथेन्स है जो एक प्राचीन और सुन्दर नगर है। लेकिन याकोव ने अविश्वास से सिर हिलाया और एथेन्स के अस्तित्व से इनकार करते हुए बोला :

"यह तो तुझे झूठ बताया गया है, भाई मेरे! एथेन्स नाम की कोई चीज नहीं है, केवल एथोन है, और वह भी नगर न होकर एक पहाड़ है जिसपर एक मठ बना है। बस, इसके सिवा और सब झूठ है। इसे लोग पवित्र एथोन परबत कहते हैं। मेरा बूढ़ा इस परबत की तसवीरें भी बेचता था। डेन्यूब नदी के किनारे बेल्गोरोद नाम का एक नगर जरूर है, हमारे यारोस्लाव्ल या नीज्नीसे मिलता-जुलता। उनके नगर किसी काम के नहीं हैं, लेकिन उनके गांव—उनकी तो बात ही दूसरी है और उनकी औरतें भी,—बस, कुछ न पूछो। ऐसी ही एक औरत के चक्कर में मैं वहां फंस गया। भला क्या नाम था उसका?"

उसने अपनी हथेलियों को गालों पर कसके रगड़ा और उसकी दाढ़ी के बाल धीमे से चरचरा उठे। फिर, उसके गले की गहराई से फूटी हुई घंटी की भांति हंसी सुनाई दी :

"वाह भई, आदमी भी कितनी जल्दी भूल जाता है। वह मेरे पीछे पागल थी और मैं उसके... जब मैं वहां से चला तो वह फूट-फूटकर रोई, और सच मान चाहे झूठ, मेरी आंखों से भी आंसू बहने लगे..."

इसके बाद, पूरी बेशर्मी से, उसने मुझे सिखाना शुरू किया कि स्त्रियों के साथ कैसे क्या करना चाहिए, किस तरह उनके साथ पेश आना चाहिए।

जहाज के दबूसे पर हम बैठे थे। सुहावनी और चांदनी खिली रात बाहें पसारे हमारी ओर बढ़ रही थी। बाईं ओर रुपहले पानी के उस पार चरागाहों की भूमि आंखों से लगभग ओझल हो चली थी, दाहिनी ओर पहाड़ियों पर जहां-तहां पीली रोशनियां टिमटिमा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वी ने आकाश के तारों को यहां लाकर बन्दी बना दिया हो। हर चीज गतिवान, सजग और स्पन्दनशील थी, शान्त किन्तु जीवन की गहराई से भरपूर। और उसके भरभराते हुए शब्द मधुर और उदास निस्तब्धता से छनकर गिर रहे थे :

"हाथ-पैर फैलाकर लंबी हो जाती..."

याकोव के किस्सों मे नंगापन होता, लेकिन घिनौनापन नहीं, उसमें न शेखी का पुट होता, न क्रूरता का। वे अनगढ़ और कुछ हद तक उदासी मे डूबे होते। ऊपर आकाश में चांद तैरता होता, बिना किसी आवरण के, उतना ही उघडापन लिए, और हृदय में उतने ही उदास भावो का संचार करनेवाला। मुझे केवल उन्हीं चीजो की याद आती जो अच्छी थीं; सबसे अच्छी: रानी मार्गो, और सचाई से भरी ये पंक्तियां जिन्हें कभी नहीं भूला जा सकता:

> है केवल गीत को आवश्यकता सौन्दर्य की
> सौन्दर्य को नहीं चाहिये गीत भी. .

सोच-विचार के अपने मूड को मै हल्की नीद की तरह झटककर फिर उसपर दबाव डालता कि वह अपने जीवन और जो कुछ उसने देखा-सुना है उसके बारे में बताए। वह कहता:

"तू भी अजीब जानवर है! तुझे मै क्या-क्या बताऊं? सभी कुछ तो मैने देखा है। मठ?—हां, मैने मठ देखा है। और भटियारखाना?—हां, भटियारखाना भी। साहब लोगों का जीवन भी मैने देखा है और देहातियों का जीवन भी। भूख भी देखी और छककर खाया भी..."

फिर धीरे-धीरे, मानो वह किसी गहरी नदी के चरर-मरर करते पुल पर से गुजर रहा हो, वह अपना अतीत याद करता:

"मिसाल के लिए एक यही बात लो, थाने वाली बात, घोड़ा चुराने के बाद जब मै हवालात में बंद था। मुझे लगा कि अब जान नहीं बचेगी, जरूर काले कोसों साइबेरिया के लिए बिस्तर गोल करना पडेगा। तभी पुलिस अफ़सर पर मेरी नजर पड़ी। वह अपने नये घर के अलावघरों को कोस रहा था जो ख़ूब धुआं देते थे। मैने उससे कहा, 'सरकार, अगर हुक्म हो तो मै उन्हें ठीक कर सकता हूं।' पंजे पैने कर वह मुझपर झपटा। बोला, 'तेरी यह हिमाकत? नगर का सबसे अच्छा अलावघर बनानेवाला तो उन्हें ठीक नहीं कर सका, और तू डींग मारता है कि ठीक कर देगा!' लेकिन मै भी डटा रहा। कहा, 'कभी-कभी निरा बुद्धू भी काजी को पछाड़ देता है।' काले कोसों साइबेरिया मेरे सिर पर मंडरा रहा था। सो मै जरा भी नहीं दबा। आख़िर उसने कहा, 'अच्छी बात है। तू भी कोशिश कर देख। लेकिन तेरे हाथ लगाने के बाद अगर

उन्होंने ज्यादा धुआं देना शुरू किया तो समझ ले, तेरा कचूमर ही निकाल दूंगा!' झटपट दो दिन के भीतर मैंने अलावघरों को ठीक कर दिया। अफ़सर अचरज में पड़ गया, 'अरे काठ के उल्लू! छछून्दर की दुम! तू इतना बड़ा कारीगर, और घोड़े चुराता फिरता है? आखिर क्यों?' मैंने कहा, 'यही तो मेरी बेवकूफी है, सरकार!' वह बोला, 'ठीक कहता है। यह बेवकूफी है। कितने दुःख की बात है। मुझे तुझपर तरस आता है।' सुना तूने? एक पुलिस अफ़सर, जिसके पेशे में तरस और रहम के लिए कोई जगह नहीं होती, लेकिन वह है कि मुझपर तरस खा रहा है!.."

"हां तो फिर क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"कुछ भी नहीं। बस, उसका दिल पिघला, उसने मुझपर तरस खाया। और तुझे क्या चाहिए?"

"लेकिन तुम तो चट्टान जैसे मजबूत और हट्टे-कट्टे हो। तुम्हे देखकर क्या कोई तरस खा सकता है?"

याकोव बहुत ही भली हंसी हंसा।

"तू भी अजीब जानवर है। क्या कहा तूने—चट्टान जैसा? लेकिन चट्टान भी मान रखने की चीज है। वह भी अपना काम करती है। चट्टान के पत्थरों से सड़कें बनती हैं। हर चीज का एक अपना मान है, उसका एक अपना उपयोग है। रेत को ही लो। रेत आखिर होती क्या है? लेकिन उसमें भी घास उगती है..."

याकोव जब ऐसी बातें करता तो मुझे खास तौर से अनुभव होता कि उसके ज्ञान की पहुंच मेरी समझ से बाहर है।

"बावर्ची के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?" मैंने उससे पूछा।

"कौन नाटा भालू?" याकोव ने उपेक्षा से कहा। "उसके बारे में भला मेरा क्या ख्याल हो सकता है? ख्याल करने की उसमें कोई बात भी तो हो!"

उसका कहना ठीक था। इवान इवानोविच इतना सपाट और चिकना, और कुछ इतना ठीकोंठीक था कि ख्याल नाम की चीज लटकाने लायक खूंटियां उसमें नहीं थीं। उसमें केवल एक ही दिलचस्प चीज थी: वह याकोव से घृणा करता था और जब देखो तब उसे डांटता रहता था, लेकिन चाय फिर भी सदा उसके साथ ही पीता था।

एक दिन उसने याकोव से कहा

अगर तू मेरा दास और मैं तेरा मालिक होता तो हफ्ते में सात बार तेरी चमड़ी रगता, लोफरों के सरदार!"

"हफ्ते में सात बार तो कुछ ज्यादा है," याकोव ने पूरी गम्भीरता से जवाब दिया।

इस निरन्तर डांट-डपट के बावजूद, न जाने क्यों, बावर्ची बराबर उसके पेट का कुआं भरता रहता। खाने की कोई न कोई चीज वह उसे देता और कहता :

"यह ले, पेटू की दुम!"

"तुम्हारी दया से खूब ताकत बटोर लूंगा, इवान इवानोविच।" खाने की चीज़ को अलस भाव से चबाते हुए याकोव कहता।

"लेकिन अपनी इस ताकत का करेगा क्या, काहिलों के सिरताज!"

"क्यों, लंबी उम्र जीऊंगा, और क्या..."

"जीकर करेगा क्या, बेताल?"

"बेताल भी जीना चाहता है। या फिर तुम्हें जीवन बेरस मालूम होता है? जीवन बहुत ही मज़ेदार चीज़ है, इवान इवानोविच..."

"वाह मूर्खाधिराज!"

"क्या कहा?"

"मू-र्खा-धि-रा-ज!"

"क्या शब्द है यह भी!" याकोव अचरज से कहता, और नाटा भालू मुझसे कहता :

"ज़रा इसे देख, तो। तू और मैं इन भट्ठियों में सिर दिए अपना ख़ून-पसीना एक करते हैं, लेकिन यह है कि सूअर की तरह जबड़ा चला रहा है!"

"हरेक का अपना-अपना भाग होता है," उसने अपना जबड़ा चलाते हुए कहा।

मैं जानता था कि बावर्चीख़ाने की भट्ठियों के पास खड़े होने के मुकाबले भट्ठी में ईंधन डालना कहीं अधिक जानलेवा और हाड़ झुलसा देनेवाला काम है, एक या दो बार रात को मैं ख़ुद याकोव के साथ काम करके यह देख चुका था, लेकिन इस बात को वह कभी पलटकर नहीं कहता था। यह मेरी समझ में न आता और मेरा यह

विश्वास और भी ज्यादा दृढ होता जाता कि उसके पास कोई विशेष ज्ञान है

उसे सभी डाटते-डपटते थे – कप्तान भी, मशीनिये भी, मल्लाहों का मुखिया भी – वे सब जिनका उससे कुछ भी वास्ता पड़ता। मुझे अचरज होता कि लात मारकर वे उसे निकाल क्यों नहीं देते? ईंधन डालने वाले जहाजी उसके साथ कुछ अधिक नर्मी से पेश आते, हालांकि वे सिर-पैर की उसकी बकवास और उसकी पत्तेबाजी का वे भी खूब मजाक उड़ाते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा:

"क्या याकोव अच्छा आदमी है?"

"याकोव बिल्कुल ठिकाने का आदमी है। कभी नाराज़ नहीं होता। कितना ही उसे उलटो-पलटो, चाहे उसकी कमीज के भीतर जलते हुए कोयले ही क्यों न छोड दो, उसका दिमाग़ कभी नही गडबड़ाता..."

ईंधन डालने का थकाकर चूर कर देनेवाला जानलेवा काम करने और अपने पेट का कुआं ठसाठस भर लेने के बाद भी याकोव बहुत कम सोता। अपनी पाली का काम खत्म होते ही वह दबूसे पर आ जाता, गंदा और पसीने मे बुरी तरह तर, बहुधा वही काम के काले-चीकट कपड़े पहने और सारी रात बैठा रहता, मुसाफ़िरो के साथ बतियाता या ताश खेलता।

मेरे लिए वह तालेबन्द सन्दूक के समान था। मुझे लगता कि उसके भीतर अवश्य कोई ऐसी चीज बन्द है जिसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता और इस ताले को खोलनेवाली कुंजी पाने के लिए मै बेहद बेचैन हो उठता।

भौंहो की ओट में अदृश्य आंखो से वह मुझे देखता। फिर कहता, "तेरे सिर पर तो भूत सवार है, भाई मेरे! मेरी समझ में नहीं आता कि तू चाहता क्या है? दुनिया के बारे में जानना चाहता है? यह सच है कि मैने दुनिया छानी है। लेकिन इससे क्या? तू भी अजीब पंछी है। अच्छा तो सुन, एक दिन की बात मै तुझे बताता हूं।"

और जो किस्सा उसने मुझे सुनाया, वह इस प्रकार है: बहुत दिन हुए, किसी सूबाई शहर में एक नौजवान जज रहता था। वह तपेदिक का मरीज था। किसी जर्मन लड़की से उसने शादी की थी: हट्टी-कट्टी, न

कोई बाल न बच्चा। उसका दिल एक सौदागर के लिए कुड़मुड़ाने लगा जो तीन बच्चों का बाप था, और जिसकी खूबसूरत पत्नी थी। सौदागर ने जब यह देखा कि जर्मन औरत उसपर न्योछावर होने के लिए तैयार है तो उसने उसके साथ एक मजाक करने की सोची। कहा कि बाग में रात को आकर मुझसे मिलो और अपने दो साथियों को झुरमुटों में छिपा दिया।

"ठीक है। जर्मन औरत आई, गरमागरम और उबक-चुबक करती, इशारा पाते ही उसके सामने बिछ जाने को तैयार। लेकिन उसने कहा, "नहीं श्रीमती जी, मैं तुम्हें गले से नहीं लगा सकता। मैं शादी-शुदा हूं। लेकिन तुम्हारे लिए मेरे दो साथी मौजूद हैं—एक कुंवारा है और दूसरा रंडुवा।" इसपर औरत ने आह भरी और सौदागर के एक ऐसा धौल जमाया कि वह कलाबाजी खाकर बेंच पर से उलट गया और उसने ठोकरें मार-मारकर उसका तोबड़ा ठीक कर दिया। मैं जज के यहां काम करता था और उस औरत को मैं ही बाग में पहुंचाने आया था। बाड़े के पीछे झिर्रियों में से मैंने यह सारा तमाशा देखा। उसके दोनों साथी उछलकर झुरमुटों में से निकल आए और औरत की ओर झपटे और उसके बाल पकड़कर खींचते हुए ले चले। अब क्या था, बाड़े को फांदकर मैं उनसे भिड़ गया। 'यह भी कोई तरीका है,' मैंने कहा, 'औरत ने उसका विश्वास किया और यहां चली आई, लेकिन वह उसकी मिट्टी पलीद करने पर उतर आया।' उसको उनके चंगुल से छुडाकर मैं अपने साथ ले चला। पीछे से उन्होंने मेरी खोपड़ी का निशाना साधा और एक ईंट फेंककर मारी... औरत का बुरा हाल था। अहाते में बेचैनी से टहलती रहती। मुझसे कहती, 'मैं चली जाऊंगी यहां से, मैं जर्मनी, अपने लोगों के पास, चली जाऊंगी, याकोव! मेरा पति दो दिन का मेहमान है, उसके मरते ही मैं यहां से चल दूंगी।' मैं बोला, 'यह ठीक है। यहां रहकर तुम करोगी भी क्या?' और हुआ भी ऐसा ही। जज मर गया और वह चली गई। वह बहुत ही भली थी और समझदार भी। और जज भी बहुत भला था, भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे..."

उसकी इस कहानी का मतलब मेरी समझ में नहीं आया। मैंने उसे सुना और चुपचाप बैठा रहा। उसमें मुझे कुछ वैसी ही क्रूरता और निरर्थकता दिखाई दी जिससे कि मैं परिचित था। बस इतना ही, और कुछ नहीं।

"क्यों, कहानी पसंद आई?" याकोव ने पूछा।

झुंझलाहट से मैं कुछ बड़बड़ाया, लेकिन वह शान्त भाव से मुझे समझाते हुए बोला:

"सो खाते-पीते लोग हैं, हर ओर से निश्चिंत; बस, कभी हंसी-मजाक को जी करता है, पर मजाक उनसे बनता नहीं, समझो, मज़ाक करना आता नहीं उन्हें। वैसे तो बेशक वे व्यापारी लोग हैं, काम-काज वाले। व्यापार में तो दिमाग़ लगता है और दिमाग़ी काम करते-करते तो आदमी ऊब ही जाता है सो बस चुस्की लेना चाहते हैं।"

जहाज़ पानी को चीरता और मथता, पानी में बल डालता और झागों के बादल उड़ाता, आगे बढ़ रहा था। पानी के उबलने-उफनने की आवाज आ रही थी और काले नदी-तट धीरे-धीरे दूर होते जा रहे थे। डेक पर से मुसाफ़िरों के खर्राटों की आवाज़ आ रही थी। काले कपड़े पहने एक लम्बी और दुबली-पतली स्त्री बेंचों और सोते हुए लोगों के बीच से सपक सुई सी गुजर रही थी। उसका सिर अनढका था और उसके सफ़ेद बाल चमक रहे थे। याकोव ने मुझे कंधा मारा और बोला:

"इसे देख, मालूम होता है, उदास है..."

मुझे लगा कि दूसरो को उदास देखने में उसे मज़ा आता है।

वह हमेशा कोई न कोई किस्सा सुनाता और मैं बड़े चाव से सुनता। मुझे उसके सभी किस्से याद थे, लेकिन उनमें ऐसा एक भी नहीं था जो ख़ुशी से सराबोर हो। किताबो के मुकाबले वह कहीं ज्यादा असंलग्न और तटस्थ मालूम होता था। किताबे पढ़ते समय बहुधा साफ़ पता चल जाता था कि लेखक की भावनाएं क्या है—न उसकी ख़ुशी छिपी रहती, न उसका ग़ुस्सा। साफ़ झलक जाता कि यहां वह दुःख प्रकट कर रहा है, और यहां हंसी उड़ा रहा है। लेकिन याकोव न कभी मजाक उड़ाता था, न किसी पर भले या बुरे का लेबुल लगाता था। वह कोई ऐसी बात न प्रकट करता जिससे उसकी नाराजी या ख़ुशी का पता चलता। वह अदालत में एक तटस्थ गवाह की भांति बोलता, उस आदमी की भांति जिसके लिए अपराधी, सरकारी वकील और जज सभी एक समान हों... उसकी यह तटस्थ असंलग्नता मुझे अधिकाधिक बुरी और बोझिल मालूम होती, और याकोव के प्रति झुंझलाहट भरी दुश्मनी का वह मुझमे संचार करती।

बायलरों की भट्ठी में उठनेवाली लपटों की भांति जीवन उसकी आंखों के सामने नाचता रहता और वह, भालू जैसे अपने पंजे में लकड़ी की हथौड़ी दबोचे, बायलर के पास खड़ा हुआ बर्नर के ढबे को चुपचाप ठकठकाता रहता और ईंधन को घटाता या बढ़ाता रहता।

"क्या तुम्हें किसीने चोट पहुंचाई है?"

"मुझे भला कौन चोट पहुंचा सकता है? मेरा यह शरीर नहीं देखा, एक ही घूंसे में काम तमाम कर दूं..."

"मेरा यह मतलब नहीं था। मेरा मतलब भीतर की, दिल और आत्मा की चोट से था।"

"आत्मा को भला कोई कैसे चोट पहुंचा सकता है," उसने कहा, "वह अपमान से परे है। उसे कोई चीज़ नहीं छू सकती – नहीं, कोई भी नहीं..."

डेक के मुसाफ़िर, जहाजी और अन्य सभी लोग, आत्मा के बारे में भी उसी तरह बातें करते नहीं अघाते थे जिस तरह कि वे ज़मीन या अपने धंधे, रोटी-पानी अथवा स्त्रियों के बारे में बातें करते नहीं अघाते। आम लोगों के शब्द-भंडार में आत्मा शब्द एक चलता हुआ सिक्का था। पांच कोपेक के सिक्के की भांति उसका व्यापक प्रचार और चलन था। मुझे यह देखकर बड़ा बुरा मालूम होता कि यह शब्द लोगों की चिकनी ज़बानों से इस हद तक चिपककर रह गया है, और जब कोई किसान गंदे शब्दों की बौछार करते-करते प्यार और द्वेष के साथ आत्मा की दुहाई देने या उसे कोसने लगता तो मुझे ऐसा मालूम होता मानो किसी ने मेरे सीने पर सीधा आघात किया हो।

मुझे अच्छी तरह से याद था कि मेरी नानी जब भी आत्मा का, प्रेम और आल्हाद तथा सौन्दर्य के इस रहस्यमय पात्र का, ज़िक्र करती तो श्रद्धा से उसका माथा झुक जाता, और मुझे पक्का विश्वास था कि जब कोई भला आदमी मरता है तो सफ़ेद फ़रिश्ते उसकी आत्मा को नीले आसमान में नानी के दयालु भगवान के पास ले जाते हैं और वह बड़े ही प्यार और दुलार से उसका स्वागत करता है:

"आ मेरी प्यारी, मेरी पवित्र – बड़े कष्ट भोगे, बड़े दुःख झेले?"

और वह आत्मा को फरिश्तों जैसे छः सफ़ेद पंख अता कर देता है।

याकोव शूमोव भी, नानी की भांति, उतनी ही श्रद्धा से उतनी ही

कम मात्रा मे और उतने ही अनमने भाव से आत्मा के बारे मे बात करता था। वह आत्मा को कभी नही कोसता था। और जब कभी वह दूसरो को ऐसा करते सुनता या देखता तो वह चुप हो जाता, अपना सिर नीचे झुका लेता। लाल भभूका और साड की भांति मजबूत उसकी गरदन लटक जाती। जब मै उससे पूछता कि आत्मा क्या है तो वह जवाब देता:

"आत्मा एक हवा है, ईश्वर की सांस।"

मुझे इससे सन्तोष न होता और अन्य सवालों की मै झड़ी लगा देता। आंख झुकाकर वह कहता:

"आत्मा का भेद तो पादरी भी नहीं जानते, मेरे भाई। यह एक गुप्त रहस्य है..."

मै बराबर उसके ही बारे मे सोचता रहता, और उसे समझने में अपनी सारी कोशिश लगा देता। लेकिन बेकार। इसके अलावा मुझे याकोव के सिवा और कुछ दिखाई न देता, उसके भारी-भरकम शरीर की ओट मे मानो सभी कुछ छिप जाता।

बारमैन की पत्नी का इधर मेरी ओर कुछ जरूरत से ज्यादा झुकाव हो गया था। हर रोज सुबह वह मुझसे ही नहाने-धोने के लिए पानी भरवाती, हालांकि यह काम क़ायदे से मेरा नहीं बल्कि दूसरे दर्जे की साफ़-सुथरी, प्रसन्नमुख, टुइयां सी परिचारिका लूशा का था। छोटे से संकरे केबिन में कमर तक नंगी इस स्त्री के पास जब मै खड़ा होता तो खट्टे खमीर की भांति लिजबिज उसके पीले शरीर से मुझे बड़ी घिन मालूम होती और अनजाने ही, रानी मार्गो के पुष्ट और ताम्बे की भांति दमकते बदन से मै उसकी तुलना करने लगता। और बारमैन की पत्नी की जबान बराबर चलती रहती, कभी वह कोसती और शिकायत सी करती, और कभी गुस्से में बड़बड़ाने और धज्जियां सी उधेड़ने लगती।

उसकी बात मेरे पल्ले न पड़ती, हालांकि मानो कहीं दूर से मैं उसका मतलब भांपता था जो दयनीय, भिखमंगा और शर्मनाक मतलब था। लेकिन मेरा मन जरा भी नही डिगा। मेरे और बारमैन की पत्नी के बीच, और उस हर चीज के बीच जो जहाज पर घटती या होती थी, एक दूरी थी। एक भीमाकार काई चढ़ी चट्टान मुझे अपने चारों ओर की दुनिया से अलग किए थी। और यह दुनिया स्थिर नहीं, गतिशील थी— दिन प्रति दिन समय के साथ तैरती और हर घड़ी आगे बढ़ती हुई।

बारमैन की औरत तो तुझपर बुरी तरह लट्टू है. खिल्ली उड़ानेवाली लूशा की आवाज गूंज उठती और मुझे इस तरह सुनाई देती मानो वह सपने में बोल रही हो। "अब क्या है, मजे से गोते लगा, घर बैठे गंगा बड़े भाग से आती है..."

मेरी खिल्ली उड़ानेवालों मे अकेली वही नही थी। बार के सभी कर्मचारी इस स्त्री के लगाव से परिचित थे। बावर्ची मुह बिचकाकर आवाज कसता:

"और सब चीज़ो का जायका तो देवी जी ले चुकी, सो अब पेस्टरी चखने का शौक चर्राया है! संभलकर पांव रखना, पेशकोव, नहीं तो गड़गच्च हो जायेगा!"

याकोव ने भी पिता के अन्दाज़ मे कामकाजी सलाह दी:

"अगर तू दो या तीन साल और बड़ा होता तो निश्चय ही तब मै दूसरे ही अन्दाज मे बाते करता। लेकिन इस उम्र मे—अच्छा है कि अछूता ही रह। लेकिन मै तुझे रोकूंगा नही, जो अच्छा लगे सो कर..."

"मारो गोली," मैने कहा, "मुझे तो घिन आती है..."

"ठीक, गोली मारो!"

लेकिन, कुछ क्षण बाद ही अपने उलझे हुए बालों को उंगलियों से ठीक करने की कोशिश करते हुए अपने गोल-मटोल शब्दों को बीज की भांति बिखेरना शुरू कर देता:

"लेकिन उसकी बात भी समझनी चाहिए, ढलती उम्र है बेचारी की... कुत्ता तक यह चाहता है कि उसे कोई थपथपाए, इंसान को तो इसकी और भी जरूरत है। प्यार-दुलार पर ही तो औरत जीती है, जैसे खुमिया नमी पर जीती हैं। शायद वह इससे खुद शर्माती हो, लेकिन वह करे भी क्या? शरीर मांगता है कि उसे दुलारा थपथपाया जाए, बस बात सारी यही है..."

उसकी रहस्यमयी आंखों में आंखें गड़ाकर मैने पूछा:

"क्या तुम्हें उसपर तरस आता है?"

"मुझे? मेरी क्या वह मां लगती है? लोग तो अपनी मां पर भी तरस नहीं खाते। सचमुच, तू भी... अजीब पंछी है!"

वह धीमी हंसी हंसता, फूटी हुई घंटी की आवाज़ जैसी।

कभी-कभी जब मै उसकी ओर देखता तो ऐसा मालूम होता मानो मै निःशब्द शून्य में, किसी अतल गढ़े और अंधेरे में डूबा चला जा रहा हूं।

और सब लोग शादी करते हैं, याकोव, तुम क्यों नहीं करते?

"किस लिए? औरत के लिए मुझे कभी तड़पना नहीं पड़ता,—भला हो भगवान का, आसानी से मिल जाती है... विवाह के बाद आदमी घर से बंध जाता है, उसे खेतीबाड़ी करनी पड़ती है। मेरे पास जमीन है, लेकिन बहुत ही कम, वो भी मेरे चाचा ने हथिया ली है। मेरा भाई जब फ़ौज से लौटा तो उसने चाचा से झगड़ा शुरू किया, मुकदमा चलाया और उसका सिर फोड़ दिया। खून-खराबा किया। इसके लिए पूरे डेढ़ साल की उसे सजा हुई, और इसके बाद—सजा-काटे आदमी के लिए एक ही रास्ता रह जाता है जो उसे फिर जेल पहुंचा देता है। अच्छी सी नौजवान घरवाली थी उसकी—छोड़, क्या कहना। शादी कर ली तो बस बैठ जा अपनी मड़ैया की रखवाली करने, पर सिपाही तो अपनी जिंदगी का मालिक नहीं, एक जगह बैठा नहीं जा सकता।"

"क्या तुम ख़ुदा की प्रार्थना करते हो?"

"क्या सवाल किया है पंछी ने। जरूर करता हूं..."

"किस तरह करते हो?"

"कई तरह से।"

"तुम्हें कौन सी प्रार्थनाएं याद हैं?"

"मै कोई प्रार्थना-व्रार्थना नहीं जानता। बस, सीधे कहता हूं, महाप्रभु ईसा, जीवितों पर तरस खा, मरों को शान्ति दे, बीमारी-चकारी से हमारी रक्षा कर... और ऐसी ही कुछ और बातें कहता हूं..."

"क्या बातें?"

"ओह, मतलब यह कि जो कुछ भी कहना हो, वह महाप्रभु ईसा के पास पहुंच जाता है।"

वह मेरे साथ बड़ी नर्मी बरतता और एक प्रकार के कौतुक में भरकर मुझे देखता, मानो मैं कोई चतुर पिल्ला हूं जो मजेदार करतब दिखा सकता है। सांझ को मै उसके पास बैठ जाता, उसके बदन से तेल, आग और प्याज की गंध आती रहती,—प्याज उसे बहुत पसंद था और उसे सेब की भांति कच्चा ही खा जाता। बैठे-बैठे उसे न जाने क्या सूझती कि एकाएक कहता:

"हां तो अल्योशा-वल्योशा, अब कोई कविता ही सुना दे!"

मुझे ढेर सारी कविताएं जबानी याद थी। उनके अलावा मेरे पास एक

मोटी कापी भी थी जिसमें मैं वे सभी कविताएं उतार लेता था जो मुझ अच्छी लगती थी। मैं उसे पुश्किन की कविता "रूस्लान और ल्युद्मीला" सुनाता और वह निश्चल सुनता रहता–न उसकी आंखें हरकत करतीं, न जबान–सांस लेने की अपनी थरथराहट तक को वह रोक लेता। अन्त में धीमे स्वर में कहता:

"कितनी प्यारी कहानी है! क्या खुद तूने इसे गढ़ा है? क्या कहा, पुश्किन ने लिखी थी? एक बड़े कुलीन आदमी को तो मैं भी जानता हूं। मुश्किन-पुश्किन उसका नाम था।"

"वह नहीं, यह दूसरा पुश्किन है। बहुत दिन हुए उसे मार डाला गया था।"

"किसलिए?"

थोड़े में मैंने उसे पुश्किन के जीवन और मौत की कहानी बता दी जो मुझे रानी मार्गो ने सुनाई थी। जब मैं सुना चुका तो उसने शान्त स्वर से कहा:

"औरतों के पीछे न जाने कितने लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं..."

मैं बहुधा उसे किताबों में पढ़ी कहानियां सुनाया करता। ये कहानियां, सब की सब, मेरे दिमाग में कुछ इतनी उलट-पुलट और गड्ड-मड्ड हो जातीं कि आपस में गुंथ-गुंथकर एक लम्बी-चौड़ी धारा का रूप धारण कर लेतीं, एक ऐसी धारा का जिसमें गहरी उथल-पुथल होती और सौन्दर्य भी, प्रेम और वासना की लपलपाती लपटें होतीं और गरदन-तोड़ साहसिक कृत्य भी, नेक नायक, चकित कर देनेवाली सौभाग्य की अद्भुत वर्षा, द्वन्द्व-युद्ध और मौत, बढ़िया-बढ़िया शब्द और कुटिलता में सिर से पांव तक डूबे खल-नायक–इसी धारा में गुंथ जाते। रोकाम्बोल को मैं लामोल, हनीबाल और कोलोनस का शौर्य प्रदान करता, ग्यारहवें लुई को पिता ग्रांडे के गुणों से लैस कर देता; और कोर्नेट ओत्लेतायेव की मैं ऐसा कायापलट करता कि उसे देखकर हैनरी चतुर्थ का धोखा होता। मुझे नयी से नयी बात सूझती। लोगों के चरित्रों में मैं फेर-फार करता और घटनाओं को नये सिरे से सजा देता,–एक ऐसी दुनिया आबाद करता जिसका मैं एक मात्र शासक होता, अपने नाना के खुदा की भांति जो लोगों के साथ मनमाने खेल खेलता है। लेकिन इस दुनिया के चारों ओर फैली

हुई जीवन की वास्तविकता मेरी आंखों की ओट न होती न ही जीवित लोगों को समझने की मेरी इच्छा को पाला मारता, बल्कि किताबी दुनिया का यह ऊहापोह पारदर्शी और अभेद्य रक्षाकवच बनकर जीवन में व्याप्त विषैली गंदगी और सड़ांध से हर घड़ी ताक में रहनेवाले अनगिनत घातक कीड़ों से मेरी रक्षा करता।

किताबों ने मुझे बहुत सी चीजों के लिए अभेद्य बनाया: यह जान लेने के बाद कि प्रेमी किस तरह प्रेम करते और तड़पते हैं, भूलकर भी किसी चकले में पांव रखना असम्भव था। छिनाल का यह सस्ता रूप देख मुझे तरस आता और मेरा हृदय उन लोगों के प्रति घृणा से भर जाता जो इसमें रस लेते। रोकाम्बोल ने मुझे सिखाया कि परिस्थितियों की ताक़त से लोहा लो, उन के सामने कभी न झुको। ड्यूमा के नायकों ने किसी ऊंचे और महत्वपूर्ण लक्ष्य के लिए जीवन अर्पित करने की मुझे सीख दी। और सबसे अधिक मुग्ध किया मुझे राजा हेनरी चतुर्थ के मौजी चरित्र ने। मुझे ऐसा लगता मानो उसी को लक्ष्य में रखकर बेरांजे ने अपना यह मस्ती भरा गीत रचा हो:

मिली छूट ख़ूब जनता को उससे,
और था पीने का वह भी शौक़ीन!
हां, जीती जब जनता सुख से,
तो हो क्यों न राजा भी रंगीन?

उपन्यासों में हेनरी चतुर्थ एक नेक और जनता के हृदय में घर कर लेनेवाले आदमी के रूप में चित्रित था। सुनहरी धूप की भांति उजला उसने मेरे दिल में अडिग भाव से यह बात बिठाई कि फ़्रांस से बढ़िया देश इस दुनिया में और कोई नहीं है जहां किसानों के कपड़े पहने लोग भी उतने ही नेक और अच्छे है जितने कि वे जो शाही शान-शौक़त में रहते हैं। आंजे पितोय भी उतना ही आन-बान वाला था जितना कि द-आर्तन्यान। जब हेनरी मारा गया तो मेरा हृदय भारी हो गया, आंखों से आंसू बहने लगे और गुस्से के मारे रैवेलाक पर मैंने ख़ूब दांत पीसे। हेनरी क़रीब-करीब उन सभी कहानियों का हीरो होता जो मै याकोव को सुनाता, और मुझे लगता कि उसके हृदय में भी हेनरी और फ़्रांस ने अपना स्थान बना लिया है।

"मजे का आदमी है तुम्हारा यह हेनरी बादशाह भी" उसने कहा। "एकदम यार बाश, चाहो तो उसके साथ मछली मारो या सैर-सपाटा करो।"

कहानी सुनते समय न कभी वह वाह-वाही करता न बीच में टोकता न सवालों की झड़ी लगाता था। वह चुपचाप सुनता रहता,— भौंहें तनी हुई, चेहरे पर वही एक भाव जो कभी नहीं बदलता था,— काई जमी पुरानी चट्टान की भांति। लेकिन अगर किसी वजह से मैं बीच में रुक जाता तो वह तुरंत कहता :

"क्या ख़त्म हो गई?"

"अभी नहीं।"

"तो रुक नहीं, कहे जा।"

एक दिन फ़्रांस के लोगों के बारे में जब हम बातें कर रहे थे तो उसने लम्बी सांस भरी और बोला :

"मजे की ज़िंदगी है उनकी — बढ़िया और ठंडी..."

"सो कैसे?"

"हां, बढ़िया और ठंडी," उसने कहा, "एक हम-तुम हैं जो हर वक़्त दहकते रहते हैं, काम की गर्मी एक घड़ी ठंडा नहीं होने देती। लेकिन वो बस प्याले छनकाते और सैर-सपाटा करते हैं — मज़े की ज़िंदगी है!"

"लेकिन काम तो वे भी करते हैं।"

"करते होंगे, तेरी कहानियों से तो इसका पता नहीं चलता," याकोव ने जवाब दिया। बात सही थी और मैंने एकाएक अनुभव किया कि ढेर की ढेर किताबें जो मैं पढ़ चुका था, उनसे यह पता नहीं चलता था कि उनके नेक नायक कैसे काम करते हैं, किस श्रम पर वे जीते हैं।

"अच्छा तो अब जरा नींद ले ली जाए," याकोव कहता और कमर के बल वहीं पसर जाता जहां वह बैठा हुआ होता और अगले ही क्षण उसके खुर्राटे सुनाई देने लगते।

पतझड़ के दिनों में जब कामा नदी के किनारों पर लाल-कत्थई रंग छाया था, पेड़ों के पत्ते पीले पड़ चुके थे और सूरज की तिरछी किरणें फीकी हो चली थीं, याकोव एकाएक जहाज से अलग हो गया। इससे एक ही दिन पहले उसने मुझसे कहा था :

परसों हम पेर्म पहुंच जायेंगे अल्योशा वल्योशा! सबसे पहले किसी हम्माम में जाकर हम दोनों खूब नहायेंगे, फिर सीधे भटियारखाने की राह लेंगे जहां बाजा भी बजता हो—बड़ा मजा आयेगा। भई, बाजा बजते देखना तो बड़ा ही अच्छा लगता है मुझे।"

लेकिन सारापूल से मोटा थलथुल, दाढ़ी सफाचट और स्त्रियों जैसे फूले हुए चेहरे वाला एक आदमी जहाज पर सवार हुआ। लम्बे कोट और लोमड़ी के फ़र वाले कनटोप में उसे देखकर और भी ज्यादा धोखा होता कि पुरुष न होकर वह स्त्री है। आते ही रसोईघर के पास वह एक मेज पर बैठ गया, जहां गरमाई अधिक थी, चाय के लिए उसने आर्डर दिया और अपना कोट या कनटोप उतारे बिना ही गरम चाय की चुस्कियां लेने लगा। देखते-देखते उसका सारा बदन पसीने में तर हो गया।

बाहर पतझड़ की महीन बौछारें पड़ रही थीं। जब वह अपने चौखाने रूमाल से माथे का पसीना पोंछता तो मानो बौछारें भी सांस लेने के लिए रुक जातीं, इसके बाद जब फिर तेजी से पसीना निकलता तो बौछारें भी उतनी ही तेज हो जातीं।

कुछ ही देर बाद याकोव भी उसके पास नजर आया और दोनों मिलकर कलैंडर में एक नक़्शे को बड़े ध्यान से देखने लगे। मुसाफ़िर फिर नक्शे की रेखाओं पर उंगली फेरकर कुछ बता रहा था। और याकोव शान्त स्वर से कह रहा था :

"ठीक है! कोई बात नहीं। मेरे लिए सब बाएं हाथ का खेल है..."

"ठीक," मुसाफ़िर ने पतली आवाज़ से कहा और कलैंडर को उठाकर चमड़े के एक खुले थैले में खोंस दिया जो उसके पांव के पास रखा था। बाद इसके वे चाय पीते और चुपचाप बातें करते रहे।

याकोव की पाली शुरू होने से पहले मैंने उससे पूछा कि यह कौन है। हल्की हंसी के साथ उसने जवाब दिया :

"देखने में तो जनखा मालूम होता है। दूर साइबेरिया का रहनेवाला है। अजीब पंछी है—हर चीज का नक्शा बनाकर चलता है..."

इसके बाद, काली और खुर की भांति सख्त अपनी नंगी एड़ियों से डेक को झनझनाता, वह मेरे पास से चल दिया। फिर रुका और अपने पहलू को खुजलाता हुआ बोला :

"मैंने उसकी चाकरी मंजूर कर ली है। पेर्म पहुंचते ही मैं जहाज को

नौकरी को धता बताऊंगा और तुझसे विदा लगा अल्योशा-अल्याशा बड़ी दूर है वह जगह, जहां उसके साथ मैं जाऊंगा। पहले हम रेलगाड़ी पर सवार होंगे, फिर पानी के जहाज पर और उसके बाद घोड़ों पर। वहां पहुंचने में पूरे पांच हफ्ते लग जायेंगे। लोगों ने भी कितनी दूर-दूर तक अपने घोंसले बना लिए हैं!"

"क्या तुम्हारी उससे जान-पहचान है?" याकोव के इस आकस्मिक फैसले से चकित होकर मैंने पूछा।

"जान-पहचान कैसी? पहले कभी उसको, और उस जगह को भी जहां वह रहता है, शक्ल तक नहीं देखी..."

अगले दिन, सुबह के समय, याकोव भेड़ की खाल की एक चीकट जाकेट जो उसके बदन पर अट नहीं पाती थी, सिर पर एक खस्ताहाल सींकों का हैट जिसके किनारे दगा दे चुके थे और जो किसी जमाने में नाटे भालू की सम्पत्ति था, और नंगे पावों में घिसी-पिटी चप्पलें पहने दिखाई दिया। लोहे जैसी अपनी उंगलियों मे मेरा हाथ दबोचते हुए उसने कहा:

"क्यों, तू भी मेरे साथ चल न? अगर मैं उससे कहूं तो सच वह तुझे भी रख लेगा। बोल, क्या कहता है? चल, बड़ा मजा रहेगा। और अगर तू वह चीज कटवाने के लिए तैयार हो गया जिसके बिना भी आदमी जिन्दा रह सकता है, तब तो तेरे गहरे हैं। बड़ी धूम-धाम से वे लोगों को खस्सी करते हैं, और इसके लिए अच्छी रक़म तक भी देते हैं..."

जनखा कटहरे के पास खड़ा था और बगल में एक सफ़ेद पोटली दबाए मुर्दा सी आंखों से याकोव की ओर देख रहा था। उसका बदन उतना ही भारी और फूला हुआ था जितना कि पानी में डूबे हुए आदमी का। मैंने धीमे से उसे कोसा, याकोव एक बार फिर मेरा हाथ दबोचते हुए बोला:

"गोली मार! हर आदमी अपने-अपने ख़ुदा की पूजा करता है। हमें इससे क्या लेना-देना है? अच्छा तो मैं अब चलता हूं। मजे से रहना!"

और बड़े भालू की भांति झूमता, झकोले खाता याकोव शूमोव विदा हो गया; मेरे हृदय में बोझिल जटिल भावनाएं छोड़ गया। मुझे उसपर तरस भी आ रहा था और झुंझलाहट भी हो रही थी। मुझे याद है कि उसे इतनी दूर एक अनजानी जगह जाते देख ईर्ष्या और चिंता का भाव

भी मेरे हृदय को मथ रहा था कि उसने अनजानी जगह जाना क्यों तय किया।

आखिर यह याकोव शूमोव आदमी किस कैंडे का था?

१२

पतझड़ के दिन बीत चले और जब जहाजों का चलना बंद हो गया मैंने एक वर्कशाप में काम सीखने के लिए नौकरी शुरू की। यहां देव-प्रतिमाओं को रंगा-चुना और उन्हें वर्कशाप की दुकान में बेचा जाता था। काम सीखना शुरू करने के दूसरे ही दिन मेरी मालकिन ने, जो एक छोटे कद की ढीली-ढाली और शराबी सी बूढ़ी स्त्री थी, ऐलान किया:

"अब दिन छोटे और सांझ बड़ी होने लगी है, सो तुम सुबह से तो दुकान पर काम करना और सांझ को वर्कशाप में काम सीखोगे।"

और उसने मुझे दुकान के कारिंदे के हवाले कर दिया। वह एक छोटा सा, तेज क़दम युवक था, सुंदर चेहरा, जिसपर शहर में डूबी मुस्कान चिपकी थी। दुकान नीज्नी बाजार की बारादरी में दूसरी मंजिल पर थी। अंधेरे-मुंह हम, वह और मैं उठते और ठंड में कलाबत्तू बने नींद में ऊंघते सौदागरों की गली इल्यीन्का से होते हुए सारा शहर पार करके दुकान पहुंचते। दुकान, जो पहले किसी का स्टोर रूम थी, छोटी और अंधेरी थी। लोहे का उसमें दरवाजा लगा था और एक छोटी सी खिड़की थी जो टीन की छत वाली बालकनी की ओर खुलती थी। हमारी दुकान देव-प्रतिमाओं से भरी पड़ी थी। छोटी, बड़ी और मंझोली, सभी आकार-प्रकार और कांट-छांट की प्रतिमाएं थीं। साथ ही देव-प्रतिमाओं के चौखटे भी हम बेचते थे, सादे भी और कामदार भी, जो तरह-तरह के बेल-बूटों से सजे हुए थे। चमड़े की पीली जिल्द चढ़ी और प्राचीन स्लाव लिखावट की धार्मिक पुस्तकों का स्टाक भी दुकान में मौजूद था। हमारे बगल में ही देव-प्रतिमाओं और धार्मिक पुस्तकों की एक और दुकान भी थी। इस दुकान का मालिक काली दाढ़ी वाला एक सौदागर था। वोल्गा के उस पार केर्जेनेत्स नदी के समूचे इलाक़े में प्रसिद्ध एक कट्टर पुरातनपंथी*

---

*पुरातनपथ का आरंभ रूस में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। रूसी आर्थोडॉक्स चर्च के तत्कालीन सर्वोच्च महा पादरी नीकोन ने ज़ार अलेक्सेई

परिवार का वह नातेदार था। मेरी ही उम्र का उसका एक लड़का था—काजू-बाजू, बबकाना शरीर और रूढ़ो जैसा बेरंग, छोटा सा चेहरा, चूहे जैसी चंचल आंखे।

दुकान खोलते ही मेरी दौड़ शुरू हो जाती। सबसे पहले मैं निकटतम भटियारखाने का रास्ता नापता और चाय के लिए वहां से खौलता हुआ पानी लाता। चाय के बाद मैं दुकान लगाता और माल की गर्द जाड़कर उसे साफ-सुथरा करके रखता। दुकान को खूब चौकस बनाने के बाद मैं बालकनी में जा खड़ा होता। मेरा काम था कि ग्राहको को अपने हाथ से न निकलने दूं, यह न हो कि वे हमारी दुकान में न आकर बराबर वाली दुकान मे चले जाएं।

"ग्राहक तो काठ के उल्लू है," कारिंदा कहता, "दुकान से उन्हे क्या गरज, वे तो वहीं मुंह मारते है जहां सस्ती चीज मिलती है। गधा-घोड़ा उनके लिए सब बराबर है!"

उसके हाथ तेजी से चलते रहते। देव-प्रतिमाओ को वह उठाता और सटा-सटाकर रखता। व्यापार सम्बन्धी अपना ज्ञान बघारने में जरा भी नही चूकता और मुझे सबक पढ़ाना शुरू करता:

"म्स्तेरा गांव का बना माल सस्ता होता है, तीन बाई चार साइज का अपना दाम है, छः बाई सात साइज का अपना दाम है... सन्तो को जानता है? याद कर ले: यह सन्त बोनिफ़ाती है—पियक्कड बनने से बचाते हैं। और यह सन्त वर्वारा की प्रतिमा है—दांत-दाढ़ के दर्द और अकाल मृत्यु से बचाने के लिए; और यह पहुंचे हुए सिद्ध वासीली है—बुखार और सरसाम के दौरों से बचाने के लिए। और मरियमों को जानता है?* देख—यह है

मिखाइलोविच के अनुमोदन से धार्मिक पुस्तको तथा चर्च की रस्मो मे यूनानी आर्थोडॉक्स परपरा के अनुसार कुछ सशोधन किये। पादरियो के एक बहुत बड़े भाग ने इन सशोधनों का विरोध किया। कालातर मे सशोधन विरोधी पुरातनपथी कहलाये। राजकीय धर्म का विरोध करने के कारण इन्हे सरकार के अत्याचारो का शिकार होना पडता था।—स०

*माता मरियम की विभिन्न शैलियो और विभिन्न मुद्राओ मे बनी प्रतिमाओं और साथ ही विभिन्न नगरो, गिरजो मे स्थित प्रतिमाओ के अलग-अलग नाम होते थे। कई प्रतिमाए अपनी चमत्कारी शक्ति के लिए विशेष नामों से जानी जाती थी।—स०

शोकातुर मरियम, यह त्रिभुज मरियम और यह 'मेरा शोक दूर करो' मरियम है, इसके अलावा है कजान, पोक्रोव और सेम्पिस्त्रेल्नाया मरियम ..."

बड़ी-छोटी और कारीगरी के हिसाब से किस प्रतिमा के कितने दाम हैं, यह सब मैंने बड़ी जल्दी याद कर लिया, और विभिन्न मरियमों को पहचानने में भी मुझे अब कोई दिक्कत नहीं होती, लेकिन यह याद रखना मुझे एक अच्छा-खासा जंजाल मालूम होता कि किस सन्त की प्रतिमा किस तरह के शोक-ताप हरती या किस तरह के वरदान देती है।

कारिंदा अक्सर मेरा इम्तहान लेता। दुकान के दरवाजे पर खड़ा मैं न जाने किस ख्याली दुनिया में मग्न होता कि उसकी आवाज आती:

"बोल, बच्चा जनने की पीड़ा कम करना किसके हाथ में है?"

अगर मेरा जवाब गलत निकलता तो उसकी भौंहें चढ़ जाती:

"आखिर तेरी यह खोपड़ी किस काम आएगी?"

ग्राहकों को पटाना और भी ज्यादा मुश्किल मालूम होता। प्रतिमाओं के भौंडे चेहरे मुझे बुरे मालूम होते और उन्हें बेचने में शर्म आती थी। नानी से कहानियां सुन-सुनकर मेरे मन में यह बात बैठ गई थी कि माता मरियम कम उम्र, भली और सुन्दर थी। पत्रिकाओं में माता मरियम के जो चित्र मैंने देखे थे, वे भी ऐसे ही थे। लेकिन प्रतिमाओं में वह बूढ़ी और कठोर स्वभाव की मालूम होती थी, लम्बी और नोक-नुकीली नाक तथा बेजान हाथ।

बुध और शुक्रवार के दिन बाजार लगता और हमारी अच्छी बिक्री होती। किसानों और बूढ़ी स्त्रियों का हमारी दुकान में तांता लगा रहता और कभी-कभी तो बच्चों के साथ पूरा परिवार का परिवार आ धमकता—सब के सब पुरातनपंथी, भौहें चढ़ाये और आंखों में अविश्वास भरे, वोल्गा पार के जंगलों में गुजर करनेवाले। ऐसा भी हुआ करता था कि कोई भारी-भरकम, बालकनी पर धीरे-धीरे क़दम रखते हुए, मानो वह डर रहा हो कि बालकनी से गिर जायेगा, आ रहा होता। मैं उसे देखता और उसके सामने शर्मिंदा और अटपटा सा महसूस करने लगता। आखिर, भारी उलझन के बाद, मैं उसके रास्ते में जम जाता और उसके भारी-भरकम, ऊंचे जूतों वाले पांवों के पास नाचता हुआ मच्छर की तरह भनभनाने लगता:

"क्या लोग, बाबा जी? सभी कुछ हमारे यहां है—समय-समय विभाजित भजन-संहिता, टीका-टिप्पणी और अर्थ सहित बाइबल के गीत, येफ्रेम सीरिन और किरील की बनाई पुस्तकें। एक बार चलकर जरा देख लीजिए। और सभी तरह की देव-प्रतिमाएं—सस्ती से सस्ती और महंगी से महंगी, अव्वल दर्जे की कारीगरी और गहरे रंग। हम आर्डर पर देव-प्रतिमाएं तैयार भी करते हैं। जो भी सन्त या माता मरियम आपको पसन्द हो, हमसे बनवाइये। या आप अपने नाम के, अपने परिवार के संत की प्रतिमा बनवाना चाहें, तो वो भी बना देंगे। हमारी वर्कशाप समूचे रूस में बेजोड़ है। नगर में इससे बढ़िया दुकान ढूंढे नहीं मिलेगी!"

अभेद्य और समझ में न आनेवाला ग्राहक देर तक चुप रहता और इस तरह मुझे घूरकर देखता मानो मैं कोई कुत्ता हूं। एकाएक भारी हाथ से वह मुझे धकियाता और बराबर वाली दुकान में घुस जाता। कारिंदा अपने छाज से कानों को मलता और गुस्से से भुनभुना उठता:

"क्यों, उसे निकल जाने दिया, न? अच्छा चौपट दुकानदार है तू..."

और पास वाली दुकान से मुलायम तथा शहद में लिपटे शब्दों की वर्षा होने लगती:

"भगवान भला करे, बाबा जी हम कोई भेड़ों की खाल नहीं बेचते, न ही हम चमड़े के जूतों का धंधा करते हैं। हमारे यहां तो केवल दैवी न्यामतें हैं, जिनका न चांदी से मोल आंका जा सकता है न सोने से, वे अनमोल हैं, दुनिया की हर चीज़ उनके सामने हेच है..."

कारिंदा सुनता और ईर्ष्या तथा प्रशंसा से कलाबत्तू बन जाता:

"देख न कम्बख्त को, भोले देहाती के कानों में क्या मीठा जहर उंडेल रहा है। ग्राहकों को ऐसे पटाया जाता है, समझा!"

ग्राहकों को पटाने की कला सीखने के लिए मैं जी जान से प्रयत्न करता। सोचता कि जब काम हाथ में लिया है तो उसे अच्छी तरह करना चाहिए। लेकिन ग्राहकों पर डोरे डालने और उनके माथे चीज़ें मढ़ने की दिशा में मेरी प्रतिभा ने मानो उजागर होने से इनकार कर दिया। तोबड़ा-चढ़े गुम-सुम देहातियों और चूहों की भांति खुदफुद करती, भय से त्रस्त तथा दीन चेहरे वाली बूढ़ी स्त्रियों को जब भी मैं देखता, मुझे उनपर बड़ा तरस आता, मेरा जी करता कि चुपके से उनके कानों में इन

प्रतिमाओं की असल कीमत बता दूं ताकि गाढ़ी कमाई के जो दस-बीस कोपेक उनकी गांठ मे पड़े है, वे उनके पास ही बने रहे। वे सब इतने फटेहाल, इतने ग़रीब और भूखे मालूम होते कि मै चकरा जाता, और मेरी समझ में न आता कि बाइबल की भजन-संहिता के लिए, जो सबसे ज़्यादा बिकती थी, उनकी गांठ से साढ़े तीन रूबल्स कैसे निकल आते थे।

किताबों का ज्ञान और देव-प्रतिमाओं के दोष-गुणों की उनकी परख देखकर मै दंग रह जाता। और एक बार पके बालों वाले एक बूढ़े ने, जिसे मैं अपनी दुकान में फुसला लाने का प्रयत्न कर रहा था, मुझसे कहा:

"नहीं, बेटा, यह ग़लत है कि रूस में सबसे अच्छी प्रतिमाएं तुम्हारे यहां बनती हैं। सबसे अच्छी तो मास्को मे रोगोजिन की वर्कशाप है।"

सकपकाकर मै एक ओर हट गया और वह पड़ोसी की दुकान को भी पार करता हुआ धीमे से आगे बढ़ चला।

"मिल गये लड्डू?" कारिंदे ने जल-भुनकर कहा।

"तुमने तो रोगोजिन के बारे में कभी कुछ बताया ही नहीं।"

कारिंदा झुंझलाहट उतारने लगा:

"घूमते-फिरते है ऐसे चुप्पे, साले। सभी कुछ जानते है, सब समझते है, बुड्ढे खूसट..."

ख़ूबसूरत, खाता-पीता और घमंडी कारिंदा देहातियों से नफ़रत करता था और जब मूड में होता तो मेरे सामने अपना रोना रोने लगता:

"मै अक्लमन्द हूं, साफ़-सुथरी चीजें और बढ़िया ख़ुशबू मैं पसंद करता हूं—लोबान, गुलाबजल, तेल-फुलेल और मेरे जैसे गुणी आदमी को इन बदबू मारते देहातियों के सामने झुकना पड़ता है, ताकि मालकिन की जेब मे दो-चार कोपेक मुनाफ़ा जाए। मैं ही जानता हूं कि मेरे दिल पर कैसी-क्या गुजरती है। आखिर ये देहातिये है क्या? कीड़े पड़ी खाल, जूएं कहीं की, और मुझे..."

विक्षुब्ध सा वह बोलते-बोलते चुप हो जाता।

मुझे देहातिये पसंद थे। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे अपने भीतर कोई बहुत बड़ा रहस्य छिपाए हो, ठीक वैसे ही जैसे याकोव को देखकर मुझे अनुभव होता था।

भेड़ की खाल की जैकट के ऊपर भारी लबादा लादे कोई देहातिया लस्टम-पस्टम दुकान में चला आता। अपनी बालदार टोपी को वह सिर

से उतारता, कोने में जल रहे दिये की लौ पर आंख जमाए अपनी दो उंगलियों से सलीब का चिन्ह बनाता। फिर दिये से आलोकित न होनेवाली प्रतिमाओं से नजर बचाते हुए वह चुपचाप अपने इर्दगिर्द देखकर कहता:

"जरा बाइबल की भजन-संहिता दिखाओ, टीका वाली।"

अपने लबादे की आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर, मुखपृष्ठ के अक्षरों के साथ वह देर तक सिर खपाता, और उसके फटे हुए मटियाले होंठ बिना कोई आवाज निकाले हरकत करते रहते। अन्त में वह कहता:

"इससे पुरानी नहीं है?

"पुरानी प्रतियां एक हजार रूबल से कम में नहीं मिलतीं, —तुम तो जानते ही हो..."

"हां, मैं जानता हूं।"

फिर थूक से अपनी उंगली को नम कर वह पन्ना पलटता जिससे हाशिये पर मैली-कुचैली उंगलियों का काला धब्बा पड़ जाता। कारिंदा देहातिये की खोपड़ी की ओर गुस्से से घूरते हुए कहता:

"धर्म ग्रंथों की उम्र में भी क्या कोई भेद-भाव होता है? पुराने हों चाहे नये, सब एक ही उम्र के होते हैं। भगवान ने अपने शब्दों को नहीं बदला है..."

"यह सब हम भी जानते हैं, सुना है। भगवान ने अपने शब्दों को नहीं बदला, लेकिन नीकोन ने तो उन्हें बदल दिया है न?

और ग्राहक ग्रंथ को बन्द करते हुए चुपचाप दुकान से बाहर हो जाता।

जंगलों के ये निवासी कभी-कभी कारिंदे से बहस करने लगते और मैं साफ देखता कि धर्म पुस्तकों की जितनी ज्यादा जानकारी उन्हें है, उतनी उसे नहीं।

"दलदल के कीड़े, ईंट-पत्थरों को पूजने वाले।" कारिंदा बड़बड़ाता।

मैंने यह भी देखा कि यद्यपि नयी पुस्तक देहातिये को पसंद नहीं आती फिर भी वह उसे श्रद्धा के साथ देखता है, उसे सावधानी से छूता है मानो पुस्तक उसके हाथ से पक्षी की भांति उड़ जा सकती हो। यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द आता, कारण कि पुस्तकें मेरे लिए भी अद्भुत चीज थीं जिनमें उनके रचयिताओं की आत्माएं बंद थीं। पुस्तक खोलकर मैं मानो उनकी आत्माएं उन्मुक्त करता और वे रहस्यमय ढंग से मेरे साथ बातचीत करने लगतीं।

अक्सर एसा होता कि ये बड़े पुरुष और स्त्रियां नीकोन के समय से भी पहले की पुरानी छपी हुई पुस्तकें या इस तरह की पुस्तकों की हस्तलिखित नकलें बेचने के लिए लाते। ये नकलें पुरातनपंथी इरगीज या केर्जेनेत्स मठों की भिक्षुणियों के हाथों से लिखी बहुत ही सुन्दर होती थीं। वे दमीत्री रोस्तोव्स्की द्वारा असंशोधित सन्तों की जीवनियां, प्राचीन देव-प्रतिमाएं, इनामेल चढ़े, श्वेत सागर के तटवर्ती प्रदेशों के कारीगरों द्वारा बनाए गए पीतल के त्रिपाद और सलीब, मास्को के महाराजों द्वारा शराबखानों के मालिकों को भेंट किए गए चांदी के कलछे आदि लेकर आते। इन सब चीजों को वे चोरी के माल की भांति छिपाकर लाते और अगल-बगल कनखियों से देखते रहते कि कहीं किसी की नजर तो नहीं पड़ रही है।

हमारा कारिंदा और पड़ोसी दुकानदार दोनों ही इस तरह के माल के लिए जीभ लपलपाते रहते और उसे कम दामों में हथियाने में एक-दूसरे को मात देने की कोशिश करते। प्राचीन से प्राचीन निधियों की कीमत भी वे इकाइयों में या बहुत हुआ तो दहाइयों में देते और मेले में धनी पुरातनपंथियों के हाथ उन्हें बेचकर खुद सैकड़ों रूबल झटकारते।

"देखना, कोई बूढ़ा शैतान या कोई बुढ़िया भुतनी नजर बचाकर न निकल जाए," वह मुझसे कहता। "ये कम्बख्त अपने थैलों में नकद हुंडियां लिए घूमते हैं!"

जब भी कोई ऐसा सौदागर सामने आता, कारिंदा मुझे प्राचीन पुस्तकों, देव-प्रतिमाओं और इस तरह की अन्य पुरानी चीजों के पारखी प्योत्र वासील्येविच के पास दौड़ाता कि उसे बुला लाओ।

वह एक लम्बे कद का बूढ़ा आदमी था। उसकी आंखों में समझदारी की चमक थी, चेहरा और उसकी लम्बी दाढ़ी देखकर सन्त वासीली का धोखा होता था। उसके एक पांव का पंजा गायब था और हमेशा लम्बी लकड़ी का सहारा लेकर वह चलता था। गर्मी हो चाहे सर्दी, पादरी के लबादे की भांति वह हमेशा एक हल्का पतला कोट और सिर पर मखमल की अजीब सी शक्ल की टोपी पहने रहता था। आम तौर से जब वह चलता तो काफ़ी सीधा-सतर और फुर्तीला मालूम होता, लेकिन दुकान में पांव रखते ही अपने कंधे ढीले छोड़ देता, हल्की सी आह भरता और पुरातनपंथियों के रिवाज के अनुसार दो उंगलियों से सलीब का चिन्ह

बनाता मुंह से प्रार्थनाओं और भजनों के शब्द [illegible] । बुढ़ापे और धार्मिकता की यह नुमाइश दुर्लभ चीज बेचनेवालों के हृदयों में उस के प्रति विश्वास का संचार करती थी।

"कहो, किस काम के लिए बुलाया था मुझे?" बूढ़ा कहता।

"यह आदमी एक देव प्रतिमा लाया है और कहता है कि यह स्त्रोगानोव की बनायी देव प्रतिमा है।"

"क्या-आ?"

"स्त्रोगानोव की बनायी।"

"अच्छा-आ... सुनाई कम देता है। शुक्र है भगवान का, मुझे बहरा बनाकर उस झूठ और पाखंड को सुनने से बचा लिया जो नीकोन के बाद से फैला हुआ है..."

वह अपनी टोपी उतारकर रख देता, और प्रतिमा को सामने रखकर आंखें सिकोड़े, चित्रकारी को ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, फिर अगल-बगल से और सीधे देखता और बुदबुदाता जाता :

"इन नास्तिक नीकोनियाइयों ने यह देखकर कि लोगों पर प्राचीन देव-रूपी सौन्दर्य का प्रभाव है, और शैतान की सीख में आकर देव-प्रतिमाओं की झूठी और विकृत नक़लें उतरवाना शुरू कर दीं। और यह काम अद्भुत होशियारी से आजकल किया जा रहा है। पहली नजर में यही मालूम होता है मानो यह असली स्त्रोगानोव या उस्त्युग शैली की प्रतिमा है या फिर सूज्दाल प्रतिमाओं जैसी है। लेकिन अंतःदृष्टि से देखने पर साफ मालूम हो जाता है कि यह झूठी और विकृत नकल है!"

जब वह किसी प्रतिमा को 'झूठी और विकृत' कहता तो इसका अर्थ सिवा इसके और कुछ न होता कि वह एक दुर्लभ और कीमती चीज है। इस तरह के शब्दों की एक बाक़ायदा फ़ेहरिस्त उन्होंने बना रखी थी जिससे कारिंदे को पता चल जाता कि किस चीज का कितना दाम उसे लगाना चाहिए। मैं जानता था कि 'शोक और निराशा' शब्दों का अर्थ है—दस रूबल, 'नीकोन शेर'—पच्चीस रूबल। बेचनेवाले को इस तरह धोखा देना मुझे बड़ा शर्मनाक मालूम होता, लेकिन बूढ़ा इतनी चालाकी से यह खेल खेलता कि मैं भी इसमें खिंच आता था।

"नीकोनियाई, नीकोन शेर के ये चपड़ कनाती, शैतान के सिखाये सब कुछ कर सकते हैं। इसे ही देखो, कौन कह सकता है कि इस प्रतिमा

का आधार सच्चा नहीं है, अथवा यह कि इसके कपड़ों पर उन्हीं हाथों ने रंग नहीं किया है? मगर जरा देव मुख-मंडल तो देखो—यह दूसरी ही कूची से बनाया गया है। पीमेन उशाकोव जैसे पुराने उस्ताद—ईश्वर द्रोही चाहे वे क्यों न रहे हों—समूची छवि को ख़ुद ही रंगते थे। देव-प्रतिमा के वस्त्र भी वे अपने ही हाथों से रंगते थे, और मुख-मंडल भी, यहां तक कि उसका आधार भी वे ख़ुद ही रंगते-चुनते थे। लेकिन हमारे आज के ये टकियल चेले-चाटी तो हे बोल गए हैं। इनके बस का कुछ नहीं है! एक ज़माना था जब प्रतिमाएं तैयार करना ईश्वर की सेवा करना था; लेकिन आज तो वह पेट भरने का, कोरी रंगाई का धंधा बन गया है!"

अंत में वह प्रतिमा को काउण्टर पर सावधानी से रख देता और टोपी पहनकर कहता:

"तौबा, कैसा पाप है।"

इसका मतलब था: आंखें बंद करके ख़रीद लो!

पारखी के मीठे शब्दों से अभिभूत होकर और उसकी जानकारी के रोब में आकर बेचनेवाला श्रद्धा से पूछता:

"तो इस प्रतिमा के बारे में क्या कहते हैं, बाबा?"

"यह नीकोनियाइयों के हाथ की बनी है।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। हमारे दादा-परदादा, बल्कि लकड़दादा के ज़माने की यह प्रतिमा है। वे सब इसीकी पूजा-प्रार्थना किया करते थे..."

"इससे क्या हुआ? नीकोन तुम्हारे लकड़दादा से भी पहले हुआ था।"

इसके बाद बूढ़ा देव-प्रतिमा को फिर अपने हाथों में उठाता और उसे बेचनेवाले के मुंह के सामने ले जाते हुए प्रभावशाली आवाज़ में कहता:

"देखते हो, कितनी तड़क-भड़क और रंगीनी है इसमें? क्या देव-प्रतिमाएं भी कभी इतनी रंगीन होती हैं? यह तो निरी सजावटी चीज़ है, वासना में डूबी कला, नीकोन के चेले-चाटियों की लालसाओं का मूर्त रूप। इस कृति में आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं है! क्या तुम समझते हो कि मैं झूठ बोल रहा हूं? मेरे बाल पककर सफ़ेद हो गए हैं। दीन-ईमान के पीछे न जाने कितनी यंत्रणाएं मैंने सही हैं। दो दिन बाद भगवान

के दरबार में मुझे पेश होना है। तुम्हीं बताओ, ऐसी हालत में अपनी आत्मा को बेचने से मेरे पल्ले क्या पड़ेगा?"

बुढापे के बोझ से डगमगाता, कांपता और कराहता, दुकान से वह बालकनी में आ जाता, और ऐसा दिखाता मानो उसकी बातों पर अविश्वास प्रकट करके उन्होंने उसके हृदय को घायल कर दिया है। कारिंदा कुछ रूबल देकर प्रतिमा खरीद लेता और बेचनेवाला दुकान से विदा लेता, प्योत्र वासील्येविच की ओर मुड़ते हुए खूब झुककर अभिवादन करता और अपना रास्ता पकड़ता। इसके बाद मुझे दौड़ाया जाता कि भटियारखाने से चाय के लिए खौलता हुआ पानी ले आओ। लौटने पर मैं देखता कि पारखी फिर प्रसन्नचित्त और फुर्ती भरा नजर आ रहा है: खरीदी हुई प्रतिमा को वह चाव से देखता और कारिंदे को सिखाता:

"देख, इसके रंगों में कितनी सफाई और सादगी झलकती है, प्रत्येक रेखा में परमात्मा का भय और उसके प्रति सम्मान झलकता है—जीव संसार की भावना का लेश मात्र भी नहीं दिखाई देता..."

कारिंदे की आंखें चमकने और उसका रोम-रोम थिरकने लगता। खुशी से उछलता हुआ पूछता:

"यह किस कारीगर के हाथों का चमत्कार है?"

"अभी तेरी उम्र नहीं हुई, यह जानने की!"

"कोई कद्रदान इसके लिए क्या देगा?"

"यह मुझे मालूम नहीं है। दो-चार लोगों को दिखाकर मालूम करूंगा..."

"आह, प्योत्र वासील्येविच..."

"और अगर खरीदार मिल गया तो पचास रूबल तेरे और इससे ऊपर के मेरे!"

"आह..."

"ज्यादा आह-आह मत कर..."

वे चाय पीते, पूरी बेशर्मी से सौदेबाजी करते और मक्कारी भरी नजरों से एक-दूसरे का जायजा लेते। साफ मालूम होता कि कारिंदे का पलड़ा बेहद कमजोर है, बूढ़े के सामने उसकी एक नहीं चल सकती। जब बूढ़ा चला जाता तो कारिंदा कहता:

"देख, मालकिन के कानों में इस सौदे की भनक तक न पड़े, समझा!"

प्रतिमा को बेचने के बारे में जब सब कुछ तय हो जाता तो कारिंदा कहता:

"और सुनाओ, प्योत्र वासील्येविच, शहर में और क्या-कुछ हो रहा है, कोई नयी-ताज़ी ख़ैर-ख़बर?"

बूढ़ा पीले हाथ से अपनी दाढ़ी सहलाता, तेल-चुपड़े से उसके होंठ दिखाई देने लगते और वह धनी सौदागरों की ज़िन्दगी, व्यापार करने के उनके कारगर हथकण्डों, बीमारी-चकारियों, ब्याह-शादियों, रास-रंग और ऐयाशियों, पति को उल्लू बनानेवाली पत्नियों और पत्नियों को चकमा देनेवाले पतियों के क़िस्से बयान करता। कुशल बावर्चिन की भांति वह इन कहानियों में बघार लगाता और बढ़िया पकवान की भांति, अपनी फुसफुसी हंसी की चाशनी चढ़ाकर, फुर्ती से उन्हें परोसता। कारिंदे के गोल चेहरे पर रश्क और ईर्ष्या की लाली दौड़ जाती और उसकी आंखों में सपने तैरने लगते। आह भरकर वह कहता:

"कितना रास-रंग है उनके जीवन में, और एक मैं हूं कि..."

"जैसा जिसका भाग्य," बूढ़ा बमकता, "एक भाग्य वह है जिसे ख़ुद फ़रिश्ते चांदी की नन्ही-नन्ही हथौड़ियों से गढ़ते हैं, और दूसरा वह जिसे शैतान अपनी कुल्हाड़ी के दस्ते से गढ़ता है..."

कड़ियल और चीमड़ वह बूढ़ा हर चीज़ की ख़बर रखता था: समूचे नगर का जीवन, सौदागरों के गुप्त से गुप्त भेद, दफ़्तरों के बाबुओं, पादरियों और मध्य वर्ग के लोगों की छिपी-ढंकी बातें, सभी कुछ उसे मालूम था। उसकी नज़र गिद्ध की भांति तेज़ थी, भेड़िये और लोमड़ी का अंश उसमें मिला हुआ था। उसे कोचने के लिए मेरा जी सदा ललकता, लेकिन आंखें सिकोड़कर कुछ इस धुंधले अन्दाज़ से वह मेरी ओर देखता कि मैं निरस्त्र हो जाता। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वह चारों ओर गहरी खाई से घिरा था जो निकट आने का दुस्साहस करनेवाले हर व्यक्ति को निगल जाने के लिए मुंह बाए थी और मुझे लगता कि जहाज़ी याकोव शूमोव और वह मानो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।

कारिंदा बूढ़े की चतुराई का कायल था और मुग्ध भाव से उसे दाद देता था। बूढ़े के मुंह पर ही नहीं, उसकी पीठ पीछे भी वह उसकी तारीफ़

करता। लेकिन कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते जब वह मेरी तरह बूढ़ को कोचने और उसकी हंसी उड़ाने के लिए ललक उठता।

एक दिन, चित कर देनेवाली नजर से बूढ़े की ओर देखते हुए, कहने लगा :

"लोगो की आखों में धूल झोंकना और उन्हे धोखा देना कोई तुमसे सीखे!"

"केवल भगवान ही ऐसा है जो कभी लोगों को धोखा नहीं देता," अलस भाव से हंसते हुए बूढ़े ने जवाब दिया। "बाकी सब उल्लुओ के बीच जीवन बिताते है। अगर उल्लुओं को उल्लू नही बनाये तो और क्या उनका अचार डाले?"

कारिंदा गुस्से का दामन पकड़ता :

"सभी देहातिये उल्लू नहीं होते। व्यापारी लोग क्या आसमान से टपकते हैं? वे भी तो इन्हीं देहातियो के बीच से आते है!"

"उन देहातियों की बात छोड़ो जो व्यापारी बन गए है। ठगने के लिए जितने बड़े दिमाग की जरूरत है, वह उल्लू देहातियो के पास कहां से आ गया? वे तो निरे बुद्धू—बिना दिमाग के सन्त—होते हैं..."

शब्दों की वह इतने निश्चल भाव से कुल्लियां करता कि तबीयत बुरी तरह झुंझला उठती। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वह मिट्टी के एक सूखे ढूह पर खड़ा हो और उसके चारो ओर दलदल फैली हो। उसे परेशान करना या चिढ़ाना असम्भव था। या तो गुस्सा उसके हृदय को छूता नही था, या गुस्सा छिपाने की कला में उसे कमाल हासिल था।

बहुधा वह ख़ुद चिढ़ाना शुरू करता। अपनी थूथनी को मेरे नज़दीक लाकर वह अपनी दाढ़ी के भीतर ही भीतर हंसता और कहता :

"हां तो फ़्रांस के उस लेखक का जाने क्या भला सा नाम बताया था तूने—पोस्तोन?"

वह कुछ इस अन्दाज से नामों को तोड़ता-मरोड़ता कि मैं भन्ना उठता, लेकिन कुछ देर तक मै अपने को संभाले रहता और कहता :

"पौनसोन-द-तैरेल।"

"किधर तैरा?"

"आप बच्चे नहीं हैं। शब्दों को तोड़-मरोड़कर उनके साथ खिलवाड़ न करो।"

ठीक कहता है। भला मुझ मञ्चा कौन कहेगा? तुम्हारे हाथ में यह कौन सी पुस्तक है?"

"येफ्रेम सीरिन की पुस्तक है।"

"कौन ज्यादा अच्छा लिखता है–वह या यह क़िस्सा-कहानी गढ़नेवाले?"

मैं कोई जवाब न देता। वह फिर पूछता:

"ये कहानी-क़िस्सा गढ़ने वाले ज्यादातर क्या लिखते हैं?"

"उन सभी चीजों के बारे में जो दुनिया में मौजूद हैं।"

"कुत्तो और घोड़ो के बारे में? ये भी तो इस दुनिया में मौजूद हैं।"

कारिंदे के पेट में बल पड़ जाते और मैं भीतर ही भीतर उफनता। मेरे लिए वहां बैठे रहना बोझिल और अप्रिय हो जाता, लेकिन जैसे ही मैं खिसकना शुरू करता, कारिंदा चिल्ला उठता:

"किधर चला? बैठ यहीं पर!"

बूढ़ा मुझे कुरेदना जारी रखता:

"तुझे अपने लम्बे दिमाग पर गर्व है। जरा यह पहेली तो बूझो। तेरे सामने एक हजार लोग खड़े हैं, एकदम मादरजात नंगे। पांच सौ पुरुष और पांच सौ स्त्रियां। और उन्हीं के बीच आदम और हौवा छिपे हैं। बोल, उन्हें कैसे पहचानेगा?"

कुछ देर मेरा सिर चकराने के बाद अन्त में वह विजयी अन्दाज से कहता:

"बेवकूफ़ की दुम, उन्हें ख़ुद ख़ुदा ने अपने हाथों से गढ़ा था, किसी स्त्री के पेट से वे पैदा नहीं हुए थे। इसका मतलब यह कि उनके शरीर में नाभि नहीं हो सकती!"

बूढ़ा इस तरह की अनगिनत पहेलियों की खान था और मुझे परेशान करने के लिए उन्हें पेश करता रहता था।

दुकान पर आने के बाद, शुरू-शुरू में, अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों के कुछ क़िस्से मैंने कारिंदे को सुनाए थे। वे क़िस्से अब मेरे जी का जंजाल बन गए। हुआ यह कि अपनी ओर से मनमाना नमक-मिर्च लगाकर तथा खूब गंदा बनाकर कारिंदा उन क़िस्सों को प्योत्र वासील्येविच को सुनाता। बूढ़ा खोद-खोदकर घिनौने सवाल करता और उसे उकसाता। नतीजा इसका

यह होता कि अपनी गवी जबान से वे मेरे प्रिय पात्रों यजनी ग्राण्ड ल्युवमीसा और हेनरी चतुर्थ की खूब छीछालेदर करते।

मै यह जानता था कि किसी कुत्सित इरादे से नही, बल्कि दो घडी दिल बहलाने या जीवन की ऊब कम करने के लिए वे ऐसा करते थे, फिर भी उनका ऐसा करना मेरे लिए असह्य हो उठता। वे सूअरों की भांति अपने ही पैदा किये हुए कीचड में लोटते और सुन्दर कृतियों को कीचड़ मे लथेड़कर खुश होते, क्योंकि सुदर चीज उन्हे अजीब, समझ मे न आनेवाली और इसीलिए हास्यास्पद मालूम होती थी।

अगल-बगल के सभी दुकानदार और व्यापारी निराले ढंग का जीवन बिताते थे। उन्हे बड़ा मजा आता जब वे किसी को बनाते। उनके मजाक बहुत ही बेहूदा, बचकाना और कुत्सापूर्ण होते। अगर कोई देहातिया पहली बार नगर में आता और किसी जगह का रास्ता पूछता तो वे अदबदाकर उसे उलटा रास्ता बताते। लेकिन, यह मजाक इतना घिसपिट गया था कि उसमें अब उन्हें कोई रस नहीं मिलता था। दो चूहो को पकड़कर सौदागर उनकी दुमों को एक-दूसरे से बांधकर, उन्हे सड़क पर छोड़ देते और अलग खड़े होकर मजे लेते हुए उन्हे दांत-पजे चलाते और विरोधी दिशाओं में एक-दूसरे को खींचते हुए देखते। कभी-कभी वे चूहे पर मिट्टी का तेल उंडेलकर दियासलाई भी दिखा देते। या वे कुत्ते की दुम मे टीन बाध देते, कुत्ता घबराकर जीभ निकाले भागता। पीछे से टीन खडखड़ करता और लोग हंसी के मारे दोहरे हो जाते।

इस तरह, आए दिन, वे कोई न कोई तमाशा करते रहते। ऐसा मालूम होता कि सभी व्यक्ति—और खास तौर से देहाती—मानो बाजारवालों का दिल बहलाव करने के लिए ही पैदा हुए हैं। सौदागर और उनके कर्मचारी इस बात की ताक में रहते कि कोई आए और उसका मजाक बनाया जाए या उसे छेड़ा और नोचा-खरोचा जाए, —जैसे भी हो, उसे परेशान किया जाए और उसे रुलाकर खुद हसा जाए। और सबसे अजीब बात तो यह थी कि जो पुस्तकें मै पढ़ता था, उनमें एक-दूसरे की खिल्ली उड़ाने की लोगों की इस इच्छा का कोई ज़िक्र नहीं होता था।

बाज़ार के इन मनबहलावों में से एक मुझे खास तौर से घिनौना लगता था।

हमारी दुकान के नीचे ऊन और नमदे के जूतों की दुकान थी। इस दुकान का कारिंदा इतना अधिक खाता था कि समूचे नीज्नी बाजार मे प्रसिद्ध था। दुकान का मालिक अपने कारिंदे का भोजन चट करने की अद्‌भुत क्षमता का उतनी ही शेखी और गर्व के साथ ऐलान करता जितने गर्व के साथ लोग अपने शिकारी कुत्तो की खूंख्वारी या अपने घोड़ों की ताक़त का बखान करते है। अक्सर अपने पड़ोसियों से वह शर्त तक बदता:

"बोलो, है कोई दस रूबल लगाने को तैयार? मेरा दावा है कि मीशा पांच सेर मांस दो घंटे के भीतर चटकर जाएगा।"

सभी जानते थे कि मीशा पांच सेर मांस चट कर जाएगा। यह उसके लिए मुश्किल नहीं है। बोले:

"शर्त तो हम नहीं बदते। लेकिन मांस हम अपनी जेब से खरीद देंगे। वह खाना शुरू करे और हम तमाशा देखेंगे।"

"लेकिन पांच सेर मांस ही मांस होना चाहिए, कही हड्डियां न उठा लाना – समझे!"

कुछ देर अलस बहस होती रही, अन्त में अंधेरे गोदाम मे से एक दुबला-पतला आदमी प्रकट हुआ। उसका चेहरा सफ़ाचट था, जबड़े की हड्डियां उभड़ी हुई थीं। वह एक लम्बा कोट पहने और कमर मे लाल पटका कसे हुए था। सारे कोट में ऊन के गुच्छे बुरी तरह लिपटे हुए थे। छोटे से सिर से सम्मान के साथ टोपी उतारकर उसने मालिक के गोल, लाल सुर्ख तथा घास की तरह दाढ़ी उगे चेहरे की ओर धुंधली सी आंखों से देखा।

मालिक ने पूछा:

"पांच सेर मांस को हजम कर सकता है?"

"कितनी देर में?" पतली और कामकाजी आवाज मे मीशा ने सवाल किया।

"दो घंटे में।"

"मुश्किल है!

"मुश्किल है – और तेरे लिए?"

"बीयर के बिना नहीं चलेगा। वह और होनी चाहिए!"

"अच्छी बात है, शुरू कर!" मालिक ने कहा और फिर अपने पड़ोसियों की ओर मुड़कर शेखी बघारते हुए बोला, "यह न समझना

कि इसका पेट खाली है! अरे नहीं एक सेर पाव रोटी तो इसने आज सवेरे ही नाश्ते मे चट की इसके बाद खूब छककर दोपहर का भोजन किया!"

मांस लाकर उसके सामने रख दिया गया, दर्शकों की एक भीड़ इर्द-गिर्द जमा हो गई। ये सब के सब सौदागर और व्यापारी थे। जाडो का भारी लबादा कसके पहने हुए वे बड़े-बड़े बटखरे जैसे लगते थे। उनकी तोदें निकली हुई थीं, बेरस, उनींदी और ऊब भरी छोटी-छोटी आंखें, चुंधी सी, गालों की चर्बी में धंसी हुई झांक रही थीं।

हाथों को अपनी आस्तीनों में खोसे, कसकर घेरा बनाए, वे मीशा के चारों ओर खड़े थे। हाथ में एक चाकू और राई की डबल रोटी लिए मीशा भी तैयार था। तेजी से, जल्दी-जल्दी सलीब का चिन्ह बनाने के बाद, वह ऊन के एक बोरे पर बैठ गया। मांस के लोथड़े को उसने एक पेटी पर रख लिया और कोरी आंखों से उसे अन्दाजने लगा।

डबल रोटी मे से उसने एक पतला सा टुकड़ा तराशा, फिर मांस का मोटा सा टुकड़ा काटकर बड़ी सफ़ाई से उसके ऊपर रखा और दोनो हाथो से पकड़कर अपने मुंह तक ले गया। कुत्ते की भांति उसकी लम्बी जीभ बाहर निकली, कांपते हुए अपने होंठों को चाटकर उसने साफ़ किया, उसके छोटे-छोटे तेज दांतों की एक झलक दिखाई दी। फिर, कुत्ते की ही तरह मांस को उसने अपने जबड़ों में दबोच लिया।

"अरे इसने थूथनी चलाना शुरू कर दिया!"

"घड़ी देखकर समय नोट कर लो!"

सबकी आंखे उसके चेहरे, चप-चप की आवाज करते उसके जबडो, कानों के पास उभर आनेवाली गुल्लियों, और समगति से उठने और गिरनेवाली उसकी नुकीली ठोड़ी पर जमी थीं। रह-रहकर वे आपस मे टिप्पणियां भी करते जाते थे:

"मुंह तो देखो कैसे भालू की तरह चल रहा है!"

"कभी देखा भी है भालू को मुंह चलाते हुए?"

"मै क्या जंगल में रहता हूं? यह तो एक कहावत है: भालू की तरह मुंह चलाना।"

"नहीं कहावत यह नहीं है। कहावत है: सूअर की तरह मुंह मारना।"

"सूअर क्या सूअर का मांस खाते है?"

सब अनचाहे हंसने लगे, और तभी कोई लाल बुझक्कड़ बोला:

"सूअर सभी कुछ खा सकता है—चाहे उसके अपने बच्चे-कच्चे या भाई-बहन ही क्यों न हों..."

देखते-देखते मीशा का चेहरा लाल हो गया, कान नीले पड़ गए। उसके दीदे कोटरों से बाहर झांकने लगे, और उसकी सांस बाजा सी बजाने लगी। लेकिन उसका मुंह था कि लगी-बंधी रफ़्तार से चल रहा था।

"जल्दी कर, मीशा, तेरा समय खत्म हुआ जा रहा है!" वे उसे उकसाते। बाक़ी मांस को वह बेचैनी से अन्दाजता, बीयर का घूंट चढ़ाता और जबड़े चलाना जारी रखता। दर्शकों की उत्तेजना बढ़ती जाती, उचक-उचककर और लम्बी गरदनें करके वे मीशा के मालिक के हाथ में घड़ी पर नजर डालते, और एक-दूसरे को चेताते हुए कहते:

"इस बात का ध्यान रखना कि कहीं वह घड़ी की सुई को पीछे न कर दे। अच्छा यह हो कि घड़ी इसके हाथ से ले ली जाए!"

"मीशा पर भी नजर रखना। नहीं तो आंख बचाकर वह मांस अपनी आस्तीन में छिपा लेगा!"

"देख लेना, समय के भीतर वह कभी इसे खत्म नहीं कर सकता!"

"मै अब भी पच्चीस रूबल की शर्त बदने के लिए तैयार हूं!" मीशा का मालिक आवेश में आकर चिल्लाया। "मीशा, मुझे नीचा न दिखाइयो!"

उकसावा और बढ़ावा देने के लिए दर्शक चिल्लाए तो बहुत, लेकिन शर्त बदने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

मीशा का जबड़ा चलता रहा, एक क्षण के लिए नहीं रुका, चला सो बराबर चलता ही रहा। उसका चेहरा भी मांस जैसा ही बन गया, उसकी नुकीली दर्रेदार नाक दयनीय सीटी बजाने लगी। उसे देखकर डर मालूम होता, मुझे लगता कि उसके चीख उठने में अब देर नहीं है। किसी भी क्षण उसके मुंह से आवाज निकल सकती है:

"मुझपर रहम करो!.."

या फिर, मांस के गले तक अट जाने के कारण वह दर्शकों के सामने ही ढेर हो जाएगा, और उसकी जान निकल जाएगी।

आखिर उसने सारा मांस खत्म कर दिया। दीदे टेरते हुए दर्शकों की ओर उसने देखा, और हांफता हुआ सा बोला:

पीने के लिए कुछ दो

उसके मालिक ने घड़ी पर नजर डाली और बड़बड़ा उठा:

"चार मिनट ऊपर हो गए, कुत्ते की दुम।"

"चूक गए, अगर शर्त बद ली होती बड़ा मजा आता," दर्शकों ने चिढ़ाना शुरू किया। "तुम सोलहों आना चित्त हो जाते।"

"लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि है यह पूरा सांड।"

"इसे तो किसी सरकस में भर्ती हो जाना चाहिए.."

"भगवान भी कभी-कभी कैसे बेढब इंसान पैदा करता है, है?"

"इस वक्त अगर चाय भी हो जाए तो क्या हर्ज है?"

और वे सब बजरों की तरह तैरते हुए भटियारखाने की ओर चल दिये।

मेरी समझ में न आता कि क्या बात है कि गंभीर और भारी-भरकम ये लोग एक बेहाल जीव के चारों ओर इस तरह जमा हो जाते है मानो वह कोई तमाशा हो, और फिर किसी को घिनौनेपन के साथ ठूंस-ठूंस कर खाते हुए देखने में उन्हे क्या मजा मिलता है?"

ऊन की गांठों, भेड़ की खालों, सन, रस्सों, नमदे के जूतों और काठियो से अटी हुई बाजार की संकरी बालकनी उदास और अंधेरी थी। समय की मार से जर्जर और सड़क की धूल-कीचड़ से काले पड़े ईंटो के मोटे-मोटे बदनुमा खम्बे बालकनी और पक्की पगडंडी के बीच सीमा-रेखा का काम देते थे। रोज, हर घड़ी, इन खम्बों पर मेरी नजर पड़ती और मुझे ऐसा मालूम होता मानो उनकी एक-एक ईंट और एक-एक दरार को हजारों बार मैंने गिना और देखा-भला है, यहां तक कि उनका समूचा बदनुमा ढांचा, भोंडी बनावट और दाग-धब्बों का आल-जाल, मेरी स्मृति में खूब गहरे उतरकर पूरी तरह से नक़्श हो गया है।

पक्की पगडंडी पर लोग अलस भाव से आते-जाते, और उतने ही अलस भाव से माल से लदी स्लेज और घोड़ा-गाड़ियां सड़क पर से गुजरती। सड़क के पार लाल ईंटों की दुमंजिला दुकानों से घिरा एक चौक था जहां ज़मीन पर माल भरने की पेटियां, भूसा और बण्डल बांधने के कागज़, गंदी बर्फ में रौंदे हुए सब गड्ड-मड्ड पड़े थे।

निरन्तर और हर घड़ी की इस हलचल के बावजूद ऐसा मालूम होता, मानो यहां सब—मय लोगों और घोड़ो के—निश्चल और स्थिर है, किसी अदृश्य जंजीर से बंधे कोल्हू के बैल की भांति सब एक ही जगह पर चक्कर

लगा रहे हैं। एकाएक महसूस होता था कि ध्वनियों की निर्धनता ने जीवन को इतना पस्त बना दिया है कि इसे गूंगो-बहरो की पांत में रखा जा सकता है। स्लेजों के दौड़ने की आवाजें आती, दुकानों के दरवाजे झनझनाते और खटपट करते, पाव रोटी और गर्म शरबत बेचनेवाले चिल्लाते, लेकिन आदमियों की आवाजें इतनी बेरस, जीवनशून्य और एक-जैसी होती कि कान शीघ्र ही उनकी ओर ध्यान देना बंद कर देते, उनका होना या न होना बराबर हो जाता।

गिरजों के घंटे इस तरह बजते मानो मातम मना रहे हों। उनकी उदासी भरी आवाज मानो कानों में अटककर रह जाती। लगता था मानो घंटों की आवाज सुबह से लेकर रात तक बाजार के वायुमण्डल मे मंडराती रहती है, दिल व दिमाग मे घुसकर हर विचार और हर भावना से चिपक जाती है और हर अनुभूति पर भारी ताम्बे की सी परत की तरह जम जाती है।

जानलेवा ठंडी ऊब को गहरा बनाने में हर चीज हाथ बंटाती—गंदी बर्फ का कम्बल ओढ़े धरती, छतों पर जमे बर्फ़ के भूरे ढेर, इमारतों और दुकानों की मांस जैसी लाल ईंटें। चिमनियों से निकलनेवाला भूरा धुआं भी इसी ऊब से कसमसाता और नीचे लटक आए भूरे सूने आकाश मे रेंगने लगता। घोड़ों की पसलियों और लोगों के नथुनों में भी इसी ऊब की धौंकनी चलती और लोग उसी की सांस लेते। एक अजीब गंध—पसीने, चर्बी, धुएं, तेल और चिकनाई मे डूबे पकौड़ों की बेरस और बोझिल गंध से यह ऊब सराबोर होती। यह गंध एक तंग, गर्म टोपी की तरह सिर को दबाती और छाती में छनकर एक अजीब नशा पैदा करती। जी करता कि आंखें बंद कर लो, अपनी पूरी ताकत से दहाड़ो और कहीं भागकर सिर को पत्थर की पहली दीवार से टकराकर चकनाचूर कर दो।

सौदागरों के चेहरों को मैं बड़े ध्यान से देखता—अति तृप्त, बढ़िया खून की लाली से दमकते, पाला-काटे, और इस प्रकार निश्चल मानो नींद में डूबे हुए हो। रह-रहकर वे जम्हाइयां लेते और सूखे तट पर पड़ी हुई मछली की भांति उनके मुंह भद्दे से खुल जाते।

जाडों मे बाजार ठडा रहता और वह सजग हिसाब-किताबी चमक भी सौदागरो की आंखों से गायब हो जाती जो गर्मियो में उनकी आंखो मे दौड़ती रहती है और उन्हें पूरी तरह से अपने रंग में रंग लेती है।

भारी लबादा अब हाथ-पांव हिलाने में बाधक होता और वे धरती के साथ जाम हो जाते। अलसाहट में वे बातें करते, लेकिन जब झुंझला उठते तो एक-दूसरे को खूब लम्बी झाड़ पिलाने से भी न चूकते। मुझे ऐसा मालूम होता कि वे जान-बूझकर इस तरह गुल-गपाड़ा मचाते हैं—एक-दूसरे को जताने के लिए कि वे ज़िन्दा हैं, उनकी रगों का खून ठंडा नहीं पड गया है।

मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि ऊब उन्हें खोखला बना रही है, भीतर और बाहर से उन्हें खत्म कर रही है। और मेरे विचार में हर चीज़ पर समा जानेवाली इस ऊब से उनका निष्फल संघर्ष ही उनके क्रूर, बेमानी मनबहलावों का एकमात्र कारण था।

कभी-कभी प्योत्र वासील्येविच से मैं इसका ज़िक्र करता। यों ताने-तिश्ने कसने और मुझे चिढ़ाने में उसे मज़ा आता था, लेकिन किताबें पढ़ने की ओर मेरा झुकाव उसे पसंद था और भूले-भटके, काफी गम्भीरता और सीख भरे अन्दाज़ में वह मुझसे बातें करता था। एक दिन मैंने उससे कहा:

"ये सौदागर भी क्या जीवन बिताते हैं? मुझे उनका ढर्रा ज़रा भी अच्छा नहीं लगता।"

दाढ़ी की लट को उसने अपनी उंगली में लपेटा और पूछने लगा:

"तुझे क्या मालूम कि वे कैसा जीवन बिताते हैं? क्या तू उनके घरों में जाता रहता है? यह तो बाज़ार है, मेरे लड़के, और लोग बाज़ार में जीवन नहीं बिताते। बाज़ार में तो वे व्यापार करते हैं, या घर पहुंचने की जल्दी में तेज़ी से डग उठाते हुए गुज़र जाते हैं! बाज़ार में लोग कपड़ों से लदे-फदे रहते हैं और कुछ पता नहीं चलता कि भीतर से वे कैसे हैं। केवल घर ही एक ऐसी जगह है जहां, अपनी चार दीवारों के भीतर, आदमी उन्मुक्त जीवन बिताता है। अब तू ही बता क्या तूने यह जीवन देखा है?"

"लेकिन उनके ख्यालों में तो इससे अन्तर नहीं पड़ता। घर हो चाहे बाहर, वे एक से रहते हैं।"

"यह कोई कैसे बता सकता है कि हमारा पड़ोसी किस समय क्या सोचता है?" बूढ़े ने कड़ी नज़र से मुझे घूरकर देखा और वज़नदार आवाज़ में बोला। "विचार जूओं की भांति हैं, उन्हें गिना नहीं जा सकता—

बड़े बूढ़ों ने यों ही यह नहीं कहा है। हो सकता है जब आदमी घर लौटकर देव प्रतिमा के सामने घुटने टककर मिनमिनाता या आंसू बहाते हुए प्रार्थना करता हो : मुझे माफ़ करना, महाप्रभु, आज तुम्हारे पवित्र दिन मैंने पाप किया है। संभव है कि उस के लिए घर मठ के समान हो। प्रभु के सिवा अन्य किसी चीज से उसका लगाव नहीं। समझा! हर मकड़ी को भगवान ने एक कोना दिया है – खूब जाल बुनो, लेकिन अपना वज़न पहचानते हुए, ऐसा न हो कि वह तुम्हारा बोझ न संभाल सके..."

जब वह गम्भीरता से बातें करता तो उसकी आवाज़ में एक अजीब गहराई पैदा हो जाती, मानो वह किसी महत्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन कर रहा हो।

"अब तूने इतनी छोटी उम्र में ही बाल की खाल निकालना शुरू कर दिया है। दिमाग़ के सहारे नहीं, इस उम्र में तुझे आंखों के सहारे जीना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कि देख और दिमाग में बटोर रख और ज़बान पर लगाम कसे रख। दिमाग़ व्यापार के लिए है, विश्वास – आत्मा के लिए। किताबें पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन हर चीज़ की अपनी एक सीमा होती है। कुछ लोग इतना पढ़ते है कि न उनका अपना कोई दिमाग रहता है, न भगवान रहता है। वे इन दोनों से हाथ धो बैठते है..."

मुझे वह अमर लगता था, यह कल्पना करना कठिन था कि वह कभी अधिक बूढ़ा हो सकता है या बदल सकता है। वह बड़े चाव से क़िस्से सुनाता – सौदागरों के, डाकुओं के, नामी जालसाजों के, जो बाद में मशहूर बन जाते थे। अपने नाना से मै इस तरह के बहुत से किस्से सुन चुका था। केवल कहने के ढंग में फ़र्क था। नाना का ढंग उससे कहीं अच्छा था। परन्तु कहानी की मूल भावना वही थी : भगवान और मानव को रौंदे बिना धन नहीं बटोरा जा सकता। प्योत्र वासील्येविच के हृदय में लोगों के लिए कोई दया नहीं थी, लेकिन भगवान का बड़े चाव और लगन से ज़िक्र करता था, उसकी पलकें झुक जातीं और हृदय से उसांसें निकलने लगतीं।

"देखो न, लोग किस तरह भगवान को धोखा देते नहीं अघाते। लेकिन प्रभु ईसा यह सब देखता है और उनके लिए आंसू बहाता है,

ग्राह मेरे बच्चो नासमझ बच्चो तुम्हें नहीं मालूम कि अपने लिए किस नरक की तुम तयारी कर रहे हो!

एक दिन साहस बटोर मैंने उससे पूछा:

"आप भी तो देहातियो को धोखा देते है?"

उसने ज़रा भी बुरा न माना। बोला:

"ऊंह, उससे उन्हे ज्यादा नुकसान नही पहुंचता। मुश्किल से चार या पांच ही रूबल तो मै अपने लिए उनसे झटकता हूं। बस इतना ही, और कुछ नही!"

जब वह मुझे कुछ पढ़ते हुए देखता तो पुस्तक मेरे हाथ से ले लेता, उसमे लिखी बातो के बारे मे पूछता-ताछता और सन्देह तथा अचरज मे भरकर कारिंदे की ओर मुड़ते हुए कहता:

"देखा, यह नन्हा बन्दर किताबों मे लिखी बाते समझ लेता है!"

और नपे-तुले, कभी न भूलनेवाले अन्दाज़ मे वह मुझे सीख देता:

"मेरे शब्द ध्यान से सुनना—वक़्त पर तुम्हारे काम आएंगे। किरील नाम के दो आदमी हुए है, दोनों ही पादरी, एक अलेक्सान्द्रिया का रहने-वाला, और दूसरा येरुशलम का। पहले ने ईश्वर द्रोही नेस्तर को आड़े हाथों लिया जो लोगों में इस तरह की गंदी बातों का प्रचार करता था कि मरियम हमारी-तुम्हारी भांति इसी दुनिया की एक स्त्री थी जिसने भगवान को नही बल्कि हमारे-तुम्हारे जैसे ही ईसा नाम के एक आदमी को जन्म दिया था। यह आदमी दुनिया का तारनहार बना। इसका मतलब यह कि मरियम को भगवान की मां न कहकर ईसा की मां कहना चाहिए। समझा, यही वह चीज है जिसे लोग धर्म-द्रोह कहते हैं। इसी प्रकार येरुशलम के किरील ने धर्म-द्रोही अरिया की धज्जियां उड़ाई..."

ईसाई धर्म के इतिहास की उसे अद्भुत जानकारी थी। इसका मुझपर गहरा असर पड़ता। हल्के और मुलायम हाथ से वह अपनी दाढ़ी सहलाता और शेखी बघारता:

"इन विषयो का मै जनरल हूं, बड़े मोर्चे मैंने सर किये है। पंचाशती के दिनों में मै मास्को गया था और नीकोन के किताबचाटू चेले-चाटियो, पादरियो और दूसरे संपोलियों के साथ शास्त्रार्थ किया। एक प्रोफ़ेसर तक से मैंने वाद-विवाद किया। एक पादरी को मैंने अपनी ज़बान के ऐसे कोड़े लगाये कि उसकी नाक से ख़ून तक बहने लगा।"

उसके गाल लाली से दमकने लगे और आंखों में चमक दौड़ गई।

विरोधी की नकसीर क्या फटी मानो उसे बहुत बड़ी रियासत मिल गई, उसके गौरव के सुनहरे ताज में मानो किसी ने चमकता हुआ लाल जड़ दिया। बड़े ही उल्लास और विजय के गर्व के साथ उसने इसके बारे में बताया:

"बहुत ही खूबसूरत और भारी-भरकम पादरी था वह। मंच पर वह खड़ा था और उसकी नाक खून के आंसू रो रही थी – टपाटप-टपाटप – खून नीचे टपक रहा था। और मज़ा यह कि उसे पता तक नहीं था कि उसकी नाक क्या गुल खिला रही है। बाप रे, वह शेर की भांति झपटता था और उसकी आवाज़ ऐसे गूंजती थी जैसे कोई बहुत बड़ा घंटा बज रहा हो। लेकिन मैं भी मोर्चे पर डटा था और उसकी आत्मा को खंजर की भांति अपने शब्दों से छलनी कर रहा था। शान्ति से, खूब निशाना साधकर, ठीक उसकी पसलियों की सीध में मैं अपने शब्दों की मार कर रहा था... ईश्वर-द्रोही कुत्सित बातों की खिचड़ी पकाते-पकाते वह तन्दूर की भांति गरमा गया था... ओह, क्या दिन थे वे भी!"

हमारी दुकान पर अक्सर दूसरे पारखी भी आते थे: पाख़ोमी, जिसकी भारी तोंद और केवल एक आंख थी। वह बोलता क्या था, मानो खर्राटे लेता था। हमेशा वही एक पुराना चौकट कोट पहने रहता; नाटे क़द का, चूहे की भांति चिकना-चुपड़ा, मीठे स्वभाव का और फुर्तीला बूढ़ा लुकियान आता था। वह अपने साथ एक और आदमी को लाता जो देखने में कोचवान सा मालूम होता – भारी-भरकम, तोबड़ा चढ़ा हुआ, काली दाढ़ी, निश्चल आंखें और खोया-खोया सा सूना चेहरा जो खूबसूरत होते हुए भी अच्छा नहीं मालूम होता था।

वे लगभग कभी खाली हाथ न आते। हमेशा कोई न कोई चीज़ बेचने के लिए लाते: पुरानी पुस्तकें, देव-प्रतिमाएं, धूपदान, पूजा के बरतन। कभी-कभी, चीजें बेचनेवाले – वोलगा प्रदेश के किसी बूढ़े या बुढ़िया को भी अपने साथ ले आते। जब सौदा पट जाता तो सब दुकान में इस तरह बैठ जाते जैसे मुंडेर पर कौवे। चाय पीते और खाने की चीजों पर हाथ साफ़ करते। बातों का सिलसिला चलता और नीकोनपंथी धर्माधिकारियों के जुल्मों का ज़िक्र करते। एक जगह खानातलाशी ली गयी और पुराने धर्मग्रंथ छीने गये; दूसरी जगह पुलिस ने प्रार्थनाघर को बंद कर दिया,

उसके मालिकों को पकड़कर अदालत में पेश किया गया और धारा १०३ का उल्लंघन करने के अपराध मे उनपर मुकदमा चलाया। धारा १०३ पर वे खूब बातें करते। लेकिन वे इसका उल्लेख निस्संग भाव से करते, मानो यह कोई अनिवार्य और उनके वश से बाहर की चीज हो, ठीक वैसे ही जैसे जाड़ों में पाला।

पुलिस, खानातलाशी, जेल, अदालत, साइबेरिया जैसे शब्दों का वे बार-बार प्रयोग करते, और ये शब्द दहकते अंगारों की तरह मेरे हृदय से आकर टकराते। इन बूढ़े लोगों के प्रति जो अपने विश्वास की वजह से इतनी मुसीबतें झेल रहे थे, मेरे हृदय में सहानुभूति और शुभ कामनाओं की लौ जाग उठती। नैतिक साहस की मै कद्र करता और उन लोगों के आगे मेरा सिर झुक जाता जो अपने लक्ष्य की पूर्ति में डिगना नहीं जानते। यह मैंने पुस्तकों से सीखा था।

इन जीवन-गुरुओं की व्यक्तिगत त्रुटियां मेरी आंखो से ओझल हो जाती, मुझे केवल उस शान्त दृढ़ता का ध्यान रहता जिसके पीछे—मेरी समझ में—अपने सत्य में इन गुरुओं का अडिग विश्वास और सत्य के लिए सभी मुसीबतें झेलने की उनकी तत्परता छिपी थी।

आगे चलकर बुद्धिजीवियों तथा आम लोगों के बीच पुराने विश्वास के ऐसे ही या इनसे मिलते-जुलते अनेक रक्षकों से मिलने के बाद, मेरे लिए साफ़ हो गया कि जिसे मैं उनकी दृढ़ता समझे था, वह वास्तव मे एक तरह की निष्क्रियता थी। यह उन लोगों की निष्क्रियता थी जो एक नुक़्ते पर पहुंचकर रुक गये थे। जिन्हें उस नुक़्ते से आगे और कुछ नहीं दिखाई देता था और जिनमें असंदिग्ध रूप में उससे आगे बढ़ने की कोई इच्छा भी नहीं थी। वे घिसे-पिटे और जड़ शब्दो तथा जर्जर मान्यताओं के जाल में उलझकर रह गए थे। उनकी इच्छाशक्ति इतनी निर्जीव और अक्षम हो गई थी कि भविष्य की ओर आगे बढ़ना उनके लिए सम्भव नही रहा था, इस हद तक कि अगर बाहर से कोई आघात उन्हे उनकी जगह पर से हटाता है तो वे यंत्रवत नीचे लुढ़कना शुरू कर देते है, ठीक वैसे ही जैसे पहाड़ी ढाल पर से पत्थर लुढ़कता है। अतीत के संस्मरणों की जीवनहीन शक्ति और यंत्रणा तथा दमन सहने का विकृत प्रेम मृत सत्यों की क़ब्रगाहों में उन्हें उनकी चौकियों पर बनाये रखता था। यंत्रणा सहने का अवसर हाथ से निकलते ही वे खोखले हो जाते और उसी तरह

गायब हो जाते जैसे कि तेज हवा बादलो के टुकड़ों को उड़ा ले जाती है।

जिस विश्वास के लिए इतनी तत्परता और आत्मगौरव के साथ वे अपने को बलिदान करते थे, उसकी दृढ़ता से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह दृढ़ता उन पुराने कपड़ो की याद दिलाती थी जिनपर धूल और गर्द की इतनी मोटी तह जम गई है कि समय का विनाशकारी असर उनपर नही पड़ता। उनके विचार और भावनाएं अंधविश्वासो और जड़ सूत्रों के चौखटे में कसे रहने की आदी हो गई थी, भले ही इन चौखटो ने उन्हे विकृत और पंगु बना दिया हो, लेकिन इससे उन्हें ज़रा भी परेशानी नहीं होती थी।

आदतवश विश्वास करना—यह हमारे जीवन की एक अत्यन्त कुत्सित और दुःखद घटना है। इस विश्वास में दमघोट चौखटे के भीतर, मानो पत्थर की दीवार की छाया में कोई नयी चीज नही पनप पाती—पनपती भी है तो धीरे-धीरे, विकृत और लुंजपुंज रूप मे। इस अंधकारमय विश्वास मे प्रेम की किरणें बहुत कम चमकती है और घृणा की—बदले की भावना, कुत्सा और ईर्ष्या की लपटे उठती है। इस विश्वास की अग्नि गलने-सड़ने की, फ़ास्फ़ोरस की दमक है।

लेकिन इस सत्य तक पहुंचने के लिए मुझे वर्षों तक पापड़ बेलने और मुसीबतें झेलनी पड़ीं, अपनी आत्मा में बहुत सी तोड़-फोड़ करनी पड़ी, स्मृति-पटल से बहुत कुछ मिटाना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि बोझिल, बेरस और ग़ैर-जिम्मेदारी से भरे जीवन के बीच जो मेरे चारों ओर फैला था, जीवन के इन गुरुओ को जब पहली बार मैने देखा तो मुझे लगा कि वे अद्भुत नैतिक साहस के धनी, बल्कि कहना चाहिए कि इस धरती की जान है। सभी, किसी न किसी समय, अदालत में घसीटे जा चुके थे, जेल की चक्की पीस चुके थे, नगरों से बाहर खदेड़े और अन्य अपराधियों के साथ जलावतनी का जानलेवा रास्ता नाप चुके थे। सभी, चौबीसों घंटे, सांसत से जीवन बिताते, लुक-छिपकर रह रहे थे।

लेकिन, यह सब होने पर भी, मैंने देखा कि एक ओर जहां वे नीकोनियों के अत्याचारों और इस बात का रोना रोते कि वे उनकी आत्मा के पीछे पड़े रहते है, वहां दूसरी ओर ये खुद बूढ़े लोग भी बड़ी तत्परता और उछाह से एक-दूसरे पर झपटते रहते थे।

काना पाखोमी, जब कभी वह तरंग मे होता, बड़े चाव से अपनी अद्भुत याददाश्त के करतब दिखाता। कुछ धर्म-ग्रंथ तो उसकी जबान पर चढे थे और वह उन्हे उसी तरह पढता था जिस तरह यहूदी पुजारी तालमुद पढ़ते है। वह ग्रंथ खोलता, आंख बन्द कर किसी भी शब्द पर अपनी उंगली टिका देता और जो भी शब्द पकड़ में आता, उसके बाद से मुलायम और गुनगुनी आवाज में वह जबानी सुनाना शुरू कर देता। उसकी नजर हमेशा फर्श की ओर झुकी होती और उसकी अकेली आंख बड़ी तत्परता से अगल-बगल लपकती-झपकती, मानो वह किसी खोई हुई बहुमूल्य चीज की टोह में हो। अपना करतब दिखाने के लिए वह ज्यादातर प्रिंस मिशेत्स्की की पुस्तक "रूस का अंगूर" से काम लेता। 'भारी धीरज और साहस से ओतप्रोत वीर और निडर शहीदो की कुरबानियां' उसे सब से अच्छी तरह याद थी। प्योत्र वासील्येविच उसकी गलतियां निकालने के लिए हमेशा पंजे पैनाए रहता।

"गलत! यह घटना सन्त डेनिस के साथ घटी थी, सन्त किप्रियान के साथ नही!"

"डेनिस? डेनिस नही, सही नाम है डिओनिसी, समझे?"

"नाम को लेकर मेरे साथ चपोड़बाजी न करो!"

"तो तुम भी मुझे सबक पढ़ाने की कोशिश न करो!"

लेकिन यह तो शुरूआत ही थी। कुछ क्षण बीतते न बीतते उनके चेहरे गुस्से से तमतमा जाते, वे एक-दूसरे को नीचे गिरानेवाली नजरो से ताकते और चुने हुए शब्दो के गोले दागने लगते:

"गावदुम, बेशर्म, अपनी इस तोंद को तो देख क्या मटके सी फूलती जा रही है!.."

पाखोमी जमा-बाकी का हिसाब लगानेवाले मुनीम की तरह जवाब देता:

"बकरे की दुम, फिसड्डी और नीच, घाघरे के पिस्सू!"

आस्तीनो के भीतर अपने हाथों को खोसे कारिंदा उन्हें देखता, उसके चेहरे पर कुत्सापूर्ण मुसकराहट नाचने लगती और प्राचीन धर्म के इन रक्षकों को वह इस तरह उकसाता मानो वे स्कूली बच्चे हों:

"ऐसे, ऐसे! और जोर से, वाह, शाबाश!.."

एक दिन बूढ़े सचमुच में लड़ पड़े। प्योत्र वासील्येविच ने पाखोमी

के मुह पर एसा थप्पड रसीद किया कि वह मदान छोडकर भाग निकला। प्योत्र वासील्येविच ने थके हुए भाव से अपने माथे का पसीना पोंछा और भागते हुए पाखोमी को लक्ष्य कर चिल्लाया:

"सुन ले, यह पाप तेरे सिर पर है। तूने ही मेरे इस हाथ को आज यह पाप करने के लिए उत्तेजित किया! थू है तुझपर!"

वह अपने साथियों पर विश्वास की कमी और 'नकारवाद' के चक्कर में फंसने का आरोप लगाकर खास तौर से खुश होता:

"आखिर तुमने भी उसी ईश्वर-द्रोही कौवे अलेक्सान्द्र की बोली बोलना शुरू कर दिया न!"

लेकिन जब उससे पूछा जाता कि जिस 'नकारवाद' से वह इतना चिढ़ता और भय खाता है, वह आखिर है क्या बला, तो उससे कोई साफ़ जवाब देते न बनता:

"नकारवाद सबसे तीखा और घातक धर्म-द्रोह है जो खुदा को जहन्नुम रसीद कर उसकी जगह बुद्धि को बैठाता है। मिसाल के लिए कज्जाकों को लो। वे केवल बाइबल को मानते हैं। और यह बाइबल सारातोव के जर्मनों से—लूथर से—उनके हाथ लगी। और लूथर के बारे में कहा गया है, 'लुटेरा-लूथर, रंगीला लूथर, शैतान लूथर!' जर्मनों के कबीले का मतलब है खरहा-दिमाग़ों या फिर श्टून्डा। यह सारी अलाय-बलाय पश्चिम से, वहां के धर्म-द्रोहियों के पास से आई है।"

अपना विकृत पांव वह ज़मीन पर पटकता और ठंडी वज़नदार आवाज़ में कहता:

"असल में ये लोग है जिनका इन नये धर्म वालों को हुलिया तंग करना चाहिए, बीन-बीनकर जिन्हें पकड़ना और टिकटियों पर जिन्हें भूनना चाहिए। असल में दमन इनका होना चाहिए, न कि हमारा। हम, जो रूसी हैं—पुश्त दर पुश्त से दुनिया बनी है तब से हमारा विश्वास और दीन-ईमान एकदम पूर्वी, सच्चे मानी मे रूसी है। लेकिन ये लोग और इनकी विकृत आजादख्याली—यह सब पश्चिम की देन है, एकदम विदेशी। जर्मनों और फ्रांसीसियों से नुकसान के सिवा और क्या पल्ले पड़ेगा? ज़रा पीछे मुड़कर देखो, १८१२ में..."

जोश में उसे इस बात का भी ध्यान न रहता कि कच्ची उम्र के एक लडके से वह बातें कर रहा है। अपने मजबूत हाथ में मेरी पेटी दबोचे

झटका देकर कभी वह मुझे अपनी ओर खींचता, कभी दूर धकेल देता। उसकी आवाज एक अजीब, बिल्कुल युवकों जैसे उत्साह से भरी होती थी। वह कहता:

"आदमी का दिमाग हवाई जंगल में खूंख्वार भेड़िये की भांति मंडराता है। शैतान के हाथों में उसकी नकेल होती है और उसकी आत्मा, परमात्मा का उच्चतम वरदान, नष्ट हो जाती है। शैतान के इन चेलों के दिमाग ने क्या गढ़ा? नकारवाद के ये कठमुल्ला सीख देते थे: शैतान भी खुदा का बेटा और प्रभु ईसा का बड़ा भाई है! देखा, कहां तक पहुंचे? और वे लोगों को यह पाठ भी पढ़ाते थे: अधिकारियों का कहना न मानो, काम-धंधे न करो, अपने बीबी-बच्चों को धता बताओ। हर व्यवस्था के वे खिलाफ हैं। बस, आदमी को छुट्टा छोड़ दो, ताकि वह शैतान के इशारे पर नाचे। अब देखो यह अलेक्सान्द्र आ धमका है, ओह, कीड़े"

कभी-कभी बीच में ही, कोई काम करने के लिए कारिंदा मुझे बुला लेता। बालकनी में वह अब अकेला ही रह जाता, लेकिन उसका बोलना फिर भी बंद न होता, बूढ़े के मुंह से निकले शब्द शून्य में बिखरते रहते.

"ओ, पर-कटी आत्माओ, ओ अंधे पिल्लो, न जाने कब तुमसे छुटकारा मिलेगा!"

फिर, पीछे की ओर अपने सिर को फेंकता और हथेलियों को अपने घुटनों पर टिकाकर देर तक चुप रहता, जाड़ों के धूसर आकाश पर नजर गड़ाए वह एकटक देखता रहता।

मेरे साथ उसका बरताव धीरे-धीरे अधिक नरम होता गया और वह मेरा काफी ध्यान रखने लगा। जब वह मुझे कोई पुस्तक पढ़ते देखता तो मेरे कंधे को थपथपाते हुए कहता:

"यह ठीक है, मेरे लड़के, पढ़ और खूब पढ़। वक्त पर काम आएगा। भगवान ने तुझे अच्छा दिमाग दिया है। अफसोस की बात है कि तू बड़ों का कहना नहीं मानता, और हर किसी के सामने अड़ जाता है। जानता है, यह शैतानी तुझे कहां ले जाएगी? जेल में, मेरे लड़के, जेल में। किताबें पढ़, खूब पढ़, लेकिन यह न भूल कि किताब आखिर किताब ही है। ऐसा न हो कि तेरा अपना दिमाग ठप हो जाए। जानता है, ख्लिस्ती पंथ का एक गुरु दनीलो था, वह इस विचार पर पहुंच गया कि किताबों की कोई जरूरत नहीं, वे नयी हों या पुरानी, किताबों को बोरे में भरकर उसने

उन्हें नदी में डुबा दिया यह भी गलत है फिर शैतान का गुर्गा वह अलेक्सान्द्र है जो लोगों को उलटा पाठ पढ़ाता है और उनके दिमाग़ों को ख़राब करता है..."

अलेक्सान्द्र का वह अक्सर जिक्र करता और बात-बात में उसका नाम लेता। एक दिन जब वह दुकान में आया तो उसका चेहरा बेहद परेशान था। तेज स्वर में कारिंदे से बोला:

"कुछ सुना तूने, अलेक्सान्द्र यहां, हमारे नगर में ही मौजूद है—कल ही आया है। सुबह से घूम रहा हूं, कोई जगह मैंने नहीं छोड़ी, लेकिन कुछ पता नहीं चला: जाने कहां चोर की तरह छिपा है। सोचा, कुछ देर तेरी दुकान पर चलकर बैठूं। शायद यहीं टकरा जाए.."

"रोज ही सैकड़ों ऐरे-गैरे आते रहते हैं। मेरा उनसे क्या वास्ता!" कारिंदे ने कुढ़कर कहा।

बूढ़े ने सिर हिलाया। बोला:

"ठीक है—तेरे लिए सब लोग या खरीदार हैं या बेचनेवाले और कोई है ही नहीं। चल एक गिलास चाय तो पिला दे..."

खौलते पानी से भरी पीतल की एक बड़ी सी केतली लेकर जब मैं लौटा तो देखा कि दुकान में कुछ और मेहमान भी मौजूद हैं। इनमें बूढ़ा लुकियान भी था। खुशी के मारे उसकी बत्तीसी खिली थी। दरवाजे के पीछे अंधेरे कोने में एक अजनबी बैठा था। वह नमदे के ऊंचे जूते, हरे पटके से कसा गरम कोट और सिर पर टोपी पहने था जिसे नीचे खींचकर उसने अपनी आंखों को ढंक लिया था। उसका चेहरा मुझे अच्छा नहीं लगा, हालांकि वह काफ़ी शान्त और विनम्र जीव मालूम होता था। उसका मुंह बुरी तरह लटका हुआ था, दुकान के उस कारिंदे की भांति जिसे अभी-अभी नौकरी से निकाल दिया गया हो और इस कारण जैसे उसके होश-हवास गुम हो गये हों।

उसकी ओर नजर तक डालने की चिन्ता न करते हुए प्योत्र वासील्येविच कुछ कह रहा था। उसकी आवाज में विरोधी को चित्त कर देनेवाली सख्ती, वजन और जोर था। अजनबी का दाहिना हाथ ऐंठता हुआ अपनी टोपी से खेल करने में जुटा था। वह बांह उठाता, इस तरह मानो सलीब का चिन्ह बनाने जा रहा हो, और हल्का सा झटका देकर टोपी को पीछे की ओर खिसका देता। एक बार, दो बार, तीन बार, अन्त में टोपी

दाद पर खिसक जाती और वह उसका छोर पकड़कर झटके से उसे खींचता और फिर अपनी आंखों पर जमा लेता। उसकी इन ऐंठन का हरकतों को देखकर मुझे 'जेब में मौत' वाले पागल इगोशा की याद हो आई।

"ये गंदी मछलियां हमारी गंदली नदी में किलबिला रही हैं और दिन-दिन दूनी गंदगी उछाल रही हैं!" प्योत्र वासील्येविच कह रहा था।

अजनबी ने, जो किसी दुकान का कारिंदा मालूम होता था, शान्त और निश्चल आवाज में पूछा:

"यह सब क्या तुम मेरे बारे में कह रहे थे?"

"तुम्हारे बारे में ही सही..."

अजनबी ने, उतने ही निश्चल अन्दाज और आत्मिकता से फिर पूछा:

"और खुद अपने बारे में तुम क्या कहते हो, बंदे?"

"अपने बारे में मैं भगवान के दरबार में कहूंगा—वह मेरा निजी मामला है..."

"ओह नहीं, बंदे, अकेले तुम्हारा ही नहीं, वह मेरा मामला भी है," अजनबी ने जोरदार और गम्भीर आवाज में कहा। "सचाई से आंखें न चुराना और अपने को जान-बूझकर अंधा न करना। भगवान और इंसान के सामने यह बड़ा पाप है!"

मुझे यह अच्छा लगा कि प्योत्र वासील्येविच को उसने 'बंदा' कहकर सम्बोधित किया। उसकी शान्त और गम्भीर आवाज ने भी मुझपर गहरा असर किया। वह उसी तरह बोल रहा था जैसे कि कोई अच्छा पादरी धर्म-ग्रंथ का पाठ करता है, "सबका स्वामी, इस दुनिया का सिरजनहार..." वह बोलता जाता था और कुर्सी पर आगे की ओर खिसकता जाता था, अपने हाथ को मुंह के सामने लाकर हिलाते हुए बोला:

"मेरी निंदा मत करो, मैं तुमसे अधिक पापी नहीं हूं..."

प्योत्र वासील्येविच ने तिरस्कारपूर्वक कहा:

"लगा समोवार खौलने!"

अजनबी ने उसके शब्दों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और बोला:

"केवल भगवान ही यह बता सकता है कि पवित्र आत्मा के सोतों को कौन अधिक गंदा कर रहा है। हो सकता है कि यह पाप तुमने ही किया हो,—किताबी—कागजी लोगों ने, मैं किताबी नहीं, कागजी नहीं, मैं तो एक सीधा-सादा जीव हूं..."

"जानता हूं मैं तुम्हारी यह सादगी। बहुत सुन चुका हूं!"

"यह तुम लोगों को भरमाते हो, सीधी बातों को तोड़ते-मरोड़ते हो, किताबी, गिरगिट... मैं क्या कहता हूं, बताओ?"

"धर्म-द्रोह!" प्योत्र वासील्येविच ने कहा। अजनबी अपने हाथ की हथेली को आंखों के सामने लाकर इस तरह देख रहा था मानो उसपर लिखी लिखावट पढ रहा हो और व्यग्र भाव से बोलता जा रहा था:

"तुमने लोगों को एक गंदगी से निकालकर दूसरी गंदगी में डाल दिया है और सोचते हो कि इससे उनका जीवन सुधर गया? लेकिन मैं कहता हूं कि तुम धोखे में हो! मैं कहता हूं खुदा के बंदो, अपने को उन्मुक्त करो! खुदा के सामने न घर की कुछ हस्ती है, न बीवी-बच्चों और ढोर-डंगरों की! अपने को मुक्त करो, उन सभी चीजों को छोड़ दो जो हिंसा और मार-काट की ओर ले जाती है—सोने-चांदी और धन-दौलत के सारे बन्धनों को तोड़ दो जो सड़ांध और गंदगी का ही दूसरा नाम है। इस लंबी-चौड़ी धरती पर चाहे जितना भटको, कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति तो केवल स्वर्ग की घाटियों में मिलती है। किसी चीज का मोह न करो। हर चीज से इनकार करो। मैं कहता हूं, सभी नातों-बन्धनों से इनकार करो। इस दुनिया के जाल को नष्ट करो—जो खुदा के दुश्मनों की रचना है... मेरा रास्ता सीधा है, मेरी आत्मा अडिग है, मैं इस अंधी दुनिया को स्वीकार नहीं करता.."

"लेकिन रोटी, पानी और तन ढकने के लिए कपड़ों को स्वीकार करते हो? ये सब भी तो इसी दुनिया की चीजें है!" बूढ़े ने जहरीली आवाज में पूछा।

अलेक्सान्द्र पर इन शब्दों का भी कोई असर नहीं हुआ। वह और भी लगन से बोलता गया। उसकी आवाज धीमी थी, लेकिन मालूम ऐसा होता था जैसे पीतल की तुरही गूंज रही हो:

"बंदे, तेरी असली निधि का स्रोत क्या है? तेरी निधि का स्रोत है खुदा, वही तेरी असली दौलत है। निष्कलंक बनकर उसके सामने जा, अपनी आत्मा को इस दुनिया के बंधनों से मुक्त कर और खुदा देख लेगा—तू अकेला है और वह अकेला है। इसी तरह तुझे खुदा के पास जाना है, इसके सिवा उसके पास पहुंचने का और कोई रास्ता नहीं है। कहा है: मुक्ति के लिए पिता और मां को छोड़, हर चीज का त्याग कर और

उस ग्राग्व को निकाल डाल जो हृदय का मोहक चीजों मे उलझाती है खुदा के लिए इस नश्वर शरीर का नाश और अनश्वर आत्मा का वरण कर, जिससे तेरी आत्मा की जोत कभी मंद नही पड़ेगी..."

प्योत्र वासील्येविच से नहीं रहा गया। उठते हुए झुंझलाकर बोला, "छिः कुत्ते की दुम! मै तो समझा था कि पिछले साल के मुकाबले अब तुम कुछ ज्यादा समझदार हो गए होगे, लेकिन लगता है कि तुम्हारा रोग दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है.."

बूढ़ा डगमग करता दुकान से बाहर बालकनी मे निकल गया। यह देख अलेक्सान्द्र चौका। तेजी से और कुछ अचरज मे भरकर पूछा:

"अरे, क्या जा रहे हो? भला... यह कैसे?"

शराफत के पुतले लुकियान ने आंख के इशारे से लेप चढ़ाते हुए कहा:

"कोई बात नहीं... कोई बात नहीं.."

तब अलेक्सान्द्र ने उसे भी आड़े हाथों लिया:

"और तुम भी हो कि अर्थहीन शब्द बिखेरते जा रहे हो—लेकिन इससे क्या फायदा? क्या फ़र्क पड़ता है?.."

लुकियान ने मुसकराकर उसकी ओर देखा और खुद भी बालकनी मे चला गया। अजनबी ने अब कारिंदे की ओर रुख किया और विश्वास भरी आवाज में बोला:

"देखा, मेरी आत्मा की शक्ति के सामने न टिक सके। धुआ उसी समय तक मंडराता है जब तक लपटें नहीं उठतीं!"

कारिंदे ने पलको के नीचे से नजर उठाकर देखा, और रूखे स्वर मे बोला:

"मेरे लिए सब बराबर है।"

अलेक्सान्द्र इन शब्दो को सुनकर मानो झेप गया। अपनी टोपी को आंखो पर खींचते हुए बुदबुदाया:

"यह क्या, बराबर कैसे है?.. सब बराबर नही हो सकता..."

कुछ क्षण तक वह सिर लटकाए चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद बूढ़ो ने उसे आवाज दी और तीनों राम-सलाम कहे बिना चले गए।

अंधेरे से जिस तरह आग धधकती है, ठीक वैसे ही यह अजनबी मेरी आंखो के सामने प्रकट हुआ, और मुझे लगा कि इस दुनिया से उसके इनकार में कोई सत्य जरूर है।

रात को मौका पाकर भारी उत्साह के साथ इवान लारिओनिच से मैंने उसका जिक्र किया। वह एक बहुत ही शान्त और भला आदमी था और हमारी वर्कशाप का बड़ा उस्ताद था। मेरी बात सुनने के बाद बोला :

"वह भगोड़ा होगा, — यह भी एक पंथ है जिसे माननेवाले किसी चीज को स्वीकार नहीं करते।"

"वे कैसे रहते है?"

"वे किसी एक जगह नहीं टिकते, सदा घूमते रहते है। इसीलिए उनका नाम भी भगौड़े पड़ गया। उनका मत है कि यह धरती और इसकी हर चीज उनके लिए परायी है। पुलिस उन्हे नुकसानदेह समझती है, और उनके पीछे पड़ी रहती है..."

अपने जीवन मे काफी कटुता मैंने देखी थी, फिर भी यह बात मेरे हृदय मे नहीं जमी कि कोई जीवन की हर चीज को ठुकरा कैसे सकता है। उस समय अपने चारो ओर के जीवन में मुझे अच्छी और दिलचस्प चीजें दिखाई देती थीं। नतीजा इसका यह कि कुछ दिन बीतने न बीतते अलेक्सान्द्र का चित्र धुंधला पड़कर मेरी स्मृति से गायब हो गया।

लेकिन, कभी-कभी, बुरे क्षणों में उसकी याद ताजा हो जाती और मुझे लगता जैसे खेतों के बीच से मटमैले पथ को पार करता वह जंगल की ओर बढ़ा जा रहा हो। श्रम के दाग-धब्बों से अछूता उसका सफ़ेद और साफ-सुथरा हाथ ऐंठता हुआ टोपी को धकेल रहा है और वह बुदबुदा रहा है :

"मेरा पथ सीधा और सही है और हर चीज से इनकार करने तथा हर बन्धन को तोड़ने का मै आह्वान करता हूं..."

और उसके साथ-साथ पिता का चित्र भी मेरी आंखो के सामने मूर्त हो उठता, — ठीक वैसा ही जैसा कि वह नानी को सपनों में दिखाई देता था : अखरोट की लकड़ी हाथ में लिए, और एक चित्तीदार कुत्ता, जीभ बाहर निकाले, उसके कदमो के साथ लपकता-झपकता हुआ...

१३

देव-प्रतिमाओ की वर्कशाप लकड़ी और ईंट की एक पक्की इमारत के दो कमरों में थी। एक कमरे में तीन खिड़कियां सहन की तरफ़ खुलती थी और दो बगीचे की तरफ; दूसरे कमरे मे एक खिड़की का रुख बगीचे

की ओर था और एक का सड़क की ओर। खिड़कियां छोटी और चौकोर थीं, और उनका कांच ज़माने के रंग देखते-देखते खुद भी रंग गया था। जाड़ों की धुंधली और छितरी हुई रोशनी मुश्किल से उसे बेधकर भीतर पहुंच पाती थी।

दोनों कमरों में मेजें ही मेजें भरी थीं। हर मेज पर, कमर दोहरी किए, एक या दो कारीगर काम करते। पानी से भरी कांच की गेंदें छत से लटकतीं, ताकि लैंपों की रोशनी उनके स्पर्श से और भी अधिक उजली तथा शीतल होकर देव-प्रतिमाओं के चौरस चौखटों को आलोकित करे।

वर्कशाप के गरम वातवरण में दम घुटता। चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध पालेख, खोलुई और म्स्तेरा गांवों के करीब बीस कारीगर—सब यहीं भरे रहते। खुले गले की छींट की कमीजें और मोटे कपड़े के पायजामे वे पहनते, और जूतों के नाम पर बदनुमा लीतरे होते या एकदम नंगे पांव ही रहते। माखोरका तम्बाकू का कड़वा धुआं उनके सिरों के चारों ओर मंडराता और वार्निश, लाख तथा सड़े अंडों की गंध से हवा भारी हो जाती। व्लादीमिर जन गीत के स्वर, गर्म तारकोल की तरह तरल और भारी तैरते रहते:

> पाप पंक में लथपथ दुनिया
> रही न लाज कुलाज
> लड़के लड़की सब बेकाबू
> नाचें नंगा नाच...

वे अन्य गीत भी गाते, सब इसी कैंडे के, जो भारी बनानेवाले। लेकिन यह उनका प्रिय गीत था। गीत के असल बोल, उनके विचारों या काम में कोई बाधा दिए बिना, गूंजते रहते। अरमाइन के महीन बालों वाले ब्रुश, बिना किसी भूल-चूक के, सहज गति से चलते, प्रतिमा की रेखाओं को उभारते, सन्तों के चोगों की सलवटों में रंग भरते या उनके सूखे हुए चेहरों पर वेदना की झुर्रियां बनाते। खिड़कियों के पास से नक्काश गोगोलेव की हथौड़ी की खटखट सुनाई देती जो छेनी से छेदकर बेल-बूटे बनाता। पकौड़े सी नीली उसकी नाक थी और नशे में वह धुत्त रहता था। हथौड़ी की तेज खटखट गीत के अलस स्वरों के साथ ताल देती और ऐसा मालूम होता मानो कोई कीड़ा पेड़ की लकड़ी कुतर रहा हो।

देव प्रतिमाओं की साज सज्जा के इस काम में किसी का मन न लगता जाने किस शैतान-दिमाग़ ने इस काम को अंग-भंग कर अलग-अलग टुकड़ों में बांट दिया था। नतीजा यह कि अब इस काम में न कोई आकर्षण रहा था, न सौन्दर्य — सभी कुछ खंडित होकर बिखर गया था। उसमें गहरा लगाव पैदा करना या उसके प्रति हृदय में कोई दिलचस्पी जगाना असम्भव था। ऐंची-तानी आंखों वाला, कमीना और द्वेष भरा बढ़ई पन्फील सरो और लिण्डन लकड़ी के रंदे से साफ़ किये हुए, गोंद से जुड़े छोटे-बड़े तरह-तरह के आकार के तख्ते लाता। इसके बाद तपेदिक का मरीज़ दाविदोव तख्तों पर खास सफ़ेद रंग चढ़ाकर उन्हें चित्रकारी के लिए तैयार करता। उसका साथी सोरोकिन तख्तों पर एक खास रंग चढाता; मिल्याशिन पेन्सिल से देव-प्रतिमा की तसवीर बनाता जो किसी मूल चित्र की नकल होती; बूढ़ा गोगोलेव प्रतिमाओं के चौखटों पर सुनहरा रंग चढ़ाता और फिर उनपर नक्काशी करता; छोटे कारीगर सीनरी बनाते और सन्तों के कपड़ों में रंग भरते। इसके बाद प्रतिमा को, बल्कि कहना चाहिए कि प्रतिमा के धड़ को क्योंकि उसमें अभी न सिर लगा होता और न हाथ, दीवार के सहारे खड़ा कर दिया जाता। चेहरा बनाने का काम दूसरे कारीगर करते।

गिरजे की वेदी या दरवाजे की शोभा बढानेवाली इन बड़ी-बड़ी प्रतिमाओं को इस तरह बिना चेहरे-मोहरे, हाथ या पांव के — केवल चोगा, कवच या फरिश्तों की छोटी कमीजें पहने — दीवार के सहारे टिका देखकर बहुत ही अटपटा मालूम होता। उनके शोख और भड़कीले रंग मौत की भावना का संचार करते, वह चीज जो जीवन फूंकती है, उनमें नहीं थी, या कहिए कि वह चीज़ उनमें कभी मौजूद थी, लेकिन रहस्यमय ढंग से विदा हो गई और अब बोझिल लबादे के सिवा उनके पास और कुछ नहीं बचा है।

जब चेहरा-मोहरा बनानेवाले अपना काम ख़त्म कर लेते तो एक अन्य कारीगर नक्काशी पर मीनाकारी का काम करता। परिचय और स्तुति आदि लिखने का काम किसी दूसरे विशेषज्ञ के सुपुर्द था। इन सब के हाथों से गुजरने के बाद तैयार प्रतिमा पर खुद इवान लारिओनिच, वर्कशाप का शान्त स्वभाव मुखिया, लाख की वार्निश चढ़ाता।

उसके घूसर चेहरे पर घूसर दाढ़ी थी—महीन और रेशम की तरह मुलायम। उसकी घूसर आखों की अतल गहराई में उदासी छाई रहती। वह बहुत ही भले ढंग से मुसकराता, लेकिन जाने क्यों उसकी मुसकराहट के जवाब मे मुसकराना कुछ अटपटा और गलत सा मालूम होता। उसे देखकर खम्बेवाले सन्त सिमियोन की प्रतिमा की याद हो आती—उतना ही दुबला-पतला और क्षीण, और उसी की तरह उसकी भावहीन आखें अपने चारों ओर के वातावरण तथा आसपास के लोगों से बेखबर दूर कही देखती रहतीं।

वर्कशाप में काम शुरू किए अभी मुझे दो-चार ही दिन हुए थे कि झडियां बनानेवाला कारीगर नशे की हालत में काम पर चला आया। वह दोन प्रदेश का कज्जाक था। नाम कापेन्द्यूखिन, खूबसूरत और खूब हट्टा-कट्टा। दातों को भींचकर और बहकी-बहकी लुगाइया आखो को सिकोड़कर, बिना किसी से कुछ कहे या सुने, एक सिरे से वह सभी पर आहनी घूंसो की बौछार करने लगा। उसका चपल शरीर जो डील-डौल मे ज्यादा बड़ा नहीं था, वर्कशाप में सब पर उसी तरह झपट रहा था जैसे चूहो से आबाद तहखाने में बिलाव झपटता है। घबराकर सब ओनो-कोनो की ओर लपके, और वही दुबके हुए एक-दूसरे से चिल्लाकर कहने लगे:

"मार, साले को!"

आखिर देव-प्रतिमा का चेहरा-मोहरा बनानेवाले कारीगर येव्गोनी सितानोव ने बेकाबू हुए इस सांड को सन्न करने में सफलता प्राप्त की। स्टूल उठाकर उसने कज्जाक के सिर पर दे मारा, और वह वहीं फर्श पर ढह गया। देखते-देखते सबने उसे पकड़ा और चित्त लिटाकर तौलियो से बांध दिया। लेकिन अपने दांतों से वह तौलियो को नोंचता और झीर-झीर करता रहा। यह देख येव्गोनी का गुस्सा सीमा पार कर गया। उछलकर वह मेज पर चढ़ गया और कज्जाक की छाती पर कूदने की धुन मे दोनों कोहनियो को बाजुओ से सटाकर अपना वजन तौलने लगा। अपने भारी-भरकम वजन के साथ अगर वह कापेन्द्यूखिन की छाती पर कूद पड़ता तो उसका कचूमर ही निकल जाता। लेकिन तभी गरम टोपी और कोट पहने लारिओनिच उसके बराबर में आकर खड़ा हो गया। सितानोव को उसने उंगली के इशारे से बस मे किया, और शान्त तथा दो टूक स्वर में अन्य सब से बोला:

"इसे ड्योढ़ी मे ले जाकर डाल दो। नशा उतरने पर ठीक हो जाएगा..."

कारीगर कज्ज़ाक को खींचकर वर्कशाप से बाहर ले गए, फिर मेज-कुर्सियों को ठीक ठिकाने से लगाया और अपने काम मे जुट गए। साथ ही वे टीका-टिप्पणी भी करते जाते—कापेन्द्यूखिन की ताकत के बारे मे। उन्होंने भविष्यवाणी की कि एक न एक दिन वह किसी से लड़ता हुआ मारा जाएगा।

"उसे मारना हसी-खेल नहीं है," सितानोव ने बहुत ही शान्त स्वर मे गहरे जानकार की भांति अपनी राय ज़ाहिर की।

मैने लारिओनिच की ओर देखा और अचरज से भरा यह पता लगाने की कोशिश करने लगा कि उसमें ऐसी क्या बात है जो सब लोग, अपने जगलीपन के बावजूद उसका इतना कहना मानते हैं।

वह हरेक को बिना किसी भेद-भाव के काम करने के गुर सिखाता। पुराने से पुराने और दक्ष कारीगर भी उससे सलाह लेते। कापेन्द्यूखिन को तैयार करने पर वह अन्य सबसे ज्यादा समय और शब्द खर्च करता।

"चित्रकार—तुम चित्रकार हो कापेन्द्यूखिन। और अच्छा चित्रकार वही है जिसके चित्रों में जान हो, इटली के चित्रकारों की भाति। सुहावने रगों का सामजस्य तेल-चित्रो की जान है, लेकिन देखो न, तुमने यहां निरा सफ़ेदा पोतकर रख दिया है। यही वजह है जो माता मरियम की आखे इतनी बेजान और ठिठुरी सी मालूम होती है। इसके गाल गोल है, उनमें लाली भी खूब है, लेकिन आंखों का उनसे कोई मेल नहीं है। फिर आखे यथास्थान भी नहीं है—एक नाक के इतनी नजदीक है और दूसरी कनपटी की ओर भागी जा रही है। नतीजा यह कि जिस चेहरे पर दैवी आभा, निश्छलता और पवित्रता झलकनी चाहिए, उससे अब मक्कारी और दुनियादारी टपकती है। असल बात यह है कि तुम मन लगाकर काम नहीं करते, कापेन्द्यूखिन।"

कज्ज़ाक पहले तो मुंह सिकोड़े सुनता, स्त्रियो जैसी अपनी सुन्दर आंखों से बेशर्मी के साथ मुसकराता और फिर अपनी सुहावनी आवाज मे जो नशे के कारण कुछ भारी पड़ गई थी, कहता:

"तुम भी क्या बात करते हो, इवान लारिओनिच! भला यह भी

कोई काम है? भगवान ने मुझ संगीत के लिए पैदा किया था लेकिन मुझे मठ में फंसा दिया।

"मेहनत और लगन से हर काम में दक्ष बना जा सकता है।"

"नहीं, मै हूं किस खेत की मूली? होता मै कोचवान और होती मेरे पास हवा से बातें करनेवाले घोड़े जुती ओइका... आह. "

और अपना टेंटुआ बाहर निकालकर हड़कम्पी स्वर में गाने लगता।

> ओइका मेरी रंग-बिरंगी
> सरपट दौड़ी जाये रे
> सजनी मेरी सोलह बरस की
> सौ-सौ बल खाये रे!

इवान लारिओलिच उसकी ओर देखकर बेबस मुसकराता, अपनी धूसर नाक पर चश्मे को ठीक से बैठाता और चुपचाप वहां से खिसक जाता। फिर, एक साथ मिलकर, बीसों आवाजें गीत के बोल उठाती और एक बलशाली धारा का रूप धारण कर समूची वर्कशाप को ऊपर हवा मे उठा लेती। गीत के स्वरों के साथ वर्कशाप भी हिंडोले की भांति झूलने लगती :

> ओइका मेरी रंग बिरंगी
> जोबन की बहार रे...

पाश्का ओदिन्त्सोव, जो अभी काम सीख रहा था, अंडों की जर्दी निकालना बंद कर देता, और दोनों हाथों में अंडे के छिलके थामे, बढ़िया तेज आवाज में कोरस की पंक्तियां पकड़ता।

गीत की ध्वनि नशा बनकर सबपर छा जाती, अन्य किसी बात की उन्हें सुध न रहती। एकसाथ मिलकर सबके हृदय धड़कते, एक ही रागिनी मे सब बहते और कनखियों से उस कज्जाक की ओर देखते जो गाते समय वर्कशाप का एकछत्र स्वामी होता। वह सभी को एक सिरे से, मंत्र मुग्ध कर लेता और वे एकटक उसके जोर-जोर से झूलते हाथ की हर हरकत का अनुसरण करते। उसकी आंखें इस तरह लहरातीं मानो वह अभी हवा मे उड़ने लगेगा। मुझे पूरा विश्वास था कि अगर वह एकाएक अपने गीत को रोककर बीच में ही चिल्ला उठता, "आओ साथियो, वर्कशाप की चिन्दियां उड़ा दें!" तो सब के सब, सय उन कारीगरों के जो अत्यन्त

और भले थे एकाध मिनट के भीतर समची वर्कशाप को मलबे का एक ढेर बनाकर रख देते।

वह विरले ही गाता, लेकिन उसके बनेले गीतों में सदा इतनी अदम्य शक्ति होती कि उनके सामने कोई टिक न पाता, सभी को वे अपने साथ बहा ले जाते। चाहे हृदय कितना ही बुझा हुआ क्यों न हो, उसके गीत की आवाज़ सुन सभी चेतन हो जाते, एक अजीब जोश और उछाह उनमें लहराने लगता, और उनकी बिखरी हुई ताकतें एक स्वर-लय में गुंथकर किसी बलशाली साज़ का रूप धारण कर लेतीं।

गीतों को सुनकर मुझे गायक और लोगों को मंत्र मुग्ध करने की उसकी अद्‌भुत शक्ति से जोरदार ईर्ष्या होती। कम्पनशील आतंक का मुझमें संचार होता, इस हद तक मैं उमड़ता-घुमड़ता कि हृदय दुखने लगता, खूब खुलकर रोने और गाते हुए लोगों के सामने अपना हृदय चीरकर रख देने के लिए जी ललक उठता:

"ओह, तुम सब मुझे कितने प्यारे लगते हो!"

तपेदिक का मरीज़ दावीदोव भी, जिसका रंग पीला पड़ गया था और जिसके शरीर पर बस ही बाल नज़र आते थे अपना मुंह खोलता और वह अजीब सा, अंडा फ़ोड़कर अभी-अभी बाहर निकले कौवे की तरह लगने लगता।

केवल कज़्ज़ाक ही अकेला ऐसा था जिसके गीत इतने आह्लादपूर्ण, इतने तूफ़ानी होते थे। अन्यथा कारीगर, आम तौर से, उदासी में डूबे और बोझिल गीत गाते थे, जैसे—"पाप पंक में लथपथ दुनिया", "आह, घेर लिया जंगल ने, छोटे जंगल ने", अथवा अलेक्सान्द्र प्रथम की मृत्यु का वर्णन करनेवाला गीत—"फिर आया वह, हमारा अलेक्सान्द्र, और डाली नज़र उसने अपने वीर सैनिकों पर"।

कभी-कभी वर्कशाप के सब से अच्छे चेहरासाज़ जिखरेव के कहने से वे गिरजे के गीत भी गाते, लेकिन उन्हें गाने में वे भूले-भटके ही सफल हो पाते। जिखरेव हमेशा ऐसी धुनों और रागिनियों के पीछे सिर धुनता जिन्हें सिवा उसके और कोई न समझ पाता। सभी के गाने में वह आड़े आता था।

वह एक दुबला-पतला आदमी था। आयु पैंतालीस के करीब, काले, घुंघराले बालों के अर्द्धचन्द्र से घिरी चांद, भारी और काली भौंहें जो

मूछों की भ्रांति मालूम होती थी। ताम्बे से तपे और बढ़िया नाक-नक्श वाले उसके गैर-रूसी चेहरे पर घनी और नुकीली दाढ़ी खूब फबती थी। लेकिन यह फबन उसकी दाढ़ी में ही थी, तोते जैसी नाक के नीचे उग आई मूंछों में नहीं जो उसकी भौंहों के सामने बिल्कुल फालतू मालूम होती थीं। उसकी नीली आंखें एक-दूसरे से भिन्न थीं—बाईं आंख दाहिनी से बड़ी नजर आती थी।

"पाश्का!" मेरी ही तरह काम सीखनेवाले साथी से ऊंचे स्वर में वह कहता। "जरा शुरू तो करो 'हे दयामय दीनबंधु!' देखो, सब चुप होकर सुनो!"

कमीज पर गमछे से हाथ पोंछते हुए पाश्का शुरू करता:

"हे दयामय..."

"दी-ई-ई-ई-न ब-अ-अ-अ-न्धु..." अनेक आवाजें एक साथ मिलकर 'दीन बन्धु' को ऊपर उठातीं और विचलित जिखरेव चिल्लाना शुरू करता:

"सितानोव! अपनी आवाज नीची करो जिससे मालूम हो कि आत्मा की गहराई में से वह निकल रही है..."

सितानोव ऐसी आवाज में 'हे दयामय' की खिचड़ी पका रहा था मानो बैरल को उलटकर वह उसे ढपाढप बजा रहा हो:

"हम हैं दास तिहारे..."

"छिः यह भी कोई ढंग है! ऐसी आवाज निकलनी चाहिए कि धरती कांपने लगे, दरवाजे और खिड़कियां अपने आप खुल जायें!"

जिखरेव का रोम-रोम किसी रहस्यमय आवेश में फड़कने लगता, उसकी अजीब-गरीब मूंछनुमा भौंहें उठतीं और गिरतीं, उसकी आवाज लड़खड़ाने लगती, और उसकी उंगलियां किसी अदृश्य साज के तारों को झनझनाती मालूम होतीं।

"हम हैं दास तिहारे—समझे?" भेद भरे अन्दाज में वह कहता। "यह आत्मा की आवाज होनी चाहिए, तन, मन को बींधकर निकलती हुई: 'हम हैं दास तिहारे!' भगवान तुम्हारा भला करे, क्या तुम इतना भी नहीं समझते?"

"यह हम से कभी नहीं बनता, आप को तो मालूम ही है।" सितानोव बड़े अदब के साथ कहता।

तो जाने दो

जिखरेव खीजकर कहता और अपने काम मे जुट जाता। वह हम सबसे अच्छा कारीगर था। वह हर तर्ज के चेहरे बना सकता था – यूनानी, फ्रांसीसी या इतालवी। देव-प्रतिमा का आर्डर मजूर करते समय लारिओनिच हमेशा उससे सलाह लेता। मूल देव-प्रतिमाओ का वह बहुत बड़ा पारखी था। चमत्कार दिखानेवाली बहुमूल्य देव-प्रतिमाओं – जैसे फेओदोरोव, स्मोलेन्स्क और कज़ान मरियमों की सभी कीमती नकलें उसके हाथो से गुजरती। लेकिन, मूल प्रतिमाओं का ध्यान से अध्ययन करते हुए, वह जोरों से झुंझला उठता:

"मूल क्या हैं, मानो खूंटे है जिनमें हम बंधे है। देखो न, जरा भी इधर-उधर नहीं हो सकते!.."

वर्कशाप में उसका दर्जा सबसे बड़ा था। फिर भी, अन्य सब की भांति, वह किसी पर रोब नही गांठता और काम सीखनेवालों के साथ – पावेल और मेरे साथ – बड़ी नरमी से पेश आता। ले-देकर वही एक ऐसा था जो हमे अपना हुनर सिखाने मे आनाकानी नहीं करता था।

वह एक अच्छी-खासी पहेली था। कुल मिलाकर वह कोई मौजी आदमी नहीं था। कभी-कभी पूरे सात दिन तक वह मुंह न खोलता और गूंगे-बहरे की भांति काम में जुटा रहता। वह नजर उठाकर हमारी ओर देखता भी तो इस तरह मानो कही दूर से किसी अजीब और अनजानी चीज़ को पहली वार देख रहा हो। यों गाने का वह बहुत शौक़ीन था, लेकिन ऐसे दिनों मे न वह खुद गाता, न दूसरो के गाने की आवाज़ उसके कानों को छूती प्रतीत होती। एक-एक कर सभी उसपर अपनी नजर डालते और कनखियों का आदान-प्रदान करते। लेकिन वह था कि आड़े रखे तख्ते पर झुका रहता, तख्ते का एक सिरा उसके घुटनों पर होता और बिचला हिस्सा मेज़ के किनारे से टिका होता। वह अपने काम में डूबा रहता, एक क्षण के लिए भी वह अपना सिर न उठाता और जान खपाकर महीन ब्रुश से प्रतिमा का नाक-नक्शा उभारता। काम करते समय खुद उसका चेहरा भी उतना ही अजीब और अजनबी मालूम होता जितना कि प्रतिमा का।

सहसा, बहुत ही दो टूक और आहत से स्वर में, वह बड़बड़ा उठता:

प्रव्लेचा – क्या मतलब है इसका? प्राचीन स्लाव भाषा में 'तेच्र' का अर्थ है 'जाना' और 'प्रेद' का 'आगे', तो प्रेद्लेचा का अर्थ हुआ वह जो आगे जाए,–अर्थात आगे जानेवाला, या पूर्वगामी, बस और कुछ नहीं!.."

उसकी बड़बड़ाहट सुन सब चुपचाप हंसते, छिपी हुई नजरों से उसे अपनी हंसी का निशाना बनाते और उसके मुंह से निकले अजीब शब्द खामोशी में गूंजते रहते:

"और उसे भेड़ की खाल के लबादे में नहीं, बल्कि परों के साथ बनाना चाहिए..."

तभी किसी कोने में से आवाज आती:

"क्या हवा से बातें कर रहे हो?"

लेकिन वह कुछ जवाब न देता, या तो वह सुनता नहीं या सुनकर भी अनसुना कर देता। उसके बाद प्रतीक्षा भरी निस्तब्धता में उसके शब्द गूंजने लगते:

"उनकी जीवनियां जाननी चाहिए, लेकिन उन पवित्र पुस्तकों को क्या कोई समझता है? हम क्या जानते हैं? पर कटे पक्षी की भांति हमारा जीवन बीतता है... चेतनाविहीन, आत्माविहीन... मूल कृतियों के नमूने ही हमारे पास हैं, लेकिन हृदय नहीं..."

इस तरह बड़बड़ाकर जब वह अपने विचार प्रकट करता तो सितानोव को छोड़ अन्य सब के होठों पर मुसकराहट दौड़ जाती और उनमें से कोई एक, अदबदाकर फुसफुसाता:

"देख लेना, शनिवार के दिन यह शराब के प्याले में गड़गच्च नजर आएगा..."

लम्बा और कड़ियल सितानोव जो बाईस साल का बछेरा था, अपना गोल-मटोल और अभी तक दाढ़ी-मूंछ, बल्कि भौंहों तक से अछूता चेहरा उठाकर उदास और सोच में डूबी नजर से कोने की ओर देखता।

मुझे याद है कि एक बार, फ़ेओदोरोव मरियम की प्रतिलिपि तैयार करने के बाद उसे मेज पर रखते समय, जिखरेव बुरी तरह विचलित हो उठा था और जोरों से उसने कहा था:

"काम सम्पन्न हुआ, जगत जननी! मां, तू अतल कटोरे समान है, नदी-जगत के आंसू अब इसमें बहेंगे..."

फिर, जो कोट हाथ लगा उसी को अपने कंधे पर डाल वह बाहर निकल गया—शराबखाने की ओर। नौजवान कारीगर हंसते हुए सीटियां बजाने लगे, बूढ़ों ने ईर्ष्या से लम्बी सांसें भरी लेकिन सितानोव चुपचाप उठकर देव-प्रतिमा के पास पहुंचा, ध्यान से उसे देखा, फिर बोला:

"जरूर नशे में गड़बड़ होगा, अपने काम से बिछुड़ने पर दिल जो दुखता है। हर कोई नहीं समझ सकता इस दर्द को..."

जिखरेव हमेशा शनिवार के दिन अपना रंगपानी शुरू करता। और उसका यह रंगपानी, नशे के आदी अन्य कारीगरों के खुल खेलने जैसा नहीं, बल्कि असाधारण होता। उसके रंगपानी की शुरुआत इस तरह होती: सुबह वह एक पुर्जा लिखता और उसे पावेल के हाथ कहीं रवाना कर देता, उसके बाद ठीक भोजन के समय से कुछ पहले लारिओनिच से कहता:

"आज मुझे हम्माम जाना है।"

"कब तक लौटोगे?"

"सो तो..."

"अच्छी बात है। लेकिन मंगल तक जरूर आ जाना!"

जिखरेव अपनी गंजी खोपड़ी हिलाकर हामी भरता और उसकी भौंहें थिरकने लगतीं।

हम्माम से लौटने के बाद सज-सजाकर वह पूरा बांका बन जाता—कलफचढ़ी बढ़िया कमीज़, गले में रूमाल और रेशमी जाकेट की जेब से चांदी की लम्बी चेन लटकती हुई। फिर, चलते समय, पावेल और मुझे डांट पिलाता:

"देखो, आज रात वर्कशाप की खूब मेहनत से सफ़ाई करना। लम्बी मेज़ को रगड़-रगड़कर धोना!"

देखते न देखते वर्कशाप में छुट्टी का समा छा जाता। कारीगर अपनी मेज़ों को झाड़-पोंछकर कायदे से लगाते फिर हम्माम जाकर गुसल करते और जल्दी से सांझ का भोजन पेट में डालते। भोजन के बाद बीयर, मदिरा और खाना लेकर जिखरेव प्रकट होता। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री आती, आकार-प्रकार और डील-डौल में पूरी बावनगजी, साढ़े छः फुट ऊंची। जब वह आती तो उसके अनुपात में हमारी सारी कुर्सियां और स्टूल खिलौनों की भांति मालूम होते, यहां तक कि लम्बा सितानोव भी

उसक सामने निरा बच्चा सा दिखाई देता। उसकी काठी मजबत और सुघड़ थी, छातियो को छोड़कर जिनका बतुका उभार उसकी ठोड़ी को छूता था। उसकी चाल-ढाल भोंडी और ढीली-ढाली थी। आयु हालांकि चालीस की सीमा लांघ चुकी थी, फिर भी घोड़े जैसी बड़ी-बड़ी आंखो वाले उसके भावशून्य चेहरे पर अभी तक चिकनाई और ताजगी मौजूद थी, और उसका छोटा सा मुंह सस्ती सी गुड़िया की भांति रंगा-चुना था। होठो पर मुसकराहट लाकर वह सब से अपना चौड़ा और गर्म हाथ मिलाती, और बेमतलब की बाते मुंह से निकालती:

"मजे में तो हो न? आज बहुत ठंड है। ओह, तुम्हारा कमरा कितना गंधाता है! रंग-रोगन की गंध मालूम होती है। और सब तो ठीक-ठाक है न?"

यों देखने में वह अच्छी लगती – चौड़े पाट में बहनेवाली नदी की भांति सबल और शान्त, लेकिन जब वह बोलती तो उबकाई आने लगती। हमेशा बेरस और बेकार की बाते उसके मुंह से निकलती। कुछ कहने से पहले वह अपने गुलाबी गालो को फुलाती जिससे उसका लाल चेहरा और भी गोल-मटोल हो जाता।

नौजवान खिलखिलाते और एक-दूसरे से कानाफूसी करते:

"औरत हो तो ऐसी, – जाने किस सांचे में ढालकर खुदा ने इसे तैयार किया है!"

"किसी गिरजे की अच्छी-खासी मीनार मालूम होती है!"

होंठों को भींचकर और हाथों को छातियों के नीचे जोड़कर वह समोवार के नजदीक मेज़ के पास बैठ जाती, और अपनी घोड़े जैसी भली आंखों से एक-एक करके सबपर नजर डालती।

सभी उसका मान करते, और नौजवानो के हृदय उसे देखकर सहमे-सहमे से हो जाते। ललचाई नजरों से वे उसके भीमाकार शरीर की टोह लेते, लेकिन उसकी सर्वव्यापी नजर की लपेट में आते ही उनके गाल लाल हो उठते और वे अपनी गरदन झुका लेते। जिखरेव भी उसके साथ अदब से पेश आता, आप कहकर कायदे से उसे सम्बोधित करता और मेज से उठकर जब कोई चीज उसे देता तो झुककर दोहरा हो जाता।

"ओह, इतनी तक़लीफ़ क्यों करते है?" वह अलस भाव से मीठे अन्दाज में कहती। "सच, आप मेरे लिए बहुत परेशान होते है!"

उसके हर अन्दाज़ से फ़ुरसत का भाव टपकता। उसके हाथ केवल कोहनियों तक हरकत करते। कोहनियों से ऊपर का हिस्सा वह दोनों बाज़ू कसकर सटाए रहती। उसके बदन से अनाबघर से अभी-अभी निकली ताज़ी पाव रोटी की तेज़ गंध आती।

बूढ़ा गोगोलेव उसे देखकर उलटा हो जाता और उसकी सुन्दरता की तारीफ़ करता कभी न अघाता मानो किसी पादरी के मुंह से धर्म-पाठ हो रहा हो जिसे वह, गरदन को श्रद्धाभाव से झुकाए सुनती रहती। जब कभी वह शब्दों में उलझ जाता तो उसकी इस कमी को वह खुद पूरा कर देती:

"अरे नहीं, कंवारेपन मे तो हम इतनी सुन्दर नही थी, यह तो हम बाद मे फले-फूले। तीस बरस की होते न होते तो हम इतनी प्यारी हो गयीं कि बड़े-बड़े घ ों वाले भी हमारी खोज खबर लेते थे। और एक नवाब साहब ने तो हमको दो घोड़ों वाली गाड़ी देने का वायदा किया था..."

कापेन्द्यूखिन जो अब तक नशे में धुत्त और हाल-बेहाल हो चुका होता था, तीखी नज़र से उसे देखते हुए पूछता:

"किस लिए?"

"यह भी कोई बताने की बात है?" वह कहती। "निश्चय ही हमारे प्रेम के लिए!"

कापेन्द्यूखिन कुछ सकपका जाता। भुनभुनाते हुए कहता:

"प्रेम... प्रेम... कैसा प्रेम भला?"

"बहुत बनो नहीं," सहज भाव से वह जवाब देती, "भला यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारे जैसे खूबसूरत आदमी से प्रेम की बारहखड़ी छिपी रहे?"

वर्कशाप कहकहों की आवाज़ से डोलने लगती और सितानोव कापेन्द्यूखिन के कान में बुदबुदाता:

"निरी मूर्ख है या उससे भी बदतर। ऐसी औरत से प्रेम तो वही करेगा, जो ऊब से मरा जा रहा हो, सभी यह जानते है..."

नशे से उसका चेहरा फक पड़ गया था, कनपटी पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं और उसकी चतुर-चपल आंखो से आग की लपटें मानो

खतरे का सिगनल दे रहा थी। अपनी भोंडी नाक को घुमाते और पनीली आंखों को उंगलियों से पोंछते हुए वृद्ध गोगोलेव ने पूछा:

"कितने बच्चे हुए है तेरे?"

"बच्चा हमारे एक हुआ था.."

एक लैम्प मेज के ऊपर लटका था और दूसरा अलावघर के उधर कोने में। उनकी धीमी रोशनी उन्हीं तक सीमित रहती और वर्कशाप के कोनों में गहरा अंधेरा छाया रहता जिनमें चेहरे-मोहरे विहीन आकृतियां नजर आती। हाथों और चेहरों की जगह अंधकार के सूने धब्बों को देखकर भूत-प्रेतों की दुनिया का गुमान होता और यह भावना और भी जोरों से सिर उभारती कि सन्तों के शरीर, इस तहखाने में अपने रंगीन कपड़ों को छोड़कर, किसी रहस्यमय ढंग से निकल भागे है। कांच की गेंदें ऊपर खींचकर छत में लगे हुकों से अटका दी गयी थीं और वे, धुएं के बादलों के बीच, नीली-नीली सी चमक रही थीं।

जिखरेव को जैसे चैन नहीं था। सबकी खातिर-तवाज़ा करता वह मेज के चारों ओर मंडरा रहा था। उसकी गंजी खोपड़ी कभी एक की ओर झुकती तो कभी दूसरे की ओर। उसकी पतली उंगलियां बराबर हरकत कर रही थीं। वह अब और भी दुबला हो गया था और उसकी तोते सी नाक और भी नुकीली हो गई थी। प्रकाश के सामने से आड़ा होकर जब वह गुजरता तो उसके गाल पर नाक की काली लम्बी छाया फैल जाती।

गूंजती हुई आवाज में वह कहता:

"साथियो, खूब छककर खाओ और पियो!"

और स्त्री मालकिन की भांति गुनगुनाती:

"आपने भी हद कर दी, पड़ोसी! इतना तकल्लुफ़ भी किस काम का? हरेक के पास उसके अपने हाथ और उसका अपना पेट मौजूद है। जिसमें जितनी समात है, उतना ही तो वह खाएगा!"

"परवाह न करो, साथियो! खूब जी भरकर खाओ!" जिखरेव विचलित स्वर में चिल्लाता। "हम सब उसी एक खुदा के बन्दे है। आओ, मिलकर उसका गुण-गान करें: 'हे दयामय...'"

लेकिन "हे दयामय" का स्वर आगे न बढ़ पाता। सब खाने और वोद्का के नशे में ढीले पड़ गये थे। कापेन्द्यूखिन ने अपना एकार्डियन संभाला और नौजवान वीक्तर सलाऊतीन, जो कौवे की भांति काला

और गम्भीर था, तम्बूरिन से गहरी घन्नाटेदार आवाज़ निकालने लगा। जो कसर रह गयी उसे तम्बूरिन के इर्द-गिर्द पड़े मंजीरों की आह्लादपूर्ण ध्वनि ने पूरा कर दिया।

"रूसी नाच हो जाय!" ज़िबरेव ने आदेश दिया। फिर बोला, "पड़ोसिन! अब आप भी उठने की कृपा कीजिए!"

"ओह!" स्त्री ने एक लम्बी सी सांस ली और अलस भाव से उठते हुए कहा, "आप भी कितना तकल्लुफ़ करते हैं!"

उठकर वह कमरे के बीचोंबीच जाकर ठोस घंटघर की भांति वहां खड़ी हो गयी। किशमिशी रंग का चौड़ा घाघरा, पीले रंग की महीन चोली वह पहने थी और सिर पर लाल रंग का रूमाल बांधे थी।

एकार्डियन की सुरीली आवाज़ आती—छोटी-छोटी घंटियों की टुनटुन और घुंघरुओं की झुनझुन; तम्बूरिन भारी तथा बेरस उसांसे छोड़ती जो सुनने में बड़ी बुरी मालूम होतीं मानो कोई पागल आदमी सुबकियां और आहें भरता हुआ दीवार से सिर टकरा रहा हो।

ज़िबरेव नाचना नहीं जानता था। न उसे ताल का कुछ ज्ञान था, न सुर का। बस योंही अपने पांव उठाता, चमचमाते जूतों की एड़ियों को फ़र्श पर ठकठकाता, छोटे डग भरकर बकरी की भांति इधर से उधर कूदता। ऐसा मालूम होता मानो उसने किसी दूसरे के पांव लगा लिए हों या उसके पांवों ने शरीर का साथ न देने का इरादा कर लिया हो। मकड़ी के जाले में फंसी मक्खी या मछियारे के जाल में फंसी मछली की भांति बहुत ही भद्दे ढंग से उसका बदन बल खाता, तुड़ता और मुड़ता। लेकिन सभी, वे लोग भी जो नशे में धुत थे, बड़े ध्यान से उसकी इस उछल-कूद का अनुसरण करते। उनकी आंखें एकटक उसके चेहरे और हाथों पर जमी रहतीं। ज़िबरेव के चेहरे का भाव इतनी तेज़ी से बदलता कि देखकर अचरज होता: कभी कोमल और लजीला, कभी गर्व से भरा, कभी तेज़ और तीखा, कभी चिंगारियां सी छोड़ता। सहसा ऐसा मालूम होता जैसे किसी चीज़ ने उसे आहत कर दिया हो—दर्द से वह चीख उठता और अपनी आंखें बंद कर लेता। जब वह आंखें खोलता तो गहरी उदासी में डूबा दिखाई देता। वह अपनी मुट्ठियां भींच लेता और चुपके-चुपके स्त्री के पास पहुंचता। फिर, फ़र्श पर पांव पटककर घुटनों के बल बैठते हुए वह बाहें फैलाता और भौंहें उठाकर प्रेम में पगी मुसकराहट का

उसे अर्घ्य चढ़ाता गरदन झुकाकर वह उसकी ओर देखती मुसकराकर उसे कृतार्थ करती, और अपने शांत अंदाज़ में उसे चेताती.

"नहीं, आप थक जाएंगे!"

वह मीठी मुस्कान के साथ अपनी आंखें बन्द करने का प्रयत्न करती, लेकिन उसकी सिक्काशाही आंखें इतनी बड़ी थीं कि बंद होने से इनकार कर देतीं, और इसके फलस्वरूप पड़ी झुर्रियां उसके चेहरे को केवल बदनुमा बनातीं।

नाचने के मामले में वह भी काफ़ी कच्ची थी। उसका भारी-भरकम शरीर केवल धीरे-धीरे झूमता और बिना आवाज किए इधर से उधर थिरकना जानता था। उसके बाएं हाथ में एक रूमाल था जिसे वह अनमने भाव से हिलाती। उसका दाहिना हाथ कूल्हे से चिपका रहता और ऐसा मालूम होता मानो वह कोई भीमाकार जग हो।

और जिखरेव इस बुत-बरोला स्त्री के चारों ओर मंडराता रहता। उसके चेहरे पर विरोधी भाव आते और एक-दूसरे को काटते हुए विलीन हो जाते। ऐसा मालूम होता मानो वह अपने भीतर एक साथ दस आदमी छिपाए हो और उनमें से प्रत्येक अपना एक अलग स्वभाव रखता हो: एक संकोची और छुईमुई की भांति लजीला, दूसरा एकदम जंगली और डरावना, तीसरा खुद डरा और सहमा हुआ, ऐसा मालूम होता मानो इस घिनौनी हिडिम्बा के चंगुल से निकल भागने के लिए हाथ-पांव पटकते हुए चिंचिया रहा हो। सहसा एक दूसरा ही चेहरा नजर आता—घायल कुत्ते का चेहरा जिसके दांत निकले थे और जिसका बदन रह-रहकर बल खा रहा था। यह बदरंग और भद्दा नाच देखकर मेरा हृदय भारी हो गया और सैनिकों, बावर्चिनों, धोबिनों तथा कुत्ते-कुत्तियों के निर्हंग घिनौनेपन की मुझे याद आयी।

सीदोरोव के धीमे से शब्द मेरे दिमाग़ में घूमते:

"इस मामले में सभी झूठ बोलते है। ऐसा है यह मामला, सभी को शर्म मालूम होती है न? असलियत यह है कि कोई किसी से प्रेम नहीं करता, केवल मजे के लिए यह सब करते है!"

मेरे मन में यह बात नहीं जमती कि 'ऐसी चीजों के बारे में सभी झूठा ढोंग रचते है'। क्या रानी मार्गो भी झूठा ढोंग रचती थी? और जिख़रेव? निश्चय ही उसे ढोंगियों की पांत में नहीं रखा जा सकता। और

मुझे यह भी मालूम था कि सितानोव राह चलती किसी हरजाई से प्रेम करता था और इस प्रेम के बदले मे वह एक शर्मनाक बीमारी का शिकार भी हो गया था। उसके साथियो ने सलाह दी कि वह उस हरजाई को मार-पीटकर ठिकाने लगा दे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, उलटे एक कमरा किराये पर लेकर उसे दे दिया, डाक्टर से उसका इलाज कराया, और उसके बारे में बातें करते समय वह हमेशा भारी लगाव और कोमलता का परिचय देता था।

लम्बे-चौड़े डील-डौल वाली स्त्री अभी भी मटक रही थी, और अपने हाथ मे लिए रूमाल को हिला रही थी। उसके चेहरे पर वही एक मरियल मुस्कान जड़ी थी। जिखरेव भी उसके इर्द-गिर्द उछल रहा था मानो उसका शरीर मरोड खा रहा हो। उन्हें देखकर मुझे खयाल आया: क्या वह हौवा भी, जिसने खुद खुदा तक को चकमा दिया था इस घोड़ी से मिलती-जुलती थी? मेरा हृदय घृणा से भर गया।

मुखविहीन देव-प्रतिमाएं काली दीवारों पर से ताकती रही थी, खिड़कियो से बाहर अंधेरी रात घिरती आ रही थी और वर्कशाप के ऊमस भरे कमरों के लैम्प अंधेरे को दूर करने के बजाय उसे और भी घना बना रहे थे। पांवो की थपथपाहट और आवाजों की भुनभुनाहट के बीच हाथ-मुंह धोने के ताम्बे के बरतन के नीचे रखी बाल्टी मे पानी के गिरने की टपाटप आवाज भी सुनाई दे रही थी।

पुस्तको मे चित्रित जीवन से यह सब कितना भिन्न था – भयानक रूप से भिन्न! शीघ्र ही सब ऊबने लगे। तभी कापेन्द्यूखिन ने एकार्डियन को सलाऊतीन के हाथों में पटका और चिल्लाकर बोला:

"हो जाओ तैयार साथियो, अब अगिया बैताली नाच होगा!"

वह वान्का त्सिगानोक की तरह नाचता था, ऐसा मालूम होता मानो हवा में उड़ रहा हो। पावेल ओदिन्त्सोव और सोरोकिन के पांव की थापों ने भी तेजी पकडी। यहां तक कि तपेदिक का मारा दावीदोव भी बीच में आ कूदा। धूल और धुएं, वोद्का और धुएं मे पके सोसेजों की कमाये हुए चमड़े जैसी तीखी गंध के मारे खांसते और खखारते हुए, वह नाच रहा था।

नाचने, गाने और हा-हा, ही-ही का यह सिलसिला चलता रहा। ऐसा मालूम होता मानो वे जीवन की इस घड़ी को आह्लादपूर्ण बनाने पर

तुले हों और एक-दूसरे को उकसाते हुए जिन्दादिली, चपलता और सहनशक्ति की कसौटी पर कस रहे हों।

सितानोव, नशे में धुत्त, एक-एक के पास जाकर पूछता:

"जरा बताओ तो सही, इस घोड़ी के प्रेम में वह कैसे फंस गया?"

लगता कि वह अभी रो पड़ेगा।

लारिओनिच अपने कड़ियल कंधों को बिचकाता। जवाब में कहता: "क्यों, औरतों सी औरत है, तुझे भला क्या चाहिये?"

और जिनके बारे में वे बातें कर रहे थे, इस बीच न जाने कब वे दोनों गायब हो गए। और मैं जानता था कि जिखरेव दो-तीन दिन से पहले नहीं लौटेगा। लौटने पर हम्माम में जाकर पहले वह गुसल करेगा और फिर करीब दो सप्ताह तक अपने कोने में जमकर बैठ जाएगा। न किसी से बोलेगा, न चलेगा, बस चुपचाप और अकेला रोब के साथ अपने काम में जुटा रहेगा।

"वे चले गये?" उदासी में डूबी अपनी भूरी-नीली आंखों से समूचे कमरे को छानते हुए सितानोव ने पूछा। उसका चेहरा अभी से बूढ़ा हो गया था, और वह जरा भी खूबसूरत नहीं मालूम होता था, लेकिन उसकी आंखें बहुत ही स्वच्छ और भली थीं।

वह मेरे साथ मित्रता से पेश आता। इसका कारण कविताओं से भरी मेरी कापी थी। वह भगवान में विश्वास नहीं करता था, और सच तो यह है कि एक लारिओनिच को छोड़ यहां ऐसा और कोई नहीं था जिसके बारे में यह कहा जा सके कि वह भगवान में विश्वास करता है, भगवान के साथ उसकी लौ लगी है। भगवान के बारे में भी वे सब उसी तरह ताने-तिश्नों के लहजे में बातें करते जैसे कि नौकर अपने मालिकों के बारे में बातें करते हैं। लेकिन जब वे दोपहर या सांझ का भोजन करने बैठते तो सलीब का चिन्ह् बनाना न भूलते, और रात को सोने से पहले बिला नागा भगवान का नाम लेते। रविवार के दिन, सब के सब, गिरजे जाते।

सितानोव इनमें से एक भी बात नहीं करता था और इसी लिए सब उसे नास्तिक कहते थे।

"भगवान जैसी कोई चीज नहीं है," वह अपनी बात पर बल देते हुए कहता।

"भगवान नहीं है तो यह सारी दुनिया पैदा कैसे हुई?"

"मुझे नहीं मालूम

एक दिन मैंने उससे पूछा.

"यह तुम कैसे कहते हो कि भगवान नही है?"

"देख न, भगवान का मतलब है ऊंचाई," अपनी लम्बी बांह को सिर से ऊंचा उठाते हुए उसने कहा और फिर फ़र्श की ओर इशारा करते हुए बोला:

"और इंसान का मतलब है निचाई। क्यों, ठीक है न? लेकिन बाइबल में लिखा है कि भगवान ने इंसान को अपनी छवि के अनुरूप बनाया है अब तू ही बता, गोगोलेव में किसकी छवि दिखाई देती है?"

मुझसे कोई जवाब देते न बना। गंदा और पियक्कड़ गोगोलेव, इतना बूढ़ा हो जाने के बाद भी, हस्तलाघव की आदत नही छोड़ता था। नानी की बहन, येर्मोखिन और व्यात्का निवासी वह सनिक—एक-एक कर सभी मेरी आंखों के सामने घूम गए। इन लोगों में भगवान की छवि का भला कौन सा अंश देखा जा सकता था?

"सभी इंसान सूअर है!" सितानोव कहता और फिर तुरंत ही मुझे सभालता:

"लेकिन चिन्ता मत कर, मक्सीमिच, अच्छे लोग हैं, जरूर है!"

सितानोव के साथ मुझे जरा भी परेशानी न मालूम होती। जब कोई ऐसी बात आती जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता तो खुले हृदय से उसे स्वीकार करता।

"मै नही जानता," वह कहता, "मैने कभी इस बारे मे नही सोचा।"

यह भी उसकी एक असाधारण विशेषता थी। जिन लोगो से मैं अब तक मिल चुका था, वे सब हर चीज की जानकारी रखते थे, हर चीज के बारे में वे राय देते थे।

उसके पास भी एक कापी थी जिसमे हृदय को मथनेवाली अत्यन्त प्रभावशील कविताओ के साथ-साथ ऐसी तुकबंदियां भी दर्ज थी जिन्हे पढकर गाल जलने लगते और आंखें शर्म से नीची हो जातीं। यह देखकर मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। जब मै उससे पुश्किन के बारे में बाते करता तो वह "गाब्रीलियादा" की ओर इशारा करता जिसे उसने अपनी कापी मे उतार रखा था...

"पुश्किन? हल्का-फुल्का कवि है। लेकिन बेनेदीक्तोव,—ओह, मक्सीमिच, उसे आंखों की ओट नहीं किया जा सकता,—वह बरबस ध्यान खींचता है! देख..."

वह अपनी आंखें बंद कर लेता और धीमे स्वर में गुनगुनाता:

देखो तो तुम, यह रमणी कैसी सुन्दर
क्या उरोज है, उठे हुए ऊपर तनकर...

न जाने क्यों निम्न पंक्तियों को वह बड़े ही प्रेम और गर्वपूर्ण आह्लाद से जोर देते हुए बार-बार दोहराता:

पर उक़ाब की नजरें भी तो
इन तालों के पार न जायें।
फलक न दिल की वे तो पायें...

"क्यों कुछ समझ में आया?"

मुझे यह स्वीकार करते बड़ा संकोच मालूम होता कि मैं नहीं समझता वह क्यों इतना खुश हो रहा है।

१४

वर्कशाप में मेरे जिम्मे कोई बहुत उलझन पैदा करनेवाला काम नहीं था। तड़के ही, उस समय जब कि सब सोते होते, कारीगरों की चाय के लिए मैं समोवार गर्म करता। जागने पर रसोई में जाकर सब चाय पीते और मैं तथा पावेल वर्कशाप को झाड़ते-बुहारते, अंडों की सफ़ेदी से जर्दी अलग करते जो रंग में मिलाने के काम आती, और इसके बाद मैं दुकान के लिए रवाना हो जाता। सांझ को मैं रंग घोलकर रोगन तैयार करता और उस्तादों के पास बैठ काम करने के ढंग का अध्ययन करता। शुरू-शुरू में तो इस अध्ययन में मेरा बड़ा जी लगता, लेकिन शीघ्र ही मैंने अनुभव किया कि करीब-करीब सभी कारीगर टुकड़ों में काम करना पसंद नहीं करते, और यह कि एक असह्य ऊब उन्हें भीतर ही भीतर खाए जा रही है।

मेरा काम जल्दी ही निबट जाता और सांझ के खाली समय में मैं कारीगरों को अपने जहाजी जीवन के किस्से या पुस्तकों में पढ़ी कहानियां

सुनाता। इस प्रकार एकदम अनजाने मे ही मैने एक विशेष स्थान ग्रहण कर लिया,–एक तरह से मै वर्कशाप का क़िस्सागो और पुस्तके पढ़कर सुनानेवाला बन गया।

मुझे यह मालूम करने में देर न लगी कि मैंने जितना कुछ देखा और जाना है, उतना इन लोगों ने नही। इनमें से अधिकांश एकदम कच्ची उम्र में ही अपने धंधों के तंग पिंजरों में बंद हो गए थे और तब से उसी में बंद चले आ रहे थे। वर्कशाप में जितने भी लोग थे, उनमे केवल जिखरेव ही एक अकेला ऐसा था जो मास्को हो आया था और बड़े रोब के साथ, भौहों में बल देकर, वह इसका जिक्र करता था:

"मास्को पर आंसुओं का कोई असर नहीं होता। वहां एकदम चौकस रहना पड़ता है!"

अन्य किसी को शूया या व्लादीमिर से आगे पांव रखने का कभी मौका नहीं मिला था। मै जब कज़ान का जिक्र करता तो वे पूछते:

"वहां काफ़ी रूसी आबाद है? और गिरजे भी है या नहीं?"

वे पेर्म को साइबेरिया समझते और उनके लिए यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि साइबेरिया उराल के उस पार है।

"उराल की पर्च और स्टर्जन मछलियां वहां से–कास्पियन सागर से–ही तो आती हैं? इसका मतलब यह कि उराल कास्पियन सागर पर ही कहीं होगा!"

कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि वे मुझे जान-बूझकर चिढ़ा रहे है। मिसाल के लिए ऐसे मौकों पर जब वे कहते कि इंगलैंड समुद्र के उस पार है, और यह कि नेपोलियन का जन्म कलूगा के किसी कुलीन घराने में हुआ था। जब मैं उन्हें खुद अपनी आंखों देखी सच्ची चीज़ों के बारे में बताता तो वे बिरले ही यकीन करते, लेकिन रोंगटे खड़े कर देनेवाले किस्से और पेचीदा कहानियां वे बड़े चाव से सुनते। यहा तक कि बड़े-बड़े लोग भी सत्य के बजाय काल्पनिक कहानियां ज्यादा पसंद करते। मैं साफ देखता कि कहानी जितनी ही अधिक अनहोनी तथा अघट घटनाओं से भरी होती, उतना ही अधिक ध्यान से वे उसे सुनते। मोटे तौर से यह कि वास्तविकता में उनकी कोई दिलचस्पी नही थी। सब भविष्य के रंगीन सपने देखना और वर्तमान के भोंडेपन तथा गरीबी पर भविष्य की सुनहरी चादर डालकर उसे आंखों की ओट करना चाहते।

उनका यह रवया मुझे बड़ा अजीब मालम होता इसलिए और भी अधिक कि सत्य और कल्पना को एक दूसरे से अलग करके देखने की भावना मुझमें तेजी से घर करती जा रही थी। मै उस भेद को अब तेजी से पकड़ने लगा था जो मुझे आए दिन के जीवन और किताबी जीवन के बीच दिखाई देता था। मेरी आंखो के सामने असली, जीते-जागते लोग मौजूद थे, लेकिन किताबो के पन्नो में वे कही नहीं दिखाई देते थे,—किताबो में न कहीं स्मूरी नजर आता था, न जहाजी याकोव, न अलेक्सान्द्र, न जिखरेव, न नताल्या जैसी धोबिने...

दावीदोव के ट्रंक मे गोलीत्सिन्स्की की कहानियो का एक फटा हुआ सा संग्रह, बुल्गारिन कृत "इवान विजीगिन" और बैरन ब्राम्बियस की रचनाओं का एक संग्रह पड़ा था। ये सब पुस्तकें मैंने कारीगरो को पढ़कर सुनाईं और वे सुनकर बहुत खुश हुए। लारिओनिच ने कहा:

"किताबें पढ़ने से तू-तू मैं-मै का शोर और आपस में लड़ना-झगड़ना सब साफ़ हो जाता है, और यह एक अच्छी बात है।"

मै अब किताबों की टोह में घूमता, और जो भी पुस्तकें मेरे हाथ लगतो उन्हें पढ़कर सुनाता। सांझ की वे बैठकें कभी नहीं भूलती। वर्कशाप मे आधी रात का सन्नाटा छाया रहता, छत से लटकी कांच की गेंदे सफेद शीतल सितारो की तरह चमकतीं और उनकी किरणें मेज पर झुके हुए गंजे या बिखरे हुए बालो वाले सिरों पर पड़ती रहतीं। शान्त और गम्भीर भाव से वे पुस्तक सुनते, बीच-बीच में लेखक या पुस्तक के नायक की तारीफ़ में एकाध शब्द कहते जाते। पुस्तक सुनते समय वे एकदम बदल जाते, उनके ध्यान-मग्न चेहरे बहुत ही भोले और भले मालूम होते। मै उनसे और वे मुझसे पूर्ण अपनत्व का अनुभव करते। मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मैने अपनी जगह पा ली हो।

एक दिन सितानोव बोला:

"पुस्तकें वसंती हवा के उस पहले झोंके के समान है जो बंद कमरे की खिड़की खोलने पर शरीर के रोम-रोम में समा जाता है।"

पुस्तकें पाना कठिन काम था। पुस्तकालय से पुस्तकें मिल सकती थीं, लेकिन यह चीज हमारी कल्पना से बाहर थी। ऐसी हालत में एक ही रास्ता था। वह यह कि जो भी मिलता, उसी से भिखारी की भांति पुस्तकें मांगकर मैं काम चलाता। एक बार दमकल के मुखिया ने मुझे

लेर्मोन्तोव की कविताओं की एक पुस्तक दी कविता भी कितनी शक्तिशाली चीज होती है और किस हद तक वह लोगों को प्रभावित कर सकती है यह मैंने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद बहुत ही सजीव रूप से जाना।

मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय जब मैंने लेर्मोन्तोव की "दानव" शीर्षक वाली लम्बी कविता पढ़नी शुरू की तो सितानोव ने उचककर पहले किताब पर नज़र डाली फिर मेरे चेहरे की ओर देखा। इसके बाद उसने अपना ब्रुश उठाकर नीचे रख दिया और अपनी लम्बी बांहों को घुटनों के बीच खोंसकर चेहरे पर मुसकराहट लिए हिंडोले की भांति आगे-पीछे झूलने लगा। झकोलों के साथ-साथ उसकी कुर्सी भी चरचराती जाती।

"सुनो भाइयो, चुप होकर सुनो!" लारिओनिच ने कहा और अपने हाथ का काम अलग रखकर वह भी सितानोव की मेज़ के पास आ गया जहां मैं पुस्तक पढ़कर सुना रहा था।

कविता मेरे हृदय के तार झनझना रही थी, मेरी आवाज भर्रा गयी और आंखों में आंसू आ जाने की वजह से अक्षरों को साफ़-साफ़ देखना मुश्किल हो रहा था। लेकिन कविता से भी अधिक प्रभावित कर रही थी मुझे कमरे में अस्पष्ट, सावधान हलचल। सारी वर्कशाप मानो भारी करवट ले रही थी, जैसे कि कोई शक्तिशाली चुम्बक लोगों को मेरी ओर खींच रहा हो। जब मैंने पहला भाग समाप्त किया, तो सभी कारीगर अपनी जगह से उठकर मेज़ से सटे। मुसकराते हुए और भौहें ताने, अपनी बाहों को एक-दूसरे के गले मे डाले खड़े थे।

"पढ़े जा, पढ़े जा," पुस्तक के पन्ने पर मेरा सिर धकेलते हुए जिखरेव ने कहा।

जब मैंने पढ़ना समाप्त किया तो उसने पुस्तक को अपने हाथ में उठा लिया, आंखों के पास ले जाकर उसका नाम पढ़ा और फिर उसे अपनी बगल में खोंसते हुए कहा:

"इसे एक बार फिर पढना होगा। कल सुनाना। तब तक पुस्तक को मैं अपने पास चौकस रखूंगा।"

यह कहकर वह खिसक गया, अपनी मेज़ का दराज खोला, लेर्मोन्तोव को उसमें बंद किया और इसके बाद वह फिर अपने काम से जुट गया। वर्कशाप में एक अजीब निस्तब्धता छायी हुई थी। सब चुपचाप अपनी-अपनी जगहों पर जा रहे थे। सितानोव खिड़की के पास जाकर निश्चल

खड़ा हो गया। उसका सिर खिड़की के शीशे से सटा हुआ था जिखरेव ने एक बार फिर अपना ब्रुश नीचे रखा और कठोर स्वर में कहा:

"खुदा के बंदो, यही है वह चीज जिसे मै जीवन कहता हूं... हां, जीवन इसी को कहते है!"

उसने अपने कंधे बिचकाये, सिर नीचे झुका लिया और फिर बोला:

"दानव की तसवीर क्या मै नहीं बना सकता? तवा सा काला रंग, बेडौल बदन, आग की लपटो जैसे पंख—एक दम सिन्दूरी, और चेहरा, हाथ और पांव नीले, कुछ पीलापन लिए हुए, ठीक वैसे ही जैसे चांदनी रात मे बर्फ़ होती है।"

सांझ के भोजन के समय तक, बेचैनी से बल खाता, वह अपने स्टूल से बंधा रहा। उंगलियो से मेज बजाते हुए वह दानव के बारे में, हौवा और स्त्रियो के बारे में, और स्वर्ग तथा सन्तो के गुनाहों में फंसने के बारे मे, न जाने क्या-क्या बुदबुदाता रहता।

"इसमें जरा भी झूठ नहीं!" वह बल देकर कहता। "जब सन्त तक पाप मे डूबी स्त्रियो के साथ मुंह काला करने से नहीं चूकते तो दानव का तो काम ही रंगीन डोरे डालकर अछूती आत्माओ को अपने जाल मे फंसाना है..."

जवाब में किसी ने कुछ न कहा। शायद अन्य भी मेरी ही भांति अभी तक इतने मंत्र मुग्ध थे कि उन्हे बोलना अखरता था। वे काम कर रहे थे, लेकिन बेमन से घड़ी पर एक आंख जमाए; और नौ का घंटा बजते ही सबने तुरंत काम बंद किया।

सितानोव और जिखरेव बाहर सहन मे निकल आये। मै भी उनके पास पहुंचा। सितानोव ने सिर ऊंचा उठाकर तारो की ओर देखा और फिर गुनगुनाने लगा:

चलते जाते कारवां
बिखराये नभ दीपों के विस्तार में...

"जरा सोचो, कैसी-कैसी पंक्तियां लिखते है!"

और तेज़ सर्दी में कुड़मुड़ाते हुए जिखरेव बोला:

"नहीं, मुझे तो कुछ याद नहीं पड़ता—कुछ याद नहीं। लेकिन दिखाई सब कुछ पड़ता है। कितनी अजीब बात है कि इंसान शैतान पर भी तरस खाने के लिए बाध्य कर देता है। क्यों, ठीक कहता हूं न?"

हा सितानोव सहमति प्रकट करता।

"इसे कहते हैं इंसान!" जिखरेव ने कभी न भूलनेवाले अन्दाज़ से कहा।

लौटकर ड्योढ़ी मे उसने मुझे ताकीद की:

"देख, दुकान पर इस किताब का किसी से जिक्र तक न करना। जरूर यह उन किताबों में से है जिन्हें पढ़ने की मनाही है!"

यह सुनकर मेरी खुशी का वारपार न रहा। सो ऐसी होती हैं वे वर्जित पुस्तकें जिनके बारे मे पाप-स्वीकारोक्ति के समय पादरी ने मुझसे पूछा!

सांझ के भोजन के समय भी सब खोये-खोये से थे। वह चहल-पहल और नोक-झोंक गायब हो गयी जो नित्य दिखाई देती थी। ऐसा मालूम होता जैसे किसी अनहोनी और भारी घटना ने सब के दिमागों को उलझा लिया हो। भोजन के बाद जब अन्य सब सोने के लिए चले गये तो जिखरेव ने पुस्तक निकाली और मुझसे बोला:

"यह ले, इसे फिर पढ़कर सुना। लेकिन धीरे-धीरे पढ़ना, बिना किसी उतावली के..."

कुछ और लोग अपने बिस्तरो से चुपचाप उठे और मेज के पास आकर उसके इर्द-गिर्द बैठ गये। उनके बदन अधनगे थे।

और जब मैने पढ़ना खत्म किया तो जिखरेव, अपनी उंगलियो से मेज को बजाते हुए, एक बार फिर कह उठा:

"इसे कहते है जीवन! ओह दानव, दानव... तेरे साथ भी बहुत बुरी बीती, मेरे भाई!"

सितानोव ने मेरे कधो पर से उचककर कुछ पक्तियों को पढ़ा, हंसा और बोला:

"इन्हे मै अपनी कापी में उतार लूंगा..."

पुस्तक अपने हाथ में लेकर जिखरेव उठा और अपनी मेज की ओर चल दिया। लेकिन एकाएक रुककर आहत और विचलित स्वर मे बोला:

"जीवन की दलदल मे हम उन पिल्लो की भांति घिसटते हैं जिनकी आंखे कभी नही खुलती। क्यों और किस लिए, यह कोई नही जानता। न खुदा को हमारी जरूरत है, न शैतान को। और कहा यह जाता है कि हम खुदा के बन्दे है। जीव खुदा का बन्दा था, और खुदा उससे बाते

करता था। यही बात मसा के बारे मे भी थी। लेकिन हम जरा बताओ तो सही कि हम किस खेत की मूली है?..

किताब को उसने मेज के दराज मे बंद कर दिया और कपड़े पहनते हुए सितानोव से बोला:

"भटियारखाने चलेगा?"

"नहीं, मै अपनी के पास जा रहा हूं," निश्चल आवाज मे उसने जवाब दिया।

उनके चले जाने के बाद मै दरवाजे के निकट पावेल ओदिन्त्सोव के पास ही फ़र्श पर लेट गया। कुछ देर तक तो वह खांसता-कराहता और करवटे बदलता रहा फिर एकाएक दबे स्वर में उसने रोना शुरू कर दिया।

"क्यो क्या बात है?"

"अब नहीं सहा जाता," वह बोला, "मुझे इन सब पर रोना आता है। चार साल से मैं इनके साथ जी रहा हूं। सभी को मै अच्छी तरह जानता हूं..."

मुझे भी इन लोगों पर तरस आ रहा था। काफी रात बीत गयी, लेकिन हमारी आंख नहीं लगी। देर तक फुसफुसाकर हम उनके बारे मे बाते करते रहते। उनमे से हरेक के हृदय में छिपी भलमनसाहत और अच्छाइयों की हम याद कर रहे थे जिससे दया के हमारे बचकाने आवेश में और भी तेजी आ रही थी।

पावेल ओदिन्त्सोव और मै गहरे मित्र बन गए। आगे चलकर वह बहुत ही बढ़िया कारीगर सिद्ध हुआ, लेकिन इस धंधे में वह ज्यादा दिनो तक नही टिका। तीस वर्ष का होते न होते वह पक्का पियक्कड़ बन गया। इसके कुछ समय बाद मास्को की खीत्रोव मार्केट मे वह मुझे दिखाई दिया, एक आवारा के रूप में। फिर कुछ ही दिन बीते होंगे कि सुनने मे आया, मियादी बुखार ने उसकी जान ले ली। कितने ही अच्छे लागो से इस जीवन में मेरा वास्ता पड़ा और उनके जीवन को, बिला किसी मकसद के, धूल में मिलते हुए मैने देखा! उनकी जब याद आती है तो रूह कांप उठती है। यों मरने-खपने को तो लोग सभी जगह मरते-खपते हैं। और यह स्वाभाविक भी है। लेकिन जिस तेजी और बेतुके ढंग से वे रूस मे मरते-खपते और बरबाद होते हैं, उतने अन्य कहीं नहीं...

उन दिनों पावेल गोल-मटोल चेहरे वाला लड़का था। मुझसे कोई दो

साल बड़ा होगा। चस्त चतुर और ईमानदार। कलाकार की प्रतिभा से सम्पन्न बिल्ली, कुत्ते और पक्षियों के चित्र बनाना तो जैसे वह मां के पेट में ही सीखकर आया था। साथी कारीगरों के व्यंग-चित्र बनाने में वह कमाल करता और हमेशा पक्षियों के रूप में वह उन्हें चित्रित करता। सितानोव को वह उदासी में डूबा कठफोड़वा बनाता जो एक टांग पर खड़ा होता, जिखरेव को वह एक ऐसा मुर्गा समझता जिसकी कलगी छितरा गई थी और खोपड़ी के बाल झड़ गए थे, और अरियल दावीदोव को वह उदास पीविट पक्षी के रूप में चित्रित करता। लेकिन सबसे बढ़िया व्यंग-चित्र बूढ़े गोगोलेव का होता जो खुदाई के बेल-बूटे बनाता था। उसे वह चमगादड़ के रूप में चित्रित करता—खूब बड़े-बड़े कान, डरावनी नाक और छोटे-छोटे पांव जिनमें छः-छः नुकीले नाखून निकले होते। और उसके गोल चेहरे में, जिसे वह काला पोत देता, आंखों के सफ़ेद घेरे दूर से दिखाई देते। घेरों के भीतर पुतलियां बनी होतीं। ऐसा मालूम होता मानो लालटेन उलटकर रख दी गयी हो जिससे उसका चेहरा और भी उचक्का तथा शैतानी से भरा दिखाई देता।

कारीगरों को जब वह अपने व्यंग-चित्र दिखाता तो वे बुरा न मानते, लेकिन गोगोलेव का चित्र उन सभी को घिनौना मालूम होता। उसे देखकर वे कहते :

"अच्छा यही है कि इसे फाड़ डाल। अगर बूढ़े ने इसे देख लिया तो तेरी जान खा जाएगा!"

यह बूढ़ा जो ऊपर से नीचे तक गंदगी और कमीनेपन में डूबा था और चौबीसों घंटे नशे में धुत्त रहता था, काला नाग होते हुए धर्मात्मा होने का ढोंग रचता, कारिंदे से हर किसी की चुगली खाता। मालकिन अपनी भतीजी को कारिंदे से ब्याहना चाहती थी और इसलिए वह अभी से अपने आपको वर्कशाप और उसमें काम करनेवाले सभी लोगों का मालिक समझने लगा। सभी उससे डरते थे और घृणा भी करते थे, और इसी वजह से उसके मुर्गे गोगोलेव से भी सब दूर से ही कन्नी काटते थे।

पावेल ने तो जैसे इस बूढ़े को परेशान करने का इरादा ही कर लिया था। एक क्षण के लिए भी वह गोगोलेव का पीछा न छोड़ता, और उसे जरा भी चैन से न बैठने देता। इस काम में मैं भी उसका खूब हाथ बंटाता। जब भी हम कोई हरकत करते जो लगभग हमेशा बेरहमी

की हद तक मद्दी होती वर्कशाप के कारीगर मन ही मन खुश होते और चेतावनी देते :

"संभलकर रहना! 'कुज़्मा तिलचट्टा' तुम्हे छोड़ेगा नही!"

कारिंदे को वर्कशाप मे सब कुज़्मा तिलचट्टा कहते थे।

इन चेतावनियो को हम सुना-अनसुना कर देते। बूढ़ा गोगोलेव जब सोता होता तो हम अक्सर उसका मुंह रंग देते। एक बार उस समय जब कि वह नशे में धुत्त पड़ा था, हमने उसकी पकौड़े सी नाक पर सुनहरी रोगन कर दिया जो पूरे तीन दिन तक नाक के रोमो में समाया रहा। लेकिन हमारी शैतानी हरकतों से जब उसके सिर पर गुस्से का भूत सवार होता तो मुझे जहाज और व्याल्का के टुइयां सैनिक की याद हो आती, मेरी आत्मा मुझे कचोटती और एक घड़ी चैन न लेने देती। बूढ़ा होने के बावजूद गोगोलेव दम-खम में हमसे बढ़कर था। वह अक्सर औचक में हमे पकड़ लेता और इतनी मरम्मत करता कि तबीयत हरी हो जाती। इतना ही नहीं, बल्कि पीटने के बाद मालकिन के पास जाकर वह हर बात की शिकायत भी करता।

मालकिन को भी नशे की लत थी, और नशे की तरंग में हमेशा खिलखिलाती और मग्न रहती थी। अपने सूजे हुए से हाथ मेज पर पटककर और चिल्लाकर वह हमे डराने का प्रयत्न करती। कहती :

"शैतान के बच्चो, तुम अपनी शरारत से बाज नहीं आओगे? इतना भी नही देखते कि वह बूढ़ा आदमी है और तुम्हे उसकी इज्जत करनी चाहिए। बोलो, उसके शराब के गिलास मे मिट्टी का तेल किसने उंडेला?"

"हमने!.."

मालकिन ने आंखें मिचमिचाकर देखा।

"हाय भगवान. कैसे शैतानो से पाला पड़ा है। देखो न, किस तपाक से कहते हैं कि हमने!.. क्यो, ऐसा कहते तुम्हारी जीभ कटकर नहीं गिर जाती? क्या तुम्हें इतना भी नही मालूम कि बड़े-बूढ़ों की इज्जत करनी चाहिए?"

उस समय तो वह हमें धता बताती और रात को कारिंदे से हमारी शिकायत करती। कारिंदा कठोर स्वर में मुझे डांटता :

"यह क्या हरकत है? किताबें पढ़ता है, बाइबल तक पढ़ लेता है, फिर भी इस तरह की हरकतें करने से बाज नही आता? संभल के, बच्चू!"

मालकिन का न कोई सगी था न साथी अकेले सूना जीवन बिताती और उसे देखकर बड़ी दया आती। अक्सर वह नशे मे धुत्त होकर खिड़की के पास बैठ जाती और उदास तथा उम्र की भार से डांवांडोल स्वर में गुनगुनाती :

नहीं कोई ऐसा जो पूछे
अपनी बात,
नही कोई ऐसा जो खोले
दिल की गांठ।

एक दिन मैंने देखा कि दूध से भरा मटका हाथ में लिए वह जीने पर आई और भारी कदमों से थपथप करती एक-एक सीढ़ी नीचे उतरने लगी। अपने फैले हुए हाथो में वह मटके को मजबूती से पकड़े थी, दूध छलक-छलककर उसके कपड़ों पर गिर रहा था, और वह मटके को बाकायदा डांट पिला रही थी :

"देखता नहीं शैतान, किस बुरी तरह छलक रहा है?"

वह मोटी नही थी, किन्तु मुलायम और फुसफुसी थी, उस बूढ़ी बिल्ली की भांति जिसके लिए चूहे पकड़ना बीते दिनो की एक यादगार मात्र रह गया हो, जो खा-खाकर भारी हो गई हो और अब अलस भाव से एक जगह पड़कर केवल अतीत के सुहावने रास-रंगों का ताना-बाना बुन सकती थी।

भौहों मे बल डालकर सितानोव पुराने दिनों की याद करता :

"ऊंह, उस जमाने में यहां का रंग देखते तो दंग रह जाते। यह एक बहुत ही बड़ा कारबार था। वर्कशाप भी खूब बढ़ी-चढ़ी थी और उसकी देख-भाल का काम एक बहुत ही कुशल कारीगर के जिम्मे था। लेकिन अब वह बात कहां। अब तो सब कुछ 'कुज्मा तिलचट्टे' के हाथों में चला गया। हम चाहे जितना सिर खपाएं, चाहे जितना खून-पसीना एक करें, घूम-फिरकर अकेले उसी की चांदी गरम होती है। सोचकर कलेजा बल खाने लगता है, जी करता है कि काम को धता बताकर छत पर चढ़ जाओ और समूची गर्मियां आकाश की ओर ताकते हुए बिता दो..."

सितानोव के विचारों ने पावेल ओदिन्त्सोव को भी ग्रस लिया। बड़ों की तरह सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए वह भी खुदा, शराबखोरी, स्त्रियों और श्रम की व्यर्थता के बारे मे लम्बी-चौड़ी बाते करता, "कुछ लोग

दिन रात खून पसीना एक करके चीज़ें बनाते है और दूसरे बिना कुछ सोचे-समझे उन्हें नष्ट करने की ताक मे रहते हे। काम करना या न करना सब बराबर हो जाता है।"

ऐसे क्षणों में उसके बच्चों जैसे चपल, सुन्दर और तेज चेहरे पर झुर्रियां उभर आती और ऐसा मालूम होता मानो वह बूढ़ा हो गया हो। रात के समय फ़र्श पर बिछे अपने बिस्तर पर वह बैठ जाता, घुटनों को अपनी बांहों में दबोच लेता और उसकी आंखे खिड़की के नीले चौखटों को पार कर शीतकालीन आकाश में छितरे तारों और सायबान की छत की टोह लेती जो अब बर्फ़ के बोझ से दबी रहती थी।

कारीगर खर्राटे भरते और नींद में बड़बड़ाते रहते। कोई इस तरह चिल्ला उठता मानो दुःस्वप्न देख रहा हो। सबसे ऊपर वाले तख्ते से दावीदोव अपनी ज़िन्दगी का बचा-खुचा अंश खांसी और बलगम के रूप मे थूकता रहता। उधर सामने वाले कोने में 'खुदा के बन्दे' कापेन्द्यूखिन, सोरोकिन, और पेर्शिन नशे तथा नींद में निढाल बोरों की भांति एक-दूसरे से सटे पड़े रहते। बे-सिर, बे-हाथ और बे-पांव वाली देव-प्रतिमाएं दीवारों के साथ टिकी ताकती रहतीं। तेल, सड़े अंडों और फ़र्श की दरारों में भरे कूड़े-कचरे की गंध सांस तक लेना दूभर कर देती।

पावेल बुदबुदाकर कहता, "हे भगवान, इनकी हालत पर मुझे कितना तरस आता है!"

तरस की इस भावना से मेरा हृदय भी भारी और उदास रहता। हम दोनों को, जैसा कि मै पहले भी कह चुका हूं, ये लोग अच्छे मालूम होते, लेकिन जिस तरह का जीवन वे बिताते थे वह बुरा, उनके लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा कठोर, बेहद बेरस और बोझिल था। जब महान व्रत के लिए गिरजे के घंटे बजते, बर्फ़ीली आंधियां सनसनाती और घर, पेड़ तथा धरती की हर चीज कांपने, कराहने और सुबकने लगती, तब सीसे की भारी चादर की तरह वर्कशाप पर गहरी ऊब छा जाती, जो कारीगरों का दम घोटती और ऐसा मालूम होता मानो जीवन का कोई चिन्ह उनमें शेष नहीं छोड़ेगी, सभी कुछ पाले मे झुलस और मुरझा जाएगा। घबराकर वे बाहर निकलते, शराबखाने की ओर लपकते, या औरतों की बांहों में दुबक जाना चाहते जो, वोद्का की बोतल की तरह, ऊब को भूलने में उनका हाथ बंटातीं।

इस तरह के क्षणों में पुस्तकों का जादू कुछ काम न करता और मैं तथा पावेल जी बहलाने के अन्य साधनों का सहारा लेते। रंग-रोगन और काजर से हम अपने चेहरों को पोतते, सन की दाढ़ी और मूंछें लगाते, अपनी सूझ-बूझ के अनुसार तरह-तरह का हास्याभिनय करते और ऊब के विरुद्ध वीरतापूर्ण संघर्ष करते हुए लोगों को हंसने के लिए बाध्य करते। "एक सैनिक ने किस प्रकार प्योत्र महान की जान बचाई" वाली कहानी मुझे याद थी। इस कहानी को मैंने कथोपकथन के रूप में ढाल लिया। जिस तख्ते पर दावीदोव सोता था, उसे हम अपना मंच बनाते और बड़े उछाह के साथ कल्पित स्वीडनों के सिर कलम करते। दर्शक हंसते-हंसते दोहरे हो जाते।

चीनी शैतान त्सिंगी-यु-तोंग की कहानी कारीगर बेहद पसंद करते। पाश्का अभागे शैतान का अभिनय करता जिसके मन में, बावजूद इसके कि वह शैतान था, भलाई करने की धुन समा गई थी। बाकी सारा अभिनय मैं खुद करता। मुझे स्त्री भी बनना पड़ता और पुरुष भी, कभी मैं किसी पेड़ का तना बनकर खड़ा होता और कभी भली रूह, यहां तक कि मुझे वह पत्थर भी बनना पड़ता जिसपर कि शैतान, भलाई करने के अपने हर प्रयत्न की विफलता के बाद निराश होकर बैठता था।

देखनेवाले खूब हंसते और उन्हें इतनी आसानी से खुश होते देख मुझे अचरज भी होता और दुःख भी। वे चीखते और चिल्लाते :

"वाह, मुंह मटकाने में तुम कमाल करते हो! मजा आ गया!"

लेकिन इस सब के बावजूद रह-रहकर यह बात आंखों के सामने उभरे बिना न रहती कि इन लोगों का रंज से जितना वास्ता था, उतना खुशी से नहीं।

हमारे यहां हंसी-खुशी या रंगरेलियां अधिक दिनों तक कभी नहीं टिकतीं, न ही अपने आप में उनका कोई मूल्य होता। रंज में डूबे रहने के आदी रूसी हृदय को भरमाने के लिये एक कठिन प्रयास के रूप में, उनका जान-बूझ कर उपयोग किया जाता। उस हंसी-खुशी का क्या भरोसा जिसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व न हो, अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की जिसमें कोई कामना तक न हो, और केवल जीवन की भयानकता को आंखों की ओट करने के लिए ही जिसकी याद की जाती हो!

और इसलिए रूसियों की हंसी-खुशी और उनकी रंगरेलियां, आशा के प्रतिकूल और एकदम अनजाने में ही, अक्सर क्रूर और निर्मम नाटक का रूप धारण कर लेती। नाचते-नाचते, ठीक उस समय जब कि नृत्यकार अपने बन्धनों को तोड़कर उन्मुक्त भाव से हवा में तैरता और लहराता मालूम होता, एकाएक उसके भीतर का पशु जाग उठता और रस्सा तुड़ाकर हर व्यक्ति और हर चीज़ पर टूट पड़ता – गरजता, उबलता-उफनता, सभी कुछ मटियामेट करता हुआ...

ज़बरदस्ती के और एकदम बाहरी अवलम्बनों पर टिकी इस हंसी-खुशी से मैं इतना भन्ना जाता और इस बुरी तरह झुंझला उठता कि धुन मे आकर सभी कुछ ताक पर रख देता, और उसी क्षण जो भी उलटा-सीधा मन में आता, उनका अभिनय करने में पूरी मनमानी का परिचय देता। उन्मुक्त और स्वतःस्फूर्त खुशी का उनमे संचार करने के लिए मैं पागल सा हो उठता! मेरी कोशिशें पूर्णतया बेकार भी न जाती। कारीगर चकित हो जाते, मुग्ध भाव से प्रशंसा करते; लेकिन वह निराशा और उदासी जिसे मैं समझता कि गायब हो गई है, वापिस लौट आती, और घनी तथा गहरी होती हुई पहले की भांति फिर उन्हें दबोच लेती।

धूसर लारिओनिच कोमल स्वर से कहता:

"सच, तू भी एक कयामत है। खुदा तुझे लम्बी उम्र दे!"

"जी हल्का हो जाता है," जिखरेव स्वर मे स्वर मिलाता। "तू किसी सरकस या नाटक-कम्पनी में क्यों नहीं भर्ती हो जाता? तुझसे बढ़िया जोकर उन्हें ढूंढ़े न मिलेगा!"

वर्कशाप में काम करनेवालो मे केवल कापेन्द्यूखिन और सितानोव ही ऐसे थे जो बड़े दिन या श्रोवटाइड के अवसर पर नाटक देखने जाते थे। बूढ़े कारीगर इस पाप का प्रायश्चित्त करने पर जोर देते। कहते कि बर्फ मे गढ़ा खोदकर जब तक नदी मे डुबकी नहीं लगाओगे, खुदा तुम्हें माफ नही करेगा। लेकिन सितानोव था कि बार-बार मुझसे कहता:

"तू भी कहां आ फंसा? छोड़ यह सब, और नाटक-कम्पनी मे भर्ती हो जा!"

और विचलित होकर मुझे "अभिनेता याकोव्लेव के जीवन" की दर्द भरी कहानी सुनाने लगता तथा अन्त में कहता:

"देखा, दुनिया में क्या-क्या हो सकता है!"

रानी मेरी स्टुअर्ट का जिसे वह लोमड़ी कहता था बड़ चाव से जिक्र करता और स्पेन का बांका वीर का जिक्र करते समय तो उसके उछाह का वारापार न रहता। कहता:

"दोन सिज़ार द-बज़ान बांके खानदान का एक बांका वीर था, अवलीमिच! सचमुच में असाधारण!"

अपने आप मे वह खुद भी कुछ कम बांका वीर नही था। एक दिन, चौक में दमकल की मीनार के सामने, तीन आग बुझानेवाले मिलकर किसी देहातिये पर टूट पड़े। चारों ओर करीब चालीस लोगो की भीड़ जमा हो गई। देहातिये को बचाना तो दूर, भीड़ ने पीटनेवालों को पीठ थपथपाना और उन्हें खूब उकसाना शुरू कर दिया। सितानोव ने आव देखा न ताव, लपककर वहां पहुचा और अपनी लम्बी बांहो से हमलावरों को मार भगाया। इसके बाद देहातिये को उठाकर उसे भीड़ के ऊपर धकेल दिया और चिल्लाकर बोला:

"ले जाओ इसे!"

अकेला ही वह डटा रहा, तीन-तीन से उसने लोहा लिया। आग बुझाने का स्टेशन पास ही था, केवल बीस-एक कदम पर। आग बुझानेवाले अगर मदद के लिए चिल्लाते तो उन्हे साथी मिलने में जरा भी कठिनाई न होती, और वे सितानोव को ऐसी मार पिलाते कि वह भी याद रखता। गनीमत यही थी कि उनके औसान खता हो गए और वे उलटे पांव भागते नजर आए।

"हरामी कुत्ते!" उन्हें भागता हुआ देख सितानोव चिल्लाया।

रविवार के दिन युवा कारीगर पेत्रोपाव्लोव्स्क कब्रिस्तान के उस पार इमारती लकड़ी की टालों की ओर जाते और सफाई दल के लोगों और आसपास के गांवों के किसानों से घूंसेबाज़ी का खेल खेलते। सफाई दल में एक प्रसिद्ध मोर्दोवियाई घूंसेबाज था—देव की भांति डील-डौल, छोटा सा सिर, और चिपचिपी आंखें। उसे ही वे सबसे आगे खड़ा करते और वह, फैली हुई अपनी टांगो को मजबूती से धरती पर जमाए, गंदे कोट की आस्तीन से अपनी रिसती हुई आंखो को पोंछता और सहज भाव से शहरी भाइयों को ललकारता:

"चले आओ जिसे आना हो। जल्दी करो, ठंड हो रही है!"

आगे बढ़ता। हमारी ओर से एक यही उससे भिड़ता और मोर्दोवियाई हर बार उसके अंजर-पंजर ढीले कर देता। खून में वह रंग जाता और हांफता हुआ चिल्लाकर कहता:

"देख लेना, एक दिन मैं भी ऐसे दांत खट्टे करूंगा कि मोर्दोवियाई सारी उम्र याद रखेगा!"

और अन्त में मोर्दोवियाई के दांत खट्टे करना ही उसके जीवन का लक्ष्य हो गया। इसके लिए, पूरी सख्ती से वह अपने को साधता और तैयार करता। वह अब शराब न पीता, ज्यादातर मांस ही खाता और हर सांझ को सोने से पहले, बर्फ़ से अपना बदन रगड़ता, बांहों की मछलियां निकालने के लिए दोहरा होकर मन भर पक्का बटखरा उठाता। लेकिन मोर्दोवियाई को वह फिर भी नहीं पछाड़ सका। अन्त में अपने दस्तानों में उसने सीसे के टुकड़े भर लिए, और सितानोव से शेखी बघारते हुए बोला:

"अब उसका अन्त ही समझो!"

सितानोव की भौंहों में बल पड़ गए। कड़े स्वर में बोला:

"सीसे के टुकड़े निकाल डाल, नहीं तो मैं भिड़न्त से पहले ही सारा भंडा फोड़कर दूंगा।"

कापेन्द्यूख़िन को विश्वास नहीं हुआ कि वह ऐसा करेगा। लेकिन ठीक भिड़न्त से पहले सितानोव ने एकाएक मोर्दोवियाई से चिल्लाकर कहा:

"जरा ठहरो, वासीली इवानोविच। कापेन्द्यूख़िन से पहले मेरी भिड़न्त होगी!"

कज्जाक का चेहरा लाल पड़ गया। चिल्लाकर बोला:

"मैं तुझसे नहीं लड़ूंगा! चला जा यहां से!"

"लड़ेगा कैसे नहीं?" सितानोव ने कहा और बढ़ चला।

एक क्षण के लिए कापेन्द्यूख़िन सकपकाया, फिर तेज़ी से उसने अपने दस्ताने उतार डाले और उन्हें अपने कोट के भीतर वाली जेब में खोंसता हुआ वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया।

दोनों पक्षों में से एक भी इस तरह की घटना के लिए तैयार नहीं था। उन्हें अचरज भी हुआ और दुःख भी। भिड़न्त का सारा मजा किरकिरा हो गया। भली सी शक्ल के एक आदमी ने झुंझलाकर सितानोव से कहा:

यह कायदे के खिलाफ है। खेल में तुम निजी झगड़ों का भुगतान नहीं कर सकते!"

सितानोव पर चारों ओर से बौछार होने लगी। काफी देर तक तो वह चुप रहा। फिर भली सी शक्ल वाले आदमी से बोला:

"तुम्हारा मतलब यह कि खेल में खून-खराबा हो तो उसे भी होने दिया जाए, – क्यों?"

भली सी शक्ल वाला आदमी तुरंत सारा मामला समझ गया, और टोपी उतारकर मुसकराते हुए बोला:

"अगर ऐसी बात है तो अपने पक्ष की ओर से हम तुम्हें धन्यवाद देते हैं!"

"लेकिन इस बात का ढोल पीटने की जरूरत नहीं। अपनी जुबान बंद ही रखना!"

"मैं जुबान का ढीला नहीं हूं। कापेन्द्यूखिन पहुंचा हुआ घूंसेबाज है, पर बार-बार की हार से आदमी खुंदक खाने लगता है, हम यह समझते हैं। लेकिन अब हम, भिड़न्त से पहले, उसके दस्तानों को जरूर देख लिया करेंगे।"

"यह तुम जानो, जो ठीक समझो, करो!"

भली सी शक्ल वाला आदमी जब चला गया तो हमारे पक्ष के लोगों ने सितानोव को आड़े हाथों लेना शुरू किया:

"तू भी निरा बुगद है! आखिर तुझे बीच में टांग अड़ाने की क्या जरूरत थी? कापेन्द्यूखिन ने आज सारी कसर निकाल ली होती! लेकिन अब... तूने हम सब के मुंह पर कालिख पोत दी..."

देर तक और बिना दम लिए रस ले-लेकर सब सितानोव को कोंचते रहे।

सितानोव केवल लम्बी सांस खींचकर रह गया और बोला:

"आह, कमीने..."

इसके बाद एकाएक मोर्दोवियाई को ललकारकर उसने सभी को चकित कर दिया। चुनौती सुनते ही मोर्दोवियाई आगे आकर जम गया और घूंसा हिलाते हुए हंसकर बोला:

"अच्छी बात है। आओ, आज तुम्हारे साथ ही बदन को थोड़ा गरमा लिया जाए!.."

पास खड़े लोगों में कई ने हाथ में हाथ डालकर एक बड़ा सा घेरा बना लिया। भीड़ घेरे से बाहर हो गई, और लड़नेवाले उसके भीतर।

इसके बाद घूंसेबाज़ी शुरू हो गई। एक-दूसरे के चेहरे पर नज़र गड़ाए, बाएं हाथ की बंधी मुट्ठी सीने पर रखे और दाहिने हाथ का घूंसा ताने, भंवर की भांति वे घेरे के भीतर चक्कर काटने लगे। पारखी दर्शकों ने तुरंत भांप लिया कि सितानोव की बांहें मोर्दोवियाई की बांहों से ज़्यादा लम्बी हैं। सभी पर सन्नाटा सा छा गया। लड़नेवालों के पांवों के नीचे बर्फ़ कचरने के सिवा और कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। तभी किसी ने सन्नाटे के तनाव से उकताकर शिकायती स्वर में बड़बड़ाते हुए कहा:

"इतनी देर से खाली चक्कर लगा रहे हैं..."

सितानोव का दाहिना घूंसा घूम गया, मोर्दोवियाई ने अपने बचाव में बायां घूंसा उठाया और तभी एकाएक सितानोव ने बाएं घूंसे से सीधे उसके पेट पर प्रहार किया। कराहता हुआ मोर्दोवियाई पीछे हटा और मुग्ध भाव से बोला:

"मैं तुम्हें कच्ची उम्र का ही समझता था, लेकिन तुम तो छिपे रुस्तम निकले!"

इसके बाद अखाड़ा गरमा गया। घूंसे ज़ोरों से हवा में झूलते और एक-दूसरे की पसलियां चूर-चूर करने के लिए लपलपाते। देखते-देखते दोनों पक्षों के दर्शकों में एक हलचल सी मच गई। जोश और उछाह में भरकर वे चिल्लाते और लड़नेवालों को बढ़ावा देते:

"देखता क्या है, मूरतसाज़! बना दे ऐसी तसवीर कि वह भी याद रखे!"

मोर्दोवियाई सितानोव से कहीं तगड़ा था, लेकिन चपल नहीं था। वह उतनी ही फ़ुर्ती और तेज़ी से वार नहीं बचा पाता और हर प्रहार के बदले में दो या तीन प्रहार का उसे भुगतान करना पड़ता। लेकिन प्रहारों का उसपर कोई खास प्रभाव न होता। अपने प्रतिद्वन्द्वी पर वह उसी तरह गरजता और उसकी खिल्ली उड़ाता रहा। अन्त में एकाएक उछलकर उसने इतने ज़ोरों से घूंसा जमाया कि सितानोव की दाहिनी बांह चूल से बाहर निकल आई।

"अरे, इन्हें छुड़ाकर एक-दूसरे से अलग करो! बराबर का जोड़ रहा, न कोई हारा न जीता!" एक साथ कई आवाज़ें चिल्ला उठीं। दर्शक लपककर आगे बढ़े, और लड़नेवालों को छुड़ाकर अलग कर दिया।

"मूरतसाज मे ताकत तो इतनी नहीं है, लेकिन चपल खूब है!" मोर्दोवियाई ने हंसते हुए कहा। "सच, एक दिन यह अच्छा घूंसेबाज बन जाएगा। मै खुले आम यह ऐलान करता हूं।"

युवकों ने जो अब तक दर्शक बने हुए थे, एक-दूसरे को खुलकर चपतियाने का खेल शुरू कर दिया। सितानोव को लेकर मैं हड्डी बैठानेवाले के पास पहुंचा। जिस साहस का उसने परिचय दिया था, उससे मेरे हृदय मे उसकी इज्जत और भी बढ़ गयी। वह मुझे अब और भी ज्यादा अच्छा लगता, और मै उसका और भी ज्यादा सम्मान करता।

वह सदा न्याय और ईमानदारी का पक्ष लेता, और ऐसा मालूम होता मानो यह सब करना वह अपना कर्तव्य मानता था। लेकिन कापेन्द्यूखिन जब भी मौका मिलता उसका मज़ाक उड़ाता:

"वाह सितानोव तू तो बस लोगो को दिखाने के लिए जीता है। और अपनी आत्मा को रगड़-रगड़कर तूने इतना चमका लिया है कि क्या कोई समोवार को चमकाएगा। इस तरह सब जगह घूमता है, मानो इस दुनिया मे तुझी से उजाला हो। लेकिन सच बात यह है कि तेरी आत्मा पीतल की है और तेरे साथ ऊब आती है..."

सितानोव ज़रा भी टस से मस न होता। वह सीधे अपना काम करता या कापी में लेर्मोन्तोव की कविताएं उतारता। अपना सारा खाली समय वह कविताएं उतारने मे ही बिताता। एक दिन मैंने उससे पूछा:

"तुम्हारे पास पैसे की कमी नही। अपने लिए पुस्तक क्यो नही खरीद लाते?"

"नही, अपने हाथ की लिखावट में नकल उतारना कहीं ज्यादा अच्छा है!" वह जवाब देता।

वह छोटे-छोटे और सुंदर अक्षर बनाता। पन्ना भर जाने पर वह स्याही सूखने का इन्तजार करता, और धीमे स्वर में गुनगुनाता हुआ पढ़ता:

> पश्चाताप, बिना दुख के तुम
> ताकोगी भू की जड़ता,
> जहां नहीं सुख, सुषमा सच्ची
> जहां न शाश्वत सुंदरता...

और आंखों को सिकोड़ते हुए कहता, "यही सचाई है! वाह, क्या गूढ़ ज्ञान है सचाई का!"

कापेन्द्यूख़िन की सभी हरकतों के बावजूद सितानोव उसके साथ इतनी भलमान्सी से पेश आता कि देखकर अचरज होता। नशे में बेसुध, आते ही जब वह सितानोव से लड़ने के लिए झपटता तो सितानोव बहुत ही ठंडे हृदय से उसे रोकने की कोशिश करता :

"भले आदमी, ऊपर क्यों गिरे पड़ता है। जरा दूर रह!.."

लेकिन वह बाज न आता, और अन्त में सितानोव इतनी बेरहमी से उसकी मरम्मत करता, यहां तक कि अन्य कारीगर झड़प देखने का प्रबल मोह होने पर भी आगे बढ़कर दोनों को खींचकर एक-दूसरे से अलग कर देते।

"यह तो कहो कि हमने ऐन मौके पर उसे छुड़ा लिया," वे कहते, "नहीं तो सितानोव उसे मार ही डालता और इस बात की जरा भी परवाह न करता कि बाद में उसका क्या होता है।"

होश-हवास ठीक होने पर कापेन्द्यूख़िन भी सितानोव को एक घड़ी चैन न लेने देता, उसके कविता प्रेम तथा हरजाई स्त्री से उसके लगाव की दुःखद घटना की खिल्ली उड़ाता, और ईर्ष्या की आग में उसे झुलसाने के लिए गंदी से गंदी, मगर बेकार हरकतें करने से न चूकता। उसके चिढ़ाने और खिल्ली उड़ाने का सितानोव कभी जवाब न देता, न ही कभी उत्तेजित होता, बल्कि कभी-कभी तो कापेन्द्यूख़िन के साथ-साथ खुद भी अपनी खिल्ली उड़ाने में शामिल हो जाता और खूब हंसता।

वे पास-पास ही सोते और गई रात तक न जाने क्या-क्या फुसफुसाते रहते थे।

रात के सन्नाटे में उन्हें इस तरह फुसफुसाकर बातें करते देख मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। मेरी समझ में न आता कि एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकृति के ये दो आदमी, आख़िर किस चीज के बारे में इतना घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं! जब कभी भी मैं उनके निकट पहुंचने की कोशिश करता, कापेन्द्यूख़िन तुरंत टोकता :

"यहां क्यों आया?"

और सितानोव तो मेरी ओर नजर तक उठाकर न देखता।

लेकिन एक बार खुद उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया।

"मक्सीमिच" कापेन्दयूखिन ने कहा अगर तेरे पास ढर सारे पसे हों तो तू क्या करेगा?

"पुस्तके खरीदूंगा।"

"और क्या करेगा?"

"और क्या करूंगा, यह तो मै भी नही जानता।"

कापेन्द्यूखिन ने एक लम्बी सास खींची और निराशा से मुंह फेर लिया।

"देखा तूने!" अब सितानोव का शान्त स्वर सुनाई दिया। "यह कोई नहीं बता सकता—चाहे किसी बूढ़े आदमी से पूछ देखो, चाहे जवान से! मैं तुझसे कहता न था कि धन का अपने आप में कोई महत्व नहीं है। अपने आप मे वह बेकार है! महत्व की चीज धन नही, बल्कि वह है जो धन से पैदा होती है, या जिसके लिए धन का उपयोग किया जाता है..."

"तुम लोग किस चीज के बारे में बाते कर रहे थे?" मैने पूछा।

"किसी खास चीज के बारे में नहीं। नीद नही आ रही थी, इसलिए समय काट रहे थे।" कापेन्द्यूखिन ने कहा।

बाद में उनकी बातें सुनकर मैंने देखा कि रात में भी वे उन्हीं चीजों के बारे में बातें करते थे, जिनके बारे में लोग दिन में बातें करते है: खुदा, न्याय, खुशहाली, स्त्रियों की मूर्खता और उनकी चालाकी, धनी लोगों की लालसा और लोलुपता, और यह कि जीवन ने मोटे तौर से एक ऐसे गड़बड़झाले का रूप धारण कर लिया है, जिसमे कोई पार नहीं पा सकता।

मै बड़े चाव से सुनता और उनकी बातचीत मेरे हृदय में गहरी हलचल का संचार करती। मुझे यह देखकर खुशी होती कि लगभग सभी लोग इस जीवन को बुरा मानते और उसे बदलने की इच्छा रखते है। लेकिन इसी के साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि जीवन को बदलने की यह इच्छा निरी इच्छा ही थी, और इस इच्छा के फलस्वरूप किसी पर कोई जिम्मेदारी आयद नहीं होती थी, और न ही इस इच्छा से वर्कशाप के जीवन में तथा कारीगरों के बीच उनके आपसी सम्बधों मे कोई अन्तर पड़ता था। यह सारी बातचीत मेरे सामने जीवन को आलोकित करते हुए उसके पीछे छिपे एक प्रकार के भयावह शून्य और खोखलेपन को प्रकट

करली जिसमें वे ही लोग, पोखर की सतह पर पडे सूखे पत्तों की भांति, बिना किसी लक्ष्य-उद्देश्य के, तेज हवा के झोंके खाकर इधर से उधर तैरते, घूमते तथा चक्कर खाते है, जो खुद अपने ही मुंह से जीवन की इस लक्ष्य तथा उद्देश्यहीनता की शिकायत करते. उसे लेकर रोते और झीकते रहते हैं।

गप्प-शप करते समय कारीगर हमेशा या तो शेखी बघारते दिखाई देते, या पश्चाताप करते अथवा किसी के सिर दोष मढ़ते नजर आते। जरा-जरा सी बातों को लेकर वे बुरी तरह झगड़ते, एक-दूसरे का दिल दुखाने से भी बाज नही आते। उन्हे चिन्ता थी तो यह कि मर जाने के बाद उनका क्या होगा। और यहां, दरवाजे के पास रखे गंदे पानी के डोल के निकट, फर्श का एक तख्ता गलसड़कर खत्म हो गया था और उसकी जगह एक भंभा खुल गया था जिसमे से सीलन और सडी हुई मिट्टी की गंध से भरी ठंडी हवा आती थी और हमारे पांव एकदम सुन्न हो जाते थे। पावेल और मैने घासफूस और चिथड़ों से भंभा बंद कर दिया। नया तख्ता लगाने की बात तो सब करते, लेकिन नतीजा कुछ नही निकलता, और भभा दिन-दिन बड़ा होता जाता। बर्फीली आंधियों के दिनों में ठंडी हवा का जैसे नलका सा खुल जाता और सब खांसी-जुकाम मे जकड़ जाते। रोशनदान की पंखी इतने बेहूदा ढंग से चीं-चीं करती कि लोग गंदी से गंदी गालियों की उसपर बौछार करते। लेकिन जब मैने उसमें तेल लगा दिया तो जिखरेव के कान चौकन्ने हो गये, और मुंह बिचकाकर वह बोला:

"चीं-चीं बन्द होने से तो यहां ऊब और भी बढ़ गयी है!"

हम्माम से लौटकर वे अपने गंदे बिस्तरों पर पड़े रहते। गंदगी और सड़ांध की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। इसी तरह अन्य कितनी ही छोटी-मोटी चीजें थी जो जीवन की कटुता को बढ़ाती थीं और जिन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता था। लेकिन कोई हाथ न हिलाता।

वे अक्सर कहते:

"लोगों के लिए किसी के दिल में तरस नही है। न भगवान उनपर तरस खाता है, न वे खुद अपने पर..."

लेकिन जब पावेल और मैंने गंदगी तथा जुंओ से परेशान दम-तोडते दावीदोव की सफाई-धुलाई की तो वे हमारा मजाक उड़ाने लगे, तेल मालिश की आवाज लगाकर हमें चिढ़ाने लगे, जुंवे मारने के लिए

अपनी गंदी कमीजें उतारकर हमारे सामने डाल दीं और मोट तौर से इस तरह हमें उल्लू बनाया मानो हमने कोई शर्मनाक और बहुत ही हास्यास्पद काम कर डाला हो।

बड़े दिन से लेकर चालीस दिन के व्रत तक अपने तख्ते पर लेटा दावीदोव बराबर खांसता और खून की कुल्लियां करता रहा। कूड़े की बाल्टी का निशाना साधकर वह थूकता, लेकिन अक्सर चूक जाता और खून के थक्के फ़र्श पर आ गिरते। रात को जब वह चीखता-चिल्लाता तो हमारी आंखें खुल जातीं।

क़रीब-करीब हर रोज, बिला नागा, वे कहते:

"इसे अस्पताल ले जाए बिना काम नहीं चलेगा!"

लेकिन वह कभी अस्पताल नहीं पहुंच सका। सबसे पहले तो यह हुआ कि उसके पासपोर्ट की तारीख बीत चुकी थी। इसके बाद उसकी तबीयत कुछ ठीक मालूम हुई, और अस्पताल जाने की बात फिर टल गई। अन्त में उन्होंने कहा:

"अस्पताल ले जाकर ही क्या होगा? दो दिन का यह मेहमान है। चाहे यहां मरे, चाहे अस्पताल में, बात एक ही है!"

"हां भाई, टिकट कटने में अब देर नहीं है," खुद मरीज भी उनकी बात की पुष्टि करता।

वह एक बहुत ही खामोश किस्म का हंसोड़ व्यक्ति था, और वर्कशाप की उदासी को तितर-बितर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ता था। अपने काले और अत्यन्त क्षीण चेहरे को तख्ते से नीचे लटकाकर भरभरी आवाज में वह घोषणा करता:

"भले लोगो, अब इस आदमी की भी आवाज़ सुनो जिसे खुदा ने इतने ऊंचे सिंहासन पर पहुंचा दिया है..."

इसके बाद, भारी-भरकम अन्दाज में, वह इस तरह की कोई उदासी भरी बकवास तुकबन्दी सुनाना शुरू करता:

पड़ा मैं अपने तख्ते पर
सारा-सारा दिन,
रात-रात भर,
रेंगते तिलचट्टे मुझ पर।

"यह कभी अपना जी छोटा नहीं करता," उसके श्रोता मुग्ध भाव से कहते।

कभी-कभी पावेल और मैं उसके तख़्ते पर चढ़ जाते, और वह जबरन ख़ुशी से कहता:

"तुम्हारी क्या खातिर करूं, मेरे भले दोस्तो! अगर पसंद हो तो बढ़िया, एकदम तर व ताज़ी, मकड़ी पेश कर सकता हूं।"

बहुत ही धीरे-धीरे, तिल-तिल करके, मृत्यु उसे दबोच रही थी, और इससे वह और भी उकता गया था।

"मौत भी मेरे पास फटकना नहीं चाहती!" तंग आकर वह कहता, और अपनी परेशानी को छिपाने का जरा भी प्रयत्न नहीं करता।

मौत के प्रति उसके इस निडर रवैये से पावेल का हृदय दहल जाता। रात को वह चौंक उठता, और मुझे जगाते हुए फुसफुसाकर कहता:

"मक्सीमिच, कहीं वह मर तो नहीं गया... मुझे लगता है कि ऐसे ही किसी दिन रात मे वह मर जाएगा, और नींद में हमें पता तक नहीं चलेगा। हे भगवान, मरे हुए आदमियों से मुझे कितना डर लगता है!.."

या फिर कहता:

"आखिर इसने जन्म ही क्यों लिया? बीस वर्ष का भी न हो पाया कि अब विदा ले रहा है!.."

एक रात, जब कि चांदनी खिली हुई थी, उसने मुझे जगाया। उसकी आंखें भय से फटी हुई थीं। फुसफुसाकर बोला:

"कुछ सुनाई देता है?"

ऊपर तख़्ते पर दावीदोव की सांस भरभरा रही थी, और जल्दी-जल्दी, साफ़ सुन पड़नेवाले शब्दों में वह बड़बड़ा रहा था:

"इधर, यहां ले आओ, यह देखो इधर..."

इसके बाद हिचकी का दौरा शुरू हो गया।

"मर रहा है। सच कहता हूं, वह मर रहा है!" पावेल ने विचलित स्वर में फुसफुसाकर कहा।

आज दिन भर मुझे बर्फ़ की लदाई-ढुवाई करनी पड़ी थी। मैं बुरी तरह थक गया था, और आंखों में नींद उमड़ी आ रही थी।

"तुझे मेरी कसम, सो नहीं," पावेल ने अनुरोध किया, "मुझपर दया कर, और सो नहीं!"

सहसा वह उछलकर घटनो के बल खड़ा हो गया और वहशियाना अन्दाज में चिल्ला उठा.

"उठो, उठो, दावीदोव मर गया!"

उसकी आवाज सुनकर कुछ कारीगरों की नींद उचट गयी। कुछ बिस्तर छोड़कर खड़े हो गये, और चिड़चिड़ाकर पूछने लगे कि बात क्या है।

कापेन्द्यूखिन तख्तो पर चढ गया, और चकित स्वर मे बोला:

"सचमुच, लगता तो ऐसा ही है कि मर गया, – हालांकि बदन में अभी भी कुछ गरमाई मालूम होती है..."

सबपर एक सन्नाटा सा छा गया। जिखरेव ने सलीब का चिन्ह बनाया, और कम्बल को और भी कसकर तानते हुए बोला:

"भगवान इसकी आत्मा को शान्ति दे!"

"अच्छा हो कि इसे यहा से उठा कर ड्योढ़ी मे ले जाएं..." किसीने सुझाव दिया।

कापेन्द्यूखिन नीचे उतर आया, और खिड़की में से झांकते हुए बोला:

"नहीं, सुबह तक इसे यहीं रहने दो, जीते-जी भी इसने किसी का रास्ता नहीं छेका..."

पावेल तकिये के नीचे सिर छिपाकर सुबकियां भरने लगा।

सितानोव बेसुध सोता रहा, वह मसका तक नही।

१५

नीचे खेतों में जमी बर्फ़ और ऊपर आकाश में सर्दी के बादल गल रहे थे, और भीगी हुई बर्फ़ तथा बारिश के छींटे धरती पर गिर रहे थे। सूरज की गति धीमी हो गई थी, और दिन की यात्रा पूरी करने में अब उसे काफ़ी समय लगता था। हवा में उतनी ठिठुरन नहीं रही थी। ऐसा मालूम होता था मानो बसन्त आ तो गया है, लेकिन अभी नगर से बाहर खेतो मे छिपा हुआ आंख-मिचौनी का खेल खेल रहा है। किलकारियां मारता और चौकड़ियां भरता किसी समय भी वह नगर में दाखिल हो जाएगा। सड़कों पर लाल मटियाला कीचड़ छाया था। फ़ुटपाथों पर पानी की छोटी-छोटी धाराएं छलछल करती बह रही थीं। आरेस्तान्तस्काया

चौक मे बर्फ के पिघलने से साफ जगहों पर चिड़ चिड़िया खुशी से चहक और फुदक रहे थे चिड़-चिड़ियों की भांति लोग भी उमंग से भरे थे चारों ओर वसन्त की सुहावनी भनभनाहट सुनाई देती, महान सन्तोसा व्रत पर गिरजे के घंटे, सुबह से सांझ तक करीब-करीब हर घड़ी बजते रहते और हृदय को हल्के-हल्के झकोले देते। उनकी टनटनाहट में, बूढ़े लोगों की आवाज़ की भांति, टीस छिपी होती। उनकी ठंडी उदास ध्वनि मे उन दिनों की गूंज सुनाई देती जो पीछे, बहुत पीछे, छूट गए थे और जिनके लौटने की अब कोई उम्मीद नहीं थी।

मेरे जन्म दिन के अवसर पर कारीगरों ने मुझे खुदा के प्यारे सन्त अलेक्सेई की एक छोटी सी और बहुत ही सुन्दर रंगी-चुनी प्रतिमा भेंट की। जिख़रेव ने, गम्भीर मुद्रा मे, एक लम्बा भाषण दिया जिसके शब्द सदा के लिए मेरी स्मृति मे अंकित हो गए।

"अभी तू क्या है," भौंहों को चढ़ाते और अपनी उंगलियों को हिलाते हुए उसने कहा, "कुल तेरह बरस की तेरी उम्र है, न तेरे मां है और न बाप। फिर भी मैं, उम्र में तुझसे चार गुना बड़ा होने पर भी, तेरी तारीफ़ करता हूं। जानता है क्यों? इसलिए कि इतनी कच्ची उम्र होते हुए भी तूने जीवन से मुंह नहीं मोड़ा, सीधे तनकर उसका सामना किया। और ऐसा ही होना चाहिये,—हमेशा आंखे खोलकर जीवन का सामना करो!"

उसने खुदा के दासों और खुदा के बंदों का जिक्र किया, लेकिन दासो और बंदों में क्या भेद है, यह मेरी समझ मे कभी नहीं आया, और मेरा खयाल है कि इस भेद को वह खुद भी नहीं समझता होगा। उसका भाषण बोझिल और उबा देनेवाला था और सब उसपर हंस रहे थे। प्रतिमा हाथ मे लिए मैं गुम-सुम खड़ा था, मेरे हृदय में उथल-पुथल मची थी और परेशानी में कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था कि क्या करूं, क्या न करूं। आखिर कापेन्द्यूखिन से नहीं रहा गया। झुंझलाकर चिल्ला उठा:

"मालूम पड़ता है किसी मुर्दे के सिरहाने फ़ातिहा पढ़ा जा रहा है। देखो तो, बेचारे के कान भी नीले पड़ गए!"

इसके बाद मेरी पीठ थपथपाते हुए उसने भी राग अलापना शुरू कर दिया:

"तुझमें सबसे अच्छी बात यह है कि तू सभी से घुल-मिलकर रहता

है तेरी यह बात मुझे पसंद है इसकी वजह से तुझे पीटना या डाटना मुश्किल हो जाता है—भले ही तूने सचमुच क़सूर किया हो!"

सब के सब, आंखों मे चमक भरे, मेरी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे खिले हुए थे और मुझे गुम-सुम खड़ा देख मुस्करा रहे थे। मेरा हृदय, भीतर ही भीतर, उमड़-घुमड़ रहा था। अगर यह सिलसिला कुछ देर और चलता तो मै अपने को रोक न पाता, मेरी आंखो से आसू बहने लगते—निरे आनन्द के आसू। इस भावना से कि ये लोग इस हद तक मुझे अपना समझते है, मेरा हृदय भर आया था। ठीक उसी दिन सबेरे ही, मेरी ओर सिर हिलाते हुए कारिंदे ने प्योत्र वासील्येविच से कहा था:

"बड़ा बेहूदा छोकरा है, एकदम निकम्मा!"

सदा की तरह उस दिन भी, तड़के ही मै दुकान पर काम करने गया था। लेकिन अभी दोपहर हो भी न पायी थी कि कारिंदे ने कहा:

"घर जा और भंडार की छत पर से बर्फ़ गिराकर कोल्ड-स्टोरेज वाले तहख़ाने में जमा दे..."

उसे मालूम नहीं था कि आज मेरा जन्म दिन है, और मेरा खयाल था अन्य सब भी यह नहीं जानते। वर्कशाप में जब बधाइयों का सिलसिला खत्म हो गया तो मैने कपड़े बदले, भागकर अहाते में पहुंचा, और बर्फ़ गिराने के लिए भंडार की छत पर चढ़ गया। इस बार जाड़ो में खूब जमकर बर्फ़ पड़ी थी। लेकिन उतावली मे मै तहख़ाने का दरवाज़ा खोलना भूल गया और फ़ावड़े से बर्फ़ गिराता रहा। नतीजा यह कि तहख़ाने का दरवाज़ा बर्फ़ के ढेर के नीचे छिप गया। जब मुझे अपनी गलती मालूम हुई तो मै तुरंत दरवाजे से इस ढेर को हटाने में जुट गया। लेकिन बर्फ़ नम थी और खूब कड़ी जम गई थी, और फ़ावड़ा लोहे का न होकर लकड़ी का था, जैसे ही ज्यादा दबाव पड़ा, वह टूट गया। इसी समय फाटक पर कारिंदा दिखाई दिया और मुझे यह रूसी कहावत याद हो आई कि खुशी के साथ हमेशा दुःख का पुछल्ला लगा रहता है।

"यह बात है!" कारिंदा मेरे निकट आया और गुस्से मे भनभनाते हुए बोला। "क्या इसी तरह काम किया जाता है, शैतान के पिल्ले! खोपड़ी पर ऐसा हाथ जमाऊंगा कि भेजा बाहर निकल आएगा..."

उसने फ़ावड़े का टूटा हुआ हत्था उठा लिया और कसकर हाथ घुमाया। लेकिन मै एक ओर को हट गया और गुस्से में उफनकर बोला:

अहाता साफ करना मेरी नौकरी मे कतई शामिल नही है समझ!

लकड़ी का हत्था उसने मेरे पावो मे फककर मारा लपककर मैने बर्फ का एक ढेला उठाया और पूरे जोर से ऐन उसके मुंह पर दे मारा। लिटपिटाकर वह भाग खड़ा हुआ। मै भी अधबीच में ही काम को छोड़कर वर्कशाप में लौट आया। इसके कुछ मिनट बाद कारिंदे की मंगेतर सीढियो से उतरकर भागती हुई आयी। वह एक काजूबाजू छोकरी थी और उसका बेरंग मुंह मुंहासों से भरा था। आते ही बोली:

"मक्सीमिच, ऊपर जा!"

"मै नही जाऊंगा," मैंने कहा।

लारिओनिच ने धीमी आवाज मे, चकित भाव से पूछा:

"यह क्या,—जायेगा क्यो नहीं?"

मैने उसे सारा किस्सा बता दिया। मेरी जगह वह खुद ऊपर गया। उसकी भौहें परेशानी मे कुछ तन गई थीं। जाते समय दबे स्वर में बोला:

"बड़ा तेज हो गया तू, भैया..."

वर्कशाप कारिंदे के खिलाफ़ ताने-तिश्नो से गूंज उठी।

"अब तो तुझे निकालकर ही छोड़ेगे!" कापेन्द्यूखिन ने कहा।

लेकिन इसका मुझे डर नहीं था। कारिंदे से मेरी तनातनी काफ़ी दिनों से चल रही थी और सभी सीमाएं पार कर चुकी थी। उसकी घृणा ने जिद्द का रूप धारण कर लिया था जो दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। मेरी घृणा भी उतनी ही हठीली और जोरदार थी जो कम होने का नाम न लेती थी। परन्तु मै यह समझना चाहता था कि वह मेरे साथ ऐसा बेतुका व्यवहार क्यो करता है।

वह जान-बूझकर कुछ रेजगारी फ़र्श पर गिरा देता जिससे फ़र्श साफ करते समय उसपर मेरी नजर पड़े। मै उसे उठाता और हमेशा काउण्टर पर रखे भिखारियो वाले प्याले में डाल देता। अन्त मे इस तरह रेजगारी बिखरने का रहस्य जब मेरी समझ में आया तो मैंने उससे कहा:

"रेजगारी का जाल बिछाकर तुम मुझे नहीं फांस सकते। तुम्हारी सारी कोशिशें बेकार जाएंगी!"

उसका चेहरा लाल हो गया और एकाएक चिल्लाते हुए बोला:

"मुझे ज्यादा सबक पढ़ाने की कोशिश न कर! मै क्या करता हूं और क्या नहीं, यह मै तुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं!"

फिर कुछ समलकर बोला

"तू समझता है मैं रेज़गारी जान-बूझकर फ़र्श पर गिराता हूं? वो तो अनजाने ही गिर जाती है..."

उसने मुझपर रोक लगा दी कि दुकान में पुस्तकें न पढूं। कहने लगा:

"ये पुस्तकें तेरे लिए नहीं है। क्या पारखी बनने का शौक चर्राया है, हरामखोर कहीं का!"

मुझे रेज़गारी-चोर बनाने की अपनी कोशिशों में उसने ढील नहीं डाली। मुझे लगा कि अगर किसी दिन बुहारते समय कोई सिक्का लुढककर किसी दराज में चला गया तो उसे चोरी का इलजाम लगाते जरा भी देर नहीं लगेगी। एक बार फिर मैने उसे टोका कि मेरे साथ इस तरह का खेल न खेले। लेकिन उसी दिन जब मैं ढाबे से उबलते हुए पानी से भरी केतली लेकर लौट रहा था तो मेरे कानों में उसकी आवाज की भनक पड़ी। पड़ोसी दुकानदार के नये कारिंदे से वह कह रहा था:

"तू उससे सांठ-गांठ करके भजन संहिता चोरी करने के लिए कह। आजकल ही एकदम नयी तीन पेटी पुस्तकें हमारे यहां आनेवाली हैं..."

मुझे यह भांपने में देर न लगी कि वे मेरे ही बारे में बातें कर रहे थे। कारण कि मेरे आते ही दोनों सकपका से गए। परन्तु केवल यही नहीं, और कुछ बातों से भी मुझे यह शुबहा था कि वे मेरे खिलाफ़ मिलकर साजिश कर रहे है।

पड़ोसी दुकानदार का कारिंदा चालाक आंखो वाला और दुबले-पतले तथा सूखे हुए कमजोर शरीर का जीव था। वह ऐसे ही, थोड़े-थोड़े दिनों के लिए काम करता था। दुकान के काम में वह होशियार था, लेकिन पूरा पियक्कड़ था, जब कभी पीने का भूत उसके सिर पर सवार होता तो मालिक उसे नौकरी से अलग कर देता, और इसके बाद फिर रख लेता। यों देखने में वह काफी विनम्र और अपने मालिक के हल्के से इशारे को भी माननेवाला मालूम होता था, लेकिन अपने मुंह के कोने में सदा एक व्यंगपूर्ण मुसकराहट छिपाए रहता और तीखे छींटे कसने में रस लेता। उसके मुंह से गंध आती, ठीक वैसी ही जैसी कि गंदे दांतों वाले लोगों के मुंह से आती है, हालांकि उसके दांत भले-चंगे और सफ़ेद थे।

एक दिन उसने मुझे बड़े अचरज में डाला: बहुत ही प्यार भरी

मुसकराहट के साथ वह मेरे पास आया और इसके बाद, एकाएक, उसने मेरी टोपी उतारकर दूर फेंक दी और मेरे बालों को अपने हाथों में दबोच लिया। फिर क्या था हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गए। बालकनी से धकेलता हुआ वह मुझे दुकान में ले आया और धक्का देकर मुझे कुछ बड़ी देव-प्रतिमाओं पर गिराने की कोशिश करने लगा जो फ़र्श पर रखी थीं। अगर वह सफल हो जाता तो इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिमाओं का कांच टूट जाता, उनके बेल-बूटे झड़ जाते और कीमती चित्रकारी चौपट हो जाती। लेकिन वह कुछ ताकतवर नहीं था। शीघ्र ही मैंने उसे अपने काबू में कर लिया। इसके बाद फ़र्श पर वह पसर गया और अपनी आहत नाक को सहलाते हुए फुक्का मार कर रोने लगा। इस दाढ़ी वाले आदमी को रोता देखकर मैं हक्का-बक्का सा रह गया।

अगले दिन, सुबह के समय जब हमारे मालिक कहीं चले गए थे और हम दोनों अकेले थे, एक आंख के नीचे के और नाक के सूजे हुए हिस्से को सहलाते हुए उसने बड़े ही मित्र भाव से कहा :

"तू सोचता है मैं अपनी मर्जी से तेरे ऊपर झपटा था? नहीं, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं। मुझे पता था कि तू मुझसे जबर है और जल्दी ही मुझे दबोच लेगा। मुझमें ताकत कहां है, नशे की लत ने मुझे खोखला बना दिया है। असल में खुद मालिक के कहने पर मैंने वह हरकत की थी। मालिक ने कहा : 'जाकर उससे लिपट जा और इस तरह लड़ कि उनकी दुकान में ज्यादा से ज्यादा तोड़-फोड़ हो जाये और भारी नुकसान पहुंचे।' अगर मालिक ने मुझे मजबूर न किया होता तो अपने आप मैं कभी ऐसी हरकत न करता! देख, तूने मेरे तोबड़े का क्या हाल बना दिया है..."

मुझे उसकी बात सच मालूम हुई और मेरा हृदय तरस की भावना से भर गया। यह मैं जानता था कि उसे बहुत कम पैसा मिलता है जिससे उसका गुजर नहीं होता। तिस पर उसकी पत्नी इतनी जबर थी कि बराबर उसे पीटती रहती थी। फिर भी मैंने उससे पूछा :

"अगर वो तुमसे किसी को जहर देने के लिए कहे, तो क्या तुम सचमुच जहर दे दोगे?"

"वो कुछ भी करा सकता है," उसने दयनीय मुस्कराहट के साथ धीमे स्वर में कहा, "वो मुझसे कुछ भी करा सकता है..."

ऐसे ही एक दिन, मौका देखकर, वह मुझसे कहने लगा :

मेरे पास फूटी कौडी भी नही है घर का चूल्हा ठंडा पड़ा है—खाने के लिए एक दाना तक नहा है, और मेरी औरत घड़ी भर के लिए चैन नही लेने देती। अगर तू अपने स्टोर में से एक देव-प्रतिमा चुपचाप उठाकर दे दे तो मै उसे बेचकर कुछ पैसे खड़े कर लूंगा। बोल मुझपर इतनी दया करेगा न? देव-प्रतिमा न ला सके तो फिर भजन संहिता सही।"

मुझे जूतों की दुकान और गिरजे के चौकीदार की बात याद हो आई और ऐसा लगा कि निश्चय ही यह आदमी भेदिया है। लेकिन मुझसे इनकार करते नही बना। मैने उसे एक देव-प्रतिमा उठाकर दे दी। भजन संहिता कुछेक रूबल की थी और मुझे लगा कि उसे उठाकर देना ज्यादा बड़ा पाप होगा। क्या किया जाये? नैतिकता में सदा अंकगणित छिपा होता है। हमारे समूचे "दण्ड-विधान" का वट वृक्ष, न्याय और धर्म की चादर में लिपटा होने पर भी, अपने हृदय में इसी गणना का नन्हा बीज छिपाए है,—व्यक्तिगत सम्पत्ति का दानव उसके पीछे अट्टहास कर रहा है।

पड़ोस की दुकान के इस दयनीय कारिंदे से जब मैंने अपनी दुकान के कारिंदे को यह कहते सुना कि वह मुझे भजन संहिता चुराने के लिए बहकाए तो मेरा हृदय सहम गया। यह साफ़ था कि हमारी दुकान के कारिंदे से मेरी उस उदारता की बात भी नहीं छिपी है जिससे प्रेरित होकर मैंने दुकान से प्रतिमा की चोरी की थी। दूसरे शब्दो में यह कि पड़ोसी दुकान का कारिंदा सचमुच मे भेदिया था।

दूसरों की जेब काटकर उदारता दिखाने के सस्तेपन तथा उनके षड्यंत्र के कमीनेपन ने मेरे हृदय को कचोटना शुरू किया, और विक्षोभ तथा घृणा के भावों से मै भर गया। मुझे अपने पर भी गुस्सा आया और दूसरो पर भी। कई दिन तक मै एक अजीब झुंझलाहट में फंसा रहा। नयी पुस्तकों के आने तक मेरी बुरी हालत हो गई। आखिर पुस्तके आईं। स्टोर में जाकर मैंने उन्हें खोलना शुरू किया। तभी पडोस की दुकान का कारिंदा मेरे पास आया और भजन संहिता मांगने लगा।

"क्या तुमने देव-प्रतिमा चुराने की बात मालिक से कही थी?" मैंने उससे पूछा।

"हां," गरदन लटकाते हुए उसने स्वीकार किया, "क्या करूं, मेरे पेट में बात पचती नहीं..."

सुनकर मैं सन्न रह गया। पुस्तकों की पेटी खोलना छोड़ मैं फर्श पर बैठ गया और उसके चेहरे की ओर ताकने लगा। अस्तव्यस्त और अत्यन्त दयनीय मुद्रा में वह जल्दी-जल्दी बड़बड़ा रहा था :

"तेरे मालिक ने भांप लिया, या यह कहो कि मेरे मालिक ने भाप लिया, और तेरे मालिक से..."

मुझे लगा कि अब खैर नहीं है। इन लोगों के जाल में मै फंस गया हूं और अब, निश्चय ही, बाल-अपराधियों की किसी जेल में मुझे बंद कर दिया जाएगा! लेकिन जहां सेर, वहां सवा सेर, जब यही सब होना है तो फिर अन्य किसी चीज की चिन्ता क्यों की जाए! चुल्लू भर पानी मे डूबकर मरने से तो यह कहीं अच्छा है कि गहरे पानी में डूबकर मरा जाए। सो मैंने भजन संहिता उठाई और कारिंदे को दे दी। उसने उसे कोट के भीतर छिपा लिया और वहां से चल दिया। कुछ भी देर न हुई होगी कि वह फिर लौट आया और पुस्तक मेरे पांवों के पास आ गिरी।

"मैं इसे नहीं ले सकता। तेरे साथ तो मै न रहूंगा..." कहते हुए वह चला गया।

मै उसकी बात समझ नहीं सका। यह क्या बात हुई कि मेरे साथ वह नहीं रहेगा? जो हो, यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि उसने पुस्तक लौटा दी। इसके बाद हमारी दुकान का कोताहकद कारिंदा मुझे और भी ज्यादा दुश्मनी तथा सन्देह की नजर से देखने लगा।

मालकिन के बुलाने पर भी जब मैं नहीं गया और मेरी जगह लारिओनिच ने जीने से ऊपर जाना शुरू किया तो ये सब बाते मेरे दिमाग में घूम गईं। वह जल्दी ही ऊपर से लौट आया, पहले से भी ज्यादा उदास और एकदम गुमसुम। उस समय उसने कुछ नहीं कहा। लेकिन सांझ के भोजन से ठीक पहले, उस समय जब कि मैं और वह अकेले थे, वह मुझसे बोला :

"मैंने बहुत कोशिश की कि दुकान के काम से छुडाकर तुझे केवल वर्कशाप में काम करने दे। लेकिन बात नहीं बनी! कुज़्मा तिलचट्टा कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। न जाने तुझसे क्या खार खाये बैठा है..."

इस घर में मेरा एक दुश्मन और था—कारिंदे की मंगेतर, एक बहुत चुलबुली लड़की। वर्कशाप के सभी नौजवान उससे खेलते और छेड़छाड़

करते थे। वे ड्योढ़ी में खड़े होकर उसका इंतजार करते और जब वह आती तो खूब छीना-झपटी करते। वह जरा भी बुरा न मानती, पिल्ले की भांति दबे स्वर में केवल कूं-कां करती रहती। सुबह से लेकर सोने के समय तक उसका मुंह चलता रहता—मिठाई, शहद की रोटियां, केक आदि के टुकड़े उसकी जेबों में सदा भरे रहते। भूरी आंखों से युक्त उसका बेरंग चेहरा देखने में बड़ा बुरा मालूम होता। अपनी आंखों को वह बराबर टेरती रहती। जब भी वह आती, पावेल और मुझसे ऐसी पहेलियां बूझती जिनके जवाब गंदे होते या ऐसी ध्वनियों और शब्दों का जल्दी-जल्दी एक सांस में उच्चारण करने के लिए कहती जिनके मिलने से कोई न कोई गंदा अर्थ निकलता।

बूढ़े कारीगरों में से एक ने उससे कहा:

"क्या, तुम्हें लाज नहीं आती?"

वह खिलखिलाकर हंसी और जवाब में एक गंदे गीत की यह पंक्तियां गुनगुनाने लगी:

रंगीली शरमा जायेगी,
तो हाथ मलती रह जायेगी!

इस तरह की लड़की मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह मुझे बड़ी घिनौनी मालूम होती, और उसके भोंडे तौर-तरीकों को देखकर मैं सहम जाता। जब उसने देखा कि मैं उससे कतराता और बचता हूं तो वह और भी जोरों से मेरे पीछे पड़ गयी।

एक दिन नीचे तहखाने में वह अचार के मर्तबानों को भाप दे रही थी। पावेल और मैं भी उसकी मदद के लिए वहां मौजूद थे। तभी उसने कहा:

"लौंडो, आओ तुम्हें चुम्मा लेना सिखाऊं।"

"तू क्या सिखाएगी, मैं तुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं।" हल्की हंसी हंसते हुए पावेल ने कहा और शराफत को थोड़ा ताक पर रख मैंने उसे सलाह दी कि यह कला अपने मंगेतर को सिखाए। मेरी बात सुन वह झुंझला उठी। गुस्से में बोली:

"तू निरा सूअर है! यह तक नहीं जानता कि एक लड़की से किस तरह पेश आना चाहिए। मैं तो इतनी मेहरबानी से पेश आती हूं और तू नाक चढ़ाता है!"

इसके बाद उंगली हिलाते हुए बोली -

"तुझे इसका भुगतान करना पड़ेगा। मै आसानी से छोड़नेवाली नहीं हूं!"

पावेल ने मेरा पक्ष लिया। बोला:

"अगर तेरे मंगेतर को इन हरकतों का पता चला गया तो फिर देखना किस तरह तेरे गाल लाल करता है।"

मुंहासे भरे अपने मुंह को उसने तिरस्कार से सिकोड़ा और फनफनाते हुए बोली:

"मुझे उसका जरा भी डर नहीं है। इतने भारी दहेज के साथ एक नहीं बीस मंगेतर मुझे मिल जाएंगे, उससे लाख दर्जे अच्छे! जब तक विवाह का जूआ गरदन पर नहीं लदता तभी तक तो लड़की को दो घड़ी मौज करने का मौका मिलता है।"

इसके बाद वह पावेल से खेल करने लगी और मुझसे ऐसी कुढ़ी कि फिर सीधी न हुई। जब भी मौका मिलता, मेरे खिलाफ़ इधर की उधर लगाती।

दुकान पर काम करना मेरे लिए एक मुसीबत हो गया और जैसे-जैसे दिन बीतते गये मेरी मुसीबत बढ़ती गयी। मै बुरी तरह ऊब चला। जितने भी धर्मग्रंथ वहां थे, सभी मैने पढ़ डाले और पारखियों के तर्क-कुतर्क सुनते-सुनते मै तंग आ गया। उनकी बातो में कभी कोई नवीनता नहीं होती, हमेशा और हर बार उन्ही घिसी-पिटी बातो को दोहराते। केवल प्योत्र वासील्येविच ही एक ऐसा था जो अभी भी मुझे कुछ आकर्षक मालूम होता था। मानव-जीवन के काले पक्ष का उसे गहरा अनुभव था और बहुत ही दिलचस्प तथा उत्साहपूर्ण ढंग से वह अपनी बातों को व्यक्त करता था। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो पैगंबर येलिसेई ने भी, इसी प्रकार एकदम एकाकी, हृदय में गहरी जलन और बदले की भावना लिए, इस धरती का चप्पा-चप्पा छाना होगा।

लेकिन जब कभी मैं उसे लोगों के बारे में अपने अनुभव या विचार बताता तो वह बड़ी तत्परता से सुनता और इसके बाद सारी बाते कारिंदे के सामने दोहरा देता जो या तो मुझे झिड़कता अथवा मेरा मजाक उड़ाता।

एक दिन वृद्ध के सामने मैने अपना यह भेद प्रकट कर दिया कि

उसकी कही हुई बातों को भी मैं अपनी उसी कापी में दर्ज करता जाता हूं जिसमें कि मैंने कविताएं और पुस्तकों के अंश उतार रखे हैं। यह सुनकर उसकी सिट्टी गुम हो गई। तेजी से वह मेरी ओर झुका और भयभीत सा होकर मुझसे पूछने लगा:

"तू ऐसा क्यों करता है! यह ठीक नहीं है बच्चे! तू क्या मेरी बातों को याद रखना चाहता है! नहीं, नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। देखो तो, कैसा छोकरा है! जरा मुझे अपनी वह कापी तो दिखा!"

बहुत देर तक और जमकर वह इस बात पर जोर देता रहा कि मैं कापी उसके हवाले कर दूं, या कम से कम उसे जला दूं। इसके बाद, विचलित स्वर में, वह कारिंदे से फुसफुसाता रहा।

घर लौटते समय कारिंदे ने कड़े स्वर में मुझसे कहा:

"मुझे पता चला है कि तू कोई रोजनामचा रखता है। मैं तुझसे कहे देता हूं कि अपनी यह हरकत बंद कर। सुन लिया? केवल खुफिया पुलिस के लोग ऐसा काम करते है!"

"और सितानोव?" अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया, "उसके बारे में तुम क्या कहोगे? वह भी तो रोजनामचा रखता है।"

"क्या वह भी रखता है? बेवकूफ नहीं तो!"

कुछ देर वह चुप रहा। फिर कुत्सित नरमाई से दोहरा हो भेद भरे अन्दाज में बोला:

"एक बात सुन। मुझे अपनी कापी दिखा दे, और सितानोव की भी। मैं तुझे आधा रूबल दूंगा। लेकिन देख, यह काम चुपचाप करना। किसी के कान में भनक तक न पड़े, सितानोव के भी नहीं!.."

उसे जैसे पक्का विश्वास था कि उसकी बात मैं टालूंगा नहीं। उसने अपना सुझाव रखा और इसके बाद, बिना किसी दुविधा या झिझक के, अपनी छोटी टांगों से दुलकी चाल चलता हुआ मेरे आगे निकल गया।

घर पहुंचते ही कारिंदे ने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सितानोव को बता दिया। सुनकर उसकी भौंहों में बल पड़ गये।

"तूने उससे कहा ही क्यों? अब वह किसी न किसी तरह हमारी कापियां उड़ा लेगा,—मेरी भी और तेरी भी। लेकिन ठहर, अपनी कापी तू मुझे दे दे। मैं उसे कहीं छिपा दूंगा। वह तेरे पीछे पड़ा है। देख लेना, वह तुझे निकालकर ही दम लेगा!"

मुझे भी इसमें सन्देह नहीं था, और मैंने निश्चय कर लिया कि नानी के घर लौटते ही मैं यह नौकरी छोड़ दूंगा। नानी बलाखना में थी। सारे जाड़े वहीं रहीं, किसीने अपनी लड़कियों को लेस बुनना सिखाने के लिए बुला लिया था। नाना अब फिर कुनाविनो में ही आ बसे थे। मैं कभी उनसे मिलने नहीं जाता था और भूले-भटके अगर कभी उनका नगर आना होता तो वह खुद भी मुझसे नहीं मिलते थे। एक दिन अनायास ही बाज़ार में उनसे मुलाकात हो गई। रैकून का भारी-भरकम कोट पहने रोब के साथ सामने से वह आ रहे थे, मानो कोई पादरी चला आ रहा हो। जब मैंने नमस्ते की तो ठिठक गए, एक हाथ उठाकर अपनी आंखों पर साया किया और खोए हुए से अन्दाज में बोले:

"ओह, तू है... सुना है कि आजकल देव-प्रतिमाएं बनाता है। ठीक है, ठीक है... अच्छा जा!"

इसके बाद, मुझे एक ओर धकियाते हुए, अपने उसी रोबीले अन्दाज़ और ठाठ के साथ आगे बढ़ गए।

नानी से भी इन दिनों बिरले ही भेंट होती। वह दिन-रात, बिना सांस लिए, काम करती थी। नाना का बोझ भी अब वही संभालती थी। आयु के साथ नाना सठिया गये थे। नाना के अलावा अपने बेटों के बच्चों का लालन-पालन भी नानी के ही जिम्मे था। मिखाईल मामा के लड़के साशा के लिए जो एक खूबसूरत, सपनों में खोया और पुस्तकों का प्रेमी युवक था, नानी खास तौर से परेशान रहती। वह रंगसाज़ी का काम जानता था और किसी एक जगह जमकर काम नहीं करता था। जब-तब नौकरी छोड़कर घर पर बैठ जाता और नानी उसका दोजख ही नहीं भरती, बल्कि उसके लिए अगली नौकरी भी खोजती। साशा की बहिन का बोझ भी कुछ कम नहीं था। गलत विवाह करके उसने एक मुसीबत और मोल ले ली थी। उसका पति, जो एक मिल में काम करता था, शराबी था। वह उसे बुरी तरह मारता और घर से निकाल देता था।

नानी से जब भी मैं मिलता, उनकी आत्मा के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता। लेकिन मुझे ऐसा लगता कि नानी की अद्भुत आत्मा परियों की दुनिया में निवास करती है। नतीजा यह कि वह चारों ओर की कटु वास्तविकता को नहीं देख पाती। उन आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं से जो मुझे घेरे रहतीं, नानी सर्वथा मुक्त और परे थी।

"यह सब कुछ नहीं, अल्योशा, सहने की क्षमता होनी चाहिए।"

जीवन की कुरूपता और दमघोट भयानकता का, लोगों की मुसीबतों और हर उस चीज का जिसके विरुद्ध मेरा हृदय इतने जोरों से उबाल खाता था, जब मैं नानी से जिक्र करता तो उसके मुंह से सिवा इसके और कुछ न निकलता कि हममे सहने की क्षमता होनी चाहिए।

लेकिन सहना मेरी प्रकृति के विरुद्ध था और अगर ढोर-डंगरों, काठ और पत्थरों के इस गुण का कभी-कभी मै प्रदर्शन करता भी था तो केवल अपने आपको जांचने-परखने के लिए, अपनी उस शक्ति और दृढ़ता का अन्दाज लगाने के लिए जिसके सहारे इस धरती पर मेरे पांव जमे थे। ठीक वैसे ही जैसे कि अपनी बचकानी मूर्खता के जोश अथवा अपने से बड़ों की शक्ति से ईर्ष्या के चक्कर में पड़कर युवक अपने हाड़-मांस और पुट्ठों की सकत से भी भारी बोझा उठाने की कोशिश करते और कभी-कभी इसमे सफल भी हो जाते है, जैसे कि शेखी में वे नामी पहलवानों की भांति मन-मन भर का वजन उठाने की कोशिश करते है।

मै भी ऐसा ही करता—शाब्दिक अर्थ में भी, और भावनात्मक अर्थ मे भी। शारीरिक और आत्मिक, दोनो रूपों में मै अपनी शक्ति की जांच करता और इसे मेरा सौभाग्य ही समझिए कि इस जांच के दौरान मै घातक चोट खाने या जन्म भर के लिए पंगु होने से बच गया। और अगर सच पूछो तो दुनिया में अन्य कोई चीज आदमी को इतने भयानक रूप से पंगु नहीं बनाती जितना कि सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना आदमी को पंगु बनाता है।

अन्त में पंगु होकर अगर मुझे धरती माता की शरण लेनी ही पड़ेगी तो, जायज गर्व के साथ, कम से कम यह तो मेरे पास कहने के लिए होगा कि करीब चालीस वर्ष तक मैंने परिस्थितियों के खिलाफ अडिग संघर्ष किया, उन भले लोगों के खिलाफ़ संघर्ष किया जो सहन करने की ज़ंजीरों से बरबस मुझे जकड़कर मेरी आत्मा को कुंठित कर देना चाहते थे।

कोई न कोई शरारत करने, लोगो का जी बहलाने और उन्हे हंसाने की मेरी इच्छा रह-रहकर ज़ोर पकड़ती। और यह काम भी मै पूरी सफलता के साथ करता। नोज्नी बाज़ार के सौदागरो का वर्णन करने और उनकी नकल उतारने में मै बेजोड़ था। मै दिखाता कि देहातिये और उनकी

औरते किस तरह देव प्रतिमाएं खरीदते और बचते हैं, किस सफाई से कारिंदा उन्हें ठगता और धोखा देता है, और किस तरह पारखी बहसें करते हैं।

कारीगर हंसते-हंसते दोहरे हो जाते, हाथ का काम छोड़कर मुझे नकलें उतारता हुआ देखते। जब तमाशा खत्म हो जाता तो लारिओनिच कहता :

"यह सब तमाशा सांझ के भोजन के बाद किया कर, जिससे काम में हर्ज न हो..."

इस तरह के प्रदर्शनों के बाद मैं सदा बहुत हल्का अनुभव करता, ऐसा मालूम होता मानो मेरे सीने पर से कोई भारी बोझ उतर गया हो। घंटे डेढ़ घंटे तक मेरा दिमाग इतने अद्‌भुत रूप में रीता और स्वच्छ मालूम होता जैसे उसका सारा कूड़ा-कबाड़ साफ हो गया हो, लेकिन कुछ देर बाद वह फिर मानो कील-कांटों से भर जाता और उनकी दुःखद चुभन का मैं अनुभव करता।

मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मेरे चारों ओर सड़ा हुआ दलिया फफद रहा हो और उसकी सड़ांध, धीरे-धीरे, मुझे भी अपने चंगुल में दबोच रही हो।

"क्या समूचा जीवन इसी तरह का होता है?" मैं सोचता। "और क्या मैं भी, इन्हीं लोगों की भांति, कुछ देखे और जाने बिना, अच्छे जीवन की झलक पाए बिना, इसी तरह शेष हो जाऊंगा?"

जिखरेव जो मुझे ध्यान से देख रहा था, बोला :

"क्या बात है, मक्सीमिच, इधर कुछ चिड़चिड़ा होता जा रहा है?"

सितानोव भी अक्सर पूछता :

"क्यो, क्या हुआ है तुझे?"

मेरी समझ में न आता कि उन्हें क्या जवाब दूं।

जीवन के औघड़पन ने, हठीली बेरहमी के साथ, अपने ही डाले हुए श्रेष्ठतम चिन्हों को मेरे हृदय से मिटा दिया और उनकी जगह, मानो खीजकर, कुत्सित और निकम्मे कीरम-कांटे डाल दिए। गुस्से से भरकर मैं हाथ-पांव पटकता, अडिग रूप से जीवन की हिंसा का विरोध करता। अन्य सब की भांति मैं भी उसी नदी में बह रहा था, लेकिन उसका पानी मुझे अधिक सुन्न करता, मेरी सारी स्फूर्ति हर लेता और

कभी कभी तो ऐसा मालूम होता मानो मैं उसकी अतल गहराई में डूबा जा रहा हूं।

लोगों का मेरे साथ अच्छा बरताव था। वे मुझपर कभी नहीं चिल्लाते, जैसा कि वे पावेल के साथ करते थे, न ही वे मुझपर रोब झाड़ते या मनमाना हुक्म चलाते। अपना सम्मान दिखाने के लिए वे पूरा नाम लेकर मुझे पुकारते। यह सब मुझे अच्छा लगता, लेकिन यह देखकर मुझे दुःख होता कि किस हद तक और कितनी बड़ी मात्रा में वे वोद्का पीते हैं, पीने के बाद वे कितने घिनौने हो जाते हैं, और स्त्रियों के साथ कितने गिरे हुए तथा विकृत सम्बन्ध रखते है। यह जानते हुए भी कि वोद्का और स्त्री के सिवा मन बहलाने का अन्य कोई साधन इस जीवन ने उनके पास नहीं छोड़ा है, मेरा जी भारी हो जाता।

उदास भाव से नताल्या कोज्लोव्स्काया को मैं याद करता। अपने आप मे वह काफ़ी समझदार और साहसी स्त्री थी। लेकिन वह भी स्त्रियों को निरे मनबहलाव की चीज समझती थी।

फिर नानी का मुझे ख्याल आता, रानी मार्गो को मै याद करता।

रानी मार्गो की याद करते समय मेरा हृदय सहम सा जाता। अन्य सबसे चारों ओर की हर चीज से वह इतनी भिन्न और अलग थी कि लगता जैसे मैंने उसे सपने में देखा हो।

स्त्रियों के बारे में मैं जरूरत से ज्यादा सोचने और मंसूबे तक बांधने लगा कि अन्य सब की भांति अगली छुट्टी का दिन मै भी किसी स्त्री के साथ आनन्द मे बिताऊंगा। किसी शारीरिक आकांक्षा से प्रेरित होकर मैं ऐसा नहीं सोचता था। मैं स्वस्थ और बेहद स्वच्छता पसन्द था। लेकिन कभी-कभी किसी कोमल और सहानुभूतिशील स्त्री को हृदय मे लगाने और उसके सामने अपनी समूची वेदना उंडेलने के लिए मैं बुरी तरह बेचैन हो उठता। मेरी यह कामना बहुत कुछ वैसी ही थी जैसे कि एक बच्चा अपनी मां की गोद में जाकर कुनमुनाने के लिए ललक उठता है।

पावेल पर मुझे ईर्ष्या होती। रात जब कि हम दोनों पास-पास लेटे हुए थे, वह मुझसे अपने उस प्रेम का ज़िक्र किया करता जो कि सड़क के उस पार रहनेवाली नौकरानी से चल रहा था।

"क्या बताऊं, भाई, महीना भर पहले तक मैं उसे बर्फ़ की गेंदों से मार-मारकर दूर भगा देता था और उसकी ओर आंख तक उठाकर नहीं

देखना था लेकिन अब जब वह बाहर वाले बेंच पर मुझसे सटकर बैठता है तो उसका स्पर्श ऐसा लगता है मानो दुनिया में उस जैसा और कोई नहीं है!"

"तू उससे क्या बातें करता है?"

"सभी तरह की बातें होती हैं। वह मुझे अपने बारे में बताती है, और मैं उसे अपने बारे में बताता हूं। और फिर हम चुम्बन करते हैं... केवल वह... बस, हाथ नहीं रखने देती... वह इतनी भली है कि तू सोच तक नहीं सकता... तू आदमी है या इंजन, हर वक्त धुआं उड़ाता रहता है!"

धुआं तो मैं बेहद उड़ाता था। तम्बाकू का नशा मेरे दिमाग पर छा जाता, और मेरी परेशानी को कुछ कम कर देता। सौभाग्यवश वोद्का के जायके और गंध से मैं दूर भागता था। पावेल अलबत्ता खूब पीता था। नशे में धुत्त होने के बाद वह सुबकियां सी भरता और रोनी आवाज में रट लगा देता :

"मैं घर जाना चाहता हूं! मुझे घर भेज दो..."

वह अनाथ था। उसके मां-बाप एक मुद्दत हुई मर गए थे। उसके घर पर न कोई बहन थी, और न भाई। आठ वर्ष की आयु से ही वह अजनबियों के बीच जीवन बिताने लगा था।

मेरा हृदय रह-रहकर ऊब उठता और कहीं भाग जाने को जी चाहता। वसन्त के आगमन ने मेरी इस भावना को और भी मुंहज़ोर बना दिया। आखिर मैंने एक बार फिर जहाज़ पर काम करने का निश्चय किया जिससे, आस्त्रख़ान पहुंचने के बाद वहां से फ़ारस के लिए तिड़ी हो जाऊं।

याद नहीं पड़ता कि फारस जाने की यह बात मेरे मन में कैसे समा गई। इसका कारण शायद यह था कि नीज्नी नोव्गोरोद के मेले में फ़ारस के सौदागरों को मैंने देखा था और वे मुझे बहुत अच्छे लगे थे। धूप में बैठे हुए वे हुक्का गुड़गुड़ाते रहते—पत्थर के बुतों की भांति। उन्होंने अपनी दाढ़ियां रंग रखी थीं, और ऐसा मालूम होता मानो उनकी बड़ी-बड़ी काली आंखें सभी कुछ जानती हैं, उनसे कुछ भी छिपा नहीं है।

भागने का मैंने सचमुच निश्चय कर लिया था और शायद मैं भाग भी जाता, अगर बीच में एक घटना न हो जाती। ईस्टर सप्ताह के

दौरान जब कुछ कारीगर अपने-अपने गांव चले गये थे और बाक़ी पीने-पिलाने में मगन थे, अपने भूतपूर्व मालिक—नानी की बहन के लड़के—से मेरी भेंट हो गई। ओका नदी के चढ़ाव की एक ओर एक खेत में वह घूमने निकला था।

धूप खिली हुई थी और वह सामने से चला आ रहा था: धूसर रंग का हल्का कोट पहने, हाथ पतलून की जेबों में डाले, दांतों में सिगरेट दबाए और अपनी टोपी को, बांके अन्दाज़ से, पीछे खिसकाकर गुद्दी पर जमाए। निकट पहुंचने पर मित्रतापूर्ण मुसकराहट से उसने मेरा अभिवादन किया। उसका यह मौजी और आजादी पसन्द रूप देखकर मैं मुग्ध हो गया। खेत में उसके और मेरे सिवा अन्य कोई नहीं था।

"ओह पेशकोव! प्रभु ईसा तुझे खुश रखें!"

ईस्टर के उपलक्ष्य में एक-दूसरे का मुंह चूमने के बाद उसने मुझसे पूछा कि कैसी गुजर रही है। मैंने उसे साफ़-साफ बता दिया कि वर्कशाप से, इस नगर से, और हर चीज से मैं बुरी तरह ऊब उठा हूं और मैंने फ़ारस जाने का निश्चय कर लिया है।

"अपने इस निश्चय को धता बता!" उसने गम्भीर स्वर में कहा। "फारस जाकर कौन स्वर्ग मे पहुंच जाएगा। मैं कहता हूं, उसे जहन्नुम रसीद कर। समझे भाई, तेरी उम्र में मैं खुद भी इसी तरह भागने के लिए बेचैन रहता था, जिधर भी शैतान खींच ले जाए!.."

शैतान को वह बेफ़िक्री के साथ उछालता था और उसका यह अन्दाज मुझे बड़ा अच्छा लगा—बहुत ही उन्मुक्त और वसन्त की उमंग में पगा हुआ। उसकी हर चीज से एक अजीब उमंग और बेफ़िक्री फूटी पड़ती थी।

"सिगरेट पिएगा?" मोटी सिगरेटों से भरा चांदी का केस मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने पूछा।

उसकी इस बात ने मुझे अब पूरी तरह वश में कर लिया!

"सुन, पेशकोव, मेरे साथ फिर काम करने के बारे में तेरी क्या राय है? इस साल मेले के लिए मैंने कोई चालीस हजार के ठेके लिए है। मैं तुझे बाहर, मेले के मैदान में ही, काम दूंगा। एक तरह से तू ओवरसीयर का काम करेगा। जो निर्माण-सामग्री आए उसे संभालना, इस बात की निगरानी रखना कि हर चीज़ ठीक समय पर सही जगह पहुंच

जाए और यह कि मजदूर चोरी चकारी न करे क्यों यह ठीक रहेगा न? वेतन – पांच रूबल महीना और पांच कोपेक भोजन के लिए. घर की स्त्रियों से तेरा कोई वास्ता नहीं पड़ेगा। सुबह ही तू काम पर निकल जाएगा, और रात को लौटेगा। स्त्रियों से कोई मतलब नहीं। लेकिन इतना करना कि इस भेंट के बारे में उनसे भूलकर भी जिक्र न करना। बस, रविवार के दिन चुपचाप चला आना, – मानो तू आकाश से टपक पड़ा हो। क्यों, ठीक है न?

गहरे मित्रों की भांति हमने एक-दूसरे से विदा ली। उसने मुझसे हाथ मिलाया और दूर पहुंच जाने के बाद भी काफ़ी देर तक टोपी हिलाता रहा।

जब मैंने कारीगरों के सामने नौकरी छोड़ने का एलान किया तो करीब-क़रीब सभी ने दुःख प्रकट किया। अपने प्रति उनका यह लगाव मुझे बड़ा प्रिय मालूम हुआ और मैं खुशी से फूल गया। पावेल खास तौर से अस्तव्यस्त हो उठा। शिकायत के स्वर में बोला:

"भला सोच तो, हम लोगों को छोड़कर उन देहातियों के बीच तू रहेगा? वहां बढ़ई होंगे, रंगसाज होंगे... छिः, इसी को कहते हैं आसमान से गिरकर ताड़ में अटक जाना..."

जिखरेव बड़बड़ाया:

"जवानी में आदमी वैसे ही मुसीबत खोजता है जैसे मछली पानी में गहराई खोजती है..."

कारीगरों ने मुझे विदाई दी जो बहुत ही बेरस और बुरी तरह उबा देनेवाली थी।

नशे में धुत्त जिखरेव ने कहा:

"निश्चय ही जीवन में कभी तू यह करेगा और कभी वह, लेकिन अच्छा यही है कि एक चीज को पकड़ ले और शुरू से आख़िर तक उसी से चिपका रह..."

"मतलब यह कि सब कुछ भूलकर उसी के साथ दफ़न हो जा!" शान्त से लारिओनिच ने भी अपना स्वर छेड़ा।

मुझे लगा कि इस तरह की बातें वे बेमन से कर रहे हैं, मानो किसी रिवाज की पूर्ति कर रहे हों। वह धागा जो हमें बांधे था, चाहे जैसे भी हो, गल चुका था और उसे टूटने में देर नहीं लगी।

नशे में धुत्त गोगोलेव ऊपर तख्ते पर पड़ा हाथ-पांव पटक रहा था बैठे हुए गले से वह बड़बड़ा उठा:

"अगर मैं चाहूं तो तुम सबको जेल में बन्द करा सकता हूं। मुझे एक भेद मालूम है! यहां ईश्वर में कौन विश्वास करता है? अहा-हा-हा..."

आकृतिविहीन अधूरी देव-प्रतिमाएं अभी भी दीवार के सहारे टिकी थीं और कांच की गेंदें छत से चिपकी थीं। इधर कुछ दिनों से बिना कृत्रिम रोशनी के हम काम कर रहे थे, इसलिए गेंदों की जरूरत नहीं होती थी और उनपर धूल तथा कालिख की मटमैली तह चढ़ गई थी। हर चीज मेरे स्मृति-पट पर इतनी गहराई से नक्श थी कि आज दिन भी, केवल आंख बन्द करते ही, वह अंधेरा कमरा और उसकी मेज़ें, खिड़कियों की ओटक पर रखे रंगों के डब्बे, रंग करने के ब्रुश, देव-प्रतिमाएं, हाथ-मुंह धोने का पीतल का बरतन जो आग बुझानेवालों की टोपी की तरह दिखता था, उसके नीचे कोने में रखी गदे पानी की बाल्टी, और तख्ते के ऊपर से नीचे लटकी गोगोलेव की टांग जो लाश की भांति नीली पड़ गई थी, मेरी कल्पना में मूर्त हो उठती हैं।

मेरा बस चलता तो विदाई के बीच में ही उठकर मैं भाग जाता। लेकिन यह सम्भव नहीं था—उदास क्षणों को लम्बा खींचने का रूसियों को कुछ चाव होता है। नतीजा यह कि विदाई का जलसा बाकायदा मातम का रूप धारण कर लेता है।

जिखरेव ने, भौंहें चढ़ाकर, मुझसे कहा:

"मैं तुझे वह पुस्तक—'दानव'—नहीं लौटा सकता। अगर तू चाहे तो इसके लिए बीस कोपेक ले सकता है।"

लेर्मोन्तोव की पुस्तक को अपने से अलग करना कठिन था, खास तौर से इसलिए भी कि उसे मुझे आग बुझानेवालों के वृद्ध मुखिया ने भेंट किया था। लेकिन जब मैंने, कुछ विरोध सा दिखाते हुए पैसे लेने से इनकार कर दिया तो जिखरेव ने उन्हें चुपचाप अपने बटुवे में रख लिया और निश्चल अन्दाज में बोला:

"जैसी तेरी मर्जी। लेकिन यह जान रख कि मैं पुस्तक नहीं लौटाऊंगा! वह तेरे लिए नहीं है। उस तरह की पुस्तक रखकर तू किसी समय भी मुसीबत में फंस सकता है..."

'लेकिन वह तो बाजार में बिकती है मैंने खुद अपनी आंखों से उसे पुस्तकों की दुकान पर देखा है!

"इससे क्या हुआ? बाजार में तो पिस्तौलें भी बिकती हैं..." उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

और उसने पुस्तक कभी नहीं लौटाई।

मालकिन से विदा लेने जब मैं ऊपर गया तो रास्ते में उसकी भतीजी से भेंट हो गई।

"सुना है कि तू हमें छोड़कर जा रहा है," उसने कहा।

"हां, जा तो रहा हूं।"

"जाता नहीं तो निकाल देते," कुछ उद्धत, लेकिन सच्चे हृदय से उसने कहा।

सदा नशे में धुत्त रहनेवाली मेरी मालकिन बोली:

"अच्छी बात है, जा! खुदा तेरा भला करे। तू बहुत बुरा और मुंहफट लड़का है। हालांकि मैंने तेरा बुरा पक्ष कभी नहीं देखा, लेकिन सब यही कहते हैं कि तू अच्छा नहीं है!"

एकाएक उसने रोना शुरू कर दिया और आंसुओं के बीच बुदबुदाते हुए कहने लगी:

"अगर मेरा पति—भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे—आज जीवित होता तो वह तेरे कान लाल करता और मार-मारकर सिर का सारा कचूमर निकाल देता, लेकिन तुझे यहीं रखता और इस तरह भागने न देता! अब तो सभी कुछ बदल गया है। जरा सी बात हुई और तुम बिस्तरा गोल करके चल दिये! दइया रे! इस ढंग से तो पता नहीं तू कहां-कहां की धूल छानेगा!"

१६

मेले के मैदान में वसन्त की बाढ़ का पानी भरा था। पत्थर की बनी मेले की दुकानों और इमारतों के दूसरे तल्ले तक पानी चढ़ आया था। मैं अपने मालिक के साथ नाव में बैठा था। नाव मेले की इमारतों के बीच से गुजर रही थी। मैं डांड चला रहा था और मालिक, नाव के पिछले हिस्से में बैठा, एक डांड से पंखे का काम लेते हुए पानी काट रहा था।

हमारी नाव नाक उठाए, मन्द और तरंगविहीन, उनींदे से मटमैले पानी में हिचकोले खाती इस बाजार से उस बाजार में चक्कर लगा रही थी।

"इस साल वसन्त में कितनी भारी बाढ़ आई है, शैतान चट कर जाए इसे! यह हमें अपना काम भी वक्त पर पूरा करने नहीं देगी!" मालिक ने बड़बड़ाते हुए अपना सिगार जलाया, जिसके धुएं से ऊनी कपड़े के जलने जैसी गंध आती थी।

एकाएक वह भय से चीख उठा:

"अरे बचना, नाव रोशनी के खम्बे से टकराना चाहती है!"

लेकिन नाव टकराई नहीं। उसे संभालने के बाद बोला:

"कम्बख्तों ने नाव भी हमें छांटकर दी है! हरामी कहीं के!.."

फिर हाथ से इशारा करते हुए उसने वे जगहें दिखाई जहां से, बाढ़ का पानी कम होते ही, दुकानों की मरम्मत का काम शुरू किया जायेगा। सफाचट चेहरा, छंटी हुई मूछें और दांतो के बीच सिगार, कोई यह नहीं कह सकता था कि वह ठेकेदार है। उसके बदन पर चमड़े की जाकेट, पांवों से घुटनों तक के जूते, कंधे पर शिकारियों वाला थैला और सामने पांवों के पास लेबेल मार्का छर्रे वाली कीमती दुनाली बन्दूक पड़ी थी। सिर पर चमड़े की टोपी थी, जिसे होठों को भींचते हुए आगे की ओर खींचकर कभी वह आंखों पर झुका लेता और चौकन्ना सा होकर अपने चारों ओर देखता, कभी खिसकाकर पीछे गुद्दी की ओर कर लेता। एकाएक उसके चेहरे पर युवकों जैसी चपलता झलक उठती और मूंछों में इस तरह मुसकराता मानो कोई मजेदार कल्पना उसके दिमाग में आ गई हो। मन की मौज और तरंगों में उसे इस तरह बहता देखकर एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं लगता कि वह काम-काज के बोझ और बाढ़ के कम न होने की चिन्ता में डूबा हुआ है।

और जहां तक मेरा सम्बन्ध था, अचरज की निश्चल भावना का बोझ मेरे हृदय पर लदा था। मुझे बड़ा अजीब मालूम होता जब मैं जीवन की चहल-पहल से शून्य इस मेला-नगर पर नजर डालता। चारों ओर पानी ही पानी, बंद खिड़कियों वाली इमारतों की सीधी पांतें और ऐसा मालूम होता मानो समूचा नगर पानी में तैरता हुआ हमारी नाव के पास से गुजर रहा हो।

आसमान में बादल छाए थे। सूरज बादलों की भूलभुलैया मे उलझा था। कभी-कभी, उड़ती हुई सी नजर डालकर, वह नीचे की ओर देखता और फिर बादलों मे खो जाता: चांदी के बड़े थाल की भांति शीतल और ठंडा।

पानी भी, आसमान की ही भांति, मैला और ठंडा था। एकदम स्थिर और गतिविहीन। ऐसा मालूम होता मानो वह वहीं एक जगह जम गया है और सूनी इमारतों तथा दुकानों की पीली मटमैली पांतों के साथ-साथ नींद ने उसे भी अपने चंगुल मे दबोच लिया है। जब कभी रुपहला सूरज बादलों के पीछे से झांककर देखता तो हर चीज पर एक धुंधली सी चमक छा जाती, पानी में बादलों का अक्स उभर आता और ऐसा मालूम होता मानो हमारी नाव दो आसमानों के बीच अधर लटकी हो। पत्थर की इमारतें भी सिर उभारतीं और बे-मालूम से अन्दाज में वोल्गा तथा ओका नदी की ओर बहने लगतीं। टूटे हुए पीपे, बक्से और टोकरे-टोकरियां लकड़ी के छोटे-मोटे टुकड़े और घास-फूस के तिनके पानी की सतह पर डूबते-उतराते, और कभी-कभी लकड़ी के लट्ठे और बांस मुर्दा सांपों की भांति तैरते हुए निकल जाते।

कहीं-कहीं इक्की-दुक्की खिड़कियां खुली थीं। दुकानों की बालकनी की छत पर कपड़े सूख रहे थे और नमदे के जूते रखे हुए थे। एक खिड़की में से कोई स्त्री गरदन निकाले बाहर गंदे पानी की ओर ताक रही थी। बालकनी के लोहे के एक खम्बे के सिरे से नाव बंधी थी। उसके लाल रंग का तिरमिरेदार अक्स पानी में ऐसा मालूम होता मानो मांस का लोथड़ा तैर रहा हो।

जीवन के इन चिन्हों को देखकर मालिक सिर हिलाता और मुझे बताना शुरू करता:

"देखा तूने, यहां मेले का चौकीदार रहता है। खिड़की मे से वह छत पर चढ़ जाता है, फिर अपनी किश्ती में बैठकर चोरों की ताक मे किश्ती को इधर से उधर खेता रहता है। अगर चोर नजर नहीं आता, तो वह खुद चोरी करने लगता है..."

वह अलस और निस्संग भाव से बोल रहा था, और उसका दिमाग कहीं और उलझा था। हर चीज सन्नाटे में डूबी, सूनी और सपने की तरह अवास्तविक मालूम होती थी। वोल्गा और ओका नदी के पानी ने

मनकर एक मोमाकार झील का रूप धारण कर लिया था। उधर, टेढ़े-मेढ़े पहाड़ पर नगर का रंग-बिरंगा दृश्य नज़र आता था। बाग-बगीचे उसकी शोभा बढ़ाते थे। बगीचों की कोख अभी सूनी थी,—एक भी फूल कहीं नजर नहीं आता था। लेकिन उनकी कोपलें फूट रही थीं और घर तथा गिरजे सब हरियाली में लिपटे मालूम होते थे। ईस्टर के घंटों की समृद्ध ध्वनि पानी पर से तैरती हुई आ रही थी और, इतनी दूर होने पर भी, नगर के हृदय की धड़कन का हम अनुभव कर सकते थे, लेकिन यहां हर चीज उस उजाड़ कब्रिस्तान की भांति सन्नाटे में डूबी थी जिसे लोगों ने भुला दिया हो।

काले पेड़ों की दो पांतों के बीच मुख्य रास्ते से हमारी नाव पुराने गिरजे की ओर जा रही थी। मालिक के मुंह में लगे सिगार का धुआं उसकी आंखों को कड़ुवा रहा था और नाव पेड़ों के तनों से टकराकर जब उछलती थी तो खीजकर वह चिल्ला उठता था:

"क्या वाहियात नाव है!"

"आप पानी काटना बंद कर दीजिये।"

"यह कैसे हो सकता है?" वह भुनभुनाता, "जब नाव में दो आदमी होते हैं तो एक खेता और दूसरा पतवार संभालता है। अरे वह देखो, उधर चीनियों का बाज़ार है.."

मेले के मैदान के चप्पे-चप्पे से मैं परिचित था, और दुकानों की वे अटपटी पांतें मेरी खूब जानी-पहचानी थीं जिनकी छतों के कोनों पर प्लास्तर की बनी चीनी लोगों की मूर्तियां पालथी मारे बैठी थीं। एक समय था जब मेरे साथी खिलाड़ियों और मैंने उनपर पत्थरों से निशानेबाजी की थी और मेरे कुछ निशाने इतने सधे हुए और सही बैठे थे कि उनमें से कई के सिर और हाथ गायब हो गए थे। लेकिन अब मुझे अपनी इस हरकत पर गर्व का अनुभव नहीं होता था...

"देखो इन दरबों को!" इमारतों की ओर संकेत करते हुए उसने कहा। "अगर मेरे पास इनका ठेका होता..."

सीटी बजाते हुए उसने अपनी टोपी को पीछे खिसकाकर गुद्दी की ओर कर लिया।

लेकिन, न जाने क्यों, मुझे लगा कि अगर उसे इन इमारतों का ठेका मिला होता तो वह भी इन्हें बनवाने में उतनी ही बेगार काटता, और

इनके लिए जगह भी यही चुनता जो नीची होने के कारण बसन्त के दिनों में दो नदियों की बाढ मे आए साल डूब जाती थी। वह भी इसी तरह का कोई चीनियों का बाज़ार बना डालता...

अपने सिगार को उसने पानी में फेंक दिया और खीज में भरकर पानी में थूक की पिचकारी छोड़ते हुए बोला:

"अब तू ही बता, पेशकोव, इसे भी क्या जीवन कहा जा सकता है—एकदम बेरस और बेरंग! पढ़े-लिखे लोगों का यहां अकाल है। दो घडी बात करने के लिए भी कोई नही मिलता। कभी-कभी रोब झाड़ने के लिए मन ललक उठता है, लेकिन तू ही बता, अगर कोई रोब झाड़े भी तो किसके सामने? कोई है ऐसा? नहीं, कोई नहीं। यहां तो केवल बढ़ई हैं, रंगसाज़ है, देहातिये हैं, चोर और उचक्के है..."

दाहिनी ओर पानी में डूबी पहाड़ी की ढाल पर, खिलौने की भांति सुन्दर एक सफ़ेद मसजिद थी। मालिक ने कनखियों से उसकी ओर देखा, और इस तरह बोलता रहा मानो किसी भूली हुई बात को याद कर रहा हो:

"एक जर्मन की भांति मै भी बीयर पीने और सिगार का धुआं उड़ाने लगा। जर्मन पक्के व्यापारी होते हैं—एकदम कुड़क-मुर्ग! बीयर पीना तो खैर एक अच्छा शगल है, लेकिन सिगार से पटरी बैठती नहीं मालूम होती। दिन भर फूंकता हूं और फिर बीवी जान खाने लगती है: आज यह चमड़े जैसी बदबू कहां से आ रही है? उसे क्या पता कि जीवन को थोड़ा सरस बनाने के लिए क्या कुछ करना पड़ता है... ले, अपनी पतवार अब तू खुद संभाल..."

उसने डांड उठाकर नाव के एक बाज़ू रख दिया, अपनी बन्दूक उठाई और छत पर पालथी मारे बैठे चीनियों मे से एक को अपना निशाना बनाया। चीनी को कोई नुकसान नहीं पहुंचा, छर्रे दीवार और छत पर बिखरकर रह गये। धूल का एक बादल सा उठा, और हवा में विलीन हो गया।

"निशाना चूक गया!" बन्दूक में फिर से छर्रे भरते हुए उसने लापरवाही से कहा।

"लड़कियों से तेरी कैसी पटती है? अभी तक तेरा रोजा टूटा या नहीं? नही? अरे, मै तो तेरह साल से ही प्रेम की नदी मे गोते लगाने लगा था..."

उसने अपनी पहली प्रेमिका के बारे में इस तरह बताना शुरू किया मानो वह किसी सपने की याद कर रहा हो। वह एक नौकरानी थी। जिस नक्शा-नवीस के यहां वह खुद काम करता था, उसी के घर पर वह भी काम करती थी। वह अपने प्रथम प्रेम की कहानी सुना रहा था और उसकी आवाज के साथ-साथ इमारतों के कोनों से पानी के टकराने की धीमी छपछप भी सुनाई पड़ रही थी। गिरजे के उस पार, दूर-दूर तक, पानी ही पानी झिलमिला रहा था जिसमें जहां-तहां, बेंत वृक्ष की काली टहनियां सिर उठाए थीं।

देव-प्रतिमाओं की वर्कशाप में कारीगर अक्सर सेमिनारी के छात्रों का एक गीत गाया करते थे :

नीला सागर,
तूफ़ानी सागर...

नीले रंग में डूबा वह सागर कितना बेरस और बोझिल होता होगा...

"रात को मुझे नींद न आती," मेरे मालिक ने कहा, "बिस्तर से उठकर मैं उसके दरवाजे पर जा खड़ा होता और पिल्ले की भांति कांपता रहता। उसका घर क्या था, पूरा बर्फ़खाना था। उसका मालिक अक्सर रात को उसके पास जाता था। इस बात का पूरा अन्देशा था कि कहीं वह मुझे रंगे हाथ न पकड़ ले। लेकिन मैं उससे डरता नहीं था..."

वह कुछ सोचता हुआ सा बोल रहा था, मानो किन्हीं पुराने कपड़ों को निकालकर उनकी जांच कर रहा हो कि इन्हें अब फिर पहना जा सकता है या नहीं।

"उसने मुझे दरवाज़े के बाहर खड़ा देखा और उसे तरस आया। दरवाजा खोलकर बोली, 'भीतर चला आ, पगले...'"

इस तरह की इतनी कहानियां मैंने सुनी थीं कि मेरा मन उनसे पूरी तरह ऊब चुका था। इन सब कहानियों में, समान रूप से, अगर कोई अच्छी बात थी तो यह कि लोग अपने प्रथम प्रेम का किस्सा बयान करते समय डींग नहीं मारते थे, अश्लीलता और गंदगी से उसे बचाते थे और एक कसक के साथ बड़े चाव से उस की याद करते थे। साफ़ था कि अपने जीवन के श्रेष्ठतम क्षणों को वे याद कर रहे होते और सिवा इसके अपने जीवन में अन्य किसी अच्छी चीज से बहुतों का वास्ता नहीं पड़ा।

हंसते और अपने सिर को हिलाते हुए मालिक ने अचरज से भरकर कहा :

"पर घरवाली के सामने इसका कभी जिक्र नहीं कर सकता। नहीं, कभी नहीं! यों मैं इसे पाप या बुरा नहीं समझता। फिर भी कह नहीं सकता! यह है बात..."

मुझसे नहीं मानो अपने आपसे वह यह सब कह रहा था। अगर वह चुप रहता तो मैं बोलता होता। उस निस्तब्धता और शून्य में बातचीत करना, गाना और एकार्डियन बजाना, कुछ न कुछ करना जरूरी था। नहीं तो डर था कि वह मुर्दा नगर कहीं हमें भी अपनी चिर निद्रा में न खींच ले, उस ठंडे और मैले पानी की समाधि में कहीं हम भी डूबकर न रह जाएं।

"सबसे पहली बात तो यह कि कभी कम उम्र में ब्याह न करना!" उसने मुझे सीख देनी शुरू की। "ब्याह, मेरे भाई, बहुत ही जिम्मेदारी का काम है! रहने को तो जहां चाहे, जैसे चाहे वहां जा सकता है— जैसी तेरी मर्ज़ी! चाहे तो फ़ारस में रह—मुसलमान बनकर, चाहे मास्को में रह—संतरी बनकर, चोरी कर, चाहे दुखी हो—सब ठीक हो सकता है! पर घरवाली तो, भाई, मौसम जैसी है, उसे नहीं बदला जा सकता.. ना! यह, भाई, जूता नहीं—उतारा और फेंक दिया..."

उसके चेहरे पर से एक छाया सी गुज़र गई। भौंहों में बल डाले वह एकटक मैले पानी की ओर ताकते और अपनी कुबड़ी नाक को उंगली से खुजलाते हुए बुदबुदाता रहा :

"हां, भाई... चौकस रहा यह ठीक है कि तू अभी हवा के थपेड़े खाकर भी फ़िर भी सीधा खड़ा हो जाता है... पर कौन जाने किस के लिये कहां और कैसा जाल बिछा है। जरा चूके नहीं कि गए..."

हमारी नाव मेश्चेर्स्की झील में उगी झाड़ियों के बीच से गुजर रही थी जिसका पानी अब वोल्गा से गले मिल रहा था।

"जरा धीरे डांड चला!" मेरे मालिक ने फुसफुसाकर कहा और बन्दूक उठाकर झाड़ियों की ओर निशाना साधा।

मरियल सी दो-चार मुर्गाबियों का शिकार करने के बाद बोला :

"अब सीधे कुनाविनो चल। आज सांझ वहीं रंग रहेगा। तू घर

चला जाना। मेरे बारे मे पूछे तो कहना कि मुझ ठेकेदारो से काम था सो मै वहीं फंस गया

बस्ती की एक सड़क पर मैंने उसे छोड़ दिया। यहां भी बाढ़ का पानी भरा था। इसके बाद, मेले के मैदान को पार कर, मैं स्त्रेल्का लौट आया। नाव को एक जगह बांधकर मै दोनों नदियों के संगम का, नगर का, जहाजों और आसमान का नजारा देखने लगा। आसमान में अब सफेद बादल छितरे थे और ऐसा मालूम होता था मानो वे किसी भीमा-कार पक्षी के पंख हों। बादलों के बीच नीली झिरियों में से सुनहरा सूरज झलक रहा था जिसकी एक किरण समूची दुनिया का रंग बदलने के लिए काफी थी। चारों ओर खूब चहल-पहल थी, हर चीज़ में अब गति और जीवन का स्पन्दन दिखाई देता था। बेड़ों की अन्तहीन पांतें, तेज गति से बहाव की ओर लपक रही थीं। बेड़ों पर दाढ़ी वाले देहातिये खड़े थे और लम्बे बांसो से डांड और चप्पुओ का काम ले रहे थे। वे एक-दूसरे पर और पास से गुजरनेवाले जहाजो पर आवाजें कस रहे थे। एक छोटा सा जहाज चढ़ाव की ओर एक खाली बजरे को खींच रहा था। नदी का पानी उसे उछालता, पटकनी देकर गिरा देना चाहता और वह मछली की भांति बल खाकर, फिर सीधा हो जाता। उसकी सांस फूल जाती, वह हांफता और भभकारे लेता, लेकिन पीछे न हटता, पानी को चीरता और उसके निर्मम थपेड़ो से जूझता आगे बढ चलता। बजरे पर कधे से कंधा सटाए चार देहातिये बैठे थे और अपनी टांगो को नीचे पानी में लटकाए थे। उनमें से एक लाल कमीज पहने था और वे सब गा रहे थे। गीत के बोल पकड़ में नहीं आते थे, लेकिन उसकी धुन जानी-पहचानी थी।

मुझे लगा कि यहां, नदी के इस सजीव वातावरण मे, एक भी चीज ऐसी नही है जो अजनबी हो, जिससे मेरा लगाव न हो और जो मुझे अनजान तथा अनबूझ मालूम होती हो। लेकिन बाढ़ में डूबा वह नगर जिसे मैं छोड़ आया था, मानो एक दुःस्वप्न था, मेरे मालिक के दिमाग की उपज, खुद उसी की भांति अनबूझ।

नदी के दृश्य से खूब तृप्त और भरा-पूरा होने के बाद मैं घर लौट आया। पूरी शक्ति का मैंने अनुभव किया और मुझे लगा कि कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसे मै न कर सकूं। रास्ते में क्रेमलिन की पहाड़ी से

मैंने एक बार फिर वोल्गा का नजारा देखा ऊंचाई से धरती का विस्तार और भी सीमाहीन मालूम हुआ, लगता था कि यह धरती सभी आशाएं और कामनाएं पूरी करने का वायदा कर रही है।

घर लौटने पर खूब पुस्तकें पढ़ता। रानी मार्गो वाले फ्लैट मे अब एक बड़ा परिवार रहता था। पांच लड़कियां, एक से एक सुन्दर, इस परिवार की शोभा बढ़ाती थी। दो लड़के थे जो स्कूल में पढ़ते थे। ये सब मुझे खूब पुस्तके देते थे। तुर्गनेव को तो जैसे मै एक सांस में पढ गया। उसके लिखने का ढंग अद्भुत था: एकदम सादगी लिए, हर बात साफ़-साफ समझ मे आनेवाली, शरद की हवा की भांति स्वच्छ और पारदर्शी। ऐसे ही उसके पात्र थे–निर्मल और पवित्र। उसकी हर चीज, जिसे वह अत्यन्त विनम्र भाव से प्रतिपादित करता, सुन्दर थी–सुन्दर और अद्भुत। मै पढता और चकित रह जाता।

मैंने पोम्यलोव्स्की कृत "सेमिनारी" उपन्यास पढा। उसके पन्नों मे देव-प्रतिमाओं की वर्कशाप जैसा जीवन इतने सजीव और हू ब हू रूप मे चित्रित था कि मै दंग रह गया। उसकी जानलेवा ऊब और घुटन से, जो क्रूर हरकतो में फूटकर जी हल्का करती थी, मै बुरी तरह परिचित था।

रूसी पुस्तके बड़ी अच्छी मालूम होतीं, बड़े चाव से मै उन्हे पढ़ता। उनसें मुझे सदा अपनत्व और एक खास तरह की उदासी का अनुभव होता, मानो व्रत-उपवासों के दिनों में बजनेवाले गिरजे के घंटों की ध्वनि उनमे बंद हो। पन्ने खोले नहीं कि उनका धुंधला संगीत प्रवाहित होने लगा।

गोगोल कृत "मुर्दा आत्माएं" मैंने पढ़ी, लेकिन बेमन से। इसी तरह "मुर्दा घर के पत्र" पढने में भी मेरा जी नहीं लगा। "मुर्दा आत्माएं", "मुर्दा घर", "तीन मौतें", "जिन्दा लाश"–ये सब पुस्तकें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मालूम होती और उनके नामों को देखकर ही मेरा मन उनकी ओर से फिर जाता। "युग-लक्षण", "क़दम ब क़दम", "क्या करें", "स्मूरिन गांव की कहानी" तथा इसी ठप्पे की अन्य पुस्तकें भी मुझे अच्छी नहीं लगी।

लेकिन डिकेन्स और वाल्टर स्काट के उपन्यास मै बड़े चाव से पढ़ता। उनकी पुस्तकों को मैं दो-दो और तीन-तीन बार पढ़ता और हर बार खुशी से छलछला उठता। वाल्टर स्काट की पुस्तकें पढ़कर छुट्टी या उत्सव के दिन किसी शानदार गिरजे में प्रार्थना याद हो आती। प्रार्थना जरूर कुछ

लम्बी और उकता देनेवाली मालूम होती लेकिन "रिज का वातावरण सदा छुट्टी या उत्सव के उछाह में डूबा रहता। और डिकेन्स के प्रति मेरा गहरा लगाव तो आज दिन तक बना है, जब भी उसे पढ़ता हूं, मुग्ध हो उठता हूं। वह एक ऐसा लेखक था जो कठिनतम कला में—लोगों से प्रेम करने की कला में—अत्यन्त दक्ष था।

हम लोगों का एक बड़ा सा दल सांझ होते ही ओसारे पर जमा हो जाता: रानी मार्गो के फ्लैट में रहनेवाले भाई और पांचों बहनें, व्याचेस्लाव सेमाश्को नामक एक पिचकी हुई नाक वाला छात्र और कई अन्य। कभी-कभी एक बड़े अफसर की लड़की भी हमारे साथ आ बैठती। इस अफ़सर का नाम प्तीत्सिन था। वे पुस्तकों और कविताओं के बारे में बातें करते, जो मुझे अत्यन्त प्रिय थीं और जिनमें मेरी अच्छी प्रगति थी: मैं इन सबसे ज्यादा पुस्तकें पढ़ चुका था। लेकिन अक्सर वे स्कूल की बातें करते, अपने शिक्षकों का रोना रोते। मैं उनकी बातें सुनता और मुझे लगता कि मेरा जीवन उनसे ज्यादा उन्मुक्त है। मुझे अचरज होता कि वे यह सब कैसे बरदाश्त कर लेते है। लेकिन, यह सब होने पर भी, मैं उनसे ईर्ष्या करता: यह क्या कम बड़ी बात थी कि वे अध्ययन कर रहे थे!

मेरे संगी-साथी उम्र में मुझसे बड़े थे लेकिन मुझे लगता कि मैं उनसे ज्यादा परिपक्व और अनुभवी हूं। यह भावना मुझे भीतर ही भीतर कचोटती और उनके तथा मेरे बीच एक दीवार सी खड़ी कर देती। इस दीवार को तोड़ने के लिए मैं बेचैन हो उठता और उनके साथ घुल-मिलकर रहना चाहता। दिन भर मैं काम करता और काफ़ी सांझ बीते, धूल और गर्द से लथपथ सर्वथा भिन्न दुनिया की गहरी और विविधतापूर्ण छाप हृदय में लिए घर लौटता। इसके प्रतिकूल मेरे संगी-साथियों के अनुभव कुल मिलाकर सदा एक से होते। लड़कियों के बारे में खूब बातें करते, पहले एक से प्रेम चलता फिर दूसरी से। वे कविताएं लिखना चाहते. और इसके लिए अक्सर मेरे पास आते। मैं बड़े चाव से तुकबन्दियों पर हाथ आज़माता। मैं तुक जोड़ने में दक्ष था, गीत की कड़ियां अपने आप गुंथ जातीं, लेकिन जाने क्यों मेरी कविताएं हमेशा हास्य रस की रचनाएं बन जातीं। ज्यादातार कविताएं प्तीत्सिन की लड़की को लक्ष्य कर लिखी या लिखवाई जाती और मैं, अदबदाकर, किसी सब्जी से—आम तौर से प्याज से—उसकी तुलना करता।

सेमाश्को कहता

इन पंक्तियों को तुम कविता कहते हो? ये कील हैं, कीलें, जिन्हें चमार जूतों में ठोकते हैं!"

अन्य किसी से पीछे न रहने की होड़ में मैं भी प्लोतिसिन की लड़की से प्रेम करने लगा। यह तो याद नहीं पड़ता कि मैं अपने प्रेम को किस तरह उसके सामने व्यक्त करता था, लेकिन इस प्रेमचक्र का अन्त दु:खद ढंग से हुआ। एक दिन मैंने उससे कहा कि चलो, ज्वेज्दिन कुंड चलें। कुंड के बंद और गंदे पानी पर एक तख्ता तैर रहा था। तय किया कि उसी पर कुंड की सैर की जाएगी। वह इसके लिए तैयार हो गई। तख्ते को खींचकर मैं किनारे पर ले आया और उसपर खड़ा हो गया। तख्ता काफी मजबूत था और मजे में मेरा बोझ संभाल सकता था। लेकिन लड़की ने जो बेल-बूटों और फ़ीतों से सजी बिल्कुल गुड़िया बनी हुई थी, जब तख्ते के दूसरे सिरे पर पांव रखा और मैंने गौरव से भरकर एक डंडे से तख्ते को किनारे से हटाया तो कम्बख्त तख्ता धचका खा गया और वह कुंड में जा गिरी। मैं भी सच्चे प्रेमी की भांति उसके साथ ही साथ कूदा और पलक झपकते उसे पानी से बाहर निकाल लाया। लेकिन भय और पानी की हरी काई ने लिपटकर उसे बिल्कुल चूं-चूं का मुरब्बा बना दिया था, और उसके सारे सौन्दर्य को बिगाड़ डाला था!

कीचड़ में लथपथ उसने अपना छोटा सा घूंसा ताना और चिल्लायी:

"तुमने जान-बूझकर मुझे पानी में धक्का दिया!"

मैंने बहुतेरी माफ़ी मांगी, लेकिन उसपर कोई असर नहीं हुआ और वह मेरी पक्की दुश्मन बन गई।

नगर का जीवन कुछ ज्यादा दिलचस्प नहीं था। बूढ़ी मालकिन अभी भी मुझसे कुढ़ती और छोटी सन्देह की नजर से देखती। वीक्तर के चेहरे पर झाइयां अब और भी घनी हो गई थीं, जो भी उसके सामने पड़ता उसी पर फनफना उठता, मानो सभी से खार खाए बैठा हो।

मालिक के पास नक्शे बनाने का इतना अधिक काम था कि वह और उसका भाई दोनों मिलकर भी उसे नहीं निबटा पाते थे। इसलिए उसने मेरे सौतेले पिता को भी हाथ बंटाने के लिए बुला लिया।

एक दिन मेले के मैदान से मैं जल्दी लौट आया—पांचेक बजे। भोजन के कमरे में पांव रखा ही था कि एक ऐसे आदमी पर मेरी नज़र पड़ी

जिसे मैं बहुत पहले ही अपने दिमाग से खारिज कर चुका था। मेरे मालिक के साथ वह चाय की मेज के पास बठा था, मुझ देखते ही उसने अपना हाथ बढ़ाया। बोला :

"कहो, कैसी तबीयत है?.."

उसे देखकर मैं सन्न रह गया। मुझे सपने में भी आशा नहीं थी कि उससे कभी भेंट होगी। अतीत की याद आग की लपट की भांति मेरे हृदय को झुलसाती हुई कौंध गई।

"यह तो डर ही गया," मालिक ने जोर से कहा।

मेरा सौतेला पिता अपने जर्जर चेहरे पर मुस्कराहट लिए मेरी ओर देख रहा था। उसकी आंखें अब और भी ज्यादा बड़ी मालूम होती थीं, और वह बेहद खिसा-पिटा तथा रौंदा हुआ नजर आता था। मैंने अपना हाथ उसकी पतली, गरम उंगलियों से मिलाया।

"तो हम दोनों फिर मिल ही गए!" उसने खांसते हुए कहा।

मैं वहां से खिसक गया, कुछ इतना निढाल सा होकर मानो मुझपर मार पड़ी हो!

हम दोनो एक-दूसरे से चौकन्ने और खिंचे से रहते। वह मुझे मेरा पूरा नाम लेकर बुलाता और बराबर के आदमी की भांति सम्बोधित करता।

"अगर बाजार जाना हो तो मेरे लिए आधा पाव लाफ़ेर्म तम्बाकू, सिगरेट बनाने के विक्टर्सन मार्का सौ कागजों का पैकट और आधा सेर सासेज लेते आना। कृतज्ञ हूंगा..."

सौदा लाने के लिए जब भी वह रेजगारी देता तो वह हमेशा गरम होती। साफ़ मालूम होता कि तपेदिक ने उसे जकड़ लिया है और ज्यादा दिनो तक नहीं चलेगा। वह खुद भी यह जानता था और बकरेनुमा अपनी काली दाढ़ी को उमेठता हुआ शान्त तथा गहरी आवाज़ में कहता था :

"असल मे मेरे इस रोग का कोई इलाज नहीं है। परन्तु अगर आदमी भरपूर मांस खाए तो संभल जाता है। कौन जाने, मुझे भी इससे कुछ फ़ायदा हो जाए।"

उसका पेट क्या था, पूरा अंधा कुआं था। इतना अधिक वह खाता था कि देखकर अचरज होता था। वह दिन भर चरता और सिगरेट पीता

था। उसके मुंह से सिगरेट उसी समय अलग होती थी जब कोई चीज उसे अपने मुंह में डालनी होती थी। उसके लिए बाजार से मैं रोज सासेज, मांस और सार्डीन मछली लाता था। लेकिन नानी की बहन एक अनबूझ सन्तोष के साथ मानो उसके भाग्य का आखिरी फैसला देते हुए कहती :

"मौत को बढ़िया माल खिलाकर फुसलाया नहीं जा सकता। मौत को नहीं भरमा सकते। सच, कभी भी नहीं!"

मालिक लोग सौतेले पिता के चारों ओर इस हद तक मंडराते कि देखकर झुंझलाहट होती। वे हमेशा और हर वक्त कोई न कोई नयी दवा तजवीज करते रहते और पीठ के पीछे उसका खूब मजाक उड़ाते।

"बड़ा आया है भद्रपुरुष!" छोटी मालकिन कहती, "कहता है कि हम मेज की जूठन साफ़ नहीं करतीं जिससे मक्खियों की फ़ौज जमा हो जाती है!"

"हां सचमुच नवाब है!" बड़ी मालकिन स्वर मिलाती, "देखती नहीं वह अपना कोट किस तरह साफ़ करता है। धूल के साथ-साथ उसने सारा रोवां भी झाड़ दिया है और वह झिन्ना हो गया है, — दो-चार दिन में इतना भी नहीं रहेगा। लेकिन इससे क्या, धूल तो साफ़ हो जाती है!"

"थोड़ा धीरज धरो, कुड़क-मुर्गियो! कुछ दिनों में वह खुद ही साफ़ हो जाएगा!.." मालिक मानो मरहम लगाता।

नगर के टुटपुंजिया निवासी जिस बुरी तरह अभिजातों की टांग खींचने और उन्हें नाहक कोंचते थे, उसने मुझे अपने सौतेले पिता का पक्ष लेने के लिए मजबूर कर दिया। इन लोगों से तो मक्खीमार खुमियां ही अच्छी। जहरीली जरूर होती है, लेकिन कम से कम देखने में खूबसूरत तो लगती है!

इन लोगों की दमघोट संगत से मेरे सौतेले पिता की क़रीब-क़रीब वैसी ही हालत थी जैसी कि मुर्गियों के दरबे में फंसी मछली की। कहां मुर्गियों का दरबा और कहां मछली, — लेकिन यह तुलना भी उतनी ही बेजोड़ और बेढंगी थी, जितना बेजोड़ और बेढंगा जीवन हम बिता रहे थे।

मुझे लगा कि मेरे सौतेले पिता में भी वैसे ही गुण मौजूद हैं जो कि मैंने कभी 'बहुत खूब' में देखे थे, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। 'बहुत खूब' और रानी मार्गो मेरी नजर में मानो उस समूचे सौन्दर्य के मूर्ति-

मान रूप थे जो मैंने पुस्तकों से प्राप्त किया था। अपने हृदय के श्रेष्ठतम तत्वों और सुन्दरतम कल्पनाओं से मैंने उन्हें सजाया था। पुस्तकें पढ़ने पर एक से एक सुन्दर चित्र मेरे दिमाग़ में उभरते और सब जैसे उनके साथ सम्बद्ध हो जाते। मेरा सौतेला पिता भी 'बहुत ख़ूब' की तरह उतना ही अकेला और उतना ही अनचाहा था। घर में हरेक के साथ वह समानता का व्यवहार करता, अपनी ओर से कभी किसी बात में टांग नहीं अड़ाता और संक्षेप में तथा विनम्रता के साथ सभी सवालों के जवाब देता। जब वह मेरे मालिक को सीख देता तो उसकी बाते सुनने में बड़ा मजा आता। मेज के पास खड़ा हुआ वह क़रीब-क़रीब दोहरा हो जाता, दबीज काग़ज को उंगली के लम्बे नाख़ून से ठकठकाता और शान्त स्वर में समझाना शुरू करता :

"मेरे ख्याल में, इस जगह शहतीर में एक डाट डालने की जरूरत है, जिससे कि दीवारों पर दबाव रुक जायेगा। अगर ऐसा न किया तो शहतीर दीवारों को तोड़ देंगे।"

"हां, यह तो बिल्कुल ठीक कहा!" मालिक बड़बड़ाता।

जब सौतेला पिता चला जाता तो मालिक की पत्नी उसे कोंचती :

"तुम भी कैसे आदमी हो? जो भी आता है, वही कान पकड़कर सबक़ पढ़ाना शुरू कर देता है!"

सांझ के भोजन के बाद सौतेला पिता बिला नागा अपने दांत मांजता और सिर पीछे की ओर फेंककर इस तरह गरारे करता कि उसका टेंटुवा निकल आता। मालकिन न जाने क्यों यह देखकर जल-भुनकर कलाबत्तू हो जाती। जब नहीं रहा जाता तो कहती :

"मेरी समझ में इस तरह गरदन उठाकर गरारे करना तुम्हारे लिए नुक्सानदेह हो सकता है, येव्गेनी वासील्येविच!"

वह केवल मुसकराता और विनम्र स्वर में पूछता :

"क्यों, आप ऐसा क्यों सोचती हैं?"

"इसलिए कि... बस मुझे कुछ ऐसा ही मालूम होता है..."

इसके बाद हड्डी की एक छोटी सी कनी लेकर वह अपनी उंगलियों के नीले-नीले नाख़ून साफ़ करता और उसकी पीठ फिरते ही मालकिन चहक उठती :

"देखो न यह अपने नाखून तक साफ़ करता है एक गांव का मे लड़का है, लेकिन फिर भी..."

"अरी कुड़क-मुर्गियो!" मालिक लम्बी सांस खींचते हुए कहता। "क्या सारी बेवकूफ़ी तुम्हारे ही हिस्से में आई है!.."

उसकी पत्नी नाराज़ होती:

"ऐसी बात मुंह से निकालते तुम्हारी ज़बान गलकर नहीं गिर जाती!"

रात को बूढ़ी मालकिन खुदा के कान खाती:

"मेरी छाती पर मूंग दलने के लिए अब इस मरदुए को घर मे ले आए है, भगवान! मेरे वीक्तर को कोई नहीं पूछता..."

वीक्तर ने मेरे सौतेले पिता का रंग-ढंग अपनाना शुरू कर दिया, वैसे ही धीमे अन्दाज़ में वह चलता, उसकी भांति ही रईसाना और सुनिश्चित अन्दाज में हाथों को हरकत देता, उसी की भांति अपनी टाई मे गांठ लगाता और वैसे ही बिना चटखारे लिए और चपाचप की आवाज़ किए, खाना खाने की कोशिश करता। फिर, अक्खड़ अन्दाज़ में, पूछता:

"मक्सीमोव, फ़्रान्सीसी भाषा में 'घुटने' को क्या कहते है?"

"मेरा नाम येव्गेनी वासील्येविच है," मेरा सौतेला पिता शान्त भाव से उसकी भूल सुधारता।

"कोई बात नहीं। और 'छाती' के लिए फ़्रान्सीसी भाषा में क्या शब्द है?"

सांझ को जब खाने बैठता तो अपनी मां पर उल्टे-सीधे फ़्रेंच शब्दों की झड़ी लगा देता:

"मा मेर, दोन्ने मुअजन्कोर* सूअर का गोश्त!"

बड़ी मालकिन की बाछें खिल जाती। कहती:

"वाह रे, फ़्रांस की दुम!"

मेरा सौतेला पिता, बिना किसी परेशानी के गूंगे और बहरे आदमी की भांति अपना मांस चबाता रहता और किसी की ओर आंख उठाकर नहीं देखता।

एक दिन बड़ा भाई छोटे भाई से बोला:

---

*मा, मुझे थोड़ा और दीजिये।—स०

वीक्तर फ्रेंच भाषा बोलना तो तुम सीख गए अब बस महबबा भी रख लो...

मेरे सौतेले पिता ने जब यह सुना तो उसके चेहरे पर शान्त मुसकराहट खेल गई। इससे पहले और बाद में भी, मैंने उसे मुसकराते नहीं देखा।

लेकिन मेरे मालिक की पत्नी यह सुनकर आग-बबूला हो गई। चम्मच को मेज पर पटकते हुए झुंझलाकर चिल्लाई:

"तुम तो सारी हया-शर्म घोंटकर पी गए हो! घर की औरतों के सामने इस तरह की बातें करते तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं आती!"

पिछले दरवाजे के पास अटारी के ज़ीने के नीचे मै सोता था। ज़ीने मे एक खिड़की थी जहां बैठकर मै पुस्तके पढ़ता था। कभी-कभी मेरा सौतेला पिता घूमते हुए उधर आ निकलता।

"क्यों, पढ़ रहे हो?" एक दिन उसने पूछा और इतने ज़ोरों से सिगरेट का कश खींचा कि उसके सीने के भीतर जलती हुई लकड़ी के चटखने जैसी आवाज़ सुनाई दी। फिर बोला, "कौनसी पुस्तक है?"

मैंने उसे पुस्तक दिखा दी।

"ओह!" उसने पुस्तक के शीर्षक पर नज़र डाली और बोला, "इसे तो शायद मैं भी पढ़ चुका हूं। सिगरेट पियोगे?"

हम दोनो सिगरेट का धुआं उड़ाते और खिड़की में से गंदे अहाते की ओर देखते रहे।

"कितनी बुरी बात है कि तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का कोई डौल नहीं है," उसने कहा, "मुझे तो तुम काफी होशियार मालूम होते हो..."

"लेकिन पढ़ता तो हूं! देखिये न..."

"यह काफ़ी नहीं है। तुम्हें स्कूली शिक्षा की ज़रूरत है, जिसका एक ढंग और क़ायदा होता है..."

मेरे मन मे हुआ कि उससे कहूं:

"आपने तो बाक़ायदा स्कूली शिक्षा पाई थी, श्रीमान जी; पर उससे हुआ क्या?"

उसने मानो मेरे मन की बात भांप ली। बोला:

"अगर हृदय में किसी अच्छे लक्ष्य और उद्देश्य का बल हो तो स्कूली शिक्षा बड़ी मदद देती है। केवल पढ़े-लिखे लोग ही इस जीवन का चोला बदल सकते है..."

वह अक्सर सलाह देता :

"अच्छा हो कि तुम यह जगह छोड़ दो। यहां पड़े रहने में कोई तुक नही है..."

"लेकिन मजदूर मुझे अच्छे लगते है।"

"किस मानी में?"

"वे दिलचस्प होते है।"

"हो सकता है..."

एक दिन कहने लगा :

"जो हो, हमारे ये मालिक दरिन्दे है, पूरे दरिन्दे..."

मुझे उन क्षणों और परिस्थितियों की याद हो आई जब कि मेरी मा ने ठीक इन्हीं शब्दो का प्रयोग किया था। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरा पांव अंगारे पर पड़ गया हो।

"क्यों, क्या तुम ऐसा नहीं सोचते?" मुस्कराते हुए उसने पूछा।

"हां, ऐसा ही सोचता हूं।"

"ठीक ही है... मै देख ही रहा हूं।"

"लेकिन मुझे अपना मालिक फिर भी पसन्द है..."

"यो तो मुझे भी वह अच्छे हृदय का आदमी मालूम होता है... लेकिन कुछ अजीब सा है।"

मै उससे पुस्तकों के बारे में बातें करना चाहता था, लेकिन इस ओर उसमें कोई खास लगाव नहीं दिखाई दिया।

"पुस्तकों में इतना ज्यादा दिमाग़ खपाने की जरूरत नही," वह अक्सर कहता, "तिल का ताड़ बनाना पुस्तकों की विशेषता है। कोई चीजों की लम्बाई के रुख खीचतान करता है, और कोई चौड़ाई के रुख। लेखक भी ज्यादातार हमारे इन मालिकों की भांति है... ओछे लोग।"

जब वह इस तरह की बाते करता तो मुझे लगता कि वह बहुत ही साहसी कार्य कर रहा है, और मुंह बाये मै उसकी ओर देखता रहता।

"क्या तुमने गोंचारोव के उपन्यास पढ़े हैं?" एक दिन उसने पूछा।

"'युद्धपोत पल्लादा' पढ़ा है," मैने जवाब दिया।

"'पल्लादा' तो उबा देनेवाला उपन्यास है। लेकिन मोटे तौर से गोंचारोव रूस के अत्यन्त समझदार लेखकों मे से है। तुम उसका 'ओब्लोमोव' उपन्यास जरूर पढ़ना। यह एक अत्यन्त साहसपूर्ण और

सचाई से भरा उपन्यास है। और कुल मिलाकर रूसी साहित्य में इसका श्रेष्ठतम स्थान है

डिकेन्स के बारे में उसका कहना था:

"एकदम कूड़ा... मेरी यह राय सोलहों आने सही है। लेकिन आजकल 'नया जमाना' के परिशिष्ट में एक बहुत ही दिलचस्प चीज़ छप रही है। नाम है: 'सन्त एन्थोनी का प्रलोभन'। ज़रूर पढ़ना! गिरजे और दीन-धर्म की बातों में तुम्हारी दिलचस्पी तो काफी मालूम होती है। 'प्रलोभन' से तुम्हे काफ़ी लाभ पहुंचेगा।"

परिशिष्टों का एक अच्छा-खासा ढेर खुद उसने लाकर मेरे सामने रख दिया और फ्लाबर्ट की इस मजेदार कृति को मै पढ़ गया। उसे देखकर मुझे उन अनगिनत सन्तो की जीवनियां याद हो आई जिन्हे मै पढ चुका था। पारखी के मुंह से भी उस तरह के अनेक क़िस्से और कहानियां सुन चुका था। जो भी हो, उसका मेरे हृदय पर कोई गहरा असर नहीं पडा। उससे ज्यादा आनन्द तो मुझे 'उपिलियो फैसाली नामक एक जानवर साधनवाले के संस्मरण' पढ़ने में आया जो इन्हीं परिशिष्टों मे छपे थे।

अपने सौतेले पिता के सामने जब मैंने यह बात स्वीकार की तो शान्त स्वर में उसने कहा:

"इसका मतलब यह कि अभी तुम्हारी उम्र इस तरह की पुस्तकें पढ़ने लायक नहीं है। जो हो, उस पुस्तक को भूलना नहीं..."

कभी-कभी वह मेरे पास घंटो बैठा रहता, मुंह से एक शब्द न कहता, केवल जब-तब खांसता, और सिगरेट के धुएं के बादल उड़ाता रहता। उसकी सुन्दर आंखो में कुछ ऐसी चमक थी कि देखकर डर लगता। चुपचाप बैठा हुआ मै उसकी ओर देखता रहता, और इस बात का मुझे जरा भी ध्यान नहीं रहता कि यह आदमी जो इतनी खामोशी के साथ तिल-तिल करके गल रहा है और जिसके मुंह से शिकायत का एक शब्द भी नही निकलता, किसी जमाने में मेरी मां के तन-मन का स्वामी था, और मां के साथ क्रूरता से पेश आता था। मै जानता था कि आजकल किसी दरजिन से उसकी आशनाई है, और जब कभी उस दरजिन का मुझे ख़याल आता तो तरस और अचरज की भावना से मेरा हृदय भर जाता था। मै यह सोचकर स्तब्ध रह जाता कि उसकी लम्बी हड्डियो के आलिंगन में बंधना और उसका मुंह चूमना जिसमें से हर घड़ी सड़ांध

निकलती थी, वह कैसे बरदाश्त करती होगी? बहुत सूब की भांति मेरा सौतेला पिता भी एकाएक ऐसी टिप्पणियां करता जो अपनी मौलिकता से बेजोड़ होतीं।

"शिकारी कुत्ते मुझे बेहद पसंद है; वे बेवकूफ होते हैं, लेकिन फिर भी मुझे अच्छे लगते है। वे बहुत ही सुन्दर होते है। सुन्दर स्त्रियां भी अक्सर बेवकूफ़ होती है..."

कुछ गर्व का अनुभव करते हुए मै मन ही मन सोचता:

"रानी मार्गो को अगर तुमने देखा होता तो कभी इस तरह की बात न करते!"

एक दिन उसने कहा:

"जो लम्बे अर्से तक एक साथ रहते हैं, धीरे-धीरे शक्ल मे भी एक से हो जाते है।" उसका यह कथन मुझे इतना अच्छा लगा कि मैने उसे अपनी कापी में दर्ज कर लिया।

मै उसकी ओर ताकता और उसके मुंह से निकलनेवाले शब्दो और वाक्यों की इस तरह प्रतीक्षा करता मानो शीघ्र ही सौन्दर्य की कोई मूर्तिमान प्रतिमा प्रकट होनेवाली हो। इस घर में जहां लोग एक सिरे से बेरंग और बेरस, घिसी-पिटी और जंगखाई भाषा में बाते करते उसके मुंह से मौलिक शब्दों और वाक्यों को सुनकर हृदय खुशी से नाच उठता।

मेरा सौतेला पिता मां के बारे में मुझसे कभी बात नहीं करता। बात करना तो दूर, मेरे सामने उसने मां का एक बार भी नाम तक नहीं लिया। यह मुझे अच्छा लगता और एक तरह से आदर का भाव मै उसके प्रति अनुभव करता।

एक दिन, यह तो याद नहीं पड़ता कि किस सिलसिले में, मैने उससे भगवान के बारे में सवाल किया। उसने एक नजर मुझे देखा और फिर बहुत ही निश्चल अन्दाज में बोला:

"मुझे नहीं मालूम। मैं भगवान में विश्वास नहीं करता।"

मुझे सितानोव का ध्यान हो आया। अपने सौतेले पिता से मैने उसका जिक्र किया। जब मै अपनी बात पूरी कर चुका तो सौतेले पिता ने वैसे ही निश्चल अन्दाज में कहा:

"वह हर चीज को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसना और समझना चाहता है और जो लोग ऐसा करते है वे हमेशा किसी न किसी चीज में विश्वास करते हैं... लेकिन मै किसी चीज में विश्वास नहीं करता!"

लेकिन यह तो एक असम्भव बात है।

क्यों असम्भव क्यों है? मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूं तुम अपनी आंखों से देख सकते हो कि मैं किसी चीज में विश्वास नहीं करता...

लेकिन मुझे केवल एक ही चीज दिखाई देती थी: यह कि वह तिल-तिल करके मौत का निवाला बन रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि मेरे हृदय में उसके प्रति तरस की भावना थी, लेकिन पहली बार मौत के मुंह में जा रहे इंसान और खुद मौत के रहस्य में मेरी तीव्र और गहरी रुचि जागी।

वह मेरे पास एकदम बराबर में ही बैठा था। उसका घुटना मेरे घुटने को स्पर्श कर रहा था। संवेदनशील और बुद्धिमान, लोगों को वह उस नाते की नजर से देखता जिससे कि वह उनके साथ बंधा या नहीं बंधा था, हर चीज के बारे में वह इस विश्वास से बातें करता मानो उसे राय देने और नतीजे निकालने का अधिकार हो। मुझे ऐसा अनुभव होता मानो वह उन तत्वों को अपने भीतर छिपाए हो जो मेरे लिए आवश्यक थे या जो कम से कम अनावश्यक चीजों को मुझसे दूर रखते थे। वह एक ऐसा जीव था जो शब्दों द्वारा व्यक्त न की जा सकनेवाली पेचीदगी से भरा था, सही अर्थों में विचारों का ज्वालामुखी। उन तमाम भावों और विचारों के बावजूद जो मेरे हृदय में उसके लिए मौजूद थे, वह जैसे मेरा ही अंश था, एक ऐसा जीव जो मेरे अन्तर के किसी कोने में निवास करता था, मेरे चिन्तन का केन्द्र, मेरी आत्मा का सहज साथी। कल वह विलीन हो जाएगा... पूर्णतया विलीन हो जाएगा, सब उन सब बातों और भावनाओं के जो उसके हृदय और मस्तिष्क में छाई थीं और जिनकी एक झलक मुझे उसकी सुन्दर आंखों में दिखाई देती थी। जब वह विलीन हो जाएगा, कुछ भी उसका शेष नहीं रहेगा, तो जीवन के उन सूत्रों में से एक सूत्र खंडित हो जाएगा जो मुझे इस दुनिया से बांधे हुए हैं; उसकी केवल एक स्मृति भर रह जाएगी, लेकिन यह स्मृति पूर्णतया मेरे ही अन्तर में रहेगी, परिवर्तनहीन और सीमित, जब कि जीवित और परिवर्तनशील का कुछ भी शेष नहीं रहेगा...

लेकिन यह विचार मात्र है, इनसे भी परे वह अनबूझ चीज है जिसके गर्भ में विचार जन्म लेते, बढ़ते और पलते हैं, एक ऐसी चीज जिसका आदेश टाला नहीं जा सकता और जो हमें जीवन के घटनाक्रम पर सोचने

के लिए बाध्य करता है, और इस सवाल का जवाब मांगती है कि क्यों, ऐसा क्यों है?

"ऐसा लगता है कि शीघ्र ही मुझे बिस्तर की शरण लेनी पड़ेगी," एक दिन जब कि बूंदा-बांदी हो रही थी मेरे सौतले पिता ने कहा, "और मेरी इस कमजोरी की लाटसाहबी तो देखो, कोई काम करने को जी नहीं चाहता..."

अगले दिन शाम की चाय के समय उसने मेज और अपने घुटनों पर से जूठन के कण साफ करने में कमाल कर दिया, और देर तक इस तरह हाथों को हरकत देता रहा मानो किसी अदृश्य गंदगी को भगाने और झाड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। बूढ़ी मालकिन ने पलकों के नीचे से उसकी ओर देखा, और अपनी बहू से फुसफुसाकर बोली:

"देख तो, किस तरह अपने परों और बालों को नोच और झाड़-पोंछकर संवार रहा है..."

इसके दो दिन बाद वह काम पर नहीं आया, और एक दिन बूढ़ी मालकिन ने मुझे एक बड़ा सा सफ़ेद लिफ़ाफ़ा देते हुए कहा:

"यह ले, कल दोपहर के क़रीब एक लड़की इसे लेकर आई थी, पर मैं देना भूल गई। जवान, सुंदर सी लड़की थी, जाने कौन लगती है तेरी!"

लिफाफ़े के भीतर, बड़े-बड़े अक्षरों में, अस्पताली कागज पर निम्न संदेश लिखा था:

"एकाध घंटे का समय मिल सके तो आना। मैं मरतीनोव्स्काया अस्प-ताल में हूं।—ये० म०"

अगले दिन सवेरे ही मैं अस्पताल पहुंच गया और एक वार्ड में अपने सौतेले पिता के पायताने जाकर बैठ गया। वह बिस्तर से भी लम्बा था, और उसके पांव जिनमें वह भूरे रंग के मोजे पहने था, पलंग के पायताने से बाहर निकले थे। उसकी खूबसूरत आंखें पीली दीवारों का चक्कर लगातीं और मेरे चेहरे तथा उस लड़की के छोटे-छोटे नाजुक हाथों पर आकर टिक जातीं जो उसके सिरहाने एक स्टूल पर बैठी थी। उसने उसके तकिए पर अपने हाथ रख दिये और मेरा सौतेला पिता मुंह बाए अपने गाल से उन्हें सहलाने लगा। लड़की गुदगुदे बदन की थी, और गहरे रंग की सादी पोशाक पहने थी। उसके अंडाकार चेहरे पर आंसुओं की झड़ी लगी थी

और उसकी नीली आंखें सौतेले पिता के चेहरे पर, उसके गालों की बुरी तरह उभरी हड्डियों पर, पिचकी हुई नाक और बेरंग, मुर्दनी छाए मुंह पर जमी थीं।

"अगर इस आखिरी वक्त भगवान का नाम इनके कानों में पड़ जाता," वह फुसफुसा रही थी, "लेकिन यह है कि पादरी का मुंह तक नहीं देखना चाहते। इन्हें कोई कैसे समझाए..."

उसने तकिए से अपने हाथ उठा लिए और उन्हें इस तरह अपनी छातियों पर रखा मानो भगवान को याद कर रही हो।

एक क्षण के लिए मेरे सौतेले पिता में कुछ चेतना का संचार हुआ। भौंहें चढ़ाकर उसने छत की ओर ताका मानो किसी चीज़ को याद कर रहा हो। इसके बाद उसने अपना क्षयग्रस्त हाथ मेरी ओर फैला दिया।

"ओह तुम?.. तुम आ गए... बहुत, बहुत शुक्रिया। देखो न... क्या बेवकूफी की हालत है यह भी..."

यह कहते-कहते वह थक गया और उसने अपनी आंखें मूंद लीं। नीले नाखून वाली उसकी लम्बी और सर्द उंगलियों को मैंने सहलाया और लड़की ने धीमे स्वर में फिर अनुरोध किया:

"येव्गेनी वासील्येविच, मेरी खातिर मान जाओ! पादरी को..."

सौतेले पिता ने आंखें खोलीं और उसकी ओर इशारा करते हुए मुझसे बोला:

"इसे जानते हो? यह बहुत प्यारी..."

उसकी जबान रुक गई, मुंह और भी ज्यादा खुल गया, और एकाएक भरभराई सी आवाज़ में कौवे की भांति चीख उठा। वह बुरी तरह से छटपटाया, कम्बल उतरकर अलग हो गया और पलंग पर बिछे गद्दे को उसने अपने हाथों में दबोच लिया। लड़की के हृदय से भी एक चीख निकली और उसके कुचले हुए तकिए में सिर गड़ाकर सुबकियां भरने लगी।

सौतेले पिता को मरने में जरा भी देर नहीं लगी। बदन के ठंडा पड़ते ही उसके चेहरे पर एक अद्‌भुत शान्ति छा गई और उसकी आकृति का समूचा सौन्दर्य लौट आया।

लड़की को अपनी बांह का सहारा दिए मैं अस्पताल से चल दिया। वह रो रही थी और उसके पांव इस तरह लड़खड़ा रहे थे मानो बहुत दिनों की बीमार हो। उसके हाथ में एक रूमाल था जिसे दबा-सिकोड़कर

उसने गेंद बना लिया था, और रह-रहकर उससे पहले एक आंख के आंसू सोखती थी और फिर दूसरी के। रूमाल के इस गेंद को उसका हाथ बराबर कस और दबोच रहा था, और इस तरह वह उसे संभाले थी मानो वह उसकी आखिरी और जान से भी ज्यादा प्रिय निधि हो।

एकाएक वह ठिठककर खड़ी हो गई और निढाल सी होकर मेरे बदन से टिक गई। फिर वेदना और शिकायत में डूबे स्वर में बोली :

"जाड़ों तक भी तो नहीं रहे... आह मेरे भगवान, तूने यह क्या किया?"

इसके बाद आंसुओं में भीगा अपना हाथ उसने मेरी ओर बढ़ाया और बोली :

"अच्छा तो मैं अब चलती हूं। वे हमेशा तुम्हारी तारीफ करते थे। कल उनकी मिट्टी..."

"चलिये, आपको घर तक छोड़ आऊं?"

उसने एक नजर इधर-उधर देखा। फिर बोली :

"क्या जरूरत है? अभी काफ़ी उजाला है।"

नुक्कड़ पर रुककर मैंने उसे देखा। उसके डग बहुत ही अनमने भाव से सड़क पर पड़ रहे थे, ऐसे इंसान की तरह जिसे कहीं जाने की जल्दी न हो।

अगस्त का महीना था। पेड़ों से पत्ते झड़ रहे थे।

अपने सौतेले पिता के आख़िरी क्रिया-कर्म में मैं शामिल नहीं हो सका, और न ही उस लड़की से फिर कभी मेरी भेंट हुई...

१७

हर रोज सुबह छः बजे ही मैं मेले के मैदान की ओर रवाना हो जाता, जहां मैं काम करता था। वहां काफ़ी दिलचस्प लोगों से मेरी मुलाक़ात होती। सफ़ेद बालों वाला बढ़ई ओसिप जिसकी जबान छुरी की धार की भांति तेज थी। वह बहुत ही होशियार कारीगर था और देखने में बिल्कुल सन्त निकोलाई मालूम होता था। कुबड़ा येफ़ीमुश्का जो छत छाने का काम करता था; राजगीर प्योत्र जो पक्का भगत था, हमेशा कुछ सोचता रहता था और देखने में भी किसी सन्त की भांति मालूम होता था। प्लस्तरकार

ग्रिगोरी शिशलिन खूबसूरत था: सुनहरी दाढ़ी, नीली आंखें, और चेहरे पर शान्त तथा भले स्वभाव की चमक।

नवशान्वीस के यहां अपनी नौकरी के दूसरे दौर में ही मैं इन लोगों से परिचित हो गया था। हर इतवार को वे आते और बहुत ही रोबीले तथा ठाठदार अन्दाज में रसोईघर में प्रवेश करते। बहुत ही बढ़िया ढंग से वे बातें करते और रसीले तथा लच्छेदार शब्दों की झड़ी लगा देते। उनकी बातों में मुझे नयापन और अजीब ताजगी दिखाई देती। भारी-भरकम डीलडौल वाले ये देहातिये मुझे सिर से पांव तक भले मालूम होते। वे सभी अपने-अपने ढंग से दिलचस्प थे और कुनाविनो के कमीने, नशेबाज तथा चोर दुटपुंजियों से लाख दर्जे अच्छे थे।

उन दिनों प्लस्तरकार शिशलिन मुझे सबसे अच्छा लगता था। एक दिन तो मैंने उससे यह तक कहा कि काम सिखाने के लिए मुझे अपना शागिर्द बना ले। लेकिन उसने मंजूर नहीं किया। गोरी-चिट्टी उंगली से अपनी सुनहरी भौंह को खुजलाते हुए नर्मी से बोला:

"अभी तेरी उम्र बहुत कम है। हमारा धंधा आसान नहीं है, अभी एक-दो साल और ठहर जा..."

इसके बाद अपने खूबसूरत सिर को जरा पीछे की ओर फेंकते हुए बोला:

"क्यों, जीवन बहुत कठोर मालूम होता है, क्या? लेकिन कोई बात नहीं। बस डटा रह, अपने पर जरा काबू रख, सब ठीक हो जाएगा!"

यह तो नहीं कह सकता कि उसकी इस भली सीख से क्या कुछ लाभ मैंने उठाया, लेकिन मुझे अब तक सीख याद है और उसके प्रति कृतज्ञता से मेरा हृदय भरा है।

यह लोग हर रविवार की सुबह अब भी मेरे मालिक के घर जमा होते, रसोईघर में मेज के चारों ओर बेंच पर बैठ जाते और दिलचस्प बातें करते हुए मालिक के आने का इन्तजार करते। मालिक आता, बहुत खुश होकर उनका अभिवादन करता, उनके मजबूत हाथों को अपने हाथ में लेकर हिलाता और देव-प्रतिमाओं वाले कोने में बेंच पर बैठ जाता। इसके बाद सप्ताह भर का हिसाब-किताब शुरू हो जाता, नोटों की गड्डियां आतीं, देहातिये अपने बिलों और फटी-पुरानी बहियों को निकालकर मेज पर फैला लेते।

हंसते और चुटकियां लेते हुए मालिक उन्हें और वे मालिक को धोखा देने की कोशिश करते। कभी-कभी खूब झिकझिक होती, लेकिन आम तौर से हंसी-ख़ुशी और एक-दूसरे के साथ छेड़छाड़ के वातावरण में ही वे सारा हिसाब निबटा लेते।

"वाह प्यारे, मालूम होता है कि किसी बहुत ही चालाक दाई ने तुम्हे घुट्टी पिलाई थी!" वे मालिक से कहते।

झेंपती सी हंसी हसते हुए वह जवाब देता:

"तुम्हीं कौन कम हो—जरा आंख बची कि माल मारों का! क्यों, ठीक कहता हूं न, कुड़क मुर्गो!"

येफीमुश्का मान लेता, "और हो भी क्या सकता है, दोस्त?"

गम्भीर प्योत्र कहता:

"चोरी से कमाये-बचाये माल पर ही तो आजकल गुज़ारा है। ईमानदारी की सारी आमदनी तो ख़ुदा और जार के चढ़ावे में चली जाती है..."

"तब तो तुम्हारी थोड़ी-बहुत हजामत बना लेना कोई पाप नहीं है!" मालिक हंसते हुए कहता।

वे भी मजाक में ही जवाब देते:

"इसका मतलब कि हमको उल्लू बनाना चाहते हो?"

"हमसे चार सौ बीसी!"

ग्रिगोरी शिशलिन अपनी झाड़दार दाढ़ी छाती से लगाते हुए गुनगुनाकर अनुरोध करता:

"क्यों भाइयो, अगर हम एक-दूसरे को धोखा दिए बिना अपना कारबार करें तो कैसा हो? एकदम ईमानदारी से। न कोई झंझट, न झगड़ा। सारा काम इतनी सहूलियत से हो कि पता तक न चले। बोलो, भले लोगो, तुम्हारी क्या राय है इस बारे में?"

यह कहते-कहते उसकी नीली आंखें तरल और गहरी हो उठतीं। इस समय उसके चेहरे की चमक देखते ही बनती थी। उसका सुझाव सभी को मानो उलझन में डाल देता और एक-दूसरे से आंखें बचाते वे इधर-उधर देखने लगते।

सलौना सा ओसिप सांस खींचते हुए और तरस सा खाते हुए देहातियों की वकालत में बुदबुदाता, "देहातियों की बात छोड़ो, वे अगर चाहें तो भी लोगों को ज्यादा धोखा नहीं दे सकते।"

काला और गोल कंधों वाला राज झुककर मेज पर दोहरा होते हुए कहता :

"पाप तो गहरी दलदल है, उसमें पांव रखा नहीं कि आदमी धंसता ही जाता है!"

मालिक भी उनके ही अन्दाज को अपनाते हुए जवाब देता :

"मैं तो अपनी सारंगी के स्वर तुम्ही लोगों की आवाज के साथ फिट करता हूं..."

कुछ देर तक वे इसी तरह फ़लसफ़ा झाड़ते रहते और इसके बाद फिर एक-दूसरे को चकमा देने पर उतर आते। हिसाब-किताब निबट जाने पर वे उठते, थके हुए से और पसीने में सराबोर, और चाय के लिए ढाबे की ओर चल देते। साथ में मालिक को भी खींच ले जाते।

मेले में मेरा काम इस बात की निगरानी रखना था कि ये लोग कील-कांटे, ईंटें और इमारती लकड़ी चुराकर न ले जाएं। कारण कि मेरे मालिक के साथ काम करने के अलावा इन लोगों ने खुद भी ठेके ले रखे थे और जब भी उन्हें मौका मिलता आंखों मे धूल झोंककर माल तिड़ी कर देते थे।

मेरे साथ वे बड़े प्यार से पेश आये। पर शिशलिन ने कहा :

"क्यो तुझे याद है, तू काम सीखने के लिए मेरा शागिर्द बनना चाहता था? अब देख, तू कहां पहुंच गया, मेरा साहब बनेगा, है?"

"ठीक है, ठीक है," ओसिप ने चुटकी ली, "कर जी भर कर चौकसी।"

प्योत्र के स्वर में तीखापन था। बोला :

"सवाल यह है कि इस जवान सारस को बूढ़े चूहों की निगरानी पर क्यों रखा गया?.."

मेरी जिम्मेदारियों से मुझे बुरी तरह उलझन होती। इन लोगों के सामने मुझे शर्म मालूम होती। मैं इन को अपने से बड़ा और किसी ऐसे रहस्य और ज्ञान का धनी समझता था जो मेरे लिए दुर्लभ था। फिर भी मुझे उनकी इस तरह चौकसी करनी पड़ती मानो वे चोर और उचक्के हों। शुरू-शुरू में तो यह काम मुझे एक बहुत बड़ा बवाल मालूम होता। मेरी समझ मे न आता कि कैसे क्या करूं। लेकिन शीघ्र ही ओसिप ने मेरी उलझन का अन्दाज लगा लिया और एक दिन अकेले में मुझसे बोला :

"सुन, छोकरे, तू मुंह-वुंह मत फुला, इससे कुछ होने का नहीं, समझा?"

मेरी समझ मे कुछ नही आया, सिवा इसके कि वृद्ध की दक्ष आखे मेरी स्थिति के बेढंगेपन को समझती है। नतीजा इसका यह कि देखते न देखते हम एक-दूसरे से खूब खुलकर बातें करने लगे।

वह मुझे अलग किसी कोने में सीख दिया करता:

"अगर तू जानना ही चाहता है तो सुन, राज प्योत्र हम सब से बड़ा चोर है। एक तो वह लालची है, दूसरे उसके कंधों पर काफ़ी बड़े परिवार का बोझ है। उसपर कड़ी निगाह रखना। हर चीज पर वह हाथ साफ करता है—और कुछ न होगा तो मुट्ठी भर कीलें जेब में डाल लेगा, दस-पांच ईंटें खिसका देगा, पोटली में बांधकर चूना-मिट्टी लिडी कर देगा। कोई चीज ऐसी नहीं जिसे वह छोड़ता हो! वैसे आदमी बहुत भला है भगतों जैसा उसका स्वभाव है, पढ़ना-लिखना जानता है, लेकिन चोरी का ऐसा चस्का पड़ा है कि पीछा नहीं छोड़ता! अब येफीमुश्का को ही देख—उसके लिए औरतों में ही सब कुछ है। और है गऊ सा सीधा, तुझे उससे कोई खतरा नहीं। दिमाग़ भी उसका तेज़ है। कुबड़े वैसे सभी दिमाग़ के तेज़ और खूब चतुर होते हैं! और ग्रिगोरी शिशलिन—वह कुछ सनकी दिमाग का है। दूसरों की चीजें लेना दूर, वह उन चीज़ों को भी अपने कब्जे में नहीं रख पाता जो उसकी अपनी है! उसे सब बेवकूफ बना सकते है, लेकिन वह किसी को बेवकूफ़ नहीं बना सकता! उसका हर काम बेतुका होता है..."

"क्या वह भला आदमी है?"

ओसिप ने आंखें सिकोड़कर इस तरह मुझे देखा मानो बहुत दूर से देख रहा हो, और इसके बाद उसने ऐसे शब्द कहे जो कभी नहीं भूले जा सकते:

"हां, वह भला आदमी है! काहिल लोगों के लिए भला बनना सबसे आसान काम है। समझे बचुआ, दिमाग़ी पूंजी का जब दिवाला निकल जाता है, तभी आदमी भला बनता है!.."

"और अपने बारे में तुम क्या कहते हो?" मैने उससे पूछा।

हल्की सी हंसी के साथ उसने जवाब दिया:

"अपने बारे में तो मै एक लड़की की भांति कहता हूं: सफ़ेद बाल

और एकाध दरजन नाती-पोते हो जाने के बाद जब मैं नाना बन जाऊंगा, तब तुझे बताऊंगा कि मैं कैसा था! तब तक तुझे इन्तजार करना होगा। या फिर अपने दिमाग से काम ले और पता लगा कि मैं कैसा हूं। मेरी ओर से तुझे पूरी छूट है!"

उसने मेरे उन तमाम अन्दाजों को उलट-पुलट कर दिया जो मैंने उसके और दूसरो के बारे में लगा रखे थे। उसने जो कुछ बताया था, उसमें सन्देह करने की गुंजाइश नही थी। मै नित्य देखता कि येफीमुश्का, प्योत्र और ग्रिगोरी भी इस खूबसूरत बूढ़े को अपने से ज्यादा चतुर और दुनियावी मामलों का जानकार समझते हैं। वे हर बात और हर मामले मे उससे सलाह लेते। उसकी बातों को ध्यान से सुनते और हर तरह से उसका मान करते।

"जरा बताओ तो सही कि इस मामले मे हम क्या करें," वे उससे अक्सर कहते और वह अपनी सलाह देता। लेकिन ऐसे ही एक दिन अपनी सलाह देने के बाद जब ओसिप चला गया तो राजगीर ने ग्रिगोरी से दबे स्वर में कहा:

"नास्तिक है, नास्तिक!"

और ग्रिगोरी ने हंसते हुए जोड़ दिया:

"मसखरा है, पूरा मसखरा!"

प्लस्तरकार ने दोस्ती का भाव जताते हुए मुझे चेताया:

"मक्सीमिच, कहीं इस बूढ़े के चक्कर में न फंस जाना। उससे बहुत होशियार रहने की जरूरत है। पलक झपकते ही वह तुझे चकमा दे जायेगा! इन खूसट बूढ़ों से भगवान ही बचाए!"

मेरी समझ में कुछ नही आता।

मुझे ऐसा मालूम होता कि राज इनमें सबसे अधिक ईमानदार और नेक था। वह हमेशा थोड़े से बात करता और उसके शब्द सीधे हृदय में पैठ जाते। उसके विचार बहुतकर भगवान, मौत और नरक के चारो ओर मंडराते रहते।

"आह भाइयो, आदमी चाहे जितने हाथ-पांव मारे और चाहे जितने मनसूबे बांधे, आखिर डेढ़ हाथ कफ़न और इस धरती की मिट्टी की उसे शरण लेनी पड़ती है!"

वह पेट के किसी रोग का शिकार था। कभी-कभी तो ऐसा होता कि कई-कई दिन बीत जाते और वह मुंह में एक दाना तक न डालता, अगर जरा सा कण भी उसके पेट में चला जाता तो दर्द के दौरों और मतलियों के मारे उसका बुरा हाल हो जाता।

कुबड़ा येफीमुश्का भी भला और ईमानदार मालूम होता था, लेकिन था कुछ बेढाल का बूदम, और कभी-कभी अपने आप को एकदम अल्लाह-मियां पर छोड़कर इस तरह घूमता मानो उसने होश-हवास खो दिए हो। वह हमेशा किसी न किसी स्त्री के प्रेम में पागल रहता और इन स्त्रियो मे से हरेक का समान शब्दो में वर्णन करता :

"मै झूठ नही बोलता, औरत नहीं, एकदम मलाई का फूल है, चिकना और मुलायम!"

जब कुनाविनो की मुंहजोर स्त्रियां दुकानो के फर्श धोने आती तो येफीमुश्का छत से नीचे उतर आता और किसी कोने में खड़ा होकर अपनी चमकदार आंखों को वह कसकर सिकोड़ लेता और उसका मुंह, प्रसन्नता में, इस कान से उस कान तक फैल जाता। मगन भाव से वह बुदबुदाता :

"आह, कितने रसीले निवाले भगवान ने मेरे मार्ग में छितरा दिए है। जीवन का सुख मानो अपने आप उमड़ता हुआ मेरी ओर चला आ रहा है। जरा उसे देखो, कितना बेजोड़ फूल है। समझ मे नहीं आता कि किन शब्दों में मै अपने इस भाग्य की सराहना करूं जिसने इतना बढ़िया उपहार मुझे भेंट किया है! इसका सौन्दर्य क्या है मानो चिंगारी है जो जल्दी ही मुझे भस्म कर डालेगी!"

यह सुन स्त्रियां खिलखिलाकर हंसती और एक-दूसरे को टहोका मारते हुए कहतीं :

"हाय राम, इस कुबड़े को तो देखो, क्या गलगल हुआ जा रहा है!"

उनके इन मजाकों का उसपर कोई असर न होता। उभरे हुए गालो वाला उसका चेहरा धीरे-धीरे उनींदा सा हो जाता, अपनी आवाज पर जैसे उसका कुछ काबू न रहता और रसीले शब्दों की मदमस्त धारा उसके मुंह से प्रवाहित होने लगती। स्त्रियों पर एक नशा सा छा जाता और अन्त में बड़ी आयु की कोई स्त्री अचरज में भरकर कह उठती :

अरी देखो तो छबीला कैसे तड़फ रहा है!

"वाह, क्या चहक रहा है..."

पर कोई अड़ियल अड़ी रहती:

"या कोई भिखारी गिरजे के दरवाजे पर भीख मांग रहा हो।"

लेकिन येफ़ीमुश्का भिखारी जरा भी नहीं मालूम होता। मजबूत तने की भांति उसके पांव दृढ़ता से धरती पर जमे होते, उसकी आवाज का जादू हर घड़ी फैलता और बढ़ता जाता और उसके शब्दों का मोहिनी मंत्र अपना पूरा जोर दिखाता। स्त्रियों का बोलना बंद हो जाता और वे ध्यान से सुनतीं। ऐसा मालूम होता मानो शहद में लिपटे अपने शब्दों से वह कोई मोहक जाल बुन रहा है।

और परिणाम होता कि रात के भोजन के समय या जब सब काम ख़त्म कर चुके होते, तब अपना भारी चौकोर सिर हिलाते हुए और अचरज में भरकर अपने साथियों से कहता:

"आह कितनी प्यारी, कितनी मीठी औरत.. एकदम शहद! जीवन में पहली बार इतनी मिठास देखी!"

स्त्रियों को अपने वश में करने के क़िस्से जब वह सुनाता तो अन्य लोगों की भांति न तो वह शेखी बघारता और न उन स्त्रियों का मज़ाक उड़ाता। केवल उसकी आंखें प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्ण अचरज के भाव से खुली की खुली रह जातीं।

सिर हिलाते हुए ओसिप कहता:

"वाह, आदम की औलाद, जरा बता तो तेरी उम्र कितनी हो गयी?"

"चार ऊपर चालीस। लेकिन उम्र से क्या होता है? आज तो मेरी उम्र मानो पांच साल घट गई। आज मैंने वैतरणी में गोता लगाया है और जीता-जागता तुम्हारे सामने मौजूद हूं। मेरा हृदय फूल की भांति खिला है। और भगवान ने औरत को भी ख़ूब बनाया है!"

राज ने कड़े स्वर में कहा:

"मेरी बात गांठ-बांध ले, – अभी भले ही तुझे हरियाली दिखाई दे, लेकिन पचास पार करते ही तेरी यह हरकतें तुझे ख़ून के आंसू रुलाएंगी!"

ग्रिगोरी शिशलिन ने भी लम्बी सांस खींची:

"तूने तो बेशर्मी की हद कर दी, येफ़ीमुश्का!"

मुझे लगा कि अपने मुकाबिले में कुबडे को बाजी मारते देख खूबसूरत शिशलिन अब अपने जी की जलन मिटा रहा था।

ओसिप ने अपनी मुडी हुई रुपहली भौंहों के नीचे से झांककर सबपर एक नजर डाली। हंसते हुए बोला:

"हर छोरी की अपनी कमजोरी, एक मांगे चम्मच-प्याला, दूसरी कहे कपड़ा-लत्ता ला, कोई चाहे जेवर-गहना, बुढ़िया सबको होकर रहना।"

शिशलिन विवाहित था। लेकिन उसकी पत्नी देहात में रहती थी। फ़र्श साफ करनेवाली स्त्रियों को देखकर उसका मन भी ललक उठता। उन्हें पाना कुछ मुश्किल न था। कारण कि उनमें से प्रत्येक कुछ फालतू आय की खातिर खिलौना बनने के लिए तैयार थी। भूख मारी इस बस्ती में आमदनी का यह तरीका भी उसी तरह चालू था जैसे कि अन्य। लेकिन वह खूबसूरत देहातिया स्त्रियों को हाथ नहीं लगाता था, चेहरे पर एक अजीब भाव लिए वह उन्हें दूर से ही यों देखता रहता था, मानो उसे उनपर या अपने पर तरस आ रहा हो। और जब वे खुद उससे छेड़छाड़ करतीं या उसे उकसाना शुरू करतीं तो वह झेंप जाता और हंसकर टालता हुआ चला जाता:

"अरे यह क्या, देखो न..."

येफ़ीमुश्का को उसकी इस हरकत पर एकाएक विश्वास न होता। उसे कोंचता हुआ कहता:

"तू आदमी है या घनचक्कर? इतना अच्छा मौका भी भला कोई अपने हाथ से जाने देता है?"

ग्रिगोरी अपनी सफाई देता, "भाई मेरे, मैं शादीशुदा आदमी हूं।"

"तो इससे क्या हुआ? उसे सपने में भी इसका पता नहीं चलेगा।"

"घरवाली को धोखा नहीं दिया जा सकता, भाई! अगर मर्द इधर-उधर मुंह मारता है तो घरवाली इसका हमेशा पता लगा लेती है!"

"सो कैसे?"

"यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन अगर खुद उसके आंचल में कोई दाग नहीं लगा है तो वह जरूर पता लगा लेगी। इसी तरह अगर मैं पाक-साफ़ रहता हूं और मेरी घरवाली बदकारी पर उतर आती है, तो मुझे इसका पता लग जाएगा..."

"सो कैसे?" येफ़ीमुश्का फिर चिल्लाकर पूछता।

ग्रिगोरी शान्त स्वर से बोला :

"यह मै नही जानता..."

येफीमुश्का ऊब उठता। हाथ हिलाते हुए कहता :

"भला यह भी कोई बात हुई... पाक-साफ... नही जानता... तू आदमी है या घनचक्कर!"

शिशलिन की देख-रेख में कुल मिलाकर सात मजदूर काम करते थे। उसके साथ उनके संबंध मालिक-नौकर के से नही, बल्कि अधिक सरल थे। पीठ पीछे वे उसे बछिया का ताऊ कहते। जब वह आता और देखता कि उसके आदमी काम मे ढील कर रहे है तो वह करनी उठाता और ऐसी लगन से काम में जुट जाता कि देखते ही बनता। साथ ही मुलायम आवाज मे कहता जाता :

"लगा दो तेज हाथ, प्यारो, तेज-तेज हो जाओ!"

एक दिन अपने मालिक के उतावलेपन और कोंचने से मजबूर होकर मैने ग्रिगोरी से कहा :

"तुम्हारे ये मजदूर बिल्कुल निठल्ले हैं!.."

यह सुन वह मानो कुछ अचरज में पड़ गया। आंखें फाड़कर बोला :

"क्या सचमुच?"

"हां, यह काम कल दोपहर तक खत्म हो जाना चाहिए था, लेकिन मालूम होता है कि आज भी पूरा नहीं होगा..."

"यह बात तो ठीक है। वे इसे आज भी पूरा नही कर सकेंगे," उसने सहमति प्रकट की और फिर कुछ रुककर हिचकिचाते हुए बोला :

"मेरे क्या आंखें नहीं है? मै भी सब देखता और जानता हूं। लेकिन मै उन्हें डंडे से नही हांक पाता। मुझे शर्म मालूम होती है। ये सब अपने ही तो लडके है और अपने ही गांव के। प्रभु ने आदम से कहा था : जा, अपनी एड़ी-चोटी का पसीना बहा और अपना पेट भर! हम सब के लिए प्रभु ने यह आदेश दिया था। क्यो ठीक है न? कोई भी इस आदेश से बरी नही है, न मै, न तू। लेकिन तू और मै उनके मुकाबिले कम मेहनत करते है। इसी लिए मुझे शर्म मालूम होती है। मैं उन्हें डंडे से नहीं हांक सकता..."

वह हर घड़ी कुछ न कुछ सोचता रहता। कभी-कभी ऐसा होता कि उसे पता तक न चलता और मेले के मैदान की सूनी सड़कों मे से किसी

एक को पार करता। हुआ वह ओवबोदनो नहर के पुल पर पहुंच जाता और वहां रेलिंग पर झुका हुआ घंटों पानी की ओर ताकता, आकाश अथवा ओका नदी के पार खेत-खलिहानों पर नज़र डालता रहता। उसके पास आकर अगर पूछा जाता:

"यहां क्या कर रहे हो?"

तो वह चौंक उठता और सकपकाकर मुसकरा देता। "अरे, कोई खास बात नहीं... यों ही जरा सुस्ताने और इधर-उधर का नजारा देखने के लिए खड़ा हो गया था..."

वह अक्सर कहता:

"भगवान ने भी हर चीज क्या ठीक-ठिकाने से बनाई है। आसमान और यह धरती जिसपर नदियां बहती है और नदियों में डोंगे, नाव और बजरे तैरते हैं। उनमें बैठकर चाहे जहां चले जाओ—रियाजान, रीबिन्स्क, पेर्म या आस्त्रखान। एक बार मैं रियाजान गया था। नगर बुरा नहीं है, लेकिन उदासी में डूबा हुआ,—नीज्नी नोवगोरोद से भी ज्यादा उदास। हमारा नीज्नी तो फिर भी मजे की जगह है। और आस्त्रखान? वह और भी मनहूस है। कल्मीक जाति के लोग वहां बहुत हैं। मुझे वे जरा भी अच्छे नहीं लगते। कल्मीक हों, चाहे मोर्दोवियाई, तुर्क हों चाहे जर्मन, ग़ैर देशों में जन्मे सभी लोग मुझे बेकार की बला मालूम होते हैं।"

वह बहुत धीरे-धीरे बोलता। उसके शब्द मानो सावधानी से डग रखते किसी ऐसे आदमी को ढूंढ रहे हों जो उससे सहमत हो सके। राज प्योत्र ऐसा ही आदमी था जो आम तौर से उसीके स्वर में स्वर मिलाता था।

"ग़ैर देशों में जन्मे नहीं, बैरी देश में जन्मे कहो," प्योत्र गुस्से से विश्वासपूर्वक कहता, "ईसा के बैरी, बैरी धर्म के..."

ग्रिगोरी का चेहरा खिल उठता:

"कुछ भी कहो, मुझे तो भाई, खालिस रूसी खून पसन्द है, सीधा और सच्चा, मिलावट का जिसमें नाम नहीं। यहूदी भी मुझे बेकार लगते हैं। मैंने तो बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि भगवान ने इन ग़ैर जातियों को क्यों पैदा किया? जरूर इसमें कोई गहरा राज है..."

राज भुनभुनाता:

"हो सकता है कि इसमें कोई गहरा राज हो, लेकिन फ़िजूल चीजों की भी कमी नहीं है!.."

ओसिप से नहीं रहा गया। तीखे शब्दों में धज्जियां बखेरता हुआ बोला :

"फालतू चीजें तो बहुत हैं। तुम्हारी ये बातें ही फालतू हैं। वाह रे, पंथियो। तुम्हारा यह पंथपना कोड़े मार-मारकर निकालना चाहिए!"

ओसिप सबसे अलग रहता, और कभी यह जाहिर न होने देता कि उसका किससे विरोध है और किससे सहमति। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता कि वह उदासीनतापूर्वक हर बात और हर आदमी से सहमत है। लेकिन अक्सर सभी लोगों से तंग और उकताया हुआ नजर आता और सभी को एक सिरे से मूर्ख समझता।

"तुम... एह तुम... तुम सूअर की औलाद हो!" वह प्योत्र, ग्रिगोरी और येफ़ीमुश्का, सभी को एक ही पेटे में लपेटता।

सुनकर वे एक लघु हंसी हंसते, न तो बहुत प्रसन्नता से और न बहुत उछाह से, लेकिन हंसते जरूर।

मालिक खुराक के लिए मुझे पांच कोपेक रोज देता था। इसमें पूरा न पड़ता और मैं अक्सर भूखा रह जाता। यह देखकर कारीगर दोपहर और सांझ का भोजन करते समय मुझे भी बुला लेते और कभी-कभी ठेकेदार चाय पीने के लिए मुझे अपने साथ भटियारखाने में ले जाते। मैं उनके बुलावों को ख़ुशी से मंजूर कर लेता और उनके बीच बैठकर उनकी अलस बातों और अनोखे क़िस्सों को मज़े से सुनता। धार्मिक पुस्तकों की मेरी जानकारी सुनकर वे बहुत खुश होते।

"पुस्तकों से तेरा पेट गले तक अटा है और अब फटा ही चाहता है!" अपनी नीली आखों से मुझे बींधते हुए ओसिप कहता। उसकी आंखों का भाव पकड़ में नहीं आता था। ऐसा मालूम होता मानो उसकी पुतलियां पिघलकर आंखों की सफ़ेदी के साथ एकाकार होती जा रही हों।

"जो हो, अपने ज्ञान को बटोर और संजोकर रखना, उसे ज़ाया न होने देना। वक़्त पर काम आएगा। बड़े होने पर तू सन्यासी बन सकता है। लोगों को सान्त्वना देना और उनके दुःखते हृदयों पर मधुर शब्दों से मरहम लगाना। या फिर तू धनपति बन जाना..."

"धनपति नहीं, धर्मपति!" राज ने, न जाने क्यों, चोट खाई हुई सी आवाज़ में कहा।

"क्या?" ओसिप ने पूछा।

"धनपति नही, उन्हें धर्मपति कहते है। जानता तो है तू और बहरा भी नही..."

"अच्छी बात है, धर्मपति बनकर नास्तिकों और धर्म-द्रोहियो की दुम उखाड़ना। या फिर खुद धर्म-द्रोहियो की पांत में शामिल हो जाना। यह भी बुरा नहीं रहेगा। असल चीज तो दिमाग है! अगर तू उसमे काम लेगा तो धर्म-द्रोह से भी बहुत कुछ पैदा कर लेगा और मजे से जीवन बिता सकेगा.."

ग्रिगोरी अचकचाकर खिसियानी सी हंसी हंसता और प्योत्र अपनी दाढी मे बुदबुदाता:

"झाड़-फूंक करनेवाले भी तो मजे मे रहते है और दूसरे धर्म द्रोही भी..."

"लेकिन ओझा पढ़े-लिखे नही होते,—ज्ञान से उनका भला क्या वास्ता?" ओसिप जवाब देता और फिर मेरी ओर मुंह करते हुए कहता:

"सुन, मै तुझे एक किस्सा सुनाता हूं। किसी जमाने मे हमारे गाव मे एक अकेला आदमी रहता था। तुश्निकोव उसका नाम था। यो ही बेकार सा आदमी था, जिसे कोई नही पूछता था। जिधर हवा ले जाती, सूखे पत्ता सा उधर ही उड़कर जा गिरता। न तो वह मजदूर था, और न आवारा! एक दिन जब और कुछ नहीं सूझा तो तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा। पूरे दो साल तक उसकी शक्ल नही दिखाई दी। इसके बाद एकाएक जब वह लौटा तो उसका हुलिया ही एकदम बदला हुआ था—कंधों तक लटके बाल, पादरियों जैसी गोल टोपी चिन्दिया से चिपकी हुई, बदन पर झूल सा लटकता हुआ दोसूती का लबादा। चिंगारियां छोडती नजर से वह लोगो को बींधता और चीखकर बार-बार कहता—'अपने पाप कबूल करो लोगो, कबूल करो!' और कबूल करनेवाले लोगों, खास तौर से स्त्रियों की बाढ़ उमड़ पड़ती। इस बाढ़ को भला कौन रोकता? उसने दोनो हाथो से चांदी बटोरी। तुश्निकोव को खाना मिला। तुश्निकोव को शराब मिली। तुश्निकोव को लुगाइयां मिलीं, जिसपर नजर डालता, वही उसके सामने बिछ जाती..."

"भोजन और शराब से कुछ नही आता-जाता," राज ने बीच मे ही झुंझलाकर टोका।

"तो फिर किस चीज से आता-जाता है?"

असल चीज है शब्द वाणी।

"उसके शब्दों को तो मैंने उलट-पुलट कर नहीं देखा। यों शब्द तो मेरे दिमाग की पिटारी में भी भरे पड़े है।"

"उस द्मीत्री वासील्येविच तुग्निकोव को हम अच्छी तरह जानते है," आहत स्वर में प्योत्र ने कहा और ग्रिगोरी ने चुपचाप अपनी आंखें झुका ली और चाय के गिलास की ओर देखता रहा। ओसिप समझौते के स्वर मे बोला:

"बहस में पड़ने का मेरा इरादा नहीं है। मै तो एक मिसाल देकर मक्सीमिच को केवल रोटी-रोजी कमाने के रास्ते बता रहा था..."

"जिनमें से कुछ सीधे जेल की हवा खिलाते है!.."

"कुछ क्यों, बल्कि ज्यादातर," ओसिप ने सहमति प्रकट की। "सभी रास्ते सन्तपन की ओर नहीं ले जाते, यह भी पता होना चाहिए कि कहा मुड़ना है..."

प्लस्तरकार या राज जैसे भगत लोगों के प्रति उसके व्यवहार मे व्यंग का कुछ पुट मिला रहता। शायद वह उन्हे पसंद नहीं करता था, लेकिन वह इतना चौकस था कि अपने भावो को प्रकट नहीं होने देता था। मोटे तौर से यह कि लोगों के प्रति उसके रवैये का पता लगाना कठिन था।

येफीमुश्का के साथ वह ज्यादा नर्मी और मुलामियत से पेश आता जो अपने अन्य साथियों की भांति मानव जीवन के अभिशापो, पाप-पुण्य, भगवान और विभिन्न पंथो से सम्बंधित बहसों में हिस्सा नही लेता था। वह कुर्सी की पीठ मेज की ओर आड़ी करके बैठ जाता ताकि उसका कूबड़ कुर्सी की पीठ से रगड़ न खाए, और एक के बाद एक चाय के गिलास खाली करता रहता। फिर, एकाएक चेतन और चौकन्ना होकर वह अपनी आखे उठाता और सिगरेट का धुआं भरे कमरे में इधर-उधर देखकर कुछ खोजता हुआ सा नजर आता। उसके कान खड़े हो जाते और भाति-भाति की आवाजो के बीच वह कुछ सुनने का प्रयत्न करता। अन्त में वह उछलकर खड़ा होता और तेजी से गायब हो जाता। यह इस बात का सूचक था कि भटियारखाने मे किसी ऐसे आदमी का आगमन हो गया है जिससे येफीमुश्का ने कर्ज ले रखा था। ऐसे कोई दर्जन-एक लोग थे, उनमे तो कुछ तो ऐसे थे जो मारपीट के जरिये अपना कर्ज वसूल करने के आदी थे। इसलिए वह हमेशा भागता नजर आता था।

"हूं नहीं [illegible], नाराज होते हैं," वह अचरज मे भरकर कहता, "इतना भी नही समझते कि अगर मेरे पास पैसा होता तो मैं अपने आप खुशी से अदा कर देता!"

"ओह, कुत्ते की दुम!" ओसिप ढेला सा फेंककर मारता।

कभी-कभी येफ़ीमुश्का विचारो में खोया बैठा रहता। न वह कुछ देखता, न सुनता। उसका उभरे हुए गालो वाला चेहरा ढीला पड़ जाता और उसकी भली आंखें और भी भली हो उठतीं।

"किस सोच में पड़े हो मित्र?" वे उससे पूछते।

"मैं सोच रहा हूं कि अगर मै धनी होता तो असली, सचमुच मे भली किसी कर्नल की लड़की या ऊंचे कुल की ऐसी ही किसी औरत से शादी करता और सच, मै उससे इतना प्रेम करता कि तुम सोच तक नही सकते! भगवान जाने, उसका स्पर्श पाकर उसके प्रेम की आग में मै वैसे ही जलता जैसे कि मोमबत्ती जलती है... यक़ीन न हो तो सुनो। एक बार देहात मे किसी कर्नल ने घर बनवाया और इस घर पर नयी छत डालने का काम उसने मुझे सौंपा। इस कर्नल की एक..."

"बस-बस, रहने दे!" प्योत्र ने झुंझलाकर बीच मे ही टोका। "इस कर्नल और उसकी विधवा लड़की का सारा क़िस्सा हमे मालूम है। उसे सुनते-सुनते कान पक गए।"

लेकिन येफ़ीमुश्का पर इसका कोई असर न पड़ता। हथेलियों से अपने घुटनों को सहलाते और बदन को आगे-पीछे की ओर झकोले देते समय हवा को अपने कूबड़ से छितराते हुए वह कर्नल की लड़की का क़िस्सा सुनाता:

"वह अक्सर बगीचे में निकल आती, एकदम सफ़ेद बुर्राक कपड़े पहने, गुदगुदी और मुलायम। मै छत पर से उसे देखता और मन ही मन सोचता: यह सूरज और यह सारी दुनिया, सब इसके सामने हेच है। अगर मै कबूतर होता तो उड़कर उसके पास पहुंच जाता! वह फूल थी, मलाई के कुण्ड मे उगनेवाला प्यारा और मीठा कमल! आह, भाइयो, ऐसी स्त्री मिले तो समूचा जीवन एक लम्बी सुहाग रात बन जाए!"

"ठीक है। फिर खाने-पीने की भी कुछ जरूरत नही रहेगी?" प्योत्र रूखे स्वर में कहता। लेकिन प्योत्र का यह वार भी खाली जाता। येफ़ी-मुश्का अपनी ही धुन मे कहता:

"हे भगवान, लोग कुछ नहीं समझते। पेट भरने के लिए हमें क्या रोटियों के पहाड़ की जरूरत होगी? फिर, बड़े घर की लड़की के लिए धन की क्या कमी?.."

ओसिप हंसकर कहता:

"अरे रसिक येफ़ीमुश्का! तेरी इन्द्रियां कब जवाब देंगी?"

येफीमुश्का स्त्रियों के सिवा अन्य किसी चीज के बारे में बात नहीं करता, और जमकर काम करना उसके बस का रोग नहीं था। कभी वह फुर्ती से और अच्छा काम करता और कभी एकदम बेगार काटता। उसके हाथ ढीले पड़ जाते और अपनी लकडी की पटिया को इतने उल्टे-सीधे ढंग से चलाता कि छत मे दराजें छूट जाती। वह हमेशा अलसर-तेल से गंधाता, लेकिन उसकी एक अपनी प्रकृत गंध भी थी, सुहावनी और स्वस्थ गंध, बहुत कुछ वैसी ही जैसी कि ताजे कटे हुए पेड़ से आती है।

ओसिप हर चीज और विषय पर बाते करता था और उसकी बातें सुनने में बड़ा मजा आता। उसकी बातें मजेदार होती, लेकिन भली नहीं। उसके शब्द हमेशा कोई कुरेद पैदा करते और यह समझना कठिन हो जाता कि वह अपनी बात मजाक में कह रहा है अथवा गम्भीर होकर।

ग्रिगोरी भगवान के बारे में बडे चाव से बातें करता। यह उसका प्रिय विषय था। भगवान से वह प्रेम करता था और उसमे उसका गहरा विश्वास था। एक दिन मैने उससे पूछा:

"ग्रिगोरी, क्या तुम जानते हो कि इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो भगवान मे विश्वास नहीं करते?"

वह लघु हंसी हंसा:

"सो कैसे?"

"वे कहते है कि भगवान जैसी कोई चीज नही है।"

"ठीक, मै जानता हूं।"

उसने अपना हाथ इस तरह हिलाया मानो किसी अदृश्य मक्खी को उड़ा रहा हो। फिर बोला:

"राजा दाऊद का वह कथन याद है? उन्होने कहा था: 'मूर्ख है वे जो अपने मन में कहते है कि खुदा नहीं है।' देखा तूने, इस तरह के जाहिल और पथ से भटके लोग यह बाते कितने साल पहले करते थे। भगवान के बिना तुम एक डग भी आगे नहीं रख सकते!.."

और ओसिप ने मानो उससे सहमति प्रकट करते हुए टिप्पणी जड़ी.

"जरा प्योत्र को उसके भगवान से अलग करो तो, फिर देखना क्या हुलिया बनता है!"

शिशलिन का सुन्दर चेहरा गम्भीर हो गया. अपनी दाढी में उंगलियां फेरने लगा जिनके नाखूनों पर चूना सूखा हुआ था। फिर रहस्यमय अन्दाज से बोला:

"हाड़-मांस के हर पुतले में भगवान मौजूद है। आत्मा और अन्तर्मन भगवान की देन है!"

"और पाप?.."

"पाप का सम्बंध सिर्फ़ हाड़-मांस से है। वह भगवान की नहीं, शैतान की देन है! वह केवल ऊपरी, बाहर की चीज है, जैसे चेहरे पर चेचक के दाग़! बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं। वही सबसे ज्यादा पाप करता है जो पाप के बारे में सब से ज्यादा सोचता है। अगर दिमाग़ में पाप का ख़्याल न हो तो पाप करने की कभी नौबत न आए! शैतान जो हाड़-मांस के हमारे बदन पर हावी होता है, हमारे दिमाग़ों में पाप के बीज बोता है..."

राज के मन में बात कुछ जमी नहीं। दुविधा प्रकट करते हुए बोला:

"बात कुछ जंची नहीं..."

"बिल्कुल इसी तरह, इसमें जरा भी सन्देह की गुंजाइश नहीं। भगवान पापों से मुक्त है, उसने इन्सान को अपनी छवि में ढाला और उसे अपनी सादृश्यता प्रदान की है। हाड़-मांस से बनी यह छवि ही पाप करती है, सादृश्यता पापों से मुक्त और अछूती है। सादृश्यता ही वह चीज़ है जिसे हम रूह या आत्मा कहते है..."

वह इस तरह मुसकराता मानो उसने बाजी जीत ली हो। लेकिन प्योत्र फिर बुदबुदा उठता:

"मुझे लगता है कि ठीक इसी तरह नहीं..."

अब ओसिप जबान खोलता। कहता:

"तुम्हारे हिसाब से अगर पाप नहीं तो कबूल करने की भी ज़रूरत नहीं, और जब कबूल नहीं तो मुक्ति का पचड़ा भी नहीं। क्यों, ठीक है न?"

हां ठीक है एक पुरानी कहावत शैतान नहीं तो खुदा भी नहीं ..

शिशलिन पीने का आदी नहीं था। दो घूंटों ने ही उसपर अपना रंग चढा दिया। उसके चेहरे पर गुलाबी दमक छा गई, आंखों मे बचपन का भोलापन उभर आया और आवाज हिलोरे लेने लगी:

"ओह मेरे भाइयो, कितना अद्भुत जीवन है हमारा! हमसे जो बनता है, थोड़ा-बहुत काम कर लेते है और इतना भोजन मिल जाता है कि भूखों मरने की नौबत नहीं आती। ओह शुक्र है उस भगवान का जिसकी वदौलत हम इतना अद्भुत जीवन बिताते है!"

और वह रोना शुरू कर देता। उसकी आखों से आंसू निकलते और गालों पर से होते हुए उसकी रेशमी दाढ़ी में अटक जाते और काच के सनकों की भांति चमकते।

उसके इन काच के आंसुओं और जिस ढंग से वह इस जीवन की भडेती करता उससे मेरा हृदय भन्ना जाता, और मुझे बडी घिन मालूम होती। मेरी नानी भी इस जीवन के लिए खुदा के दरबार मे शुक्राना भेजती थी, और इस जीवन की तारीफ़ के गीत गाती थी, लेकिन उसके गीत और प्रशंसा कही अधिक विश्वसनीय और सीधे-सादे होते थे। उनमें इतना दुराग्रह नहीं होता था।

उनकी ये बातें मेरे हृदय में बराबर खलबली मचाए रहतीं, कभी न खत्म होनेवाले तनाव का मै अनुभव करता, और धुंधली तथा अज्ञात आशंकाएं मुझे घेर लेती। देहातियों के बारे में अनेक कहानियां और किस्से मै पढ़ चुका था और किताबों के देहातियों तथा सचमुच के देहातियो मे भारी अन्तर मुझे दिखाई देता था। किताबो के देहातिये सब के सब दु:ख और मुसीबतों में फसे अभागे जीव थे जिनमे—वे भले हों चाहे बुरे—विचारो और वाणी की वह समृद्धता एक सिरे से गायब थी जो कि सचमुच के जीवित देहातियों की एक खास विशेषता थी। किताबो के देहातिये भगवान, विभिन्न पथो और गिरजे के बारे में कम बातें करते थे और अपने से ऊंचों, जमीन, जीवन के अन्याय और मुसीबतों के बारे मे ज्यादा। किताबों के देहातिये स्त्रियो के बारे में भी कम बाते करते थे, और अगर उन्हें बात करते दिखाया भी जाता था तो इस तरह मानो उनके हृदय मे स्त्रियों के प्रति अधिक इज्जत हो, और उनके लिए कभी

भी गंदे या औघड़ शब्दों का इस्तेमाल न करते हों। सच्मुच के देहातियो के लिए स्त्री मन बहलाने का एक साधन थी, लेकिन एक खतरनाक साधन जिसके साथ काफ़ी चालाकी और चतुराई बरतने की जरूरत थी, अन्यथा वह उनपर हावी होकर उनका सारा जीवन उलझा सकती थी। किताबो के देहातिये या तो बुरे होते या भले, और इन दोनों ही सूरतों में उन्हे काफी सिधाई के साथ किताबों मे पेश किया जाता, लेकिन सचमुच के देहातिये न भले होते और न बुरे, बल्कि दिलचस्प होते है। उनकी तमाम बाते सुनने के बाद भी यह भावना बनी रहती कि कुछ है जो अनकहा रह गया है, जिसे उन्होंने अपने हृदय मे छिपाकर रख छोड़ा हे, और कौन जाने कि ठीक वह अंश ही, जो अनकहा रह गया है, उनके व्यक्तित्व का असली तत्व हो!

किताबों के देहातियों मे मुझे प्योत्र नाम का बढ़ई सबसे ज्यादा पसंद था। "बढ़ई दल" नामक पुस्तक में उसका किस्सा दिया हुआ था। मैं उसे अपने साथियों को पढ़कर सुनाने के लिए बेचैन हो उठा। एक दिन मेले में काम पर जाते समय उस पुस्तक को भी मै अपने साथ लेता गया। अकसर ऐसा होता कि दिन भर काम करते-करते मैं बुरी तरह थक जाता और घर लौटने की हिम्मत न रहती। ऐसी हालत मे मै कारीगरों के किसी एक बाड़े में चला जाता और रात उनके साथ बिताता।

मैने जब उन्हें यह बताया कि मेरे पास बढ़ई लोगो के बारे में एक किताब है तो उनकी और खास तौर से ओसिप की दिलचस्पी का वारपार नही रहा। उसने मेरे हाथ से किताब ले ली और अपने सन्तनुमा सिर को हिलाते हुए इस तरह उसके पन्ने पलटने लगा, मानो उसे यकीन न आ रहा हो। बोला:

"लगता है कि सचमुच ही हमारे बारे में लिखी गई है! किसने लिखा है इसे? क्या कहा, किसी रईसजादे ने? ठीक, मै भी ऐसा ही समझता था। रईसजादे और सरकारी अफ़सरों के कदम जहां न पहुचे, थोड़ा है! भगवान से जो कसर रह जाती है, उसे यही लोग पूरा करते है। भगवान ने मानो इसीलिए इन्हे इस दुनिया मे भेजा है..."

"भगवान की बातें तू सोच-समझकर नहीं करता," प्योत्र ने टोका।

"ठीक है, ठीक है। मेरे शब्दों से भगवान का उतनी ही दूर का

ाता है जितना कि मेरा बर्फ के उस कण से था वर्षा की उस बूंद से जो आसमान से गिरकर मेरी गंजी चांद पर आ विराजती है खबरा नहीं हम-तुम जैसे लोगों की भगवान तक कोई रसाई नहीं है..."

सहसा वह अधीर हो उठा और उसके मुंह में से शब्दों के तीखे बाण चकमक में से चिंगारियों की तरह निकल-निकलकर जो कुछ भी उसके विपरीत था उसे बींधने लगे। दिन में कई बार उसने मुझसे पूछा:

"क्यों, मक्सीमिच, कुछ पढ़कर सुनाएगा न? ठीक, बहुत ठीक। तूने बहुत ही अच्छा सोचा है।"

जब काम समाप्त हो गया तो सांझ का खाना उसी के बाड़े में हुआ। खाने के बाद प्योत्र भी आ गया। उसके साथ एक कारीगर और आया जिसका नाम अरदाल्योन था। फोमा नामक एक लड़के को साथ लिए शिशलिन भी आ गया। कोठरी में जहां कारीगर सोते थे, एक लैम्प जलाकर रख दिया गया और मैंने पढ़ना शुरू किया। बिना हिले-डुले या मुंह से एक शब्द कहे वे सुनते रहे। लेकिन शीघ्र ही अरदाल्योन खीजकर बोला:

"मैं तो चलता हूं। सुनते-सुनते ऊब गया!"

वह चला गया। ग्रिगोरी सबसे पहले चित्त हो गया। वह मुंह बाये सो रहा था, और ऐसा मालूम होता था मानो उसका मुंह अचरज के मारे खुला रह गया हो। उसके बाद अन्य बढ़ई भी चित्त हो गए। लेकिन प्योत्र, ओसिप और फ़ोमा मेरे और निकट खिसक आए तथा बड़े ध्यान और उत्सुकता से सुनते रहे।

जब मैं खत्म कर चुका तो ओसिप ने तुरंत लैम्प बुझा दिया—तारे आधी रात बीत जाने की सूचना दे रहे थे।

प्योत्र ने अंधेरे में पूछा:

"इस किताब में नुकते की बात क्या है? यह किनके खिलाफ़ लिखी गई है?"

ओसिप जूते उतार रहा था। बोला, "बातें मत कर। अब सो जा।"

फ़ोमा चुपचाप खिसककर एक ओर लेट गया।

"मेरी बात का जवाब दे न,—यह किनके खिलाफ़ लिखी गई है?" प्योत्र ने फिर बल देकर पूछा।

मांची पर अपना बिस्तरा लगाते हुए ओसिप ने कहा:

यह लिखनेवाले जान हमे माथापच्ची करने से क्या फायदा?

"क्या यह सौतेली मांओ के ख़िलाफ़ लिखी गई है? तब तो इसमे कोई तुक नहीं। इस तरह की किताब सौतेली माओ का सुधार नही कर सकती," राज ने ज़ोर देते हुए कहा। "या फिर यह प्योत्र के ख़िलाफ लिखी गई है जो इसका हीरो है,—प्योत्र बढई। लेकिन यह उसे भी अधर मे ही लटका रहने देती है। आखिर उसका हश्र क्या होता है? वह हत्या करता है, और उसे काले पानी की सज़ा देकर साइबेरिया भेज दिया जाता है। बस, किस्सा खत्म! यह किताब उसे भी कोई मदद नहीं देती—दे भी नही सकती, नहीं, बिल्कुल नही! इसीलिए तो मै पूछता हू, यह किसके लिए लिखी गई है?"

ओसिप चुप रहा। तब राज ने अपनी बात खत्म करते हुए कहा:

"इन लेखकों के पास अपना कुछ काम तो है नही, सो दूसरों की आंख में उंगली डालते फिरते है, बैठकबाज निठल्ली औरतों की तरह! अच्छा तो अब सोओ, काफ़ी देर हो गई..."

दरवाजे के नीले चौखटे मे एक क्षण के लिए वह ठिठककर खडा हो गया और बोला:

"क्यों, ओसिप, तेरा क्या खयाल है?"

"ऐं?" ओसिप अधसोया सा कुनमुनाकर रह गया।

"अच्छा सो ..."

शिशलिन जिस जगह बैठा था, वही फ़र्श पर पसर गया। फ़ोमा मेरे पास ही पुआल पर लेट गया। समूची बस्ती पर सन्नाटा छाया था। कहीं दूर से इंजनो की सीटियों के बजने, लोहे के भारी पहियों के गड़गड़ाने और गाड़ियो को जोडनेवाले कांटों के खड़खड़ाने की आवाजे आ रही थी। सायबान सभी प्रकार के खर्राटो की आवाज से गूंज रहा था। मेरा हृदय बड़ा सूना सा हो रहा था। मैं आशा करता था कि पुस्तक खत्म होने के बाद कोई दिलचस्प बहस होगी। लेकिन ऐसा कुछ नही हुआ...

एकाएक ओसिप ने धीमी किंतु साफ़ सुन पड़नेवाली आवाज में कहा:

"उसकी बातों को मन में बैठाने की जरूरत नहीं। तुम लोग अभी कम उम्र हो, और सारा जीवन तुम्हें पार करना है। दिमाग़ का कोठा खुद अपने विचारो से भरते जाओ! उधार लिए सौ विचारों से अपना एक विचार कहीं ज्यादा क़ीमती होता है! क्यों, फ़ोमा, सो गया, क्या?"

नहीं फोमा ने तत्परता से कहा

"तुम दोनों पढ़ना जानते हो, सो बराबर पढ़ते रहना। लेकिन हर बात पर भरोसा न करना। आज उनका बोलबाला है, ताकत उनके हाथ मे है, सो जो मन मे आता है, छाप डालते है!"

उसने मांचो पर से अपनी टांगे नीचे लटका लीं और दोनो हाथ किनारे पर टिकाकर हमारी ओर झुकते हुए बोला:

"किताब — आखिर किताब होती क्या है? भेदिये की भांति वह सबका भेद खोलती है! सच, किताब भेदिये का काम करती है। आदमी मामूली हो चाहे बड़ा, वह सभी का भेद बताती है। वह कहती है — देखो, बढ़ई ऐसा होता है। या फिर वह किसी रईसजादे को सामने खड़ा कर कहती है — देखो, रईसजादा ऐसा होता है। मानो ये अन्य सबसे भिन्न, अनोखे और निराले हो! और किताबे योंही, बेमतलब, नही लिखी जातीं। हर किताब किसी न किसी की हिमायत करती है..."

"प्योत्र ने ठीक किया जो उस ठेकेदार को मार डाला!" फोमा ने भारी आवाज़ में कहा।

"ऐसी बात मुंह से नही निकालते। आदमी की हत्या करना क्या कभी ठीक कहा जा सकता है? मै जानता हू कि ग्रिगोरी से तेरी नही बनती, तू उससे नफरत करता है। लेकिन यह ठीक नही। हममे कोई भी धन्नासेठ नहीं है। आज मै मुखिया कारीगर हूं, लेकिन कल मुझे अन्य सभी मजदूरों की भांति काम करना पड़ सकता है..."

"मै तुम्हारे बारे में थोड़े ही कह रहा था, चचा ओसिप..."

"इससे कोई फर्क नही पड़ता। बात तो वही है..."

"तुम तो सच्चे आदमी हो।"

"ठहर, मै तुझे बताता हूं कि यह किताब किसके लिए लिखी गई है," ओसिप ने फोमा के क्षोभ भरे शब्दों को अनसुना करते हुए कहा। "इस मे पूरी चालाकी भरी है! देख — एक है ज़मींदार, बिना किसानों के और एक किसान बिना ज़मींदार के। अब देख: ज़मींदार की भी हालत खराब है और किसान भी अच्छा नहीं। जमींदार कमजोर, सिरफिरा हो गया है, और किसान शराबिया, रोगी, डींगमार हो गया है, झींखता रहता है — समझा, यह दिखाया है! और कहने का मतलब यह है कि भई, जमींदारों की गुलामी अच्छी थी: जमींदार को किसान का भरोसा

और किसान को जमीनदार का आसरा और बस दोनों खाते-पीते चैन की बंसी बजाते थे... हां, मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि ज़मींदारों की गुलामी के ज़माने में इतना खटराग नहीं था। ज़मींदारों को ग़रीब किसानों की ज़रूरत नहीं, उन्हें तो ऐसे किसान चाहिए जिनके पास पैसा हो, अकल नहीं, यह उनके फ़ायदे की बात है। अपनी आंखों-देखी, खुद-भुगती बात मैं कहता हूं। चालीस साल तक मैं ज़मींदारों की गुलामी में रहा हूं। कोड़ों की मार ने मेरी चमड़ी पर जो लिखावट लिखी है, वह क्या किसी किताब से कम है?"

मुझे उस बूढ़े गाड़ीवान की याद हो आई जिसका नाम प्योत्र था और जिसने अपना गला काट डाला था। खानदानी रईसों और कुलीनों के बारे में वह भी इसी तरह की बातें करता था। ओसिप तथा उस कुत्सित बूढ़े की बातों में यह सादृश्य मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

ओसिप ने हाथ से मेरे घुटने को छुआ और कहता गया:

"किताबों और दूसरी लिखावटों के आर-पार देखना और उनका भीतरी मतलब समझना ज़रूरी है! बिना मतलब कोई कुछ नहीं करता। चाहे कोई कितना ही छिपाए, लेकिन मतलब सब के पीछे होता है। और किताबें लिखने का मतलब होता है दिमाग़ को चक्कर में डालना, उसे गड़बड़ाना। और दिमाग़ एक ऐसी चीज़ है जो लकड़ी काटने से लेकर जूते बनाने तक, हर जगह काम देता है..."

वह बहुत देर तक बातें करता रहा। कभी वह बिस्तर पर लेट जाता और कभी उछलकर बैठ जाता, और रात की निस्तब्धता तथा अंधेरे में अपने साफ़-सुथरे शब्दों को मुलायमियत से बिखेरता जाता।

"कहते हैं कि ज़मींदार और किसान में भारी अन्तर और भेद है। लेकिन यह बात सच नहीं है। हम दोनों एक हैं, सिवा इसके कि वह ऊंचाई पर है। यह सही है कि वह अपनी किताबों से सीखता है, और मैं अपनी कमर पर पड़े नीले निशानों से। उसकी कमर पर कोई निशान नहीं होते—सारा अंतर बस यही है। ज़रूरत इस बात की है, छोकरो, कि नये सांचे में इस दुनिया को ढाला जाए। किताबों को गोली मारो, उन्हें दूर फेंको, और अपने से पूछो: आख़िर मैं क्या हूं?—एक इन्सान। और ज़मींदार क्या है?—वह भी एक इन्सान है। फिर दोनों में भेद क्या है? क्या भगवान ने यह कहकर उसे दुनिया में भेजा है कि मैं तुमसे

पाच कोपेक ज्यादा वसूल करूगा ? लेकिन नही, भगवान के दरबार मे सब एक है, सब को एक सा भुगतान करना पडता है "

अत मे जब रात का अधेरा छट चला, और तारो की रोशनी मद्धिम पड गई तो ओसिप ने मुझसे कहा

' देखा मै कैसी बाते बना सकता हू। न जाने क्या-क्या कह गया, कभी सोचा तक न था। लेकिन तुम छोकरे मेरी बातो पर ज्यादा ध्यान न देना। नीद आ नही रही थी सो जो मन मे आया, उल्टा-सीधा कहता गया। जब आख नही लगती तो अजीब-अजीब बाते सूझती है और दिमाग बातो का कारखाना बन जाता है, और मनमानी बाते गढता रहता हू बहुत पहले की बात है। एक कौवा था। मैदानो से उडकर वह पहाडो की खबर लाता, कभी इस खेत का चक्कर लगाता तो कभी उस खेत पर जा बैठता। इसी तरह उडते-उडते उसके सारे पर झड गए, शरीर सूख चला, और एक दिन वह खत्म हो गया। बता, भला कौवे की इस कहानी मे क्या तुक है ? है न, बिल्कुल बेमानी और बेतुकी कहानी ? हा तो अब सो जाओ। जल्दी उठकर काम पर भी तो जाना है "

१८

बीते दिनो मे जिस तरह जहाजी याकोव मेरे हृदय पर छा गया था, उसी तरह ओसिप भी मेरी आखो मे समाता, फैलता और बढता गया और अन्य सभी को उसने ओझल कर दिया। उसमे और जहाजी याकोव मे बहुत कुछ समानता थी, इसके अलावा उसे देखकर मुझे अपने नाना, पारखी प्योत्र वासील्येविच और बावर्ची स्मूरी की भी याद हो आती थी जो सब मेरी स्मृति मे अत्यन्त गहराई से अकित थे। लेकिन ओसिप की अलग गहरी छाप रही। जिस तरह जग घटे के ताबे को खाता जाता है, वैसे ही वह भी मेरे अन्तर्मन की गहराइयो मे प्रवेश करता और मेरे रोम-रोम मे समाता जा रहा था। ओसिप के दो रूप साफ नजर आते थे। दिन का ओसिप रात के ओसिप से भिन्न होता था। दिन मे काम करते समय उसके दिमाग मे फुर्ती आ जाती, दो टूक और अधिक व्यावहारिक ढग से वह सोचता और उसकी बात समझने मे अधिक दिक्कत न होती। लेकिन रात को जब उसे नीद न आती या साझ

को मुझे साथ लेकर जब वह मालपूवे बचनेवाली अपनी रिश्तेदार से मुलाक़ात करने नगर जाता, तो वह दूसरा ही रूप धारण कर लेता। रात को वह विशेष ढग से सोचता और उसके विचार लालटेन की रोशनी की भांति अंधेरे में खूब उज्ज्वल तथा चारों ओर से खूब चमकते दिखाई देते, और यह पता लगाना कठिन हो जाता कि उनका सीधा पक्ष कौन सा है और उलटा कौन सा, या यह कि उनमें से किसे वह पसंद करता है और किसे नहीं।

अब तक जितने भी लोगों से मिला था, मुझे वह उन सब से ज्यादा चतुर मालूम होता। उसे पकड़ने और समझने की व्यग्रता हृदय में लिए मैं उसके चारों ओर भी उसी तरह मंडराता जैसे कि जहाजी याकोव के चारों ओर, लेकिन वह सपक सुई की भांति बल खाकर निकल भागता और पकड़ में न आता। अपने असली और सच्चे रूप को वह कहां छिपाए है? उसका वह पहलू कौन सा है जिसे सच्चा समझकर ग्रहण किया जा सके?

मुझे उसका यह कथन रह-रहकर याद आता:

"या फिर अपने दिमाग़ से काम ले और पता लगा कि मै कैसा हूं। मेरी ओर से तुझे पूरी छूट है!"

यह मेरे अहं पर चोट थी। मुझे ऐसा मालूम होता कि इस बूढे आदमी के रहस्य का उद्घाटन किए बिना मै जीवन में एक डग भी आगे नही बढ़ सकूंगा। उसे समझना मेरे लिए जीवन का आधारभूत प्रश्न बन गया।

पकड़ में न आनेवाले अपने स्वभाव के बावजूद, वह एक स्थिर व्यक्तित्व का आदमी था। मुझे ऐसा मालूम होता कि अगर वह सौ साल और जीवित रहे तो भी उसका रंग-रूप ऐसा ही बना रहेगा, अत्यन्त अस्थिर लोगों के बीच रहते हुए भी अडिग और अपरिवर्तनशील। पारखी प्योत्र वासील्येविच ने भी मेरे हृदय मे स्थिरता के कुछ ऐसे ही भावों का सचार किया था, लेकिन उसकी यह स्थिरता मुझे अच्छी नहीं मालूम होती थी। ओसिप की स्थिरता दूसरे प्रकार की थी, अधिक सुहावनापन लिए हुए।

लोग इतनी आसानी और आकस्मिकता से चोला बदलते और मेढक की भांति उछलकर इस बाज़ू से उस बाज़ू पहुंच जाते कि देखकर बड़ा अटपटा मालूम होता। उनका यह समझ में न आनेवाला चोला-बदलौवल, जिसे मै पहले कौतुक और अचरज से देखा करता और दंग रह जाता

था, अब ऊब और झुंझलाहट पैदा करता था। नतीजा इसका यह कि पहले जिस उछाह से मै लोगो मे दिलचस्पी लेता था, धीरे-धीरे उसे पाला मार गया, लोगो के प्रति मेरा प्रेम एक अजीब दबसट में पड़ गया।

जुलाई के शुरू में एक दिन एक घोड़ागाड़ी जिसके अंजर-पंजर ढीले हो चुके थे, खड़खड़ करती आई और जहा हम काम कर रहे थे, वहां आकर रुक गई। बक्स पर नशे मे धुत्त एक दाढ़ी वाला कोचवान बैठा था। वह उदासी से हिचकियां भर रहा था। उसका सिर नंगा था, होंठों मे खून बह रहा था, पीछे की सीट पर नशे में मदहोश ग्रिगोरी शिशलिन पसरा हुआ था, और डबलरोटी सी मोटी, लाल कल्लों वाली एक लड़की उसकी बांह में बांह डाले उसे थामे थी। वह सीकों का हैट पहने थी और हाथ मे छतरी पकड़े थी। हैट लाल सुर्ख रिबन और कांच की लाल-लाल चेरियों से सजा था। पांवों मे जुराबें नहीं थीं, वह खाली रबड के जूते पहने थी। डोलते और छतरी हिलाते हुए वह हंस-हंसकर चिल्ला रही थी:

"ओह, शैतानो! मेला तो अभी खुला नहीं, मेला शुरू नहीं हुआ और ये मुझे खींच लाये!"

ग्रिगोरी की बुरी हालत थी। वह उस लत्ते की भांति मालूम होता था जिसे खूब झंझोड़ा और नोचा-खरोंचा गया हो। रेंगकर वह गाड़ी से बाहर निकला और जमीन पर पसरकर बैठ गया। फिर आखों में आंसू भरे बोला:

"यह देखो, मै तुम्हारे सामने घुटनों के बल पड़ा हूं। मुझे माफ़ करना, मैने गुनाह किया है, सोच-समझकर और पूरी तैयारी के साथ! येफीमुश्का ने मुझे उकसाया; ग्रिगोरी, ग्रिगोरी... और उसका उकसाना भी गलत नहो था। कहने लगा... लेकिन मुझे माफ़ करना!.. तुम सबकी दावत मेरे जिम्मे... येफ़ीमुश्का की बात ग़लत नहीं थी। उसने ठीक ही कहा था, हम केवल एक बार जीते हैं... केवल एक ही बार, अधिक नहीं, केवल एक ही बार..."

लड़की हंसते-हंसते दोहरी हो गई और पैर पटकने लगी। उसके रबड़ के जूते पांव से निकल जाते और वह उनमे पैर वापस न डाल पाती। कोचवान ने भी शोर मचाना शुरू किया:

"चलो, जल्दी करो! आओ, जल्दी आओ! देखते नहीं, घोड़ा रास तुड़ाकर भागना चाहता है!"

बढा और मरियल घोडा जिसका सारा बदन झाग से ढका हुआ था रास तुडाकर भागना तो दूर अडियल टट्टू की भांति वहीं अड़ गया था और टस से मस नहीं होना चाहता था। समूचा दृश्य कुछ इतना बेढंगा और औघड़ था कि हंसी रोके न रुकती थी। अपने मालिक, उसकी छैल-छबीली प्रेमिका तथा हक्के-बक्के से कोचवान को देखकर ग्रिगोरी के मजदूरों के पेट में बल पड़ गए।

लेकिन फोमा इस हंसी में शामिल नहीं हुआ। वही एक ऐसा था जो हंस नहीं रहा था, और दुकान के दरवाजे पर मेरे पास खड़ा बड़बडा रहा था:

"कम्बख्त उल्टांग हो गया... और घर पर बीवी मौजूद है,– इतनी सुन्दर कि लाखों में एक!"

कोचवान जल्दी मचाता रहा। अन्त में लड़की नीचे उतरी और ग्रिगोरी को खींचकर उसने गाड़ी में डाल दिया जहां वह सीट से नीचे उसके पांवों के पास ही ढह गया। फिर अपना छाता फहराते हुए बोली:

"अच्छा, हम तो चले!"

फोमा ने कारीगरों को जोर से झिड़का। मालिक को खुद अपने हाथों सबके सामने इस तरह उल्लू बनते देख वह आहत हो उठा था। सकपकाकर और अपने मालिक पर दो-चार भले से छींटे कसते हुए कारीगर फिर अपने काम में जुट गए। साफ़ मालूम होता था कि अपने मालिक के प्रति उनके हृदय में घृणा से अधिक ईर्ष्या के भाव थे।

"मालिक क्या ऐसे होते है?" फ़ोमा बड़बड़ाया। "पन्द्रह-बीस दिन की ही तो बात थी। अपना काम खत्म कर हम सब गांव पहुंच जाते। लेकिन कम्बख्त से इतने दिन भी नहीं रुका गया..."

झुंझलाहट तो मुझे भी कुछ कम नहीं आ रही थी। कहा ग्रिगोरी और कहां कांच की चेरियों वाली वह लड़की!

मैं अक्सर सोचता और उलझन में पड़ जाता कि ग्रिगोरी शिशलिन में ऐसी क्या बात है जो वह तो मालिक है, और फ़ोमा तुचकोव एक साधारण मज़दूर।

फोमा घुंघराले बालो वाला हट्टा-कट्टा युवक था। चांदी जैसा उसका रंग था, हुकदार नाक, कंजी आंखें और गोल चेहरा। उसकी आंखों में बुद्धिमत्ता की चमक थी। उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि

वह देहातिया है। यदि उसके कपड़े अच्छे होते तो वह किसी बड़े कुल के व्यापारी का लड़का मालूम होता। गम्भीर और चुप्पा स्वभाव, केवल मतलब की बात करता। पढ़ना-लिखना जानता था, इसलिए ठेकेदार ने हिसाब-किताब रखने और तख़मीने बनाने का काम उसे सौंप रखा था। वह अपने साथी मजदूरों से काम लेने में दक्ष था, हालांकि खुद काम से जी चुराता था।

"एक जीवन में सब काम नहीं किए जा सकते," वह शान्त भाव से कहता। पुस्तकों से उसे चिढ़ थी। वह अपनी खीज प्रकट करता·

"हर अलाय-बलाय छापे मे आ जाती है। मै तुझे अभी हाथ के हाथ कहानी गढ़कर सुना सकता हूं। यह ज़रा भी मुश्किल काम नहीं है.."

लेकिन वह हर बात बड़े ध्यान से सुनता और अगर किसी बात मे उसकी रुचि जागती, तो वह टटोल-टटोलकर सारी बात पूछता और साथ ही मन ही मन कुछ सोचता रहता, हर बात को अपने दिमाग से परखता रहता।

एक बार मैंने फ़ोमा से कहा कि तुम्हें तो ठेकेदार होना चाहिए था। उसने अलस भाव से जवाब दिया:

"अगर शुरू से ही हजारो का व्यापार हो तो यह सौदा कुछ बुरा नहीं... लेकिन दो-चार ठीकरो के लिए ढेर सारे कारीगरो को डंडे मे हाकने की जहमत कौन उठाए? मुझे तो इसमें कोई तुक नहीं दिखाई देती। नहीं, भाई, मै तो बस थोड़ा और देखता हूं और फिर ओरान्स्की मठ का रास्ता नापूंगा। इतना हट्टा-कट्टा मेरा शरीर है, देखने मे भी ख़ूबसूरत हू। अगर किसी धनी सौदागर की विधवा मुझपर लट्टू हो गई तो सारे पाप कट जाएंगे! ऐसा अक्सर होता है। सेरगात्सी के एक जवान को मठ मे भर्ती हुए मुश्किल से दो साल ही बीते होगे कि उसकी जोड़ बैठ गई। और सोने में सुहागा यह कि वह शहर की लडकी थी। वह उस दल मे था जो मरियम की प्रतिमा को घर-घर ले जाता है। तभी दोनो की नजरे एक दूसरे से मिली और वह उसपर लट्टू हो गई..."

उसने ऐसा ही मनसूबा बांध रखा था। इस तरह की अनेक कहानिया वह सुन चुका था जिनमें लोग नव-दीक्षित साधु के रूप मे मठ मे भर्ती होने के बाद किसी धनी स्त्री के नजर-हिंडोले पर चढ़कर मजे का जीवन बिताते थे। मुझे ऐसी कहानियों से चिढ़ थी और फ़ोमा के दृष्टिकोण से भी।

लेकिन यह बात मेरे मन मे जम गई कि फोमा एक दिन निश्चय ही किसी मठ का रास्ता पकड़ेगा।

और जब वेला शुरू हुआ तो फ़ोमा ने सभी को चकित कर दिया—भटियारखाने में वेटर का काम उसने शुरू कर दिया। उसकी इस कलाबाजी ने उसके साथियो को भी चकित किया यह कहना तो कठिन है, लेकिन वे उसका ख़ूब मजाक बनाने लगे। रविवार या छुट्टी के दिन जब कभी चाय का प्रोग्राम बनता तो वे आपस में हंसते हुए कहते:

"चलो, अपने वेटर के यहां चाय पीने चलें।"

और भटियारखाने में पांव रखते ही रोब के साथ वे आवाज़ लगाते:

"ऐ वेटर, क्या सुनता नहीं, ओ घुंघराले बाल वाले, लपककर इधर आ!"

ठोड़ी को ऊपर उठाए वह निकट आता और पूछता:

"कहिए, क्या लेंगे?"

"तू क्या पुराने साथियो को नहीं पहचानता?"

"नही, मुझे इतनी फ़ुरसत नहीं है..."

उससे यह छिपा नहीं था कि उसके साथी उसे नीची नज़र से देखते है और उनका एकमात्र लक्ष्य उसे चिढ़ाना है। इसलिए वह उन्हे पथराई सी आंखों से देखता और उसका चेहरा एक खास मुद्रा में जाम हो जाता। वह जैसे कहता प्रतीत होता:

"जल्दी करो, उड़ा लो मजाक जो उड़ाना है..."

"अरे, तुझे बख़्शीश देना तो भूल ही गए!" वे कहते और अपने बटुवे निकालकर देर तक उन्हें टटोलते, कोने-कोने दाबकर देखते और अन्त में बिना कुछ दिये ही चले जाते।

एक दिन मैंने फ़ोमा से पूछा कि तुम तो मठ में भर्ती होकर साधु बनना चाहते थे, वेटर कैसे बन गए।

"ग़लत बात है। मै कभी साधु बनना नहीं चाहता था," उसने जवाब दिया, "और यह वेटरी भी कुछ दिनों की मेहमान है..."

इसके कोई चार साल बाद, ज़ारीत्सिन में जब मेरी उससे मुलाकात हुई तो उस समय भी वह वेटर का ही काम कर रहा था, और अन्त में समाचारपत्र में मैंने यह ख़बर पढ़ी कि फ़ोमा तुचकोव किसी घर में सेंध लगाते पकड़ा गया।

राज अरदाल्योन ने मुझे खास तौर से प्रभावित किया। प्योत्र के कारीगरों में वह सबसे पुराना और सबसे अच्छा मजदूर था। हंसमुख और काली दाढ़ी वाले चालीस वर्षीय इस देहातिये को देखकर भी मै उभी उलझन में पड़ जाता कि मालिक उसे होना चाहिए था, न कि प्योत्र को। वह विरले ही शराब पीता था, और जब पीता तो कभी मदहोश नही होता था। अपने धंधे का वह उस्ताद था, और लगन के साथ काम करता था। उसके हाथो का स्पर्श पाते ही ईंटो मे जैसे जान पड़ जाती थी और कबूतर की भांति सर्र से उड़कर ठीक-ठिकाने पर जा बैठती थीं। उसके सामने मरियल और सदा रोगी प्योत्र की कोई गिनती नहीं थी। प्योत्र बड़े चाव से कहता:

"मै दूसरो के लिए ईंटो के घर बनाता हूं जिससे अपने लिए एक लकडी का घर—ताबूत—बना सकूं..."

अरदाल्योन आह्लादपूर्ण उत्साह से ईंटें चुनता जाता और चिल्लाकर कहता:

"आओ साथियो, आओ! भगवान की इस दुनिया को सुन्दर बनाने मे हाथ बंटाओ!"

और वह उन्हे अपने साथी कारीगरो को बताता कि अगले वसंत मे उसका इरादा तोम्स्क जाने का है। वहां उसके बहनोई ने एक गिरजा बनाने का ठेका लिया है और उसे न्योता दिया है कि तोम्स्क आकर राजों के मुखिया का काम संभाले।

"सब कुछ तय हो चुका है। गिरजे बनाना तो बस मेरा प्यारा काम है," वह कहता और इसके बाद मुझे सम्बोधित करता, "चल, तू भी मेरे साथ चल। साइबेरिया अच्छी जगह है, ख़ास तौर से उनके लिए जो पढ़ना-लिखना जानते है। मज़े से कटेगी। पढ़े-लिखे लोगो की दर वहां काफ़ी ऊंची है!"

मै उसके साथ चलने को राजी हो गया। अरदाल्योन खुशी से उछल पड़ा। बोला:

"यह हुई ना बात! हम कोई मजाक थोड़े ही करते हैं..."

ग्रिगोरी और प्योत्र के साथ उसके रवैये में एक तरह की सहनशील उपेक्षा का भाव रहता, कुछ-कुछ वैसा ही जैसा कि बडे लोगों में बच्चों की तरफ होता है। ओसिप से वह कहता:

बातों के शेर. अपनी अक्ल को ताश के पत्तों की तरह एक-दूसरे के सामने फटकारते है। एक कहता है: देख, कितने बढ़िया पत्ते हे! दूसरा कहता है' लेकिन मेरा रंग देखकर तो कलाबाजी खा जाएगा!"

"मुझे तो इसमे कोई बुराई नही मालूम होती," ग्रोसिप ढुलमुल जवाब देता, "शेखी बघारना इसान का स्वभाव है। कौन लड़की ऐसी है जो अपना सीना उभारकर नही चलना चाहती?.."

लेकिन अरदाल्योन इतने पर ही बस न करता। हृदय की खुजली मिटाते हुए कहता:

"उठते-बैठते, खाते-पीते, वे भगवान की रट लगाते है, लेकिन एक-एक कौडी दांत से पकड़ने और माया जोडने में इससे कोई फर्क नहीं पडता।"

"ग्रिगोरी के पास तो मुझे कभी फूटी कौड़ी भी नजर नही आती। माया वह कहां से जोडेगा?"

"मै अपने मालिक की बात कर रहा हूं। माया-मोह छोडकर वह जंगल की शरण क्यों नही लेता? सच कहता हूं, मै तो यहां की हर चीज़ से उकता गया हूं... वसन्त आते ही साइबेरिया के लिए चल दूंगा!."

अन्य कारीगर ईर्ष्या की नज़र से अरदाल्योन की ओर देखते। फिर कहते:

"तेरे बहनोई जैसा हमारा भी वहां कोई खूंटा होता तो साइबेरिया क्या, हम जहन्नुम मे भी पहुंच जाते!.."

एकाएक अरदाल्योन गायब हो गया। रविवार के दिन वह चला गया और तीन दिन तक कुछ पता नहीं चला कि वह कहां लोप हो गया या उसका क्या हुआ।

कारीगरो ने भय और आशंका से भरी अटकले लगानी शुरू कीं.

"कहीं किसीने मार तो नहीं डाला?"

"हो सकता है कि नदी मे तैरते-तैरते डूब गया हो?"

अन्त में येफीमुश्का आया और कुछ सकपकाता सा बोला:

"अरदाल्योन नशे में गड़गच्च पड़ा है!"

"यह झूठ है!" प्योत्र अविश्वास से चिल्लाया।

"नशे मे गडगच्च, बेसुध और बेखबर, भुस में आग लगने पर जिस तेजी से चिंगारियां ऊपर उठती है, ठीक वैसे ही फ़ुर्र हो गया। आखे बंद कर शराब के प्याले मे ऐसा कूदा, मानो उसकी बीवी मर गई हो.."

"उसे रंडुवा हुए तो एक मुद्दत हो गई! लेकिन वह है कहां?"

प्योत्र झुंझलाकर उठा, अरदाल्योन को उबारने के लिए चल दिया और उसके हाथों पिटकर लौटा।

इसके बाद ओसिप ने होंठ भींचे, अपनी जेबों मे हाथ डाले और बोला:

"मै जाता हूं, देखता हूं आखिर मामला क्या है। आदमी बडा अच्छा है..."

मै भी उसके साथ हो लिया।

"देखा तूने, आदमी भी कितना अजीब जीव है," उसने रास्ते में कहा, "अभी कल तक इतना भला था, कि बिल्कुल देवता जैसा। लेकिन एकाएक जाने क्या बुखार चढा कि दुम उठाकर कूड़े के ढेर में मुंह मारने लगा। अपनी आंखे खुली रख, मक्सीमिच, और जीवन से सबक ले..."

कुनाविनो की 'इन्द्रपुरी' में–टकियल वेश्याओ के काठ-बाज़ार मे–हम पहुंचे। वहा एक खूसट औरत हमारे सामने आ खड़ी हुई जो देखने मे चोट्टी मालूम होती थी। ओसिप ने उसके कान मे फुसफुसाकर कुछ कहा और वह हमे एक छोटी सी खाली कोठरी में ले गई। कोठरी में अंधेरा था और खूब गंदगी फैली थी। लगता था जैसे यहा जानवर बंधते हों। कोने में खटिया पडी थी जिसपर मोटी औरत नींद मे ऐंड रही थी। बूढ़ी उसे झझोड़ते और कोहनियाते हुए बोली:

"निकल यहां से,–सुनती नहीं, निकल यहां से!"

औरत घबराकर उछल खड़ी हुई और हथेलियो से चेहरे को मलते हुए मिमियाई:

"हाय भगवान, ये कौन है? क्या हुआ?"

"खुफ़िया पुलिस का धावा!" ओसिप ने गम्भीरता से कहा।

औरत मुंह बाये नौ-दो ग्यारह हो गई। ओसिप ने उसके पीछे घृणा से थूक की पिचकारी छोड़ी। फिर बोला:

"ये लोग शैतान का मुकाबिला कर सकती है, लेकिन खुफिया पुलिस का नहीं..."

दीवार पर एक छोटा सा आईना लटका था। बुढ़िया ने उसे उतारा और दीवार पर लगे काग़ज को उठाते हुए बोली:

"इधर देखो। क्या यही तो नहीं है?"

ओसिप ने सूराख में से देखा।

'हां, यही है। पहले उस रंडी को दफा करो...

मैंने झांककर देखा। यह कोठरी भी उतनी ही अंधेरी और गंदी थी जितनी कि वह जिसमें हम खड़े थे। खिड़की के पल्ले कसकर बंद थे और उसकी चौखट पर एक लैम्प जल रहा था। लैम्प के पास एक ऐबीतानी नंगी तातार लड़की खड़ी थी। वह अपनी फटी हुई चोली से टांके लगा रही थी। उसके पीछे दो तकियों पर अरदाल्योन का सूजा हुआ चेहरा नजर आ रहा था। उसकी काली और कड़े बालों वाली दाढ़ी बेतरतीबी से चौगिर्द बिखरी थी। आहट पाकर तातार लड़की चौकन्नी हो गई, बदन पर चोली डाली और बिस्तर के पास से गुजरते हुए एकाएक उस कोठरी में आ गई जहां हम खड़े थे।

ओसिप ने एक नजर उसकी ओर देखा और फिर थूक की पिचकारी छोड़ी।

"थू, बेशर्म कुतिया!"

"और खूद उहमक़!" खिलखिल करते हुए उसने जवाब दिया।

ओसिप भी कुछ हंसा और उंगली हिलाकर उसे कोंचा।

हमने तातार लड़की के दरबे में प्रवेश किया। बूढ़ा ओसिप अरदाल्योन के पांवों के पास जम गया और उसे जगाने के लिए देर तक उससे जूझता रहा। अरदाल्योन रह-रहकर बड़बड़ाता:

"ओह क्या मुसीबत है... एक मिनट ठहरो, बस एक मिनट... अभी चलता हूं..."

आखिर वह उठा, वहशियाना आंखों से उसने ओसिप और मेरी ओर देखा और इसके बाद अपनी लाल अंगारा सी आंखों को बंद करते हुए बुदबुदाया:

"हां तो..."

"तुम्हीं सुनाओ, तुम्हारे साथ क्या गुजरी?" ओसिप ने शान्त और रूखे, लेकिन डांट-डपट के भाव से मुक्त स्वर में पूछा।

"दीन-दुनिया सब भूल गया," अरदाल्योन ने बैठे हुए गले से खखारकर कहा।

"सो कैसे?"

"खुद देख तो रहे हो..."

"तुम्हारा हुलिया तो काफ़ी बिगड़ा हुआ मालूम होता है..."

मै जानता हू

अरदाल्यग्न ने मेज से वोद्का की एक पहले से खुली बोतल उठाकर मुंह मे लगा ली। फिर ओसिप की ओर बोतल बढ़ाते हुए बोला:

"लो, पियोगे? और देखो, पेट मे डालने के लिए भी उस रकाबी मे कुछ होगा..."

बूढ़े ओसिप ने एक चुस्की ली, मुंह बिचकाते हुए तीखी वोद्का को गले के नीचे उतारा और पाव रोटी का एक टुकड़ा लेकर उसे बड़े ध्यान से चबाने लगा। अरदाल्योन अलस भाव से कहे जा रहा था.

"यों हुआ.. एक तातार लड़की के साथ उल्लू बन गया। यह सारी येफीमुश्का की कारिस्तानी है। बोला, जवान लड़की है—कासीमोव की रहनेवाली—न उसके मा है, न बाप, मेला देखने आयी है।"

दीवार के सूराख मे से टूटी-फूटी रूसी जबान में मुंहफट शब्द सुनाई दिए:

"तातार मजेदार है, इकदम चूजी है! यह बूढा तेरा बाब है जो यहा बैठा है? इसे निकाल बाहर कर!"

"यही वह लड़की है," चुंधी सी आंखों से दीवार की ओर ताकते हुए अरदाल्योन ने कहा।

"मैने देखा है," ओसिप बोला।

फिर अरदाल्योन मेरी ओर मुड़ा:

"देखा भाई, मैने अपनी क्या दुर्गत कर डाली है..."

मेरा खयाल था कि ओसिप अरदाल्योन को खूब झिड़केगा या उसे लैक्चर पिलाएगा और वह अपने किये पर पछताएगा। लेकिन उसने ऐसी कोई हरकत नहीं की। दोनों कंधे से कंधा सटाए लगे-बंधे अन्दाज में बातें करते रहे। उन्हें अंधेरे और गंदगी भरे दड़बे में इस तरह बैठा देख मेरा जी भारी हो गया ओर मै उदासी में डूबने-उतराने लगा। तातार लड़की अभी भी टूटी-फूटी रूसी जबान में दीवार के पीछे से बक-झक रही थी। लेकिन उसकी आवाज़ का उनपर कोई असर नहीं हो रहा था। ओसिप ने मेज पर से एक सूखी हुई मछली उठाई, अपने जूते से टकराकर उसके अंजर-पंजर ढीले किये और फिर उसके छिलके उतारने लगा।

"गांठ मे अब कुछ बचा कि नहीं?" उसने पूछा।

"प्योत्र से कुछ मिलने हैं..."

सभल जा सही अब तो तोम्स्क चला जाना चाहिए तुझ
क्या तोम्स्क – दोम्स्क...

"इरादा बदल लिया, क्या?"

"बात यह है कि वे मेरे रिश्तेदार..."

"तो फिर क्या?"

"बहिन, बहनोई..."

"तो इससे क्या हुआ?"

"नहीं, अपने रिश्तेदारों की चाकरी बजाने मे कोई मजा नही है..."

"मालिक सब एक से, चाहे रिश्तेदार हो या गैर रिश्तेदार।"

"फिर भी..."

वे इस हद तक घुल-मिलकर और गम्भीर भाव से बतिया रहे थे कि चिडचिड़ाने और उन्हे चिढ़ाने में तातार लडकी को अब कोई तुक नहीं दिखाई दी और वह चुप हो गई। दबे पांव वह कमरे में आई, खूंटी पर से चुपचाप उसने अपने कपड़े उतारे और फिर गायब हो गई।

"लड़की जवान मालूम होती है," ओसिप ने कहा।

अरदाल्योन ने उसकी ओर देखा और फिर सहज भाव से बोला:

"यह सब येफीमुश्का ही है, शरारत की जड। लुगाइयां ही उसका ओढ़ना और बिछौना हैं... वैसे यह तातार लड़की है मजेदार, खूब हंसमुख और बेतुकी बातो की पिटारी!"

"लेकिन जरा होशियार रहना, कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हें अपनी इस पिटारी में ही बंद करके रख ले!" ओसिप ने उसे चेताया और मच्छी का आखिरी निवाला निगलकर वहां से चल दिया।

लौटते समय मैने उससे पूछा:

"आखिर तुम आए किस लिए थे?"

"हाल-चाल देखने। वह मेरा पुराना साथी है। एक-दो नहीं, इस तरह की अनेक घटनाएं मैं देख चुका हूं। आदमी भला-चंगा जीवन बिताता है और फिर, एकाएक, इस तरह हवा हो जाता मानो जेल के सीखचे तोड़कर भागा हो।" उसने अपनी पहली वाली बात को दोहराया और इसके बाद बोला, "वोद्का से दूर रहना चाहिये!"

कुछ क्षण बाद उसकी आवाज फिर सुनाई दी:

"लेकिन इसके बिना जीवन सूना हो जाएगा!"

वोदका के बिना?

हा एक चुस्की लेते ही एसा मालम होता है जसे हम दूसरी दुनिया में पहुंच गए..."

और अरदाल्योन पर वोद्का और उस तातार लड़की का कुछ ऐसा रंग चढा कि वह उबरकर न दिया। कई दिन बाद वह काम पर लौटा, लेकिन जल्दी ही वह फिर गायब हो गया और उसका कुछ पता नहीं चला। वसन्त मे एकाएक उससे मेरी भेंट हो गई। कुछ अन्य आवारा लोगों के साथ वह बजरो के चौगिर्द जमा बर्फ काट रहा था। बडे तपाक से हम मिले, एक-दूसरे को देखकर हमारे चेहरे खिल गए और चाय पीने के लिए एक भटियारखाने मे हम पहुचे।

"तुझे तो याद होगा कि मै कितना बढ़िया कारीगर था," चाय की चुस्कियो के साथ उसने शेखी बघारना शुरू किया। "इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि मुझे अपने काम में कमाल हासिल था। अगर मै चाहता तो वारे-न्यारे कर देता..."

"लेकिन तुम तो कोरे ही रहे।"

"हा, मै कोरा ही रहा!" उसने गर्व से कहा। "और यह इसलिए कि मै किसी से बंधकर नहीं रह सकता—नहीं, अपने धंधे से भी नही!"

वह कुछ ऐसे ठाठ से बोल रहा था कि भटियारखाने मे बैठे कितने ही लोग उसकी ओर देखने लगे।

"चुप्पे चोर प्योत्र की बात तो तुझे याद है न? काम के बारे मे वह कहा करता था, 'दूसरो के लिए ईंटों के पक्के घर, और अपने लिए फ़कत लकड़ी का एक ताबूत!' ऐसे धधे के पीछे कोई क्यो जान दे!"

"प्योत्र तो रोगी आदमी है," मैने कहा, "मौत की बात सोचकर हर घड़ी कांपता रहता है।"

"रोगी तो मै भी हूं," वह चिल्लाकर बोला, "कौन जाने मेरी आत्मा मे घुन लगा हो!"

रविवार के दिन शहरी चहल-पहल से दूर मै 'लखपति बाजार' पहुंच जाता जहां भिखमंगे और आवारा लोग रहते थे। मैने देखा कि अरदाल्योन तेज गति से नगर की इस तलछट का अंग बनता जा रहा है। एक साल पहले की ही तो बात है जब कि वह उछाह और उमंग से भरा एक समझदार कारीगर था। लेकिन अब उसने छिछले तौर-तरीक़े अपना

लिए थे, झूमता और सबसे टकराता हुआ चलता था, उसकी आंखों में हर किसी को ठेंगे पर मारने तथा हर किसी से गुत्थमगुत्था होने का भाव खेलता रहता था।

"देखा, यहां लोग कैसे मेरा मान करते हैं—मैं बस एक तरह से इनका सरदार हूं," वह शेखी बघारता।

जो भी वह कमाता उसे अपने आवारा साथियों को खिलाने-पिलाने में उड़ा देता। लड़ाई-झगड़े में हमेशा कमजोर की तरफ लेता, अक्सर चिल्लाकर कहता :

"यह धोखा-धड़ी ठीक नहीं, दोस्तो, ईमानदारी से काम लेना चाहिए!"

ईमानदारी की उसकी इस गुहार से उसके सभी संगी-साथी परिचित थे, यहां तक कि उन्होंने उसका नाम 'ईमानदार' रख छोड़ा था। वह इस नाम को सुनकर बहुत खुश होता।

मैं इन लोगों को समझने की कोशिश करता जो ईंट-पत्थरों की इस खत्ती में—जर्जर और गंदे लखपति बाजार में—अटे पड़े थे। यहां जीवन की मुख्य धारा से छिटके हुए लोग बसते थे, और ऐसा मालूम होता मानो उन्होंने अपने जीवन की एक अलग धारा का निर्माण कर लिया था, एक ऐसी धारा का जो मालिकों से स्वतंत्र थी और मौज-मजे में छलछलाती हुई बहती थी। इन लोगों में साहस था और स्वच्छन्दता थी। उन्हें देखकर मुझे नाना से सुनी वोलगा के मल्लाहों की याद हो आती जिन्हें डाकू या साधु बनते देर नहीं लगती थी। जब उनके पास कोई काम-धंधा न होता तो वे बजरों और जहाजों पर हाथ साफ करते और जो भी छोटी-मोटी चीज हाथ लगती उसे उड़ाने से न चूकते। उनकी यह हरकत मुझे जरा भी अटपटी या बुरी न मालूम होती। नित्य ही मैं देखता कि जीवन का सारा ताना-बाना ही चोरी के धागों से बुना है। लेकिन इसी के साथ-साथ मैं यह भी देखता कि कभी-कभी—जैसे आग लगने या नदी पर जमी बर्फ तोड़ने या लदाई का कोई फ़ौरी काम आ पड़ने पर—ये लोग भारी उत्साह से काम करते, अपनी जान तक की परवाह न कर अपनी शक्ति का एक अणु भर भी बचाकर न रखते। वैसे भी अन्य लोगों के मुक़ाबले में ये कहीं ज्यादा जिन्दादिल और मौजी जीव थे।

लेकिन जब ओसिप ने यह देखा कि मैं अरदाल्योन से बहुत मिलता जुलता हूं तो उसने पिता की भांति मुझे चेताया:

"सुन, लल्ला, क्या यह सच है कि आजकल तू उन 'लखपतियों' के पास जरूरत से ज्यादा आता-जाता है? मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि जरा अपने को बचाए रखना, ऐसा न हो कि तू चौपट हो जाए..."

मैंने उसे जितना भी मुझसे हो सका, बताया कि वे लोग मुझे अच्छे लगते हैं—एकदम स्वच्छन्द और काम-धंधे की चिन्ता से मुक्त।

"हां, एकदम पक्षियों की भांति स्वच्छन्द!" उसने हंसते हुए बीच में ही टोका। "यह इसलिए कि वे काहिल और निठल्ले हैं। उनके लिए काम करना मानो एक सज़ा है!"

"सजा नहीं तो क्या आनन्द की चीज़ है? पुरानी कहावत है: पसीने की कमाई से महल नहीं खड़े होते!"

इस कहावत को मैं इतनी बार सुन चुका था और इसमें मुझे कुछ इतनी सचाई मालूम होती थी कि बड़े चाव से मैं इसे दोहरा गया। लेकिन ओसिप इसे सुनकर भभक उठा और चिल्लाया:

"इस तरह की बातें किसके मुंह से निकलती हैं? मूर्खों और काम-चोरों के मुंह से। और तू है कि पिल्ले की भांति दुम हिलाते हुए इस तरह की बातें रट लेता है! इस तरह की बेतुकी बातें वही करते हैं जिनके दिल में ईर्ष्या होती है या जिन्हें जीवन में सफलता नहीं मिलती। उड़ने की कोशिश करने से पहले कुछ पर तो उग आने दे! और जहां तक 'लखपतियों' से तेरी दोस्ती की बात है, उसके बारे में तो मैं मालिक से जरूर ही कहूंगा, तू बुरा मत मानना!"

और उसने सचमुच मालिक से शिकायत की। मालिक ने—ओसिप भी उस समय मौजूद था—मुझसे कहा:

"लखपति बाज़ार के चक्कर लगाना बंद कर, पेशकोव! वहां सब ऐसे ही लोग रहते बसते हैं—चोर-उचक्के और वेश्यायें और वहां जाने के बाद सीधे जेल या अस्पताल की हवा खानी पड़ती है। उनका पीछा छोड़ दे!"

लखपति बाज़ार तो मैं अब भी जाता, लेकिन लुक-छिपकर। इसके कुछ ही समय बाद एक ऐसी घटना घटी जिससे मेरा वहां जाना बंद हो गया।

लखपति बाजार में एक रैन-बसेरा था जिसके अहाते मे एक भुसौरा था। एक दिन अरदाल्योन, उसका साथी 'बच्चा' और मैं इस भुसौरे की छत पर चढ़े थे और 'बच्चा' दोन नदी के किनारे स्थित रोस्तोव नगर से मास्को तक की अपनी पैदल यात्रा का मनोरंजक हाल सुना रहा था। वह भूतपूर्व सैनिक था और सैपरमैनों की टुकड़ी मे नियुक्त था। सत जार्ज के क्रास से वह विभूषित था और तुर्को के साथ युद्ध मे उसका घुटना घायल हो गया था। इस चोट ने उसे जन्म भर के लिए पंगु बना दिया था। नाटा और गठा हुआ उसका बदन था। उसके हाथ बहुत ही मजबूत और शक्तिशाली थे, लेकिन उसका पंगु होना आडे आता था और अपने हाथों की इस शक्ति का वह कोई उपयोग नही कर पाता था। किसी रोग की वजह से उसके सिर और दाढी के बाल झड गए थे, और उसका सिर सचमुच नवजात बच्चे के सिर की भांति साफ और चिकना बन गया था।

अपनी लाल आंखो को चमकाते हुए वह कह रहा था:

"इस तरह मै सेरपुखोव पहुंचा। वहां एक पादरी पर मेरी नजर पडी जो अपने घर के आंगन में बैठा था। मै उस के पास पहुंचा और बोला, 'तुर्की युद्ध के इस वीर की कुछ मदद करो, बाबा...'"

अरदाल्योन ने सिर हिलाया और बीच में ही बोल उठा:

"ओह, झूठो के सरदार..."

"क्यों, इसमें झूठ क्या है?" 'बच्चा' ने बुरा न मानते हुए सहज भाव से पूछा। लेकिन अरदाल्योन ने उसकी बात नहीं सुनी और अलस भाव से सीख सी देता हुआ बोला:

"नहीं, तू ईमानदारी से नहीं रहता! तुझे तो चौकीदारी-दरबानी करनी चाहिए, सभी लंगड़े यही करते है। और तू झक मारता, बेकार की बातें बनाता फिरता है..."

"यह सब तो मै योंही मजे से आकर करता हूं—लोगों को हंसाने के लिए..."

"तुझे अपने पर हंसना चाहिए..."

तभी अहाते में, जिसमें रुपहला मौसम होने के बावजूद अंधेरा था और खूब कूड़ा-कचरा फैला था, एक स्त्री आई और सिर से ऊपर अपना हाथ उठाकर कोई चीज हिलाते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी:

"घाघरा बचू हू, घाघरा। अरी लेगी कोई..."

स्त्रियां अपने-अपने दड़बे मे से रेंगकर बाहर निकल आईं और घाघरा बेचनेवाली के चारों ओर जमा हो गईं। मैंने उसे तुरंत पहचान लिया। यह धोबिन नतात्या थी। छत से कूदकर मै अभी नीचे पहुंचा ही था कि पहली बोली बोलनेवाली स्त्री के हाथ घाघरा बेच वह चुपचाप आंगन से बाहर निकलती दिखाई दी।

फाटक के बाहर उसके निकट पहुंचकर खुशी-खुशी मैंने कहा:

"अरे, जरा सुनो तो!"

"क्यों क्या है?" कनखियों से देखते हुए वह बोली। फिर एकाएक ठिठककर खड़ी हो गई और नाराजगी मे भरकर चीख उठी:

"हाय भगवान, तू यहां कैसे?.."

उसके इस तरह चौंककर चीख उठने ने मुझे बड़ा प्रभावित किया, और साथ ही एक अजीब परेशानी का भी मैंने अनुभव किया। समझदारी से भरे उसके चेहरे पर भय और अचरज के भाव साफ दिखाई देते थे। मुझे समझने मे देर नहीं लगी कि मुझे यहां, इस जगह देखकर, वह आशंकित हो उठी है। मैंने तुरंत सफ़ाई देनी शुरू की कि मै यहां नही रहता, योंही कभी-कभी इधर चला आता हूं।

"कभी-कभी चला आता हूं!" उसने व्यंग से मेरी बात दोहराई और तीखे स्वर में बोली, "आखिर किसलिए?... बोल, राह-चलतों की जेब साफ़ करने के लिए या लड़कियों के जम्पर में हाथ डालकर उनकी टोहें लेने के लिए?"

उसका चेहरा मुरझा गया था, होंठों की ताजगी विदा हो चुकी थी, और आंखों के नीचे काले घेरे पड़े थे।

भटियारखाने के दरवाजे पर वह रुकी और बोली:

"चल, एक-एक गिलास चाय पी ली जाए! कपड़े तो तू साफ़-सुथरे पहने है, इस जगह में रहनेवाले लोगों जैसे नहीं, फिर भी जाने क्यों तेरी बात मानने को जी नहीं चाहता..."

भटियारखाने के भीतर पांव रखते न रखते सन्देह और अविश्वास की वह दीवार मुझे ढहती मालूम हुई जो उसके हृदय में अनायास ही मेरे प्रति खड़ी हो गई थी। गिलास में चाय उंडेलने के बाद उसने कुछ बेरस और अनमने भाव से बताना शुरू किया कि मुश्किल से एक घंटा पहले ही

वह सोकर उठी थी और यह कि उसके पेट में अभी तक कुछ भी नहीं पड़ा है।

"पिछली रात जब मैं सोने के लिए अपने बिस्तर पर गई तो पूरी मधुवा बनी हुई थी। लेकिन यह याद नहीं पड़ता कि मैंने कहां और किसके साथ पी।"

उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, और उसकी मौजूदगी में एक तरह की बेचैनी का मैं अनुभव करने लगा। उसकी लड़की का हाल जानने के लिए मैं बेहद उत्सुक था। चाय और वोद्का से कुछ गरमाने के बाद उसने अपनी उसी सहज चपलता और ढंग से बोलना शुरू किया जो इस जगह में रहनेवाली सभी स्त्रियों की खासियत थी। लेकिन जब मैंने उसकी लड़की के बारे में पूछा तो वह तुरंत गम्भीर हो गई और बोली :

"तुझे उससे मतलब? यह मैं बताए देती हूं कि चाहे तू जिन्दगी भर एड़ियां रगड़, मेरी लड़की पर कभी डोरे नहीं डाल सकेगा, समझा बच्चुवा?"

उसने एक और चुस्की ली और फिर बोली :

"मेरी लड़की का अब मुझसे कोई वास्ता नहीं है, मेरी ओर आंख तक उठाकर नहीं देखती। और मेरी औकात भी क्या है? कपड़े धोनेवाली, एक नीच धोबिन उस जैसी लड़की के लिए मैं भला कैसे मां बन सकती हूं? वह पढ़ी-लिखी और विद्वान है। यह बात है, भइया। सो उसने मुझे धता बताया और अपनी सहेली के पास चली गई। उसकी सहेली किसी बड़े घर की लड़की है, खूब पैसे वाली। मेरी लड़की उसके घर मास्टरनी बनकर रहेगी..."

कुछ रुककर उसने फिर धीमे स्वर में कहा :

"कपड़े धोनेवाली धोबिन को कोई नहीं पूछता। हां, चलती-फिरती वेश्या की लोगों को तलाश रहती मालूम होती है।"

उसने ऐसी वेश्या का धंधा अपना लिया है, यह मैं उसे देखते ही भांप गया था। इस गली की सभी स्त्रियां यही धंधा करती थीं। लेकिन जब उसने खुद अपने मुंह से यह बात कही तो मेरे हृदय पर गहरा आघात लगा और मेरी आंखों में लज्जा तथा तरस के आंसू उमड़ आए। नताल्या के मुंह से, उस नताल्या के मुंह से जो अभी पिछले दिनों तक एक साहसी, चतुर और अपने में आजाद स्त्री थी, यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया!

मेरे नन्हे सयानो, उसने एक लम्बी सास भरी और एक नजर मुझे देखते हुए बोली। "यह गली तेरे लायक नहीं है। मेरी सलाह है, — मै तुझसे बिनती करती हूं — भूलकर भी इस गली में पांव न रखना! नही तो यह तुझे चटकर जाएगी!"

इसके बाद मेज पर दोहरी होकर और अपनी उंगली से ट्रे में रेखाएं खींचते हुए, धीमे और असम्बद्ध स्वर मे, मानो अपने आप से ही वह कहने लगी :

"लेकिन मैं कौन होती हूं तुझे सलाह देनेवाली? जिस लड़की को मैंने अपनी छाती का दूध पिलाया, उसी ने जब मेरी एक नहीं सुनी तो तू ही क्यो मानने लगा... मै उससे कहती, 'अपनी सगी मां को तू धता नही बता सकती; नही, तू मुझे छोड़कर नहीं जा सकती।' लेकिन वह जवाब देती, 'मै गले में फंदा डालकर मर जाऊंगी।' वह नही मानी, और कजान चली गई। उसे नर्स बनने की धुन थी। वह तो खैर कजान चली गई, लेकिन मै कहां जाती?.. मै किसका आसरा लूं?.. राह-चलते लोगो का? उनके सिवा मेरा और कौन सहारा है?.."

वह अब चुप बैठी थी, विचारो में खोई सी। उसके होंठ हिल रहे थे, लेकिन कोई आवाज नहीं कर रहे थे। उसे किसी बात की सुध नहीं थी, मेरी भी नही जो उसके सामने बैठा था। उसके होंठों के कोने झुक आए थे, और उसके मुंह की रेखा दूज के चांद की भांति फैली थी, हंसिये जसी गोलाई लिए। उसके होठो मे बल पड़ रहे थे, और उसके गालों की झुर्रियां थरथरा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो वे मूक भाषा में कुछ कह रही हों। देखकर मेरा हृदय कसमसा उठा। उसका चेहरा आहत और बच्चों जैसा भोलापन लिए था। बालो की एक लट शाल के नीचे से निकलकर गाल पर उतर आई थी, और छल्ला सा बनाती उसके नन्हे-मुन्ने कान के पीछे लौट गई थी। तभी आंख की कोर से ढुलककर आंसू की एक बूंद ठंडी चाय के गिलास में आ गिरी। यह देख उसने गिलास दूर खिसका दिया, अपनी आंखो को कसकर भींचा और आंसू की बाकी दो बूंदे और निचोड़ते हुए शाल के छोर से चेहरे को पोछ लिया।

मेरा हृदय बुरी तरह उमड़-घुमड़ रहा था। मै वहां और अधिक नहीं बैठा रह सका। चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा तो मै अब..."

"क्या? जा, जा, जहन्नुम में जा!" उसने कहा, और सिर उठाए बिना हाथ हिला-हिलाकर मुझे दफा करने लगी। शायद उसे अब यह भी सुध नहीं थी कि मैं कौन हूं।

अरदाल्योन की खोज में मैं फिर अहाते में लौट आया। उसके साथ तय हुआ था कि दोनों झींगा-मछली का शिकार करने चलेंगे। फिर मैं उसे नताल्या के बारे में भी बताना चाहता था। लेकिन वह और 'बच्चा' दोनों छत पर नहीं थे। भूलभुलैया वाले अहाते में मैं उन्हें खोज ही रहा था कि तभी कुछ हल्ला-गुल्ला सुनाई दिया। यहां के लोगों में, नित्य की भांति, कोई झगड़ा उठ खड़ा हुआ था।

मैं लपककर भागता हुआ फाटक के बाहर पहुंचा, और नताल्या से टकराते-टकराते बचा जो अंधों की भांति लुढ़कती-पुढ़कती पटरी पर चली आ रही थी। वह सुबकियां ले रही थी और उसका चेहरा बुरी तरह नोचा-खरोंचा हुआ था। एक हाथ में शाल का छोर थामे वह अपना चेहरा पोंछ रही थी, और दूसरे हाथ से अपने उलझे हुए बालों को पीछे की ओर खिसका रही थी। उसके पीछे-पीछे अरदाल्योन और 'बच्चा' चले आ रहे थे।

"अभी कसर रह गई," 'बच्चा' चिल्लाकर कह रहा था, "आ, इसे थोड़ा मजा और चखा दे!"

अरदाल्योन ने घूंसा ताना, और वह घूम गई। उसका चेहरा बल खा रहा था, और आंखों से घृणा की चिंगारियां निकल रही थीं। चिल्लाकर बोली:

"आओ, मारो मुझे!"

मैंने अरदाल्योन का हाथ दबोच लिया। चकित नजर से उसने मुझे देखा। बोला:

"क्यों, तेरे सिर पर क्या भूत सवार हुआ?"

"इसे हाथ मत लगाना," बड़ी मुश्किल से मैं इतना ही कह पाया।

वह खिलखिलाकर हंसा। बोला:

"तू क्या इसपर लट्टू हो गया है? ओह नताल्या, खुदा बचाए तेरे हरजाईपन से, तूने इस बाल-ब्रह्मचारी को भी अपने जाल में फंसा लिया!"

'बच्चा' भी अपने कूल्हों पर हाथ मारते हुए लोट-पोट हो रहा था। दोनों ने मिलकर मुझे कोंचना और मुझपर कीचड़ उछालना शुरू किया।

नताल्या को मौका मिला और वह खिसक गई। कुछ देर तक तो मै उनकी बकवास सुनता रहा। लेकिन जब बरदाश्त से बाहर हो गया तो 'बच्चा' की छाती मे मैंने इतने जोर से सिर मारा कि वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मै नौ-दो ग्यारह हो गया।

इसके बाद एक लम्बे अर्से तक मैंने लखपति बाजार का रुख नही किया। लेकिन अरदाल्योन से मेरी एक बार फिर भेंट हो गई, इस बार एक बेड़े पर।

"क्या हाल है?" उसने प्रसन्नता से चिल्लाकर कहा। "इतने दिनों तक कहा गायब रहा?"

मैंने उसे बताया कि जिस तरह उसने नताल्या को पीटा और मेरा अपमान किया, वह मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ और मेरा मन उससे फिर गया। यह सुनकर वह सहज प्रसन्नता से हंसा और बोला:

"तू समझता है कि हम सचमुच में तेरा अपमान करना चाहते थे? अरे नहीं, हम तो केवल तुझे चिढ़ा रहे थे। और जहां तक उसका सम्बध है, उसे मारना क्या गुनाह है? एक टकियल औरत के लिए इतना दर्द क्यों? अगर इन्सान अपनी बीबी को पीट सकता है तो फिर उस जैसी छिनाल किस खेत की मूली है! लेकिन छोडो यह सब। हम तो केवल मजाक कर रहे थे! मार-पीट से कोई नहीं सुधरता, यह मै भी खूब जानता हूं!"

"लेकिन यह तो बताओ कि तुम उसका सुधार क्या करते? तुम खुद भी तो उससे अच्छे नहीं हो!.."

उसने अपनी बांह मेरे गले में डाल दी और प्यार से मुझे झंझोड़ा।

"यही तो मुसीबत है," उसने उपहास के स्वर मे कहा, "इस दुनिया मे कोई किसी से अच्छा नहीं है... मेरे भी आंखे है. भाई, सभी कुछ मे देखता हू। मुझे भीतर का भी सब हाल मालूम है, और बाहर का भी। मैं निरा कोल्हू का बैल नही हूं.."

वह नशे की तरग मे था और मेरी ओर प्यार भरे तरस के साथ देख रहा था। उसकी आंखों में कुछ वैसा ही भाव था जैसा कि किसी सहृदय शिक्षक की आंखों में अपने कूढ़-दिमाग शिष्य को पढ़ाते समय तैरता रहता है।

...पावेल ओदिन्त्सोव से कभी-कभी मेरी मुलाकात हो जाती थी।

हमेशा से ज्यादा उछाह उसमे नजर आता था वह छना बना घमता था और बड़-बूढ़ की तरह से मेरे साथ पेश आता और मुझ [illegible] .

"मेरी समझ में नहीं आता तूने यह धंधा कैसे पसंद किया? मेरी बात गांठ बांध ले कि उन देहातियो के साथ काम करके तेरे पल्ले कभी कुछ नहीं पडेगा..."

इसके बाद उदास भाव से उसने वर्कशाप के समाचार सुनाए:

"जिखरेव अभी भी उस घुड़मुंही के चक्कर में फंसा है। सितानोव के हृदय में भी कोई घुन लग गया है,—वह अब जरूरत मे ज्यादा नशे मे धुत्त रहता है। गोगोलेव को भेड़िये चटकर गए। युलेटाइड की छुट्टियो में वह घर गया था। वहां नशे में इतना उटटांग हो गया कि भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए!"

खूब खिलखिलाकर हंसते हुए पावेल गढ़ने लगा:

"सच भेड़िये उसकी बोटी-बोटी चबा गए। लेकिन उसने इतनी पी रखी थी कि खून की जगह उसकी नसों मे शराब दौड़ रही थी! सो भेड़ियों को भी नशा हो गया और अपनी पिछली टागो पर खड़े होकर सरकस के कुत्तों की भांति जंगल मे नाचने तथा कुहराम मचाने लगे। वे इतने चीखे-चिलाए कि बेदम होकर गिर पड़े और अगले दिन मरे हुए पाए गए!.."

यह सुनकर मुझसे भी हंसे बिना न रहा गया, लेकिन मेरी यह हंसी उदासी में डूबी थी। उसकी बातों से साफ़ मालूम होता था और मुझे यह अनुभव करते देर नहीं लगी कि वर्कशाप और उससे सम्बद्ध मेरी सभी स्मृतियो पर अतीत का आवरण पड़ गया है, सदा के लिए वे मुझसे विदा हो गई है। और यह, निश्चय ही, उदासी का संचार करने वाली बात थी।

१६

जाड़ों के दिन थे। मेले का काम क़रीब-करीब ख़त्म हो चुका था। मै अब घर पर ही रहता था और काम का वही पुराना चक्कर फिर शुरू हो गया था। दिन भर मैं उसी मे फंसा रहता, लेकिन सांझ तक काम से छुट्टी मिल जाती। तब सारा घर जमा होकर बैठता और मैं उन्हे

पहले की भांति हृदय पर पत्थर रख, नीवा और मोस्कोव्स्की लीस्तोक" में छपे टकियल उपन्यास पढ़कर सुनाता। रात को मैं अच्छी पुस्तकें पढ़ता, और तुकबन्दियां जोड़ने की कोशिश करता।

एक दिन मेरी मालकिनें गिरजे गई हुई थीं। मालिक की तबीयत ठीक नहीं थी इसलिए वह घर पर ही था। मुझे देखकर बोला:

"वीक्टर अक्सर मजाक उड़ाया करता है कि तू कविताएं लिखता है,—क्या यह सच है, पेशकोव? कुछ सुना न? देखें तूने क्या लिखा है!"

मुझसे इनकार करते नहीं बना, और मैंने उसे अपनी कुछ कविताएं सुनाईं। ऐसा मालूम होता था कि उसे कविताएं पसंद नहीं आईं। लेकिन उसने कहा:

"ठीक है, ठीक है, लिखे जा। कौन जाने लिखते-लिखते एक दिन तू भी दूसरा पुश्किन बन जाए। कभी पढ़ी हैं पुश्किन की कविताएं?

भुतने को दफ़ना रहे
या रचते डायन का ब्याह?

उसके जमाने में लोग डायनों और भुतनों में विश्वास करते थे। लेकिन वह खुद भी विश्वास करते थे, यह मैं नहीं मानता,—उसने तो ऐसे ही मजाक में ये पंक्तियां लिखी होंगी!" इसके बाद कुछ गुनगुनाती सी मुद्रा में उसने कहना शुरू किया, "सच कहता हूं, भाई तेरी शिक्षा का कोई बाक़ायदा प्रबंध होना चाहिए था। लेकिन अब तो बहुत देर हो गई। शैतान ही जानता है कि इस दुनिया में तेरा क्या बनेगा?.. अपनी इस कापी को औरतों से छिपाकर रखना। अगर उनकी नजर पड़ गई तो तुझे चिढ़ाना और कोंचना शुरू कर देंगी... औरतों को इसमें मजा मिलता है,—सच भाई, वे रस ले-लेकर मर्म-स्थल को कुरेदती हैं..."

इधर कुछ दिनों से मालिक का बोलना कम हो गया था और वह सोच में डूबा रहता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद नजर बचाकर वह इधर-उधर देखता, और दरवाजे पर घंटी की आवाज सुनकर हर बार चौंक उठता। कभी-कभी चिड़चिड़ेपन का एक भूत सा उसके दिमाग़ पर सवार हो जाता, जरा-जरा सी बात पर वह बौखला उठता, हर किसी पर चिल्लाता, अन्त में घर से गायब हो जाता और गई रात नशे में धुत्त

होकर लौटता... साफ मालूम होता था कि उसके हृदय पर कोई भारी बोझ रखा है, किसी ऐसी चीज़ से वह त्रस्त है जिसे सिवा उसके और कोई नहीं जानता, और जिसने उसकी आत्मा को इस हद तक खण्डित कर दिया है कि उसका अपने मे विश्वास नहीं रहा है, जीवन मे उसकी दिलचस्पी ख़त्म हो गई है लेकिन फिर भी निरे अभ्यासवश जिये जा रहा है।

रविवार के दिन दोपहर के खाने के बाद मैं घूमने के लिए निकल जाता। रात के नौ बजे तक मैं घूमता और इसके बाद याम्स्काया सडक के भटियारख़ाने मे पहुंच जाता। भटियारख़ाने का मालिक एक मोटा आदमी था जिसके बदन से हर घड़ी पसीना चूता रहता था। गानों का उसे बेहद शौक था। नतीजा इसका यह कि वोद्का, बीयर और चाय के लालच मे आस-पास के सभी गिरजों के गायकों का यहां जमघट लगा रहता। वे गाने सुनाते और बदले मे वह उनके गलों को तर कर देता। गिरजो के ये गायक बहुत ही बेमजा और नशे पर जान देनेवाले जीव थे। वे गाते क्या थे, मानो बेगार काटते थे, सो भी उस समय जब उन्हें वोद्का का लालच दिया जाता था। तिस पर मजा यह कि वे हमेशा गिरजे के गीत ही गाते, यों अपवाद की बात दूसरी है। भगत किस्म के पियक्कड़ इसका विरोध करते। कहते कि कहां भटियारख़ाना और कहां गिरजे के गीत। नहीं, ये यहां नही चलेंगे! इसलिए मालिक उन्हे अपने निजी कमरे मे बुला लेता और वहां बैठकर उनका गाना सुनता। दरवाजे में से गीत के स्वर मुझे सुनाई देते। लेकिन अक्सर कारीगरों और देहातियों के भी गाने होते। भटियारख़ाने का मालिक उनकी खोज में रहता, और सारे नगर को छान डालता। बाजार के दिन देहातों से जो किसान आते, उनमे अगर कोई गायक होते तो वह उनका पता लगाता और भटियारख़ाने में उन्हें बुलाता।

गायक को वह हमेशा बार के काउण्टर के पास बैठाता। ठीक वोद्का के गोल पीपे के सामने एक स्टूल पर गायक का आसन जमता। पीपे का तला गोल चौखटे का काम देता और ऐसा मालूम होता मानो गायक का सिर उसमें जड़ा हो।

क्लेश्चोव नाम का नाटा जीनसाज गायकों में सबसे अच्छा था। उसे एक से एक बढ़िया गाने याद थे। उसके बदन मे मांस नही था, चमड़ी

ही चमड़ी थी, सिर पर लाल बालों की झाड़ियां उगी हुई थीं। सिकुड़े और रौंदे हुए से चुरमुरे चेहरे पर लाश की भांति पथराई हुई चिकनी नाक थी और छोटी-छोटी नींद से भारी आंखें मानो उसके कोटरों में स्थिर जड़ी हुई थीं।

गाते समय वह प्रायः अपनी आखों को मूंद लेता, सिर वोद्का के गोल पीपे के तले पर टिका लेता, लम्बी सांस खींचकर अपनी धौंकनी में हवा भरता और धीमी, लेकिन जादू भरी आवाज में गाना शुरू करता:

अरे, खुले मैदानों पर जब घिरकर गहन कुहासा छाया,
दूर-दूर की राहों को फट, उसने निगला उन्हें छिपाया

इस जगह वह खड़ा हो जाता, काउण्टर पर अपनी पीठ टिका लेता और छत की ओर देखता हुआ भावोन्मत्त हो गाता:

कहां, कहां, रे, मैं जाऊंगा,
कहां राह चौड़ी पाऊंगा?

उसकी आवाज ऊंची नहीं बल्कि कभी न थकनेवाली थी। एक रुपहला तार प्रवाहित होता और भटियारखाने की अस्पष्ट तथा धुंधली भनभनाहट को बींधता हुआ चारों ओर फैल जाता, और गीत के उदास शब्दों तथा सुबकियां भरे स्वरों के जादू से कोई भी अछूता न बचता। वे लोग भी जो नशे में होते एकाएक इतने गम्भीर हो जाते कि देखकर अचरज होता। वे एकटक बिना पलक झपकाए सामने मेज़ की ओर देखते रहते। मैं भी उमड़ता-घुमड़ता, हृदय की गहराइयों से भावों का एक सशक्त बगूला सा उठता और ऐसा मालूम होता कि बांध तोड़कर मुझे भी वह अपने साथ खींच ले जाएगा। उत्कृष्ट संगीत के स्वर आत्मा की गहराइयों को छूते हे, तब हृदय इसी तरह शक्तिशाली भावों से छलछलाने और उमड़ने-घुमड़ने लगता है।

भटियारखाने में गिरजे जैसी निस्तब्धता छा जाती और गायक नेक हृदय पादरी की भांति मालूम होता। वह किसी धर्मग्रन्थ का अंश पढ़कर नहीं सुनाता, बल्कि अपने रोम-रोम से ईमानदारी के साथ समूची मानव जाति के लिए प्रार्थना करता, निरीह मानव जीवन की समूची वेदना को वाणी प्रदान करता। और हर ओर से, हर कोने से बड़ी-बड़ी दाढ़ी वाले

लोग उसे देखते रहते जालो जन्तुओं जैसे उनके चेहरों पर बच्चों जैसी आंखें सोच में पड़कर टिमटिमाती रहतीं बीच बीच में किसी के गहरी सांस भरने की आवाज आती और गीत के प्रभावशाली स्वरों के साथ घुल-मिलकर एकाकार हो जाती। उन क्षणों में मुझे ऐसा अनुभव होता मानो सभी लोग झूठे और कृत्रिम जीवन के जंजाल में फंसे हैं जबकि सच्चा जीवन यहां, इस भटियारखाने के भीतर हिलोरे ले रहा है!

कोने में कचौरी सा मुंह लिए बेलगाम और बेशर्मी की हद तक मनमौजी फेरीवाली लिसूखा बैठी थी। मांसल कंधों के बीच अपना सिर दुबकाए वह रो रही थी और चुपचाप लज्जाहीन आंखों में ढुरक रहे आंसुओं को पोंछे जा रही थी। उससे कुछ ही दूर एक मेज़ पर गिरजे का गम्भीर गायक मित्रोपोल्स्की पसरा हुआ सा बैठा था जो पदच्युत पादरी सा लगता था। भारी-भरकम डील डौल, गहरी और गूंजदार आवाज, जिसकी थाह का कोई पता नहीं चलता था, सूजे हुए चेहरे में भट्टी सी बड़ी-बड़ी आंखें। उसके सामने मेज पर वोद्का का गिलास रखा था। गिलास पर वह एक नजर डालता, हाथ बढ़ाकर उसे उठाता, होंठों तक ले जाता और फिर सावधानी से बिना कोई आवाज़ किए जाने किस आवेश में अछूता ही उसे मेज़ पर रख देता।

और भटियारखाने में जितने भी लोग थे, सब के सब निश्चल बैठे रहते। ऐसा मालूम होता मानो सुदूर अतीत में खोई उनकी सबसे प्रिय और सबसे घनिष्ठ स्मृतियां लौट रही हों।

गीत खत्म करने के बाद क्लेश्चोव निरीह भाव से अपने स्टूल पर ढह जाता और भटियारखाने का मालिक वोद्का से छलछलाता गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए संतोष भरी मुस्कराहट के साथ कहता:

"भाई वाह, कमाल कर दिया, हालांकि तुम्हारा गीत, गीत न होकर एक अच्छी-खासी गाथा था लेकिन हो तुम पूरे उस्ताद, इससे इनकार नहीं किया जा सकता!.."

बिना किसी उतावली के सहज भाव से क्लेश्चोव वोद्का का गिलास खाली कर देता, खखारकर अपना गला साफ़ करता और कहता:

"गाने को तो वे सभी गा सकते हैं जिनके पास गला है, लेकिन गीत की आत्मा निकालकर दिखाने की कला बस मैं ही जानता हूं।"

बस-बस अब इतनी शेखी न बघारो

"अपने मुंह पर मोहर वह लगाए जिसके पास शेखी बघारने के लिए कुछ न हो!" उसी धीमे स्वर में और ढीठपन का भाव लिए गायक कहता।

भटियारखाने का मालिक खीज उठता। झुंझलाकर कहता:

"क्यों, अपने को तुम बहुत ऊंचा समझते हो, क्लेश्चोव?"

"जितनी ऊंची मेरी आत्मा है, बस उतना ही। उससे ज्यादा ऊंचा मैं नहीं जा सकता."

तभी कोने में बैठा मित्रोपोल्स्की गरज उठता:

"क्या समझते हो तुम, ओ कुलबुलाते कीडो, इस कुरूप फरिश्ते के गीतों से?"

वह हमेशा अपने सींग ताने रहता, हर किसी से टकराता, सभी के दोष निकालता और लडता-झगडता। नतीजा इसका यह कि वह हर रविवार को करीब-करीब बिला नागा गायकों या अन्य किसी से मार खाता, लोगों में से जिसका भी हाथ चलता या जो भी ऐसा करना चाहता, सहज ही उसकी मरम्मत कर देता।

भटियारखाने का मालिक क्लेश्चोव के गीतों पर तो जान देता था, लेकिन खुद क्लेश्चोव से नफरत करता था। वह हर किसी से उसकी शिकायत करता और प्रत्यक्षतः उसे नीचा दिखाने या उसका मजाक उड़ाने के तौर-तरीक़ों की टोह में रहता। भटियारखाने में आनेवाले सभी लोग जिनमें खुद क्लेश्चोव भी शामिल था, उसकी इस हरकत से परिचित थे।

"माना कि वह अच्छा गवैया है, लेकिन उसका दिमाग़ सातवें आसमान पर रहता है। उसे थोड़ी मिट्टी की खुशबू सुंघानी चाहिए!" भटियारखाने का मालिक अपनी राय जाहिर करता।

कुछ लोग उसकी हां में हां मिलाते:

"सच कहते हो। नकचढ़ा आदमी है!"

भटियारखाने का मालिक और भी बल देता:

"समझ में नहीं आता कि इतना घमंड किस बात पर करता है। उसकी आवाज अच्छी है, लेकिन वह तो खुदा की देन है, उसकी अपनी घरेलू ईजाद नहीं। और सच पूछो तो उसकी आवाज कुछ इतनी बढ़िया भी नहीं है!"

लोग उसे देखते रहते, जंगली जन्तुओं जैसे उनके चेहरों पर बच्चों जैसी आंखें सोच में पड़कर टिमटिमाती रहतीं। बीच-बीच में किसी के गहरी सांस भरने की आवाज़ आती और गीत के प्रभावशाली स्वरों के साथ घुल-मिलकर एकाकार हो जाती। उन क्षणों में मुझे ऐसा अनुभव होता मानो सभी लोग झूठे और कृत्रिम जीवन के जंजाल में फंसे हैं जबकि सच्चा जीवन यहां, इस भटियारखाने के भीतर हिलोरें ले रहा है!

कोने में कचौरी सा मुंह लिए बेलगाम और बेशर्मी की हद तक मनमौजी फेरीवाली लिलुश्का बैठी थी। मांसल कंधों के बीच अपना सिर दुबकाए वह रो रही थी और चुपचाप लज्जाहीन आंखों से ढुरक रहे आंसुओं को पोंछे जा रही थी। उससे कुछ ही दूर एक मेज पर गिरजे का गम्भीर गायक मित्रोपोल्स्की पसरा हुआ सा बैठा था जो पदच्युत पादरी सा लगता था। भारी-भरकम डील डौल, गहरी और गूंजदार आवाज़, जिसकी थाह का कोई पता नहीं चलता था, सूजे हुए चेहरे में भट्टी सी बड़ी-बड़ी आंखें। उसके सामने मेज़ पर वोद्का का गिलास रखा था। गिलास पर वह एक नज़र डालता, हाथ बढ़ाकर उसे उठाता, होंठों तक ले जाता और फिर सावधानी से बिना कोई आवाज़ किए जाने किस आवेश में अछूता ही उसे मेज़ पर रख देता।

और भटियारखाने में जितने भी लोग थे, सब के सब निश्चल बैठे रहते। ऐसा मालूम होता मानो सुदूर अतीत से कोई उनकी सबसे प्रिय और सबसे घनिष्ठ स्मृतियां लौट रही हों।

गीत खत्म करने के बाद क्लेश्चोव निरीह भाव से अपने स्टूल पर ढह जाता और भटियारखाने का मालिक वोद्का से छलछलाता गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए संतोष भरी मुस्कराहट के साथ कहता:

"भाई वाह, कमाल कर दिया, हालांकि तुम्हारा गीत, गीत न होकर एक अच्छी-खासी गाथा था लेकिन हो तुम पूरे उस्ताद, इससे इनकार नहीं किया जा सकता!.."

बिना किसी उतावली के सहज भाव से क्लेश्चोव वोद्का का गिलास खाली कर देता, खखारकर अपना गला साफ़ करता और कहता:

"गाने को तो वे सभी गा सकते हैं जिनके पास गला है, लेकिन गीत की आत्मा निकालकर दिखाने की कला बस मैं ही जानता हूं।"

बस बस अब इतनी शेखी न बघारो

अपने मुंह पर माहुर वह लगाए जिसके पास शेखी बघारने के लिए कुछ न हो!" उसी धीमे स्वर में और ढीठपन का भाव लिए गायक कहता।

भटियारखाने का मालिक खीज उठता। झुंझलाकर कहता:

"क्यों, अपने को तुम बहुत ऊंचा समझते हो, क्लेश्चोव?"

"जितनी ऊंची मेरी आत्मा है, बस उतना ही। उससे ज्यादा ऊंचा मैं नहीं जा सकता..."

तभी कोने में बैठा मित्रोपोल्स्की गरज उठता:

"क्या समझते हो तुम, ओ कुलबुलाते कीड़ो, इस कुरूप फ़रिश्ते के गीतों में?"

वह हमेशा अपने सींग ताने रहता, हर किसी से टकराता, सभी के दोष निकालता और लड़ता-झगड़ता। नतीजा इसका यह कि वह हर रविवार को करीब-करीब बिला नागा गायकों या अन्य किसी से मार खाता, लोगों में से जिसका भी हाथ चलता या जो भी ऐसा करना चाहता, सहज ही उसकी मरम्मत कर देता।

भटियारखाने का मालिक क्लेश्चोव के गीतों पर तो जान देता था, लेकिन खुद क्लेश्चोव से नफ़रत करता था। वह हर किसी से उसकी शिकायत करता और प्रत्यक्षतः उसे नीचा दिखाने या उसका मजाक उड़ाने के तौर-तरीकों की टोह में रहता। भटियारखाने में आनेवाले सभी लोग जिनमें खुद क्लेश्चोव भी शामिल था, उसकी इस हरकत से परिचित थे।

"माना कि वह अच्छा गवैया है, लेकिन उसका दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। उसे थोड़ी मिट्टी की खुशबू सुंघानी चाहिए!" भटियारखाने का मालिक अपनी राय जाहिर करता।

कुछ लोग उसकी हां में हां मिलाते:

"सच कहते हो। नकचढ़ा आदमी है!"

भटियारखाने का मालिक और भी बल देता:

"समझ में नहीं आता कि इतना घमंड किस बात पर करता है। उसकी आवाज़ अच्छी है, लेकिन वह तो खुदा की देन है, उसकी अपनी घरेलू ईजाद नहीं। और सच पूछो तो उसकी आवाज़ कुछ इतनी बढ़िया भी नहीं है!"

ठीक बात है। उसकी आवाज मे इतना दम नहा है जितना कि उसे इस्तेमाल करने के उसके ढंग ने!" स्वर मे स्वर मिलानेवाले कहते।

एक दिन अपना गीत खत्म करने के बाद जब गायक भटियारखाने से चला गया तो मालिक ने लिसूखा पर जोर डालना शुरू किया.

"क्लेश्चोव पर तू ही अपना हाथ आजमा कर देख, मारिया येव्दो-कीमोव्ना, — बस, थोड़ी देर के लिए उसको उल्लू बना दे। क्यो, बनाएगी न? तेरे लिए तो यह बाएं हाथ का खेल है!"

"सो तो ठीक है। लेकिन इसके लिए किसी जवान औरत को पकडो तो अच्छा हो। मै तो अब बुढ़ा चली!" उसने हसते हुए कहा।

"जवान औरतो की बात छोड़ो!" उसने जोर दिया। "यह काम सिवा तेरे और कोई नहीं कर सकता! सच, बड़ा मजा आएगा जब वह तेरे तलुवे चाटता दिखाई देगा। बस, एक बार डोरे डालने की जरूरत है। फिर देखना तेरे प्यार मे पग कर वह कितने बढ़िया गीत गाता है! एक बार जरूर कोशिश कर, येव्दोकीमोव्ना! मै तुम्हें खुश कर दंगा।"

लेकिन उसने इनकार कर दिया। वह बैठी रही — अपने बेहिसाब मोटापे मे फूली, पलकों को झुकाए और अपनी शाल के फुन्दनों से खेलती। उचाट मन से बोली:

"तुम्हे अब किसी जवान लड़की को यहा रखना चाहिए। अगर मै जवान होती तो चाहे जिसकी नाक पकड़कर घुमा देती!.."

भटियारखाने के मालिक ने बारहा इस बात की कोशिश की कि क्लेश्चोव नशे में उल्टा हो जाए, लेकिन वह था कि दो-तीन गीत गाने और हर गीत के बाद वोद्का की परत चढ़ाने के बाद जतन से अपने गले में बुना हुआ रूमाल बांधता, उलझे हुए बालो पर अपनी टोपी जमाता और भटियारखाने से चल देता।

भटियारखाने का मालिक क्लेश्चोव को पछाड़ने के लिए बहुधा किसी न किसी गायक का पता लगाता और मुकाबिले की महफिल जमाने का मौका खोजता। ठीक उस समय जब क्लेश्चोव अपना गाना खत्म कर चुका होता और वह उसकी सराहना करके उत्तेजना मे भरा क्लेश्चोव से कहता:

"सुनो भाई, आज रात एक और गवैया यहां मौजूद है! जरा उसे भी सुनें।"

कभी-कभी नये गायक की आवाज अच्छी होती, लेकिन जिस सादगी और तन्मयता से क्लेश्चोव गाता था, वह अन्य किसी मे नहीं दिखाई देती।

भटियारखाने के मालिक को भी हारकर यह बात स्वीकार करनी पड़ती। हृदय को मसोसते हुए वह नये गायक से कहता:

"इस मे शक नहीं कि तुमने अच्छा गाया, तुम्हारी आवाज भी अच्छी है, लेकिन हृदय की धड़कन का जहां तक सवाल..."

लोग हंसकर कहते:

"लगता है कि यह जीनसाज किसी से मात नही खाएगा!"

क्लेश्चोव की लाल भौंहे थिरकती रहती। वह उनके नीचे से सबपर एक नजर डालता और भटियारखाने के मालिक से अविचलित, किन्तु नम्र स्वर मे कहता:

"चाहे तुम कितनी कोशिश करो, मेरे जोड़ का गायक नहीं पा सकते। कारण कि मेरी प्रतिभा भगवान की देन है..."

"लेकिन इससे क्या, हम सब भी तो भगवान की देन है!"

"कह दिया मैने, वोद्का पिला-पिलाकर तुम्हारा दिवाला निकल जाएगा, पर मेरी जोड़ का गायक तुम कभी नही पा सकोगे..."

भटियारखाने के मालिक का चेहरा लाल हो गया। मन ही मन बुदबुदाया:

"कौन जाने, कौन जाने..."

क्लेश्चोव उसी निश्चल अन्दाज मे कहता जाता:

"गाना मुर्गो का दगल नहीं है, यह तुम्हे मालूम होना चाहिए!.."

"हां, हां, खुद जानता हूं। तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गये?"

"मै पीछे नही पड़ रहा, मै सिर्फ़ यह साबित कर रहा हूं कि निरा हंसी-खेल का गाना, शैतान का गाना है!"

"छोड़ो यह सब! इससे कहीं अच्छा है कि कोई गीत सुनाओ!"

"गाने के लिए मैं कभी मना नही करता, सपने तक मे तैयार रहता हूं।" क्लेश्चोव सहमति प्रकट करता, और हल्की सी खखार लेकर गाना शुरू कर देता।

भटियारखाने का समूचा ओछापन, शब्दों और इरादों की समूची काई, वह सब कुछ जो छिछला और गंदगी में डूबा था, धुएं की भांति अद्भुत ढंग से गायब हो जाता और एक सर्वथा भिन्न प्रकार के जीवन की ताजगी भटियारखाने में छा जाती। ऐसा मालूम होता मानो हम सब एक नये जीवन में—अधिक निर्मल, अधिक विचारशील और प्रेम तथा संवेदन से पूर्ण जीवन में, सांस ले रहे हों।

मैं उसपर रश्क करता। मेरा रोम-रोम उसकी प्रतिभा और लोगों को अपने साथ बहा ले जानेवाली उसकी शक्ति को ललचाई हुई नजरों से देखता और कुड़भुड़ाता! और अपनी इस शक्ति से कितने अद्भुत ढंग से वह काम लेता था! इस जीनसाज के निकट पहुंचने और खूब घुल-मिलकर देर तक उससे बातें करने के लिए मेरा जी बुरी तरह ललक उठता। लेकिन उसकी पीली सी आंखों में कुछ ऐसा अजनबीपन था कि मैं उसके निकट जाने का साहस न बटोर पाता। उसकी नजर से ऐसा मालूम होता मानो किसी को नहीं देखती। इसके सिवा उसके समूचे अन्दाज में कुछ ऐसा घिनौनापन था कि मैं अचकचाकर रह जाता, हालांकि मैं उसे केवल गाने के समय ही नहीं बल्कि बाद में भी पसंद करना चाहता था। बहुत ही भोंडे ढंग से, बूढ़े आदमी की भांति, वह अपनी टोपी को आगे की ओर खींच लेता और गले के चारों ओर बड़े ही औघड़ ढंग से लाल रंग का बुना मफ़लर लपेटते हुए कहता:

"यह मफ़लर मेरी गुलाबो ने मेरे लिए बुना है..."

जब वह गाता नहीं होता तो गर्व से अपने को फुला लेता, पाला-काटी अपनी नाक को रगड़ता और बेमन से, इक्के-दुक्के शब्दों में सवालों के जवाब देकर कन्नी सी काटता। एक दिन मैं उसके पास जा बैठा। मैंने उससे कुछ पूछा। उसने मेरी ओर देखा तक नहीं और बोला:

"कान न खाओ लड़के!"

मिग्नोपोल्स्की मुझे ज्यादा अच्छा लगता। वह भटियारखाने में आता और सिर पर भारी बोझ लदे आदमी की भांति आड़े-तिरछे ढग रखता कोने में पहुंच जाता। ठोकर मारकर वह कुर्सी को एक ओर करता और धम्म से उसपर बैठ जाता। अपनी कोहनियों को वह मेज पर टिका लेता, और उसका बड़ा झबरीला सिर हथेलियों पर टिक जाता। वह मुंह से

एक शब्द न निकालता और वोद्का के दो या तीन गिलास चढ़ाकर इतने ज़ोरों से चटखारे लेता कि सब उसकी ओर देखने लगते। पलटकर वह भी उद्धत नज़र से उन्हें घूरता—ठोड़ी हथेलियों पर टिकी हुई, तमतमाए हुए गाल, और सिर की उलझी हुई लटें, घने अयाल की भांति, निहायत बेतरतीबी से चेहरे पर छाई हुईं।

एकाएक वह चीख उठता :

"इस तरह क्यों मेरी ओर घूर रहे हो? क्या दिखाई दे रहा है तुम्हें?"

"हमें एक भुतना दिखाई दे रहा!" कभी-कभी कोई जवाब देता।

कई बार ऐसा होता कि वह गुमसुम वोद्का का गिलास खाली करता और अपने भारी पांवों को घसीटते हुए गुमसुम ही चला जाता। लेकिन अनेक बार उसकी आवाज़ से भटियारखाना गूंज उठता और वह, पैगंबर के अन्दाज़ में, लोगों पर कहर बरपा करता :

"मैं प्रभु का सेवक हूं—सच्चा और कभी न भ्रष्ट होनेवाला सेवक, और इस नाते इसाइया की भांति मैं तुम्हें शाप देता हूं! नाश हो इस अरिईल नगरी का जिसमें चोर-उचक्के और कुटिल लोग घिनौनी लालसा के कीचड़ में किलबिलाते हैं। नाश हो इस धरती रूपी पोत का जो गुनाह और पाप का बोझ लादे ब्रह्माण्ड-सागर मे तैर रहा है! क्या है वह गुनाह और पाप? वह गुनाह और पाप तुम हो, जो नशे मे डूबे रहते हो, खाने की चीज़ों पर कुत्तों की भांति टूटते हो—हां तुम, इस धरती की तलछट और मोरी के कीड़ो, तुम! अन्तहीन संख्या है तुम्हारी, अरे अभिशप्तो, यह धरती तुम्हारे अवशेषों को ठुकराती है!"

उसकी आवाज़ इतने ज़ोरों से गूंजती कि खिड़कियो के शीशे तक झनझनाने लगते। यह देखकर उसके श्रोता खूब खुश होते और उसकी तारीफ़ के खूब पुल बांधते।

"बूढ़े शैतान के दम-खम तो देखो!"

उससे जान-पहचान करना आसान था। बस, उसके गले को तर करने की ज़रूरत थी। बैठते ही वह एक गिलास वोद्का और लाल मिर्च के साथ कलेजी का आर्डर देता। ये चीज़ें उसे पसंद थीं और गला फाड़ने तथा पेट की आंतें उलट-पुलट करने का मेहनताना इन्हीं चीज़ों के रूप में

वह वसूल करता था जब मैंने उससे पूछा कि कौनसी पुस्तकें मुझ पढ़नी चाहिए तो उसने चाबुक सा फटकारते हुए तुरत उत्तर दिया.

"पढ़ने की क्या जरूरत है?"

यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। उसने जब यह देखा तो कुछ मुलायम पड़ा और बुदबुदाते हुए बोला:

"कभी धर्मग्रंथ पढ़े है?"

"हां।"

"बस उन्ही ही पढ़ो। उनके बाद और कुछ पढ़ने की जरूरत नही। दुनिया का समूचा ज्ञान उनमें भरा है, केवल बछड़े के ताऊ उन्हें नही समझते – अर्थात् कोई उन्हे नहीं समझता... लेकिन तुम हो कौन – गायक हो?"

"नही।"

"क्यों नही? गाना चाहिए। इससे बढ़कर चुगद धंधा दूसरा नही मिलेगा।"

बराबर की मेज़ से किसी ने कहा:

"तब तुम क्या हुए, – तुम भी तो गायक हो न?"

"मै? – मै लोफ़र हूं। लेकिन तुम से मतलब?"

"कुछ नही।"

"वही तो। हर कोई जानता है कि तुम्हारे भेजे में कुछ नहीं है, – और न कभी कुछ होगा ही। आमीन!"

वह हरेक से – और निश्चय ही मुझसे भी – इसी अन्दाज़ में बाते करता, यह बात दूसरी है कि दो-तीन बार खिलाने-पिलाने के बाद मेरे प्रति उसका रवैया कुछ मुलायम पड़ गया था, यहां तक कि एक दिन कुछ अचरज से भरकर कहने लगा:

"जब भी मैं तुम्हे देखता हूं तो यह जानने की तबीयत होती है कि तुम कौन हो, क्या हो, और क्यों हो? यों चाहे तुम जहन्नुम में जाओ, मेरी बला से!"

क्लेरचोव के बारे में मै उसकी सच्ची राय मालूम करना चाहता था, लेकिन सफल नहीं हो सका। उसका गाना वह मुग्ध भाव से सुनता था। उसकी यह प्रसन्नता छिपी न रहती, और कभी-कभी तो मुग्ध मुस्कराहट उसके चेहरे पर खेलने लगती। लेकिन उससे रब्त-ज़ब्त बढ़ाने की वह कभी

कोशिश न करता और भद्दे तथा घृणा से भरे अन्दाज में उसका जिक्र करता :

"वह निरा गधा है! माना कि वह अपने गीतों में जान डालना जानता है और जो कुछ गाता है उसे समझता है, लेकिन इससे उसके गधा होने में कोई फर्क नहीं पड़ता!"

"क्यो?"

"इसलिए कि उसने जन्म ही इस रूप में लिया है।"

मेरा मन करता कि उससे उस समय बातें की जाएं जब कि वह नशे में न हो। लेकिन ऐसे क्षणों में वह केवल कांख-कूंख कर रह जाता, और धुंध छाई अपनी निरीह आंखों से इधर-उधर देखता रहता। किसी ने मुझे बताया था कि यह आदमी जो अब अपने जीवन के शेष दिनों को नशे में डुबाए था, कभी कजान अकादमी में पढ़ता था और मुमकिन था कि बिशप बन जाता। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और इसे एक मनगढ़न्त कहानी समझकर ठुकरा दिया। लेकिन एक दिन उससे बातें करते समय मैंने कहीं बिशप क्रिसन्फ़ का जिक्र कर दिया। सुनते ही मित्रोपोल्स्की ने अपना सिर हिलाया और बोला :

"क्रिसन्फ़? —अरे, उसे तो मैं जानता हूं। वह मेरा शिक्षक और संरक्षक था। उन दिनों मैं कजान में था,—अकादमी में। मुझे अच्छी तरह याद है। क्रिसन्फ का अर्थ है 'सुनहरा फूल'। पामवा बेरीन्दा ने झूठ नहीं लिखा था। वह क्रिसन्फ सचमुच में सुनहरा था!"

"और यह पामवा बेरीन्दा कौन था?" मैंने उससे पूछा।

लेकिन मित्रोपोल्स्की ने बात टाली। बोला :

"यह सब तुम्हें जानने की जरूरत नहीं।"

घर लौटने पर मैंने अपनी कापी निकाली और उसमें लिखा, "पामवा बेरीन्दा,—उसे जरूर पढ़ना है।" जाने क्यों, मेरे मन में यह बात समा गई थी कि पामवा बेरीन्दा में मुझे उन सब सवालों के जवाब मिल जाएंगे जो मेरे हृदय को मथ रहे थे।

अफलातूनी नामों का प्रयोग करने तथा असाधारण शब्दों का जोड़-तोड़ बैठाने का मित्रोपोल्स्की को चस्का था। मैं सुनता और उलझकर रह जाता।

"जीवन अनीसिया नहीं है," वह कहता।

'यह अनौसिया क्या बला है? मैं पूछता
"लाभदायक," वह जवाब देता और मुझे उलझन मे पड़ा देख मन ही मन प्रसन्न होता।
उसके इस तरह के शब्दो को जब मै सुनता और इसके साथ-साथ जब मैं यह सोचता कि वह अकादमी में अध्ययन कर चुका है, तो मुझपर उसका पूरा रोब छा जाता और ऐसा मालूम होता कि उसके पास ज्ञान का खजाना भरा है। मै इस खजाने की कुंजी पाना चाहता, लेकिन वह इतने अनमने और रहस्यमय ढंग से बातें करता कि मै खीज उठता। शायद मै कच्चा था, और यह नहीं जानता था कि किस तरह उस तक पहुंचना चाहिए।
जो भी हो, मेरा हृदय उसकी छाप मे अछूता नहीं बचा। नशे के अद्‌भुत जोश और पैगंबर इसाइया के अन्दाज से जब वह मानव-जाति को फटकारता और दबंग स्वर में अभिशाप देता तो मै उसे देखता ही रह जाता।
"ओह, इस धरती की गंदगी और सड़ांध!" वह दहाड़ना शुरू करता। "जहां कुटिल मौज करते है और नेक धूल चाटते हैं! जल्दी ही क़यामत का दिन आएगा और तब तुम पश्चाताप करोगे, परंतु तब समय निकल चुका होगा!"
उसका गर्जन सुनते हुए मेरी आंखों के सामने 'बहुत खूब' और धोबिन नताल्या का चित्र मूर्त हो उठता, जिसका सहज ही इतना दुखद अंत हो गया था। साथ ही मुझे रानी मार्गो की भी याद आती जिसके चारों ओर बदगोई के बगूले उड़ते थे। इस उम्र में ही मेरे पास याद करने को बहुत कुछ था...
इस आदमी के साथ मेरी संक्षिप्त जान-पहचान का अन्त भी कुछ अजीब ढंग से हुआ।
वसन्त के दिन थे। सैनिकों की छावनी के पास खेतों की ओर मै निकल गया था। वहीं उससे मेरी भेंट हो गई। अपने आप में खूब भरमाया और फूला हुआ, ऊंट की भांति गरदन हिलाता वह अकेला चला आ रहा था।
"क्या टहलने निकले हो?" उसने बैठे हुए गले से पूछा। "चलो, एक से दो तो हुए। मैं भी घूमने निकला हूं। सच कहता हूं भाई, मै रोगी हूं..."

कुछ देर तक हम चुपचाप चलते रहे। सहसा एक गढ़े के तले में एक आदमी पर नजर पड़ी। वह गढ़े की दीवार से टिका दोहरा हो गया था, और उसके कोट का कालर ऊंचा उठकर उसके एक कान को ढंके था। ऐसा मालूम होता था मानो उसने अपना कोट उतारने की कोशिश की हो और उतार न सका हो।

"यह तो नशे मे बेसुध मालूम होता है," गायक ने उसे देखने के लिए ठिठकते हुए कहा।

लेकिन कुछ ही दूर नयी उगी घास पर एक रिवाल्वर, उस आदमी की टोपी, और वोद्का की एक खुली बोतल पड़ी थी जिसकी गरदन घास मे दबी हुई थी। आदमी का चेहरा कोट के कालर में इस तरह छिपा था मानो वह शर्म से गडा जा रहा हो।

कुछ क्षण तक हम चुपचाप खड़े रहे। फिर, अपनी टांगों को चौड़ा करके धरती पर जमाते हुए, मित्रोपोल्स्की ने कहा:

"गोली मार ली है!"

मैंने तुरंत ही भांप लिया था कि यह आदमी नशे में बेसुध न होकर मरा हुआ है। लेकिन यह इतना अप्रत्याशित था कि अपने इस विचार को मैंने टिकने नहीं दिया। उसकी खोपड़ी काफ़ी बड़ी और चिकनी थी, और उसका एक कान जो नीला पड़ गया था, कोट के कालर के भीतर से झाक रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसे देखते समय मैंने न तो किसी तरह के भय का अनुभव किया, और न तरस का। मेरे लिए यह कल्पना तक करना कठिन था कि कोई ऐसा आदमी भी हो सकता है जो वसन्ती दिन के इन सुहावने क्षणों में अपनी जान लेना चाहे!

मित्रोपोल्स्की ने अपने बाल-बढ़े गालों को इस तरह तेजी से रगड़ा मानो वे ठंडा गए हों। फिर फुंकार सी छोड़ते हुए बोला:

"सठिया गया है। जरूर इसकी बीवी इसे छोड़कर भाग गई होगी, या फिर पराये धन पर हाथ साफ़ किया होगा..."

पुलिस को सूचना देने के लिए उसने मुझे तो नगर भेज दिया, और खुद गढ़े के किनारे बैठ गया। उसने अपनी टांगें नीचे गढ़े में लटका लीं और अपने झिनझिने कोट को कंधों के इर्द-गिर्द कसकर खींच लिया। पुलिस को आत्महत्या की सूचना देने के बाद मैं लपककर वापिस आ गया। तब तक गायक उस मरे हुए आदमी की बाकी बची हुई वोद्का ख़त्म कर

झुका था। मुझे देखते ही उसने वोद्का की खाली बोतल हवा मे हिलायी

"इस कम्बख्त ने ही इसकी जान ली!" उसने चिल्लाकर कहा, और बोतल को इतने जोरों से जमीन पर पटका कि वह चूर-चूर हो गई।

मेरे साथ ही साथ एक पुलिसमैन भी लपकता-झपकता आ गया। उसने गढे में झांककर देखा, अपने सिर से टोपी उतारकर मृतक के प्रति सम्मान प्रकट किया और अचकचाते हुए सलीब का चिन्ह बनाया। फिर गायक की ओर मुड़कर बोला:

"कौन है तू?"

"मै कोई भी हूं, तुमसे मतलब?.."

पुलिसमैन ने रुककर कुछ सोचा और फिर जरा विनम्र स्वर में बोला:

"जरा सोचो तो, यहां आदमी मरा हुआ पड़ा है, और तुम नशे मे धुत्त हो!"

"मैं बीस साल से नशे में धुत्त हूं!" सीने पर हाथ मारते हुए मित्रोपोल्स्की ने गर्व से कहा।

ऐसा मालूम होता था कि वोद्का पीने के अपराध में वे निश्चय ही उसके हाथों में हथकड़ी डाल देंगे। नगर से कुछ और लोग भी वहां लपक आए थे। एक घोड़ागाड़ी में पुलिस अफ़सर भी आ गया। वह गढ़े में उतरा और मृत आदमी का कोट हटाकर उसका चेहरा देखने लगा।

"इसे सबसे पहले किसने देखा था?"

"मैंने," मित्रोपोल्स्की ने जवाब दिया।

पुलिस अफसर ने उसकी ओर देखा और फिर एकाएक कंपा देनेवाले अन्दाज मे बोला:

"अच्छा, यह आप है, जनाब!"

तमाशा देखनेवाले भी घिर आए। बीस-पच्चीस से कम न होंगे। वे हांफ रहे थे और उनके हृदयों में उथल-पुथल मची थी। किनारे पर घेरा बनाए गढ़े में झांक रहे थे। तभी किसी ने चिल्लाकर कहा:

"अरे, यह तो हमारे ही मोहल्ले का क्लर्क है। मैं इसे जानता हूं।"

मित्रोपोल्स्की टोपी उतारकर अफ़सर के सामने खड़ा उचक रहा था, तू-तड़ाक में उलझा था और भर्राई हुई आवाज में चिल्ला रहा था। अफ़सर ने उसके सीने पर ऐसा आघात किया कि वह लहराकर ज़मीन पर बैठ

गया। पुलिसमन ने बिना किसी उतावली के एक रस्सा निकाला और गायक के हाथ बांध दिए जिन्हें उसने बिना किसी विरोध के कमर के पीछे कर लिया था। अफसर ने अब भीड़ की ओर रुख किया और चिल्लाकर बोला :

"भागो यहां से!"

इसी बीच पानी चूती लाल आंखों वाला एक और बूढ़ा पुलिसमैन हांफता और सांस लेने के लिए मुंह बाए भागता हुआ आया। उसने रस्से के छोरों को, जिससे गायक के हाथ कमर के पीछे बंधे थे, पकड़ा और उसे चुपचाप नगर की ओर ले चला।

पूर्णतया त्रस्त और खिन्न मैं भी वहां से चल दिया। मेरा बुरा हाल था और मेरे दिमाग़ में, हृदय को झनझना देनेवाली कौवे की कड़ी चीख की भांति, ये शब्द रह-रहकर गूंज रहे थे :

"नाश हो इस अरिईल नगरी का!.."

और उदासी से भरा वह चित्र भी मेरी कल्पना में जमकर बैठ गया जब कि पुलिसमैन ने, बिना किसी उतावली के, अपनी जेब से रस्सा निकाला और कहर बरपा करनेवाले पैगंबर ने बालदार अपने लाल हाथों को बिना किसी विरोध के चुपचाप इस तरह कमर के पीछे कर लिया मानो उसके लिए यह कोई नयी बात न हो, मानो इस क्रिया को हजारवीं बार वह दोहरा रहा हो...

शीघ्र ही मुझे पता चला कि पैगंबर को जलावतन कर दिया गया, और इसके बाद ज्यादा दिन न बीते होंगे कि क्लेश्चोव भी गायब हो गया। कोई पैसेवाली स्त्री उसके हाथ लग गई, उससे उसने शादी की और देहात में जाकर रहने लगा जहां उसने जीनसाज़ी की अपनी एक दुकान खोल ली।

...लेकिन उसके जाने से पहले मेरे मालिक ने जिसके सामने जीनसाज़ के गाने की मैं अक्सर तारीफ़ किया करता था, एक बार मुझसे कहा :

"चलकर सुनेंगे कभी..."

और एक दिन हम दोनों भटियारखाने पहुंचे। वह मेज के दूसरी ओर, ठीक मेरे सामने, बैठा था। उसकी आंखें बरबट्टा सी खुली थीं और भौंहें अचरज में कमान बनी थीं।

भटियारखाने आते समय रास्ते भर वह मुझे चिढ़ाता और कोंचता

रहा, और भटियारखाने मे पांव रखने के बाद भी वह मेरा, वहां मौजूद दूसरे लोगो का और दमघोट गंध का मजाक उड़ाता रहा। जीनसाज़ के गाना शुरू करते ही उसके चेहरे पर खिसियानी सी मुसकराहट खेल गई और वह अपने गिलास मे बीयर उंडेलने लगा। अभी गिलास आधा भरा होगा कि वह बीच में ही रुक गया और बोला:

"ऊंह... कम्बख्त जादूगर मालूम होता है!"

हौले से, और कांपते हाथ से उसने बोतल मेज पर वापस रख दी और गाना सुनने मे रम गया।

जब क्लेश्चोव गाना खत्म कर चुका तो मालिक बोला:

"सच कहता था, भई। क्या गाता है, पट्ठा, गरमी ही चढ़ गई है..."

जीनसाज़ ने एक बार फिर अपना सिर पीछे की ओर फेंका, आंखें उठाकर छत पर टिका दीं और गाना शुरू कर दिया:

धनी गांव से पगडंडो पर
चली जा रही युवती सुन्दर...

"सच, यह गाने में जान डालना जानता है," मालिक लघु हंसी हंसते और अपना सिर हिलाते हुए बुदबुदाया।

और क्लेश्चोव बांसुरी बना हुआ, गा रहा था:

मैं यतीम, फट बोली वह तो
कौन भला चाहेगा मुझ को...
कोई हेल, न मेल दिखाये
नहीं नाच में मुझे बुलाये,
नहीं युवक का हृदय लुभाऊं
निर्धन, वस्त्र कहां से लाऊं?
दासी कोई विधुर बनाये
ऐसा भाग्य न मुझे सुहाये।

"गाता क्या है, जादू बिखेरता है," अपनी लाल बनी आंखों को मिचमिचाते हुए मालिक फुसफुसाया, "सच कहता हूं, कम्बख्त जादूगर है, जादूगर!"

मेरी आंखें उसपर टिकी थी और मेरा हृदय खुशी से छलछला रहा था। गीत के उदास बोल गूंज और विजयी अन्दाज में सभी पर छा रहे थे। उनके सामने भटियारखाने की अन्य सभी आवाजें मुरझा गई थीं और उनका आवेग हर घड़ी अधिक सशक्त, अधिक सुन्दर, अधिक जानदार बनता जा रहा था।

इस पूरी बस्ती में मेरा
कोई न संगी-साथी,
सभी मनाये हंसी-खुशी,
मैं अपने पर पछताती,
भला किसी को कैसे मेरा
रूप खींच कर लायेगा,
फटे-पुराने चिथड़े मेरे,
कौन मुझे अपनायेगा!
कोई अधबूढ़ा रंडुआ ही
मुझे ब्याह ले जायेगा,
लेकिन यह दिन इस जीवन
मे कभी न आने पायेगा!

मेरा मालिक, बिना किसी झिझक या लाज के, रो रहा था। उसका सिर झुका था, हुकदार नाक जोरो से सुड़क रही थी और आंसू टपाटप आंखों से ढुरककर घुटनों पर गिर रहे थे।

तीसरे गीत के खत्म होते न होते मालिक का हृदय बुरी तरह उमड़ने-घुमड़ने लगा। बोला:

"नही भाई, मैं अब यहां नहीं बैठ सकता। मेरा तो दम घुटता है... यहां की यह कम्बख्त गंध,–चल, घर चले!.."

लेकिन बाहर सड़क पर आते ही बोला:

"शैतान उठा ले जाए इन सब को! चल पेशकोव, किसी होटल में चलकर कुछ पेट में डाल लें। घर जाने को जी नहीं चाहता!.."

किराये के लिए कोई हील-हुज्जत किए बिना ही वह एक घोड़ागाड़ी मे बैठ गया और जब तक होटल न आ गया उसी तरह गुमसुम बैठा रहा। होटल में कोने की एक मेज उसने चुनी और कुर्सी पर बैठते ही धीमे स्वर में उसने तुरंत बोलना शुरू कर दिया। रह-रहकर वह अपने चारो

ओर देखता जाता था और ऐसा मालूम होता था मानो कोई गहरा घाव फिर से हरा हो गया हो।

"उस बूढ़े बकरे ने मुझे बुरी तरह पंक्चर कर दिया... सारी हवा ही निकाल डाली और मुझे मनहूसियत के अंधे गढ़े में डाल दिया.. सुन, तू दुनिया भर की चीजें पढ़ता और जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाता है। तू ही बता कि यह कैसे हुआ? कितना लम्बा जीवन बिताया है मैंने,—पूरे चालीस साल मैंने पार किए हैं। बीवी है, बच्चे हैं. फिर भी इस दुनिया में ऐसा एक भी जीव नहीं है जिससे मैं खुलकर बातें कर सकूं! कहां, कौन है जिसके सामने हृदय उंडेला जाए, मन की एक-एक बात कही जाए? बीवी के कुछ पल्ले नहीं पड़ता, उसकी कुछ समझ में नहीं आता। और उसे समझने की गरज भी क्या है? उसके अपने बच्चे हैं... घर है, दुनिया भर का खटराग है। मेरी आत्मा से उसकी पटरी नहीं बैठती। बीवी तभी तक मित्र होती है जब तक पहला बच्चा जन्म नहीं लेता... समझा भाई, जीवन का कुछ ऐसा ही मामला है। तिस पर मेरी पत्नी,—अब तुझसे क्या कहूं, तू खुद अपनी आंखों से देखता है... न ओढ़ने के काम आए, न बिछाने के... मांस का अच्छा-खासा ढूह है, कम्बख्त! ओह भाई रे. यह मेरा ही गुर्दा है जो उसका बोझ संभाले हूं..."

उसने गिलास उठाया और ठंडी तथा कड़वी बीयर चुपचाप गले के नीचे उतार गया। फिर कुछ देर वह अपने लम्बे बालों को इधर-उधर करता रहा और अन्त में बोला:

"समझा भाई, मैं तो लोगों को—कुल मिलाकर—हरामी कुत्ता समझता हूं! मैं जानता हूं कि तू उन देहातियों से खूब बातें करता है—कभी इस चीज के बारे में और कभी उस चीज के बारे में... मैं मानता हूं—जीवन में बहुत सी चीजें हैं जो सही नहीं हैं जो कुत्सित हैं—यह भई बिल्कुल सही बात है... लोग सब के सब चोर हैं। और तू क्या समझता है कि तेरी बातों का उनपर कोई असर होता होगा? बिल्कुल नहीं। प्योत्र और ओसिप को लो,—एकदम कमीने और गए-बीते! वे तेरी एक-एक बात मुझे बताते हैं,—वे सब बातें भी जो तू मेरे बारे में कहता है... अब तू ही बता, ऐसे लोगों के बारे में तू क्या कहेगा?"

उसकी यह बात सुनकर मैं इतना सकपका गया कि मुझसे कोई जवाब देते न बना।

"देखा तूने!" मालिक ने हल्की हंसी के साथ कहा। "तेरा फ़ारस जाने का वह इरादा कुछ बुरा नहीं था। कम से कम इतना तो होता ही कि लोग क्या कहते है, इसका तुझे पता न चलता। उनकी जबान दूसरी है, जो तेरी समझ में न आती। अपनी जबान में तो सिवाय गंदगी और कुत्सा के और कुछ सुनाई नहीं देता।"

"क्या ओसिप मेरी सभी बातें आपको बता देता है?" मैंने पूछा।

"बिल्कुल। क्या तुझे अचरज होता है? वह सबसे बढ़-चढ़कर बातें बनाता है। समझा भाई, वह तो पूरी पहेली है... तेरी बातों का, पेशकोव, कोई असर नहीं होता। तू सत्य की दुहाई देता है। लेकिन सत्य सुनता कौन है? उनके सामने सत्य का राग अलापना ऐसा ही है जैसे शरद में बर्फ़, — जो कीचड़ में गिरती और पिघलती रहती है। सिवा इसके कि वह कीचड बढ़ाये उससे कोई लाभ नहीं होता। तू भाई चुप ही रहा कर."

बीयर का एक गिलास खत्म होता कि वह दूसरा उंडेलता, फिर तीसरा, और फिर चौथा। गिलासों के साथ-साथ उसके शब्दों की रफ़्तार और तीखापन बढ़ता जाता, लेकिन नशे का कोई चिन्ह न दिखाई देता।

"शब्द तराशने का काम नहीं कर सकते, चुप्पी साधे रहना बेहतर है। सच भाई, यह जीवन भी कितना सूना और उदास है... उसका वह गाना कितनी सचाई से भरा था: 'इस पूरी बस्ती मे मेरा कोई न संगी-साथी...'"

चौकन्ना सा होकर उसने अपने इधर-उधर देखा और फिर आवाज को धीमी करते हुए बोला:

"सच भाई, अधिक दिन नहीं हुए जब मुझे एक मनचीती चिड़िया दिखाई दी थी... एक विधवा थी, मतलब यह कि उसके पति को जालसाजी के अपराध में साइबेरिया जलावतन करने की सजा दी गई थी। वह अभी यहां की जेल में बंद है। हां, तो उसकी पत्नी से मेरी जान-पहचान हो गई... पैसे के नाम उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। सो उसने निश्चय किया... बस, अपने आप समझ जाओ... जोड़े मिलवानेवाली एक बुढ़िया मुझे उसके पास ले गई। मैंने उसे एक नजर

देखा, – बहुत ही प्यारी चीज थी, जवान और खूब सुन्दर, – उसके रोम-रोम से सच्चा सौन्दर्य फूटा पड़ता था! सो मैंने उसके यहां के चक्कर लगाने शुरू किए, – एक बार, दो बार, तीन बार, – और इसके बाद एक दिन मैने उससे बातें की। तुम अजब पहेली हो, – मै बोला, – तुम्हारा पति जेल में पड़ा है और तुम सीधा और कांटो भरा रास्ता न अपनाकर गुलछर्रे उड़ा रही हो। और अगर तुम्हे यही करना है तो फिर उसके साथ साइबेरिया जाने की तुम्हारी धुन के क्या मानी हं? – देखा तू ने, अपने पति के साथ वह खुद साइबेरिया जाने का भी जोड़-तोड़ बैठा रही थी... आखिर उसने मुंह खोला। जैसा भी वह है, उसने कहा, मेरे लिए बहुत है, क्योंकि मैं उससे प्यार करती हूं! कौन जाने मेरे लिए ही यह मुसीबत मोल ली हो, और उसके लिए ही मै तुम्हारे साथ इस तरह चटक-मटक रही हूं। वह कुछ रुकी और फिर बोली: उसे पैसो की जरूरत है। वह भला आदमी है, ऊंचे कुल में उसने जन्म लिया है और वैसा ही जीवन बिताने का वह आदी है। अगर मैं अकेली होती, वह बोली, तो कभी अपने दामन में दाग न लगाती। तुम भी भले आदमी हो और मुझे अच्छे भी लगते हो, वह बोली, लेकिन इस बात का आगे कभी जिक्र न करना... ओह, शैतान उठा ले जाए उसे!.. मेरे पास जो कुछ था, उसके हवाले कर दिया। अस्सी से भी कुछ ऊपर रूबल रहे होगे। मैने सब उसके सामने रख दिए। मुझे माफ करना, मेरे मुंह से निकला, अब तक जो हुआ सो हुआ, आगे मै तुम्हारे पास नहीं आ सकूगा – अगर मैं आया भी तो मेरी आत्मा मुझे चैन नहीं लेने देगी! यह कहकर मै चला आया, और बस...”

उसके बाद वह कुछ देर रुक गया और इतनी ही देर में नशा उसपर हावी हो गया। ऐसा मालूम होता था मानो वह एकबारगी ही ढह जाएगा। उसने बुदबुदाना शुरू किया:

“मै कोई छः बार उसके पास गया... तू नहीं समझ सकता, इसका क्या मतलब है! इसके बाद शायद मैंने उसके घर के छः चक्कर और लगाए होंगे... लेकिन भीतर पांव रखने का साहस नही कर सका! अब वह यहां नहीं है...”

उसने मेज पर अपने हाथ रख लिये और उंगलियो को हिलाते हुए फुसफुसाकर बोला:

"सच, भगवान से मेरी अब यही विनती है कि फिर कभी उसका सामना न करना पड़े! भगवान न करे कभी फिर उससे सामना हो जाये, हे भगवान... फिर तो बेड़ा ग़र्क़ हो जायेगा... अच्छा, चल, अब घर चलें!.."

हम बाहर निकल आए। उसके पांव डगमगा रहे थे और वह बुदबुदा रहा था:

"देखा भाई तू ने..."

उसने जो कुछ बताया, उससे मुझे अचरज नहीं हुआ। इधर कुछ दिनों से मै खुद यह अनुभव कर रहा था कि उसके साथ जरूर कोई असाधारण घटना घटी है।

लेकिन जीवन के बारे में उसके विचारों, और खास तौर पर ओसिप के बारे में उसने जो बताया था, उससे मेरा जी भारी हो गया और गहरी उदासी ने मुझे घेर लिया।

२०

मुर्दा नगर में, खाली इमारतों और दुकानों की पांतों के बीच, तीन गर्मियां बीत गईं और मैं मजदूरों की निगरानी, उनकी ओवरसीयरी का काम करता रहा। प्रत्येक शरद में वे बदनुमा पक्की दुकानों को ढहा देते और प्रत्येक वसन्त में ऐसी ही बदनुमा दुकानों को खड़ा करते।

मालिक मुझे पांच रूबल महीना देता और उनके बदले में मेरी जान तक निचोड़ने की ताक में रहता। जब किसी दुकान में नया फ़र्श बिछाना होता तो मुझे फ़र्श की करीब दो फुट गहरी मोटी तह खोदनी और मलबे की ढुवाई-सफ़ाई करनी पड़ती। आवारा लोग इस काम के लिए एक रूबल वसूल करते, लेकिन मुझे वह फूटी कौड़ी न देता। इसके सिवा फ़र्श की खुदाई-ढुवाई में फंसा रहने के कारण मै मजदूरों की निगरानी न कर पाता और वे इस मौके को गनीमत समझ दरवाज़ों के तालों और मूठों के पेच खोल उन्हे तिड़ी कर देते, और भी जो छोटी-मोटी चीज उनके हाथ में लगती उड़ा ले जाते।

मजदूर-कारीगर हों चाहे ठेकेदार, जब भी और जिस तरह भी मौका मिलता, मुझे धोखा देने से बाज न आते और क़रीब-क़रीब खुले आम

चोरी करते मानो चोरी करना उनपर लादा गया फर्ज हो और पकड़े जाने पर वे कभी गुस्सा न होते, बल्कि अचरज में भरकर कहते :

"अरे बाप रे, पांच रूबल के पीछे तू इतना हलकान होता है मानो तुझे बीस रूबल मिलते हों। देखकर हंसी आती है!"

मैं मालिक से कहता कि खुदाई-ढुवाई के काम में मुझे फसाने से बचत तो केवल एकाध रूबल की ही होती है, लेकिन इससे कहीं ज्यादा का माल चोरी चला जाता है। लेकिन वह आंख मारकर बोलता :

"ठीक है, ठीक है, बने जा!"

यह ताड़ना कुछ कठिन नहीं था कि वह मुझे भी चोरों का ही मौसेरा भाई समझता है। इससे उसके प्रति मेरी घृणा और भी बढ़ गई लेकिन मैंने अपमानित अनुभव नहीं किया : सारा आवा ही ऐसा था। हर कोई चोरी करता, और खुद मेरा मालिक भी दूसरों की सम्पत्ति हड़पने से जरा आना-कानी नहीं करता।

मेला उठ जाने पर वह मरम्मत के लिए ली दुकानों का चक्कर लगाता। दुकानदार अक्सर अपनी चीजें भूल जाते और समोवार, तश्तरियां, कालीन, कैंचियां और सामान की पेटी या सामान का एकाध टुकड़ा तक छोड़ जाते। वह इन चीजों को देखता और लघु हंसी हंसते हुए कहता :

"इन चीजों की सूची तैयार करके इन्हें गोदाम में पहुंचा देना!"

गोदाम में से कितनी ही चीजें उठवाकर वह अपने घर ले जाता और मुझसे कई बार नई सूची बनवाता।

चीजें जमा करने और उन्हें अपनी मिल्कियत बनाने का मेरे मन में न कोई चाव था, न मोह। पुस्तकें तक मुझे बोझ मालूम होती थीं। मेरे पास केवल दो ही थीं—एक बेरांजे की कविताओं का छोटा सा संग्रह, और दूसरा हाइने की कविताओं का संग्रह। पुश्किन की कविताओं का संग्रह भी मैं खरीदना चाहता था, लेकिन नगर में पुरानी किताबों की एक मात्र दुकान का चिड़चिड़ा मालिक उसके बहुत ज्यादा दाम मांगता था। मेज-कुर्सियों, कालीनों, आईनों और ऐसी ही दूसरी चीजों से, जिनसे मालिक का घर अटा पड़ा था, मुझे घृणा थी। उनके भारी-भरकम आकार-प्रकार तथा रंगों और वार्निश की गंध से मेरा जी भन्ना जाता। मालिक के कमरे मुझे आम तौर पर अच्छे नहीं लगते, उन्हें देखकर मुझे दुनिया भर के कूड़ा-कबाड़ तथा लोहा-लंगड़ से भरे बक्सों की याद हो

आती। लेकिन मेरा मालिक था कि उसका मन न भरता और दूसरों की चीजें ला-लाकर अपने चारों ओर अच्छा खासा कबाड़ जमा करता रहता। यह मुझे और भी ज्यादा घिनौना मालूम होता। यों तो रानी मार्गो के कमरों मे भी फर्नीचर की भरमार थी, लेकिन वह कम से कम देखने में सुन्दर तो था।

खुद जीवन भी मुझे ऐसा ही मालूम होता,—असम्बद्ध, बेडौल, बेतुकी और बेमानी चीजों से बुरी तरह अटा हुआ। दूर जाने की जरूरत नही। यहीं देखिये। दुकानों की मरम्मत हो रही है, उनकी तोड़-फोड़ ठीक की जा रही है। वसन्त मे बाढ़ आएगी और सारी मेहनत पर पानी फेर देगी। फ़र्श उचक आएंगे, बाहर के दरवाजे ख़राब हो जाएगे। बाढ़ उतरने के बाद शहतीर गल-सड़ जाएंगे। वर्ष प्रति वर्ष बीसियो साल से, यही सिलसिला चला आ रहा है। मेले का मैदान बाढ़ के पानी से भर जाता है, इमारतो और दुकानों को चौपट कर देता है, पटरियां और रास्ते सब एकाकार हो जाते है। इन वार्षिक बाढ़ो से लाखों का नुकसान होता है और सभी जानते है कि ये बाढें अपने आप कभी बंद नहीं होंगी।

आए साल नदी का पानी जाड़ों में जमकर बर्फ़ हो जाता, वसन्त मे यह बर्फ तड़कती और बजरों तथा बीसियो डोंगियो को चकनाचूर कर अपने साथ बहा ले जाती। लोग यह सब देखते, आहें भरते और कराहते, नयी डोंगियां बनाते जिन्हें अगले साल फिर इसी प्रकार नष्ट होना पड़ता। यह एक ऐसा कुत्सित चक्र था जो खत्म होने में न आता था, जिसे खत्म करने की बात तक कोई नही सोचता था!

जब ओसिप से मैंने इसका जिक्र किया तो उसने अचरज से मेरी ओर देखा, फिर खिल्ली सी उड़ाते हुए बोला:

"वाह रे चूजे, क्या चोंच मारी है! तुझे इस सब से क्या लेना-देना है? तुझे इससे क्या मतलब?"

इसके बाद उसका स्वर कुछ गम्भीर हो गया, लेकिन उसकी आंखों में खिल्ली की चमक फिर भी बनी रही। उसकी आंखे नीली थीं, और इस उम्र में भी उनमें कुछ इतना निखार था कि देखकर अचरज होता था।

"लेकिन है तू होशियार!" उसने कहा, "हो सकता है कि यह तेरी एक बेकार की आदत सिद्ध हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि आगे चलकर वह तेरे काम आए। तू एक बात और देख..."

और उसने रूख और तटस्थ अन्दाज मे छोटे-छोटे शब्दो टकसाली मुहाविरो और कहावतें चकित कर देनेवाली उपमाओ और चुटकियो की झड़ी लगा दी :

"लोग रोते-झींकते और तोबा-तिल्ला मचाते है कि हमारे पास जमीन नही है, वोल्गा है कि हर साल वसंत मे फनफनाती और तटो को काटकर मनों मिट्टी बीच धारा में बहा ले जाती है। यह मिट्टी नीचे तलहटी में जम जाती है। तब दूसरी जगह के लोग चिल्लाते है कि वोल्गा छिछली हो गई। फिर वसन्त मे बर्फ पिघलने से आनेवाली बाढ़ और ग्रीष्म की बारिशे जमीन में खाइयां बनाती और नालियां काटती है, और वोल्गा उसे फिर हड़पकर जाती है!"

वह एकदम निस्संग होकर बातें कर रहा था। उसके स्वर मे न विक्षोभ का भाव था, न किसी प्रकार की शिकायत का। मानो उसका रोम-रोम जीवन के खिलाफ़ शिकवा-शिकायतो के बारे में अपनी इस जानकारी पर गर्व और सन्तोष से छलछला रहा हो। उसके शब्दो मे सचाई थी, मेरे विचारो से वे मेल खाते थे, फिर भी उन्हें सुनना मुझे अप्रिय लगता था।

"या फिर एक दूसरी चीज को लो—आग लगने को..."

मै जानता था कि एक भी गर्मी ऐसी नहीं बीतती जब वोल्गा पार के जंगलो में आग न लगती हो। आए साल बिला नागा हर जुलाई में आसमान मटमैले पीले धुएं से ढक जाता और नीचे झुका हुआ किरणविहीन सूरज दुखती हुई आंख की भांति धरती की ओर देखता रहता।

"जंगल... उनकी बात छोड़!" ओसिप कहता। "जंगलों पर या तो ज़ार का अधिकार होता है या कुलीनों का, देहातिये जंगलों के मालिक नहीं होते। जब नगर जलकर राख हो जाते है तो यह भी कोई बड़ी मुसीबत नहीं है—नगरों में अमीर रहते हैं, और अमीरों पर तरस खाने मे कोई तुक नहीं दिखाई देती! असल मुसीबत तो तब होती है जब कस्बों और गांवों मे आग लगती है। हर साल, और कुछ नहीं तो सौ-एक गांव जल जाते हैं, यही असली मुसीबत है!"

वह दबी सी हंसी हंसता और कहता :

"माल है, पर संभाल नहीं है! एक तू और मै यह देख पाते है कि

इन्सान की मेहनत का लाभ न उसे मिलता है न धरती को पानी और आग उसे चटकर जाते हैं!"

"लेकिन इसमे हंसने की क्या बात है?"

"क्यों नही?" वह कहता। "आंसुओ से आग नही बुझाई जा सकती, केवल बाढ़ बढ़ेगी!"

मेरे मन में यह बात जमकर बैठ गयी कि अब तक जितने भी लोगों से मै मिला हूं, उनमें यह सलौना बूढा सबसे ज्यादा समझदार और बुद्धि का धनी है। लेकिन, बहुत कोशिश करने पर भी, मैं यह नही पकड़ सका कि क्या उसे पसंद है, और क्या नहीं।

मै इसी उधेड़-बुन में फंसा रहता और उसके शब्द, जलती आग में सूखी खपच्चियों की भांति, आ-आकर गिरते रहते:

"देख न, लोग किस तरह शक्ति बरबाद करते है,—अपनी भी, और दूसरो की भी। खुद अपने मालिक को ही ले जो घुन की भांति तुम्हारी शक्ति बरबाद करने में जुटा है। या फिर वोद्का को ले। एक अकेली वोद्का इतनी शक्ति बरबाद करती है कि बड़े से बड़े दिमाग़दार भी उसका हिसाब नही लगा सकते! अगर कोई झोंपड़ा जल जाए तो उसकी जगह दूसरा बना सकते है। लेकिन जब इन्सान धूल में मिलता है तो यह नुकसान पूरा नही हो सकता! मिसाल के लिए अपने अरदाल्योन या ग्रिगोरी को ही ले। कोई कल्पना तक नहीं कर सकता था कि यह देहातिया इस तरह धुआं बनकर उड़ जाएगा! माना कि वह ग्रिगोरी कोई ज्यादा अक्लमंद देहातिया नहीं था, लेकिन उसके पास हृदय था! वह एक ही लपक में उड़ गया, मानो हाड-मांस का पुतला न होकर घास-फूस का ढेर हो,—चिंगारी पड़ी नहीं कि यह जा, वह जा। औरतें उसे इस तरह चटकर गईं जैसे कीड़े लाश को चट कर जाते है।"

"लेकिन यह तो बताओ," बिना किसी कठोर भावना के, केवल कौतुकवश मैने उससे पूछा, "कि मेरी सारी बातें तुम मालिक के सामने जाकर क्यो उगल देते हो?"

और उसने बहुत ही सादगी से, बल्कि कहना चाहिए कि हार्दिकता से, जवाब दिया:

"वह तेरा मालिक है। उसे सब मालूम होना चाहिए कि तेरे दिमाग़ मे क्या-क्या फ़तूर भरे है। अगर वह तुझे ठीक नही कर सकता तो और

कौन करेगा ? किसी बुरी नीयत से नहीं तेरे भले के लिए ही मैं सारी बातें उसे बताता था। वैसे तू समझदार है, लेकिन तेरी खोपड़ी में शैतान बैठा है। वह तेरे दिमाग में दुनिया भर की उल्टी-सीधी बातें फूंकता रहता है। अगर तूने चोरी की होती तो मैं एक शब्द भी उसके बारे में न कहता, अगर तू लड़कियों के पीछे भागता, तब भी मैं न बोलता। और अगर तू कहीं से नशे में धुत्त होकर आए तब भी निश्चय जानो मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगा। लेकिन तेरे इन दिमागी फितूरों को मैं नहीं बख्श सकता। उनके बारे में मैं जरूर कहूंगा। यह बात आज मैं तुझे भी खोलकर कहे देता हूं..."

"मैं तुमसे कभी बातें नहीं करूंगा!"

कुछ क्षण वह चुप रहा और अपनी हथेली में चिपके कोलतार को खुरचकर छुड़ाता रहा। इसके बाद चाव भरी नजर से मेरी ओर देखते हुए बोला :

"यह निरी बकवास है। तू मुझसे बातें करेगा, और जरूर करेगा। नहीं तो और कौन है जिससे तू यहां बातें कर सकता है? कोई नहीं! ."

खूब साफ़-सुथरा होने पर भी इस समय ओसिप जहाजी याकोव की भांति मालूम होता, – हर चीज और हर व्यक्ति से उतना ही अलग और बेपरवाह।

कभी उसे देखकर मुझे पारखी प्योत्र वासील्येविच की याद हो आती, और कभी कोचवान प्योत्र की, और कभी-कभी मुझे उसमें अपने नाना की हुशियारी दिखाई देती, – किसी न किसी रूप में उसमें उन सभी वृद्ध लोगों का कोई न कोई अंश मालूम होता जिनसे कि अब तक मेरा वास्ता पड़ चुका था। ये वृद्ध लोग, सब के सब बहुत ही दिलचस्प थे, परन्तु मैं यह भी देख रहा था कि उनके साथ जीना नामुमकिन है – जिंदगी घिनौनी और कठिन होती। वे मानो आत्मा और हृदय में घुन की भांति प्रवेश करते जा रहे हों। क्या ओसिप भला आदमी था? – नहीं। क्या वह बुरा आदमी था? – नहीं। लेकिन वह चतुर था, यह साफ़ मालूम होता था। उसकी गहरी सूझ-बूझ चकित कर देनेवाली थी, लेकिन उसके सोचने का ढंग मुझे सुन्न और निर्जीव बनाता था, और अन्ततः मुझे यह अनुभव होने लगा कि मेरा जो अपना सोचने का ढंग है, उसकी जड़ पर वह कुठाराघात करता है।

निराशा के अंध कुएं में डाल देनेवाले विचार सपोलियों की भांति मेरे हृदय में रेंगने लगते

"सभी लोग एक-दूसरे के दुश्मन हैं, एक-दूसरे को देखकर उनका मुसकराना झूठ है, मीठे शब्दों की बौछार करना झूठ है। यह सब ऊपरी दिखावा है, लेकिन सच पूछो तो उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो प्रेम के दृढ नाते से जीवन के साथ बंधा हो, जो सचमुच में जीवन से प्रेम करता हो। नानी को छोड़ अन्य कोई सच्चे मानी में जीवन तथा लोगों से प्रेम नहीं करता। नानी, और रानी मार्गो—विधाता की वह अद्भुत रचना!"

कभी-कभी ये और इसी तरह के अन्य विचार काले बादलों का रूप धारण कर हृदय और मस्तिष्क पर छा जाते, जीवन को आह्लादविहीन और दमघोट बना देते। परंतु और कैसे जिया जाये, कहां जाया जाये? यहां तक कि, ओसिप को छोड़, ऐसा अन्य कोई नहीं था जिससे मैं बातें कर सकता। और घूम-फिरकर मैं उसी से बातें करता।

मैं उसके सामने अपना हृदय उंडेल देता। मेरी व्यग्र बातों को वह मन लगाकर सुनता, बीच-बीच में सवाल पूछता और खोद-खोदकर सभी कुछ मालूम कर लेता। अन्त में शान्त भाव से कहता:

"कठफोड़वा भी अपनी लगन का पक्का होता है,—एकदम जिद्दी और ढीठ। लेकिन उसे देखकर किसी को डर नहीं लगता! अगर मेरी सच्ची सलाह माने तो किसी मठ में भर्ती हो जा। वहीं रहकर अपने बाल पकाना और मीठे शब्दों से भक्तों के हृदयों पर मरहम लगाना। इससे तेरे दिमाग को शांति मिलेगी, पादरियों तथा ईसाई साधुओं की जेब गर्म होगी! सच, अपने समूचे हृदय से मैं तुझे यह सलाह देता हूं। दुनियादारी के काम तो तेरे बस के नहीं लगते..."

मठ में प्रवेश करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता मानो मैं समझ में न आनेवाली बातों की किसी अंधी भूलभुलैयां में फंस गया हूं। मेरा हृदय इससे छुटकारा पाने के लिए छटपटाता। जीवन मानो शरद ऋतु में खुमियों से विहीन जंगल के समान था, एक ऐसा शून्य जिसका हर मोड़ और कोना मेरा खूब जाना-पहचाना था और जिसमें कोई काम नजर नहीं आता था।

मैं न तो वोद्का पीता था, न लड़कियों पर डोरे डालता था। आत्मा और हृदय को मगन रखने के इन दो साधनों का स्थान पुस्तकों ने

ले लिया था लेकिन जितना ही अधिक मै पढता उतना ही अधिक ऐसा सूना और बेमतलब का जीवन जीना कठिन होता जाता जैसा मुझे लगता था कि अधिकतर लोग जी रहे हैं।

अभी सोलहवें वर्ष मे ही मैंने पांव रखा था, लेकिन कभी-कभी मालूम ऐसा होता मानो मै काफी बूढ़ा हो गया हूं। जीवन में इतना कुछ मैंने देखा और भुगता था और इतना कुछ मैंने पढा और बेचैनी के साथ सोचा-विचारा था कि मुझे अपना अंतर भारी हो गया मालूम होता था। मेरे दिमाग़ का कोठा उस अंधे गोदाम की भांति था जिसमे दुनिया भर की चीज़ें भरी थीं जिन्हे छांटने और करीने से रखने की न तो मुझमे सकत थी और न योग्यता ही।

छापो का बोझ और बहुलता स्थिरता प्रदान करने के बजाय मुझे और भी विचलित कर देती और मै उसी प्रकार डोलने तथा छपाके खाने लगता जैसे कि धचकोले लगने पर पात्र मे पानी हिलता और छपछपाता है।

रोने-झींकने और शिकवा-शिकायत से, दु:ख-दर्द और बीमारी-चकारी से मुझे नफ़रत थी और बर्बरता के—खून-खराबी, मार-पीट, यहां तक कि जबानी गाली-गलौज के भी—दृश्य सहज ही मुझे भन्ना देते, हृदय में ठंडे गुस्से की एक आग भड़क उठती, जगली जन्तु की भांति मरने-मारने के लिए मै तैयार हो जाता और बाद मे अदबदाकर अपने किए पर बुरी तरह पछताता।

अनेक बार ऐसा होता कि जुल्म करनेवाले की चमड़ी उधेड़ने की अदम्य इच्छा भूत की भांति मेरे सिर पर सवार हो जाती, आंखें बंद कर मै बीच मंझधार में कूद पड़ता और अच्छी खासी लड़ाई में फंस जाता। गहरी और पंगु निराशा तथा खीज और झुंझलाहट से उपजे अपने उन विस्फोटो की आज दिन भी जब मैं याद करता हूं तो मेरा हृदय शर्म और शोक की भावना में डूबने-उतराने लगता है।

ऐसा मालूम होता था मानो मेरे भीतर दो जीव निवास करते हो: एक वह जो जरूरत से ज्यादा गंदगी और घिनौनेपन में से गुज़रने के बाद अब कुछ दब्बू हो गया था। जीवन की भयानक घिसघिस ने उसे संदेहशील और अविश्वासी बना दिया था और सभी लोगों को—खुद अपने आपको भी—असहाय तरस की नजर से वह देखता था। नगरों और लोगो से दूर वह एक शान्त और अवकाश-प्राप्त जीवन बिताना चाहता।

कभी वह फ़रस जाने के सपने देखता कभी मठ मे शरण लेने की बात सोचता कभी वह जगने के चौकीदार या रेलवे के संतरी की झोपड़ी मे जाकर रहने अथवा नगर से बाहर किसी उपबस्ती में जाकर रात का पहरेदार बनना चाहता। लोगो से कम से कम मिलना और उनसे अधिक दूर रहना जैसे उसके जीवन का लक्ष्य था...

दूसरा जीव जो मुझ में निवास करता था, वह इससे भिन्न था। समझ और सचाई से भरी पुस्तकों की पवित्र भावना उसके रोम-रोम मे बसी थी। वह जानता और हर क्षण अनुभव करता था कि जीवन की यह भयानक घिसघिस पूरी निर्ममता से या तो उसका सिर धड़ से अलग कर देगी या अपने भयानक पांवों से उसे कुचलकर रख देगी। इससे बचने के लिए वह अपनी समूची शक्ति बटोरता, दांतों को भीचकर और मुट्ठियों को कसकर घूंसों या बातो की लड़ाई में कूदने के लिए सदा तैयार रहता। अपने प्रेम और तरस की भावना को वह अमल में व्यक्त करता और फ़ासीसी उपन्यासों के वीर नायकों की भांति, जरा सा भी उकसावा मिलने पर, अपनी तलवार म्यान से बाहर निकालता और टूट पड़ने की मुद्रा मे तनकर खड़ा हो जाता।

उन दिनो एक आदमी से मेरी कट्टर दुश्मनी थी। वह मालाया पोक्रोव्स्काया सड़क के एक बेसवाघर का जमादार था। एक दिन अनायास ही पहली बार मेरी उससे मुठभेड़ हो गई। सुबह का वक़्त था। मै मेले की ओर अपने काम पर जा रहा था और वह नशे में बेहाल एक लड़की को गाड़ी में से खींचकर बाहर निकाल रहा था। वह उसकी टांगें पकड़े था और बहुत ही गंदे ढंग से झटके दे रहा था। झटकों से लड़की की टांगों के मोजे खिसक आए थे, घाघरा उलट गया था और वह कमर तक नंगी दिखाई दे रही थी। हर झटके के साथ वह मुंह से बेहूदा आवाज करता था, हंसता था और उसके बदन पर थूकता जाता था। बेसुध और लस्तपस्त लड़की, जिसका मुंह खुला हुआ था, हर झटके के साथ नीचे खिसकती आती थी। उसकी ढीली और बेजान बांहें, जो अपने कोटरों से बाहर निकल आई मालूम होती थीं, सिर के ऊपर सीधी फैली थी और बदन के साथ-साथ नीचे खिसकती जाती थीं। उसकी पीठ, सिर, उसका नीला चेहरा पहले गाड़ी की सीट, इसके बाद पायदान से टकराए, आखिर में उसका सिर पत्थरों से जा टकराया और वह सड़क पर आ गिरी।

कोचवान ने अपना हण्टर फटकारा और उसका घोड़ा गाड़ी को लेकर हवा हो गया। जमादार ने लड़की की टांगों को उठाया और उलटे क़दम चलते हुए लाश की तरह उसे पटरी की ओर खींचता ले चला। गुस्से मे पागल हो मैं उसपर झपटा। ग़नीमत यही थी कि सात-फुटी साधनी, जिसे मै अपने हाथ में लिये था, या तो सयोगवश छूटकर गिर पड़ी थी या सुध न रहने के कारण खुद मैने ही उसे फेक दिया था। नही तो वह शायद जीवित न बचता और बाद मे मैं भी फंसा-फंसा फिरता। खाली हाथों ही मै तेजी से लपका और टक्कर मारकर मैने उसे गिरा दिया। इसके बाद उछलकर मै ओसारे पर चढ़ गया और घबराहट मे खूब जोरो से मैने घंटी बजाई। घंटी की आवाज़ सुन जगली शक्ल-सूरत वाले कुछ लोग भागे हुए बाहर आए। मै उन्हे कुछ समझा नही सका, जैसे-तैसे मैने अपनी साधनी उठाई और नौ-दो ग्यारह हो गया।

नदी की ढलान पर जब मै पहुंचा तो वह कोचवान मुझे दिखायी दिया जिसकी गाड़ी में लड़की पड़ी हुई थी। कोचवान की अपनी ऊंची सीट से उसने मेरी ओर देखा और सराहना के भाव में गरदन हिलाते हुए बोला:

"खूब मरम्मत की!"

झुंझलाहट में भरकर मैंने उससे पूछा:

"लेकिन तुम अपनी कहो। लड़की तुम्हारी गाडी मे सवार थी। लड़की के साथ इतनी बेशर्मी का सलूक करने पर तुमने जमादार को रोका क्यों नहीं?"

"लड़की के साथ चाहे जैसा सलूक हो, मेरी बला से!" उसने अविचलित उपेक्षा से कहा, "अच्छे-खासे शरीफ़जादे लड़की को मेरी गाडी में डाल गए और किराया दे गए। कौन किसको पीटता है, इससे मेरा क्या मतलब!"

"अगर वह उसे मार डालता तो?"

"नहीं, उस जैसी लड़कियों की जान इतनी कच्ची नहीं होती!" उसने यो कहा मानो कई बार नशे में धुत्त लड़कियो को मारने की कोशिश कर चुका हो।

इसके बाद क़रीब-क़रीब रोज़ ही सुबह के वक़्त जमादार से मेरी मुठभेड़ होती। जब मैं बाज़ार में से गुज़रता तो वह सड़क पर झाड़ू देता या ओसारे की सीढ़ियों पर इस तरह बैठा हुआ दिखाई देता मानो मेरा

ही इन्तजार कर रहा हो मझे निकट आता देख वह अपनी आस्तीन चढ़ा लेता और घूंसा दिखाते हुए कहता :

"अगर तेरा तोबड़ा सीधा न कर दिया तो मेरा नाम नहीं!"

उसकी उम्र चालीस से कुछ ऊपर थी। नाटा कद, टांगे कमान की भांति बाहर को ओर निकली हुई। और गर्भवती स्त्रियों की भांति मटका सा पेट। हल्की हंसी हंसते हुए वह अपनी चमकती आंखों से मेरी ओर देखता, और मुझे यह देखकर अचरज होता, बल्कि डर सा लगने लगता कि उसकी आंखो मे मस्ती और हार्दिकता भरी है। लड़ने में वह तेज नहीं था, और उसकी बांहे मेरे मुकाबले में काफ़ी छोटी थीं। दो या तीन धौल के बाद ही उसके छक्के छूट जाते, फाटक से वह सट जाता और अचरज मे मुंह बाए हांफता हुआ कहता :

"जरा ठहर, अभी तुझे ठिकाने लगाता हूं!.."

उसके साथ लड़ने में कोई मजा नहीं था। जल्दी ही मै उकता गया, और एक दिन मैंने उससे कहा :

"सुन, भोंदू महाराज, भगवान के वास्ते मेरा पीछा छोड़!"

"तू क्यो लड़ता है?" उसने शिकायत भरे स्वर में पूछा।

मैंने लड़की के साथ उसकी बदसलूकी का जिक्र किया। सुनकर बोला :

"तो इससे क्या? तुझे क्या उसपर तरस आता है?"

"बेशक!"

एक क्षण के लिए वह खमोश रहा, अपने होंठों को उसने साफ़ किया और बोला :

"क्या तुझे बिल्ली पर भी तरस आता है?"

"हां..."

"तब तू निरा बुद्धू है, और साथ ही झूठा भी। कोई बात नहीं, मै तुझे चखाऊंगा..."

लम्बे चक्कर से बचने के लिए मै इस बाजार मे से होकर अपने काम पर जाता था। जमादार से मुठभेड़ न हो, इस लिए मैं अब जल्दी उठता और अपने काम पर चल देता। लेकिन, मेरी इन कोशिशों के बावजूद, कुछ दिन बाद ही वह मुझे फिर दिखाई दे गया। वह सीढ़ियों पर बैठा था और अपनी गोद में एक बिल्ली लिए उसे थपथपा रहा था। जब मै उससे तीन डग दूर रह गया तो वह उछलकर खड़ा हो गया, पिछली

टांगों से पकड़कर बिल्ली को उसने उठाया, और पत्थर के पीढ़ पर इतने जोरों से उसका सिर दे मारा कि उसके गर्म खून के छींटों से मैं लथपथ हो गया। इसके बाद चिथड़ा हुई बिल्ली को उसने मेरे पांवों पर पटक दिया और फिर फाटक पर खड़ा होकर कहने लगा:

"अब बोल, क्या कहता है?"

मै क्या कहता! कुत्तों की भांति हम दोनों एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो गए और अहाते मे लुढ़कने-पुढ़कने लगे। बाद मे, दु:ख और वेदना से सन्न हो, सड़क के किनारे उगे झाड़-झंखाड़ मे बैठकर मैं अपने होंठ काटने लगा ताकि मेरी रुलाई न फूट पड़े, मैं चिल्ला न उठूं। इस घटना की याद करते हुए मेरा हृदय आज भी दर्दनाक घृणा से कांप उठता है और अचरज होता है कि मै पागल क्यों नहीं हो गया, या मैंने किसी की हत्या क्यों नही कर डाली।

क्या यह जरूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाए? हां, यह जरूरी है! यह इसलिये जरूरी है श्रीमान, कि आप धोखे मे न रहें, कहीं यह न समझने लगे कि इस तरह की बातें केवल बीते ज़माने में हुआ करती थीं! आज दिन भी आप मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते है, सुन्दर ढंग से लिखी भयानक कहानियां और किस्से पढ़ने में आपको आनंद आता है। रोंगटे खड़े कर देनेवाली कल्पनाओं से अपने हृदय को सनसनाने तथा गुदगुदाने से आप जरा भी परहेज नहीं करते। लेकिन मै सच्ची भयानकताओं से परिचित हूं,—आए दिन के जीवन की भयानकताओं से, और यह मेरा अवंचनीय अधिकार है कि इनका वर्णन करके आपके हृदयों को मै कुरेदूं, उनमें चुभन पैदा करूं ताकि आपको ठीक-ठीक पता चल जाए कि किस दुनिया में और किस तरह का आप जीवन बिताते है।

कमीना और गन्दगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं। यही सारी बात है!

मै मानव-जाति से प्रेम करता हूं और चाहता हूं कि उसे किसी भी तरह से दु:ख न पहुंचाऊं, परंतु इसके लिए न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिए और न ही चमकीले शब्द-जाल और खूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिए! जरूरी

है कि हम जीवन की ओर मुंह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उंडेल दें।

...स्त्रियों के साथ जिस तरह का व्यवहार लोग करते थे, उसे देखकर मै खास तौर से विक्षुब्ध हो उठता और मेरा हृदय तिलमिलाने लगता। पुस्तकों ने मुझे सिखाया था कि जीवन की सबसे सुन्दर या अर्थपूर्ण देन अगर कोई है तो स्त्री। मां मरियम और बुद्धि की देवी वसिलीसा की जो कहानियां मैंने नानी से सुनी थीं, वे भी इसकी पुष्टि करती थी। अभागी धोबिन नताल्या का जीवन उसकी एक सजीव मिसाल था। इसके अलावा उन सैकड़ों और हजारों मुसकराहटों तथा कनखियों मे भी एक इसी सत्य की झांकी मिलती थी जिनसे कि स्त्रियां, जीवन को जन्म देने वाली माताएं आह्लाद और प्रेम से बुरी तरह शून्य इस धरती पर आए दिन स्वर्ग और सौन्दर्य की अवतारणा करती हैं।

तुर्गेनेव की पुस्तकों के पन्ने स्त्रियों के गौरव की लालिमा से रंगे थे, और स्त्रियों के बारे में जो कुछ भी अच्छा मै जानता था, उससे मै अपने मन में बसी रानी मार्गो की प्रतिमा को सजाता; तुर्गेनेव और हाइने ने इसके लिए मुझे अनेको बहुमूल्य रत्न दिये।

मेले से घर लौटते समय मै पहाड़ी पर क्रेमलिन की दीवार के पास अक्सर खड़ा हो जाता और सांझ के सूरज को आकाश से नीचे उतरकर वोल्गा की गोद में लीन होते देखता। ऐसा मालूम होता मानो आकाश में तरल अग्नि की नदियां फूट निकली हों। इस धरती की प्यारी नदी वोल्गा का पानी गहरी गुलाबी आभा से दमकता जिसपर छाया की परतें चढ़ती जातीं। ऐसे क्षणो में कभी-कभी मुझे लगता मानो यह धरती एक भीमाकार बजरा है जो जलावतनी की सजा पाए बन्दियों को लिए किसी अज्ञात दिशा में जा रहा है, वह कोई भीमाकार सूअर जैसी लगती है जिसे अदृश्य जहाज अलस भाव से कहीं खींचे लिए जा रहा है।

लेकिन अधिक अक्सर मेरी कल्पना मे धरती की व्यापकता का चित्र मूर्त्त हो उठता, उन दूसरे नगरों और शहरों का मुझे ख्याल आता जिनके बारे में मैं पुस्तकों में पढ़ चुका था, और उन अजनबी देशों के बारे मे मै सोचता जिनके निवासी भिन्न प्रकार का जीवन बिताते थे। विदेशी लेखकों की पुस्तकों में जीवन का जो चित्र मै देखता था वह कहीं ज्यादा साफ़-सुथरा और रमणीय तथा उस जीवन से कहीं कम बोझिल और कम

दमघोट था जिसे मैं अपने चारो ओर अलस और एक-रस गति से उबलता देखता था। इससे मेरी आशंकाओं को अपने पंजे फलाने का मौका न मिलता और रह-रहकर यह अदम्य आकांक्षा मेरे हृदय में सिर उभारती कि जीवन का इससे अच्छा ढंग और ढब हो सकता है।

और मैं नित्य यह सोचता कि एक दिन किसी ऐसे बुद्धिमान और सीधे-सादे व्यक्ति का मेरे जीवन में प्रवेश होगा जो मुझे इस दलदल से उबारकर प्रशस्त और उज्ज्वल राजपथ की राह दिखाएगा।

एक दिन क्रेमलिन की दीवार के पास मै एक बेंच पर बैठा था। तभी मामा याकोव भी वहां आ निकला। मै कुछ अपने ही ध्यान में मगन था। न मैंने उसे आते देखा, और न मै उसे तुरंत पहचान ही सका। हालाकि एक ही नगर में हम कई साल से रह रहे थे, लेकिन हम बिरले ही मिलते थे, सो भी थोड़ी देर के लिए, योंही भूले-भटके, निरे संयोगवश।

"अरे, तेरे तो खूब बाल-पर निकल आए है!" उसने हंसी में मुझे कोहनियाते हुए कहा और दोनो इस तरह घुल-मिलकर बाते करने लगे मानो हम मामा-भानजा न होकर पुराने जान-पहचानी हों।

नानी से मुझे पता चला था कि मामा याकोव ने अपनी सारी पूंजी फूंक-फांककर बर्बाद कर दी है। कुछ दिनो तक उसने जलावतनी कैदियों के पड़ाव में वार्डर के नायब की जगह पर काम किया, लेकिन यह नौकरी चली नहीं और एक दुःखद घटना के साथ उसका अन्त हो गया। हुआ यह कि वार्डर बीमार पड़ गया और उसकी गैरहाजिरी में मामा याकोव को खुलकर खेलने का मौका मिला। अपने घर पर वह बन्दियो को जमा करते, पीते-पिलाते और खूब हुड़दंग मचाते। जब इसका पता चला तो उन्हें बरखास्त कर दिया गया, इसके साथ ही उनके खिलाफ़ यह अभियोग भी लगाया गया कि वह बन्दियों को रात के समय छुट्टा छोड़ देते थे। बन्दियो में से भागा तो कोई नहीं, लेकिन उनमे से एक किसी पादरी का गला दबोचते समय पकड़ा गया था। एक लम्बे अर्से तक मामले की जांच-पड़ताल चलती रही, लेकिन अदालत तक पहुचने की नौबत नहीं आई। बन्दियो और पहरेदारों ने नेक हृदय मामा याकोव को इस अपमान मे फंसने से बचा लिया। अब वह बेकार था और अपने बेटे के टुकड़ों पर जीवन बिताता था। उसका बेटा उन दिनों रुकाविश्निकोव के प्रसिद्ध

गिरजा-सहगान-दल में गायक का काम करता था। अपने बेटे के बारे मे उसकी राय विचित्र थी। कहने लगा:

"इधर वह बहुत बड़ा और गम्भीर आदमी बन गया है! गिरजे में गाता है—एकल गायक है। अगर समोवार गर्म करने या उसके कपड़ों को झाड़ने मे मुझे कुछ देर हो जाती है तो भौंहे चढ़ा लेता है! बहुत ही साफ़-सुथरा लड़का है!.. आदतें भी अच्छी है..."

खुद मामा याकोव जो अब बूढ़ा हो गया था, गंदा था और आंखो को अखरता था। उसके छैल-छबीले घुंघराले बाल अब पतले पड़ गए थे, कान छाज से निकल आए थे, आंखों की सफ़ेदी और उसके दाढ़ी विहीन गालों की रेशमी खाल में लाल शिराओं का जाल-सा बिछा था। वह हंसकर, मजाक का पुट मिलाते हुए बातें करता था, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो उसके मुंह में कोई चीज़ अटकी हो जो उसकी आवाज़ को साफ़-साफ नहीं निकलने देती हालांकि उसके सभी दांत अच्छी हालत मे थे।

मुझे इस बात की खुशी थी कि उससे,—एक ऐसे आदमी से जो प्रसन्न रहना जानता था, जिसने बहुत कुछ देखा था और जिसे बहुत सी बातें मालूम थीं,—मिलने और बाते करने का मौका मिला। उसके दबंग और हास्यपूर्ण गीत मै भूला नहीं था और मेरे नाना ने उसके बारे में जो कुछ कहा था, वह भी मुझे याद था। नाना ने कहा था:

"गाने राजा दाऊद के और काम अबूस के!"

नगर के बड़े और अधिक शरीफ लोग—अफ़सर और पदाधिकारी, और रंगी-चुनी स्त्रियां—छायादार पटरी पर हमारे सामने से गुज़र रहे थे। मामा याकोव एक भद्दा सा कोट पहने था, उसकी टोपी भी मुड़ी-तुड़ी थी और लाल-खाकी रंग के ऊंचे बूट अपनी अलग धजा दिखा रहे थे। बेंच पर वह कुछ इस तरह सिकुड़ा-सिमटा सा बैठा था मानो उसे अपने इस रूप पर शर्म आ रही हो। अन्त में हम यहां से चले गये और पोचाएन्स्की गली वाले एक भटियारख़ाने में खिड़की के पास मेज के पास बैठ गए। खिड़की बाजार की ओर खुलती थी।

"याद है तुम्हें वह गीत जिसे तुम गाया करते थे:

भिखारी ने लटकाये सुखाने को चीथड़े,
दूसरे भिखारी ने चीथड़े लिए उड़ा...

गीत के इन शब्दों के व्यंग्य और चुभन का, मैंने पहली बार अनुभव किया और मुझे लगा कि प्रसन्नता के आवरण में लिपटा मामा याकोव का अन्तर असल में काफ़ी तीखा और कांटों से भरा है।

लेकिन गिलास में वोद्का उंडेलते हुए उसने विचारमग्न सा होकर कहा :

"हां भाई, मेरे दिन पूरे हुए और मौज भी मैंने की, लेकिन काफी नहीं! वह गीत मेरा नहीं था। सेमिनारी के एक शिक्षक ने उसे बनाया था,—भला, क्या नाम था उसका? ओह, याद से उतर गया। हम दोनों, वह और मैं, गहरे मित्र थे। वह शादीशुदा नहीं था। वोद्का ने उसकी जान ले ली—पीकर एक दिन बाहर निकला और वहीं बर्फ़ में जाम हो गया। एक वही क्यों, न जाने कितने लोगों को मैंने वोद्का के पीछे जान गंवाते देखा है। उनकी गिनती तक करना मुश्किल है! तू पीता है? ठीक, इसे मुंह न लगाना ही अच्छा। फिर तेरी उम्र भी क्या है? अपने नाना से तो अक्सर मिलता रहता है न? बूढ़े को देखकर जी भारी हो जाता है। ऐसा मालूम होता है जैसे उसका दिमाग़ कमजोर हो गया हो।"

वोद्का के एक या दो दौर के बाद वह कुछ चेतन हो गया, अपने कंधों को उसने सीधा किया, जवानी की एक हिलोर सी उसके चेहरे पर दौड़ गई और उसने अधिक ज़िन्दादिली से बोलना शुरू किया।

मैंने उससे पूछा कि जेल कैदियों वाले मामले का ऊंट फिर किस करवट बैठा।

"सो तुझे भी उस मामले की ख़बर है?" उसने पूछा और फिर अपनी आवाज़ को धीमा करते तथा चौकन्नी नजर से इधर-उधर देखते हुए बोला :

"वे बन्दी थे तो इससे क्या? मैं कोई उनका मुन्सिफ़ तो था नहीं। मुझे तो वे वैसे ही इन्सान दिखाई देते थे जैसे कि और सब। सो मैंने उनसे कहा: आओ भाइयो, हम सब साथ मिल-जुलकर रहें, दो घड़ी जी बहलाएं, जैसा कि किसी ने गीत में कहा है:

> रंगीनियों का किस्मत से क्या वास्ता!
> तोड़ने दो उसे कमर हमारी,
> है हंसी-खुशी से हमारा वास्ता,
> न माने गधा ही बात हमारी!..

हसते हुए उसने खिड़की से बाहर झांककर देखा। नाले में अंधेरा सा छा रहा था, उसकी तलहटी में दुकानों की पांतें दिखाई दे रही थीं।

"जेल में सिवा उदासी के और क्या था? दो घड़ी मन बहलाने की बात सुन वे निश्चय ही खुश हुए," अपनी मूंछों को सहलाते हुए उसने कहा। "सो रात की हाजिरी होते ही वे मेरे यहां चले आते। खूब खाते और पीते। कभी मैं उन्हें खिलाता-पिलाता, और कभी वे, और हम स्वच्छन्द और उन्मुक्त हो जाते! गीत और नाच का मै प्रेमी हूं, और उनमें से कई बहुत बढ़िया गाते और नाचते थे! सच, बहुत ही बढ़िया। इतने कि कोई एकाएक यकीन नहीं करेगा। उनमे कुछ तो ऐसे थे जिनके पांवों में बेड़ियां पड़ी थीं। अब तू ही सोच, बेड़ियां पहनकर क्या कोई नाच सकता है? सो मै कहता: बेड़ियां उतार लो। यह बात सच है। इसके लिए उन्हे लोहार की जरूरत नहीं थी। वे खुद ही यह काम कर लेते। ऐसे-वैसे नहीं, वे होशियार लोग थे। सच, बहुत ही होशियार। लेकिन यह सब बकवास है कि मै उन्हे मुक्त करके नगर में चोरियां करने भेजता था, इसे कोई साबित भी नही कर सका..."

वह चुप हो गया और खिड़की में से पुराना माल बेचनेवाले कबाड़ियों को देखने लगा जो अपनी दुकानें बंद कर रहे थे। सांकल तथा कुन्दो की खड़खड़, जंग लगे कब्जों की चींचीं और कुछ तख्तों के गिरने की आवाज सुनाई दे रही थी। कुछ देर तक वह यही सब देखता और सुनता रहा। फिर खुशी से आंख मारकर कहने लगा:

"अगर सच पूछे तो उनमें एक ऐसा था जो रात को नगर जाया करता था। लेकिन उसके पांव में बेड़ियां नहीं थीं,—वह नीज्नी नोव्गोरोद का एक मामूली सा चोर था। पास ही, पेचोर्का गली में उसकी प्रेमिका रहती थी। और वह पादरी तो योंही भूल से लपेट मे आ गया। गलती से उसने पादरी को सौदागर समझ लिया। जाड़ों की रात थी। बर्फ़ीली आंधी चल रही थी। सभी बड़े, भारी कोट पहने थे। ऐसे में क्या पता चलता कि पादरी कौन है और सौदागर कौन?"

यह सुनकर मुझे हंसी आ गई। वह भी हंसा। कहने लगा:

"सच, शैतान जाने कि कौन क्या है?.."

इसके बाद, एकाएक, मामा याकोव के दिमाग ने कुछ इतनी आसानी से पलटा खाया कि मै स्तब्ध रह गया। वह अनायास ही झुंझला उठा।

मेज़ पर रखी रकाबी को उसने सामने से हटा दिया अरुचि से होठों और भौंहों मे बल डाला और सिगरेट जलाकर गुस्से मे बुदबुदाया.

"कम्बख्त एक-दूसरे को लूटते है, फिर एक-दूसरे को पकड़ते और जेल, कालेपानी, साइबेरिया से एक-दूसरे को जहन्नुम रसीद करते है। लेकिन मुझे बीच मे घसीटने में क्या तुक है? गोली मारो उन्हे... मेरी अपनी आत्मा है!"

उसकी बाते सुन मेरी कल्पना मे बेडौल जहाजी का चित्र मूर्त हो उठा। उसे भी, बात-बात मे, 'गोली मारो' कहने का शौक था और उसका नाम भी याकोव ही था।

"क्यों, तू क्या सोचने लगा?" मामा याकोव ने कोमल स्वर में पूछा।

"क्या तुम्हे उन बन्दियो पर तरस आता था?"

"तरस न आता तो और क्या होता? बहुत बढ़िया आदमी थे वे—सच, बहुत ही बढ़िया! कभी-कभी उन्हे देखकर मै मन मे सोचता: मै तुम लोगों के पांव की धूल भी नहीं हूं, तिस पर तुम्हारा रखवारा हूं! सच, वे शैतान बहुत ही चुस्त और चतुर थे..."

वोद्का और पुरानी यादों ने उसमे जैसे जान डाल दी और उसकी जिन्दादिली फिर से चेतन हो उठी। उसने अपनी कोहनी को खिड़की की सिल पर टिका दिया और उंगलियों में सिगरेट थामे अपने पीले हाथ को हिलाते हुए उमग भरे स्वर मे कहने लगा:

"एक काना था, ठप्पे और घड़िया बनाने का काम करता था। वह नकली सिक्के ढालने के अपराध में पकड़कर आया था। एक बार उसने जेल से भागने की भी कोशिश की, लेकिन सफल नही हो सका। आदमी क्या था, पूरा फितना था। बात-बात मे मशाल की भांति भड़क उठता! बोलता क्या था मानो गाना गाता था! एक दिन बोला: अब तुम्ही बताओ कि ऐसा क्यों है? टकसाल को तो सिक्के ढालने की छूट है, लेकिन मुझे नही,—आखिर क्यों? बताओ, तुम्हीं बताओ कि ऐसा क्यों है? लेकिन कोई भी यह नही बता सका,—यहां तक कि मै भी नही बता सका। तिस पर मजा यह कि मै उसका निगहबान था! इसी तरह मास्को का एक मशहूर चोर था—ऐसा साफ़-सुथरा, शान्त और बांका छैला। कहता: लोग काम करते-करते मर जाते है, लेकिन बेकार। मुझे इस तरह एड़ियां

रगड़ना पसंद नहीं। एक बार मैंने भी कोशिश की। काम करते-करते मैंने अपनी उंगलियां घिस डाली, लेकिन मिला क्या? समझ लो कि न के बराबर। गिनती के दो-चार घूंट पी लो, एक-दो हाथ ताश में गंवा दो और दो घड़ी किसी लड़की से खेलकर लो,—बस इतने में ही सब खत्म, और फिर वही भिखारी के भिखारी। नहीं बाबा, मुझे यह चक्कर पसंद नहीं..."

मामा याकोव मेज के ऊपर झुक गया। उसका चेहरा तमतमा रहा था, उसके बालों की जड़ें तक लाल हो गई थीं, और उसकी विह्वलता का यह हाल था कि उसके कान भी थिरक रहे थे। वह कह रहा था:

"सच कहता हूं भाई, वे मूर्ख नहीं थे! दीन-दुनिया को वे जानते थे। और बहुत पते की बातें करते थे। ओह, गोली मारो, यह जीवन भी कम्बख्त एक जंजाल है। मिसाल के लिए मुझे ही ले। बोल, क्या कहता है मेरे जीवन के बारे में? उसपर नजर डालते भी शर्म मालूम होती है! रंज और दुःख की कमाई की, खुशी भी पाई—लेकिन चोरी से, लुक-छिपकर। बाप चिल्लाता—यह न कर, और बीवी चिल्लाती—वह न करो, और मैं खुद था कि एक-एक कौड़ी के लिए जान खपाता। और इसी घिसघिस में सारा जीवन हाथ से निकल गया। और यह तू देख ही रहा है कि अब मैं क्या हूं—एक बूढ़ा और जर्जर आदमी, अपने ही बेटे का चाकर। जो सच है, उसे छिपाने से क्या फ़ायदा? मैं अपने बेटे का चाकर हूं। भाई, नाक रगड़ता हूं और दुम दबाकर उसकी चाकरी करता हूं। और असली नवाब की भांति वह मुझपर चीखता-चिल्लाता है। कहने को वह मुझे अब भी 'पिता' कहता है, लेकिन आवाज कुछ ऐसी आती है मानो कह रहा हो—'टुकड़खोर'! क्या इसीलिए मैंने जन्म लिया था? क्या इसीलिए मैं इतने दिनों तक मरता-खपता रहा? जीवन का क्या यही फल मुझे मिलना था कि जाओ, अपने बेटे के टुकड़े तोड़ो, और उसके सामने दुम हिलाओ! लेकिन अगर ऐसा न होता, तब भी क्या मेरे जीवन में चार चांद लग जाते? तू ही बता, इतने बड़े जीवन में मैंने इस जीवन का क्या किया,—कितना और क्या सुख मैंने पाया?"

मेरा ध्यान बंट गया था और उसकी सभी बातें मेरे कानों में नहीं पड़ रही थीं। अचकचाकर और जवाब पाने की कोई आशा किये बिना मैंने कह दिया:

"जीने का ढंग और ढब मैं भी नहीं जानता

वह हल्की हंसी हंसकर बोला।

"एक तू ही क्या, कोई भी नहीं जानता। मैंने तो आज दिन तक एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा जो यह जानता हो! बस, लोग ऐसे ही जीते रहते हैं, जिसको जैसे आदत हो..."

झुंझलाहट और गुस्से का एक बार फिर झोका आया और चोट खाई सी आवाज़ में वह बोला:

"बन्दियों में एक आदमी था, –ओर्योल का रहनेवाला। वह बलात्कार के अपराध में जेल आया था। किसी कुलीन घर में उसने जन्म लिया था और बेहद अच्छा नाचता था। वान्का के बारे में उसे एक गीत याद था जिसे सुनकर सब हंसते और खूब खुश होते थे:

> मुंह लटकाये वान्का घूमे,
> मरघट के चहुं ओर;
> वान्का, वान्का, वहां धरा क्या?
> और से अच्छा ठौर?

लेकिन सच पूछो तो इस गीत में हंसने लायक कोई बात नहीं थी। गीत क्या था, जीवित सत्य था! चाहे जितना बल खाओ, निकल भागने की चाहे जितनी कोशिश करो, लेकिन कब्रिस्तान से छुटकारा नहीं मिलता। और अगर बात ऐसी है तो मेरे लिए कोई फर्क नहीं–मैं इस दुनिया में बंदी बनकर जीऊं या बंदियों का निगहबान बनकर..."

बोलते-बोलते वह थक गया। गिलास उठाकर उसने अपना गला तर किया। फिर पक्षी की भांति खाली गिलास में एक आंख से देखा और चुपचाप सिगरेट से धुआं छोड़ने लगा।

राज प्योत्र जो मामा याकोव से ज़रा भी नहीं मिलता था, बड़े चाव से कहा करता था: "चाहे आदमी कितने ही हाथ-पांव मारे और चाहे कितने ही वह मनसूबे बांधे, लेकिन अन्त में पल्ले क्या पड़ता है,–वही डेढ़ गज़ कफ़न और मुट्ठी भर मिट्टी!" इस तरह का भाव व्यक्त करनेवाली कहावतों और मुहावरों का एक अच्छा-खासा अम्बार मेरे पास लग चुका था!

मामा याकोव से और कुछ पूछने के लिए मेरा मन नहीं चाहा। उसे देखकर मुझे उसपर तरस आया, मेरा जी भारी हो गया और उसके साथ बैठे रहना मुझे मुश्किल मालूम होने लगा। निराशा के तानेबाने में आह्लाद का रंग भरनेवाले उसके रसीले गीतों और गिटार की ध्वनि बरबस मेरे दिमाग में गूंजने लगी। त्सिगानोक का खुशी से छलछलाता चेहरा भी अपनी आंखों की ओट करना आसान नहीं था। मामा याकोव के रौंदे-मसले चेहरे की ओर देखते समय बरबस मुझे उसकी भी याद हो आई और यह सोचकर मैं अचरज करने लगा कि कौन जाने, मामा याकोव को त्सिगानोक की याद है या नहीं जिसे उसने क्रास के नीचे कुचलकर मार डाला था।

लेकिन मैंने उससे पूछा नहीं।

मैंने खिड़की में से सड़क की ओर देखा। अगस्त का महीना था और धुंध घनी होती जा रही थी। धुंध की गहराइयों में से सेबों और खरबूजों की महक आ रही थी। नगर की ओर जानेवाली संकरी सड़क के किनारे लालटेनें टिमटिमा रही थीं। चारों ओर की हर चीज़ किसी न किसी रूप में खूब परिचित थी: यह रीबिन्स्क जानेवाले जहाज की सीटी की आवाज थी, और वह पेर्म जानेवाले..."

"अच्छा तो मैं अब चलता हूं," मामा याकोव ने उठते हुए कहा।

भटियारखाने के बाहर आकर उसने मुझसे हाथ मिलाया और हंसते हुए कहने लगा:

"तू ने अपनी थूथनी क्यों लटका रखी है? मैं कहता हूं, उदासी का यह छींका अपनी थूथनी पर से उतार डाल! तेरी उम्र ही क्या है, हंस-खेल और मगन रह। वह गीत याद रखना: 'रंगीनियों का किस्मत से क्या वास्ता!' अच्छा तो अब बिदा। मैं उधर, उस्पेन्स्की गिरजे के पास वाले रास्ते से जाऊंगा!"

मौजी मामा याकोव चला गया और अपनी बातों से मुझे और भी ज्यादा अस्तव्यस्त कर गया।

मैं ऊपर नगर से होता हुआ खेतों की ओर चल दिया। आकाश में पूरा चांद तैर रहा था और बादल, खूब नीचे, झुके हुए, हवा के साथ बह रहे थे। उनकी परछाई में रह-रहकर मेरी परछाई खो जाती थी। खेतों ही खेतों में नगर का चक्कर लगाता हुआ मैं ओत्कोस के निकट

वोल्गा के किनारे पहुंच गया और बल भरी घास पर लेटकर देर तक नदी, चरागाहों और निश्चल धरती की ओर देखता रहा। बादलों की परछाइयां धीमी गति से वोल्गा को पार करतीं, चरागाहों मे पहुंचने पर वे और उजली दिखाई देतीं—ऐसा मालूम होता मानो वोल्गा के पानी मे स्नान करके वे निखर उठी हों। चारों ओर की हर चीज दबी हुई, उनींदी और ऊंघती सी मालूम होती, हर चीज इस तरह हरकत करती मानो उसमें चलने की सकत न हो, फिर भी उसे चलना पड रहा हो,—उस गहरी उमंग और गति से सर्वथा शून्य जिसमे जीवन और जीवित रहने की अदम्य आकांक्षा हिलोरें लेती है।

और मेरे मन मे यह भावना ज़ोरों से उमडने-घुमड़ने लगी कि इस धरती को और ख़ुद अपने आप को भी ऐसी ठोकर दूं कि जिससे हर चीज़—जिसमें मै भी शामिल था—बगूले की भांति खुशी से झूम उठे और सभी लोग, आपस में एक-दूसरे के प्रति और जीवन के प्रेम मे पगे अद्भुत नृत्य की रचना करे और वह जीवन जिसका उदय होना है, अधिक खरा, अधिक साहसपूर्ण और अधिक सुन्दर हो उठे...

मन मे रह-रहकर यह विचार उठता :

"जरूर मुझे अब कुछ न कुछ करना चाहिये, नहीं तो सारी जिंदगी बेकार हो जायेगी..."

शरद के उदास दिनों मे, जब सूरज केवल दिखाई ही नहीं देता, बल्कि उसके अस्तित्व का भी भास नहीं होता—ऐसे शरद के दिनों में कई बार मै जंगल में भटका हूं। रास्ता भूल जाता, सभी पगडंडियां खो जातीं, उन्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक जाता और अन्ततः दांत भींचकर सीधे जंगल में जाने लगता। सड़ी गली झाड़ियों, टहनियों पर कदम रखता, दलदलों को पार करता चलता जाता और अंत में रास्ते पर पहुंच ही जाता!

अब भी मैंने ऐसा ही करने का निश्चय किया।

इसी साल शरद के दिनों में मै कज़ान के लिए रवाना हो गया,—हृदय में यह गुप्त आशा लिए कि वहां पहुंचकर अध्ययन करने का कोई न कोई साधन निकल ही आएगा।

१९१४